प्रथम-आवृत्ति	राजसंस्करण-३०) रु०	वीर संवत् २४९७
पुस्तकाकार-५५०	साधारण ,, -२५) रु०	विक्रम संवत् २०२७

※ प्राप्तिस्थान ※

भारतीय प्राच्यतत्त्व प्रकाशन-समिति,
C/o रमणलाल ललचंद
१३५/१३७ झवेरी बाजार, बम्बई २

•

भारतीय प्राच्यतत्त्व प्रकाशन-समिति
C/o शा समरथमल रायचंदजी
पिंडवाड़ा, (राज०)
स्टे० सिरोहीरोड (W. R.)

•

भारतीय-प्राच्यतत्त्व-प्रकाशन-समिति
शा. रमणलाल वजेचन्द,
C/o दिलीपकुमार रमणलाल,
मस्कती मार्केट,
अमदाबाद २.

•

मुद्रक
ज्ञानोदय प्रिंटिंग प्रेस, पिंडवाड़ा
स्टे. सिरोहीरोड (W. R.)

-: पदार्थसंग्रहकाराः :-

कर्मशास्त्रधुरीण-गच्छाधिपा-ऽऽचार्यदेव-श्रीमद् विजयप्रेमसूरीश्वर-विनीत-विनेय-प्रभावक-प्रवचनकार पंन्यासप्रवर-श्रीभानुविजयगणिवर्य विनेयमुनिवर्यश्री धर्मघोषविजयान्तिषदो विद्वद्वर्य गीतार्थमुनिश्री-जयघोषविजयाः, पंन्यासप्रवरश्री भानुविजयगणिवर्य-विनेया मुनिश्री-धर्मानन्दविजयाः, गच्छाधिपतिविनीतविनेय-गीतार्थमूर्धन्य-पंन्यासप्रवर-श्रीहेमन्तविजयगणिवर्यविनेय मुनिराजश्री-ललितशेखरविजय-शिष्यरत्न-मुनिवर्यश्री राजशेखरविजय-शिष्याणवो मुनिश्रीवीरशेखरविजयाश्च ।

★

मूलगाथाकाराः

प्राकृतविशारदा मुनिश्रीवीरशेखरविजयाः ।

॥

टीकाकार. सम्पादकश्च :

सिद्धान्तमहोदधि कर्मसाहित्यनिष्णात सच्चारित्रचुडामणि स्व. आचार्यदेव श्रीमद् विजयप्रेम-सूरीश्वर-पट्टधर शासनप्रभावक व्याख्यानवाचस्पति आचार्यदेव श्रीमद् विजयरामचन्द्र-सूरीश्वर-विनेयरत्न विद्वद्वर्य प्रभावकप्रवचनकार पन्यासप्रवर श्रीगुणविजय-गणिवर विनेयाणु मुनि-विचक्षण विजयः ।

★

संशोधकाः

कर्मशास्त्रविशारद-गच्छाधिपति-श्रीमद् विजयप्रेमसूरीश्वरपट्टप्रभावका आगमप्रज्ञा-ऽऽचार्यदेव-श्रीमद्-विजयजम्बूसूरीश्वराः पदार्थसंग्रहकारमुनिप्रवराश्च ।

First Edition Copies 550

DELUXE EDITION RS. 30
ORDINARY „ RS. 25

A. D. 1970

AVAILABLE FROM :

1. BHARATIYA PRACHYA TATVA PRAKASHAN SAMITI.
C/o .Shah Ramanlal Lalchandji,
135/37 ZAVERI BAZAAR,
BOMBAY-2.
(INDIA)



2. BHARATIYA PRACHYA TATVA PRAKASHAN SAMITI.
C/o. Shah Samarathmal Raychandji,
PINDWARA, (Rajasthan)
St.Sirohi Road (W. R)
(INDIA)

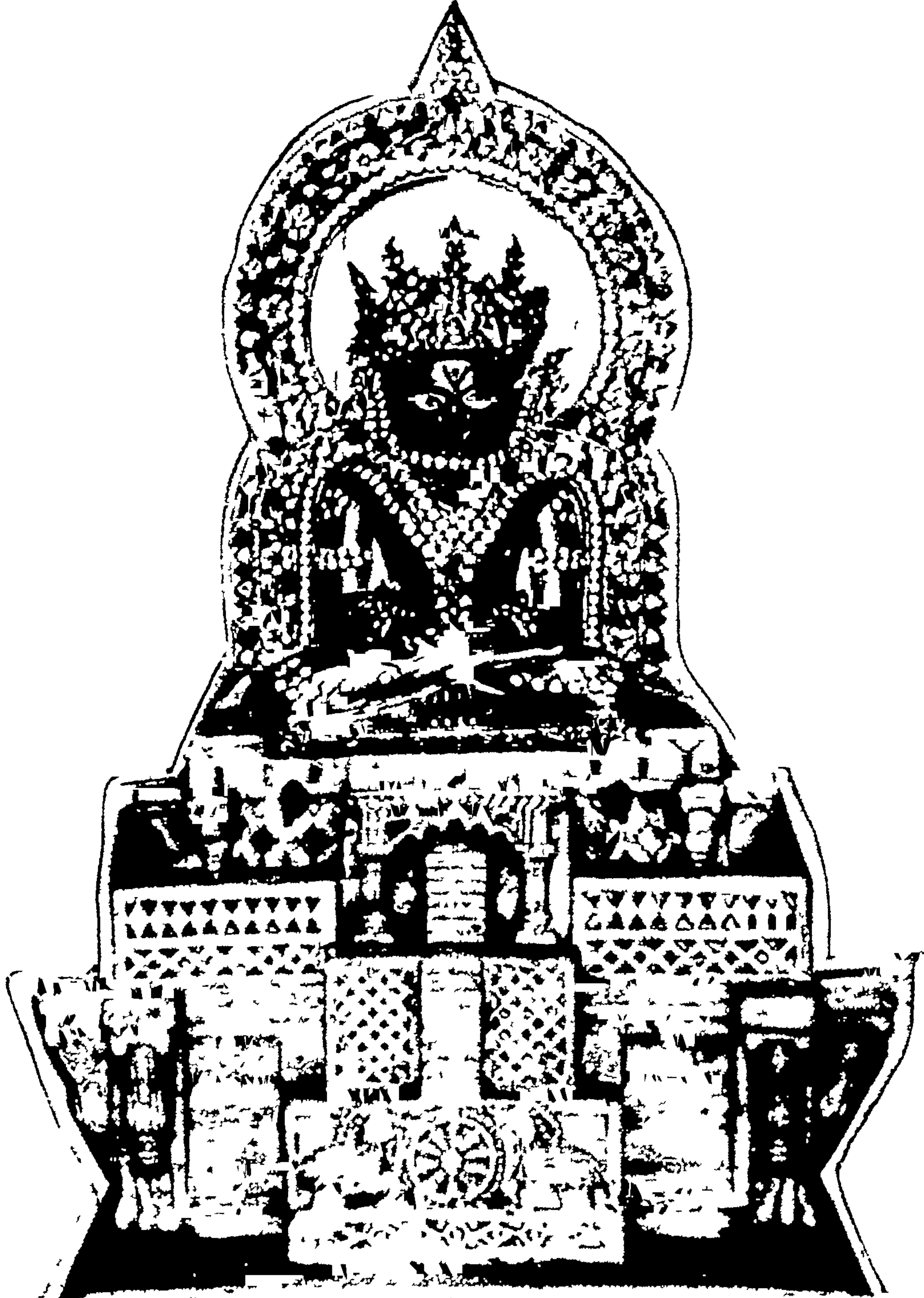


3. Shah Ramanlal Vajechand,
C/o Dilipkumar Ramanlal,
Maskati Market,
AHMEDABA-2.
(INDIA)



Printed by :
GYANODAYA PRINTING PRESS
PINDWARA. (Raj.)
St. Sirohi Road, (W.R.)
(INDIA)

श्री स्थंभनपुर (खंभातनगर) मण्डन पार्श्वनाथ भगवान.



श्रीस्थंभनपुरमण्डन—पार्श्वजिन प्रणतकल्पतरुकल्प : ॥
चूरय दुष्टव्रातं, पूरय मे वाञ्छितं नाथ ! ॥१॥

Acharyadeva Shrimad-Vijaya-Premasurishwara Karma-Sahity Granthmala

GRANTH NO. 7

Bandha Vihanam

UTTAR PAYADI BANDHU

[Along with "**PREMA PRABHA**" commentary]

By

A GROUP OF DISCIPLES

Inspired and Gaided by

His Holiness Acharya Shrimada Vijaya

PREMASURISHWARJI MAHARAJA

the leading authority of the day

on Karma philosophy.



Publisoed by-

Bharatiya Prachya Tattva Prakashan Samiti, Pindwara

सम्पादकीय

इस जगत में जब हम किसी को महल और मोटर का आनंद लेने वाला श्रीमंत देखते हैं तो किसी गरीब को घर २ भटकता, भीख मांगकर भी पेट भरने में असमर्थ पाते हैं। कोई शरीर से हृष्ट पुष्ट पहलवान सा दिखाई देता है तो कोई कई रोगों का शिकार दिखाई देता है। कोई बड़ा बुद्धिमान् दिखाई देता है तो कोई पागल सा, मुर्ख, बुद्धिविहीन भी नजर आता है। किसी के यहां करोड़ों और अरबों की सम्पत्ति के ढेर लगे हुए रहते हैं तो किसी के घर में कानी कौड़ी भी नहीं होती। इसी प्रकार कोई लूला है, कोई लंगडा है, कोई अंधा है कोई गूंगा है। कोई दुःखी है कोई सुखी है। कोई रोता है तो कोई हसता है। इस प्रकार की विचित्रता और विभिन्नता व्यक्ति व्यक्ति में दिखाई देती है। इसका यदि कोई कारण है तो वह है कर्म।

नास्तिक दर्शन के सिवाय सभी आर्य दर्शनकारों ने कर्म जैसे तत्त्व को माना है। यद्यपि सब की मान्यता-उसके नाम और स्वरूप के विषय में अलग २ हैं फिर भी सबने किसी न किसी रूप में कर्म तत्त्व को स्वीकार किया है। कोई कर्मको द्रव्य मानते हैं तो कोई गुण। कोई इसे वासना के नाम से पुकारते हैं तो कोई माया के नाम से। कोई इसे अदृष्ट कहते हैं तो कोई प्रकृति।

लेकिन जैन शासन में कर्म तत्त्व को जिस स्वरूप और जिन भेद प्रभेदों के रूप में माना है वह अत्यद्भुत और सुघटित है। कर्म तत्त्व को वास्तविक रूप में समझने के लिये वर्तमान युग में भी जैन शासन प्राचीन काल में तत्त्वज्ञानी पुरुषों द्वारा सुविस्तृत रूपमें रचित शास्त्रों से परिपूर्ण एवं समृद्ध है।

जैन शासन में कर्म को पुद्गल द्रव्य माना है। वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म है जो अपनी नजर में नहीं आता, केवल अतिशयज्ञानी ही उसे देख सकते हैं। इन कर्म पुद्गलों के चौदहों राजलोकों में से प्रत्येक आकाश प्रदेश में अनन्तानन्त अणु के स्कन्ध छाए हुए हैं। इन कर्म पुद्गलों को संसारी आत्मा योग के द्वारा ग्रहण करती है और क्षीर नीर के न्याय से अपने साथ चिपकाती है। आरंभ में यह कर्म पुद्गल सामान्यरूप में होता है, बादमें आत्मा अपने मिथ्यात्व अविरति और कषाय के अध्यवसायों से ज्ञानावरणादि के रूप में विभाजित करती है इन कर्म पुद्गलों के वेदन काल में आत्मा पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है। इनके कारण संसारी आत्माएँ संसार में एक गति से दूसरी गति में चक्कर लगाती है और सुख दुःख का अनुभव करती है।

हम लोग भी अनादिकाल से इन कर्मों की जंजीरों में जकड़े हुए होने से इस संसार में चक्कर लगा रहे हैं। इन कर्मों की जंजीरों को तोड़े बिना संसार का चक्कर मिटना अशक्य है। संसार के चक्कर मिटाने के लिए कर्मों का तथा कर्म बन्ध के हेतुभूत आश्रवादि का और कर्म मुक्त होने के हेतुभूत संवर निर्जरादिका ज्ञान सुविस्तृत रूप से करना प्रत्येक व्यक्ति के लिये अनिवार्य है। कर्म तत्त्व का ज्ञान भव्य जीवों को हो इस दृष्टि से प्राचीनयुग में ज्ञानी महापुरुषों ने अनेक ग्रन्थों की रचना की है। इसी प्रकार इस ग्रन्थ की भी रचना की गई है जिसका नाम 'उत्तरपयडिबन्धो' रखा गया है।

वर्तमान युग में कर्म साहित्य के विषय में जो २ ग्रन्थ उपलब्ध हैं उन सबका तलस्पर्शी ज्ञान हमारे इस ग्रन्थ रचना के प्रेरक सचारित्र्यचूडामणि कर्म साहित्य के परम निष्णात सिद्धान्त महोदधि आचार्य देव-श्रीमद् विजय प्रेमसूरीश्वरजी महाराज साहब ने सम्पादित किया। 'कम्मपयडी' जैसे जैन

शासन के साहित्य के एक अद्वितीय महान् ग्रन्थ के गुजराती या हिन्दी भाषानुवाद की तो बात ही दूर रही लेकिन उसकी छपी प्रति भी उपलब्ध नहीं थी उसकी हस्तलिखित प्रति ज्ञानभंडार में संशोधन करते २ उनके हाथ मे आई और उसे देखतेही आचार्यदेव बड़े प्रफुल्लित हो गए। उनके गुरुदेव आचार्य श्री **विजयदानसूरीश्वजी** महाराज के परम आर्शीवाद से उन्होंने उस ग्रन्थ का स्वयं अध्ययन करना प्रारम्भ किया। छहों कर्म ग्रन्थों का अध्ययन सुव्यवस्थित होने के कारण पूर्वापर के अनुसन्धान पूर्वक युक्ति से पदार्थों को बैठाने लगे कोई पदार्थ दिन भर अनुप्रेक्षा-चिन्तन करने पर भी दिमाग मे बराबर नहीं बैठता था तब मध्यरात्रि को उठकर बडी एकाग्रता पूर्वक सोचते थे। जब वह पदार्थ दिमाग में ठीक प्रकार से बैठता तभी वे निश्चिन्त होते थे। इस प्रकार अथक परिश्रम उठाकर इन महापुरुष ने कम्मपयडी ग्रन्थ कण्ठस्थ कर लिया। तत्पश्चात् औरों को पढाना आरम्भ किया। उन्होंने अनेक साधुओं और श्रावकों को यह पढाया। इस प्रकार जैन शासन मे कम्मपयडीग्रन्थ को पढने पढाने की परम्परा चली। वर्तमान मे जो कोई साधुवर्ग या श्रावकवर्ग इस ग्रन्थ का अभ्यासी मिलता है उस में साक्षात् या परंपरा से इन महापुरुष का ही उपकार है। बादमे इन महापुरुषने अनुपम कोटि के सक्रमकरण आदि अन्यतम ग्रन्थों की नूतन रचना की थी।

प. पू. आचार्य देव **श्रीमद् विजयप्रेमसूरीश्वरजी महाराज** साहब जैसे कर्म साहित्य के विषय मे निष्णात थे वैसे ही जैन जैनेतर न्याय ग्रन्थों के तथा आगम ग्रन्थों के भी अद्वितीय ज्ञाता थे इसलिये उनके गुरुदेव प. पू. ज्योतिर्विशारद **आचार्य देव श्रीमद् विजयदानसूरीश्वरजी** महाराज साहब ने उन्हे **सिद्धान्त महोदधि** की उपाधि से विभूषित किया था।

एक बार आचार्य देव अनेक साधुओं से परिवृत होकर सिद्धाचलजी की यात्रा के लिये जा रहे थे। गिरिराज पर चढते २ मार्ग मे आचार्यदेव ने कहा कि दस-बाहर ऐसे नए साधु बनाने हैं जो इस कर्म सहित्य में तथा आगम ग्रन्थों मे पारंगत हों उनकी यह दृढ मनोकामना कुछ ही वर्षो मे सफल हुई। वे एक अद्वितीय ब्रह्मनिष्ठ व्यक्ति थे। ब्रह्मचारी का चिन्तन कभी भी निष्फल नहीं होता। अनेक कर्म साहित्य और आगमशास्त्रों के विशारद शिष्य-प्रशिष्यों की सम्पदा हुई।

मुनि श्री जयघोषविजयजी मुनि श्री धर्मानन्दविजयजी मुनि श्री हेमचन्द्रविजयजी तथा **मुनि श्री वीरशेखरविजयजी** ने कर्म साहित्य के ग्रन्थों मे प्रकीर्ण रूप में पडे हुए पदार्थों को हेतु पुरस्सर संकलित कर नए ग्रन्थों की रचना प्रारंभ की। इसमें बन्धविधान नामक महाग्रन्थ की मूल गाथा से प्राकृत में रचना करने का भगीरथ कार्य प्राकृत विशारद मुनिश्री **वीरशेखरविजयजी** ने किया। उन्होंने इस महान् ग्रन्थ की रचना प्रकृति, स्थिति रस और प्रदेश से चार रूप मे की इन चारो के दो विभाग किये अेक मूल प्रकृति रूप से और दूसरा उत्तरप्रकृति रूप से तथा उत्तरप्रकृति रूप विभागको तीन रूप मे विभाजित किया (१) प्रथमाधिकारप्ररूपणा (२) स्थानप्ररूपणा (३) भूयस्कारप्ररूपणा। यह प्रस्तुत ग्रन्थ उत्तरप्रकृतिबन्धका निरूपण करने वाला प्रथमाधिकार प्ररूपणा रूप है उनके द्वारा प्राकृत मे रचित ऐसे अनेक मूल ग्रन्थों पर सरल और विद्वद्भोग्य संस्कृत भाषा मे वृत्ति रचने का कार्य अलग २ महात्माओं ने किया। बन्धविधान ग्रन्थ के पदार्थों का संकलन करने मे **मुनि जयघोषविजयजी मुनि श्री धर्मानन्दविजयजी मुनि श्री वीरशेखरविजयजी**-इन तीनों महात्माओं का महत्वपूर्ण योगदान है।

संवत् २०१६ के वर्ष में एक बार हम आचार्य देव के साथ पिंडवाडा में थे। उस समय आचार्य देव ने मुझसे कहा तुम भी एक ग्रन्थ की टीका लिखो मैने कहा-आचार्य देव! यह कार्य मेरे लिएकठिन है क्योंकि इस विषय में मेरा ज्ञान नहीं है और न मुझमें शक्ति ही है। आचार्य देव ने कहा-घबराओ नहीं थोडा अभ्यास करलो तुम्हें टीका लिखने में कोई कठिनाई नहीं आएगी मैने भी आचार्य देव का वचन

शिरोमान्य कर टीका लिखने के लक्ष्य से कर्म साहित्य का अध्ययन शुरू किया। उसके बाद जावाल के चतुर्मास में आचार्यदेव की परम पावन निश्रा में रहकर उनके और मेरे गुरुदेव प. पू. पंन्यास प्रवर श्री मुक्तिविजयजी गणिवर के आशीर्वाद से यह टीका लिखना प्रारंभ किया। आचार्यदेव और मेरे गुरुदेव की असीम कृपा से यह कार्य बडी सरलता से परिपूर्ण हुआ और छपकर आज आपके सामने प्रस्तुत हुआ।

मेरे इस ग्रन्थ की वृत्ति के मूल लेख (प्रेस प्रती) का संशोधन प. पू. आचार्यदेव ने किया लेकिन मेरा बडा दुर्भाग्य कि उनका स्वर्गवास होने के कारण यह पुनीत ग्रन्थ उनके कर कमलों में समर्पित नहीं कर सका।

बाद में इस ग्रन्थ के मूल लेख (प्रेस प्रति) का संशोधन मुनि श्री जयघोषविजयजी, मुनि श्री धर्मानन्द विजयजी, और मुनि श्री वीरशेखरविजयजी ने किया। इसके बाद आगम प्रज्ञ विद्वद्वर्य प. पू. आचार्यदेव श्रीमद् विजय जम्बूसूरीश्वरजी महाराज सहाब और यशोविजयजी म्हेशाना पाठशाला के प्राध्यापक सुश्रावक श्री पुखराजजी ने श्रुतभक्ति से प्रेरित होकर अपनी सूक्ष्म दृष्टि से संशोधन किया।

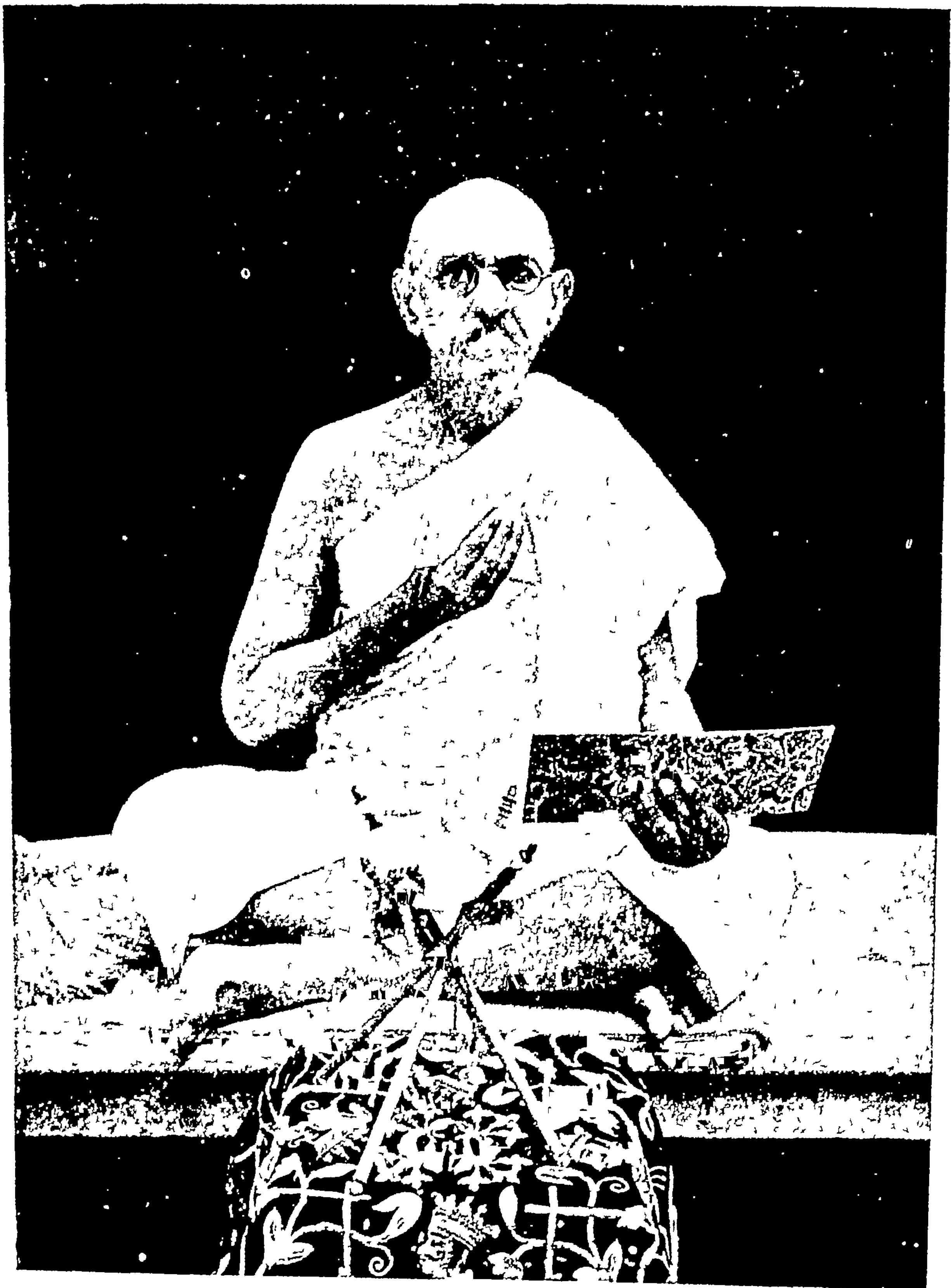
तदनन्तर मुनि श्री जयघोषविजयजी और मुनि श्री धर्मानन्दविजयजी ने मुझे ग्रन्थ छपवाने के लिए पिंडवाडा आने का पत्र लिखा। गुरु महाराज की आज्ञा से ज्येष्ठ गुरुबन्धु मुनिराज श्री जयभद्र विजयजी के साथ में पिंडवाडा आया और इस ग्रन्थ का मुद्रणकार्य शुरू हुआ।

इस ग्रन्थ का सम्पादन कार्य मे और उदारचित्त मुनि श्री जयघोषविजयजी कुशाग्र बुद्धि मुनि श्री धर्मानन्दविजयजी और विद्वान् मुनि श्री वीरशेखरविजयजी आदि ने मिलकर किया। उनकी ओर से बार बार हमे इस सम्पादन कार्य में मार्गदर्शन मिलता रहा। इससे हमारा यह कार्य बडी आसानी से समाप्त हुआ। रानी गांव मे चतुर्मास हेतु विराजे हुए परम तपस्वी विद्वद्वर्य मुनि श्री जितेन्द्रविजयजी महाराज ने प्रूफ सशोधन मे अपना अमूल्य समय देकर जो सहयोग दिया उसे हम कभी नहीं भूल सकते। इसी प्रकार समय २ पर न्यायविशारद मुनि जगच्चन्द्र विजयजी का भी इस कार्य में जो सहयोग मिला वह भी चिरस्मरणीय रहेगा।

कर्म साहित्य के अद्वितीय ज्ञाता—आगम प्रज्ञ प. पू. श्रीमद् जम्बूसूरीश्वरजी महाराज साहब तथा हमारे गुरुजी विद्वद्वर्य पन्यास प्रवर श्री मुक्तिविजयजी गणिवर महाराज सहाब के पास छपे हुए फर्मे भेजे गए। उन्होंने सूक्ष्मता से पढ़कर अशुद्धिया निकालने की हम पर बडी कृपा की। उन अशुद्धियों को श्री यशोविजयजी म्हेसाना पाठशाला के प्राध्यापक श्री वसन्तलाल द्वारा बनाए गए इस ग्रन्थ के शुद्धिपत्र मे शुद्ध रूप में परिवर्तित किया गया। जिनका अलग शुद्धिपत्र दिया है। शुद्धिपत्र की सहायता से ग्रन्थ में पहिले सुधार कर पढने के लिये विद्वज्जनों से विनम्र निवेदन है। प्रूफ सशोधन मे पूर्ण सावधानी रखते हुए भी छद्मस्थता कारण इस मे यदि कोई अशुद्धिया रह गई हों तो हमें सूचित करने का कष्ट करें। इस ग्रन्थ में अनाभोग से जिनाज्ञा विरुद्ध कुछ भी लिखा गया हो तो उसके लिये मिथ्यादुष्कृत देता हूँ।

स्व. सिद्धान्तमहोदधि कर्मसाहित्यनिष्णात सच्चारित्रचुडामणि प. पू. आचार्यदेव
श्रीमद् विजय प्रेमसूरीश्वरजी मा. सा. के पट्टधर शासनप्रभावक व्याख्यान
वाचस्पति महाराष्ट्रदेशोद्धारक प. पू आचार्यदेव श्रीमद् विजयराम-
चन्द्रसूरीश्वरजी मा. सा. के विनेयरत्न विद्वद्वरेण्य प्रखरवक्ता
प. पू. पन्यासप्रवर श्रीमुक्तिविजयजी गणिवर्य
के चरणकमल मे चञ्चरिक विनेयाणु
मुनि विचक्षणविजय।

सकलागमरहस्यवेदी सूरिपुरन्दर बहुश्रुतगीतार्थ परमज्योतिर्विद् परमगुरुदेव



परमपूज्य आचार्यदेवेश श्रीमद्विजयदानसूरीश्वरजी महाराजा

શ્રી તપગચ્છ અમર જૈનશાળા, ખંભાત



જે શ્રી તપગચ્છ અમર જૈનશાળાના જ્ઞાનખાતાના દ્રવ્યની સહાયથી આ ઉત્તર પ્રકૃતિબન્ધ નામના ગ્રન્થરત્નનું મુદ્રણ કરવામાં આવ્યું છે તે શ્રી તપગચ્છ અમર જૈનશાળાનો ભવ્ય રમણીય ઉપાશ્રય.

प्रकाशकों की ओर से

साहित्य समाज का दर्पण है। साहित्य में हमें किसी समाज का प्रतिबिम्ब देखने को मिलता है। साहित्य समाज का प्राण है। समाज को नव चेतना स्फूर्ति एवं गति साहित्य से प्राप्त होती है। सांसारिक ६ पिक सुखों का यथार्थस्वरूप हमें आध्यात्मिक साहित्य में दिखाई देता है। 'मै' और मेरा की अन्धी दौड मे जहां जगत के अधिकांश व्यक्ति होड़ लगा रहे हैं वहीं दूसरी ओर पंचमहाव्रतधारी त्यागी-तपस्वी गण संसार को 'स्व' की सही पहिचान करवाने में भी प्रयत्नशील हैं संसार के शोर गुल युक्त वातावरण से दूर शांति के साम्राज्य की सैर करवाने में ये मुनि गण सदा अपनी निःस्वार्थ सेवाएं देते रहे हैं।

ऐसे आध्यात्मिक साहित्य के सृजन में व्यस्त अनेक मुनिगणों मे निस्पृह शिरोमणि कर्म साहित्य निष्णात सिद्धान्त महोदधि परम पूज्य स्वर्गीय आचार्यदेव श्रीमद् विजय प्रेमसूरीश्वरजी महाराज साहब एव उनके आज्ञाकारी शिष्य प्रशिष्यरत्नों का भी हम पर बड़ा भारी उपकार है। इस संस्था का आध्यात्मिक प्रेम इन महात्माओं की उदारता के बिना विकसित होना असम्भव था।

इन कृपालु मुनिवरों का ही यह उपकार है कि यह संस्था अब तक कर्म साहित्य संबंधी विभिन्न ग्रन्थों का प्रकाशन करने मे सफल हो सकी है। 'खवगसेढी' तथा 'मूलपयडिबंधो' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रथम प्रकाशन समारोह अहमदाबाद में भव्य जुलूस के साथ चतुर्विध संघ की उपस्थिति में इस समिति द्वारा जो आयोजित हुआ उसे शायद ही भुलाया जा सकेगा। फिर तो जैन जगत मे प्राचीन साहित्य प्रकाशन में ऐसी रुचि पैदा हुई कि शीघ्र ही यह समिति श्रुत सृजन करने वाले महात्माओं की कृपा से 'मूलपयडिरसबन्धो' मूलपयडिपएसबन्धो, उत्तरपयडिरसबन्धो (पूर्वार्श) तथा 'उत्तरपयडिठिइबधो (पूर्वार्श) ज्ञानी श्रुतसेवीजनों की सेवा मे समर्पित कर सकी।

इस समिति के आध्यात्मिक साहित्य सृजन के उत्साह वर्धन में विभिन्न दानवीरों ने भी प्रशंसनीय योगदान दिया है। प्रस्तुत ग्रन्थ उत्तरपयडिबंधो के प्रकाशनार्थ जैन अमरशाला, खभात ने अपने ज्ञान द्रव्य मे से रु० १००००) की विपुल राशि देकर इस समिति पर बडा उपकार किया है। समिति दानवीर संस्था के व्यवस्थापकों को हार्दिक धन्यवाद देती है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में गुम्फित पदार्थों (तत्त्वों) के संग्रहकार परम पूज्य विद्वद्वर्य मुनिराज श्री जयघोषविजयजी महाराज परम पूज्य विद्वद्वर्य मुनिराज श्री धर्मानन्दविजयजी महाराज, मूल ग्रन्थ की प्राकृत गाथाओं के रचयिता परम पूज्य विद्वद्वर्य मुनिराज श्री वीरशेखरविजयजी महाराज तथा इस ग्रन्थ के सुबोध, सरल एवं विस्तृत टीकाकार परम पूज्य विद्वद्वर्य मुनिराज श्री विचक्षणविजयजी महाराज साहब के अनुपम आभारी है साथ ही इस संस्था के ज्ञानोदय प्रिंटींग प्रेस, के व्यवस्थापक ब्यावर निवासी श्रीयुत् फतहचन्दजी जैन (हाला वाले) एवं उनके अधीनस्थ अन्य कर्मचारीगणों की कर्तव्यपरायणता एवं तत्परता की भी प्रशंसा किये बिना नही रह सकते।

प्राचीन ग्रन्थ सम्पादन प्रकाशन कार्य की यह इति श्री नहीं है। अभी अन्य ग्रन्थ तैयार करने

में ये महाभागण लगे हुए हैं। आशा है कि सामर्थ्यवान् समृद्धजन एवं संस्थाएं इस साहित्य प्रकाशन में मुक्त हस्त से दान देकर अपने धन का सदुपयोग करेंगे।

भवदीय

मौनएकादशी वि० सं० २०२७ पिण्डवाड़ा (राजस्थान) स्टे०-सिरोहीरोड	शा० समरथमल रायचंदजी (मन्त्री)। शा० शान्तिलाल सोमचंद (भाणाभाई) चोकसी (मन्त्री) शा० लालचन्द छगनलालजी (मन्त्री) **भारतीय प्राच्यतत्त्व प्रकाशन समिति**



卐 श्री नवकार महामंत्र 卐



नमो अरिहंताणं

नमो सिद्धाणं

नमो आयरियाणं

नमो उवज्झायाणं

नमो लोए सव्वसाहूणं

ऐसो पंच नमुक्कारो

सव्वपावप्पणासणो

मंगलाणं च सव्वेसिं

पढमं हवइ मंगलं



સમર્પણ

જેઓશ્રીની પુણ્યપ્રેરણા અને અસીમકૃપાથી અલ્પજ્ઞ એવો હું ઉત્તરપ્રકૃતિબન્ધ નામના ડુનીત ગ્રન્થની વૃત્તિ રચવાનું કાર્ય કરવા સમર્થ થયો છું. તે મહાપુરુષ સ્વ. પ. પૂ. પરમોપકારી પરમારાધ્યપાદ, સચ્ચારિત્રચૂડામણિ સિદ્ધાન્તમહોદધિ કર્મશાસ્ત્રનિષ્ણાત સુવિશાલગચ્છાધિપતિ આચાર્યદેવેશ

શ્રીમદ્ વિજયપ્રેમસૂરીશ્વરજી મહારાજાના

પવિત્ર કરકમલમાં

મુનિ વિચક્ષણ વિજ

આ ગ્રન્થસર્જનના પ્રેરક, માર્ગદર્શક અને સંશોધક



સિદ્ધાન્તમહોદધિ, કર્મશાસ્ત્રનિષ્ણાત, સુવિશાલગચ્છાધિપતિ, સકલસંઘકૌશલ્યાધાર,

स्व. परमपूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजयप्रेमसूरीश्वरजी महाराजा.

बंधविहाणं

तत्र

उत्तरपयडिबंधो

तत्राऽयं

“प्रेमप्रभा” टीकाविभूषितः

प्रथमाधिकारलक्षणः पू. शिः

* विषयानुक्रमणिका *

उत्तरप्रकृतिबन्धग्रन्थप्रारम्भः



संख्यया मार्गणास्थानानि

↓

गति (४७)
[गाथा २९, ३०]

१ नरकगतिसामान्यम्,
७ रत्नप्रभादिपृथिवीभेदात्,

१ तिर्यग्गतिसामान्यम्
१ तिरश्ची,
१ पञ्चेन्द्रियतिर्यक्सामान्यम्,
१ पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्,
१ अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्,

१ मनुष्यगतिसामान्यम्,
१ मानुषी,
१ पर्याप्तमनुष्य,
१ अपर्याप्तमनुष्यः,

१ देवगतिसामान्यम्,
३ भवन-व्यन्तर-ज्योतिष्का,
१२ सौधर्मादिकल्पोपपन्नभेदात्,
९ नवग्रैवेयकभेदात्,
५ पञ्चानुत्तरभेदात्

इन्द्रियम् (१६)
[गाथा ३१]

❀७ एकेन्द्रिये,
★३ द्वीन्द्रिये,
★३ त्रीन्द्रिये,
★३ चतुरिन्द्रिये,
★३ पञ्चेन्द्रिये,

संख्यया मार्गणास्थानानि

↓

कायः (४२)
[गाथा ३२, ३३]

❀७ पृथिवीकाये,
❀७ अप्काये
❀७ तेजःकाये,
❀७ वायुकाये,
१ वनस्पतिकायसामान्यम्,
★३ प्रत्येकवनस्पतिकाये,
❀७ साधारणवनस्पतिकाये
★३ त्रसकाये,

योगः (१८)
[गाथा ३४]

५ मनोयोगे
—५ वचोयोगे,
१ काययोगसामान्यम्,
१ औदारिकः,
१ औदारिकमिश्र,
१ वैक्रिय,
१ वैक्रियमिश्र,
१ आहारक,
१ आहारकमिश्र.
१ कार्मण,

वेदः (४)
[गाथा ३५]

१ स्त्रीवेदः,
१ पुरुषवेदः,
१ नपुंसकवेदः,
१ अपगतवेदः,

संख्यया मार्गणास्थानानि

↓ कषायः (५)
[गाथा ३५]

१ क्रोधः,
१ मानः,
१ माया,
१ लोभः,
१ अकषाय,

ज्ञानम् ८
[गाथा ३५]

१ मतिज्ञानम्,
१ श्रुतज्ञानम्,
१ अवधिज्ञानम्,
१ मनःपर्यवज्ञानम्,
१ केवलज्ञानम्,
१ मत्यज्ञानम्,
१ श्रुताज्ञानम्,
१ विभङ्गज्ञानम्

संयमः (८)
[गाथा ३६]

१ संयमसामान्यम्,
१ सामायिक,
१ छेदोपस्थापनः,
१ परिहारविशुद्धिकः
१ सूक्ष्मसम्परायः,
१ यथाख्यातः,
१ देशसंयम,
१ असंयमः,

दर्शनम् (४)
[गाथा ३६]

१ चक्षुर्दर्शनम्,
१ अचक्षुर्दर्शनम्,
१ अवधिदर्शनम्,
१ केवलदर्शनम्,

संख्यया मार्गणास्थानानि

↓ लेश्या ६
[गाथा ३७]

१ कृष्णलेश्या,
१ नीललेश्या,
१ कापोतलेश्या,
१ तेजोलेश्या,
१ पद्मलेश्या,
१ शुक्ललेश्या

भव्यः (२)
[गाथा ३७]

१ भव्य,
१ अभव्य,

सम्यक्त्वम् (७)
[गाथा ३७,३८]

१ सम्यक्त्वसामान्यम्,
१ क्षायिकम्,
१ क्षायोपशमिकम्,
१ औपशमिकम्,
१ सासादनम्,
१ मिश्रम्,
१ मिथ्यात्वम्,

संज्ञी (२)
[गाथा ३८]

१ संज्ञी,
१ असंज्ञी

आहारक (२)
[गाथा ३८]

१ आहारकः,
१ अनाहारकः,

❀ [1]सामान्य-[2]सूक्ष्मसामान्य-[3]सूक्ष्मपर्याप्त-[4]बादरसामान्य-[6]बादरपर्याप्त-[7]बादरापर्याप्तभेदात् सप्त।

★ [1]सामान्य-[2]पर्याप्ता-[3]ऽपर्याप्तभेदात् त्रीणि।

— [1]सामान्य-[2]सत्या-[3]ऽसत्य-[4]सत्यासत्या-[5]ऽसत्यामृषभेदात् पञ्च।

॥ ॐ ह्रीँ अर्हं नमः ॥

॥ श्री शङ्खेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ॥

॥ सकलागमरहस्यवेदिपरमज्योतिर्विच्छ्रीमद्विजयदानसूरीश्वरसद्गुरुभ्यो नमः ॥

प्रवचनकौशल्याधार-सुविहिताग्रणी-गच्छाधिपति-परमशासनप्रभावक सिद्धान्तमहोदधि-
कर्मशास्त्रनिष्णाता ऽऽचार्यदेवश्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरपादानां पुण्यतमनिश्रायां
तदन्तेवासिवृन्दविनिर्मितप्रेमप्रभाटीकाविभूषितं मुनिश्रीजयघोष-
विजयधर्मानन्दविजयवीरशेखरविजयसंगृहीतपदार्थकं
मुनिश्रीवीरशेखरविजयविरचितमूलगाथाकम्

बंधविहाणे

तत्र

उत्तरपयडिबंधो

(उत्तरप्रकृति-बन्धः)

तत्राऽयं

मुनिश्रीविचक्षणविजयविरचितप्रेमप्रभाटीकासमलङ्कृतः

प्रथमाधिकारलक्षणः पूर्वांशः

अनुपमसुखसंयुक्तं सुरेन्द्रपरिसेविताङ्घ्रिकमलयुगं। केवलसुकलितविश्वं, स्तौमि सदा प्रथमतीर्थेशम्॥१॥
(आर्या)

संस्तुतौ स्थापकः शान्तेः शशीव शारदः शमी। शाश्वत्यै नोऽशरण्यानां, शान्तिनाथोऽस्तु शान्तये ॥२॥
(अनुष्टुप्)

श्यामा यस्य वपुःकान्तिः प्रवरा रिष्टरत्नवद् । अरिष्टनेमिरर्हन् स भूयान्नो रिष्टनाशकः ॥३॥ (,,)

अनन्तं विज्ञानं सुखमनुपमं विश्वविषयं । सुरम्यं चारित्रं विलसति च यस्य प्रतिकलम् ॥
जनानां वै यस्यातिशयनिकरं विस्मयकरं। सदा स श्रीपार्श्वो वितरतु सुभद्रं जिनवरः॥४॥
(शिखरिणी)

ऐन्द्रसुखसुधासक्त ऐन्द्रमननतक्रमः । ऐन्द्रमानंदमादधान्महेयं वीरविभुर्वरम् ॥५॥ (अनुष्टुप्)

यो वेत्ति विश्वमखिलं सुधिया सदैव ।
लब्ध्वा भवभ्रमणभङ्गविधायिनं यम् ॥
भव्याः प्रयान्ति भयकृद्भवकाननान्तं ।
आहत्य येन निहतः खलु मोहमल्लः ॥६॥ (वसन्ततिलका)
यस्मै नतिं ददति देवगणाधिपाश्च ।
राज्याधिपाः प्रचुरभक्तिभराः सहर्षम् ॥
रागादिदोषविलयादिह नैव यस्मात् ।
आप्तोऽपरोऽवृजिनवाक् परमोपकारी ॥७॥ (वसन्ततिलका)
दुःखाग्निनाऽनवरतं परिदह्यमानाः ।
नैरयिका अपि सुपर्वसु सुप्रसन्नाः ॥
कल्याणकेषु सुखमाप्य भवन्ति यस्य ।
सङ्क्रन्दनस्य खु सुधामिव पीतवन्तः ॥८॥ (वसन्ततिलका)
यस्मिन्ननुत्तरगुणा विलसन्त्यनन्ताः ।
सौम्ये सरोवर इव प्रवरा मरालाः ॥
स स्तम्भनाभिधपुरस्थितपार्श्वनाथः ।
ग्रन्थेऽत्र वृत्तिरचने प्रतनोत्वविघ्नम् ॥९॥ (वसन्ततिलका) (त्रिभिर्विशेषकम्)
प्रसादं संप्राप्य प्रकृतिसुभगं यस्य रुचिरम् ।
न पीडामाप्नोति प्रबलघनकर्मौघरिपुतः ॥
कदाप्यस्मिँल्लोके सुभविकजनो धर्मपथगः ।
यथा तापात्तीव्रात् शिरसि धृतछत्रो दिनकृतः ॥१०॥ (शीखरिणी)
सदा स प्रेमाख्यो निखिलसमयेषु प्रथितधीः ।
सुगच्छाभ्रे श्रीमान् दिनमणिरिव ध्वान्तहरणः ॥
मयि ग्रन्थस्यास्य स्मरणपटुतां वृत्तिकरणे ।
प्रकुर्यादाचार्यो विपुलवरविद्याविरहिते ॥११॥ (शीखरीणी) युग्मम्

प्रतिबोध्य समानीता भवोत्पथस्थिता जनाः । देशनया हृद्या येन सारथिनेव सत्पथि ॥१२॥
जगत्प्रथितमाहात्म्यं शासनोद्यतकारिणम् । तं वन्दे प्रवराचार्यं श्रीरामचन्द्रसूरिणम् ॥१३॥ (अनुष्टुप्)
युग्मम्

हृत्पङ्कजानि भव्यानां विकसितानि भानुवद् । येन धर्मकथाकाले वाक्प्रतापं वितन्वता ॥१४॥(,,)
गणिनं देशनादक्षं पन्यासप्रवरं गुरुम् । श्रीमुक्तिविजयं नत्वा तं तार्किकशिरोमणिम् ॥१५॥ (,,)

वृत्तिं ग्रन्थेऽत्र कुर्वेऽहं प्रेमप्रभामभिख्यया। जिज्ञासूनां खु भव्यानां कर्मतत्त्वाववोधिकाम् ॥१६॥
(अनुष्टुब्) (त्रिभिर्विशेषकम्)

गरीयान्सो गुणस्तोमाल्लघीयान्सोऽपि सन्ति ये। कुशलाः कर्मशास्त्रणां ये खु पदार्थसंग्रहे ॥१७॥
(„)

धर्मसाहित्यपारीण आगमोपनिषद्विदः। श्रीयुतो जयघोषाँस्तान् धर्मानन्दानहं मुदा ॥१८॥
(„)

चरणधृतिधीराँश्च ग्रन्थकृद्वीरशेखरान्। विजयपदभास्वरान् स्मृतिगोचरमानये ॥१९॥
(„) (त्रिभिर्विशेषकम्)

बुद्धिर्विकाशमाप्नोति यस्याः पुण्यप्रभावतः। तां सन्मत्यै सदा भक्त्या भारतीमानमाम्यहम् ॥२०॥
(„)

इह कर्मलुण्टाकैर्लुण्टितज्ञानाद्यात्मधनाः क्लिष्टसंक्लेशसंतप्यमाना आधिव्याध्युपाधिदुःखोपद्रवाऽभिद्रुता जिनधर्मपाथेयविनिर्मुक्ताः क्षुधादिकष्टकदर्थिता गहनतरां विचित्रां कर्मप्रकृतीनां गतिमनवगाहमाना अन्धा इवेतस्ततो बम्भ्रम्यमाणा अनन्तापारसंसृत्यटव्यामनन्तानन्तप्राणिव्राताः परिदृश्यन्ते, तेषां संसारोच्छेदमोक्षप्रदानलक्षणहिताधानकामनया हितविधानैकरसिको ग्रन्थकारो बन्धविधानाख्ये महाकाये ग्रन्थे मूलप्रकृतिबन्धनिरूपणानन्तरं क्रमायातस्योत्तरप्रकृतिबन्धविषयस्य ग्रन्थस्य निर्मितिं विधातुकामो मङ्गलाभिधेयादिसूचिकामादौ गाथामाह

अह थम्भिअकम्मारिं थोउं थंभणपुरत्थपासपहुं।
गुरुआएसाहिन्तो वोच्छं उत्तरपयडिबंधं ॥ १ ॥

(प्रे०) 'अह' त्ति अथशब्द आनन्तर्ये—बन्धविधानाख्यग्रन्थस्य मूलप्रकृतिबन्धनिरूपणं समाप्य साम्प्रतमुत्तरप्रकृतिबन्धो निरूप्यते। 'थंभिअकम्मारिं' ति स्तम्भिताः कर्माण्येवारयो येन स इति स्तम्भितकर्मारिः, तम्, अवरुद्धकर्मशत्रुमित्यर्थः। 'थोउं' ति स्तुत्वा, मनोवचःकायैः स्तुतिविषयीकृत्वेति भावः। कं स्तुत्वा? इत्याह "थंभणपुरत्थपासपहुं" ति स्तम्भनपुरे तिष्ठतीति स्तम्भनपुरस्थः, स्तम्भनपुरस्थश्चासौ पार्श्वप्रभुश्चेति स्तम्भनपुरस्थपार्श्वप्रभुः, तम्, स्तम्भनपुरनामनगरविराजमानं पार्श्वनाथस्वामिनमित्यर्थः। स्तुत्वेत्यत्र स्तुधात्वव्यवहितोत्तरविहितक्त्वाप्रत्यय उत्तरक्रियासापेक्षोऽस्ति, अतः स्तुतिलक्षणक्रियोत्तरक्रिया 'वोच्छ' मिति वक्ष्य इत्यनेन क्रियापदेन कथ्यते। अत्र कं वक्ष्ये? इत्याह 'उत्तरपयडिबंध' मिति उत्तरप्रकृतिबन्धम्, इदमुक्तं भवति-कर्मप्रकृतयो मूलतोऽष्टविधा विद्यन्ते, तासां मूलप्रकृतीनामुत्तररूपेण विंशत्यधिकशतमवान्तरप्रकारा भवन्ति, इह त्वासामुत्तरप्रकृतीनां बन्धो निरूपणविषयो वर्तते, न मूलप्रकृतीनाम्, प्राग् निरूपितत्वात्। इयमुत्तरप्रकृतिबन्धविधानग्रन्थरचना नास्माभिः स्वेच्छया क्रियते किन्तु गुर्वादेशेनेत्युपदर्शयितुमाह 'गुरुआएसाहिन्तो' त्ति गुर्वादेशात्, गुर्वाज्ञयेत्यर्थः। ननु ग्रन्थस्ये-

तस्य स्वेच्छया विरचने को दोषः, यत उच्यते, '**गुरुआएसादिन्तो**' इति ? अत्रोच्यते, ग्रन्थनिर्माणं यदि स्वेच्छया विधीयते, तर्हि ग्रन्थश्रवणे प्रेक्षावतां प्रवृत्तिरेव न स्यात्, एवं हि ते मन्येयुः अयं ग्रन्थः स्वच्छन्दपुरुषेण निर्मितः, तस्मादस्य प्रमाणविषयत्ववहिर्भूतत्वेनाऽश्रवणीयत्वमेवेत्यत्र न कोऽपि प्रवर्तेत, अतोऽत्र शास्त्रे प्रामाण्यप्रतिपादनाय प्रेक्षापूर्वकारिणां च प्रवृत्त्यर्थं गुर्वाज्ञया शास्त्रनिर्माणं कर्तव्यमिति हेतोर्गुर्वाज्ञावशंवदेन ग्रन्थकृतोत्तरप्रकृतिबन्धविषयस्यास्य ग्रन्थस्य रचना पूज्यपादानां परमोपकारकारणैकनिबद्धकक्षाणां कर्मसाहित्यज्ञातृप्रष्ठानां समयामृतपूतदृष्टीनामाचार्यपदप्रतिष्ठानां गुरुप्रवराणां **श्रीमद्विजयप्रेमसूरीणामाज्ञया** कृता, यतो ह्यार्हते शासनेऽपवर्गपथप्रयायिनां मुनिपुङ्गवानां प्रवृत्तिः सदैव गुर्वाज्ञाऽविनाभाविनीति, यद्वा 'गुर्वादेशात्' गुरूणां तीर्थकृताम् 'आदेशात्' कथनानुसारेणेत्यर्थः, इदमुक्तं भवति अर्थतस्त्रिकालवर्तितीर्थकृताऽभिहितस्य सूत्रतश्चतुर्दशपूर्वधरैर्गणधरप्रवरैर्निबद्धस्य श्रुतस्यानुसारेण प्रस्तुत उत्तरप्रकृतिबन्धो वक्ष्यते, श्रुतानुसारिगुरूणामाज्ञायां श्रुतानुसारित्वस्याऽन्तर्गतत्वात् । अत्र ग्रन्थप्रारम्भे पूर्वार्धगाथया सकलदुरितसन्दोहसमूलोन्मूलनार्थं मङ्गलमिष्टदेवतानमस्कारात्मकं व्यधायि । बन्धविधानस्य प्रकृतिबन्धात्मके प्रथमखण्डे मङ्गलं ह्यादिमध्यावसानभेदैस्त्रिविधं वर्तते, आदिमङ्गलं ग्रन्थकारेण मूलप्रकृतिबन्धविधानाख्ये ग्रन्थे विहितम् । मध्यमङ्गलं तु प्रथमगाथायाः पूर्वार्धेनेवेहाचरितम्, अवसानमङ्गलं पुनरग्रे विधास्यते, । प्रथममङ्गलस्य प्रयोजनं निर्विघ्नं शास्त्रस्य परिसमाप्तिः, मध्यममङ्गलस्य पुनः शास्त्रस्य स्थिरपरिचितता, अवसानमङ्गलस्य च शिष्यप्रशिष्यपरम्परायां शास्त्रस्याऽध्ययनाध्यापनविधेरव्युच्छित्तिरिति । अभिधेयः पुनरत्रोत्तरप्रकृतिबन्धोऽस्ति स चेह ग्रन्थकारेण साक्षादेवोक्तः । सम्बन्धप्रयोजनौ पुनरिह साक्षादनुक्तावपि सामर्थ्यादवगन्तव्यौ । तत्र सम्बन्धस्तु द्विविधः–श्रद्धानुसारिणं प्रति गुरुपर्वक्रमरूपः, तर्कानुसारिणं प्रति वाच्यवाचकभावलक्षणश्च । द्विविधोऽप्ययं सम्बन्धोऽत्र विद्यते, तद्यथा-अनन्तगुणगणभृद्गणधरप्रवर**श्रीमत्सुधर्मा**स्वामिनः प्रारभ्याऽस्मद्गुरुप्रवराचार्यदेवेश**श्रीमद्विजयप्रेमसूरी**श्वरपर्यन्तलक्षणः परम्परारूपः, अन्य--श्चोत्तरप्रकृतिबन्धलक्षणवाच्येन सह शास्त्रलक्षणस्य वाचकस्य वाच्यवाचकभावलक्षणः । प्रयोजनं साक्षात्परम्परभेदेन द्विप्रकारमस्ति, अनयोर्द्वयोरपि प्रत्येकं श्रोतुः कर्तुश्च भेदेन द्वैविध्यं विद्यते । साक्षात्प्रयोजनं श्रोतुरुत्तरप्रकृतिबन्धविज्ञानं कर्तुश्चैतद्ग्रन्थविषयीभूतस्योत्तरप्रकृतिबन्धस्य ज्ञानकारापणेनोपकृतिविधानम्, स्वस्य ज्ञानस्य स्थिरीकरणं च, परम्परया प्रयोजनं तूभयस्याप्यपवर्गलाभः । इहाऽनेनाभिधेयाद्यभिधानेन शास्त्रश्रवणे प्रेक्षापूर्वकारिणां विनेयवृन्दानां प्रवृत्तिः प्रसाधिता भवति । '**धंमिअकम्मारि**' मिति कथनेनार्हद्भगवतः श्रीपार्श्वप्रभोरपायापगमाख्योऽतिशयः साक्षादेव दर्शितः, तेनाऽपरेऽपि त्रयोऽतिशया अत्र साक्षादनुक्ता अपि सामर्थ्यगम्याः सन्ति, तीर्थकरे भगवति त्रयाणामपि ज्ञानपूजावचनातिशयानामपायापगमातिशयाऽविनाभावित्वात् ॥१॥

॥ अथोत्तरप्रकृतिबन्धग्रन्थे पञ्चाधिकाराः ॥

अथ बन्धविधानाख्ये ग्रन्थ उत्तरप्रकृतिबन्धग्रन्थस्य विषयप्रतिपादनपरानधिकारांस्तेष्वधि-
रेषु द्वाराणां संख्याञ्च दर्शयति

तत्थ खलु मुणेयव्वा पण अहिगारा जहक्कम पढमो ।
ठाण भूओगारो पयणिक्खेवो तहा वुड्ढी ॥ २ ॥
तेसुं पढमाईसुं अहिगारेसुं हवन्ति जहकमस ।
पणरस चउदस तेरस तिण्णि य तेरस दुआराणि ॥ ३ ॥

(प्रे०) 'तत्थ' इत्यादि, तत्र उत्तरप्रकृतिबन्धनिरूपणविषये पञ्चाऽधिकारा वर्तन्ते, ते चेमे
थमः, स्थानम्, भूयस्कारः, पदनिक्षेपः, वृद्धिरिति । अथैषामधिकाराणां द्वारसंख्यामभिदधाति ।
तेसु" इत्यादि, प्रथमादिपञ्चाधिकाराणां यथाक्रमं पञ्चदशचतुर्दशत्रयोदशत्रित्रयोदशद्वाराणि वर्तन्ते,
षां स्वरूपं मूलप्रकृतिबन्धेऽभिहितत्वेनाऽत्र नैव प्रतिपाद्यते, ग्रन्थगौरवभयात् ॥२-३॥

॥ अथ प्रथमाऽधिकारः ॥

साम्प्रतं बन्धविधानशास्त्रस्योत्तरप्रकृतिबन्धग्रन्थसत्कप्रथमाऽधिकार उत्तरप्रकृतिबन्धव्याख्यान-
तुभूतानि सत्पदप्रमुखाणि द्वाराणि निरूपयिषुराह

पढमे खलु अहिगारे पण्णरस दुआरगाणि संतपयं ।
सामित्तसाइआई कालंतरसण्णियासा य ॥ ४ ॥
भंगविचयो उ भागो परिमाण खेत्तफोसणा कालो ।
अंतरभावप्पबहू विण्णेयाइं जहाकमसो ॥ ५ ॥

(प्रे०) 'पढमे' इत्यादि, 'प्रथमे' प्रथमाभिध आद्ये 'खलु' निश्चयेन अधिकारे पञ्चदश 'दुआर-
काणि' द्वाराण्येव द्वारकाणि 'यावादिभ्यः कः' इति सिद्धहेमसूत्रेण स्वार्थे कप्रत्ययः, सन्तीत्याद्यो-
ज्यम्, इदमुक्तं भवति–उत्तरप्रकृतिबन्धविधानस्य प्रथमाऽऽख्य आद्येऽधिकार उत्तरप्रकृतिबन्धव्या-
ख्याङ्गभूतानि पञ्चदश द्वाराणि सन्ति । 'कानि च तानि' इत्याह ? 'संतपय' मित्यादि, सत्प-
दस्वामित्व-साद्यादि-कालाऽन्तर-सन्निकर्ष-भङ्गविचय भाग--परिमाण क्षेत्र--स्पर्शना- काला ऽन्तर भावा-
ऽल्पबहुत्वनामानि द्वाराणि पञ्चदशसंख्याकानि ज्ञातव्यानीति । नन्वत्र द्वाराणां नामोपन्यासवाक्ये
कालाऽन्तरद्वारे सकृदभिधाय 'कालो अतर' इत्यनेन पुनस्तन्न्यासे कथं न पुनरुक्तिः स्यादिति चेन्न
अभिप्रायापरिज्ञानात्, आसन्निकर्षमेकजीवमधिकृत्यानेकजीवांश्चाश्रित्य भङ्गविचयाद्दारभ्याल्पबहुत्व-
द्वारं यावत्सर्वाणि प्ररूपणीयानि, ततश्चादावेकजीवाधिकारात् पश्चाच्च नानाजीवाधिकाराद् द्विरुपोप-
न्यासः, अतो न पुनरुक्तिरिति । एषां सर्वेषां द्वाराणां स्वरूपं मूलप्रकृतिबन्धाधिकारे प्रतिपादितम्,
अत्रा-ऽपि केषाञ्चिद् द्वाराणामभिधास्यतेऽग्रे ॥४-५॥

॥ प्रथमं सत्पदद्वारम् ॥

साम्प्रतं प्रथमं सत्पदद्वारं प्ररूपयितुमुपक्रमते, अथ कथं सत्पदप्ररूपणेति चेदुच्यते जगत्यस्मिन्नात्मादिपदार्थमात्रा विद्यन्ते नवेति विमर्शविधानेन तदस्तित्वसाधनं सत्पदप्ररूपणेति, प्रस्तुतेऽपि विश्ववैचित्र्यस्यान्यथानुपपत्त्या ज्ञानावरणीयाद्युत्तरकर्मप्रकृतयो जीवेन सार्कं कथञ्चित्तादात्म्यभावेन संयोगात्मकस्तद्बन्धश्च विद्यन्त इति सत्पदप्ररूपणया विचार्यते ।

इदानीमुत्तरप्रकृतिबन्धसत्पदप्ररूपणायां लाघवार्थं प्रकृतिसंग्रहगाथाः कथयति

आवरणअंतराया सायजसुच्चाणि चरमलोहाई ।
तइअदुइआ कसाया णराउओरालदुगं वइरं ॥ ६ ॥
थीणद्धितिगाणित्थी मज्झिमसंघयणआगिई णीअं ।
दुहगतिगासुहखगई तिरिदुगउज्जोअतिरिआऊ ॥ ७ ॥
णपुमं मिच्छं हुंडं छेवट्ठं थावरायवेगिंदी ।
विगलसुहुमणिरयतिगं आहारदुगं सुराऊ य ॥ ८ ॥
देवविउव्वदुगजिणा इह एआउ करिउं जमाइम्मि ।
इह वोच्छिमु जावइया तावइआ ता कमा गेज्झा ॥ ९ ॥

(प्रे०) 'आवरण' इत्यादि, 'आवरणाऽन्तरायाः' व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिरिति न्यायादत्राऽऽवरणपदेन मतिश्रुताऽवधिमनःपर्यवकेवलज्ञानावरणलक्षणपञ्चप्रकृतयः, चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणलक्षणाश्चतुष्प्रकृतयश्च ग्राह्याः, तथाऽन्तरायपदेन च दानलाभभोगोपभोगवीर्यान्तरायरूपाः पञ्चप्रकृतयो ग्राह्याः । 'सातयश उच्चानि' त्ति "पदैकदेशे पदसमुदायोपचारा" दिति न्यायात् सातवेदनीययशःकीर्त्युच्चैर्गोत्राणि । 'चरमलोभादयः' चरमश्चासौ लोभश्चेति चरमलोभः स आदो येषां ते चरमलोभादयः, अयं भाव–चरमलोभादय इत्येतत्पदेन पश्चानुपूर्वीक्रमेण संज्वलनलोभमायामानक्रोधाख्याश्चतस्रः प्रकृतय आदेयाः, । 'तृतीयद्वितीयाः कषायाः' प्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभाः, अप्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभा इति । 'नरायुरौदारिकद्विकं' मनुष्यायुः, मनुष्यगतिमनुष्यानुपूर्वीरूपं मनुष्यद्विकमौदारिकशरीरौदारिकाङ्गोपाङ्गरूपं चौदारिकद्विकमिति । 'वज्रं' सूचनात्सूत्रमिति न्यायात् वज्रर्षभनाराचनामप्रथमसंहननं विज्ञेयम् । 'स्त्यानर्द्धित्रिकानस्त्रियः' स्त्यानर्द्धित्रिकं निद्रानिद्राप्रचलाप्रचलास्त्यानर्द्धिलक्षणम्, पदाभिधेयस्यार्थस्य पदैकदेशेनाऽपि वाच्यत्वादत्र 'अन' पदेनाऽनन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभात्मकं कषायचतुष्कमवसातव्यम्, स्त्रीवेदः । 'मध्यमसंहननाकृतिचतुष्कं' आद्यन्तवर्जं ऋषभनाराचनाराचाऽर्धनाराचकीलिकारूपं संहननचतुष्टयं, न्यग्रोधसादिवामनकुब्जरूपं संस्थानचतुष्टयं चेति । 'नीचं' नीचैर्गोत्रम् । 'दुर्भगत्रिकाशुभखगति' दुर्भगदुःस्वरानादेयरूपं दुर्भगत्रिकमशुभ-

विहायोगतिश्चेति, 'तिरि' इत्यादि, तिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्वीरूपं तिर्यग्द्विकमुद्योतनाम तिर्यगायुश्चेति । 'नपुंसकः' नपुंसकवेदः । 'मिथ्यात्वं' मिथ्यात्वमोहनीयम् । 'हुण्ड' हुण्डाख्यमन्तिमं संस्थानम् । 'सेवार्त' छेदपृष्टाख्यमन्तिमं संहननम् । 'थावर' इत्यादि, स्थावरातपैकेन्द्रियजातिनामकर्माणि । विकलसूक्ष्मनरकत्रिकं द्वन्द्वात्पर प्रत्येकमभिसम्बध्यते, इतिन्यायादत्र त्रिकपदं विकलादिप्रत्येकपदेन समं संयोजनीयम्, विकलत्रिकं द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियलक्षणं सूक्ष्मत्रिकं सूक्ष्माऽपर्याप्तसाधारणरूपं नरकत्रिकं च नरकायुर्नरकगतिनरकानुपूर्वीस्वरूपं बोद्धव्यम् । 'आहारकद्विकं' आहारकशरीराहारकाङ्गोपाङ्गात्मकम्, 'सुरायुः' देवायुष्कम् । 'देववैक्रियद्विकजिनाः' देवद्विकं देवगतिदेवानुपूर्वीस्वरूपं वैक्रियद्विकं च वैक्रियशरीरवैक्रियाङ्गोपाङ्गात्मकम् तथा तीर्थकृन्नामेति । ननु संग्रहगाथासु चतुरशीतिः प्रकृतयः संगृहीताः, कथं न विंशत्युत्तरशतप्रकृतयः संगृहीताः, उत्तरप्रकृतीनां विंशत्युत्तरशतप्रमाणत्वादिति चेद् उच्यते—अत्र संग्रहगाथानां प्रयोजनं तु गाथासंक्षेपः, न तु सर्वासामुत्तरप्रकृतीनां नामोत्कीर्तनम्, अतः सर्वा प्रकृतयो न संगृहीता इति । 'इति' प्रकृतिसंग्रहसमाप्तिरिति । अथ संगृहीतप्रकृतीनां नियोजनार्थं प्रक्रियामाह । एताउ' इत्यादि, एताभ्यः प्रकृतिभ्यो यां प्रकृतिमादौ गृहीत्वा यावत्प्रमाणाः प्रकृतय उपादातुं भणिष्यन्ते तां प्रकृतिमादौ कृत्वा तावत्प्रमाणाः प्रकृतय आनुपूर्व्या ग्राह्या इति ॥६-९॥

सम्प्रति ग्रन्थकार ओघतो यासु मार्गणासु प्रकृतीनां बन्ध ओघवत्तासु मार्गणासु चोत्तरप्रकृतिबन्धस्य सत्पदप्ररूपणां दर्शयितुमाह

सव्वाण अत्थि बन्धो वीसजुअसयस्स एवमेव भवे ।
तिणरेसु दुपचिंदियतसेसु पंचमणवयणेसु ॥ १० ॥
कायउरलजोगेसुं थीपुरिसणपुंसचउकसायेसुं ।
चक्खुअचक्खूसु तहा भविये सण्णिम्मि आहारे ॥ ११ ॥

(प्रे०) 'सव्वाण' इत्यादि, 'सर्वासां' समस्तप्रकृतीनां 'बन्धः' आत्मना सह कथञ्चित्तादात्म्यलक्षणः संयोगः, 'अस्ति' भवति । ननु सकलप्रकृतीनां बन्धो भवतीत्यत्र प्रतिपादितं परं ताः सर्वाः संख्यया कतिपया इत्याशङ्कायामाह-विंशतियुतशतस्य 'विंशत्याद्याः सदैकत्वे' इत्यनुशासनादत्र' शतपदोत्तरैकवचनत्वमवसेयम्, विंशत्यधिकशतप्रमाणाः, इदमुक्तं भवति—रागादिस्नेहसंकुलान्तःकरणा विश्वविश्वे परिवर्तमाना असुमन्तो ज्ञानावरणीयप्रभृतीर्विंशत्यभ्यधिकशतप्रकृतीर्बध्नन्ति । मूलप्रकृतय उत्तरप्रकृतयश्च मूलप्रकृतिबन्धविधानग्रन्थानुसारेण 'णाणस्स' इत्यादि, तृतीयगाथातो ससरीरंतर इत्यादि, पञ्चविंशतितमगाथापर्यन्ताभिस्त्रयोविंशतिगाथाभिरवसातव्याः ।

तथाऽपि स्थानाऽशून्यार्थं विस्मरणशीलस्य स्मारणार्थं च शतकतट्टीकाग्रन्थानुसारेण प्रतिपाद्यन्ते

नाणस्स दंसणस्स य आवरणं वेयणीयमोहणियं । आउयनाम गोयं तहंतराय च पयडीओ ॥३७॥

पच नव दोन्नि अट्ठावीसा चउरो तहेव बायाला । दोन्नि य पंच य भणिया पयडीओ उत्तरा चेव ॥२॥

टी० अत्र प्रथमगाथया ज्ञानावरणाद्या अष्टौ मूलप्रकृतय उक्ता । द्वितीयगाथया तु प्रतिमूलप्रकृतिसम्भविन्यो यथासंख्य पञ्चादिका उत्तरप्रकृतय इति समुदायार्थः । अधुना गाथाद्वयोद्दिष्टानामेव प्रकृतीनां समुत्कीर्तना क्रियते । तत्र ज्ञानस्यावरण पञ्चधा भवतीति सम्बन्ध , तद्यथा-अभिनिबोधिकज्ञानावरण श्रुतज्ञानावरणं, अवधिज्ञानावरण, मन पर्यायज्ञानावरण, केवलज्ञानावरणं चेति । दर्शनस्यावरणं नवविध तद्यथा-निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला, स्त्यानर्द्धि, चक्षुर्दर्शनावरणं, अचक्षुर्दर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण चेति । वेदनीय द्विधा-सातवेदनीयमसातवेदनीय चेति । मोहनीयमष्टाविंशतिधा-तत्र तिस्रो दर्शनमोहनीयप्रकृतयस्तद्यथा-मिथ्यात्वं सम्यग्मिथ्यात्व सम्यक्त्वं चेति चारित्रमोहनीयप्रकृतयस्तु पञ्चविंशति , तद्यथा-षोडशकषाया नव नोकषायाः, तत्र कषाया -अनन्तानुबन्धीक्रोधो मानो माया लोभश्च, एवमप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणसञ्ज्वलना अपि प्रत्येक चत्वारश्चत्वारो यत्क्रया , सर्वेऽपि षोडश । नवनोकषाया इमे-स्त्रीपु नपुसकलक्षण वेदत्रयम , हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सालक्षण हास्यादिषट्कं चेति सर्वा अप्यष्टाविंशतिमोहनीयप्रकृतय । आयुष्क नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवायुष्कभेदाच्चतुर्धा । नामद्विचत्वारिंशद्भेदम् तत्र चतुर्दशपिण्डप्रकृतय , अष्टाविंशति. प्रत्येकप्रकृतयः । तत्र पिण्डप्रकृतयो गतिनाम, जातिनाम, शरीरनाम अङ्गोपाङ्गनाम, सघातनाम, बन्धननाम, सहननननाम, सस्थाननाम , वर्णनाम, गन्धनाम, रसनाम, स्पर्शनाम, आनुपूर्वीनाम, विहायोगतिनामेत्येताश्चतुर्दशापि पिण्डप्रकृतय उच्यन्ते । गतिनामादिभिर्वक्ष्यमाणचतुरादिभेदानामत्र पिण्डनत्वप्रतिपादनादिति । प्रत्येकप्रकृतयस्त्वष्टाविंशतिरिमा -त्रसनाम, स्थावरनाम, बादरनाम, सूक्ष्मनाम, पर्याप्तनाम, अपर्याप्तनाम, प्रत्येकनाम, साधारणनाम स्थिरनाम, अस्थिरनाम, शुभनाम, अशुभनाम, सुभगनाम, दुर्भगनाम, सुस्वरनाम दु स्वरनाम, आदेयनाम, अनादेयनाम,, यशःकीर्तिनाम, अयश कीर्तिनाम, अगुरुलघुनाम, उपघातनाम पराघातनाम, उच्छ्वासनाम, आतपनाम, उद्योतनाम, निर्माणनाम, तीर्थकरनाम चेति एव सर्वा अप्येता द्विचत्वारिंशन्नामप्रकृतय । उपलक्षण चैता सूत्रे प्रोक्ता विवक्षान्तरेण हि सप्तषष्टिरपि नामप्रकृतयो भवन्ति । तथा त्रिनवतिस्त्र्युत्तरशत च । तत्र सप्तषष्टिर्भेदा गत्यादिपिण्डप्रकृतयो नरकगत्यादिभेदेन भिद्यन्ते तदा भवन्ति । तद्यथा-गतिनाम चतुर्धा, नरकगतितिर्यग्गतिमनुष्यगतिदेवगतिनामभेदादिति, जातिनाम पञ्चधा, एकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियपञ्चेन्द्रियजातिभेदादिति । शरीरनामपञ्चधा, औदारिकवैक्रियाहारकतैजसकार्मणनामभेदादिति । अङ्गोपाङ्गनाम त्रिधा, औदारिकवैक्रियाहारकाङ्गोपाङ्ग नामभेदादिति. बन्धनसघातनामकर्मणी अत्र पक्षे न गृह्येते, तयोः शरीराश्रितत्वाच्छरीरनामान्तर्गतत्वेनैव विवक्षितत्वादिति । सहनननाम षोढा वज्रर्षभनाराचऋषभनाराच-नाराचार्धनाराचकिलिकासेवार्तसहनननामभेदादिति । सस्थाननाम षोढा समचतुरस्रन्यग्रोधपरिमण्डलसादिवामनकुब्जहुण्डसस्थाननामभेदादिति । वर्णगन्धरसस्पर्शा अप्यत्र पक्षे भेदरहिता एव एकैकस्वरूपाश्चत्वारो गृह्यन्ते । आनुपूर्वीनामचतुर्धा नरकतिर्यग्मनुष्यदेवानुपूर्वीनामभेदादिति । विहायोगतिनाम द्वेधा प्रशस्तविहायोगतिनाम अप्रशस्तविहायोगतिनाम चेति । एवमेते एकोनचत्वारिंशद्गत्यादिपिण्डप्रकृतिभेदा अनन्तरोक्तैस्त्रसनामादिप्रकृतिभेदैरष्टाविंशत्या सह नामप्रकृतीना सप्तषष्टिर्भवति । त्रिनवतिस्तु यदा शरीरनाम्नः पृथगौदारिकवैक्रियाहारकतैजसकार्मणबन्धनभेदाद् बन्धननाम पञ्चधा विवक्ष्यते. संघातनामापि शरीरपञ्चकभेदात्पञ्चधा । वर्णनामापि कृष्णादिभेदात् पञ्चधा गन्धनाम सुरभिदुरभिनामभेदाद्द्विधा । रसनाम तिक्तरसादिभेदात् पञ्चधा स्पर्शनाम कर्कशनामादिभेदादष्टधा । एवमेता विंशतिप्रकृतय । एतासां मध्याद्वर्णगन्धरसस्पर्शानां सामान्यतश्चतुर्णां सप्तषष्टिपक्षेऽपि गृहीतत्वात् तदपगमे शेषा षोडश सर्वासां मीलने षड्विंशतिर्भवति । तत. पूर्वोक्तायाः सप्तषष्टेर्मध्ये चैतत्प्रक्षेपे नामप्रकृतीनां त्रिनवतिर्भवति । इह च प्रकारान्तरविवक्षया बन्धननाम पञ्चदशविधमपि भवति तद्यथा-औदारिकौदारिकबन्धननाम औदारिकतैजसबन्धननाम

औदारिककार्मणबन्धननाम औदारिकतैजसकार्मणबन्धननाम एवं वैक्रियाहारकयोरपि प्रत्येकं चत्वारि (२) बन्धनानि वक्तव्यानि । केवलमौदारिकस्थाने वैक्रियमाहारकं च वक्तव्यम् तथा तैजस २ बन्धननाम तैजसकार्मणबन्धननामकार्मण २ बन्धननामेत्येवमेता पञ्चदशबन्धननामप्रकृतय । अत्र च सामान्यत औदारिकादिबन्धनपञ्चकस्य त्रिनवतिमध्ये पूर्वमेव प्रक्षिप्तत्वा-छेषा दश प्रक्षिप्यन्ते । जातं नामप्रकृतीनां त्र्युत्तरशतं । गोत्रं द्विधा उच्चैर्गोत्रं नीचैर्गोत्रं चेति । अन्तरायं पञ्चधा दानलाभभोगोपभोगवीर्यान्तरायभेदादिति । एवं च कृत्वा ज्ञानावरणे पञ्चप्रकृतयो दर्शनावरणे नव वेदनीये द्वे मोहनीये सम्यक्त्वमिश्रवर्ज्या षड्विंशतिः आयुषि चतस्रो नाम्नि भेदान्तरसम्भवेऽपि सप्तषष्टिः गोत्रे द्वे अन्तराये पञ्च एवमेतद्विंशत्युत्तरं प्रकृतिशतं बन्धे पुरस्तादुपयोक्ष्यते तदेव प्रकृतिसमुत्कीर्तना कृता ।

एवं सति बन्धे विंशत्युत्तरशतप्रकृतयो भवन्तीति स्थितम् । एतावतोत्तरप्रकृतिबन्धस्यौघतः सत्पदप्ररूपणा कृता । साम्प्रतं 'एवमेव' इत्यादिनाऽऽदेशतः सा क्रियते । 'तिनरेषु' मनुष्यौघपर्याप्तमनुष्यमानुषीरूपासु तिसृषु मार्गणासु 'द्विपञ्चेन्द्रियत्रसेषु' द्वन्द्वादौ द्वन्द्वान्ते वा श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यत' इति न्यायेन द्विपदं त्रसपदेन सार्धमपि सम्बन्धनीयम् । पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौघपर्याप्तत्रसरूपासु चतसृषु मार्गणासु, 'पञ्चमनोवचनेषु' मनःसामान्यसत्यमनोऽसत्यमनःसत्यासत्यमनोऽसत्यामृषामनोरूपासु पञ्चसु मनोयोगमार्गणासु तथा वचनौघसत्यवचनाऽसत्यवचनसत्यासत्यवचनाऽसत्यमृषावचनरूपासु पञ्चसु वचनयोगमार्गणासु 'कायौदारिकयोगयोः' काययोगौघौदारिककाययोगरूपे मार्गणाद्वये 'स्त्रीपुरुषनपुंसकचतुष्कषायेषु' स्त्रीपुरुषनपुंसकवेदलक्षणासु तिसृषु वेदमार्गणासु क्रोधमानमायालोभरूपासु च चतसृषु कषायमार्गणासु चक्षुरचक्षुदर्शनमार्गणाद्वये भव्यसंज्ञ्याहारकमार्गणासु चेत्येवं समुदितास्वेकत्रिंशन्मार्गणास्वोघवज्ज्ञानावरणीयप्रभृतयो विंशत्यधिकशतप्रकृतयो बध्यन्ते, अत्र ग्रन्थेऽधिककृताश्चतुस्सप्तत्यधिकशतमार्गणाः षष्ठपृष्ठयन्त्रकाज्ज्ञेयाः ॥१०-११॥ इदानीं नरकमार्गणासु तत्समानबन्धप्रायोग्यत्वेन कासुचिद् देवमार्गणासु चोत्तरप्रकृतिबन्धसत्कां सत्पदप्ररूपणामभिधातुमाह

णिरयपढमाइतिणिरयतइआइगअट्ठमन्तदेवेसुं ।
गुणवीसथावराई वज्जिअ सेसाण बंधोऽत्थि ॥१२॥

(प्रे०) 'णिरय' इत्यादि, नरकौघरत्नप्रभाशर्कराप्रभावालुकाप्रभाभिधासु चतसृषु नरकमार्गणासु सनत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलोकलान्तकशुक्रसहस्रारनामासु षट्सु देवमार्गणासु च 'थावरायवेगिंदी विगलसुहमणिरयतिगं आहारदुगं सुराऊ य देवविउव्वदुग' इति संग्रहगाथाद्वयवेपूक्ता एकोनविंशतिस्थावरादिप्रकृतीर्वर्जयित्वा शेषप्रकृतीनामेकोत्तरशतं बध्यते, मार्गणास्वासु स्थावराद्येकोनविंशतिप्रकृतिबन्धवर्जनं किं हेतुकमिति चेद्–उच्यते, मार्गणास्वासु वर्तमानानां नारकाणां देवानां च पर्याप्तसंज्ञिपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्येष्वेवोत्पत्तिभावेन तत्प्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धकत्वात् स्थावराद्येकोनविंशतिप्रकृतिबन्धप्रायोग्याध्यवसायाऽसंभवः, तस्मादेताः प्रकृतयो नैव बध्यन्ते । बन्धप्रायोग्या एकोत्तरशतप्रकृतयस्त्विमाः-ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणनवकं वेदनीयद्विकं षड्विंशतिमोहनीयप्रकृतयस्तिर्य-

मनुष्यायुर्द्वयं तिर्यग्द्विकं मनुष्यद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिकतैजसकार्मणशरीरत्रयमौदारिकाङ्गोपाङ्गं संहननषट्कं संस्थानषट्कं वर्णचतुष्कं विहायोगतिद्विकं त्रसदशकमस्थिरषट्कमातपवर्जप्रत्येकप्रकृतिसप्तकं गोत्रद्वयमन्तरायपञ्चकमिति ॥१२॥

अथ शेषनरकमार्गणासूत्तरप्रकृतिबन्धस्य सत्पदप्ररूपणाऽभिधीयते

चोत्थाइतिणिरयेसुं बीससयपयडियावराइवज्जाण ।
बंधोऽत्थि तहेव चरमणिरयम्मि णराउवज्जाणं ॥१३॥

(प्रे०) 'चोत्थाइ' इत्यादि, पङ्कप्रभाधूमप्रभातमःप्रभानरकलक्षणासु तिसृषु मार्गणास्वनन्तरोक्तस्थावराद्येकोनविंशतिप्रकृतीर्जिननाम च वर्जयित्वा शेषशतप्रकृतीनां बन्धो विद्यते, हेतुस्त्वत्र प्राग्वद्विभावनीयः, जिननामकर्मबन्धाभावे भावना पुनरेवं कर्तव्या-पङ्कप्रभादिनरकेभ्यो निर्गत्य जीवा तीर्थकृतत्त्वं नैव लभन्ते, अतः पङ्कप्रभादिमार्गणात्रये तीर्थकृन्नामसत्कर्मविकला एव जीवा नारकतया जायन्ते । जिननामकर्मणो बन्धयोग्यास्तीर्थकृन्नामसत्कर्मयुक्तसम्यग्दृष्टयः, तथा नूतनतद्बन्धयोग्याः सम्यग्दृष्टिमनुष्याः, प्रस्तुतमार्गणासु च तीर्थकृन्नामसत्कर्मरहिता जीवाः, अतो जिननाम्नो बन्धाभावः । 'तहेव' इत्यादि तमस्तमःप्रभाख्य-सप्तमनरकमार्गणायां नरायुर्वर्जयित्वा चतुर्थनरकवच्छेषप्रकृतीनां बन्धो बोद्धव्यः, नरायुर्वर्जनमत्र मनुष्यगतावनुत्पत्तिनिमित्तकमवसेयम् , यतो हि सप्तमनरकवासिनो नारकास्ततो निसृत्य तिर्यक्ष्वेवोत्पद्यन्ते न मनुष्यादिषु, उक्तं च 'सत्तममहिनेरइया तेऊवाऊ असखनरतिरिया । मुत्तूण ससजीवा उप्पज्जन्ते णरभवम्मि, इति ॥१३॥

अथ तिर्यक्सामान्यतिर्यक्पञ्चेन्द्रियत्रये तद्बन्धसाधर्म्यादज्ञानादिमार्गणासु चोत्तरप्रकृतिबन्धसत्पदप्ररूपणामभिधित्सुराह

तिरियतिपणिदियतिरियअण्णाणाऽभवियमिच्छअमणेसु ।
सेसाण अत्थि बंधो तित्थाहारदुगवज्जाण ॥१४॥

(प्रे०) 'तिरिय'इत्यादि, तिर्यक्सामान्यतिर्यक्पञ्चेन्द्रियसामान्यपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिमतीमत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानाऽभव्यमिथ्यात्वासंज्ञिलक्षणासु दशसु मार्गणासु तीर्थकरनामाहारकद्विकं चेति प्रकृतित्रयं संत्यज्य शेषाणां सप्तदशाधिकशतप्रकृतीनां बन्धो भवति, ताश्चेमा वक्ष्यमाणाः प्रकृतयः-ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणनवकं वेदनीयद्विकं षड्विंशतिमोहनीयप्रकृतय आयुश्चतुष्कं गतिचतुष्कं जातिपञ्चकमाहारकशरीरवर्जशरीरचतुष्कमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयं संहननषट्कं संस्थानषट्कं वर्णचतुष्कमानुपूर्वीचतुष्कं विहायोगतिद्विकं जिननामवर्जप्रत्येकसप्तकं त्रसदशकं स्थावरदशकं गोत्रद्विकमन्तरायपञ्चकं चेति । आहारकद्विकबन्धस्याप्रमत्तसंयमत्वाविनाभावित्वेन सप्तमादिगुणस्थानकेष्वेव तत्संभवः, नान्यत्र, तस्मान्मार्गणास्वासु वर्तमानैर्जीवैः संयतत्वाभावादाहारकद्विकं न बध्यते । नूतनस्य तीर्थकृन्नामकर्मबन्धप्रारम्भस्य तिर्यग्भवेऽसंभवात् , जिननामकर्म-

सत्त्वाभावतश्च तत्र गमनाभावात् तिर्यगोघादिमार्गणाचतुष्टये जिननामकर्म नैव बध्यते, अज्ञानादिपञ्चमार्गणासु तु चतुर्थादिगुणस्थानाभावात्तद्बन्धविरहः, यतो जिननामकर्मणो बन्धश्चतुर्थगुणस्थानकादारभ्यैव जायते ॥१४॥

साम्प्रतं सुरौघसौधर्मेशानभवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कवैक्रियकाययोगलक्षणासु सप्तसु मार्गणासूत्तरप्रकृतिबन्धसत्पदप्ररूपणां कथयितुकाम आह—

सुरसोहम्मदुगेसुं विउवे सोलविगलाइवज्जाणं ।
एवं भवणवइतिगे णवरं तित्थयरवज्जाणं ॥१५॥

(प्रे०) 'सुर' इत्यादि, देवौघसौधर्मेशानवैक्रियकाययोगाभिधासु चतसृषु मार्गणासु 'विगलसुहुमणिरयतिग आहारदुग सुराऊ य ॥ देवविउव्वदुग' इति संग्रहगाथावयवेषु कथितं विकलत्रिकादिप्रकृतिषोडशकं परिहृत्य शेषाश्चतुरुत्तरशतप्रकृतयो बध्यन्ते, ताश्चेमा बन्धप्रायोग्याः प्रकृतयः-ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणनवकवेदनीयद्विकमोहनीयषड्विंशतितिर्यग्मनुष्यायुर्द्वयतिर्यग्द्विकमनुष्यद्विकैकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजातिद्विकौदारिकतैजसकार्मणशरीरत्रयौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानषट्कवर्णचतुष्कखगतिद्विकत्रसदशकस्थावराऽस्थिरषट्कप्रत्येकप्रकृत्यष्टकगोत्रद्विकान्तरायपञ्चकानि । मार्गणास्वासु गतानां देवानामेकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजात्योरेवोत्पत्तिर्जायते, नेतरासु, तस्मात्तैर्विकलत्रिकं नैव बध्यते, एतन्मार्गणात्रयस्थायिनः सुरा एकेन्द्रियजातावपि बादरपर्याप्तप्रत्येकत्वेनैवोत्पद्यन्ते न तु सूक्ष्माऽपर्याप्तसाधारणत्वेन, तस्मात्तैः सूक्ष्मत्रिकं नैव बध्यते । देवनरकगतौ देवानां गत्यागत्यभावाद् वैक्रियाष्टकस्य बन्धो मार्गणासु न संभवति । मार्गणास्वासु वर्तमानाः सुरा विरतेरभावादेवाहारकद्विकं न बध्नन्ति । 'एवं' इत्यादि, उपर्युक्तरीत्या भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्काख्यासु तिसृषु मार्गणास्वपि जिननामवर्जानामुत्तरप्रकृतीनां बन्धो भवति, जिननामकर्मणो वर्जनं चतुर्थादिनरकवदवगन्तव्यम् । ॥१५॥ इदानीमभिहितातिरिक्तशेषदेवमार्गणासूत्तरप्रकृतिबन्धसत्कां सत्पदप्ररूपणामावेदयितुमाह

थीणाइअट्ठचत्तावज्जाण अणुत्तरेसु तेरससुं ।
गुणवीसथावराइगतिरियाइचउक्कवज्जाणं ॥ १६ ॥

(प्रे०) 'थीणाइ' इत्यादि, अनुत्तररूपासु पञ्चसु मार्गणासु "थीणद्धितिगाणित्थीमिच्छमसघयणआगिई णीअं । दुहगतिगासुहखगई तिरिदुगउज्जोअतिरिआऊ ॥ णपुमं मिच्छं हु ढ छेवट्ठं थावरायवेगिंदी । विगलसुहुमणिरयतिग आहारदुग सुराऊ य ॥ देवविउव्वदुग" इति संग्रहगाथांशेषु कथिताः स्त्यानर्द्धित्रिकप्रमुखा अष्टचत्वारिंशत्प्रकृतीर्विहाय द्विसप्ततिप्रकृतीनां बन्धो भवति । ताश्चेमा बध्यमानप्रकृतयः—ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणषट्कं वेदनीयद्विकं मिथ्यात्वमोहनीयानन्तानुबन्धिचतुष्कस्त्रीवेदनपुंसकवेदवर्जाः शेषा एकोनविंशतिमोहनीयप्रकृतयो मनुष्यायुर्मनुष्यद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिकद्विकं तैजसकार्मणशरीरद्वयं समचतुरस्रसंस्थानं वज्रर्षभनाराचसंहननं वर्णचतुष्कं शुभखगतिस्त्रसदशकमस्थिरनामाशुभानामाऽयशःकीर्तिनामाऽऽतपोद्योतवर्जप्रत्येकप्रकृतिषट्कमुच्चै-

गोत्रमन्तरायपञ्चकं चेति । स्त्यानर्द्धित्रिकप्रभृतिवर्जनीयप्रकृतिषु नरकत्रिकजातिचतुष्कस्थावरचतुष्क-हुण्डकसंस्थानसेवार्तसंहनननपुंसकवेदमिथ्यात्वमोहनीयाऽऽतपनामरूपाः षोडश प्रकृतयो मिथ्यात्व-हेतुना बध्यन्ते, तथाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कमध्यमसंस्थानचतुष्कमध्यमसंहननचतुष्कनीचैर्गोत्रोद्योता-ऽशुभविहायोगतिस्त्रीवेदस्त्यानर्द्धित्रिकतिर्यक्त्रिकदौर्भाग्यत्रिकरूपाः पञ्चविंशतिप्रकृतयोऽनन्तानु-बन्धिकषायोदयेन बध्यन्ते, मार्गणास्वेतासु वर्तमानानां देवानां सम्यग्दृष्टित्वेन मिथ्यात्वमोहनी-याऽनन्तानुबन्धिकषायचतुष्कोदयाभावान्नासां प्रकृतीनां बन्धः । उक्तव्यतिरिक्तप्रकृतीनां वर्जनं गुणप्रत्ययाद् भवप्रत्ययाद् वाऽवसेयम् । **'तेरससु'** इत्यादि, नवग्रैवेयकरूपासु नवसु मार्गणा-स्थानतप्राणतारणाच्युतरूपासु च चतसृषु मार्गणासु 'थावरायवेगिंदी । विगलसुहुमणिरयतिग आहार-दुग सुराऊ य ॥ देवविउव्वदुग" इति संग्रहगाथाशकलेऽभिहिताभ्य एकोनविंशतिस्थावरादिप्रकृति-भ्यस्तथा तिर्यक्त्रिकोद्योतनामरूपाभ्यश्चतसृभ्यः प्रकृतिभ्यश्च विना शेषाणां प्रकृतीनां सप्तनवति-र्बध्यते ताश्चैताः–ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणनवक वेदनीयद्वयं षड्विंशतिर्मोहनीयप्रकृतयो मनुष्यायुर्मनुष्यद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिकतैजसकार्मणशरीरत्रयमौदारिकाङ्गोपाङ्गं संस्थान-षट्कं संहननषट्कं वर्णचतुष्कं खगतिद्विकं त्रसदशकमस्थिरषट्कमातपोद्योतवर्जशेषप्रत्येकषट्कं गोत्रद्वयमन्तरायपञ्चकं चेति । अत्र तिर्यक्त्रिकोद्योतप्रकृतीनां बन्धाभावः, आनतादिदेवानां तिर्य-ग्गतावुत्पादाभावात् । शेषप्रकृतीना च भावना नरकौघवदवसेया ॥१६॥

सम्प्रति तेजःकायवायुकायसत्कसकलमार्गणासूत्तरप्रकृतिबन्धसत्पदप्ररूपणां विधातुमना आह-

बंधो हवेज्ज वज्जिअ सव्वेसु तेउवाउमेएसु ।
एगारसणिरयाइगमणुससतिगउच्चगोआणि ॥ १७ ॥

(प्रे०)**'बंधो'** इत्यादि, तेजःकायौघसूक्ष्मतेजःकायौघबादरतेजःकायौघपर्याप्तसूक्ष्मतेजःकाया-ऽपर्याप्तसूक्ष्मतेजःकायपर्याप्तबादरतेजःकायाऽपर्याप्तबादरतेजःकायरूपासु सप्तसु मार्गणासु वायुकायौघ-सूक्ष्मवायुकायौघ--बादरवायुकायौघ--पर्याप्तसूक्ष्मवायुकायाऽपर्याप्तसूक्ष्मवायुकायपर्याप्तबादरवायुकायाऽ--पर्याप्तबादरवायुकायरूपासु च सप्तसु मार्गणासु "णिरयतिग आहारदुग सुराऊ य ॥ देवविउव्वदुगजिणा" इति संग्रहगाथाशकलोक्तनरकत्रिकप्रमुखा एकादशप्रकृतीस्तथा मनुष्यत्रिकोच्चैर्गोत्ररूपाश्चतस्रः प्रकृती-रिति सर्वसंख्यया पञ्चदशप्रकृतीः परिहृत्य शेषप्रकृतीनां पञ्चोत्तरशतं बध्यते, ताश्चेमा बध्यमानाः प्रकृतयः–ज्ञानावरणपञ्चकं, दर्शनावरणनवकं वेदनीयद्विकं षड्विंशतिर्मोहनीयप्रकृतयस्तिर्यगायु-स्तिर्यग्द्विकं जातिपञ्चकमौदारिकद्विक तैजसकार्मणशरीरद्वयं संहननषट्कं संस्थानषट्कं वर्णचतुष्कं विहायोगतिद्विकं त्रसदशकं स्थावरदशकं जिननामवर्जप्रत्येकसप्तकं नीचैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकं चेति । तेजःकायवायुकायजीवास्तिर्यग्भव एवोत्पत्तिसंभवेन नरकत्रिकमनुष्यत्रिकवैक्रियद्विकरूपा यथासंभवं देवनरकमनुष्यप्रायोग्याः प्रकृतीर्न बध्नन्ति, तस्मान्मार्गणास्वासु प्रकृतीनामासां बन्धविरहोऽभिहितः ।

आहारकद्विकतीर्थकृन्नामकर्मबन्धाऽभावे हेतुरत्र प्रागभिहित एव विभावनीयः । तिर्यग्गतौ नीचैर्गोत्रस्यैवोदयो विद्यते, तेजोवायुकायिका जीवास्तथास्वभावेन तिर्यग्गतिप्रायोग्या एव प्रकृतीर्बध्नन्ति, तस्मात्तेषां तिर्यग्गतिप्रायोग्यप्रकृतिसहचारिण्या नीचैर्गोत्रप्रकृतेरेव बन्धकत्वेनोच्चैर्गोत्रप्रकृतिबन्धस्य संभावना नास्ति, अतो मार्गणास्वासु प्रकृतेरस्या बन्धाभावो दर्शितः ॥१७॥

अधुनौदारिकमिश्रवैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणाद्वये सत्पदप्ररूपणां निरूपयिषुराह

बंधोऽत्थि उरलमीसे, सेसाण छणिरयाइवज्जाणं ।
विक्कियमीसे सोलसविगलाइतिरियणराउवज्जाणं ॥१८॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'बंधो' इत्यादि, औदारिकमिश्रमार्गणायां "णिरयतिग आहारदुगं सुराऊ य" इति संग्रहगाथात्रयवेषु प्रतिपादितं नरकत्रिकादिप्रकृतिषट्कमृते ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणनवकं वेदनीयद्विकं षड्विंशतिर्मोहनीयप्रकृतयस्तिर्यग्मनुष्यायुष्कद्वयं तिर्यग्द्विकं मनुष्यद्विकं देवद्विकं जातिपञ्चकमाहारकशरीरवर्जशरीरचतुष्कमाहारकाङ्गोपाङ्गवर्जाङ्गोपाङ्गद्वय संस्थानषट्कं संहननषट्कं वर्णचतुष्कं विहायोगतिद्विकं त्रसदशकं स्थावरदशकं प्रत्येकाष्टकं गोत्रद्वयमन्तरायपञ्चकं चेति चतुर्दशयुतशतप्रकृतीनां बन्धो भवति । मार्गणायामेतस्यामाहारकद्विकबन्धप्रतिषेधे संयमाभावलक्षणो हेतुरधिगन्तव्यः । औदारिकमिश्रकाययोगोऽपर्याप्तावस्थायां तिर्यग्मनुष्याणामेव संभवति, तत्र तैर्नरकत्रिकं देवायुष्कं च न बध्येते, अपर्याप्तवस्थायां तत्प्रायोग्यपरिणामाभावात्, एतत्प्रकृतिचतुष्कं तु पर्याप्तावस्थायामेव बध्यते तदैव तत्प्रायोग्याध्यवसायसंभवात् ।

'विक्किकयमीसे' इत्यादि, वैक्रियमिश्रमार्गणायां "विगलसुहुमणिरयतिगं आहारदुगं सुराऊ य ॥ देवविउव्वदुग" इति गाथात्रयवेषु व्याख्यातानां विकलत्रिकादीनां षोडशप्रकृतीनां तिर्यग्मनुष्यायुष्कयोश्च वर्जनं कृत्वा द्व्यधिकशतप्रकृतयो बध्यन्ते, ताश्चेमाः–ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणनवकं वेदनीयद्विकं षड्विंशतिर्मोहनीयप्रकृतयस्तिर्यग्द्विकं मनुष्यद्विकमेकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजाती औदारिकतैजसकार्मणशरीरत्रयमौदारिकाङ्गोपाङ्गं संस्थानषट्कं संहननषट्कं वर्णचतुष्कं खगतिद्विकं त्रसदशकं स्थावरनामाऽस्थिरषट्कं प्रत्येकप्रकृत्यष्टकं गोत्रद्वयमन्तरायपञ्चकं चेति । भवप्रत्ययिको वैक्रियमिश्रकाययोगोऽपर्याप्तावस्थायां देवनारकाणामेव संभवति, तैरपर्याप्तावस्थायामायुर्बन्धो नैव विधीयते, यस्माद् देवनारकाः स्वायुषः षण्मासाऽनवशेषे पारभविकमायुर्नैव बध्नन्ति, तस्मादत्र सर्वायुर्बन्धप्रतिषेधः प्रज्ञप्तः । विकलत्रिकप्रमुखाणां षोडशप्रकृतीनां बन्धाभावे देवौघमार्गणावद्धेतुरभिधेयः । अत्र भवप्रत्ययिकवैक्रियमिश्रयोगस्य विवक्षाऽस्तीति विज्ञेयम् ॥१८॥

साम्प्रतमाहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगमार्गणाद्वये कार्मणकाययोगमार्गणायामनाहारकमार्गणायां चोत्तरप्रकृतिबन्धसत्पदप्ररूपणां प्रतिपादयितुमाह

अत्थि विणाहारदुगे तइअकसायाइसत्तवण्णाए ।
कम्माणाहारेसुं विणा छणिरयाइआउदुगं ॥१९॥

(प्रे०) 'अत्थि' इत्यादि, आहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगाभिधयोर्मार्गणयोः "तइअदुइआ कसाया पराउणरुरलदुग वइर ॥ थीणद्धितिगाणित्थी मज्झिमसंघयणआगिई णीअं । दुहगतिगासुहखगई तिरिदुगउज्जोअतिरिआऊ ॥ णपुम मिच्छं हुंड छेवट्ठ थावरायवेगिंदी । विगलसुहुमणिरयतिग आहारदुग" मिति संग्रहगाथांशेषु कथिताः सप्तपञ्चाशत्तृतीयकषायादिप्रकृतीर्विना त्रिषष्टिः प्रकृतयो बध्यन्ते, ताश्चेमा बध्यमानप्रकृतयः—ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणषट्कं वेदनीयद्विकं, संज्वलनचतुष्कपुरुषवेद-हास्यषट्करूपा एकादशमोहनीयप्रकृतयो देवायुष्कं देवद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिर्वैक्रियतैजसकार्मण-शरीरत्रयं वैक्रियाङ्गोपाङ्गं समचतुरस्रसंस्थानम् , वर्णचतुष्कं शुभखगतिस्त्रसदशकमस्थिरनामाशुभनामाऽयशःकीर्तिनामाऽऽतपोद्योतवर्जितप्रत्येकषट्कमुच्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकं चेति, आहारकतन्मिश्रकाययोगौ प्रमत्तसंयताख्यषष्ठगुणस्थानक एव स्तः नान्यगुणस्थानकेषु, अस्मिन् मार्गणाद्वये विद्यमानैर्जीवैः प्रमाददशावत्त्वेनाहारकद्विकबन्धो न विधीयते, अप्रमत्तसंयमनिमित्तेनैव तद्बन्धस्य संभवात् , तस्मादत्र मार्गणाद्वये प्रकृतिद्वयस्यास्य बन्धो वर्जितः सप्ततिकाद्यभिप्रायेण तु सप्तमगुणस्थानेऽप्याहारककाययोगो भवति, अतस्तन्मते आहारककाययोगमार्गणायामाहारकद्विकस्य बन्धो वाच्यः । प्रस्तुते प्रमत्तसंयत एवाधिकृत आहारककाययोगमार्गणायामिति । शेषपञ्चपञ्चाशत्प्रकृतयः षष्ठगुणस्थानकादधस्तनगुणस्थानकेषु बध्यन्ते, अतस्तासां बन्धोऽत्र वर्जितः ।

'कम्माणाहारेसु' इत्यादि, कार्मणकाययोगानाहारकमार्गणयोः "णिरयतिग आहारदुगं सुराऊ या" इति संग्रहगाथावयवेषूक्ता नरकत्रिकाद्यात्मकं प्रकृतिषट्कं तिर्यग्मनुष्यायुषी च विना द्वादशोत्तरशतप्रकृतयो बध्यन्ते, ताश्चेमा बन्धप्रायोग्याः प्रकृतयः ज्ञानावरणपञ्चकं, दर्शनावरणनवकं वेदनीयद्विकं षड्विंशतिर्मोहनीयप्रकृतयस्तिर्यग्द्विकं मनुष्यद्विकं देवद्विकं जातिपञ्चकमाहारकशरीरवर्जशरीरचतुष्कमाहारकाङ्गोपाङ्गवर्जमङ्गोपाङ्गद्वयं संहननषट्कं संस्थानषट्कं वर्णचतुष्कं खगतिद्वयं त्रसदशकं स्थावरदशकं प्रत्येकप्रकृत्यष्टकं गोत्रद्वयमन्तरायपञ्चकं चेति । एतन्मार्गणाद्वये नरकद्विकाहारकद्विकप्रकृतिबन्धप्रतिषेधे हेतुरौदारिकमिश्रकाययोगमार्गणावदवसेयः प्रकृतिबन्धकेषु मार्गणाद्वयमेतद् भवान्तरगमनवेलायामपान्तरालगतौ, तृतीयादिसमयत्रये केवलिसमुद्घातावस्थायां च संभवति तत्रायुष्कचतुष्कं न बध्यते, भवान्तरीयायुषां स्वायुषस्तृतीयभागावशेषे बध्यमानत्वात् , केवलिसमुद्घातावस्थायां तु केवलज्ञानिनां मोक्षगामित्वाद्भवान्तरे गमनाभावेन भवान्तरीयायुर्बन्धाऽसंभवाच्च ॥१९॥

साम्प्रतमवेदमार्गणायामकषायप्रभृतिमार्गणासु चोत्तरप्रकृतिबन्धसत्पदप्ररूपणां निरूपयन्नाह—

बंधो इगवीसाए आवरणाईण अत्थि गयवेए ।
सायस्स य अकसाये केवलजुगले अहक्खाये ॥२०॥

(प्रे०) 'बंधो' इत्यादि, 'आवरणअंतराया सायजसुच्चाणि चरमलोहाई' इति संग्रहगाथावयवेषु प्रोक्तानां ज्ञानावरणपञ्चकं चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्कं संज्वलनचतुष्कं सातवेदनीयं यशःकीर्तिना-

मोच्चैर्गोत्रं चेत्येकविंशतिप्रकृतीनां बन्धो गतवेदमार्गणायां जायते, यतो हि मार्गणायामस्यां प्रकृतीनामासां बन्धो यथासम्भवं कषायप्रत्ययेन योगप्रत्ययेन च प्रजायत इति । 'सायस्स' इत्यादि, अकषायकेवलज्ञानकेवलदर्शनयथाख्यातसंयमाख्यासु चतसृषु मार्गणासु केवलं योगहेतुना सातवेदनीयस्यैव बन्धः प्रवर्तते ॥२०॥

अधुना कतिपयासु ज्ञानमार्गणासु सम्यक्त्वमार्गणास्ववधिदर्शनमार्गणायां चोत्तरप्रकृतिबन्धस्य सत्पदप्ररूपणामावेदयितुमाह—

णाणतिगे ओहिम्मि य सम्मत्ते खइअवेअगेसु च ।
बंधोऽत्थि एगचत्ताथीणद्धितिगाइवज्जाणं ॥२१॥

(प्रे०) 'णाणतिगे' इत्यादि, मतिश्रुतावधिज्ञानरूपासु तिसृषु मार्गणास्ववधिदर्शनमार्गणायां सम्यक्त्वौघक्षायिकक्षयोपशमसम्यक्त्वरूपासु च तिसृषु मार्गणासु 'थीणद्धितिगाणित्थीमज्झिमसघयणागिई नीअं। दुहगतिगासुहखगई तिरिदुगउज्जोअतिरिआऊ ॥ णपुम मिच्छं हुंड छेवट्ठ थावरायवेगिंदी । विगलसुहुमणिरयतिग' मिति संग्रहगाथाशकलेष्वभिहिताः स्त्यानर्द्धित्रिकप्रमुखा एकचत्वारिंशत्प्रकृतीर्वर्जयित्वा शेषा ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कवेदनीयद्विकाप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्कहास्यादिषट्कपुरुषवेददेवायुर्मनुष्यायुर्मनुष्यद्विकदेवद्विकपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकादिशरीरपञ्चकाङ्गोपाङ्गत्रयसमचतुरस्रसंस्थानवज्रर्षभनाराचसंहननवर्णचतुष्कशुभखगतित्रसदशकाऽस्थिराऽशुभायशःकीर्तिनामाऽऽतपोद्योतवर्जप्रत्येकप्रकृतिषट्कोच्चैर्गोत्राऽन्तरायपञ्चकरूपा नव सप्ततिप्रकृतयो बध्यन्ते । मार्गणास्वासु वर्तमानैर्जीवैः प्रथमद्वितीयगुणस्थानयोर्यथायोग्यं बन्धप्रायोग्या एता एकचत्वारिंशत्प्रकृतयो नैव बध्यन्ते, मार्गणानामासां चतुर्थादिगुणस्थानकेषु सत्त्वात् ॥२१॥

संप्रति मनःपर्यवज्ञानमार्गणायां कतिपयासु संयममार्गणासु चोत्तरप्रकृतिबन्धसत्कां सत्पदप्ररूपणामुपदर्शयन्नाह

बंधो हवेज्ज वज्जिअ तइअकसायाइपचपण्णासं ।
मणणाणसंजमेसु समइअछेअपरिहारेसुं ॥२२॥

(प्रे०) 'बंधो' इत्यादि, मनःपर्यवज्ञानसंयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिरूपासु पञ्चसु मार्गणासु 'तइअदुइआ कसाया णराउणरुरलदुग वइर ॥ थीणद्धितिगाणित्थी मज्झिमसघयणआगिई नीअं । दुहगतिगासुहखगई तिरिदुगउज्जोअतिरियाऊ ॥ णपुमं मिच्छ हुंड छेवट्ठ थावरायवेगिंदी । विगलसुहुमणिरयतिग" मिति संग्रहगाथांशेषूक्तास्तृतीयकषायादिपञ्चपञ्चाशत्प्रकृतीः परिहृत्य शेषा ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणषट्कं वेदनीयद्विकं संज्वलनचतुष्कं हास्यादिषट्कं पुरुषवेदो देवायुर्देवद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिकशरीरवर्जशरीरचतुष्कं वैक्रियाहारकाङ्गोपाङ्गद्वयं समचतुरस्रसंस्थानं वर्णचतुष्कं शुभखगतिस्त्रसदशकमस्थिराशुभायशःकीर्तिनामान्यातपोद्योतवर्जप्रत्येकप्रकृतिषट्कमुच्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकं चेति पञ्चषष्टिप्रकृतयो बन्धे भवन्ति । तद्यथा–मार्गणास्वासु षष्ठादिगुणस्थानस्थायिन एव जीवाः प्राप्यन्ते, उपर्युक्तास्त्याज्यप्रकृतयो यथासंभवं प्रथमादिगुणस्थानेषु बन्धतो विच्छेदमाप्नुवन्त्यः

पञ्चमगुणस्थानकान्ते सर्वा अपि व्युच्छिन्ना भवन्ति, तस्मात्षष्ठादिगुणस्थानकेष्वेताः प्रकृतयस्तैर्न बध्यन्ते, अतो मार्गणास्वासु प्रकृतीनामासां बन्धवर्जनं विहितम् ॥२२॥

इदानीं सूक्ष्मसम्परायसंयममार्गणायां देशविरतिसंयममार्गणायां चोत्तरप्रकृतिबन्धविषयां सत्पदप्ररूपणां कथयति -

देसे विणाऽत्थि बधो तेवण्णदुइअकसायआइत्तो ।
सुहमे सत्तरसण्ह आवरणाईण बंधोऽत्थि ॥२३ A॥

(प्रे०) 'देसे' इत्यादि, देशविरतिसंयममार्गणायां 'दुइआ कसाया णराउणरुरलदुग वइर ॥ थीणद्धितिगाणित्थी मज्झिमसघयणआगिई णीअ । दुहगतिगासुहखगई तिरिदुगउज्जोअतिरिआऊ ॥ णपुमं मिच्छं हुंड छेवट्ठ थावरायवेगिंदी । विगलसुहुमणिरयतिग आहारदुग' मिति संग्रहगाथात्रयवेपूक्ता अप्रत्याख्यानावरणकषायादित्रिपञ्चाशत्प्रकृतीर्विहाय शेषाः सप्तषष्टिः प्रकृतयो बध्यन्ते, ताश्चानन्तरोक्ता आहारकद्विकवर्जाः, प्रत्याख्यानावरणचतुष्कसहिता ज्ञातव्याः । तद्यथा–मार्गणायामस्यां पञ्चमगुणस्थानकमेव वर्तते, अतोऽधस्तनगुणस्थानकेष्वेव बध्यमानानां मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृतीनां तथोपरितनगुणस्थानकेष्वेव बध्यमानस्याहारकद्विकस्य बन्धे वर्जनं कृतम् ।

'सुहमे' इत्यादि, सूक्ष्मसम्परायसंयममार्गणायां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरचतुष्कसातवेदनीययशःकीर्त्युच्चैर्गोत्रान्तरायपञ्चकरूपाणां सप्तदशाना प्रकृतीनां बन्धो भवति, स च सूक्ष्मकषायप्रत्ययिको विज्ञेयः ॥२३ A॥

इदानीमविरतसंयममार्गणायां तिसृषु कृष्णादिलेश्यामार्गणासु तेजोलेश्यामार्गणायां चोत्तरप्रकृतिबन्धविषयां सत्पदप्ररूपणां विवरिषुराह––

अजयासुहलेसासु आहारदुगं विणा भवे बंधो ।
तेऊए वज्जेऊ बधो अत्थि णवविगलाई ॥२३ B॥

(प्रे०) 'अजय' इत्यादि, अविरतिसंयममार्गणायां कृष्णनीलकापोतलेश्यालक्षणासु तिसृषु मार्गणासु चाहारकद्विकं विसृज्याष्टादशयुतशतं प्रकृतीनां बध्यते । ताश्चाहारकद्विकवर्जाः सर्वा अपि ग्राह्याः । आहारकद्विकस्य वर्जनं पूर्ववज्ज्ञेयम् ।

'तेऊए' इत्यादि, तेजोलेश्यामार्गणायां "विगलसुहमणिरयतिग" मिति संग्रहगाथात्रयवेषु कथितं प्रकृतिनवकं परिहृत्य प्रकृतीनामेकादशोत्तरशतं बध्यते, ताश्चैताः–ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणनवकं वेदनीयद्विकं षड्विंशतिर्मोहनीयप्रकृतयः, नरकायुर्वर्जायुस्त्रिकं नरकगतिवर्जगतित्रिकमेकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजातिद्वयं शरीरपञ्चकमङ्गोपाङ्गत्रिकं संहननषट्कं संस्थानषट्कं वर्णचतुष्कं नरकानुपूर्वीवर्जानुपूर्वीत्रिकं विहायोगतिद्वयं त्रसदशकं स्थावराऽस्थिरषट्कं प्रत्येकाष्टकं गोत्रद्वयमन्तरायपञ्चकं चेति, नरकत्रिकप्रभृतीनां नवानां प्रकृतीनां बन्धस्य केवलं कृष्णाद्यशुभलेश्याजन्यत्वात् तेजोलेश्यामार्गणायां तदभावः प्रतिपादितः ॥२३ B॥

अथ पद्मलेश्यामार्गणायां शुक्ललेश्यामार्गणायां च प्रकृतमाह

पउमाअ थावराइगबारहवज्जाण होअए बंधो ।
बारहचउथावरतिरिआइगवज्जाण सुक्काए ॥२३ C॥

(प्रे०) 'पउमाअ' इत्यादि, पद्मलेश्यामार्गणायां 'थावरायवेगिंदी।विगलसुहमणिरयतिग' मिति संग्रहगाथाशकलेपूक्ताभिः स्थावरादिद्वादशप्रकृतिभिर्विनाष्टाधिकशतप्रकृतीनां बन्धो भवति। ताश्चेमाः ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणनवकं वेदनीयद्विकं षड्विंशतिर्मोहनीयप्रकृतयो नरकायुर्वर्जायुस्त्रिकं नरकगतिरहितं गतित्रिकं पञ्चेन्द्रियजातिः शरीरपञ्चकमङ्गोपाङ्गत्रिकं संहननषट्कं संस्थानषट्कं नरकानुपूर्वीवर्जानुपूर्वीत्रिकं खगतिद्वयं त्रसदशकमस्थिरषट्कमातपवर्जप्रत्येकप्रकृतिसप्तकं गोत्रद्वयमन्तरायपञ्चकं चेति, पद्मलेश्यावतामेकेन्द्रियेष्वनुत्पादादेकेन्द्रियस्थावराऽऽतपनाम्नां बन्धाभावः, शेषाणां नवानां प्रकृतीनां बन्धाभावे तेजोलेश्यामार्गणावद्धेतुः समधिगम्यः।

'बारह' इत्यादि, पद्मलेश्यामार्गणायामभिहिताः स्थावरादिद्वादशप्रकृतयस्तिर्यक्त्रिकमुद्योतनामकर्म चेत्येतत्प्रकृतिषोडशकमृते शुक्ललेश्यामार्गणायां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणनवकवेदनीयद्विकषड्विंशतिमोहनीयमनुष्यायुर्देवायुर्देवद्विकमनुष्यद्विकपञ्चेन्द्रियजातिशरीरपञ्चकाङ्गोपाङ्गत्रिकसंहननषट्कसंस्थानषट्कवर्णचतुष्कखगतिद्विकत्रसदशकाऽस्थिरषट्काऽऽतपोद्योतवर्जप्रत्येकप्रकृतिषट्कगोत्रद्वयाऽन्तरायपञ्चकरूपाश्चतुरुत्तरशतप्रकृतयो बध्यन्ते, मार्गणायामस्यां वर्तमानाना जीवाना देवमनुष्यगतिप्रायोग्यप्रकृतिबन्धविधायित्वेन स्थावरादिषोडशप्रकृतीनां बन्धो न भवति ॥२३ C॥

सम्प्रति मिश्रोपशमसम्यक्त्वलक्षणमार्गणाद्वये प्रकृतं कथयति

अत्थि उवसमम्मि विणा दुआउथीणद्धिआइगचत्ता ।
सिं चेव अत्थि मीसे तित्थाहारदुगवज्जाणं ॥२३ D॥

(प्रे०) 'अत्थि उवसमम्मि' इत्यादि, उपशमसम्यक्त्वमार्गणायां देवमनुष्यायुष्कद्वयं 'थीणद्धितिगाणत्थीमज्झिमसंघयणआगिई णीअं। दुहगतिगासुहखगई तिरिदुगउज्जोअतिरिआऊ ॥ णपुमं मिच्छ हुड छेवट्ठं थावरायवेगिंदी। विगलसुहमणिरयतिग''मिति संग्रहगाथावयवेषु कथिताः स्त्यानर्द्धित्रिकप्रमुखा एकचत्वारिंशत्प्रकृतीश्च वर्जयित्वा शेषाः सप्तसप्ततिः प्रकृतयो बन्धे वर्तन्ते। ताश्च ज्ञानमार्गणोक्ता आयुर्द्वयरहिता ज्ञातव्याः। अत्रायुःसामान्यस्य बन्धस्य परिणामाभावेन ज्ञानमार्गणासु बन्धार्हायुर्द्वयस्यापि बन्धाभाव उक्तः।

'सिं चेव' इत्यादि, उपशमसम्यक्त्वमार्गणायां याः स्त्यानर्द्धित्रिकप्रभृतयस्त्रिचत्वारिंशत् प्रकृतयो वर्जितास्ता आहारकद्विकजिननामकर्माणि च संत्यज्य मिश्रसम्यक्त्वमार्गणायां चतुःस ति प्रकृतयो बन्धे बोद्धव्याः। ताश्च सुगमत्वात् स्वयं ज्ञातव्याः। अत्र सम्यक्त्वादिगुणस्थानाभावादाहारकद्विकजिननामप्रकृतीनामधिकृतो बन्धे वर्जनं कृतम्। शेषप्रकृतीनां बन्धाभावे हेतुः पूर्ववदनुसन्धेयः॥ ॥२३ D॥ साम्प्रतं सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायां प्रागभिहितव्यतिरिक्तासु शेषमार्गणासु चोत्तरप्रकृतिबन्धसत्पदप्ररूपणामाह—

सासाणे अट्ठारसणपुमाइजिणाणि वज्जिउ बंधो।
सेसासु एगारहणिरयतिगाई विणा अत्थि ॥ २३ E

(प्रे०) 'सासाणे' इत्यादि, सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायां "णपुम मिच्छ हुंड छेवट्ठ' थावराय-वेगिंदी। विगलसुहुमणिरयतिगं ॥ आहारदुग"मिति संग्रहगाथांशेषु प्रतिपादिता नपुंसकवेदाद्यष्टादश-प्रकृतीर्जिननामकर्म च संत्यज्य ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणनवकं वेदनीयद्विकं नपुंसकवेदमिथ्या-त्वमोहनीयाख्यप्रकृतिद्वयवर्जाश्चतुर्विंशतिर्मोहनीयप्रकृतयो नरकायुर्वर्जशेषायुस्त्रिकं नरकगतिवर्ज-गतित्रयं पञ्चेन्द्रियजातिराहारकशरीरवर्जशरीरचतुष्कमाहारकाङ्गोपाङ्गवर्जाङ्गोपाङ्गद्वयं प्रथमादिसंस्थान-पञ्चकं प्रथमादिसंहननपञ्चकं वर्णचतुष्कं नरकानुपूर्वीवर्जानुपूर्वीत्रयं खगतिद्वयं त्रसदशकम-स्थिरषट्कमातपजिननामवर्जप्रत्येकप्रकृतिषट्कं गोत्रद्वयमन्तरायपञ्चकं चेत्येकोत्तरशतप्रकृतयो बध्यन्ते, मार्गणायामस्यामाहारकद्विकजिननामप्रकृतिबन्धाभावे प्रागवद् हेतुरवगन्तव्यः, नपुंसकवेदप्रभृतीनां शेषाणां षोडशप्रकृतीनां मिथ्यात्वोदयाभावाद् बन्धाभावः।

अत्र पर्यन्तमेकोनत्रिंशदुत्तरशतमार्गणासूत्तरप्रकृतिबन्धमाश्रित्य सत्पदप्ररूपणा कृता, साम्प्रतं पञ्च-चत्वारिंशत्संख्याकासु शेषमार्गणासु 'सेसासु' इत्यादिना सा उच्यते, 'सेसासु' इत्यादि, "णिरयतिग आहारदुग सुराउ य ॥ देवविउव्वदुगजिणा" इति संग्रहगाथावयवेनोक्ता नरकत्रिका-द्येकादशप्रकृतीर्विहायोक्तव्यतिरिक्तासु मार्गणासु नवाधिकशतप्रकृतयो बन्धे प्राप्यन्ते, ताश्चेमा बन्धप्रायोग्यप्रकृतयः- ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणनवकं वेदनीयद्विकं षड्विंशतिर्मोहनीयप्रकृतय-स्तिर्यग्मनुष्यायुष्कद्वयं तिर्यग्द्विकं मनुष्यद्विकं जातिपञ्चकं वैक्रियाहारकशरीरवर्जितशरीरत्रयमौदा-रिकाङ्गोपाङ्गं संस्थानषट्कं संहननषट्कं वर्णचतुष्कं खगतिद्विकं त्रसदशकं स्थावरदशकं जिननाम-वर्जप्रत्येकसप्तकं गोत्रद्वयमन्तरायपञ्चकं चेति। प्रागभिहितशेषमार्गणास्त्विमाः-अपर्याप्ततिर्यक्पञ्चे-न्द्रियमार्गणा, अपर्याप्तमनुष्यमार्गणा, एकेन्द्रियौघसूक्ष्मैकेन्द्रियौघपर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियाऽपर्याप्तसूक्ष्मै-केन्द्रियबादरैकेन्द्रियौघपर्याप्तबादरैकेन्द्रियाऽपर्याप्तबादरैकेन्द्रियद्वीन्द्रियौघपर्याप्तद्वीन्द्रियाऽपर्याप्तद्वी-न्द्रियत्रीन्द्रियौघपर्याप्तत्रीन्द्रिया-ऽपर्याप्तत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियौघपर्याप्तचतुरिन्द्रियापर्याप्तचतुरिन्द्रिया-ऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियरूपाः शेषमष्टादशेन्द्रियमार्गणाः, ओघसूक्ष्मौघबादरौघसूक्ष्मपर्याप्तसूक्ष्मापर्याप्त-बादरपर्याप्तबादराऽपर्याप्तलक्षणसप्तभेदभिन्नाः सप्त पृथ्वीकायमार्गणाः सप्ताप्कायमार्गणा एकादश वनस्पतिकायमार्गणाः, अपर्याप्तत्रसकायमार्गणा चेति सर्वाः समीलिताः पञ्चचत्वारिंशन्मार्गणाः शेषा अवसेयाः। मार्गणास्त्वासु वर्तमानैरसुमद्भिस्तिर्यग्मनुष्यगतावेवोत्पत्तिभावेन वैक्रियाष्टकं नैव बध्यते। आहारकद्विकजिननामकर्मबन्धवैकल्ये च पूर्वोक्त एव हेतुरनुसरणीयः। इति कासु मार्गणासु कियत्यः प्रकृतयो बध्यन्त इति प्रतिपादनपरं सत्पदप्ररूपणाद्वारं समाप्तम् ॥२३ E॥

॥ इति प्रेमप्रभाटीकासमलङ्कृते बन्धविधाने उत्तरप्रकृतिबन्धे प्रथमाधिकारे प्रथमं सत्पदद्वारं समाप्तम् ॥

॥ द्वितीयं स्वामित्वद्वारम् ॥

गतमुत्तरप्रकृतिबन्धविषयं सत्पदप्ररूपणाख्यं प्रथमं द्वारम्, साम्प्रतं बन्धस्वामित्वाख्यं द्वितीयं द्वारं भणितुकामेन ग्रन्थकारेण प्रथमतया लाघवार्थं प्रकृतिसंग्रहगाथाः प्रोच्यन्ते ।

अत्थ जमाइम्मि करिअ जाओ वुच्चंति ता कमा गेज्झा ।
एआओ आवरणं विग्धं उच्चं जसो सायं ॥ २४ ॥
अंतिमलोहाइपुमअसायअरइसोगअथिरदुगअजसं ।
तइअदुइआ कसाया णरदुगमुरलदुगवइराणि ॥ २५ ॥
थीणद्धितिगाणित्थी मज्झिमसंघयणआगिई णीअं ।
दूहगतिगं अपसत्था खगई तिरियदुगमुज्जोओ ॥ २६ ॥
णपुम मिच्छं हुंडं छेवट्ठं थावरायवेगिंदी ।
विगलाणि य सुहुमतिगं तह णिरयदुग सुरदुगं च ॥ २७ ॥
वेउव्वियदुगजिणधुवणामसुहागिइपणिंदिसुहखगई ।
परघाओ ऊसासो आहारदुगं णवतसाई ॥ २८ ॥

(प्रे०) 'अत्थ' इत्यादि, उत्तरप्रकृतिबन्धस्वामित्वाख्ये द्वितीयद्वारे यां प्रकृतिमादौ कृत्वा याः प्रकृतयः कथयिष्यन्ते, 'सत्सामीप्ये सद्वद्वा' इति सिद्धहेमसूत्रेण भविष्यदर्थे वर्तमानप्रत्ययो ऽत्र विज्ञेयः, ताः प्रकृतयो यथाक्रममत्राभिधीयमानाभ्यः प्रकृतिभ्य उपादेयाः । अस्मिन् स्वामित्वद्वारे यां प्रकृतिमादौ कृत्वा यतिसंख्याकाः प्रकृतयोऽभिधास्यन्ते ततिसंख्याकानां यथाक्रममाभ्यः परिग्रहः कार्य इति भावार्थः ।

अथ प्रकृतीनां क्रमो दर्श्यते–'आवरण' मित्यादिना । आवरणं हि मतिश्रुतावधिमनःपर्यवकेवलज्ञानावरणपञ्चकरूपं चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्करूपं चेति नवविधम् । ननु निद्रापञ्चकस्यापि दर्शनावरणेऽन्तर्भावादत्र आवरणपदेन तदप्युपादेयं स्यात्, तर्हि भवद्भिर्दर्शनावरणचतुष्कमेव कथमुपात्तम् ? इति चेद्, उच्यते, 'थीणद्धितिग' इति पदेन संग्रहगाथायां स्त्यानर्द्धित्रिकं पृथगुपात्तमस्ति, तथा निद्राद्विकं तु नोपादीयते, स्वस्थान एव नामतः 'सेसाणे' त्यादिपदाद्वा वक्ष्यमाणत्वाद्, तस्मादत्र आवरणपदेन चक्षुरादिदर्शनावरणचतुष्कमेवोपात्तम् । 'विग्धं' ति अन्तरायकर्म तत्तु दानलाभभोगोपभोगवीर्यान्तरायभेदात्पञ्चधा । 'उच्चं' ति भीमो भीमसेन इति व्यवहाराद् उच्चैर्गोत्रम्, एवमन्यत्राऽप्यवसेयम्, 'यशः' यशःकीर्तिनामकर्म 'सातं' सातवेदनीयम्, इति प्रथमगाथायां सप्तदशप्रकृतयः कथिताः । 'अंतिम' इत्यादि, 'अन्तिमलोभादिपुरुषवेदाः' संज्वलनलोभमायामानक्रोधात्मकं कषायचतुष्कं पुरुषवेदश्च तथा असातवेदनीयमरतिमोहनीयं शोकमोहनीयमस्थिरनामकर्माऽशुभनामकर्माऽयशःकीर्तिनामकर्म च, 'तृतीयद्वितीयाः कषायाः' प्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभरूपं प्रत्याख्यानावरणचतुष्कमप्रत्याख्यानावरणक्रोध-

मानमायालोभलक्षणमप्रत्याख्यानावरणचतुष्कं च, 'नरद्विकं' मनुष्यगतिमनुष्यानुपूर्वीरूपम्, 'औदारिकद्विकवज्राणि' औदारिकशरीरौदारिकाङ्गोपाङ्गे वज्रर्षभनाराचसंहननं चेति चतुर्विंशतिप्रकृतयो द्वितीयगाथायामुक्ताः। 'थीणद्धि' इत्यादि, निद्रानिद्रा-प्रचलाप्रचला-स्त्यानर्द्धिलक्षणं स्त्यानर्द्धित्रिकम्, अनन्तानुबन्धिक्रोधादिकषायचतुष्कं स्त्रीवेदश्च, 'मध्यमसंहननाकृतयः' ऋषभनाराचनाराचार्धनाराचकीलिकारूप मध्यमसंहननचतुष्कं न्यग्रोध-सादिवामनकुब्जलक्षणं मध्यमसंस्थानचतुष्कं चेति, नीचैर्गोत्रम्, दुर्भगत्रिकं दुर्भगदुस्वरानादेयात्मकम्, अप्रशस्तखगतिः=अशुभविहायोगतिः, तिर्यग्द्विकं तिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्वीरूपम्, उद्योतनामकर्म चेति चतुर्विंशतिप्रकृतयस्तृतीयगाथायामुक्ताः। 'णपुम' इत्यादि, नपुंसकवेदमोहनीयम् मिथ्यात्वमोहनीयम् सेवार्तसंहननं हुण्डसंस्थानम् 'स्थावरातपैकेन्द्रियाणि' स्थावरनामकर्माऽऽतपनामकर्मैकेन्द्रियनामकर्म च, 'विकलानि' द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियजातिनामकर्माणि, 'सूक्ष्मत्रिकं' सूक्ष्माऽपर्याप्तसाधारणनामात्मकम्, 'नरकद्विकं' नरकगतिनरकानुपूर्वीरूपम्, 'सुरद्विकं' देवगतिदेवानुपूर्वीरूपम्, च-तथा-शब्दौ समुच्चये, एवं सप्तदशप्रकृतयश्चतुर्थगाथायामभिहिताः। ''वेउव्विय''इत्यादि; 'वैक्रियद्विकजिनध्रुवनामशुभाकृतिपञ्चेन्द्रियशुभखगतयः' वैक्रियशरीरवैक्रियाङ्गोपाङ्गलक्षणं वैक्रियद्विकं तीर्थकरनामकर्म, 'ध्रुवनामप्रकृतयः'-ताश्चेमाः-वर्णचतुष्कं तैजसशरीरनाम कार्मणशरीरनामाऽगुरुलघुनाम निर्माणनामोपघातनाम चेति नव ध्रुवबन्धिनामप्रकृतयः, शुभाकृतिः-समचतुरस्रसंस्थानं, पञ्चेन्द्रियजातिनाम, शुभविहायोगतिनाम पराघातनामकर्मोच्छ्वासनामकर्म 'आहारकद्विकं' आहारकशरीराहारकाङ्गोपाङ्गरूपम् 'नवत्रसादयः' त्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकस्थिरशुभसुभगसुस्वरादेयनामकर्मरूपा नवत्रसादिप्रकृतयश्चेति पञ्चमगाथायामष्टाविंशतिप्रकृतयोऽभिहिताः, एवं पञ्चगाथासु सर्वसङ्ख्यया दशाधिकशतप्रकृतयः। शेषाश्च दशप्रकृतयोऽत्र न संगृहीताः, स्वस्थान एव नामतः 'सेसाणे' त्यादिपदाद्वा वक्ष्यमाणत्वादिति सग्रहगाथापञ्चकार्थः ॥२४-२८॥

साम्प्रतमोघत आदेशतश्चोत्तरप्रकृतिबन्धस्वामित्वज्ञानार्थं प्रथममोघत आदेशतश्च जीवभेदज्ञानमावश्यकमिति मूलप्रकृतिबन्धविधानग्रन्थे तत्प्रतिपादिका या गाथास्ता अत्राऽभिधीयन्ते। तद्यथा-

जीवा णेया मिच्छादिट्ठी, सासाणमीसदिट्ठी य। अविरयसम्मादिट्ठी, देसपमत्तअपमत्तजई ॥ ॥
तइऽपुव्वकरणवत्ती अणियट्टी सुहुमसपराया य। उवसतखीणमोहा य सजोगिअजोगिणो सिद्धा॥ ॥
सव्वणिरयभेएसु सुरगेविज्जतदेवविउवेसु । अजयासुहलेसासु मिच्छाई होन्ति सम्मंता ॥ ॥
मिच्छाई देसविरयअता तिरियतिपणिदितिरियेसु। मिच्छादिट्ठीया चिअ असमत्तपणिदितिरियमणुसेसु॥
(गीतिः)
सव्वेसु एगिंदियविगलिंदियपचकायभेएसु । असमत्तपणिदियतसअभवियमिच्छत्तअमणेसु ॥ ॥
मिच्छाइअजोगता तिमणुसदुपणिदिदुतसभवियेसु । सम्मादिट्ठीया चिय पणऽणुत्तरदेवभेएसु ॥ ॥

तिमणवयणकायेसु ओरालम्मि सुइलाय आहारे । मिच्छाद्दिट्ठिपभिई होअन्ति सजोगिपज्जंता ॥ ॥
दुमणवयणजोगेसुं णयणेयरदरिसणेसु सण्णिम्मि । मिच्छाद्दिट्ठीयाई णायव्वा खीणमोहंता ॥ ॥
मिच्छत्ती सासाणा सम्मादिट्ठी सजोगिकेवलिणो । ओरालमीसजोगे कम्मणजोगे य होअन्ति ॥ ॥
विक्कियमीसे हुन्ते मिच्छा सासायणा य सम्मत्ती । णेया पमत्तजइणो आहाराहारमीसेसुं ॥ ॥
वेअकसायतिगे खलु मिच्छत्ताइ अणियट्टिपज्ज ता । अणियट्टिबायराई सिद्धता अत्थि गयवेए ॥ ॥
मिच्छाई सुहुमंता हवन्ति लोहम्मि हुन्ति अकसाये । उवसतखीणमोहा य सजोगिअजोगिणो सिद्धा॥ ॥
केवलदुगे सजोगी अजोगिसिद्धाऽत्थि मिच्छसासाणा । अण्णाणतिगे हुन्ति अजोगता सजमे पमत्ताई ॥ ।
णाणतिगे ओहिम्मि य सम्माई हुन्ति खीणमोहंता । होअन्ति पमत्ताई मणणाणे खीणमोहंता ॥ ॥
अणियट्टिबायरंता समइअच्छेएसु अप्पमत्तता । परिहारे देसजई देसे सुहमा उ सुहुमम्मि ॥ ॥
उवसतखीणमोहा सहजोगअजोगिणो अहक्खाये । तेउपम्हासु णेया मिच्छाई अप्पमत्तता ॥ ॥
सम्माई सिद्धता सम्मे खइए य अप्पमत्तता । वेअगसम्मे णेया उवसंतंता उवसमम्मि ॥ ॥
सासाणे सासाणा मीसे मीसा तहा अणाहारे । मिच्छा सासणसम्मा सहजोगअजोगिणो सिद्धा ॥ ॥
उत्तानार्थाः ।

इदानीमोघत उत्तरप्रकृतीनां भणितजीवभेदभिन्नं बन्धस्वामित्वं दर्शयन्नादौ तावज्ज्ञानावरणादिषोडशप्रकृतीनां तदुपदर्शयति

पयडीण सोलसण्हं आवरणाईण बंधगा जीवा ।
सुहुमंता सव्वहं खलु धुवबंधीणं अबंधगा सेसा ॥ २६ ॥ (गीतिः)

(प्रे०) "पयडीण" इत्यादि, 'आवरणं विग्घं उच्च जसो' इति संग्रहगाथावयवेषु प्रतिपादितानां ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कमन्तरायपञ्चकमुच्चैर्गोत्रं यशःकीर्तिनाम चेति षोडशप्रकृतीनां बन्धका मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकादारभ्य सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानकं यावद् दशसु गुणस्थानकेषु वर्तमाना जीवा ज्ञातव्याः, प्रकृतीनामासां बन्धस्य कषायोदयाऽविनाभावित्वाद् गुणस्थानकेष्वेषु कषायोदयस्य सत्त्वेन तद्बन्धभावात् । "सव्वह" इत्यादि ओघत आदेशतश्च बन्धस्वामित्वप्ररूपणायां भणितध्रुवबन्धिप्रकृतिबन्धकेतरा अवशेषा जीवभेदा भणितध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धका अवसातव्या इति सर्वत्राऽनुसन्धेयम् , अध्रुवबन्धिनीनां तु उत्तरत्र वक्ष्यन्ते, स्वयमेव गाथाकृता, तथाऽपि स्थानाऽशून्यार्थमस्माभिः संक्षेपेण तत्र तत्र द्वितीयप्रकारगता अबन्धकाः कथयिष्यन्ते । अबन्धका अध्रुवबन्धिप्रकृतीनां द्विधा प्राप्यन्ते, ये यासां प्रकृतीनां बन्धकत्वेन योग्या अपि तत्प्रतिपक्षादिप्रकृतीनां बन्धकत्वेन तासामबन्धकास्ते प्रथमप्रकारगताः, ये तु बन्धविच्छेदेन यासां प्रकृतीनामबन्धकास्ते द्वितीयप्रकारगता ज्ञातव्याः । अत्र तु द्वितीयप्रकारगता अबन्धका दर्शयिष्यन्ते । प्रस्तुते ज्ञानावरणादिचतुर्दशानां ध्रुवबन्धिनीनां, उच्चैर्गोत्रयशःकीर्तिरूपयोरध्रुवबन्धिन्योश्च मिथ्यादृष्टिप्रमुखसूक्ष्मसंपरायान्ता जीवा बन्धकाः, तद्व्यतिरिक्ता उपशान्तमोहक्षीणमोहसयोग्ययोगिनः सिद्धाश्च प्रकृतषोडशप्रकृतीनां बन्धका नैव भवन्ति, कषायोदयाभाववत्त्वात्तेषाम् ॥२९॥

अथ स्त्यानर्द्धित्रिकादिप्रकृतीनां बन्धस्वामित्वं प्रदर्शयन्नाह

थीणद्धितिगाईण चउवीसाअ तिरियाउगस्स तहा ।
सासणअंता दोण्हं णिद्दाण अपुव्वसखस ॥ ३० ॥

(प्रे०)"थीणद्धि" इत्यादि, थीणद्धितिगाणित्थी मज्झिमसंघयणआगिई णीअ दुहगतिग अपसत्था खगई तिरिअदुगमुज्जोओ" इतिसंग्रहगाथाशेपूक्तानां स्त्यानर्द्धित्रिकप्रभृतीनां चतुर्विंशतिप्रकृतीनां तिर्यगायुष्कस्य च बन्धका मिथ्यादृष्टिसास्वादनगुणस्थानस्था जीवा बोद्धव्याः, यत एताः पञ्चविंशतिः प्रकृतयोऽनन्तानुबन्धिकषायोदयेन बध्यन्ते, गुणस्थानद्वये चाऽस्मिन् तदुदयस्य विद्यमानत्वेन भवति प्रकृतीनामासां बन्धः । एतज्जीवभेदद्वयातिरिक्ता मिश्रदृष्टिप्रभृतयोऽखिला जीवभेदाः पञ्चविंशतिप्रकृतीनामासां बन्धका नैव भवन्ति अनन्तानुबन्धिकषोदयाभावात्तेषाम् । "दोण्हं" इत्यादि, निद्राप्रचलालक्षणस्य निद्राद्विकस्य प्रथमगुणस्थानकात्प्रभृत्यष्टमगुणस्थानकप्रथमभागं यावत्तिष्ठन्तो जीवा बन्धका भवन्ति, एतावत्पर्यन्तं तेषां तद्बन्धप्रायोग्यपरिणामभावात् । "सव्वह खलु" इत्यादिनाग्रेतनगुणस्थानेषु वर्तमाना जीवाः सिद्धाश्च निद्राद्विकस्याऽबन्धकाः सन्ति, तत्प्रायोग्यपरिणामविरहात् ॥३०॥

इदानीं सातवेदनीयादिप्रकृतीनां बन्धस्वामित्वमुपदर्शयति

सायस्स सजोगंता छअसायाईण जा पमत्तजई ।
मिच्छत्ती चिअ, पणरसणपुमाइगणाउगाऊणं ॥ ३१ ॥

(प्रे०)"सायस्स" इत्यादि, आसयोगिगुणस्थानं जीवाः सातवेदनीयस्य बन्धका भवन्ति जीवेष्वेषु योगस्य सत्त्वात्, जायते हि योगहेतुनाऽपि सातवेदनीयस्य बन्धः । अयोगिगुणस्थानस्थिता जीवाः सिद्धाश्च सातवेदनीयस्य बन्धका न भवन्ति, योगव्यापाराभावात् । "छअसायाईण" इत्यादि, "असायअरइसोगअथिरदुगअजस 'मिति संग्रहगाथांशे प्रोक्तानां षण्णामसातवेदनीयप्रभृतिप्रकृतीनां बन्धका आद्यगुणस्थानकात् प्रमत्ताख्यषष्ठगुणस्थानं यावद्वर्तमाना असुमन्तो भवन्ति, यतः प्रकृतीनामासां बन्धः प्रमादविशिष्टकषायप्रत्ययिको ऽस्ति, प्रकृतगुणस्थानस्था जीवा अपि प्रमादवन्त एव । तदुपरितनगुणस्थानेषु पुनर्वर्तमाना जीवाः सिद्धाश्चासामबन्धका अवसेयाः, प्रमादविकलत्वात् । "मिच्छत्ती" इत्यादि "णपुम मिच्छ हुंड छेवट्ठं थावरायवेगिंदी । विगलाणि य सुहुमतिग तह णिरयदुग"मितिसंग्रहगाथावयवेषु प्रतिपादितानां नपुंसकवेदादीनां पञ्चदशप्रकृतीनां नरकायुष्कस्य च बन्धका मिथ्यादृष्टय एव जीवा भवन्ति, प्रकृतीनामासां बन्धस्य मिथ्यात्वप्रत्ययिकत्वात्, तदपरे सास्वादनप्रमुखा जीवभेदाः प्रकृतीनामासां बन्धका न भवन्ति, मिथ्यात्वोदयविकलत्वात् ॥ ३१ ॥

साम्प्रतं द्वितीयकषायादीनां बन्धस्वामित्वमाह

दुइअकसायाईण णवण्ह होअन्ति जाव सम्मत्ती ।
चउतइअकसायाण णेया देसजइपज्जंता ॥ ३२ ॥

(प्रे०) "**दुइअकसायाईण**" मित्यादि, "दुइआ कसाया नरदुगमुरलदुगवइराणि" इतिसंग्रहगाथावयवेप्रूक्तानामप्रत्याख्यानावरणचतुष्कमनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननरूपाणां नवानां प्रकृतीनां बन्धका मिथ्यादृष्टिगुणस्थानादारतो यावदविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानस्थायिनो जीवा वेदयितव्याः, भावना पुनरेवं भावनीया—"जो वेयई सो बंधइ" इति वचनात् अप्रत्याख्यानावरण चतुष्कस्य बन्धः स्वोदयप्रत्ययिको भवति, अत एते जीवभेदास्तदुदयवत्त्वेनाप्रत्याख्यानावरणचतुष्टयं बध्नन्ति, मनुष्यद्विकादिप्रकृतिपञ्चकस्य बन्धोऽविरत्यात्मकनिमित्तेन जायते, एते जीवभेदा अप्यविरतिवन्तो भवन्ति, तस्मादेतैरेतत्प्रकृतिपञ्चकं बध्यते। अत्रायं विशेषः-तृतीयचतुर्थगुणस्थानवर्तिजीवेषु मनुष्यपञ्चकस्य बन्धका देवनारका एव। तद्व्यतिरिक्ता देशविरतिप्रभृतिगुणस्थानस्थायिनो जीवभेदाः प्रकृतीनामासामबन्धका विज्ञेयाः, उपर्युक्तहेतुद्वयाभाववत्त्वात्तेषाम्। "**चउतइअ**" इत्यादि, आपञ्चमगुणस्थानं वर्तमाना जीवभेदाः प्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्कस्य बन्धका बोद्धव्याः, तदुदयवत्त्वादेषाम्, तदुदयाविनाभावी हि तद्बन्धः। एतदतिरिक्ताः प्रमत्तसंयतादिगुणस्थानगता जीवा नैतत्कषायचतुष्कस्य बन्धकाः, यत एते जीवा प्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्कोदयाभाववन्त इति ॥ ३२ ॥

अधुना पुरुषवेदादीनां बन्धस्वामित्वं कथयितुमना आह—

पुरिसतिसंजलणाण अत्थि कमा बंधगाऽणिअट्टीए।
जा पढमभागेसु ठिआ चरमता चरमलोहस्स ॥ ३३ ॥

(प्रे०) "**पुरिस**" इत्यादि, पुरुषवेदसंज्वलनक्रोधमानमायारूपाणां चतसृणां प्रकृतीनां बन्धस्वामिनो यथासंख्यं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकादारभ्य यावदनिवृत्तिबादरसंपरायाख्यनवमगुणस्थानकस्य ये प्रथमाद्याश्चत्वारो भागास्तावद् वर्तमाना जीवाः, संज्वलनलोभस्य तु बन्धका नवमगुणस्थानकस्य चरमसमयं यावद् वर्तमाना जीवा विज्ञातव्याः। इदमुक्तं भवति—अनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थानाद्धाया असमाः पञ्चभागा भवन्ति, तस्य गुणस्थानकस्य बहुभागप्रमाणकालरूपस्य प्रथमभागस्य प्रान्ते पुरुषवेदस्य बन्धविच्छेदो भवति, तदनन्तरं तद्गुणस्थानकस्याऽवशिष्टकालस्य बहुभागरूपद्वितीयभागान्ते संज्वलनक्रोधस्य, तदनु तृतीयभागान्ते संज्वलनमानस्य, तत्पश्चात्शेषस्य कालस्य बहुभागरूपतुर्यभागान्ते संज्वलनमायायाः, ततः परं शेषपञ्चमभागप्रान्ते 'नवमगुणस्थानकस्य चरमसमय इत्यर्थः' सञ्ज्वलनलोभस्य बन्धविच्छेदो जायते, तस्मादनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थानकस्य यावत्प्रथमभागं गताः पुरुषवेदस्य यावद्द्वितीयभागं गताः संज्वलनक्रोधस्य, यावत्तृतीयभागं गताः संज्वलनमानस्य, यावच्चतुर्थभागं गताः सज्वलनमायायाः, यावत्पञ्चमभागं गताश्च संज्वलनलोभस्य बन्धका ज्ञातव्याः। एवमेव **पञ्चसङ्ग्रहटीकायामाचार्यपुङ्गवैः श्रीमलयगिरिसूरिभिरुक्तम्**, तद्यथा—

अपूर्वकरणचरमसमये हास्यरतिभयकुत्साविरामे—हास्यरतिभयजुगुप्साबन्धविच्छेदेऽनिवृत्तिबादरसपरायप्रथमसमये द्वाविंशतिर्बन्धयोग्या भवति, सा च तावद्यावदनिवृत्तिबादरसंपरायाद्धाया. संख्येया

भागा गता भवन्ति, एकोऽवतिष्ठते । ततः पुरुषवेदबन्धविच्छेदादेकविंशतिर्बन्धयोग्या भवति, साऽपि तावद्यावत्तस्याः शेषीभूताया अद्धायाः सङ्ख्येया भागा गता भवन्ति, एकोऽवतिष्ठते । तत संज्वलनक्रोधस्याऽपि बन्धव्यवच्छेदाद्विंशतिर्बन्धयोग्या भवति, सापि तावद्यावत्तस्याः शेषीभूतायाः सङ्ख्येया भागा गता भवन्ति, एकोऽवशिष्यते । ततः सज्वलनमानस्यापि बन्धव्यवच्छेदादेकोनविंशतिर्बन्धयोग्या भवति, सापि तावद्यावत्तस्याः शेषीभूताया अद्धाया. सङ्ख्येया भागा गता भवन्ति, एकोऽवतिष्ठते । तत. सज्वलनमायाया अपि बन्धव्यवच्छेदादष्टादशप्रकृतयो बन्धयोग्या भवन्ति,ताश्च तावद्यावदनिवृत्तिबादरसपरायाद्धायाश्चरमसमय', तस्मिंश्च चरमसमये सज्वलनलोभस्यापि बन्धव्यवच्छेदात्सूक्ष्मसपरायगुणस्थानकप्रथमसमये सप्तदश बन्धयोग्याः । शतकवृत्तौ त्वेवम्–इहानिवृत्तिबादरगुणस्थानकस्य चरमसङ्ख्येयभाग पञ्चभिर्भागै. कल्प्यते । तत्र प्रथमभागान्ते पुरुषवेदलक्षणाया एकस्या प्रकृतेर्बन्धव्यवच्छेदे शेषामेकविंशतिमसौ बध्नाति । ततो द्वितीयभागान्ते क्रोधबन्धव्यवच्छिन्ने शेषा विंशतिम् । ततस्तृतीयभागान्ते मानबन्धे व्यवच्छिन्ने शेषामेकोनविंशतिम् ततश्चतुर्थभागान्ते मायाबन्धे व्यवच्छिन्ने शेषा अष्टादशप्रकृतीरयमेव बध्नाति । ततः पञ्चमभागस्य चरमसमये लोभलक्षणाया एकस्याः प्रकृतेर्बन्धे व्यवच्छिन्ने शेषाः सप्तदशप्रकृतीः सूक्ष्मसम्परायो बध्नाति ।" कषायप्राभृतस्य त्वयमभिप्रायः–अनिवृत्तिबादरसपरायस्य बहुसंख्यातभागे गते पुरुषवेदस्य बन्धो व्यवच्छिद्यते, तदनन्तरमनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थानकस्य शेषभागस्योत्तरोत्तरन्यूनन्यूनतराश्चत्वारो भागाः कल्प्यन्ते, तत्र प्रथमभागान्ते संज्वलनक्रोधस्य, द्वितीयभागस्यान्ते संज्वलनमानस्य तृतीयभागान्ते संज्वलनमायायाः, चतुर्थभागान्ते संज्वलनलोभस्य च बन्धविच्छेदो जायते ॥ ३३ ॥

सम्प्रति हास्यमोहनीयादिप्रकृतीनां बन्धस्वामित्वमाह

बोद्धव्वा हस्सजुगलभयकुच्छाण अपुव्वकरणंता ।
सम्मादिट्ठीयता हुन्ति णराउस्स मीसूणा ॥ ३४ ॥

(प्रे०) "बोद्धव्वा" इत्यादि हास्यरतिभयजुगुप्सारूपस्य प्रकृतिचतुष्कस्य बन्धका मिथ्यादृष्टिप्रभृत्यपूर्वकरणगुणस्थानकेषु वर्तमाना जीवभेदा बोद्धव्याः । तदुपरितनगुणस्थानकेषु गता जीवभेदाः प्रकृतिचतुष्कस्याऽबन्धका बोद्धव्याः, तद्योग्याध्यवसायाभावत्वादेषाम् । "सम्मा" इत्यादि मनुष्यायुष्कस्य बन्धका प्रथमद्वितीयचतुर्थगुणस्थानकेषु स्थिता जीवभेदा वेदयितव्याः, तत्रापि चतुर्थगुणस्थानवर्तिजीवेषु मनुष्यायुष्कस्य बन्धका देवनारका एव, न तु तिर्यग्मनुष्याः, तेषां चतुर्थगुणस्थानके देवायुष्कस्यैव बन्धकत्वात् । मिश्रदृष्टय आयुष्कसामान्यस्याबन्धकत्वान्मनुष्यायुषोऽबन्धकाः, पञ्चमादिगुणस्थानवर्तिजीवा अप्यबन्धका एव, तेषां देवायुष्कस्यैव बन्धकत्वात् ॥ ३४ ॥

अधुना देवायुष्कादीना बन्धस्वामित्वं प्ररूपयन्नाह

अपमत्तसजयंता हुन्ते देवाउगस्स मीसूणा ।
तीससुराईण जा अपुव्वकरणस्स सत्तसा ॥ ३५ ॥

(प्रे०) 'अपमत्त' इत्यादि, तृतीयमिश्रदृष्टिगुणस्थानकवर्जमिथ्यादृष्ट्याद्यप्रमत्तसंयतजीवभेदा देवायुष्कस्य बन्धका भवन्ति, तत्प्रायोग्याऽध्यवसायवत्त्वात्तेषाम् । तदितरे पुनस्तद्बन्धका न, यतो

ऽष्टमगुणस्थानकादुपशमादिश्रेणिः प्रारभ्यते, श्रेणिगतश्च कोऽपि जीव आयुर्न बध्नाति, तत्र घोलना-परिणामाभावात् । 'तीस' इत्यादि, 'सुरदुग च ॥ वेउव्वियदुगजिणधुवणामसुहागिइपणिंदिसुहखगई । परघाओ ऊसासो आहारदुग णवतसाई ॥' इति संग्रहगाथाशकलोक्तानां देवद्विकप्रभृतीनां त्रिंशत्प्रकृतीनां बन्धका मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकादारभ्य यावदपूर्वकरणगुणस्थानकस्य संख्येयभागेषूपलभ्यमानाः सर्वे जीवभेदा अवसातव्याः, शेषाः पुनस्तदुपरिगुणस्थानवर्तिनो जीवभेदा न बन्धकाः, तत्प्रायोग्याध्यवसायाभाववत्त्वात्तेषाम् ॥ ३५ ॥

ननु जिननामकर्मणोऽविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकादाहारकद्विकस्य चाप्रमत्तसंयतगुणस्थानकादारभ्य बन्धो भवतीति नियमः, भवद्भिस्त्वत्र प्रथमाद्यष्टमगुणस्थानषष्ठभागवर्तिनो जीवभेदाः प्रकृतित्रयस्यास्य बन्धस्वामित्वेनोपदर्शितास्तत्कथं घटामियात् ? न हि मिथ्यादृष्टिप्रभृतिगुणस्थानत्रयगता जीवास्तीर्थकृन्नामकर्म बध्नन्ति, प्रथमादिषड्गुणस्थानकेषु च वर्तमाना आहारकद्विकमित्यारेकामुन्मूलयितुमेतत्प्रकृतित्रयस्य बन्धस्वामित्वेऽपवादमुपदर्शयन्नाह—

णवरं सम्माहिन्तो णेया तित्थयरणामकम्मस्स ।
अपमत्तसंजयाओ आहारदुगस्स विण्णेया ॥ ३६ ॥

(प्रे०) 'णवर' मित्यादि, तीर्थकरनामकर्मणोऽविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकादारभ्य यावदपूर्वकरणगुणस्थानकषष्ठभागं तिष्ठन्तः प्राणिनो बन्धका ज्ञेयाः, न पुनर्मिथ्यादृष्टिप्रमुखगुणस्थानत्रयवर्तिनः, तीर्थकृन्नामकर्मबन्धस्य सम्यक्त्वगुणाविनाभावित्वात् । 'अपमत्तसंयताओ' इत्यादि, अप्रमत्तसंयतगुणस्थानकादारभ्याऽपूर्वकरणगुणस्थानषष्ठभागं यावद् वर्तमाना असुमन्त आहारकद्विकस्य बन्धका ज्ञातव्याः, न पुनराद्यादिषड्गुणस्थानगताः, आहारकद्विकबन्धस्याऽप्रमत्तसंयमादिगुणाऽविनाभावित्वात् ॥ ३६ ॥

तदेवमोघतो मिथ्यादृष्टिप्रभृतिजीवभेदभिन्नमुत्तरप्रकृतिबन्धस्वामित्वं निरूप्य साम्प्रतमादेशतो मार्गणासु तन्निरूपयितुमना ग्रन्थकार आदौ तावदोघवत्सविशेषं चाह—

ओघव्व जाणियव्वा सप्पाउग्गाण आउवज्जाणं ।
तिणरदुपचिंदियतसपज्जमणवयकायउरलेसुं ॥ ३७ ॥
णयणेयरसुक्कासुं भविये सण्णिम्मि आहारे ।
णवरि तिणरउरलेसुं पंचणराईण मिच्छसासाणा ॥ ३८ ॥ (उद्गीतिः)
सायस्स बंधगा खलु सव्वे पचमणवयणकायेसुं ।
उरलणयणेयरेसुं सुक्कासण्णीसु आहारे ॥ ३९ ॥

(प्रे०) 'ओघव्व' इत्यादि, मनुष्यौघमनुष्ययोनिमतीपर्याप्तमनुष्यपञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौघपर्याप्तत्रससमनःसामान्यसत्यमनोऽसत्यमनःसत्यासत्यमनोऽसत्यामृषामनोवचनौघसत्य-

यतः मिथ्यादृष्टिसास्वादनजीवास्तत्र बध्नन्तीत्यारेकापनोदाय "णवरि" इत्यादिना विशेष-मुपदर्शयन्नाह—सप्तमनरकमार्गणायां नरद्विकोच्चैर्गोत्रप्रकृतीनां बन्धका मिश्रदृष्टिसम्यग्दृष्टिजीवभेदा-वेव भवतः, नापरौ मिथ्यादृक्सास्वादनजीवभेदौ, तयोर्भवप्रत्ययात्तिर्यग्गतिप्रायोग्यप्रकृतिबन्धविधा-यित्वात् ॥४२॥

अथ तिर्यगोघादिमार्गणासूत्तरप्रकृतिबन्धस्वामित्वमभिधित्सुराह

तिरिये पणिदियतिरियतिगे य गुणतीसणरदुगाईण ।
सासाणंता मिच्छा पचदसण्ह णपुमाईणं ॥ ४३ ॥
सम्मादिट्ठीयंता दुइअकसायाण बंधगा णेया ।
सव्वे वि जाणियव्वा सेसाण पचसट्ठीए ॥ ४४ ॥

(प्रे०) "तिरिये" इत्यादि, तिर्यगोघतिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिरश्चीरूपासु चतसृषु मार्गणासु मिथ्यादृष्टिसास्वादनजीवाः, "णरदुगसुरउदुगवइराणि ॥थीणद्धितिगाणित्थी मज्झिमसघयणआगिई णीअ । दुहगतिग अपसत्था खगई तिरियदुगमुज्जोओ॥" इतिसंग्रहगाथात्रयवेषु भणितानां मनुष्यद्विकादीनामेकोनत्रिंशत्प्रकृतीनां बन्धका वर्तन्ते, नापरे मिश्रदृष्टिप्रभृतयः, तेषां देवप्रायोग्यप्रकृतिबन्धभावादनन्तानुबन्धिचतुष्कोदयाभावाच्च । "मिच्छा" इत्यादि, "णपुम मिच्छ हुंड छेवट्ठ थावरायवेगिंदो। विगलाणि य सुहुमतिग तह णिरयदुग" इति संग्रहगाथात्रयवेषु कथितानां नपुंसकवेदादीनां पञ्चदशप्रकृतीनां बन्धको मिथ्यादृष्टिजीवभेदो वेदयितव्यः, न पुनरपरे सास्वादनप्रमुखा जीवभेदाः, एषु प्रकृतीनामासां बन्धहेतुभूतस्य मिथ्यात्वोदयस्याऽभावात् । "सम्मादिट्ठीयंता" इत्यादि अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य बन्धका मिथ्यादृष्टिप्रभृतिचतुर्जीव-भेदा अधिगम्याः, न पुनः शेषो देशविरतः, तद्बन्धहेतुभूताप्रत्याख्यानावरणचतुष्कोदयाभावात् । 'सव्वे' इत्यादि, ज्ञानावरणपञ्चकम्, दर्शनावरणषट्कम्, वेदनीयद्विकम्, प्रत्याख्यानावरणचतुष्क-संज्वलनचतुष्कहास्यषट्कपुरुषवेदलक्षणाः पञ्चदश मोहनीयप्रकृतयः, देवगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, वैक्रियतैजसकार्मणशरीरत्रयम्, वैक्रियाङ्गोपाङ्गम्, समचतुरस्रसंस्थानम्, वर्णचतुष्कम्, देवानुपूर्वी, शुभखगतिः, त्रसदशकम्, अस्थिराशुभायशःकीर्तिनामप्रकृतित्रयम्, आतपोद्योतजिनवर्जप्रत्येकपञ्चकम्, उच्चैर्गोत्रम्, अन्तरायपञ्चकञ्चेति पञ्चषष्टिप्रकृतीनां बन्धकाः मार्गणास्वासु वर्तमाना मिथ्यादृष्ट्यादयः पञ्चाऽपि जीवभेदा भवन्ति ॥४३-४४॥

साम्प्रतं सुरौघसौधर्मेशानवैक्रियकाययोगवैक्रियमिश्रकाययोगरूपासु पञ्चसु मार्गणासु भवनपतिप्रभृतिमार्गणात्रये चोत्तरप्रकृतिबन्धस्वामित्वमुपदर्शयितुमाह

सुरसोहम्मदुगेसु वेउव्वदुगे य मिच्छसासाणा ।
थीणद्धितिगाईण चउवीसाए मुणेयव्वा ॥ ४५ ॥
सत्तणपुमाइगाण मिच्छाविट्ठी जिणस्स सम्मत्ती ।
सव्वे सेसाणेव विणा जिण अत्थि भवणतिगे ॥ ४६ ॥

(प्रे०) "सुर" इत्यादि, सुरौघसौधर्मेशानवैक्रियकाययोगवैक्रियमिश्रकाययोगाभिधासु पञ्चसु मार्गणासु "थीणद्धितिगाणित्थी मज्झिमसंघयणआगिई नीअ। दुहगतिग अपसत्था खगई तिरियदुग-मुज्जोओ" इति संग्रहगाथावयवेषु भाषितानां स्त्यानर्द्धित्रिकादीनां चतुर्विंशतिप्रकृतीनां बन्धका मिथ्यादृष्टयः सास्वादनाश्च भवन्ति, नान्ये, हेतुरत्र प्राग्वदवसेयः। 'सत्त' इत्यादि, नपुंसकवेदो मिथ्यात्वमोहनीयं हुण्डकसंस्थानं सेवार्तसंहननं स्थावरनामाऽऽतपनामैकेन्द्रियजातिनाम चेति सप्तानां प्रकृतीनां बन्धका मिथ्यादृशो बोद्धव्याः, शेषास्तु न तद्बन्धकाः, मिथ्यात्वरहितत्वात्तेषाम्। "जिणस्स" इत्यादि, तीर्थकृन्नामकर्मणो बन्धकाः सम्यग्दृशो भवन्ति, नेतरे मिथ्यादृगादयः, तद्बन्धस्य सम्यक्त्वाऽविनाभावित्वात्। "सव्वे" इत्यादि, मार्गणास्वासु वर्तमानाः सर्वेऽपि जीवभेदा उक्तातिरिक्तानां शेषाणां सप्ततिप्रकृतीनां बन्धका अवसातव्याः। ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-ज्ञानावरण-पञ्चकं दर्शनावरणषट्कं वेदनीयद्विकमप्रत्याख्यावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्क-पुरुषवेदहास्यषट्कात्मका एकोनविंशतिर्मोहनीयप्रकृतयो मनुष्यगतिः पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिकतै-जसकार्मणशरीरत्रयमौदारिकाङ्गोपाङ्गं वज्रर्षभनाराचसंहननं समचतुरस्रसंस्थानं वर्णचतुष्कं मनुष्या-नुपूर्वी शुभखगतिः त्रसदशकमस्थिराशुभायशःकीर्तिनामत्रयमातपोद्योतजिननामवर्जप्रत्येकपञ्चकमुच्चै-र्गोत्रमन्तरायपञ्चकञ्चेति सप्ततिप्रकृतयः। "एवं विणा" इत्यादि, भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्क-रूपासु तिसृषु मार्गणासु जिननाम्नो बन्धाभावाज्जिननामकर्मप्रकृतिं विहाय शेषतत्तदुत्तरप्रकृतीनां बन्धस्वामित्वं सुरौघादिमार्गणावद् भावनीयम्॥४५-४६॥

इदानीमानतादिनवग्रैवेयकपर्यन्तासु मार्गणासूत्तरप्रकृतिबन्धस्वामित्वमाह

गेविज्जंतसुरेसुं सेसेसुं हुन्ति मिच्छसासाणा।
थीणद्धितिगाईण पयडीणं एगवीसाए ॥ ४७ ॥
णपुमाईण चउण्हं मिच्छाविट्ठी जिणस्स सम्मत्ती।
सेसाण सत्तरीए पयडीणं बंधगा सव्वे ॥ ४८ ॥

(प्रे०) "गेविज्जंतसुरेसु" इत्यादि, आनतप्राणतारणाच्युतनवग्रैवेयकरूपासु त्रयोदश मार्गणासु "थीणद्धितिगाणित्थी मज्झिमसंघयणआगिई नीअं। दुहगतिगं अपसत्था खगई" इत्यनेन प्रोक्तानां स्त्यानर्द्धित्रिकादीनामेकविंशतिप्रकृतीनां बन्धका मिथ्यादृष्टिसास्वादना बोद्धव्याः, शेषाः पुन-र्नबन्धकाः, हेतुरत्र प्राग्वद्। "णपुमाईण" इत्यादि, नपुंसकवेदमिथ्यात्वमोहनीयहुण्डक-संस्थानसेवार्तसंहननलक्षणस्य प्रकृतिचतुष्कस्य बन्धका मिथ्यादृशोऽधिगम्याः, शेषाः पुनर्न बन्ध-काः, हेतुः पुनरिह प्राग्वदनुसन्धेयः। "जिणस्स" इत्यादि, तीर्थकृन्नामकर्मणो बन्धकः सम्यग्दृष्टि-जीवभेदोऽवसेयः, नेतरे, सम्यक्त्वप्रत्ययिकत्वात्तद्बन्धस्य। "सेसाण" इत्यादि, उक्तविभिन्नानां शेषाणां सप्ततिप्रकृतीनां बन्धका एतन्मार्गणस्था मिथ्यादृष्टिप्रभृतयश्चत्वारोऽपि जीवभेदा भवन्ति,

वचनाऽसत्यवचनसत्यासत्यवचनाऽसत्यामृषावचनकाययोगौघौदारिककाययोगचक्षुरचक्षुःशुक्ललेश्या-भव्यसंज्ञ्याहारकलक्षणासु पञ्चविंशतिमार्गणासु स्वप्रायोग्याणामायुष्कमन्तर्जानां प्रकृतीनां बन्धका ओघवज्ज्ञातव्याः। तद्यथा मनुष्यमार्गणात्रये पञ्चेन्द्रियमार्गणाद्वये त्रसमार्गणाद्वये भव्यमार्गणायां च मिथ्यादृष्टिप्रभृतयश्चतुर्दश जीवभेदा भवन्ति, मनोयोगौघ सत्यमनोयोगव्यवहारमनोयोगवचन-योगौघ सत्यवचनयोग व्यवहारवचनयोग काययोगौघौदारिककाययोगशुक्ललेश्याऽऽहारकरूपासु दश-मार्गणासु मिथ्यादृष्टिप्रमुखास्त्रयोदश जीवभेदा भवन्ति, असत्यमनोयोगसत्यासत्यमनोयोगाऽसत्य-वचनसत्यासत्यवचनयोगचक्षुरचक्षुःसंज्ञिरूपासु च सप्तमार्गणासु मिथ्यादृष्टिप्रभृतयो द्वादशजीवभेदा भवन्ति। मार्गणासु चतुर्णामायुषां बन्धस्वामित्वस्य पृथग्वक्ष्यमाणत्वेन तद्विरहितानां स्वप्रायोग्य-प्रकृतीनां प्रकृतमार्गणास्वेषां जीवानां बन्धस्वामित्वमोघवद् विज्ञेयम् ,बन्धकाभाववत्त्वं चैभ्य एव शेष-जीवभेदेषु विज्ञेयम्। तथाहि–प्रागुक्तानां नरकत्रिकप्रमुखाणां षोडशानां प्रकृतीनां मिथ्यादृष्टयः बन्धकाः, तद्व्यतिरिक्ता जीवभेदाः पुनस्तासां प्रकृतीनां बन्धका नैवेति, अनया रीत्याऽवत्य-सकलजीवभेदेषु स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धकाबन्धकविचारो यथायोगं स्वयं विधातव्यः।

ननु कथमत्र निष्प्रयोजनस्य स्वप्रायोग्यपदस्योपादानमिति चेदुच्यते अत्र मार्गणासु शुक्ल-लेश्यायाः प्रवेशात् तदुपादानस्य सार्थकत्वमवसेयम् , तथाहि-शुक्ललेश्यामार्गणायां वर्त-मानानां जीवानां नरकत्रिकविकलत्रिकसूक्ष्मत्रिकतिर्यक्त्रिकोद्योतस्थावरातपैकेन्द्रियरूपाः षोडश-प्रकृतयो बन्धे न सन्ति, तस्मात् शुक्ललेश्यामार्गणायां स्थितास्ते एता प्रकृतीर्न बध्नन्ति तद्व्यति-रिक्तास्वासु मार्गणासु वर्तमानास्ते पुनर्बध्नन्ति,अतः स्वप्रायोग्यपदोपादानं सार्थकमिति।

अथ मनुष्यमार्गणात्रय औदारिकमार्गणायां चौघवद् बन्धका भवद्भिरभिहिताः, ओघे तु मिश्र-दृष्टिसम्यग्दृष्टिजीवा नरद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसहननरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्य बन्धका भणिताः, तदत्र मार्गणासु कथं युक्तं स्यात् , नहि मिश्रदृष्टयः सम्यग्दृष्टयो वा मनुष्या मनुष्य-प्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाः, किन्तु ते देवप्रायोग्यप्रकृतीनामेवेत्यतिप्रसक्तिं निराकुर्वन् "णवरि" इत्यादिनाऽपवादमाह। मनुष्यौघमनुष्ययोनिमतीपर्याप्तमनुष्यौदारिककाययोगलक्षणासु चतसृषु मार्गणासु मनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसहननरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्य बन्धका मिथ्यादृष्टि-सास्वादनजीवा एव ज्ञातव्याः, न पुनर्मिश्रदृष्टिप्रभृतयो जीवभेदाः, देवप्रायोग्यप्रकृतीनामेव बन्धविधायित्वात्तेषाम्। ननु "सायस्स सजोगंता" इत्यनेन सातवेदनीयस्य बन्धका ओघ-प्ररूपणायां मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकादारभ्य सयोगिगुणस्थाने वर्तमाना जीवा प्रतिपादिताः, शेषा अयोगिनः सिद्धाश्चाऽबन्धकाः, तद्धि पञ्चमनःप्रभृतिमार्गणासु कथमुपपत्तिमालभेत, यतः प्रकृत-मार्गणासु शेषजीवभेदा एव न प्राप्यन्ते इत्याशङ्कामपनेतुमाह–"सायस्स" इत्यादि, मनःसामान्य-सत्यमनोऽसत्यमनःसत्यासत्यमनोऽसत्याऽमृषामनोवचनौघसत्यवचनासत्यवचनसत्यासत्यवचनाऽ-

सत्यामृषावचनकाययोगौदारिककाययोगचक्षुर्दर्शनाचक्षुर्दर्शनशुक्ललेश्यासंज्ञ्याहारकमार्गणासु सातवेदनीयस्य बन्धकाः सर्वे जीवभेदा वर्तन्ते ॥ ३७-३९ ॥

अथ नरकादिमार्गणासु बन्धस्वामित्वमाह

णिरयपढमाइतिणिरयतइआइगअट्ठमंतदेवेसु ।
णपुमाईण चउण्ह मिच्छादिट्ठी मुणेयव्वा ॥ ४० ॥
थीणद्धितिगाईण चउवीसाए ऽत्थि मिच्छसासाणा ।
तित्थस्स उ सम्मत्ती सव्वे होअन्ति सेसाण ॥ ४१ ॥

(प्रे०) 'णिरय" इत्यादि नरकौघरत्नप्रभाशर्कराप्रभावालुकाप्रभालक्षणासु चतसृषु नरकमार्गणासु सनत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलोकलान्तकशुक्रसहस्रारलक्षणासु च षट्सु देवमार्गणासु "णपुम मिच्छ हुंड छेवट्ठं" इति संग्रहगाथावयवेषूक्तानां नपुंसकवेदादीनां चतसृणां प्रकृतीनां बन्धका मिथ्यादृष्टय एव भवन्ति, न तु सास्वादनाः, एतत्प्रकृतिचतुष्कबन्धनिबन्धनमिथ्यात्वोदयस्याभावात्तेषाम् । "थीणद्धितिगाईणं" इत्यादि, "थीणद्धितिगाणित्थी मज्झिमसंघयणआगिई णीअं। दुहगतिगं अपसत्था खगई तिरियदुगमुज्जोओ" इतिसंग्रहगाथाशकलेषु भाषितानां स्त्यानर्द्धित्रिकप्रमुखाणां चतुर्विंशतिप्रकृतीनां बन्धका मिथ्यादृक्सास्वादनाः,न पुनः शेषा मिश्रदृष्ट्यादयो जीवभेदाः, तद्बन्धनिबन्धनीभूताऽनन्तानुबन्धिकषायोदयाभावात्तेषाम् । "तित्थस्स" इत्यादि मार्गणास्वासु तीर्थकरनामकर्मणो बन्धकः सम्यग्दृष्टिजीवभेद एव भवति, एतत्प्रकृतिबन्धस्य सम्यक्त्वप्रत्ययिकत्वात् । "सव्वे"इत्यादि, अत्रोक्तव्यतिरिक्तशेषप्रकृतीनां बन्धका मिथ्यादृष्टिप्रभृतयश्चत्वारो जीवभेदा भवन्ति । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः–ज्ञानावरणपञ्चकं स्त्यानर्द्धित्रिकवर्जदर्शनावरणषट्कं वेदनीयद्विकमप्रत्याख्यानावरणादिद्वादशकषायहास्यषट्कपुरुषवेदरूपा एकोनविंशतिर्मोहनीयप्रकृतयः मनुष्यगतिः पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिकतैजसकार्मणशरीरत्रयमौदारिकाङ्गोपाङ्गं वज्रर्षभनाराचसंहननं समचतुरस्रसंस्थानं वर्णचतुष्कं मनुष्यानुपूर्वी शुभखगतिस्त्रसदशकमस्थिराशुभायशःकीर्तिनामान्यातपोद्योतजिननामवर्जप्रत्येकपञ्चकमुच्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकमिति समतिः ॥ ४०-४१ ॥

साम्प्रतं शेषनरकभेदेषूत्तरप्रकृतीनां बन्धस्वामित्वं निरूपयन्नाह

णिरयव्व सेसणिरयेसु सपाउग्गाण णवरि चरिमम्मि ।
सम्मामिच्छादिट्ठी सम्मत्ती णरदुगुच्चाण ॥ ४२ ॥

(प्रे०) "णिरयव्व" इत्यादि, पङ्कप्रभाधूमप्रभातमःप्रभातमस्तमःप्रभालक्षणासु शेषचतुर्नरकगतिमार्गणासु स्वप्रायोग्याणां सर्वासां प्रकृतीनां बन्धस्वामित्वं नरकौघवज्ज्ञातव्यम् । ननु भवद्भिरत्र मार्गणासु स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धका मिथ्यादृष्टिप्रमुखाः सर्वे जीवभेदा उपदर्शिताः, तत्र सप्तमनरकमार्गणायां नरद्विकोच्चैर्गोत्रलक्षणस्य प्रकृतित्रयस्य सर्वे जीवभेदाः कथं बन्धकाः स्युः,

ताश्च सप्ततिः शेषाः प्रकृतयोऽनन्तरोक्तदेवौघादिषु दर्शिता एव ज्ञेयाः । अनुत्तरदेवभेदेषु तथा शेषैन्द्रियकायभेदेषु बन्धस्वामित्वं "**सेसासु**" इत्यादिनाऽग्रे वक्ष्यते ॥ ४७-४८ ॥

अथ योगमार्गणायाः शेषभेदेषु बन्धस्वामित्वं प्ररूपयन्नादावौदारिकमिश्रमार्गणायां तदभिधातुमाह

सासायणपज्जत्ता उरालमीसम्मि णरदुगाईण ।
गुणतीसाए तेरसणपुमाईणऽत्थि मिच्छत्ती ॥ ४९ ॥
सम्मादिट्ठीया खलु हवंति पचण्ह सुरदुगाईण ।
सायस्स हुंति सव्वे सम्मत्ता सेसपयडीण ॥ ५० ॥

(प्रे०) "**सासायण**" इत्यादि, औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणाया मिथ्यादृष्टिसास्वादनाः 'णरदुगमुरलदुगवइराणि॥ थीणद्धितिगाणित्थी मज्झिमसंघयणआगिई णीअं। दुहगतिगं अपसत्था खगई तिरियदुगमुज्जोओ' । इतिसंग्रहगाथाशेषु प्रोक्तानामेकोनत्रिंशन्मनुष्यद्विकप्रभृतिप्रकृतीनां बन्धका विज्ञेयाः, शेषाःपुनर्नैव बन्धकाः । 'तेरसणपुमाईण' इत्यादि, णपुम मिच्छ हुण्ड छेवट्टं थावरायवेगिंदी । विगलाणि य सुहुमतिगं" इतिसंग्रहगाथाशकलेषु भणितानां नपुंसकवेदादीनां त्रयोदशप्रकृतीनां बन्धका मिथ्यादृष्टिजीवा ज्ञातव्याः, नान्ये । 'सम्मादिट्ठीया' इत्यादि, सुरद्विकवैक्रियद्विकजिननामलक्षणस्य प्रकृतिपञ्चकस्य बन्धका अविरतसम्यग्दर्शनिन एव ज्ञातव्याः, नापरे, अस्यां मार्गणायां वर्तमाना मिथ्यादृष्टिसास्वादना देवचतुष्कं नैव बध्नन्ति,करणपर्याप्तानामेव मिथ्यादृष्टिसास्वादनानां तद्बन्धार्हत्वेन तेषाञ्च प्रस्तुतमार्गणायामप्रवेशात् , अविरतसम्यग्दशा पुनः करणाऽपर्याप्तानामपि तद्बन्धभावादविरतसम्यग्दृष्टेर्ग्रहणमिति ।'**सायस्स**' इत्यादि, सातवेदनीयाख्यप्रकृतेर्बन्धका मार्गणायामस्यां वर्तमाना सर्वे जीवभेदा भवन्ति,। **अयमभिप्राय**-औदारिकमिश्रकाययोगः कदा भवति तद् देवेन्द्रसूरिपूज्यपादनिर्मितस्य चतुर्थकर्मग्रन्थस्य स्वोपज्ञवृत्तितो विज्ञेयम् ,तद्वृत्तिपाठस्त्वेवम्-औदारिकमिश्रः कार्मणेन सह तच्चाऽपर्याप्तावस्थायां केवलिसमुद्घातावस्थायां वा, उत्पत्तिदेशे हि पूर्वभवादनन्तरमागतो जीवः प्रथमसमये कार्मणेनैव कवलेनाहारयति, ततः परमौदारिकस्याप्यारब्धत्वादौदारिकेण कार्मणमिश्रेण यावत्शरीरस्य निष्पत्ति , केवलिसमुद्घातवस्थायां द्वितीयषष्ठसप्तमसमयेषु कार्मणेन मिश्रमौदारिकमिति'अपर्याप्तावस्थायां केवलिसमुद्घातावस्थाया च सातवेदनीयस्य बन्धो जायते, अतएव प्रोक्तम् '**सायस्स हुंति सव्वे**' इति । '**सम्मत्ता**' इत्यादि, अभिहितव्यतिरिक्ताना शेषाणां चतुष्षष्टिप्रकृतीना बन्धका मिथ्यादृष्ट्यादयस्त्रयो जीवभेदा भवन्ति । '**सव्वह खलु**' इत्यादि वचनात् सयोगिकेवलिनः शेषप्रकृतीनामबन्धकत्वेन ग्राह्याः । ताश्चेमाः–शेषप्रकृतयः ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणषट्कमसातवेदनीयमनन्तानुबन्धिचतुष्कस्त्रीवेदनपुंसकवेदमिथ्यात्वमोहनीयवर्जा एकोनविंशतिर्मोहनीयप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजातिस्तैजसकार्मणशरीरे समचतुरस्रसंस्थानं वर्णचतुष्कं शुभविहायोगतिस्त्रसदशकमस्थिराशुभायशःकीर्तिनामत्रयमातपोद्योतजिननामवर्जप्रत्येकपञ्चकमुच्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकं चेति चतुःषष्टिः ॥४९-५०॥

अधुना कार्मणकाययोगाऽनाहारकमार्गणयोरुत्तरप्रकृतिबन्धस्वामित्वं निरूपयितुमना आह

कम्माणाहारेसुं सेरसणपुमाईयाण मिच्छत्तो ।
थीणद्धितिगाईणं चउवीसाएऽत्थि मिच्छसासाणा ॥ ५१ ॥ (गीतिः)
सायस्स मिच्छसासणसम्मसजोगी हवेज्ज सम्मत्ती ।
पंचण्ह सुराईण सम्मता सेसपयडीण ॥ ५२ ॥

(प्रे०) "कम्म" इत्यादि कार्मणकाययोगमार्गणायामनाहारकमार्गणायां च "णपुम मिच्छ हुंड छेवट्ठ थावरायवेगिंदी । विगलाणि य सुहमतिग" मितिसंग्रहगाथावयवेषु प्रतिपादितानां नपुंसकवेदादीनां त्रयोदशप्रकृतीनां बन्धका मिथ्यादर्शनिनो वेदयितव्याः, शेषाः पुनर्न बन्धकाः । 'थीणद्धितिगाईणं' इत्यादि, "थीणद्धितिगाणित्थी मज्झिमसघयणआगिई णीअं । दुहगतिग अपसत्था खगई तिरियदुगमुज्जोओ" ॥ इतिसंग्रहगाथावयवेषु कथितानां स्त्यानर्द्धित्रिकप्रमुखाणां चतुर्विंशतिप्रकृतीनां बन्धका मिथ्यादृष्टयः सास्वादनिनश्च द्रष्टव्याः, न पुनः शेषाः, अनन्तानुबन्धिकषायोदयाभावात्तेषाम् । 'सायस्स' इत्यादि, सातवेदनीयस्य बन्धका मिथ्यादृष्टि-सास्वादनाऽविरतसम्यग्दृष्टिसयोगिकेवलिनो जीवभेदा भवन्ति, अत्र व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिरितिन्यायेन कार्मणकाययोगमार्गणायां सर्वेऽपि जीवभेदा सातवेदनीयस्य बन्धकाः प्राप्यन्ते, अनाहारकमार्गणायां त्वयोगिनः सिद्धाश्च तद्बन्धकतया न प्राप्यन्ते । 'सम्मत्ती' इत्यादि, देवद्विकवैक्रियद्विकजिननामलक्षणस्य प्रकृतिपञ्चकस्य बन्धका अविरतसम्यग्दृष्टय एवावगन्तव्याः, अन्ये पुनरबन्धकाः । 'सम्मंता' इत्यादि, मिथ्यादृष्टि सास्वादनाऽविरतसम्यग्दर्शनिनो जीवभेदा उक्तेतरशेषनवषष्टिप्रकृतीनां बन्धका भवन्ति, न पुनः शेषजीवभेदाः ताश्चैताः-ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणषट्कमसातवेदनीयमप्रत्याख्यानावरणादिद्वादशकषायहास्यषट्कपुरुषवेदरूपा एकोनविंशतिर्मोहनीयप्रकृतयो मनुष्यगतिः पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिकतैजसकार्मणशरीरत्रयमौदारिकाङ्गोपाङ्गं प्रथमसंहननं प्रथमसंस्थानं वर्णचतुष्कं मनुष्यानुपूर्वी शुभविहायोगतिः त्रसदशकमस्थिराशुभायशःकीर्तिनामत्रयमातपोद्योतजिननामवर्जप्रत्येकपञ्चकमुच्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकं चेति । अत्रायं विशेषः-अविरतसम्यग्दृष्टिजीवेषु मनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्य बन्धका देवनारका एव वर्तन्ते ॥ ५१-५२ ॥

सम्प्रति स्त्रीवेदादिमार्गणात्रय उत्तरप्रकृतिबन्धस्वामित्वमुपदर्शयन्नाह ।

थीपुरिसनपुंसेसुं आवरणाईण बधगा सव्वे ।
णेया बावीसाए ओघव्व हवन्ति सेसाण ॥ ५३ ॥

(प्रे०)'थीपुरिस'इत्यादि,ज्ञानावरणपञ्चकं चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्कं संज्वलनचतुष्कं पुरुषवेदः सातवेदनीयं यशःकीर्तिरुच्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकं चेति द्वाविंशतिप्रकृतीनां बन्धकाः स्त्रीपुरुषनपुंसकवेदरूपासु तिसृषु मार्गणासु वर्तमाना मिथ्यादृष्टिप्रमृतयः सर्वे जीवभेदा ज्ञातव्याः, श्रेणावपि मार्गणाचरमसमयं यावत्तद्बन्धभावात् । 'ओघव्व' इत्यादि, शेषप्रकृतीनां बन्धका अत्रौ-

घवद् भवन्ति, तद्यथा–नपुंसकवेदादीनां षोडशप्रकृतीनां बन्धका मिथ्यादृशो भवन्ति, स्त्यान-र्द्धित्रिकादीनां चतुर्विंशतिप्रकृतीनां च बन्धका मिथ्यादृक्सास्वादना भवन्तीत्येवं स्वधिया सर्वत्र समालोचनीयम् ॥ ५३ ॥

इदानीमपगतवेदमार्गणायामुत्तरप्रकृतीनां बन्धस्वामित्वमभिधातुमाह–

सत्तरआवरणाईणोघव्व णवमगुणाइगा-ऽवेए ।
चउसंजलणाण कमा अणियट्टीअ चउभागगआ ॥ ५४ ॥

(प्रे०) '**सत्तर**' इत्यादि, अपगतवेदमार्गणायां सप्तदशानां ज्ञानावरणीयप्रभृतिप्रकृतीनां बन्धका नवमप्रमुखगुणस्थानगता ओघवद् भवन्ति । अयमत्र भावः–इयमपगतवेदमार्गणा नवमगुण-स्थानकद्वितीयभागादारभ्योपरितनगुणस्थानकेषु प्राप्यते, तत्र ज्ञानावरणपञ्चकं चक्षुरचक्षुरवधिकेवल-दर्शनावरणचतुष्कं सातवेदनीयं यशःकीर्तिनामोच्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकं चेति षोडशप्रकृतीना बन्धका नव-मगुणस्थानकद्वितीयभागादारभ्य दशमगुणस्थानान्तं गता जीवभेदा भवन्ति, न पुनः परे । ननु मूलगाथायां 'नवम' शब्दस्योपादानेन नवमगुणस्थानकमेव ग्राह्यम्, कथं भवद्भिर्नवमगुणस्थानद्वितीयभागो गृहीतः ? इति चेद्, उच्यते, व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिरिति न्यायमनुसृत्य नवमगुणस्थानद्वितीयभाग एवाऽत्र ग्राह्यः, तत आरभ्यैव गतवेदमार्गणायाः प्राप्यमाणत्वात् । सातवेदनीयस्य बन्धका इह नवम-गुणस्थानद्वितीयभागादारभ्य यावत्त्रयोदशमगुणस्थानं गता जीवभेदा विज्ञेयाः । '**चउसंजलणाण**' इत्यादि, चतुर्णां सञ्ज्वलनकषायाणामनिवृत्तिबादरसम्परायाख्यनवमगुणस्थानस्य द्वितीयादिचतु-र्भागगता जीवभेदाः क्रमेण बन्धका अवसेयाः, तद्यथा–नवमगुणस्थानद्वितीयभागगता जीवाः सञ्ज्व-लनक्रोधस्य, तद्द्वितीयतृतीयभागगताः सञ्ज्वलनमानस्य, तद्द्वितीयतृतीयतूर्यभागगताः सञ्ज्व-लनमायायाः, तद्द्वितीयतृतीयतूर्यपञ्चमभागगताश्च सञ्ज्वलनलोभस्य बन्धका बोध्याः । हेतुरत्र पुन-रोघवदनुसन्धेयः ॥५४॥

अथ चतसृषु लोभादिकषायमार्गणासूत्तरप्रकृतिबन्धस्वामित्वं प्रतिपादयितुमाह

लोहाइचउसु सत्तरगुणवीसावीसएगवीसाण ।
आवरणाईण कमा सव्वे ओघव्व सेसाणं ॥ ५५ ॥

(प्रे०) "**लोहाई**" इत्यादि, लोभलक्षणकषायमार्गणायां वर्तमानाः सकलजीवभेदा ज्ञाना-वरणपञ्चकं चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्कं सातवेदनीयं यशःकीर्तिरुच्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकं चेति सप्तदशप्रकृतीनां बन्धका वर्तन्ते, मायाख्यमार्गणायां वर्तमानाः सर्वे जीवभेदा उपरितनसप्तदशप्रकृतयः संज्वलनलोभमायाऽभिधौ द्वौ कषायौ चेत्येतासां एकोनविंशतिप्रकृतीनां बन्धकाः, मानकषायमार्ग-णाया विद्यमानाः सकलजीवभेदा उपर्युक्तैकोनविंशतिप्रकृतयः संज्वलनमानश्चेति विंशतिप्रकृतीनां बन्धकाः, क्रोधमार्गणायां च स्थिताः सर्वे जीवभेदा उपरितना विंशतिप्रकृतयः संज्वलनक्रोधश्चेति

प्रकृतीनामेकविंशतेर्बन्धका बोद्धव्याः, मार्गणाचरमसमयं यावद् सप्तदशादिप्रकृतीनां बन्धसद्भावात् । "सेसाणं" इत्यादि, उक्तभिन्नानां शेषप्रकृतीनां बन्धका ओघवद्विज्ञेयाः ॥ ५५ ॥

इदानीमकषायप्रभृतिमार्गणासु बन्धस्वामित्वं प्रदर्शयितुमाह

उवसंतखीणमोहसजोगी सायस्स बंधगा णेया ।
अकसाये अहखाये सयोगिणो केवलदुगम्मि ॥ ५६ ॥

(प्रे०) "उवसंत" इत्यादि, उपशान्तमोहक्षीणमोहसयोगिकेवलिनामानस्त्रयो जीवभेदा अकषायमार्गणायां यथाख्यातसंयममार्गणायां च सातवेदनीयस्य बन्धका ज्ञेयाः, केवलज्ञानमार्गणायां केवलदर्शनमार्गणायां च सयोगिकेवलिन एव सातवेदनीयस्य बन्धका वेदयितव्याः, न पुनरयोगिनः, यतो हि सातवेदनीयस्य बन्धोऽत्र योगहेतुको विद्यते, अयोगिनां शैलेश्यवस्थावत्त्वेन योगव्यापाराभावान्न सातवेदनीयस्य बन्धो जायते । तथाऽकषायकेवलद्विकरूपे मार्गणात्रये सिद्धा अपि सातवेदनीयस्य बन्धका न सन्ति ॥ ५६ ॥

साम्प्रतं मत्यादिज्ञानत्रयावधिदर्शनोपशमसम्यक्त्वलक्षणासु पञ्चमार्गणासूत्तरप्रकृतिबन्धस्वामित्वमुपदिदर्शयिषुराह

सायस्स अत्थि सव्वे तिणाणऽवहिउवसमेसु सम्मत्ती ।
दुइआण कसायाणं सेसाणोघव्व णवरि सगाई ॥ ५७ ॥ (गीति)

(प्रे०) "सायस्स" इत्यादि, सातवेदनीयस्य बन्धका मतिज्ञानश्रुतज्ञानावधिज्ञानावधिदर्शनोपशमसम्यक्त्वरूपासु पञ्चसु मार्गणासु स्थिताः समस्तजीवभेदा भवन्ति । "सम्मत्ती" इत्यादि, मार्गणास्वासु वर्तमानोऽविरतसम्यग्दृष्टिजीवभेद एवाऽप्रत्याख्यानावरणक्रोधादिचतुष्कस्य बन्धकः, नापरे, तद्बन्धनिबन्धनभूततदुदयाभावात् । "सेसाणं" इत्यादि, एतद्व्यतिरिक्तानां शेषप्रकृतीनां बन्धका एतन्मार्गणास्वोघवदवसातव्याः । तत्राऽपि चतुर्थजीवभेदमादौ कृत्वा बोध्याः, नाद्यभेदत्रयमाश्रित्य, मार्गणास्वासु तस्यावर्तमानत्वादित्येतद् 'णवरि' इत्यादिना दर्शयति, तच्च सुगमम् । अत्राऽप्युपशमसम्यक्त्वमार्गणायां जिननाम्नो बन्धका मनुष्या देवाश्चैव, न तु नारका, इति ॥ ५७ ॥

अथ मनःपर्यवज्ञानमार्गणायामुत्तरप्रकृतिबन्धस्वामित्वमभिधातुकाम आह—

मणणाणम्मि पमत्ता छअसायाईण अत्थि सायस्स ।
सव्वे अवसेसाण ओघव्व परं पमत्ताई ॥ ५८ ॥

(प्रे०) "मणणाणम्मि" इत्यादि, मनःपर्यवज्ञानमार्गणायां प्रमत्तयतयो असातवेदनीयशोकमोहनीयाऽरतिमोहनीयाऽस्थिरनामा-ऽशुभनामाऽयशःकीर्तिनामलक्षणानां षण्णां प्रकृतीनां बन्धकाः सन्ति, नान्ये, तेषु तद्बन्धयोग्यपरिणामाभावात् । "सायस्स" इत्यादि, मार्गणायामस्यां सातवे-

दनीयस्य बन्धकाः सर्वे प्रमत्तयतिप्रभृतयो जीवभेदा विद्यन्ते । "अवसेसाणं" इत्यादि, ज्ञानावरणीयादिशेषप्रकृतीनां बन्धकाः प्रमत्तसंयतजीवभेदमादौ कृत्वा मार्गणायामस्यामोघवत्प्रत्येतव्याः ॥ ५८ ॥

इदानीमज्ञानत्रयमार्गणासूत्तरप्रकृतिबन्धस्वामित्वमाह

तीसु अण्णाणेसु पन्नरसण्ह णपुमाइगाणऽत्थि ।
मिच्छादिट्ठी सव्वे सेसाण अट्ठणवतीए ॥ ५९ ॥

(प्रे०) "तीसु" इत्यादि, मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानाख्यासु तिसृषु मार्गणासु "णपुम मिच्छ हुंड छेवट्ठं थावरायवेगिंदी । विगलाणि य सुहुमतिग तह णिरयदुग" इति संग्रहगाथाद्वयवेषु प्रतिपादितानां नपुंसकवेदादिपञ्चदशप्रकृतीनां बन्धका मिथ्यादृष्टयः सन्ति, नान्ये, मिथ्यात्वोदयाभावात् । "सव्वे" इत्यादि, उक्तविशेषप्रकृतीनामष्टनवतेर्बन्धका एतन्मार्गणास्थाः सर्वे जीवभेदा ज्ञेयाः, मिथ्यादृष्टिसास्वादना इत्यर्थः । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः–ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणनवकं वेदनीयद्विकं मिथ्यात्वमोहनीयनपुंसकवेदवर्जशेषाश्चतुर्विंशतिर्मोहनीयप्रकृतयो नरकगतिवर्जशेषगतित्रयं पञ्चेन्द्रियजातिराहारकशरीरवर्जशरीरचतुष्कमाहारकाङ्गोपाङ्गवर्जाङ्गोपाङ्गद्वयं प्रथमादिसंहननपञ्चकं प्रथमादिसंस्थानपञ्चकं वर्णचतुष्कं नरकानुपूर्वीवर्जानुपूर्वीत्रयं खगतिद्वयं त्रसदशकमस्थिरषट्कमातपजिननामवर्जप्रत्येकषट्कं गोत्रद्वयमन्तरायपञ्चकं चेति ॥ ५९ ॥

अथ संयमौघमार्गणायामुत्तरप्रकृतिबन्धस्वामित्वं प्ररूपयिषुराह

छण्ह असायाईण विण्णेया संयमे पमत्तजई ।
ओघव्व जाणियव्वा सेसाण पर पमत्ताई ॥ ६० ॥

(प्रे०) "छण्ह" इत्यादि, असातवेदनीयशोकमोहनीयाऽरतिमोहनीयाऽस्थिरनामाशुभनामाऽयशःकीर्तिनामरूपस्य प्रकृतिषट्कस्य बन्धकः संयमौघमार्गणायां प्रमत्तयतिरेव भवति, नापरे पुनरप्रमत्तादयः, यतो हि ते तत्प्रायोग्यपरिणामाभाववन्तः सन्ति । "ओघव्व" इत्यादि मार्गणायामेतस्यां शेषप्रकृतीनां बन्धकाः प्रमत्तसंयतजीवभेदमादौ कृत्वा ओघवद् वेदितव्याः ॥ ६० ॥

अथ सामायिकच्छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणाद्वये उत्तरप्रकृतिबन्धस्वामित्वमुपदर्शयति ।

सामाइअछेएसुं आवरणाईण बंधगा सव्वे ।
अट्ठारसण्ह णेया छअसायाईण उ पमत्ता ॥ ६१ ॥

(प्रे०) "सामाइअ" इत्यादि, सामायिकच्छेदोपस्थापनीयसंयमाख्ययोर्मार्गणयोः स्थिताः प्रमत्तादयः समस्तजीवभेदा अष्टादशानां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसातवेदनीयसंज्वलनलोभयशःकीर्तिनामोच्चैर्गोत्रान्तरायपञ्चकरूपाणां प्रकृतीनां बन्धका विद्यन्ते । "छअसायाईण" इत्यादि, असातवेदनीयप्रभृतीनां षण्णां प्रकृतीनां बन्धका अत्र प्रमत्तयतयो बोद्धव्याः, नाप्रमत्तादयः ॥ ६१ ॥

सामायिकच्छेदोपस्थापनीयमार्गणाद्वये शेषप्रकृतीनां बन्धस्वामित्वं प्रतिपादयन् परिहारसंयममार्गणायामपि तत्प्रतिपादयितुमाह

सेसाण सजमव्व य परिहारे बंधगा पमत्तजई ।
छण्ह असायाईण सेसाण होन्ति सव्वेवि ॥ ६२ ॥

(प्रे०) "सेसाण" इत्यादि, सामायिकच्छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणाद्वये शेषप्रकृतीनां बन्धकाः संयममार्गणावज्ज्ञातव्याः । ते च तत एवाऽवधार्याः । परमत्राऽयं विशेषः संयमौघमार्गणायां यथा शेषप्रकृतीनामबन्धकाः प्राप्यन्ते तथैव मार्गणाद्वयेऽप्यस्मिन् ते प्राप्यन्ते, परं तेऽत्रानिवृत्तिबादरसम्परायगुणस्थानपर्यवसाना एव ग्राह्याः, अग्रे मार्गणाद्वयस्याऽस्य विच्छेदात् । "परिहारे" इत्यादि परिहारसंयममार्गणायां षण्णामसातवेदनीयादिप्रकृतीनां बन्धकाः प्रमत्तयतयो भवन्ति, न पुनः शेषाः । "सेसाणं" इत्यादि शेषप्रकृतीनां बन्धका अत्र प्रमत्ताऽप्रमत्तयतयो भवन्ति । केवलमाहारकद्विकस्याऽप्रमत्तसंयता एव इत्यपि बोध्यम् ॥६२॥

साम्प्रतमसंयममार्गणायां तत्समत्वेन चाशुभलेश्यात्रये च बन्धस्वामित्वं प्ररूपयति

अजयासुहलेसासुं थीणद्धितिगाइअउणचत्ताए ।
ओघव्व हुन्ति सम्मा जिणस्स सव्वेवि सेसाणं ॥ ६३ ॥

(प्रे०) "अजय" इत्यादि असंयममार्गणायां कृष्णनीलकापोतलेश्यालक्षणासु मार्गणासु च "थीणद्धितिगाणित्थी मज्झिमसंघयणआगई णीअं । दुहगतिगं अपसत्था खगई तिरियदुगमुज्जोओ ॥णपुम मिच्छं हुंड छेवट्ठं थावरायवेगिंदी । विगलाणि य सुहुमतिगं तह णिरयदुग" इति गाथाशकलेषूक्तानां स्त्यानर्द्धित्रिकादीनामेकोनचत्वारिंशत्प्रकृतीनां बन्धका ओघवदधिगम्याः, तदेवम् नपुंसकवेदादीनां पञ्चदशप्रकृतीनां बन्धका मिथ्यादृष्टयः, स्त्यानर्द्धित्रिकादीनां चतुर्विंशतिप्रकृतीनां बन्धका मिथ्यादृष्टिसास्वादनाश्च । 'सम्मा' इत्यादि, जिननाम्नो बन्धका अविरतसम्यग्दृश एव विज्ञेयाः, जिननाम्नो बन्धस्य सम्यक्त्वप्रत्ययिकत्वात् , देशविरतादीनां प्रस्तुतमार्गणासु विरहाच्च । "सव्वेवि" इत्यादि शेषप्रकृतीनां बन्धकाः प्रकृतमार्गणासु वर्तमानाः सर्वे जीवभेदा विज्ञेयाः, ताश्चेमाः—ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणषट्कं वेदनीयद्विकमनन्तानुबन्धिचतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयस्त्रीवेदनपुंसकवेदवर्जा एकोनविंशतिर्मोहनीयप्रकृतयो देवमनुष्यगतिद्वयं पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिकवैक्रियतैजसकार्मणशरीरचतुष्कमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गे वज्रर्षभनाराचसंहननं समचतुरस्रसंस्थानं वर्णचतुष्कं देवमनुष्यानुपूर्व्यौ शुभखगतिः त्रसदशकमस्थिराशुभायशःकीर्तिनामान्यातपोद्योतजिनवर्जप्रत्येकप्रकृतिपञ्चकमुच्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकं चेति चतुस्सप्ततिः शेषप्रकृतयः ॥ ६३ ॥

इदानीं तेजःपद्मलेश्यामार्गणाद्वये उत्तरप्रकृतिबन्धस्वामित्वं प्रतिपादयन्नाह

तेऊए पउमाए कमसो पण्णासससत्तरत्ताणं ।
ओघव्व जाणियव्वा पयडीण असायआईणं ॥ ६४ ॥

णेया अपमत्तजई आहारदुगस्स अप्पमत्तंता ।
सम्माउ जिणस्स तहा सेसाणं बंधगा सव्वे ॥ ६५ ॥

(प्रे०) "तेऊए" इत्यादि, तेजोलेश्यामार्गणायाम् "असायअरइसोगअथिरदुगअजसं । तइअदुइआ कसाया णरदुगमुरलदुगवइराणि ॥ थीणद्धितिगाणित्थी मज्झिमसंघयणआगिई णीअं । दुहगतिगं अपसत्था खगई तिरियदुगमुज्जोओ ॥ णपुम मिच्छ हुड छेवट्ठ थावरायवेगिंदी ।" इतिसंग्रहगाथावयवेषु प्रोक्तानां पञ्चाशदसातवेदनीयादिप्रकृतीनां बन्धका ओघवत् विज्ञातव्याः । पद्मलेश्यामार्गणायां च स्थावरातपैकेन्द्रियलक्षण प्रकृतित्रयं परिहृत्योपरितनाना सप्तचत्वारिंशदसातवेदनीयादिप्रकृतीनां बन्धका ओघवदवसातव्याः । 'णेया' इत्यादि, प्रस्तुतमार्गणाद्वये वर्तमाना अप्रमत्तसंयता एवाहारकद्विकस्य बन्धस्वामित्वेन प्राप्यन्ते, प्रस्तुतमार्गणायामपूर्वकरणादिगुणस्थानाभावात् , जिननामकर्मणश्चाऽविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकादारभ्याप्रमत्तगुणस्थानकं यावद् वर्तमानाश्चत्वारो जीवभेदा बन्धस्वामितया प्राप्यन्ते । 'तहा' इत्यादि, शेषप्रकृतीनां बन्धका मार्गणाद्वयेऽस्मिन् विद्यमानाः सर्वे जीवभेदा भवन्ति, शेषाश्चेमाः-ज्ञानावरणपञ्चकंदर्शनावरणषट्कंसातवेदनीयंसंज्वलनचतुष्कं शोकारतिवर्जहास्यचतुष्कं पुरुषवेदो देवगतिः पञ्चेन्द्रियजातिर्वैक्रियतैजसकार्मणशरीरत्रयं वैक्रियाङ्गोपाङ्गं समचतुरस्रसंस्थान वर्णचतुष्कं देवानुपूर्वी सुखगतिः त्रसदशकं जिननामातपोद्योतवर्जप्रत्येकपञ्चकमुच्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकं चेति पञ्चपञ्चाशत्प्रकृतयः ॥ ६४-६५ ॥

एतर्हि सम्यक्त्वौघक्षायिकसम्यक्त्वमार्गणयोरुत्तरप्रकृतिबन्धस्वामित्वमाह--

दुइअकसायाईण णवण्ह सम्मखइएसु सम्मत्ती ।
ओघव्व जाणियव्वा सेसाण णवरि सम्माई ॥ ६६ ॥

(प्रे०) "दुइअ" इत्यादि. सम्यक्त्वौघक्षायिकसम्यक्त्वाख्ययोर्मार्गणयोः "दुइआ कसाया णरदुगमुरलदुगवइराणि" इतिसंग्रहगाथावयवेषूक्तानामप्रत्याख्यानावरणचतुष्कादीनां नवानां प्रकृतीनां बन्धका अविरतसम्यग्दृष्टयो भवन्ति, नापरे देशविरतप्रभृतयः, यतो हि ते देवप्रायोग्या एव प्रकृतीर्बध्नन्ति, तथाऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कोदयाभावेनाप्रत्याख्यानावरणचतुष्कं ते न बध्नन्ति, अत्राऽपि मनुष्यपञ्चकस्य तु देवनारका एव बन्धका बोध्याः, न तिर्यग्मनुष्याः, तेषां देवप्रायोग्यप्रकृतीनामेव बन्धकत्वात् । "ओघव्व 'इत्यादि उक्तनवप्रकृत्यतिरिक्ताना शेषप्रकृतीनां ज्ञानावरणीयप्रभृतीनां षट्षष्टेर्बन्धका ओघवत् , नवरमत्र सम्यग्दृष्टिजीवभेदमादौ कृत्वा बन्धका ज्ञेयाः, अबन्धकाः पुनरोघवद् यथासंभवं ज्ञातव्याः ॥ ६६ ॥

अधुना क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायामुत्तरप्रकृतिबन्धस्वामित्वमभिधातुमना आह

छण्ह असायाईण विण्णेया वेअगे पमत्तता ।
दुइअकसायाईण णवण्ह होअन्ति सम्मत्ती ॥ ६७ ॥

चउतइअकसायाणं सम्मादिट्ठी य देसविरई य ।
अपमत्तासंयमी खलु आहारदुगस्स बोद्धव्वा ॥ ६८ ॥

(प्रे०) "छ्उण" इत्यादि, क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां 'असायअरइसोगअथिरदुगअजसं' इतिसंग्रहगाथावयवेषूक्तानामसातवेदनीयादीनां षण्णां प्रकृतीनां बन्धकाश्चतुर्थपञ्चमषष्ठगुणस्थानस्थायिनो जीवभेदा भवन्ति, न पुनरन्येऽप्रमत्तसंयमिनः, तद्बन्धप्रायोग्यपरिणामाभावात्तेषाम् । "दुइअ" इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कमनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननरूपाणां नवानां प्रकृतीनां बन्धका अविरतसम्यग्दृष्टय एव भवन्ति, नान्ये देशविरतप्रमुखाः, देवगतिप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वात्तेषाम् ,अप्रत्याख्यानावरणोदयाभावाच्च । अत्र मार्गणायां मनुष्यद्विकादिप्रकृतिपञ्चकस्य बन्धका देवनारका एवावसातव्याः, न तु तिर्यग्मनुष्याः, यतो हि ते देवद्विकादिप्रकृतीर्बध्नन्ति । "चउतइय" इत्यादि, प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य बन्धका अविरतसम्यग्दृग्देशविरतजीवाः सन्ति, नेतरे प्रमत्तादयः, प्रत्याख्यानावरणोदयाभावात् । "अपमत्तसयमी" इत्यादि अप्रमत्तसंयमिन एवाहारकद्विकस्य बन्धका बोद्धव्याः, नापरे सम्यग्दृष्टिप्रभृतयः,अप्रमत्तसंयमस्य तेषु विरहात् ॥ ६७-६८ ॥

साम्प्रतं वेदकसम्यक्त्वमार्गणायां शेषाणां षट्पञ्चाशत्प्रकृतीनां बन्धस्वामित्वमुक्तातिरिक्तशेषमार्गणासु बन्धप्रायोग्यसर्वासामुत्तरप्रकृतीनां बन्धस्वामित्वं च निरूपयितुमना आह–

सव्वेऽत्थि बंधगा खलु छप्पण्णासाअ सेसपयडीण ।
सेसासु सव्वेसिं सप्पाउग्गाण सव्वेऽत्थि ॥ ६९ ॥

(प्रे०) "सव्वे" इत्यादि, वेदकसम्यक्त्वमार्गणायां वर्तमानाः सर्वे जीवभेदा अभिहितव्यतिरिक्तानां शेषषट्पञ्चाशत्प्रकृतीनां बन्धकाः सन्ति, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः–ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणषट्कं सातवेदनीयं संज्वलनचतुष्कं हास्यरतिभयजुगुप्साः पुरुषवेदो देवगतिः पञ्चेन्द्रियजाति वैक्रियतैजसकार्मणशरीरत्रयं वैक्रियाङ्गोपाङ्गं समचतुरस्रसंस्थानं वर्णचतुष्कं देवानुपूर्वी सुखगतित्रसदशकमातपोद्योतवर्जप्रत्येकषटकमुच्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकञ्चेति । "सेसासु" इत्यादि उक्तभिन्नासु त्रिसप्ततिशेषमार्गणासु स्थिताः सर्वे जीवाः सर्वासां स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धका भवन्ति, एकस्यैव स्वप्रायोग्यगुणस्थानकस्यात्रत्येषु जीवेषु भावात् । ताश्चैताः शेषमार्गणाः–अपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियापर्याप्तमनुष्यपञ्चानुत्तररूपाः सप्तगतिमार्गणाः, पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियवर्जसप्तदशेन्द्रियमार्गणाः, त्रसौघपर्याप्तत्रसवर्जं चत्वारिंशत्कायमार्गणाः, आहारकतन्मिश्रमार्गणे, देशविरतसूक्ष्मसम्परायमिथ्यात्वमिश्रसास्वादनाभव्यासंज्ञिमार्गणाश्चेति । शेषमार्गणासु स्वप्रायोग्यगुणस्थानकं दर्श्यते--पञ्चानुत्तरमार्गणासु चतुर्थम् , आहारकाहारकमिश्रमार्गणयोः षष्ठम् , देशविरतमार्गणायां पञ्चमम् , सूक्ष्मसम्परायसंयममार्गणायां दशमम् , मिश्रसम्यक्त्वमार्गणायां तृतीयम् , सास्वादनमार्गणायां द्वितीयम् , एतद्व्यतिरिक्तशेषद्वाषष्टिमार्गणासु तु प्रथममेव गुणस्थानकं वर्तते ॥६९॥

अथ गत्यादिमार्गणास्वायुष्कर्मणो बन्धस्वामित्वमभिदधन्नादौ पञ्चेन्द्रियौघादिमार्गणासु निरूपयति

दुपणिंदियतसपणमणवयकायतिवेअचउकसायेसु ।
चक्खुअचक्खूसु, तहा भविये सण्णिम्मि आहारे ॥ ७० ॥
आऊण चउण्ह तहा तिण्हं आऊण तेउपउमासुं ।
सुक्काए आऊणं दोण्ह ओघव्व विण्णेया ॥ ७१ ॥

(प्रे०) "दुपणिंदिय" इत्यादि, पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रिय-त्रसौघपर्याप्तत्रसमनःसामान्यसत्यमनोऽसत्यमनःसत्यासत्यमनोऽसत्यामृषामनोयोगवचनौघसत्यवचनाऽसत्यवचनसत्यासत्यवचनाऽसत्यामृषावचनयोगकाययोगौघस्त्रीवेदपुरुषवेदनपुंसकवेदक्रोधमानमायालोभचक्षुरचक्षुर्भव्यसंज्ञ्याहारकलक्षणासु सप्तविंशतिमार्गणासु नरकतिर्यग्मनुजामरायुषां बन्धका ओघवदवसेयाः, तद्यथाः-नरकायुष्कस्य मिथ्यात्वगुणस्थानस्थाः, मिथ्यात्वसास्वादनगुणस्थानस्थाः तिर्यगायुष्कस्य, मिश्रगुणस्थानकवर्जप्रथमादिचतुर्थगुणस्थानगता मनुष्यायुष्कस्य, देवायुष्कस्य च तृतीयगुणस्थानवर्जप्रथमादिसप्तमान्तगुणस्थानस्थायिनो बन्धका भवन्ति । "तहा तिण्हं" इत्यादि, तथा तेजोलेश्यापद्मलेश्यालक्षणे मार्गणाद्वये नरकायुर्वर्जितायुष्कत्रिकस्य बन्धका ओघवद् विज्ञेया, तद्यथा-तिर्यगायुषो बन्धका मिथ्यात्वसास्वादनगुणस्थानस्थाः, मनुष्यायुष्कस्य बन्धका मिश्रगुणस्थानवर्जप्रथमद्वितीयतुर्यगुणस्थानस्थाः, देवायुष्कस्य च तृतीयगुणस्थानवर्जप्रथमादिसप्तमान्तगुणस्थानवर्तिनो जीवभेदा बन्धका बोद्धव्याः । तत्रापीदं बोध्यम्-तेजःपद्मलेश्यावर्तिनस्तिर्यग्नराः सुरायुष्कस्यैव बन्धका भवन्ति, देवप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वादेषाम्, तथा लेश्याद्वयेऽस्मिन् वर्तमानाः सुरा एव तिर्यग्मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वेन तिर्यग्मनुष्यायुष्कयोर्बन्धस्वामिनो भवन्ति, नान्ये । नरकायुः कृष्णाद्यशुभलेश्याप्रत्ययिकत्वेन नैतन्मार्गणागतैरसुमद्भिर्बध्यते, अत एव मार्गणयोरनयोस्तद्बन्धस्वामित्ववर्जनं कृतम् । "सुक्काए" इत्यादि. शुक्ललेश्यामार्गणायां सुरनरायुष्कयोर्बन्धका ओघवज्ज्ञेयाः, त एवम्-मनुष्यायुष्कस्य मिश्रगुणस्थानमृते प्रथमादिचतुर्थगुणस्थानवर्तिनो जीवभेदाः बन्धकाः, ते च देवा एव, मिश्रगुणस्थानकं च विना प्रथमान्तादिसप्तमान्तगुणस्थानस्थायिनो जीवभेदाः सुरायुष्कस्य बन्धका भवन्ति, ते च मनुष्या एव, अत्र तिरश्चामनिर्देशहेतुस्तु मूलप्रकृतिबन्धवृत्तौ दर्शितोऽतस्ततोऽवधार्यः॥७०-७१॥

अथ नरकौघादिमार्गणासु प्रकृतमाह--

णिरयपढमाइछणिरयदेवसहस्सारअंतविउवेसु ।
ओघव्व बंधगा खलु तिरियणराऊण विण्णेया ॥ ७२ ॥

(प्रे०) "णिरय" इत्यादि, नरकौघरत्नप्रभाशर्कराप्रभावालुकाप्रभापङ्कप्रभाधूमप्रभातमःप्रभादेवौघभवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कसौधर्मेशानसनत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलान्तकशुक्रसहस्रारवैक्रियकाययोगरूपासु विंशतिमार्गणासु तिर्यग्मनुष्यायुष्कयोर्बन्धका ओघवद् वेदायतव्याः,तदित्थम्-तिर्यगायुष्कस्य

मिथ्यात्वसास्वादनगुणस्थानगतौ जीवभेदौ बन्धकौ स्तः, मिथ्यात्वसास्वादनाविरतिसम्यग्दृष्टिगुणस्थानगताश्च जीवभेदा मनुष्यायुष्कस्य बन्धका भवन्ति ॥ ७२ ॥

अथ सप्तमनरकमार्गणायामौदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां च प्रकृतमुच्यते—

तिरियाउगस्स णेया मिच्छत्ती बंधगा तमतमाए।
ओरालमीसजोगे, तिरियणराऊण मिच्छत्ती ॥ ७३ ॥

(प्रे०) "तिरियाउगस्स" इत्यादि, तमस्तमानामसप्तमनरकमार्गणायां तिर्यगायुषो बन्धको मिथ्यादृष्टिजीवभेद एव भवति, नान्ये सास्वादनप्रभृतयो जीवभेदाः, इह तद्बन्धस्य मिथ्यात्वप्रत्ययिकत्वात् । "ओराल" इत्यादि, औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां तिर्यग्नरायुषोर्बन्धका मिथ्यादृश एव ज्ञातव्याः, नापरे, यतो मार्गणायामस्यां लब्ध्यपर्याप्तजीवा एवायुर्बध्नन्ति, तेषां चाद्यमेव गुणस्थानं भवति ॥ ७३ ॥

अथ तिर्यगोघादिमार्गणासु तदाह

तिरिये पणिदियतिरियतिगम्मि णिरयाउगस्स मिच्छत्ती।
तिरियमणुस्साऊणं णेया मिच्छत्तिसासाणा ॥ ७४ ॥
देवाउगस्स णेया मीसूणा एवमेव बोद्धव्वा।
तिणरुरलेसुं णवरं हुन्ति सुराउस्स ओघव्व ॥ ७५ ॥

(प्रे०) "तिरिये" इत्यादि, तिर्यगोघतिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिमतीलक्षणासु चतुस्तिर्यग्गतिमार्गणासु नरकायुष्कस्य बन्धका मिथ्यादर्शनिन एव बोध्याः, नेतरे सास्वादनप्रमुखाः; तद्बन्धस्य मिथ्यात्वप्रत्ययिकत्वेन सास्वादनादिगुणस्थानकेषु तस्य विरहात् । "तिरिय" इत्यादि, तिर्यग्मनुष्यायुषोर्मिथ्यादृष्टिसास्वादनौ जीवभेदौ बन्धकौ भवतः, नान्ये मिश्रदृष्टिप्रभृतयः, यतो मिश्रगुणस्थानके जीवा आयुर्बन्धमेव न कुर्वन्ति, तत्प्रायोग्याध्यवसायाभावात् , तथाऽत्र चतुर्थादिगुणस्थानकेषु देवायुष एव बन्धोऽस्ति । "देवाउगस्स" इत्यादि, देवायुष्कस्य मिश्रदृष्टिजीवभेदमृते सर्वे जीवभेदा बन्धका विज्ञेयाः, मिश्रगुणस्थानक आयुर्मात्रस्य बन्धाभावेनायुर्बन्धस्वामित्वविवक्षायां मिश्रदृष्टिजीवभेदवर्जनं सर्वत्र ज्ञातव्यम् । "एवमेव" इत्यादि, मनुष्यौघपर्याप्तमनुष्यमानुष्यौदारिककाययोगरूपेषु चतुर्षु मार्गणास्थानेष्वायुष्कर्मणां बन्धकास्तिर्यक्पञ्चेन्द्रियमार्गणावद् विज्ञातव्याः । ननु सर्वेषामायुष्कर्मणामत्र बन्धका भवद्भिस्तिर्यक्पञ्चेन्द्रियमार्गणावदतिदिष्टाः, तदनुसारेण देवायुष्कस्य बन्धका मिश्रदृष्टिजीवभेदमृते मिथ्यादृष्टिप्रभृतयश्चत्वारो जीवभेदा एव प्राप्यन्ते नाधिकाः,परमत्रत्यमार्गणाचतुष्के प्रमत्ताऽप्रमत्तजीवभेदावपि देवायुर्बन्धकत्वेनाऽधिकतया प्राप्येते, अतो भवतामेतादृगतिदेशोऽव्याप्तिग्रस्त इत्याशङ्कामपहर्तुं 'णवर' मित्यादिना विशेषमुपदर्शयति—'णवरं' इत्यादि, देवायुष्कस्य बन्धका ओघ-

वर्दवसातव्याः, एवमोघातिदेशानुसारेण देवायुर्बन्धकत्वेन प्रमत्ताऽप्रमत्तसंयतजीवभेदावपि संगृहीतौ भवतः, ओघे मिश्रदृष्टिवर्जमिथ्यादृष्टिप्रमुखाप्रमत्तसंयतपर्यन्तजीवभेदानां तद्बन्धकत्वेन प्रतिपादितत्वात् । शेषजीवभेदाः पुनरबन्धका विज्ञातव्याः ॥ ७४–७५ ॥

अथाऽऽनतादिमार्गणासु प्रकृतमाह

तेरससु णराउस्स य मीसूणा बंधगाणयाईसुं ।
अण्णाणतिगे मिच्छो णिरयाउस्स इयराण सव्वेऽत्थि ॥ ७६ ॥(गीति)

(प्रे०) "तेरससु" इत्यादि, आनतप्राणतारणाच्युतनवग्रैवेयकलक्षणासु त्रयोदशमार्गणासु मनुष्यायुष्कस्य बन्धका मिश्रदृष्टिजीवभेदं विना शेषत्रिजीवभेदा विज्ञेयाः,आसु मार्गणासु वर्तमानानां जीवानां मनुष्येष्वेवोत्पादेन केवलं मनुष्यायुष्कस्यैव बध्यमानत्वात् । मिश्रदृष्टिजीवभेदवर्जनं त्वत्रायुर्बन्धाभावात् । "अण्णाणतिगे" इत्यादि, मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानमार्गणात्रये नरकायुष्कस्य बन्धको मिथ्यादृष्टिजीवभेदोऽस्ति, नरकायुष्कबन्धस्य मिथ्यात्वप्रत्ययिकत्वात् । "इयराण" इत्यादि, देवमनुष्यतिर्यगायुषां बन्धकाः प्रकृतमार्गणागताः सर्वे जीवभेदा बोद्धव्याः, मिथ्यादृष्टिसास्वादनौ जीवभेदावित्यर्थः, मार्गणास्वासु प्रथमद्वितीयगुणस्थानकयोरेव सत्त्वात् ,तत्र च त्रयाणामप्यायुषां बन्धसद्भावात् ॥ ७६ ॥

इदानीं मतिज्ञानावरणादिमार्गणास्वायुषो बन्धस्वामित्वमाह——

णाणतिगे ओहिम्मि य सम्मखइअवेअगेसु सम्मत्ती ।
मणुसाउगस्स णेया देवाउस्स अपमत्तंता ॥ ७७ ॥

(प्रे०) "णाणतिगे" इत्यादि, मतिज्ञानश्रुतज्ञानावधिज्ञानावधिदर्शनसम्यक्त्वौघक्षायिकसम्यक्त्वक्षयोपशमसम्यक्त्वरूपासु सप्तसु मार्गणासु मनुष्यायुष्कस्य बन्धकोऽविरतसम्यग्दृष्टिजीवभेदोऽस्ति, न तु देशविरतादयः, तेषां देवायुष्कस्यैव बन्धविधायित्वात् । व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिरिति न्यायेनाऽत्राऽयं विशेषोऽवसातव्यः, मार्गणास्वासु तूर्यगुणस्थानस्थिता देवनारका एव मनुष्यायुष्कस्य बन्धकाः, नान्ये मनुष्यादयः, तेषां देवायुष एव बन्धविधायित्वात् । "देवाउस्स" इत्यादि, देवायुष्कस्य सम्यग्दृष्टिप्रमुखाऽप्रमत्तसंयतपर्यन्तजीवभेदा बन्धका बोद्धव्याः, शेषाः पुनरबन्धकाः ॥ ७७ ॥

इदानीं मनःपर्यवादिमार्गणासु तथा शेषमार्गणासु चाऽऽयुषो बन्धस्वामित्वमुच्यते

देवाउगस्स णेया मणणाणे संयमम्मि सामइए ।
छेओवट्ठावणिए पमत्तजइअप्पमत्तजई ॥ ७८ ॥
अजयासुहलेसासु अत्थि णरसुराउगाण मीसूणा ।
दोण्हीयव्वियरासु ससजोग्गाऊण सव्वेऽत्थि ॥ ७९ ॥

(प्रे०) "देवाउअस्स" इत्यादि, मनःपर्यवज्ञानसंयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणासु सुरायुष्कस्य बन्धकौ प्रमत्ताऽप्रमत्तसंयतजीवभेदौ भवतः, नाऽपरेऽपूर्वकरणप्रभृतयः, अप्रमत्तगुणस्थान एव तद्बन्धविच्छेदात् । "अजया" इत्यादि, अविरतमार्गणायां कृष्णनीलकापोतलेश्यारूपासु तिसृषु कुलेश्यामार्गणासु च मनुष्यदेवायुष्कयोर्बन्धका मिश्रदृष्टिवर्जाःशेषा मिथ्यादृष्टिप्रमुखाः सर्वे जीवभेदा ज्ञातव्याः । "दोण्होघव्व" तिर्यग्नरकायुष्कयोर्बन्धका ओघवदवसेयाः, तद्यथा-तिर्यगायुष्कस्य मिथ्यादृष्टिसास्वादनौ जीवभेदौ, नरकायुष्कस्य च मिथ्यादृष्टिजीवभेद इति । हेतुरत्रौघतोऽनुमन्धेयः । "इयरासु" मित्यादि, उक्तव्यतिरिक्तासु शेषमार्गणासु स्वप्रायोग्यायुष्कस्य बन्धकास्तद्गतसर्वजीवभेदा भवन्ति, ताश्चेमाः शेषमार्गणाः अपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रिया-ऽपर्याप्तमनुष्यमार्गणाद्वयम् , पञ्चानुत्तरमार्गणाः, पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियवर्जाःशेषाः सप्तदशेन्द्रियमार्गणाः, त्रसौघपर्याप्तत्रसवर्जाःशेषाश्चत्वारिंशत्कायमार्गणाः, आहारकाहारकमिश्रकाययोगमार्गणाद्वयम् , परिहारविशुद्धिदेशविरतिसंयममार्गणे, सास्वादनसम्यक्त्वमिथ्यात्वमार्गणे, अभव्यमार्गणा; असंज्ञिमार्गणा चेति द्वासप्ततिः ॥ ७८-७९ ॥

भणितमुत्तरप्रकृतीनां बन्धस्वामित्वम् , तदवसरे च ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धका अपि "सव्वह खलु धुवबंधीण अबंधगा सेसा" इत्यनेन प्रतिपादिताः, । एतर्हि पुनरध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धका आदावोघतो भण्यन्ते-

वज्जिअ सजोगिअंता, सायस्स अबंधगाऽपमत्ताई ।
इयरारईणं वज्जिअ अपमत्तअपुव्वकरणा य ॥ ८० ॥
पुरिसस्स य मीसाई विणाऽणियट्टिबहुसखभागंता ।
सुरविउव्वदुगाण विणा देसाइअपुव्वसखभागंता ॥ ८१ ॥ (गीति)
वज्जिअ सासाणाई अपुव्वकरणबहुसंखभागंता ।
णेया पणिंदियपरघाऊसासतसचउगाणं ॥ ८२ ॥
सुहविहगइखगइसुहगतिगाण मिस्साइणा अपुव्वस्स ।
बहुसखसंता विण अपमत्ताई थिरसुहाणं ॥ ८३ ॥
वज्जिअ अपमत्ताई सुहमंता खलु जसस्स उच्चस्स ।
मीसाई सेसाण गुणवण्णाए अबंधगा सव्वे ॥ ८४ ॥(गीतिः)

(प्रे०) "वज्जिअ" इत्यादि, सातवेदनीयस्याऽबन्धका अप्रमत्तादिसयोगिपर्यन्तान् जीवभेदान् वर्जयित्वा शेषा जीवभेदा ज्ञातव्याः । इदमुक्तं भवति-अध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धकोऽत्र द्विधा प्राप्यते, (१) बन्धप्रायोग्यगुणस्थानके विवक्षिताऽध्रुवबन्धिप्रकृतेरबन्धकस्तु तत्प्रतिपक्षप्रकृतिबन्धकतयाऽथवा प्रतिपक्षसहभाविप्रकृतिबन्धकतया प्राप्यते (२) ऊर्ध्वगुणस्थानकेषु तु विवक्षितप्रकृतेरबन्धकस्तद्बन्धविच्छेदात्प्राप्यते । एवमत्र सातवेदनीयस्याऽबन्धका अप्रमत्तादिसयोगिपर्यन्तजीवभेदान् विहाय शेषा मिथ्यादृष्ट्यादिप्रमत्तसंयतपर्यन्तजीवभेदा अयोगिनः सिद्धाश्च प्राप्यन्ते, तत्र

मिथ्यादृष्टिप्रमुखाः षड्जीवभेदास्तत्प्रतिपक्षाऽसातवेदनीयबन्धकाः, तथाऽयोगिनः सिद्धास्तु सर्वथैव वेदनीयकर्मबन्धविच्छेदात्सातवेदनीयस्याबन्धका विज्ञेयाः । अप्रमत्तादिसयोगिपर्यन्तजीवभेदवर्जनं त्वत्र सातवेदनीयस्यैव सततं तैर्बध्यमानत्वात् । "हस्सरईण" मित्यादि, हास्यरतिमोहनीयद्वयस्याऽबन्धका अप्रमत्तसयतगुणस्थानाऽपूर्वकरणगुणस्थानगतजीवभेदौ वर्जयित्वा शेषा जीवभेदा वर्तन्ते, तत्र मिथ्यादृष्टिप्रमुखाः षड्जीवभेदास्तत्प्रतिपक्षशोकाऽरतिप्रकृतिबन्धकास्तदबन्धकतया प्राप्यन्ते, अनिवृत्तिबादरसम्परायप्रमुखा जीवभेदाश्च तद्बन्धविच्छेदात्तदबन्धकतया प्राप्यन्ते । "पुरिसस्स" इत्यादि, मिश्राद्यनिवृत्तिगुणस्थानसंख्याततमबहुभागपर्यन्तगतान् जीवभेदान् वर्जयित्वा शेषाः पुरुषवेदस्याऽबन्धका विज्ञातव्याः, तत्र मिथ्यादृक्सास्वादनौ तद्विपक्षवेदप्रकृतिबन्धकत्वेन तदबन्धकौ स्तः, अनिवृत्तिगुणस्थानशेषसंख्यातभागे वर्तमानाः सूक्ष्मसम्परायादिगुणस्थानगतजीवभेदाश्च तद्बन्धविच्छेदात्तदबन्धकाः, एवं सर्वत्र विपक्षप्रकृतिबन्धप्रयुक्तं तद्बन्धविच्छेदप्रयुक्तं वा तत्तत्प्रकृत्यबन्धकत्वं विज्ञेयम् । "सुरविउवदुगाण" इत्यादि, सुरद्विकवैक्रियद्विकलक्षणस्य प्रकृतिचतुष्कस्याऽबन्धका देशविरतापूर्वकरणगुणस्थानसंख्याततमबहुभागपर्यन्तगतान् जीवभेदान् विहाय शेषाः मिथ्यादृगादिचतुर्जीवभेदाः, अपूर्वकरणशेषसंख्याततमभागगता अनिवृत्तिबादरसम्परायप्रमुखाः षड्जीवभेदाः सिद्धाश्च बोद्धव्याः । "वज्जिअ" इत्यादि पञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकरूपाणां सप्तप्रकृतीनामबन्धकाःसास्वादनाद्यपूर्वकरणगुणस्थानसंख्याततमबहुभागगतान् जीवभेदान् वर्जयित्वा शेषा मिथ्यादृगपूर्वकरणगुणस्थानशेषसंख्याततमभागगता अनिवृत्तिबादरसंपरायादयः षड्जीवभेदाः सिद्धाश्च वर्तन्ते । "सुहखगइ" इत्यादि, समचतुरस्रसंस्थानसुखगतिसुभगत्रिकरूपाणां पञ्चप्रकृतीनामबन्धका मिश्राद्यपूर्वकरणगुणस्थानसंख्याततमबहुभागगतान् जीवभेदान् वर्जयित्वा मिथ्यादृक्सास्वादनौ अपूर्वकरणगुणस्थानशेषसंख्याततमभागगता अनिवृत्तिबादरसम्परायप्रमुखाः षड्जीवभेदाः सिद्धाश्च बोद्धव्याः । 'अपमत्ताई' इत्यादि, स्थिरशुभनाम्नोरबन्धका अप्रमत्तगुणस्थानाऽपूर्वकरणगुणस्थानसङ्ख्याततमबहुभागवर्तिनौ जीवभेदौ वर्जयित्वा शेषाः मिथ्यादृष्टिप्रमुखाः षड्जीवभेदा अपूर्वकरणगुणस्थानशेषसंख्याततमभागगता अनिवृत्तिबादरसम्परायप्रमुखाःषड्जीवभेदाःसिद्धाश्च ज्ञातव्याः । "वज्जिअ" इत्यादि यशःकीर्तिनाम्नोऽबन्धका अप्रमत्तादिसूक्ष्मसम्परायान्तान् जीवभेदान् वर्जयित्वा मिथ्यादृष्टिप्रमुखाः षड्जीवभेदा उपशान्तमोहादयश्चत्वारो जीवभेदाः सिद्धाश्च बोद्धव्याः । "उच्चस्स"इत्यादि,अत्रापि 'वज्जिअ सुहुमता'इति पदद्वयं प्रकरणात्संबन्धनीयम् ,ततश्चायमर्थः— उच्चैर्गोत्रप्रकृतेरबन्धका मिश्रादिसूक्ष्मसम्परायाऽन्तान् जीवभेदान् वर्जयित्वा मिथ्यादृक्सास्वादनौ जीवभेदौ उपशान्तमोहादयश्चत्वारो जीवभेदाः सिद्धाश्चाऽवसातव्याः । "सेसाण" इत्यादि, शेषाणामेकोनपञ्चाशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धका मिथ्यादृक्प्रभृतयस्सर्वेऽपि जीवभेदा वेदयि-

तव्याः; ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः–असातवेदनीयम्, स्त्रीनपुंसकवेदद्वयम्, शोकारती, आयुष्कचतुष्कम्, नरकतिर्यग्मनुष्यगतित्रयम्, एकेन्द्रियादिजातिचतुष्कम्, औदारिकद्विकम्, आहारकद्विकम्, संहननषट्कम्, द्वितीयादिसंस्थानपञ्चकम्, नरकतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीत्रयम्, अशुभखगतिः, स्थावरदशकम्, आतपोद्योतजिननामानि, नीचैर्गोत्रञ्चेति, अत्रापि विपक्षप्रकृत्यादिबन्धप्रयुक्तं तद्बन्धविच्छेदप्रयुक्तं वाऽबन्धकत्वं स्वयं परिभावनीयम् ॥८०-८४॥

साम्प्रतं मार्गणासूत्तरप्रकृत्यबन्धकानाह

सव्वहु अबंधगा खलु सप्पाउग्गाण अधुवबंधीणं ।
आसिज्ज जीवभेआ सप्पाउग्गाऽत्थि ओघव्व ॥ ८५ ॥

(प्रे०) "सव्वहु" इत्यादि, सर्वासु मार्गणासु स्वप्रायोग्याणामध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धकाः स्वप्रायोग्यान् जीवभेदानाश्रित्यौघवद् वर्तन्ते, तत्राऽपि ते यथायोगं बन्धप्रायोग्यगुणस्थानकेषु स्वप्रतिपक्षप्रकृतिबन्धकतया प्रतिपक्षसहकारिप्रकृतिबन्धकतया वा प्राप्यन्ते, तथा ऊर्ध्वगुणस्थानकेषु पुनस्तद्बन्धविच्छेदविधायित्वेन प्राप्यन्ते ॥ ८५ ॥

अथ सर्वासु मार्गणासु स्वप्रायोग्याध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धकानामोघवदतिदेशेन कतिपयासु मार्गणासु कासांचित्प्रकृतीनामबन्धकानां स्वामित्वविषयां समापतन्तीमापत्तिमपाकर्तुं कतिपयाभिर्गाथाभिरपवाद उपदर्श्यते । तत्र प्रथमं नरकादिमार्गणासु तमुपदर्शयन्नाह

परमत्थि ण सव्वणिरयतइआइगअट्ठमंतदेवेसु ।
पंचिंदियुरलदुगपरघाऊसासतसचउगाण ॥ ८६ ॥
ण हवन्ति मीससम्मा णरदुगवइराण चरमणिरयम्मि ।
मिच्छत्तिसासणा णो हवन्ति तिरियदुगणीआण ॥ ८७ ॥

(प्रे०) "परमत्थि" इत्यादि, अष्टौ नरकमार्गणाः सनत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलान्तकशुक्रसहस्राररूपाः षड्देवभेदाश्चेति चतुर्दशमार्गणास्थानेषु पञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकपराघातोच्छ्वासत्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकरूपाणां नवानां प्रकृतीनामबन्धका न वर्तन्ते, प्रकृतीनामासामध्रुवबन्धित्वेऽपि मार्गणाप्रायोग्यध्रुवबन्धित्वात् । 'ण' इत्यादि, मनुष्यद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननरूपस्य प्रकृतित्रयस्य मिश्राविरतसम्यग्दृशौ जीवभेदावबन्धकौ न भवतः, मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वात्तयोः । "चरमणिरयम्मि" इत्यादि, सप्तमनरकमार्गणास्थाने तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतित्रयस्याऽबन्धकौ मिथ्यादृष्टिसास्वादनौ जीवभेदौ न भवतः, तयोस्तिर्यक्प्रायोग्यप्रकृतीनामेव बन्धकत्वात् ॥ ८६-८७ ॥

इदानीमपर्याप्तपञ्चेन्द्रियादिमार्गणास्थानेषु तमाह-

असमत्तपणिंदितिरियमणुयपणिंदियतसेसु सव्वेसु ।
एगिंदियविगलिंदियपणकायेसु य ण उरलस्स ॥ ८८ ॥
सव्वागणिवाऊसु ण तिरिदुगणीआण ... . ।

(प्रे०) "असमत्त" इत्यादि अपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्तमनुष्याऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्तत्रसरूपासु चतुर्मार्गणासु ओघादिभेदभिन्नासु सप्तैकेन्द्रियमार्गणासु द्वीन्द्रियादीनामोघादिभेदभिन्नासु नवसु विकलेन्द्रियमार्गणासु पञ्चपृथ्वीकायादीनामेकोनचत्वारिंशन्मार्गणासु चौदारिकनाम्नोऽबन्धका न भवन्ति, प्रकृतमार्गणाप्रायोग्यध्रुवबन्धित्वात्तस्य। "सव्वा" इत्यादि, सप्ततेजःकायमार्गणासु सप्तवायुकायमार्गणासु च तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतित्रयस्याऽप्यबन्धका न भवन्ति, तस्याऽपि मार्गणाप्रायोग्यध्रुवबन्धित्वात् ॥ ८८ ॥ इदानीं तिर्यग्गोघादिमार्गणासु प्रकृतमाह -

... . .. मीससम्मा य।
सुरविउव्वदुगस्स तिरितिपणिदितिरिणरदुगेसु णो ॥ ८९ ॥

(प्रे०) "मीस" इत्यादि, तिर्यगोघतिर्यक्पञ्चेन्द्रियोघपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिरश्चीरूपासु चतसृषु मार्गणासु मनुष्यौघपर्याप्तमनुष्यमानुषीरूपासु तिसृषु मार्गणास्वौदारिककाययोगे च सुरद्विकवैक्रियद्विकरूपस्य प्रकृतिचतुष्कस्याऽबन्धका मिश्रसम्यग्दृशो न भवतः, मिश्राविरतसम्यग्दृशोनां देवप्रायोग्यप्रकृतीनामेव बन्धकत्वात् ॥ ८९ ॥ साम्प्रतं देवौघादिमार्गणासु प्रस्तुतमाह -

सुरईसाणतविउव्वदुगेसु अत्थि णरजुगलवइराण ।
णिरयव्व णो उरालियपरघाऊसासबायरतिगाण ॥ ९० ॥ (गीति)

(प्रे०) "सुर" इत्यादि; देवौघभवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कसौधर्मेशानवैक्रियकाययोगवैक्रियमिश्रकाययोगरूपास्वष्टसु मार्गणासु मनुष्यद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननप्रकृतित्रयस्याऽबन्धका नरकौघवद् भवन्ति, तद्यथा—मिश्रसम्यग्दृशो जीवभेदौ प्रकृतप्रकृतित्रयस्याऽबन्धकौ न भवतः, हेतुरत्र नरकौघवदेवाऽनुसन्धेयः। 'णो' इत्यादि, औदारिकशरीरपराघातोच्छ्वासबादरपर्याप्तप्रत्येकप्रकृतीनामबन्धका न वर्तन्ते, प्रकृतमार्गणासु ध्रुवबन्धित्वात्तासाम् ॥ ९० ॥ अधुनाऽऽनतादित्रयोदशमार्गणासु प्रकृतमाह—

णरुरलदुगपचिंदियपरघाऊसासतसचउक्काणं ।
तेराणयाइगेसुं ण मीससम्मा ण वइरस्स ॥ ९१ ॥

(प्रे०) "णरुरल" इत्यादि, मनुष्यद्विकौदारिकद्विकपञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकरूपाणामेकादशप्रकृतीनामबन्धका आनतप्राणतारणाच्युतनवग्रैवेयकलक्षणासु त्रयोदशमार्गणासु न भवन्ति, प्रकृतीनामासामध्रुवबन्धित्वेऽपि प्रकृतमार्गणासु निरन्तरबन्धित्वात्। "मीससम्मा" इत्यादि वज्रर्षभनाराचसंहननस्याबन्धकास्तृतीयचतुर्थगुणस्थानस्था न भवन्ति, अत्र तस्य निरन्तरं बध्यमानत्वात् ॥ ९१ ॥ इदानीमनुत्तरमार्गणासु तमाह

पचसु अणुत्तरेसु णो चेव हवन्ति णरदुगस्स तहा ।
ओरालियदुगवइररिसहणारायसघयणणामाण ॥ ९२ ॥

(प्रे०) "पंचसु" इत्यादि, पञ्चानुत्तरसुरमार्गणासु मनुष्यद्विकौदारिकद्विकप्रथमसंहनननाम्नामबन्धका न प्राप्यन्ते, तैर्निरन्तर बध्यमानत्वात्तासामिति। प्रस्तुते चतुर्थगुणस्थानकस्यैव संभवः, ओघे तु चतुर्थगुणस्थानके मनुष्यगत्यादिपञ्चप्रकृतीनामप्यबन्धकतया मनुष्यतिर्यञ्चः प्राप्यन्ते,

प्रस्तुते तु तेषामप्रवेशात्कथितप्रकृतिपञ्चकस्याऽबन्धका न प्राप्यन्ते, अतः "णो चेव" इत्यादिना निषेधः कृतः ॥ ९२ ॥ इदानीमौदारिकमिश्रकाययोगादिमार्गणासु तमभिदधाति

सम्मो उरालमीसे णत्थि सुरविउव्वदुगाण तम्मि तहा।
कम्माणाहारेसु उरालरस ण मिच्छसासाणा ॥ ९३ ॥

(प्रे०) "सम्मो" इत्यादि, औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां सुरद्विकवैक्रियद्विकलक्षणस्य प्रकृतिचतुष्कस्य सम्यग्दृग्जीवभेदोऽबन्धको नास्ति, तस्य देवप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वात् । "तम्मि" इत्यादि, औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां कार्मणकाययोगानाहारकमार्गणयोश्चौदारिकशरीरनाम्नोऽबन्धका मिथ्यादृक्सास्वादनौ जीवभेदौ न भवतः, तयोस्तिर्यक्प्रायोग्यप्रकृतीनां मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतीनां वा बध्यमानत्वात् , ताभिः सहौदारिकशरीरनाम्नो बन्धस्याऽवश्यंभावित्वाच्च ॥९३॥

इदानीं शुभलेश्ययोः स उच्यते

तेऊए हुन्ति ण चिअ परघाऊसासबायरतिगाणं ।
पम्हाए तेसिं तह पणिंदियतसाण वि ण हुन्ति ॥ ९४ ॥

(प्रे०) "तेऊए" इत्यादि, तेजोलेश्यामार्गणायां पराघातोच्छ्वासबादरत्रिकरूपाणां पञ्चप्रकृतीनामबन्धका न भवन्ति, एतन्मार्गणाप्रायोग्यध्रुवबन्धित्वात्तासाम् । "पम्हाए" इत्यादि, पद्मलेश्यामार्गणायां "तेसिं" ति तासां पराघातोच्छ्वासबादरत्रिकप्रकृतीनां 'तह' त्ति तथा पञ्चेन्द्रियजातित्रसनाम्नोश्चाऽबन्धका न भवन्ति, एतन्मार्गणाप्रायोग्यध्रुवबन्धित्वात्तासामिति ॥ ९४ ॥

इदानीं शुक्ललेश्यामार्गणायां प्रकृतमाह--

सुक्काए पंचिदियपरघाऊसासतसचउक्काणं ।
मिच्छादिट्ठीओ अवि होअन्ति अबंधगा णेव ॥ ९५ ॥

(प्रे०) "सुक्काए" शुक्ललेश्यामार्गणायां पञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकरूपाणां सप्तप्रकृतीनामबन्धको मिथ्यादृष्टिजीवभेदो न भवति, मार्गणायामस्यां तेनाऽपि निरन्तरं बध्यमानत्वादिति। अयं भावः--ओघे तु कृष्णाद्यशुभलेश्याकानां तिर्यग्मनुष्याणां तत्प्रतिपक्षप्रकृतीनां बन्धभावेन प्रस्तुतप्रकृतीनामबन्धकतया लाभेऽपि प्रस्तुते तेषामप्रवेशादासामबन्धको मिथ्यादृष्टिरपि नैव भवतीत्यत उक्तं 'मिच्छा'इत्यादिकमिति । अत प्रस्तुत इदमायातम्--आसां सप्तप्रकृतीनामबन्धका मिथ्यादृष्टिप्रभृत्यपूर्वकरणगुणस्थानसंख्यातबहुभागगता जीवभेदा न भवन्ति, मार्गणायामस्यामनवरतं तैर्बध्यमानत्वात् , तदूर्ध्वगुणस्थानगता जीवभेदाः श्रेणौ तासां प्रकृतीनां बन्धविच्छेदादबन्धका अप्योघवदुपलभ्यन्ते । अत्र शेषप्रकृतीनामबन्धका ओघवत्प्राप्यन्ते ।

अथ कथितशेषमार्गणासु स्वप्रायोग्याध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धका यथासंभवं 'सव्वह अबंधगा' इत्यादिना ओघोक्तप्रकारेण ज्ञातव्याः । इति उत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्वामित्वमुक्तम् , तदुक्तौ च समाप्तिमगात् स्वामित्वद्वारमिति ॥ ९५ ॥

॥ इति श्रीप्रेमप्रभाटीकासमलङ्कृते बन्धविधाने उत्तरप्रकृतिबन्धे प्रथमाधिकारे
द्वितीयं स्वामित्वद्वारं समाप्तम् ॥

॥ तृतीयं साद्यादिद्वारम् ॥

यथोद्देशस्तथानिर्देश इतिन्यायात्साम्प्रतं क्रमप्राप्तं तृतीयं साद्यादिद्वारमोघत आदेशतश्चोत्तर-प्रकृतिबन्धे चिन्तयितुकाम आदौ तावद् ध्रुवाध्रुवबन्धिप्रकृतीराह

चउदस पयडी आइमबीआवरणाण सोलस कसाया ।
मिच्छत्तं भयकुच्छा तेअसकुगवण्णचउगाणि ॥ १६ ॥
अगुरुलहू उवघायो णिम्माण पंच अंतराया य ।
सगचत्ता धुवबंधी णेया सेसा अधुवबंधी ॥ १७ ॥

(प्रे०) '**चउदस**' इत्यादि, ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणनवककषायषोडशकमिथ्यात्वमोहनीयभय-जुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणान्तरायपञ्चकलक्षणाः सप्तचत्वारिंशत्प्र-कृतयो ध्रुवबन्धिन्योऽधिगम्याः, आभ्योऽपराः त्रिसप्ततिः प्रकृतयश्चाऽध्रुवबन्धिन्यः । याःप्रकृतयः स्वबन्धविच्छेदस्थानपर्यन्तमनवरतं बध्यन्ते, ता प्रकृतयो ध्रुवबन्धिन्यो ज्ञातव्याः, याश्च स्वबन्ध-विच्छेदस्थानात्पूर्वमपि बन्धविरामयोग्याः, ताः प्रकृतयोऽध्रुवबन्धिन्योऽवसेयाः ॥ १६-१७ ॥

इदानीमोघादेशाभ्यां साद्यादिप्ररूपणा प्रारभ्यते—

बंधोऽत्थि साइआई धुवबंधीण चउव्विहोऽण्णेसि ।
साइअधुवोऽत्थि एव दुअणाणायतअचक्खुमिच्छेसुं ॥ १८ ॥

(प्रे०) '**बंधोऽत्थि**' इत्यादि, ओघतो ज्ञानावरणादिध्रुवबन्धिप्रकृतीनां यः कश्चिज्जीवो यथा-संभवमुपशमश्रेणौ बन्धविच्छेदं विधाय यदाऽधस्तनगुणस्थानेष्ववतरति तदा तासां ध्रुवबन्धिप्रकृ-तीनां बन्धमारभते अतस्तं जीवमपेक्ष्य तद्बन्धस्यादिसंभवात् स बन्धः सादिरुच्यते । यस्य कस्य-चिज्जीवस्यानादिकालतो अद्यावधि ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धो निरन्तरं प्रवर्तमान आसीत् तं जीवम-पेक्ष्य तासां प्रकृतीनां बन्धोऽनादिरुच्यते, तद्बन्धस्यादिविरहात् । अयमनादिबन्धोऽप्राप्तसम्य-क्त्वभव्यजीवापेक्षया ज्ञातव्यः । अभव्यजीवापेक्षया ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धस्याऽऽयत्यामपि बन्ध विच्छेदाभावात् स बन्धो ध्रुव उच्यते । यस्य जीवस्य ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धोऽवश्यमेवाऽऽयत्यां विच्छेदं प्राप्स्यति तस्य तद्बन्धोऽध्रुव उच्यते । स च भव्यजीवापेक्षया विज्ञेयः, यतो भव्यानामा-यत्यामवश्यमेव क्षपकश्रेणिलाभेन तद्बन्धविच्छेदो भवति, अन्यथा भव्यत्वस्याऽनुपपत्तेरिति । '**अण्णेसिं**' इत्यादि, अन्यासामध्रुवबन्धिप्रकृतीनां साद्यध्रुवभेदेन द्विविधो बन्धो भवति, अध्रुव-बन्धिप्रकृतीनां परावृत्य परावृत्य बन्धसंभवेन बन्धविच्छेदस्य पुनर्बन्धस्य चानेकशो लाभात् ।

एवं ओघत उत्तरप्रकृतीनां बन्धस्य साद्यादिभङ्गप्ररूपणा कृता, साम्प्रतमादेशतो गत्यादिमार्ग-णासु कर्तुकाम आह, '**एवं**' इत्यादि, मत्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽसंयमाऽचक्षुर्दर्शनमिथ्यात्वरूपासु पञ्च-मार्गणासु ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धः साद्यनादिध्रुवाऽध्रुवभेदेन चतुष्प्रकारोऽस्ति, अध्रुवबन्धिप्रकृतीनां

तु सादिसान्तभेदेन द्विविधोऽस्ति । ननु मत्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽसंयममिथ्यात्वमार्गणाक्षपशमादिश्रेण्या अभावेन ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धविच्छेदानन्तरं पुनर्बन्धाऽसंभवादासां बन्धस्य कथं सादिभङ्ग उपपन्नो भवेदिति चेदत्रोच्यते, एतन्मार्गणाचतुष्के वर्तमानः कश्चिज्जीवो तूर्यपञ्चमादिगुणस्थानकं गच्छति तदा तस्य जीवस्य मार्गणाचतुष्कस्याऽस्याऽन्तो भवति, यदा च तूर्यपञ्चमादिगुणस्थानकात्पतितो भवति तदा मिथ्यात्वादिगुणस्थानकेष्वागतेन तेनैताश्चतस्रोऽपि मार्गणाः पुनः प्राप्यन्ते, अतो मार्गणाचतुष्कस्यास्यादिः संजाता, मार्गणाचतुष्कस्याऽस्य सादित्वेन मार्गणास्वासु ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धस्याऽपि सादित्वमवगातव्यम्, तेन नोक्तानुपपत्तिः ॥ ९८ ॥

अथ भव्यमार्गणायां ध्रुवाध्रुवबन्धिप्रकृतिबन्धस्य साद्यादिभेदानभिधातुमाह—

भविये धुवबंधीणं साइअणाइअधुवो ऽत्थि तिविगप्पो।
बंधोऽत्थि साइअधुवो, दुविगप्पो सेसपयडीणं ॥ ९९ ॥

(प्रे०) "भविये" इत्यादि, भव्यमार्गणायां साद्यनाद्यध्रुवभेदेन ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धः त्रिविधोऽस्ति । 'साइअधुवो' इत्यादि, शेषाणामध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धः साद्यध्रुवभेदेन द्विविधोऽस्ति ॥ ९९ ॥

इदानीमभव्यमार्गणायां शेषमार्गणायां च ध्रुवाध्रुवबन्धिप्रकृतिबन्धं साद्यादिभेदेन प्ररूपयति—

धुवबंधीणं बंधो दुविगप्पो अभविये अणाइधुवो ।
सेसाण साइअधुवो सेसासु हवेज्ज सव्वाणं ॥ १०० ॥

(प्रे०) "धुवबंधीणं" इत्यादि, अभव्यमार्गणायां ध्रुवबन्धिप्रकृतिबन्धस्याऽनादिध्रुवभेदेन विकल्पद्वयं विज्ञेयम्, अध्रुवबन्धिप्रकृतिबन्धस्य च साद्यध्रुवभेदेन । "सेसासु"इत्यादि, मत्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽसंयमाचक्षुर्मिथ्यात्वभव्याभव्यलक्षणं मार्गणासप्तकमृते सप्तपञ्चाशदधिकशतसंख्याकासु शेषमार्गणासु सर्वासां बन्धप्रायोग्याणां प्रकृतीनां साद्यध्रुवभेदेन द्विविधो बन्धोऽधिगन्तव्यः, सर्वासामासां मार्गणानां सादिसान्तत्वात् ॥ १०० ॥

॥ इति श्री प्रेमप्रभाटीकासमलङ्कृते बन्धविधाने उत्तरप्रकृतिबन्धे
प्रथमाधिकारे तृतीय साद्यादिद्वार समाप्तम् ॥



॥ चतुर्थं कालद्वारम् ॥

उत्तरप्रकृतिबन्धे साद्यादिद्वारं निरूप्य सम्प्रति क्रमप्राप्तं चतुर्थमेकजीवमाश्रित्य कालद्वारं निरूपयितुकामः प्रथमं प्रकृतिसंग्राहिका गाथा आह

मिच्छ थीणद्धितिगमणअपच्चक्खाणतदियरकसाया ।
तिरियदुग णीअं तह णरदुगवइराणि उरल च ॥ १०१ ॥
उरलोवंगपणिंदियतसपरघूसासवायरतिगाणि ।
पुमसुखगइपढमागिइसुहगतिगुच्चसुरविउवदुग ॥ १०२ ॥
जिणसायेयरदुजुगलथिरसुहजसअथिरअसुहअजसाणि ।
आहारदुगमिमाओ इह जा वुच्चन्ति ता कमा गेज्झा ॥ १०३ ॥(गीति)

(प्रे०) "मिच्छ" इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धिप्रचलाप्रचलानिद्रानिद्राऽनन्तानुबन्धिचतुष्काप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कतिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्वीनीचैर्गोत्राणि, मनुष्यगतिमनुष्यानुपूर्वीवज्रर्षभनाराचसंहननौदारिकशरीरनामानि चेति त्रयोविंशतिप्रकृतयः प्रथमगाथायामुक्ताः । "उरलोवंग" इत्यादि, औदारिकाङ्गोपाङ्गपञ्चेन्द्रियजातित्रसपराघातोच्छ्वासबादरपर्याप्तप्रत्येकनामानि, पुरुषवेदशुभविहायोगतिसमचतुरस्रसंस्थानसुभगसुस्वरादेयोच्चैर्गोत्रदेवगतिदेवानुपूर्वीवैक्रियशरीरवैक्रियाङ्गोपाङ्गनामानि चेत्येकोनविंशतिप्रकृतयो द्वितीयगाथायामुक्ताः । "जिण" इत्यादि, जिननामसातवेदनीयाऽसातवेदनीयहास्यरतिशोकारतिस्थिरशुभयशःकीर्तिनामानि, अस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिनामानि चेति त्रयोदशप्रकृतयस्तृतीयगाथार्धेनोक्ता आहारकशरीरा-ऽऽहारकाङ्गोपाङ्गरूपमाहारकद्विकं चेति सर्वसङ्ख्यया सप्तपञ्चाशत्प्रकृतीनां संग्रह। "इमाओ" इत्यादि, आभ्यः प्रकृतिभ्यःकालद्वारे याः प्रकृतयो वक्ष्यन्ते ताः प्रकृतयः क्रमेण ग्राह्याः, यां प्रकृतिमादौ कृत्वा यावत्यः प्रकृतयो वक्ष्यन्ते तां प्रकृतिमादौ कृत्वा तावत्यस्ता क्रमेण ग्राह्याः इति भावः । इति गाथात्रयार्थः ॥ १०१-१०३॥

अथ ध्रुवबन्धिप्रकृतीना बन्धकालमोघतः कथयितुमाह

धुवबंधीण कालो अणाइणंतो अणाइसंतो य ।
साइसपज्जवसाणो, तइओ हस्सो मुहुत्तंतो ॥ १०४ ॥
परमो अद्धपरट्टो देसूणो होअए मुहुत्तंतो ।
आऊण चउण्ह दुहा भिन्नमुहुत्त जिणस्स लहू ॥ १०५ ॥
उक्कोसो अब्महिया तेत्तीसा सागरोवमा णेयो ।
एआओ बावण्णा णिरंतराओ ऽत्थि पयडीओ ॥ १०६ ॥

(प्रे०) "धुवबंधीण" इत्यादि, ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धकालः त्रिविधो विद्यते, तदेवम्—अनाद्यनन्तः, अनादिसान्तः, सादिसान्तः । आद्यो बन्धकालोऽभव्यापेक्षया विज्ञेयः, तस्य प्रकृतीनाममामा सदैव बन्धकत्वात् , द्वितीयोऽनादिसान्तरूपः बन्धकालस्त्वप्राप्तसम्यक्त्वस्य भव्यस्य

बोध्यः । अद्यावधि कस्या अपि ध्रुवबन्धिप्रकृतेर्बन्धविच्छेदाभावादनादिः, भव्य आयत्यामवश्यं बन्धविच्छेद करिष्यति ततो बन्धः सान्तः, इत्थं ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्ध एवं जीवमपेक्ष्याऽनादिसान्तः प्राप्तः । उक्तबन्धद्वयस्येयत्ताऽभावेन जघन्योत्कृष्टतया वक्तुमशक्यत्वाज्जघन्यत उत्कृष्टतो वा कालो न कथितः । तृतीयः सादिसान्तरूपो ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धकालः श्रेणिं प्राप्तस्य भव्यस्य भवति । अस्य तृतीयभङ्गपतितस्य कालस्येयत्तासंभवाज्जघन्यत उत्कृष्टतश्च वक्तुं शक्यते, अत आह 'तइओ' इत्यादि । भावार्थः पुनरयम्–ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां सादिसान्तरूपबन्धकालो जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणः । तत्र मिथ्यात्वस्त्यानर्धित्रिकाद्यद्वादशकषायप्रकृतीनां जघन्यबन्धकाल इत्थमवगन्तव्यः, तद्यथा–यः कश्चित् षष्ठगुणस्थानकादनाभोगतः मिथ्यात्वगुणस्थानक प्राप्य यथा शीघ्रं संयमं प्राप्नोति तं जीवमपेक्ष्य मिथ्यात्वादिषोडशप्रकृतीनां जघन्यो बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽवाप्यते । विभागतो विचार्यमाणे तु षोडशप्रकृतीनां जघन्यबन्धकाल इत्थं प्राप्यते, तद्यथा–प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य षष्ठगुणस्थानतोऽनाभोगत पंचमं चतुर्थं प्रथमं वा गुणस्थानकं प्राप्य यथाशीघ्रं संयमं प्राप्नोति, तदपेक्षया जघन्यकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽवाप्यते । तथैवाप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य, नवरं षष्ठपञ्चमगुणस्थानतश्चतुर्थं प्रथम वा गुणस्थानकं प्राप्य यथाशीघ्रं देशविरतिं सर्वविरतिं वा प्राप्तजीवापेक्षया, इत्थमेव मिथ्यात्वाद्यष्टप्रकृतीनामपि, किन्तु षष्ठपञ्चमचतुर्थगुणस्थानतः प्रथमं गुणस्थानकं प्राप्य यथाशीघ्रं चतुर्थादिगुणस्थाकं प्राप्तजीवापेक्षया जघन्यकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽधिगन्तव्यः ।

शेषज्ञानावरणाद्येकत्रिंशत्प्रकृतीनां जघन्यबन्धकाल इत्थम्–यः कश्चिन्मोहोपशमक उपशान्तमोहगुणस्थानकादद्धाक्षयेणावतरन् ज्ञानावरणादिप्रकृतीनां यथासभव यदा पुनर्बन्धं प्रारभ्य प्रमत्तगुणस्थानकं प्राप्यान्तर्मुहूर्तं तत्र स्थित्वा ततो यथाशीघ्रं श्रेणिं प्राप्य क्रमशोऽष्टमादिगुणस्थानकेषु निद्राद्विकस्य नाम्नो नवध्रुवबन्धिनीनां भयजुगुप्सयोः संज्वलनस्य क्रोधस्य-मानस्य मायाया लोभस्य ज्ञानावरणादिचतुर्दशप्रकृतीनां च बन्धविच्छेदस्थानं प्राप्य बन्धविच्छेदं करोति तदाऽऽसां प्रकृतीना जघन्यबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽवाप्यते । "परमो" इत्यादि, ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां तृतीयः सादिसान्तलक्षणो बन्धकालः प्रकृष्टतया देशोनापार्धपुद्गलपरावर्तप्रमितो बोद्धव्यः, तदेवम्–उपशमश्रेणिमारूढो जीवस्ततोऽवपत्य सम्यक्त्वभाव त्यक्त्वा प्राप्तमिथ्यात्वो भवाटव्यामुत्कृष्टतः किंचिन्न्यूनाऽर्धपुद्गलपरावर्तकालपर्यन्तं भ्राम्यति, एकादशगुणस्थानसत्कोत्कृष्टाऽन्तरस्य तावत्प्रमाणत्वात् , तदनन्तरं पुनरपि सम्यक्त्वमवाप्य क्षपकश्रेणिं लब्ध्वा सकलानि कर्मेन्धनानि ध्यानाग्निना भस्मसात्कृत्य सिद्धिसौधं समुपयाति तस्मादेतच्छ्रेणिद्वयान्तराले ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धकालस्य तावत्प्रमाणता सूपपद्यते । "मुहुत्तंतो" इत्यादि, नरनारकामरतिर्यगायुष्काणां जघन्योत्कृष्टाभ्यां बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तमितो भवति, आयुर्बन्धकालस्योभयथाऽपि तावन्मितत्वात् । "भिन्नमुहुत्तं" इत्यादि, जिननाम्नो जघन्यबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाण एव, न तु समयप्रमाणः,

यतो जिननामबन्धस्य प्रारम्भानन्तरमन्तर्मुहूर्तादर्वाग् विच्छेदाभावात् । जिननाम्न उपशमश्रेण्यामपूर्वकरणे नूतनबन्धं कृत्वाऽन्तर्मुहूर्तानन्तरं तस्यैव गुणस्थानकस्य षष्ठभागान्ते बन्धविच्छेदं यः करोति तमाश्रित्य जघन्यबन्धकालः सूपपद्यते । अथ तस्यैवोत्कृष्टकालं कथयति । 'उक्कोसो" इत्यादि, तीर्थकृन्नाम्न उत्कृष्टबन्धकालो देशोनपूर्वकोटिद्वयाधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमितोऽस्ति, तदेवम्—पूर्वकोटिवर्षायुष्कः कश्चिज्जीवो मनुष्यभवेऽष्टसंवत्सरानन्तरं तीर्थकृन्नामकर्म निकाच्य स्वायुःसमाप्तिं यावद् बद्ध्वा मरणानन्तरं सर्वार्थसिद्धविमाने सुरतयोत्पन्नः सन् तत्राऽपि स त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमलक्षणस्वायुष्कस्थितिपर्यन्तं तद् बध्नाति, ततश्च च्युत्वा समवदुत्कृष्टायुष्कमानवभवे यावत्क्षपकश्रेणिं नारोहति तावत्कालमविरतं बध्नाति, श्रेणावष्टमगुणस्थानषष्ठभागान्ते पुनस्तद्बन्धविच्छेदं करोति अत उक्तप्रमाणो बन्धकालः सुघटः । उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ—'तित्थकरनामाए तेत्तीससागरोवमाइं दोहिं पुव्वकोडीहिं देसूणाहिं अब्भतिताइ उक्कोसगो सगबन्धकालो'। "एआओ" इत्यादि, सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयो जिननामकर्म, आयुश्चतुष्कं चेति द्विपञ्चाशत्प्रकृतयो "निरन्तरा" इतिनामतो व्यपदिश्यन्ते, जघन्यतयाऽप्यन्तर्मुहूर्तकालं यावदनवरतं बध्यमानत्वात्, याः प्रकृतयो जघन्यतोऽप्यन्तर्मुहूर्तकाल निरन्तरं बध्यन्ते, ता अभिधानतो "निरन्तरा" इत्युच्यन्ते । उक्तं च पञ्चसंग्रहवृत्तौ श्रीमन्मलयगिरिसूरिपादैः—'तंमि उ जहन्ने इति—जघन्ये इति जघन्येनाऽपि या. प्रकृतयोऽन्तर्मुहूर्तं यावन्नैरन्तर्येण बध्यन्ते' ता निरन्तरा निर्गतं बन्धमविकृत्यान्तर्मुहूर्तमध्येऽन्तरं व्यवधानं व्यवच्छेदो यकाभ्यस्ता निरन्तरा इति व्युत्पत्तेः' इति ॥१०४-१०६॥

अथ शेषप्रकृतीनां बन्धकालं जघन्यतस्तथा तासु सान्तरनिरन्तरप्रकृतीनां बन्धकालमुत्कृष्टतोऽप्याह—

सेसाण लहू समयो जेट्ठो सायस्स पुव्वकोडतो ।
बत्तीससागरसय भवे पुमाईण सत्तण्ह ॥ १०७ ॥

(प्रे०) "सेसाण" इत्यादि, प्रागभिहितद्विपञ्चाशत्प्रकृतीः परित्यज्याऽष्टषष्टिशेषप्रकृतीनां बन्धकालो जघन्यत एकसमयो ज्ञातव्यः, आसामध्रुवबन्धित्वेन समयान्तरे पुनर्बन्धसंभवादिति । शेषास्वष्टषष्टिप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालं क्रमादुपदर्शयति-"जेट्ठो" इत्यादि, सातवेदनीयस्य प्रकृष्टो बन्धकालो देशोनपूर्वकोटिवर्षप्रमाणोऽवसातव्यः, सयोगिगुणस्थानकालस्य तावत्प्रमाणत्वात्, तत्र च निरन्तरं सातवेदनीयस्यैव बध्यमानत्वाच्च । उक्तं च पञ्चसङ्ग्रहवृत्तौ त्रयोदशगुणस्थानप्रकृष्टकालं प्रसाधयद्भिः श्रीमलयगिरिसूरिपादैः 'देशोना च पूर्वकोटी सर्वोत्कृष्टा सप्तमासजातस्य वर्षाष्टकादूर्ध्वं चरणप्रतिपत्त्या शीघ्रमेवोत्पादितकेवलज्ञानस्य पूर्वकोट्यायुषो वेदितव्या' इति । अन्यत्राऽप्युक्तम् 'देसूणपुव्वकोडि साय' इति । "बत्तीस" इत्यादि, "पुमसुखगइपढमागिइसुहगतिगुच्च" इति संग्रहगाथावयवेपूक्तानां पुरुषवेदशुभविहायोगतिसमचतुरस्रसंस्थानसुभगसुस्वराऽऽदेयोच्चैर्गोत्ररूपाणां सप्तानां प्रकृतीनां प्रकृष्टो बन्धकालः साधिकद्वात्रिंशदुत्तरशतसागरोपमप्रमाणो भवति, तदित्थम्—पुरुषवेदादिप्रतिपक्षभूताः स्त्रीवेदादिप्रकृतयो गुणप्रत्ययेन भवप्रत्ययेन वा यदा न बध्यन्ते, तदा पुरुषवेदादीनां सप्तप्रकृतीनां बन्धो निरन्तरं संजायते,

यावान् खेतासां पुरुषवेदादिविरोधिस्त्रीवेदादिप्रकृतीनामबन्धकालः, तावानेव पुरुषवेदादिसप्तप्रकृतीनां बन्धकालः, स चोत्कृष्टत्वेन साधिकद्वात्रिंशदुत्तरशतसागरोपमप्रमितोऽस्ति, पुरुषवेदादिप्रतिपक्षभूतस्त्रीवेदादिप्रकृतिबन्धकारणीभूतमिथ्यात्वाऽन्तरकालस्योत्कृष्टतया तावन्मात्रत्वात्, उक्तं चैतत्पञ्चसंग्रहवृत्तौ श्रीमन्मलयगिरिसूरिपुङ्गवैः—'उत्कृष्टमन्तरमाह "मिच्छस्से" त्यादि, मिथ्यादृष्टेः परित्यक्तमिथ्यात्वस्य भूयस्तद्भावप्रतिपत्तावुत्कृष्टमन्तरं द्वे षट्षष्टी 'अयराणां' सागरोपमाणाम्, कथं द्वे षट्षष्टी सागरोपमाणाम्? इति चेदुच्यते—कश्चिन् मिथ्यादृष्टिः सम्यक्त्वमासाद्य षट्षष्टिसागरोपमाणि यावत्सम्यक्त्ववानवतिष्ठते, ततस्तदनन्तरमन्तरालेऽन्तर्मुहूर्तकालं सम्यग्मिथ्यात्वमनुभूय भूयोऽपि षट्षष्टिसागरोपमाणि यावत्सम्यक्त्वमनुभवति ततः एतदनन्तरं कोऽपि महात्मा मुक्तिपदवीमासादयति, कोऽपि पुनरधन्यो मिथ्यात्वं प्रतिपद्यते, तत्र यो मिथ्यात्वं प्रतिपद्यते तस्य मिथ्यात्वपरिभ्रंशकालादारभ्य भूयो मिथ्यात्वं प्रतिपद्यमानस्यान्तरं द्वे षट्षष्टी सागरोपमाणां भवतः। नन्वेवं सम्यग्मिथ्यात्वसंबन्धिनामन्तर्मुहूर्तेनाधिके द्वे षट्षष्टी सागरोपमाणां प्राप्येते कथमधिकृतसूत्रे ते परिपूर्णे उक्ते? उच्यते—स्तोकत्वात्तदन्तर्मुहूर्तं न विवक्षितमित्यदोषः।' नव्यशतकेऽपि प्रकृतप्रकृतीनां निरुक्तबन्धकालः प्रतिपादितः, तद्यथा—जलधिसयं ... ... । वत्तीस सुहविहगइपुमसुभगतिगुच्चचउरंसे ॥' इति ॥१०७॥

अथ तिर्यक्त्रिकादीनामुत्कृष्टबन्धकालमाह

तिरियाईण तिण्हं असंखलोगाऽत्थि जलहि तेत्तीसा।
तिणराईण अहिय पल्लतिगं चउसुराईणं ॥ १०८ ॥

(प्रे०) 'तिरियाईण" मित्यादि, तिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्वीनीचैर्गोत्ररूपाणां तिसृणां प्रकृतीनां बन्धकाल उत्कृष्टतयाऽसंख्यलोकाकाशप्रदेशप्रमितसमयप्रमाणो भवति, स त्वेवम्—कश्चित् वनस्पतिकायिकादिजीवस्तेजोवायुकाययोरन्यतरस्मिन् समुत्पद्य तेजोवायुकायसमुदितोत्कृष्टकायस्थितिं यावत्तत्रैव परिभ्रमति तत्र भवप्रत्ययिकतिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रयोर्निरन्तरं बन्धः प्राप्यते, अत तं जीवमाश्रित्याऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमितः प्रस्तुतप्रकृतित्रयस्य प्रकृष्टबन्धकालः सूपपद्यते। उक्तं च "" समयाद सखम्मल तिरिदुगनीएसु' इति। "जलहि" इत्यादि, मनुष्यगतिमनुष्यानुपूर्वीवज्रर्षभनाराचसंहननलक्षणस्य प्रकृतित्रयस्योत्कृष्टो बन्धकालस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपममानो ज्ञातव्यः, तदेवम्—विजयादिविमानेषु स्थिताः सुरास्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमितां स्वायुष्कस्थितिं यावदेतत्प्रकृतित्रयमनवरतं बध्नन्ति, तेषां मनुष्यप्रायोग्यस्यैव प्रकृतिसमुदायस्य बन्धविधायित्वात्, प्रतिपादितं च नव्यशतके—"मणुदुगजिणवइरउरलुवगेसु, तित्तीसयरा परमो' इति। "अहिय" मित्यादि, देवगतिदेवानुपूर्वीवैक्रियशरीरवैक्रियाङ्गोपाङ्गरूपाणां चतसृणां प्रकृतीनां प्रकृष्टो बन्धकालः साधिकपल्योपमत्रयप्रमितोऽवसातव्यः, तदेवम्—मनुष्यभवे पूर्वकोटिवर्षायुष्कः कश्चित्प्राणी स्वायुस्त्रिभागेऽवशेषे त्रिपल्योपमप्रमितं युगलिकसत्कमायुर्बद्ध्वाऽन्तर्मुहूर्ताऽनन्तरं क्षयोपशमसम्यक्त्वमवाप्य क्षायिकसम्यक्त्वमवाप्नोति, सम्यक्त्वप्राप्तेः प्रागन्तर्मुहूर्ततः सुरादिप्रकृतिचतुष्कं बध्नन् ततश्च च्युत्वा युगलिकभवे जातः सन् सम्यक्त्व-

प्रत्ययेन तत्प्रकृतिचतुष्कं पल्योपमत्रयमितस्वायुःपूर्णतां यावद् बध्नातीत्येवं देशोनपूर्वकोटित्रिभागाधिकपल्योपमत्रयप्रमाणो बन्धकालः संगच्छते, स एवाऽत्र साधिकपल्यत्रयत्वेन बोध्यः। उक्तं च— "वेउव्वियदेवदुग पल्लतिग" इति ॥१०८॥

पणसीइसागरसयं पणिंदियाईण होइ सत्तण्हं ।
उरलस्स असंखेज्जा परिअट्टा पोग्गलाण भवे ॥ १०९ ॥

(प्रे०) "पणसीई" त्यादि, "पणिंदियतसपरघूसासबायरतिगाणि" इति संग्रहगाथांशेषु प्रतिपादितानां पञ्चेन्द्रियजातिप्रमुखाणां सप्तानां प्रकृतीनां बन्धकाल उत्कृष्टतया चतुःपल्योपमाधिकपूर्वकोटिपृथक्त्वोत्तरपञ्चाशीत्यधिकशतसागरोपमप्रमाणो वर्तते, प्रतिपादितं चैतच्छतके—'जलहिसयं पणसीयं परघुस्सासे पणिंदितसचउगे' इति भावना पुनरेवम्—पञ्चेन्द्रियजातित्रसबादरत्रिकविरोधिनीनां प्रकृतीनां योऽबन्धकालः, स एव पञ्चेन्द्रियजातिप्रभृतीनां पञ्चानां प्रकृतीनां बन्धकालो बोध्यः, स च प्रकृष्टतयाऽबन्धकालोऽभिहितप्रमितोऽस्ति। पराघातोच्छ्वासनामकर्मलक्षणप्रकृतिद्वयबन्धस्य पर्याप्तप्रायोग्यप्रकृतिबन्धसहचारित्वेन पञ्चेन्द्रियजातिप्रभृतिपञ्चप्रकृतिबन्धावसरे पर्याप्तनामकर्मणोऽपि बध्यमानत्वेनाऽवश्यमेव पराघातोच्छ्वासनामरूपे द्वे प्रकृती बध्येते, तस्मात्तयोरपि तावत्प्रमाण एवोत्कृष्टतया बन्धकालः समधिगम्यः। एतत्सप्तप्रकृतिप्रतिपक्षभूतानां प्रकृतीनामबन्धकालस्य भावना शतक एवम्—यथा किल कश्चिद् जन्तुस्तमोऽभिधानायां षष्ठपृथिव्यां द्वाविंशतिसागरोपमाणि भवप्रत्ययादेता प्रकृतीरबद्ध्वा पर्यन्तान्तर्मुहूर्ते सम्यक्त्वमासाद्य मनुष्येषूत्पद्य देशविरतिमासाद्य चतुःपल्योपमस्थितिषु देवेषु देवत्वमनुभूयाऽप्रतिपतितसम्यक्त्व एव मनुष्येषूत्पद्य सम्पूर्णसंयमं परिपाल्य नवमग्रैवेयक एकत्रिंशत्सागरोपमस्थितिकः सुरसद्मजन्मा समजनि, तत्र चान्तर्मुहूर्तोर्ध्वं मिथ्यात्वं जगाम, पुनरेव तत्र च वर्तमानो मिथ्यादृष्टिरपि भवप्रत्ययादेवैता प्रकृतीर्न बध्नाति, तदनु पर्यन्तान्तर्मुहूर्ते सम्यक्त्वमवाप्याऽप्रतिपतितसम्यक्त्वो मनुष्येषूत्पद्य सर्वविरतिमनुपाल्य तथैव गृहीतसम्यक्त्वो वारद्वय विजयादिगमनेन षट्षष्टिसागरोपमाणि सम्यक्त्वकालं पूरयित्वा मनुष्येष्वन्तर्मुहूर्तं सम्यग्मिथ्यात्वमनुभूय तदन्तरितं द्वितीयं षट्षष्टिप्रमाणं सम्यक्त्वकालमच्युतगमनेन पूरयति। "उरल" मित्यादि, औदारिकशरीरनामकर्मण उत्कृष्टोऽनवरतं बन्धकालोऽसंख्येयपुद्गलपरावर्तप्रमाणोऽवसेयः, तदेवम्—अव्यवहारराशित उद्वृत्य ये जीवा व्यवहारराशावागताः त्रसत्वं चोपगताः, ते यदि सूक्ष्मैकेन्द्रियभवे बादरैकेन्द्रियभवे चोत्पन्ना आवलिकाया असंख्याततमभागगतसमयप्रमिताऽसंख्यपुद्गलपरावर्तप्रमाणामुत्कृष्टां स्वकायस्थितिं वेदयन्ति, तावत्कालं तत्रस्थैस्तैरौदारिकशरीरनामकर्मप्रकृतिः सततं बध्यते तदनन्तरं यावत्कालं पर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्वं विना स्थातुं शक्यते तावत्कालं गमयित्वा पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतयोत्पद्य सर्वपर्याप्तिभिः पर्याप्तो भूत्वा यावद्देवनरकान्यतरगत्या सह वैक्रियशरीरं न बध्नाति तावत्कालमौदारिकशरीरं निरन्तरं बध्नाति तदनन्तरं वैक्रियशरीरनामबन्धादौदारिकशरीरनामबन्धो विरमति, एवमुक्तप्रमाणो बन्धकालोऽत्र समुपपद्यते। प्रतिपादितं चैतच्छतके—'उरलि असंखपरट्टा' इति ॥१०९॥

उरलोवंगस्स भवे तेत्तीसा सागरोवमाऽब्भहिया ।
सतरनिरंतराओ एआओ हुन्ति सगवीसा ॥ ११० ॥

(प्रे०) "उरलोवंगस्से" त्यादि, औदारिकाङ्गोपाङ्गनामकर्मणो गुरुर्बन्धकालोऽभ्यधिक-त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणोऽस्ति, यतो हि सप्तमनरकवासिना केनचित्प्राणिना त्रयस्त्रिंशत्साग-रोपमप्रमाणोत्कृष्टस्वायुःस्थितिं यावदौदारिकाङ्गोपाङ्गं भवप्रत्ययेन सततं बद्ध्वा तत उद्वृत्याऽन्त-र्मुहूर्तं यावत्तद्बध्यते तदा साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणः कालः सङ्गच्छते । अभिहितं च नव्यशतके···'उरलवंगेसु तित्तीसायर परमो' । "संतरनिरंतराओ" इत्यादि, सातवेदनीयं पुरुष-वेदशुभविहायोगतिसमचतुरस्रसंस्थानसुभगसुस्वराऽऽदेयोच्चैर्गोत्रलक्षणप्रकृतिसप्तकं तिर्यग्गतितिर्यगा-नुपूर्वीनीचैर्गोत्ररूपं प्रकृतित्रिकं मनुष्यद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननस्वरूपं प्रकृतित्रिकं देवगतिदेवानुपूर्वी-वैक्रियशरीरवैक्रियाङ्गोपाङ्गलक्षणं प्रकृतिचतुष्कमौदारिकद्विकं पञ्चेन्द्रियजातित्रसपराघातोच्छ्वास-बादरत्रिकरूपं प्रकृतिसप्तकं चेति सप्तविंशतिप्रकृतयः "सान्तरनिरन्तरा" इति नामतो निगद्यन्ते, यतो जघन्येनैकमेवसमयमुत्कृष्टतया चाऽन्तर्मुहूर्तादूर्ध्वमसंख्यातादिकालं यावन्निरन्तरं बध्यन्ते । यासां प्रकृतीनां बन्धपद्धतिरेवंविधा विद्यते ताः प्रकृतयः 'सान्तरनिरन्तरा' इत्युच्यन्ते । उक्तं च पञ्चसंग्रहवृत्तौ—यासां प्रकृतीनां जघन्यतः समयमात्रं बन्धः, उत्कर्षतः समयादारभ्य नैरन्तर्येणान्तर्मुहूर्तस्योपर्यसंख्येयं कालं यावत् ता उभयथाः सान्तरनिरन्तरा इत्यर्थः ॥११०॥

सेसाणं पयडीण भिन्नमुहुत्तं गुरू मुणेयव्वो ।
एआउ संतराओ एआलीसाउ पयडीओ ॥ १११ ॥

(प्रे०) "सेसाणं" इत्यादि, उक्तव्यतिरिक्तानामेकचत्वारिंशत्शेषप्रकृतीनामुत्कर्षतो बन्धकालो-ऽन्तर्मुहूर्तमानोऽवगन्तव्यः । ताश्चेमाः शेषा एकचत्वारिंशत्प्रकृतयः-असातवेदनीयहास्यादियुगलद्वयस्त्री-नपुंसकवेदद्वयनरकद्विकैकेन्द्रियादिजातिचतुष्काहारकद्विकद्वितीयादिसंहननपञ्चकद्वितीयादिसंस्थान-पञ्चकाऽशुभखगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिस्थावरदशकातपोद्योतरूपा इति । आसां प्रकृतीनां भवप्रत्ययेन गुणप्रत्ययेन वाऽन्तर्मुहूर्तादधिककालो नैव प्राप्यते, तथा चाऽन्तर्मुहूर्तानन्तरमासां प्रतिपक्षसातादि-प्रकृतीनामवश्यंभाविबन्धेन स्वबन्धः स्थगितो भवति, तेनाऽन्तर्मुहूर्तादधिकबन्धकाल आसां प्रकृतीनां नैव प्राप्यत इति ।

"एआउ" इत्यादि, एताः प्रकृतयः सान्तरा इत्यभिधानतोऽभिधीयन्ते, जघन्यतः समय-मात्रं प्रकर्षेण चान्तर्मुहूर्तं यावदेव बध्यमानत्वादासाम् ।

उक्तं च पञ्चसंग्रहवृत्तौ श्रीमन्मलयगिरिसूरिपुङ्गवैः—'यासां प्रकृतीनां जघन्यतः समयमात्रं बन्धः उत्कर्षतः समयादारभ्य यावदन्तर्मुहूर्तं न परतः ताः सान्तराभिधानाः, बन्धमधिकृत्यान्तर्मुहूर्तमध्येऽपि महान्तरेण व्यवधानेन व्यवच्छेदलक्षणेन वर्तन्ते यास्ताः सान्तरा इति व्युत्पत्तिबलात्' इति । इति ओघतो जघन्यत उत्कृष्टतश्च बन्धकालः ॥१११॥

अथ मार्गणासु प्रकृतीनां बन्धकालस्यावसरः, तत्र कुत्रचित्कासाञ्चिदुत्तरप्रकृतीनां बन्धकालो जघन्यतया मार्गणाजघन्यकायस्थितिः, उत्कृष्टतया पुनः मार्गणोत्कृष्टकायस्थितिः कथयिष्यते, अतः कायस्थितेर्ज्ञानमावश्यकं तथापि मूलकृता अत्र तत्प्रतिपादिका गाथा नैव कथ्यन्ते, मूलप्रकृतिबन्धविधानग्रन्थे तासां कथितत्वात्, किन्तु प्रस्तुते बहूपयोगित्वादस्माभिस्ता मूलप्रकृतिबन्धविधानस्था गाथा दर्श्यन्ते । तत्रापि प्रथमं उत्कृष्टकायस्थितिप्रतिपादिका गाथा दर्श्यन्ते, तद्यथा

कायठिई उक्कोसा णिरयसुराण विभंगणाणस्स । किण्हसुइलखइयाणं तेत्तीसा सागरा णेया ॥८४॥
पढमाइगनिरयाण कमसो एगो य तिण्णि सत्त दस । सत्तरह य बावीसा तेत्तीसा सागरा णेया ॥८५॥
णेया उ असंखेज्जा परियट्टा पुग्गलाण तिरियस्स । एगिंदियहरिआण कायणपुंसगअसण्णीणं ॥८६॥
तिपणिंदियतिरियाणं तिणराण य पलिओवमा तिण्णि । अब्भहिया पुव्वाणं कोडिपुहुत्तेण णायव्वा ॥८७॥
सव्वापज्जत्ताण समत्तबायरणिगोअकायस्स । पज्जत्तगसुहुमाण पणमणवयउरलमीसाण ॥८८॥
वेउव्वदुगस्स तहा आहारदुगस्स चउकसायाण । सुहुमुवसममीसाण भिन्नमुहुत्तं मुणेयव्वा ॥८९॥
भवणस्स साहियुदही पल्लं वन्तरसुरस्स विण्णेया । पलियोवममब्भहियं जोइसदेवस्स णायव्वा ॥९०॥
सोहम्माईण कमा अयरा दो साहिया दुवे सत्त । अब्भहिया सत्त य दस चउदस सत्तरह णायव्वा ॥९१॥
एत्तो एगेगऽहिया णायव्वा जाव एगतीसुदही । उवरिमगेविज्जस्स उ तेत्तीसाऽणुत्तराण भवे ॥९२॥
अंगुलअसंखभागो बायरएगिंदियस्स सुहुमाणं । तह पुढवाइचउण्हं णेया लोगा असंखेज्जा ॥९३॥
बायरपज्जेगिंदयभूदगपत्तेअवाउविगलाणं । संखेज्जसहस्ससमा समत्तवेइंदियस्स संखसमा ॥९४॥
पज्जत्तगतेइंदियबायरतेऊण होइ संखेज्जा । दिवसा संखियमासा समत्तचउइंदियस्स भवे ॥९५॥
पंचिंदियचक्खूणऽहियुदहिसहस्सं तसस्स तं दुगुणं । पज्जपणिंदितसपुरिससण्णीणाऽयरसयपुहुत्तं ॥९६॥
अड्ढाइअपरिअट्टा भवे णिगोअस्स होइ कम्मठिई । बायरपुढवाइचउगणिगोअपत्तेअहरिआण ॥९७॥
बावीससहस्ससमा देसूणुरलस्स तिसमया णेया । कम्माणाहाराणं पल्लसयपुहुत्तमित्थीए ॥९८॥
देसूणपुव्वकोडी अवेअअकसायकेवलदुगाणं । मणणाणसंजमाण सामइआईण पंचण्ह ॥९९॥
दुअणाणाऽजयमिच्छाणऽणाइणंता अणाइसंता य । साइसपज्जवसाणा तइया हीणद्धपरियट्टो ॥१००॥
साहिअछसट्ठिजलही तिणाणसम्मत्तवेअगोहीण । दुविहा अणाइणंता अणाइसंता अचक्खुस्स ॥१०१॥
णीलाइचउण्ह कमा अयरा दस तिण्णि दोण्णि अट्ठार । भवियस्सऽणाइसंता अभवस्स अणाइणंता उ ॥१०२॥
सासाणस्सावलिआ छ भवे आहारगस्स णायव्वा । अंगुलअसंखभागो त्ति पडुच्चा बधगा उत्ता ॥१०३॥
केइ पुण बिंति हवए संखसहस्सवरिसा समत्ताण । वेइंदियतेइंदियचउइंदियबायरऽग्गीणं ॥१०४॥
दो सागरा सहस्सा समत्ततसचक्खुदंसणाण भवे । सत्तरह सत्त अयरा होइ कमा नीलकाऊण ॥१०५॥
साइअणंता वधगनिरवेक्खा खइअगकेवलदुगाण । सम्मअकसायगयवेअमणाहाराण साइसंता वि ॥१०६॥

साम्प्रतं जघन्यकायस्थितिप्रतिपादिका गाथाः–

कायठिई णायव्वा जहण्णगा दस सहस्सवासाणि । णिरयपढमणिरयाण देवभवणवन्तराणं च ॥१०७॥
बीआइगणिरयाण सा पढमाइणिरयाण जा जेट्ठा । खुड्डभवो तिरियपणिंदितिरियमणुसतदपज्जाण ॥१०८॥
पज्जत्तभेअवज्जिअसेसिंदियकायभेअसण्णीणं । अमणस्स जाणियव्वा आहारस्स तिसमयहीणो ॥१०९॥
भिन्नमुहुत्तं तु सयलपज्जत्तगजोणिणीण कायस्स । मोसदुजोगपुमाण तिकसायमइसुअकेवलदुगाणं ॥११०॥
अणाणदुगस्स तहा देसाजतचक्खुसव्वलेसाण । सम्मत्तखइअवेअगउवसममीसाण मिच्छस्स ॥१११॥

पलियस्स अट्ठभागो जोइसिमस्स पलिओवमं णेआ । सोहम्मसुरस्स भवे ईसाणस्सऽब्भहियपल्लं ॥११२॥
दोण्णि हवेज्जा जलही सणकुमारस्स दोण्णि अब्भहिया । महिंदस्स हवेज्जा सत्त भवे बम्हदेवस्स ॥११३॥
लंतगदेवाईण सा बम्हसुराइणाण जा जेट्ठा । सव्वत्थाऽचक्खूण भवियाभवियाण णत्थि लहू ॥११४॥
समयोऽत्थि पणमणवयणउरलदुगाहारविउव्वकम्माण । इत्थीणपुंसगाण भवेबलोहकसायाणं ॥११५॥
मणणाणोहिदुगविभंगसजमसमइअछेअसुहुमाण । परिहाराइक्खायगसासणऽणाहारगाण च ॥११६॥
अण्णे तिकसायाणं समयो मणणाणओहिदुगलाण । संजमपरिहाराणं भिन्नमुहुत्तं ति कायठिई ॥११७॥

आसां गाथानां भावार्थोऽस्यैव बन्धविधानस्य मूलप्रकृतिबन्धवृत्तितो ज्ञेयः ।

ओघतो जघन्योत्कृष्टाभ्यां बन्धकालं प्रतिपाद्य सांप्रतमादेशतः सकलमार्गणासु प्रतिपादयितुमनाः प्राथम्येनायुष्कर्मणो बन्धकालं प्रतिपादयति

सव्वासु मग्गणासुं सप्पाउग्गाण सव्वेसिं ।
भिन्नमुहुत्तं कालो भवे जहण्णो तहा जेट्ठो ॥ ११२ ॥

(प्रे०) "सव्वासु" इत्यादि, आयुर्बन्धार्हास्वखिलासु मार्गणासु चतुर्णामपि स्वप्रायोग्यायुष्काणां जघन्योत्कृष्टाभ्यां निरन्तरं बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तमितो भवति, जघन्याऽन्तर्मुहूर्तादुत्कृष्टमन्तर्मुहूर्तं बृहत्परमुपादेयम् ॥११२॥

कतिपयासु मार्गणास्वायुर्बन्धकालविषयेऽपवादमुपदर्शयन्नाह

णवरं हवओ समयो णेयो पचमणवयणकायेसुं ।
आहारदुगे विउव्वे उरालिये चउकसायेसुं ॥ ११३ ॥

(प्रे०) "णवर" मित्यादि, ओघ-सत्या ऽसत्य-सत्यासत्या-ऽसत्यामृषाभेदात् पञ्चमनोयोगेषु तथैव-पञ्चवचनयोगेषु काययोगौघा-ऽऽहारककाययोगा-ऽऽहारकमिश्रकाययोगवैक्रियकाययोगौदारिककाययोगक्रोधमानमायालोभरूपासु च सर्वसंख्ययैकोनविंशतिमार्गणासु जघन्याऽऽयुर्बन्धकालः समयप्रमाणो ज्ञातव्यः, तदित्थम्—यदा मार्गणानामासां चरमसमये केनचिदसुमताऽऽयुर्बन्धः प्रारब्धः, तदन्वेता मार्गणा विलयमिता भवन्ति, तदैतासु मार्गणासु समयमात्र एवायुर्बन्धकालोऽवाप्यते, तथा कश्चिज्जीवो विभिन्नमार्गणास्वायुर्बन्धमारभ्यैतासु मार्गणासु प्राप्तप्रवेशः प्रथमसमय एवायुर्बन्धं निष्ठां नयति तदाप्यासु मार्गणासु समयमात्र आयुर्बन्धकालोऽवाप्यते, एवं कासुचिन्मनोयोगादिमार्गणासु मार्गणाजघन्यकायस्थितिमपेक्ष्याऽपि समयप्रमाणो बन्धकालो वक्तव्यः ॥११३॥

साम्प्रतं सर्वमार्गणासु आयुश्चतुष्कवर्जशेषप्रकृतीनां जघन्यतया बन्धकालं प्राह

सव्वह होइ जहण्णो कालो समयो अवन्नमाणाणं ।
सप्पाउग्गाणं खलु आउगवज्जाण पयडीण ॥ ११४ ॥

(प्रे०) "सव्वह" इत्यादि, सर्वमार्गणास्वायुष्कवर्जानां वक्ष्यमाणव्यतिरिक्तस्वप्रायोग्यप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालः समयप्रमाणो भवति ॥११४॥

प्राक्तनगाथायामायुर्वर्जवक्ष्यमाणेतरस्वप्रायोग्यप्रकृतीनां जघन्यं बन्धकालं सर्वमार्गणासु निरूप्येदानीं वक्ष्यमाणप्रकृतीनां सर्वमार्गणासु जघन्यतो बन्धकालं प्ररूपयन्नादौ कतिपयासु देवनरकमार्गणासु तमाह--

णिरयपढमाइछणिरयतइआइगअट्ठमंतदेवेसु ।
लघुकायठिई मिच्छाइअट्ठवयजधुवणवुरलाईण ॥ ११५ ॥(गीति)
मिच्छस्स मुहुत्ततो जिणस्स चुलसीइहायणसहस्सा ।
णिरयपढमणिरयेसु साहियजलही दुइअणिरये ॥ ११६ ॥

(प्रे०)'णिरय'इत्यादि,नरकौघरत्नप्रभावालुकाप्रभापङ्कप्रभाधूमप्रभातमःप्रभालक्षणासु सप्तसु नरकमार्गणासु सनत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलान्तकशुक्रसहस्राररूपासु च षट्सु देवमार्गणासु 'मिच्छ थीणद्धितिगमण'' इति सग्रहगाथोक्तं मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकं विहाय शेषाणामेकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां 'उरल च, उरलोवगपणिंदियतसपरघूसासबायरतिगाणि' इति संग्रहगाथायामुक्तानामौदारिकद्विकपञ्चेन्द्रियजातित्रसनामपराघातोच्छ्वासबादरत्रिकरूपाणां नवानां प्रकृतीनां चेत्येवमष्टचत्वारिंशत्प्रकृतीनां जघन्यो बन्धकालः स्वस्वलघुकायस्थितिप्रमाणोऽवगन्तव्यः,आसां प्रकृतीनामबन्धस्य प्रस्तुतमार्गणास्वप्राप्यमाणत्वेन तत्र तावत्कालपर्यन्तमनवरतं जघन्यतोऽपि बध्यमानत्वात् । 'मिच्छस्स'इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्य जघन्यतया बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तमितो भवति, तद्यथा-मार्गणास्वासु वर्तमानः कश्चित्सम्यग्दृष्टिः सम्यक्त्वादवतीर्य जघन्यतो मिथ्यात्वगुणस्थानकेऽन्तर्मुहूर्तकालमुषित्वा पुनः सम्यक्त्वमवाप्नोति तदा सम्यक्त्वद्वयान्तराले मिथ्यात्वावस्थायामन्तर्मुहूर्तं मिथ्यात्वमोहनीयं बध्नाति । अथवा प्रकृतमार्गणासु विद्यमानः कश्चिज्जीवो मार्गणाया अन्तिमान्तर्मुहूर्ते शेषे प्राप्तमिथ्यात्वोऽन्तर्मुहूर्तकालं यावद् मिथ्यात्वमोहनीयप्रकृतिं बद्ध्वा मार्गणान्तरं विशते तदाप्यासु मार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयस्य बन्धकाल आन्तर्मुहूर्तिकोऽवाप्यते । मिथ्यात्वमोहनीयबन्धकालस्यास्मिन् प्रकारद्वये यदन्तर्मुहूर्तमल्पतरं तदेवाऽत्र ग्राह्यम् । "जिणस्स" इत्यादि,तीर्थकृन्नामकर्मणो लघुर्बन्धकालो नरकौघरत्नप्रभालक्षणमार्गणाद्वये चतुरशीतिसंवत्सरसहस्रप्रमितो विद्यते,जिनसत्कर्मणस्ततो न्यूनस्थितिकेषूत्पादाभावात् । "साहियजलही"इत्यादि,शर्कराप्रभाख्यमार्गणायां जिननामकर्मणो जघन्यो बन्धकालः साधिकसागरोपमप्रमाणः । न च नरकौघरत्नप्रभामार्गणयोर्जघन्यतया दशसहस्रवर्षप्रमाणा कायस्थितिर्वर्तते, शर्कराप्रभाख्यमार्गणायाश्च सागरोपमप्रमाणा, तर्हि प्रस्तुतमार्गणानां जघन्यकायस्थितिप्रमितो जिननामकर्मणो जघन्यो बन्धकालः कथं न प्रतिपादित इति वाच्यम् , मार्गणास्वासु जिननामसत्कर्मणा जघन्योत्कृष्टकायस्थितिमत्त्वेनोत्पादाभावात् , ते हि मध्यमकायस्थितिमत्त्वेनैवासु मार्गणासूत्पद्यन्ते ॥११५-११६॥

अथ तृतीयनरकमार्गणाया सनत्कुमारादिदेवमार्गणासु च जिननाम्नो जघन्यबन्धकालमाह--

तइअणिरयम्मि हवए अब्भहिया सागरोवमा तिण्णि ।
देवेसुं अजहण्णा सगसगकायट्ठिई णेया ॥ ११७ ॥

(प्रे०) 'तइअ' इत्यादि, वालुकाप्रभाख्यतृतीयनरकमार्गणायां साधिकसागरोपमत्रयप्रमाणो जिननामकर्मणो जघन्यो बन्धकालो ज्ञातव्यः । 'देवेसु' इत्यादि, पूर्वोक्तासु सनत्कुमारादिदेवमार्गणासु तीर्थंकरनामकर्मणो बन्धकालो जघन्यत्वेन स्वस्वाऽजघन्यकायस्थितिसमयप्रमाणो ज्ञेयः । ननु 'अजघन्या' इत्यस्य कोऽर्थः ? इति चेद् जघन्यभिन्नेत्यवधार्यताम् । इदमुक्तं भवति–केषांचिन्मते जिननामसत्कर्मा प्रकृष्टस्थितिकसौधर्मादिदेवत्वेनोत्पद्यते न तु जघन्यमध्यमस्थितिमत्त्वेन, परं चरित्रग्रन्थे तु मध्यमस्थितिमत्त्वेनाऽपि तीर्थंकरनामसत्कर्मण उत्पत्तिर्दृश्यते, अतो मतद्वयसंग्रहार्थमुक्तम् 'अजहण्णा' इत्यादि । स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कलक्षणस्य प्रकृतिसप्तकस्य मार्गणास्वासु जघन्यो बन्धकालः "सव्वह होइ जहण्णो कालो समयो अवक्खमाणाण" मितिगाथया समयमात्रोऽवसेयः । भावना पुनरेवं कार्या–मार्गणास्वासु स्थितः कश्चिदसुमान् स्वकीयस्वकीयमार्गणायाश्चरमसमये सास्वादनभावं समासाद्य समयमेकं प्रकृतिसप्तकमेनं बद्ध्वा मार्गणान्तरं प्रविशति, तदा प्रकृतिसप्तकस्याऽस्य बन्धकालः समयात्मको लभ्यते । तथा वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं तिर्यग्मनुष्यगती संहननषट्कं संस्थानषट्कं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्व्यौ खगतिद्वयं स्थिरषट्कमस्थिरषट्कमुद्योतनाम गोत्रद्वयं चेत्येतासां द्वाचत्वारिंशत्शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालः 'सव्वह होइ' इत्यादिना समयरूपो बोद्धव्यः, प्रकृतीनामासामध्रुवबन्धित्वात् ॥११७॥

सप्तमनरकमार्गणायामुत्तरप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालमुपदर्शयितुमाह

होइ चरमणिरये अडमिच्छाइपणतिरियाइउच्चाणं ।
भिन्नमुहुत्तं लहुकायठिई सेसधुवणवुरलाईणं ॥ ११८ ॥ (गीति)

(प्रे०) 'होइ' इत्यादि, तमस्तमःप्रभाभिधसप्तमनरकमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्करूपाणामष्टानां प्रकृतीनां तिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्वीनीचैर्गोत्रमनुष्यगतिमनुष्याऽनुपूर्वीरूपाणां पञ्चानां प्रकृतीनामुच्चैर्गोत्रस्य च लघुर्बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तमितो वर्तते । तद्यथा–मार्गणायामस्यां विद्यमानः कश्चित् सम्यग्दृष्टिर्जीवः सम्यक्त्वात्परिच्युतोऽन्तर्मुहूर्तं यावज्जघन्यतो मिथ्यात्वभावं लब्ध्वा पुनरपि सम्यग्दृष्टिः संजायते तदा सम्यक्त्वद्वयापान्तरालेऽन्तर्मुहूर्तं यावद् मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकं तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्ररूपं प्रकृतित्रयं च बध्नाति, तथा कश्चिदेतन्मार्गणावर्ती सम्यग्दृष्टिः स्वकीयमार्गणाया अन्तर्मुहूर्तावशेषे मिथ्यात्वं प्रपद्य मार्गणां परावर्तयति तदाऽप्यन्तर्मुहूर्तं यावत्प्रकृतीनामासां बन्धं विधत्ते, एतत्प्रकारद्वये यदल्पतरमन्तर्मुहूर्तं तदेवात्र जघन्यतया ग्राह्यम् । तथैतन्मार्गणागतः कश्चिन्मिथ्यादृष्टिर्जीवो मिथ्यात्वभावं त्यक्त्वाऽन्तर्मुहूर्तं सम्यक्त्वमवाप्य पुनरपि मिथ्यादृष्टिर्भवति, तदा मिथ्यात्वद्वयमध्ये सम्यक्त्वावस्थायामन्तर्मुहूर्तकालपर्यन्तं मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्ररूपाः प्रकृतीर्बध्नाति । 'लहुकायठिई' इत्यादि प्रकृतमार्गणायां

मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकव्यतिरिक्तशेषैकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरौदारिकाङ्गोपाङ्गपञ्चेन्द्रियजातित्रसपराघातोच्छ्वासबादरपर्याप्तप्रत्येकनामकर्मरूपाणां च नवानां प्रकृतीना जघन्यतो बन्धकालः स्वलघुकायस्थितिप्रमितोऽस्ति, तावत्कालमत्र सततं बध्यमानत्वात् । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयसंहननषट्कसंस्थानषट्कविहायोगतिद्विकस्थिरषट्काऽस्थिरषट्कोद्योतनामरूपाणां षट्त्रिंशत्शेषप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालः 'सव्वह होइ' इत्यादिना समयप्रमाणोऽवमातव्यः, तदेवम्–उद्योतनामकर्मणस्तथास्वभावादेवैकसामयिको जघन्यबन्धकालः, शेषप्रकृतीनां चासां परावर्तमानभावेन बध्यमानत्वादेव समयप्रमाणो जघन्यतया बन्धकालः ॥११८॥

साम्प्रतं तिर्यगोघादिमार्गणाद्वये उत्तरप्रकृतीना जघन्यबन्धकालं कथयितुकाम आह–

तिरिये पणिंदितिरिये विण्णेया ससजहण्णकायठिई ।
धुवबन्धीणेगारसथीणद्धितिगाइवज्जाण ॥ ११९ ॥

(प्रे०)"तिरिये" इत्यादि, तिर्यगोघतिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघलक्षणमार्गणाद्वये स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपा एकादशप्रकृतीर्विहायशेषाणा षट्त्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां क्षुल्लकभवप्रमाणस्वकीयजघन्यकायस्थितिप्रमाणो जघन्यतो बन्धकालो विज्ञेयः । नन्वत्र मिथ्यात्ववर्जशेषपञ्चत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामनवरत बध्यमानत्वेन जघन्यकायस्थितिप्रमाणो जघन्यबन्धकालः सुतरां घटामञ्चति, किन्तु मिथ्यात्वमोहनीयस्य सम्यक्त्वद्वयान्तरालवर्ती नरकमार्गणावज्जघन्यतयाऽन्तर्मुहूर्तलक्षणो बन्धकालो वक्तव्यःस्यात्, किमर्थमेवमकृत्वा भवद्भिर्जघन्यस्वकायस्थितिप्रमाणोऽभिहित इति चेत् , सत्यम् , परं सम्यक्त्वद्वयान्तरालवर्त्यन्तर्मुहूर्तलक्षणो बन्धकालः क्षुल्लकभवापेक्षया गुरुतरत्वेन मार्गणयोरनयोः जघन्यरूपतया गणनां प्राप्तुमनर्हः, तस्मात्तावत्प्रमाणता तस्यानभिहिता । प्रस्तुतमार्गणाद्वये वेदनीयद्विकं स्त्यानर्द्धित्रिकमनन्तानुबन्धिचतुष्कमप्रत्याख्यानावरणचतुष्कं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रय गतिचतुष्कं जातिपञ्चकमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयं संहननषट्कं संस्थानषट्कमानुपूर्वीचतुष्कं विहायोगतिद्विकं त्रसदशकं स्थावरदशकमातपोद्योतोच्छ्वासपराघातरूपप्रत्येकप्रकृतिचतुष्कं गोत्रद्वय चेति सप्तसप्ततिप्रकृतीना लघुबन्धकालः "सव्वह होइ" इत्यादिना, समयमात्रो वेदयितव्यः, अत्रापि स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपाणामेकादशध्रुवबन्धिप्रकृतीनां समय प्रमाणो बन्धकाल एवमुपपादनीयः, यथा मार्गणाद्वयेऽस्मिन् स्थितोपशमसम्यक्त्वसंयुतदेशविरतो देशविरतिगुणस्थानकान्निपत्य समयमेकं सास्वादनभावमवाप्य मार्गणान्तरमवाप्नोति तदा समयमेकं सास्वादनावस्थायामेता एकादशस्त्यानर्द्धित्रिकप्रभृतिप्रकृतीर्बध्नाति । शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीना समयात्मको बन्धकालोऽध्रुवबन्धित्वात् प्राप्यते ॥११९॥

अथ पर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियादिमार्गणाद्वये तमाह––

पज्जपणिंदियतिरितिरिजोणिमईसुं भवे मुहुत्तंतो ।
धुवबन्धीणेगारसयीणद्धितिगाइवज्जाणं ॥ १२० ॥

(प्रे०) "पज्जपणिंदिय" इत्यादि, पर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिमतीरूपे मार्गणाद्वये एकादशस्त्यानर्द्धित्रिकप्रमुखप्रकृतीर्विवर्ज्य शेषपट्त्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जघन्यो बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तं भवति, भावना पुनरेवं भावनीया–मार्गणास्वासु वर्तमानः कश्चित् सम्यग्दृष्टिः सम्यक्त्वात्परिभ्रष्टः सन् जघन्यतयाऽन्तर्मुहूर्तकालं यावत् मिथ्यात्वभावे स्थित्वा भूयोऽपि सम्यक्त्वं लभते तदा मिथ्यात्वावस्थायामन्तर्मुहूर्तकालपर्यन्तं मिथ्यात्वमोहनीयस्य बन्धको भवति, अथवैतन्मार्गणायाश्चरमान्तर्मुहूर्ते कश्चित् प्राणी मिथ्यात्वमासाद्य मार्गणान्तरमश्नुते, तदाप्यसौ जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तकालं मिथ्यात्वमोहनीयप्रकृतिं बध्नाति, तथा कश्चित् मिथ्यादृष्टिरसुमान् मनुष्यभवत्यागानन्तरं स मार्गणयोरनयोरुत्पद्य जघन्यस्थित्यात्मकाऽन्तर्मुहूर्तकाल च स्थित्वा मार्गणान्तरं याति तदा स मार्गणयोरनयोरन्तर्मुहूर्तं यावत् सततं स्त्यानर्द्धित्रिकादिप्रकृत्येकादशकं विना शेषपट्त्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीर्बध्नाति, एतत्प्रकारत्रये यदल्पतममन्तर्मुहूर्तं तदेवेह मिथ्यात्वजघन्यबन्धकालतया ग्राह्यम् , तथा शेषपञ्चत्रिंशतो ध्रुवबन्धिनीनां तु तृतीयप्रकारेणैव यदन्तर्मुहूर्तमागतं तज्जघन्यबन्धकालतया ग्राह्यम् । एकादशस्त्यानर्द्धित्रिकादिप्रकृतीनां पट्पष्टिशेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च जघन्यबन्धकालः "सव्वइ होइ" इत्यादिना समयमात्रोऽवसेयः, भावना प्राग्वद्भावनीया ॥१२०॥ अधुनाऽपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियादिमार्गणासु सर्वासु तेजस्कायवायुकायमार्गणासु चोत्तरप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालमाह

असमत्तपणिंदियतिरिमणुसपणिंदियतसेसु सव्वेसुं ।
एगिंदियविगलेसुं कायपणगसव्वभेएसुं ॥ १२१ ॥
धुवबंधिउरालाणं ससलहुकायट्ठिई तहेव भवे ।
तिण्ह तिरियाईण वि सव्वेसुं तेउवाऊसुं ॥ १२२ ॥

(प्रे०)"असमत्त" इत्यादि, अपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्तमनुष्याऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्तत्रसरूपासु चतुर्मार्गणासु,एकेन्द्रियविकलेन्द्रिययोः सर्वेषु मार्गणाभेदेषु, पृथ्वीकायाप्कायतेजस्कायवायुकायवनस्पतिकायानां सर्वेषु मार्गणाभेदेषु चेति समुदितासु नवपञ्चाशन्मार्गणासु सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्च जघन्यो बन्धकालः स्वलघुकायस्थितिमितोऽधिगन्तव्यः । तदित्थम्-पृथ्वीकायिकादिसत्कौघबादरौघसूक्ष्मौघभेदेषु तथा तदपर्याप्तभेदेषु च जघन्यकायस्थितिः क्षुल्लकभवप्रमाणा विद्यते, पर्याप्तपृथ्वीकायिकादीनां चाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणा,तावत्कालं ते तासां प्रकृतीनां बन्धं नैरन्तर्येण कुर्वन्ति, अतस्तद्बन्धकालोऽपि तावत्प्रमाणो बोध्यः । तथा वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयं जातिपञ्चकमौदारिकाङ्गोपाङ्गं, संहननपट्कं संस्थानपट्कं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयं खगतिद्वयं त्रसदशकं स्थावरदशक पराघातातपोद्योतोच्छ्वासरूपं प्रत्येक-

प्रकृतिचतुष्कं गोत्रद्वयं चेत्येतासामेकोनषष्टिप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालः समयप्रमाणः । "तहेव" इत्यादि, तेजस्कायवायुकायिकयोः सर्वासु चतुर्दशमार्गणासु 'तथैव' ध्रुवबन्धिन्यौदारिकप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालवत् "तिण्हं" इत्यादि, तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रलक्षणस्य प्रकृतित्रिकस्याऽपि जघन्यबन्धकालः स्वस्वलघुकायस्थितिसमयप्रमितो बोद्धव्यः,आसामप्यत्र निरन्तरबन्धित्वात् । तथा तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रमनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्ररूपप्रकृतिषट्कवर्जितानामनन्तरोक्तशेषत्रिपञ्चाशत्प्रकृतीनां जघन्यबन्धकालः "सव्वह होइ" इत्यादिना समयमितो ज्ञातव्यः, तासामध्रुवबन्धित्वात् ॥१२१-१२२॥

साम्प्रतं मनुष्यनपुंसकवेदमार्गणयोस्तथाऽऽहारकादिमार्गणासु जघन्यबन्धकालमाह—

मिच्छस्स खुड्डुगभवो णरणपुमेसुं जहण्णकायठिई ।
आहारम्मि दुणरथीसु मुहुत्तंतो विभङ्गे वा ॥ १२३ ॥

(प्रे०) "मिच्छस्स" इत्यादि, मनुष्यौघनपुंसकवेदमार्गणाद्वये मिथ्यात्वमोहनीयस्य जघन्यतो बन्धकालः क्षुल्लकभवप्रमाणोऽधिगन्तव्यः,यतो मार्गणयोरनयोःक्षुल्लकभवप्रमाणैव जघन्या कायस्थितिर्विद्यते,तावत्कालपर्यन्तं च मिथ्यात्वावस्थायामत्र मिथ्यात्वमोहनीयं बध्यते, तथा मार्गणाद्वयेऽस्मिन् मिथ्यात्वमोहनीयवर्जशेषध्रुवाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जघन्यतो बन्धकालः "सव्वह होइ" इत्यादिना समयप्रमाणो ज्ञातव्यः, सर्वासामासां प्रकृतीना विषये भावना पुनरेवं कर्तव्या—मार्गणोरनयोर्वर्तमान उपशमसम्यग्दृष्टिः सर्वविरतः प्रमत्तसंयतगुणस्थानकात्पतित्वा प्राप्तसास्वादनभावोऽनन्तरसमये भूत्वा मार्गणान्तरं व्रजति तदा सास्वादनभाववर्ती स समयमेकं स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपा पञ्चदशप्रकृतीर्बध्नाति । उशपमश्रेणेरवरोहकः कश्चिन्मनुष्यो मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकादिषोडशप्रकृतिवर्जानामेकत्रिंशत्शेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनां यथायोग्यं बन्धस्थानं प्राप्य समयमेकं ताःप्रकृतीर्बद्ध्वा म्रियते,तदा प्रकृतीनामासामेकसमयमितो बन्धकालोऽवाप्यते । शेषाणामेकोनसप्तत्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनामध्रुवबन्धित्वादेकसमयप्रमाणो बन्धकालो लभ्यते,अत्रोपशमश्रेणेरवरोहको जिननामाहारकद्विकलक्षणप्रकृतित्रयस्य बन्धस्थानं लब्ध्वा समयमेकं च ताः प्रकृतीर्बद्ध्वा कालं कृत्वा मार्गणान्तरं व्रजति तदाऽपि प्रकृतित्रयस्याऽप्येकसामयिको बन्धकालः प्राप्यते, तथा कश्चिदसुमान् सप्तमगुणस्थानकमागत्याऽऽहारकद्विकं बध्नन् समयमेकं स्थित्वा पञ्चत्वं प्राप्नोति तदाऽप्याहारकद्विकस्य समयप्रमाणो बन्धकालोऽवाप्यते । "आहारम्मि" इत्यादि, आहारकमार्गणाया मिथ्यात्वमोहनीयस्य जघन्यतो बन्धकालः त्रिसमयन्यूनक्षुल्लकभवलक्षणस्वकीयजघन्यकायस्थितिप्रमितो वर्तते, तावत्कालं तस्य तत्राऽनवरतं बध्यमानत्वात् । मिथ्यात्वमोहनीयं विना पञ्चदशाधिकशतप्रकृतीना लघुबन्धकालः 'सव्वह होइ' इत्यादिना समयमानोऽवसातव्यः, घटना पुनरिह मनुष्यौघमार्गणावत्कर्तव्या । "दुणर" इत्यादि, पर्याप्तमनुष्यमानुषीस्त्रीवेदविभङ्गज्ञानाऽभिधासु चतसृषु मार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयस्य जघन्यतया बन्धकालो-

ऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो वेदयितव्यः, सोऽपि विभङ्गज्ञानमार्गणावर्जप्रकृतमार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयस्या-ऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो बन्धकालः सम्यक्त्वद्वयान्तरालप्रमाणः, मार्गणानां पूर्वोक्तनीत्या चरमकालमितः, मार्गणानां जघन्यकायस्थितिप्रमितो वा प्राप्यमाणोऽस्ति, एतत्त्रिविधबन्धकाले योऽल्पतमो बन्धकालः स एव जघन्यतया ग्राह्यः । विभङ्गज्ञानमार्गणायां तु कश्चित् सम्यग्दृष्टिरवधिज्ञानी सम्यक्त्वं त्यक्त्वा जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तं मिथ्यात्वमवाप्य पुनरपि सम्यग्दृष्टिर्जायते तदा मिथ्यात्वभावस्थितः सोऽन्तर्मुहूर्तं मिथ्यात्वमोहनीयं बध्नाति, 'वा' कारेण तिर्यग्मनुष्यानाश्रित्यापि समयात्मिका जघन्यकायस्थितिरस्ति तन्मते समयप्रमाणो बन्धकालो विज्ञेयः । विभङ्गज्ञानमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयवर्जशेषषट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जिननामाहारकद्विकवर्जितशेषषट्पञ्चधुवबन्धिप्रकृतीनां च स्त्रीवेद-पर्याप्तमनुष्यमानुषीरूपासु मार्गणासु च मिथ्यात्वमोहनीयवर्जशेषपञ्चदशाधिकशतप्रकृतीनां जघन्यतो बन्धकालः 'सव्वह होइ' इत्यादिना समयप्रमाणो वेदयितव्यः । विभङ्गज्ञानमार्गणायामेकसमयप्रमितबन्धकालस्य भावनाऽनया रीत्या भावनीया--कश्चिद् देवो नारको वा मार्गणाया अस्या अन्तिमसमये सम्यक्त्वान्निपत्य सास्वादनगुणस्थानकमागत्य समयमेकमुक्तप्रकृतीर्बद्ध्वा मार्गणान्तरं व्रजति तदा समयप्रमाणो जघन्यबन्धकाल उक्तप्रकृतीनामुपलभ्यो भवति । स्त्रीवेदादिमार्गणासु तु भावना मनुष्यौघवदवसेया ॥१२३॥ अथ देवमार्गणासूत्तरप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालं चिन्तयन्नाह -

मिच्छाइअट्ठचत्ताजिअधुवबन्धिपणपरघाइउरलाणं ।
देवीसाणंतेसुं होइ ससजहण्णकायठिई ॥ १२४ ॥
मिच्छस्स मुहुत्तंतो जिणस्स सोहम्मअजहुकायठिई ।
सुरसोहम्मेसु भवे ईसाणे सअजहण्णकायठिई ॥ १२५ ॥ (गीतिः)

(प्रे०) "मिच्छाइ" इत्यादि, देवौघभवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कसौधर्मेशानलक्षणासु षण्मार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्करूपं प्रकृत्यष्टकं विहाय शेषाणामेकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां पराघातोच्छ्वासबादरपर्याप्तप्रत्येकरूपाणां पञ्चप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्च स्वस्वजघन्यकायस्थितिप्रमितो जघन्यो बन्धकालः, एतावत्कालपर्यन्तं प्रकृतीनामासां मार्गणास्वासु सततं बध्यमानत्वात् । "मिच्छस्स" इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्य जघन्यबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो भवति, भावना पुनरत्र नरकौघमार्गणायां यथाकृता तथैव कर्तव्या । "जिणस्स" इत्यादि, देवौघसौधर्ममार्गणयोर्जिननामकर्मणो जघन्यतो बन्धकालः सौधर्ममार्गणाया अजघन्यकायस्थितिसमयप्रमाणो बोद्धव्यः । "ईसाणे" इत्यादि, ईशानदेवमार्गणायां तीर्थकृन्नामकर्मणो जघन्यबन्धकालः स्वाऽजघन्यकायस्थितिप्रमाणोऽवसातव्यः, भावना त्वत्र सनत्कुमारादिमार्गणावद् विधेया । तथा स्त्यानर्द्धित्रिकमनन्तानुबन्धिचतुष्कं वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं तिर्यग्मनुष्यगती एकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजाती औदारिकाङ्गोपाङ्गं संहननषट्कं संस्थानषट्कं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयं खगतिद्वयं त्रसस्थावरे स्थिरषट्कमस्थिरषट्कमातपोद्योतनाम्नी गोत्रद्वयं चेति

पञ्चपञ्चाशत्प्रकृतीनां जघन्यबन्धकाल: "सव्वह होइ" इत्यादिना समयप्रमाणो ज्ञातव्य:, तत्र स्त्यानर्द्धित्रिकप्रभृतिप्रकृतिसप्तकस्य समयात्मकजघन्यबन्धकालविषये सास्वादनभावमाश्रित्य प्राग्वद् भावना कर्तव्या, शेषप्रकृतीनां त्वध्रुवबन्धित्वादेवैकसामयिको जघन्यो बन्धकाल: प्राप्यते ॥१२४-१२५॥

अथानतादिपञ्चानुत्तरपर्यन्तमार्गणासूत्तरप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालं प्रतिपादयति

होइ सलहुकायठिई गेविज्जतेसु आणयाईसुं ।
मिच्छाइअट्ठवज्जिअधुवणरदुगनवुरलाईण ॥ १२६ ॥
मिच्छस्स मुहुत्तंतो जिणस्स होइ ससअलहुकायठिई ।
सायाइबारवज्जाण सकायठिई अणुत्तरेसु भवे ॥ १२७ ॥(गीतिः)

(प्रे०) "होइ" इत्यादि, आनतप्राणताऽऽरणाऽच्युतरूपासु नवग्रैवेयकरूपासु च त्रयोदशमार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृत्यष्टकवर्जशेषैकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां मनुष्यद्विकौदारिकद्विकपञ्चेन्द्रियजातित्रसपराघातोच्छ्वासबादरपर्याप्तप्रत्येकनामकर्मप्रकृतीनां च जघन्यतया बन्धकाल: स्वकीयस्वकीयजघन्यकायस्थितिप्रमितो भवति, मार्गणास्वासु प्रकृतीनामासामेतावत्कालपर्यन्तमनवरतं बध्यमानत्वात् । "मिच्छस्स" इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्य जघन्यो बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽस्ति, अत्र भावना देवौघमार्गणावदवसेया । "जिणस्स" इत्यादि, जिननामकर्मणो जघन्यतया बन्धकाल: स्वकस्वकाऽजघन्यकायस्थितिप्रमाणो बोध्य:, एतद्विषयेऽपि भावना सनत्कुमारादिमार्गणोक्तपद्धत्यैव भावनीया । तथा स्त्यानर्द्धित्रिकं वेदनीयद्विकमनन्तानुबन्धिचतुष्कं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं संहननषट्कं संस्थानषट्कं विहायोगतिद्विकं स्थिरषट्कमस्थिरषट्कं गोत्रद्वयं चेति शेषाणां चतुश्चत्वारिंशत्प्रकृतीनां जघन्यबन्धकाल एकसामयिक: "सव्वह होइ" इत्यादिना ज्ञातव्य:, भावनाऽपि प्राग्वदवसेया । "साया" इत्यादि, विजयाद्यनुत्तररूपासु पञ्चसु मार्गणासु सातवेदनीयाऽसातवेदनीयहास्यरतिशोकाऽरतिस्थिरशुभयश:कीर्त्यस्थिराऽशुभाऽयश:कीर्तिनामकर्मरूपा द्वादशप्रकृतीर्वर्जयित्वा शेषाणां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्काऽप्रत्याख्यानावरणादिद्वादशकषायभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयागुरुलघूपघातनिर्माणवर्णादिचतुष्काऽन्तरायपञ्चकरूपाणां नवत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां पुरुषवेदमनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननसमचतुरस्रसंस्थानमनुष्यानुपूर्वीशुभविहायोगतित्रसचतुष्कसुभगत्रिकपराघातोच्छ्वासजिननामोच्चैर्गोत्ररूपाणां विंशत्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च जघन्यतो बन्धकाल: स्वकीयजघन्यकायस्थितिप्रमाणोऽस्ति, अनुत्तरसुराणां सम्यग्दृष्टित्वेन ध्रुवबन्धिकल्पत्वात्प्रकृतीनामासामेतावत्कालपर्यन्तं निरन्तरं बध्यमानत्वात् । 'सव्वह होइ' इत्यादिना सातवेदनीयप्रभृतिद्वादशप्रकृतीनां समयात्मको लघुर्बन्धकालो वेदयितव्य:, परावर्तमानभावेन हि बध्यमाना इमा: प्रकृतय: सन्ति ॥१२६-१२७॥

इदानीं पञ्चेन्द्रियत्रसकायसंज्ञिमार्गणासूत्तरप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालं विचारयन्नाह—

खुड्डगभवो धुवाणं पणिंदितससण्णिगेसु तो हीणो।
थीणद्धितिगाणाणं तित्थयरस्स भवे मुहुत्तंतो ॥ १२८ ॥

(प्रे०) "खुड्डगभवो" इत्यादि, पञ्चेन्द्रियौघत्रसौघसंज्ञिरूपासु मार्गणासु स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कलक्षणप्रकृतिसप्तकवर्जितशेषचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जघन्यो बन्धकालः क्षुल्लकभवप्रमाणोऽवसेयः,यतो हि मार्गणा एता जघन्यतया तावत्स्थितिकाः सन्ति, अत्र च तावत्कालं तासां सततं बन्धः। ननु प्रकृतमार्गणासु वर्तमानः कश्चित्सम्यग्दृष्टिजीवः सम्यक्त्वं त्यक्त्वा मिथ्यात्वं प्रपद्यते, अन्तर्मुहूर्तानन्तरं च पुनः सम्यक्त्वमासादयति, तदपेक्षया सम्यक्त्वद्वयान्तराले, अथवा प्रकृतमार्गणागतो देवः सम्यक्त्वात्पतित्वा मिथ्यात्वं प्राप्याऽन्तर्मुहूर्तादनन्तरं देवभवाच्च्युत्वैकेन्द्रियेषूत्पद्यते, तदपेक्षयाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो जघन्यबन्धकालः प्राप्तुं शक्यते,तथापि भवद्भिः प्रकृतप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालः कथमन्तर्मुहूर्तप्रमाणो नाभिहित इति चेन्न, एतत्प्रकारद्वयप्राप्ताऽन्तर्मुहूर्तकालापेक्षया क्षुल्लकभवप्रमाणप्रकृतमार्गणाजघन्यकायस्थितेरल्पतरत्वात्। 'थीणद्धि' इत्यादि, स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्करूपाणां सप्तानां प्रकृतीनां जघन्यतया बन्धकालः क्षुल्लकभवकालान्न्यूनो वर्तते; तद्यथा–कश्चिदुपशमसम्यग्दृष्टिर्देवः सम्यक्त्वतः पतित्वा सास्वादनगुणस्थानकं प्राप्नोति, तदनन्तरं यथासंभवं शीघ्रं कालं कृत्वैकेन्द्रियेषूत्पद्यते, तस्य दर्शितसास्वादनगुणस्थानकालप्रमाणो जघन्यबन्धकालः प्राप्यते, स च कालः क्षुल्लकभवादतीव न्यूनो दृष्टव्यः। 'तित्थस्स' इत्यादि, जिननाम्नो जघन्यबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽस्ति, तस्य भावनौघवत्कार्या। जिननामायुष्कचतुष्करूपं प्रकृतिपञ्चकं परित्यज्य शेषाणामध्रुवबन्धिनीनामष्टषष्टिप्रकृतीनां 'सव्वह होइ' इत्यादिना जघन्यो बन्धकाल एकसामयिकोऽधिगम्यः, अध्रुवबन्धित्वात् ॥१२८॥

सम्प्रति पर्याप्तपञ्चेन्द्रियप्रभृतिमार्गणासूत्तरप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालमाह

पज्जत्तपणिंदियतसचक्खूसु पणिंदियव्व सत्तण्हं।
सेसधुवबंधिणीण तित्थयरस्स य मुहुत्तंतो ॥ १२९ ॥

(प्रे०) "पज्जत्त" इत्यादि, पर्याप्तपञ्चेन्द्रियपर्याप्तत्रसचक्षुर्दर्शनमार्गणासु स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कलक्षणानां सप्तानां प्रकृतीनां जघन्यबन्धकालः पञ्चेन्द्रियौघमार्गणावज्ज्ञातव्यः। स च क्षुल्लकभवादपि न्यूनप्रमाणो ज्ञातव्यः। "सेस" इत्यादि, एतत्प्रकृतिसप्तकमृते शेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जिननामकर्मणश्चाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो जघन्यतया बन्धकालो विद्यते, तत्रापि मिथ्यात्वस्य नरकवत्त्रिविधप्रकारेण, जिनना०। ओघजघन्यबन्धकालवच्छेषध्रुवाणां च मार्गणाजघन्यकायस्थितिं यावद्बन्धेन जघन्यबन्धकालो भावनीयः। जिननामायुष्कचतुष्कवर्जितशेषाष्टषष्ट्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालः 'सव्वह होइ' इत्यादिना समयरूपोऽवसातव्यः, अध्रुवबन्धित्वात्॥१२९॥

अधुनौदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायामुत्तरप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालमुपदर्शयन्नाह

ओरालमीसजोगे होअइ धुववधिउरलाणं ।
तिखणूणो खुड्डुभवो अंतमुहुत्तं सुराइपचण्हं ॥ १३० ॥(उद्गीति)

(प्रे०) "ओराल" इत्यादि, औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्च जघन्यभूतो बन्धकालः त्रिक्षणन्यूनक्षुल्लकभवलक्षणस्वजघन्यकायस्थितिप्रमाणोऽस्ति, तथथा—औदारिकमिश्रमार्गणायां त्रिक्षणन्यूनक्षुल्लकभवात्मकजघन्यकायस्थितिका लब्ध्यपर्याप्तास्तिर्यग्मनुष्या एव वर्तन्ते, तेषां च प्रथममेवैकं गुणस्थानकं वर्तते, तस्मात्सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयस्तैरनवरतं बध्यन्ते, औदारिकशरीरनाम च तेषां तिर्यग्मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतीनामेव बन्धभावेन तद्विपक्षप्रकृतिबन्धाभावात्तैरनवरतं बध्यते, अतोऽभिहितप्रमाणो निरुक्तप्रकृतीनां जघन्यबन्धकाल उपपन्नो भवति । 'अंतमुहुत्तं' इत्यादि, सुरद्विकवैक्रियद्विकजिननामलक्षणस्य प्रकृतिपञ्चकस्य जघन्यतया बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तमस्ति, तदित्थम्—सुरादिप्रकृतिपञ्चकस्य बन्धकः सम्यग्दृष्टिरेव भवति, स च यदा प्रस्तुतौदारिकमिश्रमार्गणायां वर्तेत तर्हि जघन्यतोऽप्यन्तर्मुहूर्तकालमेव, तस्मात्प्रकृतिपञ्चकस्याऽस्य बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽवाप्यते । तथा शेषाणां वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयमनुष्यतिर्यग्गतिद्वयजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानषट्कमनुष्यतिर्यगानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकाऽऽतपोद्योतपराघातोच्छ्वासगोत्रद्वयरूपाणामेकोनषष्टिप्रकृतीनामध्रुवबन्धित्वाज्जघन्यबन्धकालः 'सव्वह होइ' इत्यादिना समयरूपोऽधिगम्यः ॥१३०॥

सम्प्रति वैक्रियमिश्राहारकमिश्रमार्गणयोरुत्तरप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालमाह

विउवाइदुमीसेसुं धुवपणपरघाइउरलतित्थाण ।
तेरहजिणाइवज्जाण कमा णेयो मुहुत्तंतो ॥ १३१ ॥

(प्रे०) 'विउवाइदुमीसेसु' इत्यादि, वैक्रियमिश्रमार्गणायां सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां पराघातोच्छ्वासबादरपर्याप्तप्रत्येकौदारिकशरीरजिननामप्रकृतीनां च जघन्यतया बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तरूपो ज्ञेयः । आहारकमिश्रमार्गणायां तु "तेरहजिणाइवज्जाण" इति जिननामसातवेदनीयाऽसातवेदनीयहास्यरतिशोकारतिस्थिरशुभयशःकीर्त्यस्थिराऽशुभायशःकीर्तिरूपास्त्रयोदशप्रकृतीः परिहृत्य शेषाणां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयाऽगुरुलघूपघातनिर्माणवर्णादिचतुष्काऽन्तरायपञ्चकलक्षणानामेकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां पुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वीसुखगतित्रसचतुष्कसुभगत्रिकपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाणामष्टादशमार्गणाप्रायोग्यध्रुवबन्धिप्रकृतीना च जघन्यबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो ज्ञातव्यः, वैक्रियमिश्राहारकमिश्रकाययोगमार्गणयोर्जघन्यत्वेनाऽन्तर्मुहूर्तमितकायस्थितिमत्त्वात्, तावत्कालं च तासां सततं बध्यमानत्वात् । वैक्रियमिश्रमार्गणायां वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयैकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजातिद्वयौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानषट्कतिर्यग्मनुष्या-

नुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रसस्थिरषट्कस्थावराऽस्थिरषट्काऽऽतपोद्योतगोत्रद्वयरूपाणामष्टचत्वारिंशत्शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जघन्यतो बन्धकाल: 'सव्वह होइ' इत्यादिना समयात्मकोऽवसातव्य: । ननु स्त्यानर्द्धित्रिकादिसप्तप्रकृतीनां वैक्रियमिश्रमार्गणायां सास्वादनगुणस्थानमपेक्ष्य समयप्रमाणो जघन्यबन्धकाल: सम्भवेत् , तत् कथं नोक्तम् ? इति चेद् उच्यते सास्वादनमपेक्ष्य समयप्रमाण: सप्तप्रकृतीनामासां बन्धकालस्तदा भवेद् यदा प्रकृतमार्गणावर्तिसम्यग्दृष्टि: सम्यक्त्वगुणस्थानतश्च्युत्वा समयमेकं सास्वादने स्थित्वा मार्गणान्तरं व्रजेत् , परं प्रस्तुते तु मिथ्यात्वसम्यक्त्वगुणस्थानयो: परावृत्तेरभावेनैतदसम्भवान्न प्रकृतसप्तप्रकृतीनां समयप्रमाणो जघन्यबन्धकाल: प्राप्यते, अतोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो जघन्यबन्धकालस्तासां प्रकृतीनां भणित इति । आहारकमिश्रकाययोगमार्गणायां तु जिननाममातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनां जघन्यबन्धकाल: समयप्रमाण:, तीर्थकृन्नामकर्मण एकसामयिकजघन्यबन्धकालविषये भावनेत्थं भावनीया, यथा—कश्चिज्जीवो मार्गणायां स्थित: मार्गणाया: प्रान्तसमये जिननामकर्मबन्धं प्रारभ्य मार्गणान्तरं याति तदा तीर्थकृन्नामकर्मणो बन्धस्यैकसामयिकत्वमुपलभ्यते । तथा शेषाणां द्वादशप्रकृतीना परावर्तमानत्वेन समयमात्रकालोऽधिगम्य:॥१२१॥

अथ पुरुषवेदादिमार्गणाध्रुवप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालमानं भण्यते—

मिन्नमुहुत्तं पुरिसाजयाणयणअसुहलेसभवियेसु ।
धुवतित्थाण णवरि अणथीणद्धितिगाण वा पुमे समयो ॥१२२॥ (गीति:)

(प्रे०) '**भिन्नमुहुत्त**' इत्यादि, पुरुषवेदाऽसंयमाचक्षुर्दर्शनाऽशुभलेश्यात्रयभव्यमार्गणासु सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जिननाम्नश्च जघन्यबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमितोऽस्ति । अत्राऽचक्षुर्दर्शनभव्यमार्गणयोर्भावना सर्वथौघवत्कार्या । अशुभलेश्यात्रये ध्रुवबन्धिनीनां जघन्यबन्धकालो जघन्यकायस्थित्या, जिननाम्नस्तु जघन्यकायस्थितितोऽधिकरूपोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणकालो जघन्यबन्धकालतया प्राप्यते । असंयममार्गणायामष्टचत्वारिंशत्प्रकृतप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालो जघन्यकायस्थित्या प्राप्यते । पुरुषवेदे तूक्ताऽष्टचत्वारिंशत्प्रकृतिभ्यो मिथ्यात्वाष्टकरहितशेषचत्वारिंशत्प्रकृतीनां जघन्यबन्धकालो जघन्यकायस्थित्या प्राप्यते, तत्राऽपि मध्यमकषायाष्टकस्य मिथ्यात्वगुणस्थानजघन्यकालापेक्षया चतुर्थगुणस्थानजघन्यकालापेक्षया वा प्राप्यते तथाऽप्यत्र कालद्वये य: कालोऽल्पतर: स एव जघन्यबन्धकालतया ग्राह्य: । तथैव मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽपि जघन्यबन्धकालो ज्ञेय: । अनन्तानुबन्धिचतुष्कस्त्यानर्द्धित्रिकरूपस्य प्रकृतिसप्तकस्य जघन्यबन्धकाल: समयप्रमाण एकेन मतेन प्राप्यते, तद्घटनेत्थम्—य: कश्चित्प्रकृतमार्गणावर्ती मनुष्यस्तिर्यङ् वोपशमसम्यक्त्व प्राप्य तत: पतित्वा सास्वादनभाव समयमेकं प्राप्नोति तदनन्तरं देवीतयोत्पद्य मार्गणान्तरं प्राप्नोति तदा तस्य जीवस्य सास्वादनभावे प्रकृतप्रकृतिसप्तकस्य जघन्यबन्धकाल: समयप्रमाणो लभ्यत इति समयप्रमाण काल: 'णवरि' इत्यादिनाऽभिहित: । 'वा'कारेण एतत्प्रकृतिसप्तकस्य जघन्यबन्धकाल: समयादधिकोऽन्तर्मुहूर्तादि-

प्रमाणो ऽवाप्यते, तद्योग्यं त्वेतत्—सम्यक्त्वादितः पतित्वाऽवाप्तसास्वादनभावो जीवो यदा समयान्तरे कालं करोति तदा पुरुषवेदाद् भिन्नवेदे नोत्पद्यते, तथैव तिर्यग्मनुष्यगतिस्थो जीवः देवगतितोऽन्यगतिषु नोत्पद्यते, देवनारकौ तु मनुष्यगतितो भिन्नगतौ च नोत्पद्येते, ततः सास्वादनभावे यावदल्पकालं स्थित्वा पुरुषवेदादेर्भिन्नवेदादिषूत्पद्यते तदा तावत्प्रमाणकालः प्रकृतप्रकृतिसप्तकस्य जघन्यबन्धकालतया प्राप्यते, अतः 'वा' कारेण मतद्वयस्य संग्रहो ज्ञातव्यः ।

तथाऽपगतवेदमार्गणायां स्वप्रायोग्यज्ञानावरणीयाद्येकविंशतिप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालस्तु 'सव्वइ होइ' इत्यादिना समयप्रमितोऽवसातव्यः, तद्यथा—नवमगुणस्थानके पुरुषवेदविच्छेदानन्तरं समयं यावदवेदीभूय म्रियते, अथवा श्रेणितोऽवतरन् स्वस्वबन्धस्थाने समयमेकं ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसातवेदनीयसंज्वलनचतुष्कयशःकीर्त्युच्चैर्गोत्रान्तरायपञ्चकलक्षणा एकविंशतिप्रकृतीर्बध्वा म्रियते तदाऽपगतवेदमार्गणायां प्रकृतीनामासां समयरूपो बन्धकाल उपलब्धो भवति ॥१३२॥

अधुना क्रोधादिमार्गणासूत्तरप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालं दर्शयति

कोहाईसुं चउसुं समयो सव्वाण होइ सयमुज्झो ।
होइ विसेसो अंतोमुहुत्तलहुकायठिइगमये ॥ १३३ ॥

(प्रे०) 'कोहाईसु' मित्यादि क्रोधमानमायालोभलक्षणासु चतसृषु मार्गणासु सर्वासां ध्रुवाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जघन्यबन्धकाल एकसामयिकोऽस्ति यतो हि मार्गणा इमा जघन्यतया समयमितकायस्थितिमत्यः सन्ति । 'सयमुज्झो' इत्यादि जघन्यतोऽपि कायस्थितिर्येषां मतेऽन्तर्मुहूर्तात्मिका तेषां मते श्रेणौ यासामेकत्रिंशतो ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धविच्छेदो जायते तासां प्रकृतीनां जघन्यबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो ज्ञेयः यदि प्रकृतमार्गणाः कालकरणानन्तरमपि जघन्यतोऽप्यन्तर्मुहूर्तमवतिष्ठन्ते, अन्यथा तु जघन्यतोऽपि यावत्कालमवतिष्ठन्ते तावत्कालस्तासां ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालतया प्राप्यते । शेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनां तु जघन्यबन्धकालसमयप्रमाणो विज्ञेयः, स चेत्थम्—यदा समयप्रमाणावशिष्टायां क्रोधाद्यद्धायां कश्चिज्जन्तुः संयमात् पतित्वा मिथ्यात्वं व्रजति, तत्र च समयं यावन्मिथ्यात्वादिषोडशध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धं कृत्वा मार्गणान्तरं प्राप्नोति तदा तस्य जीवस्य समयप्रमाणकालस्तासां प्रकृतीनामुपलभ्यते । शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां तु समयप्रमाणकालोऽध्रुवबन्धित्वादुपलभ्यते ॥१३३॥

साम्प्रत चतसृषु मतिज्ञानादिमार्गणासूत्तरप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालं विचारयन्नाह

णेयो भिन्नमुहुत्तो मइसुअणाणेसु सम्मुवसमेसुं ।
सगधुवबंधीण तहा पुणवीसणराइतित्थाण ॥ १३४ ॥

(प्रे०) "णेयो" इत्यादि, मतिज्ञानश्रुतज्ञानसम्यक्त्वौपशमसम्यक्त्वलक्षणासु चतसृषु स्वप्रायोग्याणां मिथ्यात्वाद्यष्टप्रकृतिवर्जनवत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां 'णरदुगवइराणि उरलं च उरलोवंग

पणिंदियतसपरघूसासबायरतिगाणि । पुमसुखगइ१ढमागिइसुहगतिगुच्च' इति संग्रहगाथावयवेषु भणितानां मनुष्यद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननौदारिकद्विकपञ्चेन्द्रियजातित्रसनामपराघातोच्छ्वास-बादरपर्याप्तप्रत्येकपुरुषवेदसुखगतिसमचतुरस्रसंस्थानसुभगत्रिकोच्चैर्गोत्ररूपाणामेकोनविंशतिप्रकृतीनाञ्च जघन्यत्वेन बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तमानो मिथ्यात्वद्वयान्तरालकालरूपजघन्यसम्यक्त्वकालप्रमाणो ज्ञेयः, प्रस्तुतमार्गणासु जिननामकर्मणश्चाऽन्तर्मुहूर्तमितो बन्धकाल ओघवत्प्राप्यते। तथा वेदनीयद्वयं हास्यादियुगलद्वय देवद्विकं वैक्रियद्विकमाहारकद्विकं स्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिनामानि चेत्यष्टादशाना शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जघन्यतया बन्धकालः "स०वह होइ" इत्यादिना, समयात्मकोऽवगन्तव्यः, तदित्थम्—उपशमश्रेणितोऽवपतन्नष्टमगुणस्थानषष्ठभागे समयमेकं देवद्विकवैक्रियद्विकप्रकृतिचतुष्कं बद्ध्वा मरणमवाप्नोति, तदैतत्प्रकृतिचतुष्कस्यैकसामयिको बन्धकालः प्राप्तो भवति । समयमेकं सप्तमगुणस्थानक आहारकद्विकं बद्ध्वा मृत्युमवैति तदाहारकद्विकस्य समयमात्रो बन्धकालो लभ्यते । शेषप्रकृतप्रकृतीना तु समयरूपो बन्धकालः परावर्तमानतया बध्यमानत्वेन लभ्यः ॥१३४॥

अथाऽवधिज्ञानाऽवधिदर्शनमार्गणाद्वये प्रकृतमुच्यते

ओहिदुगे णेयो धुवचउदसपणिंदियाइतित्थाण ।
मिस्समुहुत्तं व भवे मिस्समुहुत्त तु पणणराईणं ॥१३५॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'ओहिदुगे" इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकवर्जशेषैकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां 'पणिंदियतसपरघूसासबायरतिगाणि । पुमसुखगइपढमागिइसुहगतिगुच्च' इति संग्रहगाथावयवेषु प्रतिपादितानां चतुर्दशानां प्रकृतीनां जिननाम्नश्च जघन्यबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽधिगम्यः । वा शब्दो विकल्पद्योतकः, विकल्पपक्षे मतान्तरेण समयप्रमाणप्रस्तुतमार्गणासत्कजघन्यकायस्थितितुल्योऽवसेयः। प्रथमप्रकारेणाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणबन्धकालभावना पुनरनन्तरोक्तमतिज्ञानमार्गणावत्कार्या । मतद्वयेन "पणणराईणं" ति मनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्य जघन्यतो बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तमेव, यत आसां प्रकृतीनां बन्धका अत्र देवनारका एव वर्तन्ते, तेषां च जघन्यतोऽपि प्रस्तुतमार्गणाकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाण एवाऽस्ति, तदानीं चैता प्रकृतीर्निरन्तरं ते बध्नन्ति ॥१३५॥

अथ केवलज्ञानकेवलदर्शनमार्गणयोरज्ञानादिमार्गणासु चोत्तरप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालं प्रतिपादयितुमाह

सायस्स केवलदुगे मिस्समुहुत्तं अणाणदुगमिच्छे ।
धुवबंधीणं अमणे खुड्डभवो असन्निये णत्थि ॥१३६॥

(प्रे०) "सायस्स" इत्यादि, केवलज्ञानकेवलदर्शनाख्यमार्गणाद्वये सातवेदनीयस्य जघन्यबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽस्ति, सयोगिगुणस्थानकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तमितकायस्थिति-

मत्वात् । "अणाणदुग" इत्यादि, मत्यज्ञानश्रुताज्ञानमिथ्यात्वरूपासु तिसृषु मार्गणासु सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जघन्यात्मको बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तमात्रोऽवसेयः, तद्यथा–मार्गणास्वासु सम्यग्दृष्टिः कश्चित् प्राणी सम्यक्त्वं त्यक्त्वाऽऽयातः, अन्तर्मुहूर्तं चात्र स्थित्वा पुनरपि सम्यक्त्वं लब्ध्वा प्रकृताऽज्ञानादिमार्गणाप्रतिपक्षमार्गणासु याति तदा सम्यक्त्वद्वयान्तराले सोऽज्ञानादिमार्गणावर्ती ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामन्तर्मुहूर्तकालं बन्धं प्रकरोति । तथा मार्गणास्वासु जिननामाहारकद्विकायुश्चतुष्करूपप्रकृतिसप्तकवर्जशेषषट्पष्टयध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालः, 'सव्वह होइ' इत्यादिना समयप्रमाणोऽवसातव्यः, अध्रुवबन्धित्वात् । "अमणे" इत्यादि, असंज्ञिमार्गणायां सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीना जघन्यतया बन्धकालः क्षुल्लकभवप्रमितोऽस्ति, मार्गणाया अस्या जघन्यकार्यस्थितेस्तावन्मितत्वात् तावत्काल चानवरतं तासां बध्यमानत्वाच्च । तथा जिननामाहारकद्विकायुष्कचतुष्कवर्जशेषषट्षष्टयध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालः "सव्वद्द होइ" इत्यादिना समयमितोऽवसेयः । "अभविये" इत्यादि, अभव्यमार्गणायां ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालो नास्ति, यतो हि मार्गणायामस्यां सर्वदैव ता बध्यन्ते, मार्गणाया अस्या अनादिध्रुवत्वात् । तथा जिननामादिप्रकृतिसप्तकवर्जशेषषट्षष्टयध्रुवबन्धिप्रकृतीना तु जघन्यबन्धकालः "सव्वद्द होइ" इत्यादिना समयप्रमाणो वेदयितव्यः, अध्रुवबन्धित्वात् ॥१३६॥

इदानीं परिहारविशुद्धिप्रभृतिमार्गणासूत्तरप्रकृतीनां जघन्यं बन्धकालं चिकथयिषुराह

परिहारदेसवेअगमीसेसु कमाऽत्थि सलहुकायठिई ।
चउदसवारसचउदसवारससायाइवज्जाण ॥१३७॥

(प्रे०) "परिहार" इत्यादि, परिहारविशुद्धिसंयममार्गणायां 'सायेयरदुजुगलथिरसुहजसअथिरअसुहअजसाणि । आहारदुग' मितिसंग्रहगाथावयवेषु प्रतिपादिताः सातवेदनीयादिचतुर्दशप्रकृतीर्वर्जयित्वा ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयाऽगुरुलघूपघातनिर्माणवर्णचतुष्काऽन्तरायपञ्चकलक्षणानामेकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां पुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वीसुखगतित्रसचतुष्कसुभगत्रिकपराघातोच्छ्वासजिननामोच्चैर्गोत्ररूपाणा चैकोनविंशत्यध्रुवबन्धिप्रकृतीना जघन्यो बन्धकालः स्वकीयजघन्यकायस्थितिसमयप्रमाणोऽस्ति, मार्गणाया अस्या जघन्यकायस्थितिरन्तर्मुहूर्तप्रमाणा येषां मते विद्यते, तेषां मतेनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमितो जघन्यबन्धकालः, येषां मते समयप्रमाणा कायस्थितिः, तेषां मतेन तु स्वप्रायोग्याणां सर्वासां प्रकृतीनां जघन्यबन्धकाल एकसामयिको अधिगम्यः । परिहारविशुद्धिमार्गणाया इयती कायस्थितिः कथमिति चेदुच्यते, परिहारविशुद्धिसंयममङ्गीकृत्य समयानन्तरमन्तर्मुहूर्तानन्तरं वा पञ्चत्वं यो जीवः प्राप्नोति तदपेक्षयेयती कायस्थितिरुपपद्यते । एतन्मार्गणाया अन्तर्मुहूर्तमितजघन्यकायस्थितिमन्तुर्मते सातवेदनीयप्रभृतिचतुर्दशप्रकृतीनामेकसामयिको जघन्यबन्धकालः 'सव्वद्द होइ' इत्यादिना ज्ञातव्यः, भावना पुनरेवम्–सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनां परावर्तमानतया

बध्यमानत्वेनैकसामयिको बन्धकालः प्राप्यते, आहारकद्विकस्य तु समयप्रमाणो बन्धकालो यदा सप्तमगुणस्थानके समयमेकमाहारकद्विकं बध्वा कश्चिज्जीवो मरणमुपयाति तदा प्राप्यते। देशविरतमार्गणायां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्कभयकुत्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णादिचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणां पञ्चत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां सातवेदनीयप्रभृतिद्वादशप्रकृतिवर्जानां पुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वीसुखगतित्रसचतुष्कसुभगत्रिकपराघातोच्छ्वासजिननामोच्चैर्गोत्ररूपाणामेकोनविंशत्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च जघन्यो बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमितस्वकीयजघन्यकायस्थितिप्रमाणो बोद्धव्यः। तथा सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनां जघन्यतो बन्धकालः समयमेकं 'सव्वह होइ' इत्यादिना वेदयितव्यः, परावर्तमानत्वेन बध्यमानत्वात्। क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां सातवेदनीयादयो द्वादशाऽऽहारकद्विकं चेति चतुर्दशप्रकृतिवर्जानां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्काऽनन्तानुबन्धिचतुष्कवर्जशेषद्वादशकषायभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां पुरुषवेदनरद्विकसुरद्विकपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानवज्रर्षभनाराचसंहननशुभखगतित्रसचतुष्कसुभगत्रिकपराघातोच्छ्वासजिननामोच्चैर्गोत्ररूपाणां च चतुर्विंशत्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जघन्यतया बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमितस्वीयलघुकायस्थितिप्रमाणो ज्ञातव्यः, प्रकृतमार्गणाजघन्यकायस्थितेस्तावन्मितत्वात्तावत्कालं तासां निरन्तरबध्यमानत्वाच्च। सातवेदनीयादिचतुर्दशप्रकृतिसत्कजघन्यबन्धकालस्यैकसामयिकत्वं 'सव्वह होइ' इत्यादिनाऽवसेयम्, भावना प्राग्वद्। मिश्रमार्गणायां च सातवेदनीयप्रभृतियुगलषट्कवर्जानां शेषाणां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्काऽप्रत्याख्यानावरणादिद्वादशकषायभयकुत्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णादिचतुष्कागुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां पुरुषवेददेवमनुष्यगतिद्वयपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानवज्रर्षभनाराचसंहननसुखगतित्रसचतुष्कसुभगत्रिकपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्रलक्षणानां त्रयोविंशत्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च जघन्यबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तमितस्वलघुकायस्थितिप्रमितोऽस्ति। 'सव्वह होइ' इत्यादिना समयलक्षणो जघन्यतो बन्धकालः सातवेदनीयप्रमुखद्वादशप्रकृतीनामधिगन्तव्यः ॥१३७॥

सम्प्रति लेश्यामार्गणासूत्तरप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालं प्ररूपयिषुरादौ तावत् तेजोलेश्यामार्गणायां तन्निरूपयन्नाह

तेऊअ मुहुत्तंतो पणपरघाआइचउसुराईणं।
समयोणद्धितिगाईवज्जिअ धुवबंधिपयडीण ॥१३८॥
ओरालस्स भवे दससहस्सवासाणि ....।

(प्रे०) 'तेऊअ' इत्यादि तेजोलेश्यामार्गणायां पराघातोच्छ्वासबादरत्रिकसुरद्विकवैक्रियद्विकरूपाणां नवप्रकृतीनां स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कलक्षणप्रकृतिसप्तकवर्जशेषचत्वारिंशद्ध्रुव-

बन्धिप्रकृतीनां च जघन्यो बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो वर्तते, मार्गणाया अस्याः कायस्थितेर्जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणत्वात् । "ओरालस्स" इत्यादि, औदारिकशरीरनामकर्मणो जघन्यत्वेन बन्धकालो दशसहस्रसंवत्सराणि भवति, तदित्थम्—तेजोलेश्यामार्गणायामौदारिकशरीरनामकर्मबन्धविधायिनो देवा एव भवन्ति, नान्ये तिर्यङ्मनुष्याः, यत एते मार्गणायामस्यां देवप्रायोग्या एव प्रकृतीर्बध्नन्ति, देवानां च जघन्या कायस्थितिर्दशसहस्रवर्षप्रमिताऽस्ति, ते तु मार्गणायामस्यामौदारिकशरीरनामकर्मप्रकृतिं दशसहस्रवर्षपर्यन्तमनवरतं बध्नन्ति । तथा स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्करूपस्य प्रकृतिसप्तकस्य वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यङ्मनुष्यगतिद्वयैकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजातिद्वयौदारिकाङ्गोपाङ्गाहारकद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कतिर्यङ्मनुष्यानुपूर्वीद्वयविहायोगतिद्वयत्रसस्थिरषट्कस्थावराऽस्थिरषट्काऽऽतपोद्योतजिननामगोत्रद्वयलक्षणानामेकपञ्चाशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनां चेत्यष्टपञ्चाशत्प्रकृतीनां "सव्वह होइ" इत्यादिना समयलक्षणो जघन्यबन्धकालो वेद्यः । तत्राऽपि स्त्यानर्द्धित्रिकादिप्रकृतिसप्तकस्यैकसामयिकबन्धकालो मार्गणाया अस्याः प्रान्तसमये सास्वादनभावमवाप्य मार्गणापरावृत्तिविधातुः कस्यचिज्जीवस्यैव प्राप्यते । जिननाम्न एकसमयो बन्धकालस्तु यः कश्चिन्मनुष्यस्तेजोलेश्यायां चरमसमये वर्तमानो जिननाम्नो नूतनबन्धप्रारम्भानन्तरं पद्मलेश्यां प्राप्नोति तस्यैवाऽवाप्यते । शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां त्वध्रुवबन्धित्वादेव समयप्रमाणो बन्धकालो विज्ञेयः ।

अथ पद्मलेश्यामार्गणायां तदाह

.... पम्हलेसाए ।
णेयो अब्भहिया दो अयरा ओरालियदुगस्स ॥१३९॥
होइ मुहुत्तंतो सुरविउव्वदुगसगपणिंदियाईणं ।
सगथीणद्धितिगाइगवज्जिअधुवबंधिणीण च ॥१४०॥

(प्रे०) "पम्हलेसाए" इत्यादि, पद्मलेश्यामार्गणायामौदारिकशरीरौदारिकाङ्गोपाङ्गरूपप्रकृतिद्वयस्य साधिकौ द्वौ सागरोपमौ जघन्यतो बन्धकालोऽस्ति, तद्यथा—एतन्मार्गणायामस्य प्रकृतिद्वयस्य बन्धकाः सनत्कुमारादयः सुरा भवन्ति, तन्मध्ये येषां जघन्यकायस्थितिः पल्योपमाऽसङ्ख्येयभागाधिकसागरोपमद्वयप्रमिता, तेषामौदारिकद्विकबन्धो निरन्तरं तावत्कालं प्रवर्तते। "होइ" इत्यादि, सुरद्विकवैक्रियद्विकपञ्चेन्द्रियजातित्रसपराघातोच्छ्वासबादरत्रिकरूपाणामेकादशप्रकृतीनां स्त्यानर्द्धित्रिकादिप्रकृतिसप्तकवर्जानां चत्वारिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च जघन्यबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तं भवति । तदेवम्—प्रकृतीनामासामीदृशो बन्धकालो मार्गणायामस्या तिर्यङ्मनुष्यापेक्षयैव संपद्यते, यतो मार्गणाया अस्या लघ्वी कायस्थितिरन्तर्मुहूर्तप्रमाणा तेष्वेव संभवति, तत्र चैताः प्रकृतीरेतावत्कालं ते निरन्तरं बध्नन्ति । तथा स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्करूपाणां सप्ताध्रुवबन्धिप्रकृतीनां वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयाहारकद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कतिर्यग्मनु–

ष्यानुपूर्वीद्वयविहायोगतिद्विकस्थिरपट्काऽस्थिरपट्कजिननामोद्योतगोत्रद्वयरूपाणां पञ्चचत्वारिंशद्-ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च जघन्यबन्धकाल एकसमयः "सव्वह होइ" इत्यादिगाथया ज्ञातव्यः, ननु कषायाधिकस्याऽपि समयमात्रो बन्धकालो वक्तव्यः स्यात्, तद्यथा–यो जीवः संयमाच्च्युत्वा समयमात्रं सास्वादनगुणस्थानं प्राप्नोति तदनन्तरं च लेश्यान्तरं गच्छति, तस्य निरुक्तप्रकृतीनां समयप्रमाणो बन्धः संभवतीति चेत्, सत्यम्, यदि संयमतः सास्वादनगुणस्थानकं प्राप्तस्य पूर्व-लेश्याकालः समयमात्रो भवेत् तदा बन्धकालः समयमात्रः सम्भवेत्, यदि च सास्वादनगुण-स्थानानन्तरं पूर्वलेश्याकालोऽन्तर्मुहूर्तमेव, तदा बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तमेव प्राप्यते, यत्वत्र प्रकृत-बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तमात्रो दर्शितः, तस्माद् द्वितीयः प्रकारोऽत्र प्रधानीकृत इति । एवं तेजोलेश्या-शुक्ललेश्ययोरपि भावनीयम् ॥१३९-१४०॥

अथ शुक्ललेश्यामार्गणायामुत्तरप्रकृतीनां जघन्यं बन्धकालं दर्शयितुमाह

सुक्काए णेयो सगपणिदिआइधुवबंधिचत्ताणं ।
भिन्नमुहुत्तं अयरा अट्ठारस णरउरलदुगस्स ॥१४१॥

(प्रे०) "सुक्काए" इत्यादि, शुक्ललेश्यामार्गणायां पञ्चेन्द्रियजातित्रसपराघातोच्छ्वास-बादरत्रिकरूपाणां सप्तप्रकृतीनां स्त्यानर्द्धित्रिकादिप्रकृतिसप्तकवर्जशेषचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च जघन्यतो बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो ज्ञेयः, भावना तु पद्मलेश्यावत्कार्या। "अयरा" इत्यादि, मनुष्यगतिमनुष्यानुपूर्व्यौदारिकशरीरौदारिकाङ्गोपाङ्गप्रकृतिचतुष्कस्य जघन्यो बन्धकालोऽष्टादश-सागरोपमाणि ज्ञातव्यः, भावना पुनरेवम्–मार्गणायामस्यां देवा एव प्रकृतिचतुष्कस्याऽस्य बन्धकाः सन्ति, तेष्वप्यानतादयो देवा एव, नापरे, तेष्वपि आनतदेवानामेवाऽष्टादशसागरोपमप्रमाणा जघन्या कायस्थितिर्विद्यते, न परेषाम्, तस्मात् त एव जघन्यतोऽष्टादशसागरोपमकालपर्यन्तमे-तत्प्रकृतिबन्धकत्वेनोपलभ्यन्ते । तिर्यग्मनुष्या अपि मार्गणायामस्यामुपलभ्यन्ते, पर ते एतत्प्रकृति-चतुष्कं नैव बध्नन्ति, एतन्मार्गणास्थानां तेषां देवप्रायोग्यप्रकृतिबन्धविधायित्वात् । स्त्यानर्द्धि-त्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कलक्षणस्य प्रकृतिसप्तकस्य वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयदेवगति-वैक्रियद्विकाहारकद्विकसंहननपट्कसंस्थानपट्कदेवानुपूर्वीखगतिद्वयस्थिरपट्काऽस्थिरपट्कजिननाम-गोत्रद्वयरूपाणां चतुश्चत्वारिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च "सव्वह होइ" इत्यादिना समयमेकं जघन्यबन्ध-कालो ज्ञेयः, भावना पूर्ववत्कर्तव्या । अत्राऽयं विशेषः–देवद्विकवैक्रियद्विकयोः समयमात्रो जघन्य-बन्धकालः श्रेणेरवरोहकस्य बन्धसमये कालकरणेनाऽवसातव्यः । तथा पञ्चमनोयोगपञ्चवचनयोगकाय-योगौघौदारिकवैक्रियाहारककार्मणकाययोगाऽकषाययथाख्यातसंयमाऽनाहारकरूपासु शेषाष्टादशमार्ग-णासु सर्वासां स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालः समयप्रमाणोऽत्राऽनुक्तोऽपि 'सव्वह होइ जहण्णो कालो समयो अबज्झमाणाण' इत्यादिग्रन्थेन बोध्यः ॥१४१॥

सकलमार्गणासु स्वप्रायोग्याणामायुष्कवर्जानामुत्तरप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालं निरूप्य साम्प्रत-मुत्कृष्टबन्धकालं निरूपयन्नादावचक्षुर्दर्शनभव्यमार्गणाद्वये तन्निरूपयति

ओघव्व गुरुकालो धुवबंधीणं अचक्खुभविएसुं ।
णवरि अणाइअणंतो भंगो भवियम्मि णेव भवे ॥१४२॥

(प्रे०) "ओघव्व" इत्यादि, अचक्षुर्दर्शनभव्यमार्गणयोः सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां प्रकृष्टबन्धकाल ओघवद् विज्ञातव्यः, तद्यथा अचक्षुर्दर्शनमार्गणाऽनाद्यनन्तानादिसान्तरूपा वर्तते, भव्यमार्गणा चानादिसान्तरूपा वर्तते, अतो ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालोऽचक्षुर्दर्शनमार्गणायामनाद्यनन्ताऽनादिसान्तसादिसान्तरूपेण त्रिविधो विज्ञेयः, भव्यमार्गणायां चाऽनादिसान्तसादिसान्तरूपेण द्विविधो विज्ञेयः, भावना पुनरिहौघतोऽवसेया । भव्यमार्गणायां ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां प्रकृष्टबन्धकालस्यौघवद्योऽतिदेशः कृतः, स न युक्तः, यतो हि ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां प्रकृष्टबन्धकालोऽनाद्यनन्तरूपोऽप्योघे प्रतिपादितः स चेह भव्यमार्गणाया एवाऽनादिसान्तत्वादनुपपन्न इत्यतिप्रसङ्गदोषवारणाय "णवरि" इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति--भव्यमार्गणायां ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालतयाऽनाद्यनन्तभङ्गो नास्ति, एतन्मार्गणाया अनादिसान्तरूपत्वात् ॥१४२॥

इदानीमचक्षुर्दर्शनभव्यमार्गणाद्वय उक्तत्वात्तद्व्यतिरिक्तशेषमार्गणासु स्वप्रायोग्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां गुरुबन्धकालं लाघवार्थं पूर्वार्धेनातिदिशन् , तथा "परम"इत्याद्युत्तरार्धेन "णाणतिगे" इत्यादिगाथया चातिदिष्टकाले यदतिप्रसक्तं तदपाकुर्वन्नाह

अण्णह धुवबंधीण सप्पाउग्गाण सगुरुकायठिई ।
परमइमिच्छाईण सुरसुक्कासु इगतीसुवही ॥१४३॥
णाणतिगे ओहिम्मि य सम्मत्ते वेअगे मुणेयव्वो ।
मज्झऽट्ठकसायाणं अहिया तेत्तीसजलही वा ॥१४४॥

(प्रे०) "अण्णह" इत्यादि, अनन्तरोक्तमार्गणाद्वयेऽव्यतिरिक्तशेषमार्गणासु स्वप्रायोग्याणां ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां प्रकृष्टबन्धकालः स्वोत्कृष्टकायस्थितिप्रमाणो बोध्यः, कायस्थितिं यावत्संततं बध्यमानत्वात् । 'परम' इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति–देवौघशुक्ललेश्यामार्गणाद्वये मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्करूपस्य प्रकृत्यष्टकस्य प्रकृष्टबन्धकाल एकत्रिंशत्सागरोपमप्रमाणोऽवसातव्यः, कथमितिचेदुच्यते, प्रकृतमार्गणाद्वयस्योत्कृष्टकायस्थितिकालस्त्वनुत्तरदेवापेक्षया वर्तते, अनुत्तरसुराश्च प्रकृतप्रकृतीर्नैव बध्नन्ति, सम्यग्दृष्टित्वात्तेषाम् , अत उत्कृष्टस्थितिकनवमग्रैवेयकाऽपेक्षया प्रस्तुतबन्धकालोऽवाप्यते, तद्यथा–एतन्मार्गणयोर्वर्तमानो नवमग्रैवेयकस्थः कश्चिन्मिथ्यादृष्टिदेवः प्रकृष्टतया स्वकीयोत्कृष्टैकत्रिंशत्सागरोपमप्रमाणाऽऽयुःस्थितिं यावदेतत्प्रकृत्यष्टकं बध्नाति। शुक्ललेश्याया पुनरेकत्रिंशत्सागरोपमाण्यन्तर्मुहूर्तेनाधिकानि वाच्यानि,नृभवसत्कान्त-

मुहूर्तस्याधिकतया लाभात् । "णाण" इत्यादि; मतिश्रुतावधिज्ञानरूपासु तिसृषु मार्गणासु, अवधिदर्शनमार्गणायां सम्यक्त्वौघक्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणाद्वये चेतिसमुदितषण्मार्गणास्वप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपाणां मध्यमाष्टकषायाणां गुरुबन्धकालः साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणो वेदयितव्यः, तद्यथा–आसु मार्गणासु विद्यमाना अनुत्तरसुरास्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमलक्षणस्योत्कृष्टायुःसमाप्तिं यावन्मध्यमाष्टकषायान् बध्नतस्ततश्च च्युताः सन्तो मनुष्यभवमागत्य संयमलाभं यावदपि बध्नन्ति, तल्लाभे जाते सति तद्बन्धविच्छेदो जायते, इत्थं साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणो बन्धकाल उक्तप्रकृतीनामुपपद्यते । "वा" इति शब्दो विकल्पद्योतकः, विकल्पपक्षे पुनः प्रत्याख्यानावरणप्रकृतीनां प्रकृतबन्धकालो मतान्तरेण साधिकद्वाचत्वारिंशत्सागरोपमप्रमाणः, यतोऽस्मिन्मते देशविरताविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानयोः सम्मिलितकालः तावत्प्रमाणः, अन्येषां मते पुनरस्यैव कषायाष्टकस्य बन्धकालः स्वकायस्थितिप्रमाणो वा बोद्धव्यः, यतस्तन्मताभिप्रायेणाऽविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानं तावत्कालं निरन्तरं प्राप्यते तत्र च प्रकृतप्रकृत्यष्टकस्य निरन्तरं बन्धो भवति । तथा प्रकृतमार्गणासु शेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनां स्वगुरुकायस्थितिप्रमाण उत्कृष्टबन्धकालः "अप्पाह"इत्यादिना ज्ञातव्यः ॥१४३-४॥

अथ सर्वासु मार्गणासु ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालमभिधायाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनां स निरूप्यते–

सव्वासु मुहुत्तंतो अवक्खमाणाण अधुवबंधीणं ।
सप्पाउग्गाण गुरू आउगवज्जाण विण्णेयो ॥१४५॥

(प्रे०) "सव्वासु" इत्यादि, सर्वासु चतुःसप्तत्यधिकशतमार्गणासु देवाद्यायुष्कचतुष्कवर्जानां स्वप्रायोग्याणां वक्ष्यमाणेतराऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनां प्रकृष्टो बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो विज्ञेयः, कुतः ? इति चेदुच्यते, यासामध्रुवबन्धिप्रकृतीना बन्धो गुणप्रत्ययेन भवप्रत्ययेन वा ध्रुवतया न प्राप्यते तासा प्रकृतीना बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तादधिकतया न प्राप्यत इति हेतोः ॥१४५॥

अथ यासु मार्गणासु यासां प्रकृतीनां भवनिमित्तेन गुणनिमित्तेन चान्तर्मुहूर्तापेक्षया गुरुतरो बन्धकालस्तासु मार्गणासु तासां प्रकृतीनां बन्धकालं दर्शयितुकाम आदौ तावन्नरकौघमार्गणायामाह–

णिरये गुरुकायठिई होइ तितिरियाइणवुरलाईणं ।
सा देसूणा जेयो सत्तपुमाइतिणराईणं ॥१४६॥
अब्भहिय अयरतिग जिणस्स · ··· ।

(प्रे०) "णिरये" इत्यादि, नरकौघमार्गणायां तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रौदारिकद्विकपञ्चेन्द्रियजातित्रसपराघातोच्छ्वासबादरत्रिकरूपाणां द्वादशप्रकृतीनां प्रकृष्टतया बन्धकाल एतन्मार्गणाया गुरुकायस्थितिप्रमितो बोद्धव्यः, तदित्थम्–नरकौघमार्गणायाः सप्तमनरकान्तर्गतत्वेनोत्कृष्टकायस्थितिः त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणा विद्यते, मिथ्यादृष्टिः सप्तमनारको भवप्रत्ययेन त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमं यावत् तिर्यग्द्विकादिद्वादशप्रकृतीर्निरन्तरं बध्नाति । "सा देसूणा" इत्यादि, पुरुषवेदशुभविहायो-

गतिसमचतुरस्रसंस्थानसुभगसुस्वरादेयोच्चैर्गोत्ररूपाणां सप्तप्रकृतीनां मनुष्यद्विकवज्रर्षभनाराचसंहनन-रूपाणां तिसृणां प्रकृतीनां चोत्कृष्टबन्धकालः किञ्चिन्न्यूनत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणोऽवसातव्यः, तद्यथा–मार्गणायामस्यां सप्तमनरकगतजीवस्य सम्यक्त्वावस्थायामुत्कर्षतोऽन्तर्मुहूर्तन्यूनत्रयस्त्रिंशत्सा-गरोपमकालपर्यन्तमेताः प्रकृतयो बन्धतो भवन्ति, तस्य सम्यक्त्वावस्थाया उत्कृष्टतस्तावत्प्रमाणत्वात् । "अब्भहियं" इत्यादि, जिननामकर्मण उत्कृष्टबन्धकालो नरकौघमार्गणाया साधिकसागरोपमत्रय-प्रमाणो बोद्धव्यः । न च तीर्थकृन्नामसत्कर्मणो जीवस्य तृतीयनरकं यावद्गमनं संभवति, तृतीयनरकस्य च गुर्वी कायस्थितिः सप्तसागरोपमप्रमाणा विद्यते, तर्हि कथं सप्तसागरोपमप्रमितो जिननामकर्मणो गुरुबन्धकालो नाभिहित इति वाच्यम्, तीर्थकरनामकर्मसत्ताकस्य नरकगतावुत्कृष्टतस्साधिक-सागरोपमत्रयप्रमितायुष्मत्त्वेनैवोत्पादसंभवात् । तथा मार्गणायामस्यां वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वय-स्त्रीनपुंसकवेदद्वयप्रथमसंहननवर्जसंहननपञ्चकप्रथमसंस्थानवर्जसंस्थानपञ्चकाऽशुभखगतिस्थिरशुभ-यशःकीर्त्यस्थिरषट्कोद्योतरूपाणामेकोनत्रिंशत्शेषप्रकृतीनां गुरुबन्धकालः 'सव्वासु मुहुत्तंतो', इत्यादि गाथयाऽन्तर्मुहूर्तप्रमितो ज्ञातव्यः, अध्रुवबन्धित्वे सति गुणप्रत्ययेनाधिककालस्याऽप्राप्यमाणत्वात् । ॥१४६॥

अथ चरमनरककृष्णलेश्ययोः प्रथमादिषण्नरकनीलकापोतलेश्यामार्गणासु च प्रस्तुतमाह

..........................एमेव तिरियवज्जाण ।
चरमणिरयकिण्हासुं सेसणिरयणीलकाऊसु ॥१४७॥
उरलाईण णवण्हं, सगगुरुकायट्ठिई मुणेयव्वो ।
सा देसूणा जेयो सत्तापुमाइतिणराईण ॥१४८॥
णवरि सगुरुकायठिई देसूणा तिरिउरालियदुगाणं ।
किण्हाए ओरालियदुगस्स खलु णीलकाऊसु ॥१४९॥

(प्रे०) "एमेव" इत्यादि, अन्तिमतमस्तमाख्यसप्तमनरकमार्गणायां कृष्णलेश्यामार्गणायां च "एमेव" पूर्ववत् प्रकृष्टो बन्धकालो ज्ञातव्यः, इदमुक्तं भवति–नरकौघमार्गणायां तिर्यग्द्विकादि-द्वादशप्रकृतीनां यः स्वोत्कृष्टकायस्थितिप्रमितः, पुरुषवेदादिसप्तप्रकृतीनां मनुष्यद्विकादिप्रकृतित्रयस्य च यो देशोनस्वोत्कृष्टकायस्थितिप्रमितो गुरुबन्धकालोऽभिहितः, स एव प्रकृतीनामासां गुरु-बन्धकालः प्रकृतमार्गणाद्वयेऽभिधेयः । तथा नरकौघमार्गणायामुक्तानां वेदनीयद्विकाद्येकोनत्रिंशत्शेषा-ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां गुरुबन्धकालः सप्तमनरके "सव्वासु मुहुत्तंतो" इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणः प्रतिपाद-नीयः, कृष्णलेश्यामार्गणाया तु वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्त्रीनपुंसकवेदद्वयदेवद्विकनरकद्विकै-केन्द्रियादिजातिचतुष्कवैक्रियद्विकाद्यसंहननवर्जसंहननपञ्चकाद्यसंस्थानवर्जसंस्थानपञ्चकाऽशुभखगति-स्थिरशुभयशःकीर्तिस्थावरदशकाऽऽतपोद्योतजिननामरूपाणां पञ्चचत्वारिंशत्शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां ज्येष्ठो बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो ज्ञेयः, कुतः ? इति चेद् उच्यते, कासाञ्चिद् देवद्विकजिननामादिप्रकृ-तीना बन्धका यथासंभवं तिर्यङ्मनुष्या एवाऽत्र वर्तन्ते, तेषां च लेश्याकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाण एवाऽस्ति,

तस्मादुक्तप्रमाणो बन्धकालः प्राप्यते, तथा तद्व्यतिरिक्तप्रकृतप्रकृतीनां गुणप्रत्ययेनाऽप्यन्तर्मुहूर्तादधिककालो न प्राप्यते, अतस्तासामपि बन्धकालोऽभिहितप्रमाणो लभ्यते । "सेसणिरय" इत्यादि, रत्नप्रभाशर्कराप्रभावालुकाप्रभापङ्कप्रभाधूमप्रभातमःप्रभानरकनीलकापोतलेश्यालक्षणास्वष्टमार्गणासु "उरल च । उरलोवगपणिंदियतसपरघूसासवायरतिगाणि" ॥ इतिसंग्रहगाथांशेषु भणितानामौदारिकद्विकप्रभृतीनां नवप्रकृतीनां प्रकृष्टो बन्धकालः स्वकीयस्वकीयगुरुकायस्थितिप्रमाणो वेदयितव्यः । "सत्तपुमाई" इत्यादि, 'पुमसुखगइपढमागिइसुहगतिगुच्च' इतिसंग्रहगाथात्रयवेषु प्रोक्तानां पुरुषवेदादीनां सप्तानां प्रकृतीनां मनुष्यद्विकप्रथमसंहननरूपाणां तिसृणां प्रकृतीनां च गुरुतया बन्धकालो देशोनस्वप्रायोग्यप्रकृष्टकायस्थितिप्रमितोऽस्ति, भावना पुनरुभयत्र नरकौघमार्गणावत्कार्या एतास्वष्टमार्गणासु शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां प्रकृष्टबन्धकालः "सव्वासु मुहुत्तंतो" इत्यादिगाथयाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो बोद्धव्यः । कृष्णादिलेश्यात्रये कासांचित्प्रकृतीनां प्रकृष्टबन्धकालविषयेऽपवादमुपदर्शयन्नाह, "णवर" मित्यादि, कृष्णलेश्यामार्गणायां तिर्यग्द्विकौदारिकद्विकरूपाणां चतसृणां प्रकृतीनां नीलकापोतलेश्याख्यमार्गणाद्वये चौदारिकद्विकस्य गुरू बन्धकालो देशोनस्वीयोत्कृष्टकायस्थितिप्रमाणः, देशोनत्वं चात्रान्तर्मुहूर्तप्रमाणं ज्ञेयम्, नरकभवात् प्राक् तिर्यङ्मनुष्यभवसत्कचरमान्तर्मुहूर्ते नरकद्विकादीनामेव बन्धेन निरुक्तप्रकृतीनां बन्धाभावात् ॥१४७-८-९॥

तित्थस्स पढमणिरये देसूणुदही तिसागरा ऊणा ।
तइअणिरयम्मि अहिया तइअणिरयकाउलेसासुं ॥१५०॥

(प्रे०) "तित्थस्स" इत्यादि, रत्नप्रभाख्यप्रथमनरकमार्गणायां तीर्थकरनामकर्मण उत्कृष्टबन्धकालो देशोनमेकसागरोपममस्ति । "तिसागरा" इत्यादि, शर्कराप्रभाभिधद्वितीयनरकमार्गणायां जिननाम्नो गुरुबन्धकालः किंचिन्न्यूनसागरोपमत्रयप्रमाणो विद्यते । "अहिया" इत्यादि, वालुकाप्रभाख्यतृतीयनरकमार्गणायां कापोतलेश्यामार्गणायां च तीर्थकृन्नाम्नो गुरुबन्धकालः साधिकसागरोपमत्रयप्रमाणो भवति । प्रथमद्वितीयनरकमार्गणयोर्देशोनत्वे हेतुस्त्वेवम्—तीर्थकरसत्कर्मजीवास्तथास्वाभाव्येन नारकेषूत्कृष्टस्थितिकेषु नैवोत्पद्यन्त इति कृत्वा । कापोतलेश्यामार्गणायां तृतीयनरकमार्गणायां च हेतुर्नरकौघमार्गणायां दर्शितप्रकारेणैव ज्ञेयः ॥१५०॥

अथ तिर्यगोघमार्गणायामध्रुवबन्धिप्रकृतिषु कतिपयानां प्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालमाह

तिरियम्मि तिण्णि पल्ला पुमाइएगारसण्ह तेऽब्भहिया ।
सत्तपणिंदियआईणोघव्व उरालतितिरियाईण ॥१५१॥ (गीतिः)

(प्रे०) "तिरियम्मि" इत्यादि, तिर्यगोघमार्गणायां पुरुषवेदसुखगतिसमचतुरस्रसंस्थानसुभगत्रिकोच्चैर्गोत्रसुरद्विकवैक्रियद्विकलक्षणानामेकादशप्रकृतीनां प्रकृष्टो बन्धकालस्त्रीणि पल्योपमानि, स त्वेवम्—मार्गणायामस्यां युगलित्वेन समुत्पन्नेन त्रिपल्योपमायुष्मता केनचित् क्षायिकसम्यग्दृष्टिजन्तुनाऽऽभवमेकादशप्रकृतयो गुणप्रत्ययेनानवरतं बध्यन्ते । "सत्तपणिंदिय" इत्यादि,

पञ्चेन्द्रियजातित्रसपराघातोच्छ्वासबादरत्रिकरूपाणां सप्तप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालः साधिकानि त्रीणि पल्योपमानि । तद्यथा–कश्चित् संज्ञितिर्यक्पञ्चेन्द्रियो मृत्वा युगलिकतिर्यक्पञ्चेन्द्रियत्वेन जातः स युगलिकावस्थायां पल्योपमत्रयप्रमितस्वायुरन्तं यावदेताः सप्तप्रकृतीर्भवप्रत्ययेन निरन्तरं बध्नाति, तथा पूर्वभवस्य चरमान्तर्मुहूर्तेऽप्येताः सप्तप्रकृतीर्बध्नाति । "ओघव्व" इत्यादि, औदारिकशरीरनाम-तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतीनां प्रकृष्टबन्धकालोघवदवसेयः, तदेवम्–तिर्यक्सामान्यमार्गणायामौदारिकशरीरनाम्न उत्कृष्टबन्धकालोऽसङ्ख्येयपुद्गलपरावर्तप्रमाणोऽस्ति तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रयोश्चाऽसङ्ख्यलोकाकाशप्रदेशप्रमाणसमयप्रमितः, भावना पुनरत्रौघवदवसातव्या । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्त्रीनपुंसकवेदद्वयनरकमनुष्यगतिद्वयैकेन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कप्रथम-संस्थानवर्जसंस्थानपञ्चकनरकमनुष्यानुपूर्वीद्वयाऽशुभविहायोगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिस्थावरदशकात-पोद्योतरूपाणां चतुश्चत्वारिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनां मार्गणायामस्यामुत्कृष्टबन्धकालः "सव्वासु मुहुत्तो" इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽवसातव्यः ॥१५१॥

साम्प्रतं तिर्यक्पञ्चेन्द्रियभेदत्रयात्मकासु तिसृषु मार्गणास्वध्रुवबन्धिप्रकृतीनां प्रकृष्टं बन्धकालं कथयितुकाम आह

दुपणिंदियतिरियेसुं पुमाइएगारसण्ह पल्लतिगं ।
णयो जोणिमईए तेसिं देसूणपल्लतिगं ॥१५२॥
तीसु पि तिण्णि पल्ला अब्महिया सणपणिंदियाईणं ।

(प्रे०) "दुपणिंदिय" इत्यादि, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियलक्षणमार्गणाद्वये पुरुषवेदसुखगतिसमचतुरस्रसंस्थानसुभगत्रिकोच्चैर्गोत्रसुरद्विकवैक्रियद्विकलक्षणानामेकादशप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालः त्रीणि पल्योपमानि, भावना तिर्यगोघमार्गणावदत्र ज्ञातव्या । "णेयो" इत्यादि, तिर्यक्पञ्चेन्द्रिययोनिमतीमार्गणायां पुरुषवेदादीनामेकादशप्रकृतीनां प्रकृष्टतया बन्धकालो देशोन-पल्योपमत्रयप्रमाणोऽस्ति, योजना पुनरेवम्–मार्गणायामस्यां युगलिकत्वेनोत्पन्ना तिरश्ची सुरद्विक-वैक्रियद्विकात्मकं प्रकृतिचतुष्कमपर्याप्तावस्थायामन्तर्मुहूर्तं न बध्नाति ससम्यक्त्वस्य मार्गणायामस्यामुत्पादाभावेनाऽपर्याप्तावस्थायां सम्यक्त्वविरहात् , पर्याप्तावस्थाऽवाप्त्यनन्तरं त्वेतत्प्रकृतिचतुष्कं बध्नाति, युगलिकानां पर्याप्तावस्थायां भवप्रत्ययेनैव देवप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वात् सुखगत्यादि-प्रकृतिषट्कं देवगत्यादिना सह ध्रुवबन्धोपलम्भात्तावत्कालमनवरतं बध्यते, तथाऽपर्याप्ताऽवस्थायां न तस्य सततं बन्धाभावोऽस्ति, सप्रतिपक्षबन्धार्हत्वात् "देसूण पल्लतिग" मित्युक्तम् । पर्याप्तावस्थानन्तरं जघन्यतोऽपि यावत्कालपर्यन्तं सम्यक्त्वं न प्राप्यते तावत्कालपर्यन्तं मार्गणायामस्यां वर्तमानया युगलिकतिरश्च्या पुरुषवेदो निरन्तरं नैव बध्यते, अतस्तावत्कालन्यूनपल्यत्रयमेतत्प्रकृतेरुत्कृष्टबन्धकालो वेदयितव्यः, अत्राऽपि सम्यक्त्वप्राप्तिकालादर्वागन्तर्मुहूर्तकालं यावत् पुरुषवेदस्य नियमतो बन्धसम्भवेन तावान्कालोऽपि तत्र निरन्तरबन्धकालमध्ये प्रक्षेपणीयः ।

'तीसु' इत्यादि, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिमतीलक्षणासु तिसृषु मार्गणासु पञ्चेन्द्रियजातित्रसपराघातोच्छ्वासबादरत्रिकरूपाणां सप्तप्रकृतीनां प्रकृष्टतया बन्धकालः साधिकपल्योपमत्रयप्रमाणोऽस्ति, भावना पुनरत्र तिर्यक्सामान्यमार्गणावत्कर्तव्या । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्त्रीनपुंसकवेदद्वयनरकतिर्यग्मनुष्यगतित्रयैकेन्द्रियप्रभृतिजातिचतुष्कौदारिकद्विकसंहननषट्कप्रथमसंस्थानवर्जसंस्थानपञ्चकनरकतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीत्रयाऽशुभखग-तिास्थरशुभयशःकीर्तिस्थावरदशकाऽऽतपोद्योतनीचैर्गोत्ररूपाणामष्टचत्वारिंशत्प्रकृतीनां गुरुबन्धकाल आसु तिसृषु मार्गणासु 'सव्वासु मुहुत्ततो'इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमितो ज्ञातव्यः । तथा शेषाऽपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियमार्गणायां सर्वासां स्वबन्धयोग्याध्रुवबन्धिप्रकृतीनां 'सव्वासु मुहुत्तंतो इत्यादितो गुरुबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो बोद्धव्यः ॥१५२॥

अथ मनुष्यमार्गणासु कासाञ्चिदध्रुवबन्धिप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालं व्याचिख्यासुराह—

तिणरेसु पुव्वकोडी देसूणा सायतित्थाणं ॥१५३॥
अब्भहिय पल्लतिग होज्जाट्ठारहपणिंदियाईणं ।
णवरं जोणिमईए पुमाइएगारसण्ह देसूणं ॥१५४॥

(प्रे०) 'तिणरेसु' इत्यादि, मनुष्यौघपर्याप्तमनुष्यमानुषीरूपासु तिसृषु मार्गणासु सातवेदनीयतीर्थंकरनामकर्मणोरुत्कृष्टो बन्धकालो देशोनपूर्वकोटिवर्षमितो भवति, तदेवम्—मार्गणास्वासु वर्तमानः पूर्वकोटीवर्षायुष्कः कश्चिज्जन्तुरष्टमवर्षेऽवाप्तसंयमो नवमसंवत्सरे कैवल्यमवाप्य निरन्तरं सातवेदनीयं तावद् बध्नाति यावत्त्रयोदशमगुणस्थानकान्तम् । एतन्मार्गणात्रयवर्ती पूर्वकोटिवर्षायुष्कः कश्चिज्जीवोऽष्टमवर्षे नवमवर्षे वा तीर्थंकरनामकर्म निकाच्य यावदायुःसमाप्तिं तद् बध्नाति तदा देशोनपूर्वकोटिवर्षप्रमाणो बन्धकालस्तस्योपलभ्यते । 'अब्भहियं' इत्यादि, 'पणिंदियतसपरघूसासचायरतिगाणि, । पुमसुखगइपढमागिइसुहगतिगुच्चसुरविउवदुग' इति संग्रहगाथांशेषु प्रोक्तानां पञ्चेन्द्रियजातिप्रमुखाणामष्टादशप्रकृतीनामुत्कृष्टतो बन्धकालः किञ्चिदधिकं पल्योपमत्रयमवसेयः, आधिक्यं चात्र देशोनपूर्वकोटित्रिभागरूपं ग्राह्यम् । तदेवम्—पूर्वकोटिवर्षायुष्कः कश्चन मनुष्यः स्वकीयायुष्कस्य त्रिभागावशेषे युगलिकमनुष्यरूपमायुर्बद्ध्वा क्रमेण शीघ्रं सम्यक्त्वं प्राप्य क्षायिकसम्यक्त्वमधिगच्छति, तदा ततः प्रभृति स्वायुरन्तं यावदेता अष्टादशप्रकृतीर्बध्नन्मरणमुपेत्य युगलिकत्वेन चोत्पन्नः सन् तत्राऽपि पल्योपमत्रयं यावद् बध्नाति । 'णवर' मित्यादिना विशेषमिह भावयति, तद्यथा–पुरुषवेदसुखगतिसमचतुरस्रसंस्थानसुभगत्रिकोच्चैर्गोत्रसुरद्विकवैक्रियद्विकलक्षणानामेकादशप्रकृतीनामुत्कृष्टतया बन्धकालो मानुषीमार्गणायां देशोनपल्योपमत्रयप्रमाणः प्रत्येतव्यः, भावना तिरश्चीमार्गणावत्कार्या । तथाऽसातवेदनीयं हास्यादियुगलद्वयं स्त्रीनपुंसकवेदद्वयं नरकतिर्यग्मनुष्यगतित्रयमेकेन्द्रियादिजातिचतुष्कमौदारिकद्विकमाहारकद्विकं संहननषट्कं प्रथमसंस्थानवर्ज-

संस्थानपञ्चकं नरकतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीत्रयमशुभखगतिः स्थिरनाम शुभनाम यशःकीर्तिनाम स्थावर-दशकमातपोद्योतनाम्नी नीचैर्गोत्रं चेत्येकोनपञ्चाशत्शेषाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनां प्रकृतमार्गणासु 'सव्वासु मुहुत्तो' इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो गुरुबन्धकालो ज्ञातव्यः, तथैव शेषीभूतायां चाऽपर्याप्तमनुष्य-मार्गणायामपि स्वप्रायोग्यसर्वाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनाम् ॥१५३ ४॥

इदानीं सुरमार्गणासु तत्सादृश्याच्च शुभलेश्यामार्गणासु प्रकृष्टबन्धकालमध्रुवबन्धिप्रकृति-सत्कं विभावयितुकाम आह–

सुरसोहम्माईसुं पसत्थलेसासु तीसु विण्णेयो ।
जेट्ठो सगकायठिई गुणवीसणराइतित्थाण ॥१५५॥

(प्रे०) 'सुर' इत्यादि, सुरौघसौधर्मेशानसनत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलोकलान्तकशुक्रसहस्राराऽऽ-नतप्राणताऽऽरणाऽच्युतनवग्रैवेयकपञ्चानुत्तररूपासु सप्तविंशतिमार्गणासु तेजःपद्मशुक्ललेश्यालक्षणासु च तिसृषु मार्गणासु 'णरदुगवइराणि उरलं च, उरलोवंगपणिंदियतसपरघूसासबायरतिगाणि । पुमसुख-गइपढमागिइसुसरतिगुच्च' इति संग्रहगाथांशेषु भाषितानां मनुष्यद्विकप्रभृतीनामेकोनविंशतिप्रकृ-तीनां जिननाम्नश्चोत्कृष्टो बन्धकालः प्रकृतमार्गणाप्रायोग्योत्कृष्टकायस्थितिप्रमाणो विज्ञेयः, मार्गणास्वासु विद्यमानेन सम्यग्दृष्टिनाऽऽदित आरभ्य मार्गणाप्रान्तं यावद् निरन्तरं प्रकृतीनामासां बध्यमानत्वात् ॥१५५॥

साम्प्रतं प्रशस्तलेश्यामार्गणासु कतिपयानामध्रुवबन्धिप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकाले विशेषमुपद-र्शयन्नाह

णवरं सुहलेसासुं देसूणा होइ पणणराईण ।
सुक्काए देसूणा कोडी पुव्वाण सायस्स ॥१५६॥

(प्रे०) "णवरं" इत्यादि, तेजःपद्मशुक्ललेश्यालक्षणासु तिसृषु मार्गणासु मनुष्यद्विकौदारिकद्विक-वज्रर्षभनाराचसंहननरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्योत्कृष्टो बन्धकालो देशोनोत्कृष्टकायस्थितिप्रमितो विद्यते, देशोनत्वमित्थम्–मार्गणात्रयेऽस्मिन् वर्तमानो जीवो देवभवात्पूर्वं तिर्यग्मनुष्यभवयोरन्तिमाऽन्तर्मुहूर्ते प्रकृतिपञ्चकमेतन्नैव बध्नाति, तस्य देवप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वात् । "सुक्काए" इत्यादि, शुक्ललेश्या-मार्गणायां सातवेदनीयस्य किञ्चिन्न्यूनपूर्वकोटिवर्षप्रमाण उत्कृष्टबन्धकालः, अत्र भावना मनुष्य-मार्गणावत्समधिगम्या । तथा सुरौघसौधर्मेशानमार्गणात्रये वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्त्रीनपुंस-कवेदद्वयतिर्यग्गत्येकेन्द्रियजातिप्रथमसंहननवर्जसंहननपञ्चकप्रथमसंस्थानवर्जसंस्थानपञ्चकतिर्यगानु-पूर्व्यशुभखगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिस्थावराऽस्थिरषट्काऽऽतपोद्योतनीचैर्गोत्ररूपाणां पञ्चत्रिंशत्प्रकृती-नाम् , सनत्कुमारादिसहस्रारान्तमार्गणास्वनन्तरोक्तानामेकेन्द्रियस्थावरातपवर्जानां द्वात्रिंशत्प्रकृती-नाम्, आनतादिनवमग्रैवेयकान्तमार्गणासु तिर्यग्द्विकोद्योतवर्जानामेकोनत्रिंशदुपर्युक्तप्रकृतीनाम्, पञ्चा-

नुत्तरमार्गणासु वेदनीयद्वयहास्यादियुगलद्वयस्थिरशुभयशःकीर्त्यस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिरूपाणां द्वादश-प्रकृतीनां, तेजोलेश्यामार्गणायां वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्त्रीनपुंसकवेदद्वयतिर्यग्देवगतिद्वयैकेन्द्रिय-जातिवैक्रियद्विकाहारकद्विकाद्यसंस्थानवर्जसंस्थानपञ्चकाद्यसंहननवर्जसंहननपञ्चकतिर्यग्देवानुपूर्वीद्वया-ऽशुभखगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिस्थावरास्थिरषट्काऽऽतपोद्योतनीचैर्गोत्ररूपाणामेकचत्वारिंशत्प्रकृतीनां, पद्मलेश्यामार्गणायामेकेन्द्रियस्थावरातपप्रकृतित्रयवर्जानां तेजोलेश्यामार्गणोक्तानामष्टात्रिंशदध्रुवबन्धि-प्रकृतीनां, शुक्ललेश्यामार्गणायां चैकेन्द्रियस्थावरातपोद्योततिर्यग्द्विकमातवेदनीयवर्जानां चतुस्त्रिं-शत्प्रकृतीनां "सव्वासु मुहुत्तंतो" इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो गुरुबन्धकालो विज्ञेयः ॥१५६॥

भवनपतिप्रभृतिमार्गणास्वुत्कृष्टतोऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धकालं निरूपयिषुराह

भवणतिगे सगुरुठिई पणपरघाइउरलाण सा हीणा ।
तिणराइसगपुमाइगपणिदितसउरलुवगाणं ॥१५७॥

(प्रे०) "भवणतिगे" इत्यादि, भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्करूपासु तिसृषु मार्गणासु पराघातोच्छ्वासबादरत्रिकौदारिकशरीरनामकर्मरूपाणां षण्णां प्रकृतीनां प्रकृष्टतया बन्धकालः स्वीय-प्रकृष्टकायस्थितिप्रमाणोऽस्ति, मार्गणास्वासु प्रकृतीनामासामनवरतं बध्यमानत्वात् । '**सा हीणा**' इत्यादि, नरद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननपुरुषवेदशुभविहायोगतिसमचतुरस्रसंस्थानसुभगत्रिकोच्चैर्गोत्र-पञ्चेन्द्रियजातित्रसौदारिकाङ्गोपाङ्गलक्षणानां त्रयोदशानां प्रकृतीनामुत्कृष्टतो बन्धकालो देशोनस्व-गुरुकायस्थितिमितो विद्यते, तद्यथा–आसु मार्गणासु कोऽपि प्राणी ससम्यक्त्वो नैवोत्पद्यते, अतो-ऽन्तर्मुहूर्तकालमतिक्रम्य यः कश्चित्सम्यक्त्वमासादयति, उत्कृष्टतया च यावज्जीवं यदा तदवतिष्ठते तदा तमाश्रित्य देशोनगुरुकायस्थितिप्रमाणबन्धकाल उपपद्यते, एतच्च कार्मग्रन्थिकमता-भिप्रायेण । सैद्धान्तिकास्तु ससम्यक्त्वं भवनपत्यादिष्वप्युत्पत्तिं मन्यन्ते, ततस्तेषां मतेन यथा-संभवं विभावनीयम्, विशेषावश्यकवृत्तावेतल्लेशतः प्रतिपादितम्–"**तद्यथा**"–'कार्मग्रन्थिकमतेन तु वैमानिकदेवेभ्योऽन्यत्र तिर्यङ् मनुष्यो वा तेनैव क्षयोपशमसम्यक्त्वेन नोत्पद्यते। इहानन्तरोक्तमौघमार्ग-णोक्तानां पञ्चत्रिंशदध्रुवबन्धिशेषप्रकृतीनामुत्कृष्टो बन्धकालः "सव्वासु मुहुत्तंतो" इत्यादितोऽन्तर्मुहू-र्तलक्षणो वेदयितव्यः ॥१५७॥

अथैकेन्द्रियौघकाययोगौघादिमार्गणासु गुरुभूतोऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धकालो निरूप्यते–

णेयो असंखलोगा एगिंदियकायजोगअमणेसुं ।
तिण्हं तिरियाईण उरलस्स असंखपरिअट्टा ॥१५८॥

(प्रे०) "णेयो" इत्यादि, एकेन्द्रियौघकाययोगौघाऽसंज्ञिरूपासु तिसृषु मार्गणासु तिर्य-ग्द्विकनीचैर्गोत्ररूपस्य प्रकृतित्रयस्य प्रकृष्टतया बन्धकालोऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमितसमयप्रमाणो ज्ञेयः, तेजोवायुकायिकजीवैरियत्प्रमाणस्वकीयोत्कृष्टकायस्थितिकालं यावदनवरतं बध्यमानत्वात् ।

"उरलस्स" इत्यादि, औदारिकशरीरनाम्नो गुरुबन्धकालोऽसंख्यातपुद्गलपरावर्तप्रमाणो ज्ञातव्यः, यत एकेन्द्रियजीवा उत्कृष्टतयाऽसंख्यातपुद्गलपरावर्तप्रमितकायस्थितिकाः सन्ति, ते च तावत्कालपर्यन्तमनवरतं प्रकृतिमिमां बध्नन्ति । तथा काययोगौघमार्गणायां वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयनरकनरसुरगतित्रयजातिपञ्चकवैक्रियद्विकाऽऽहारकद्विकौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानषट्क — नरनरकसुरानुपूर्वीत्रयखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकाऽऽतपोद्योतपराघातोच्छ्वासजिननामोच्चैर्गोत्रलक्षणानां पञ्चषष्ट्यध्रुवबन्धिशेषप्रकृतीनाम् , एकेन्द्रियमार्गणायां वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयमनुष्यगतिजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानषट्कमनुष्यानुपूर्वीखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकाऽऽतपोद्योतपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाणां षट्पञ्चाशत्प्रकृतीनाम् ,असंज्ञिमार्गणायां च अनन्तरोक्तषट्पञ्चाशत्प्रकृतीनां वैक्रियषट्कस्य चेति द्वाषष्टयध्रुवबन्धिशेषप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालः 'सव्वासु मुहुत्तो' इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तरूपो विज्ञेयः ॥१५८॥

अथ सूक्ष्मैकेन्द्रियौघमार्गणायां बादरपर्याप्तैकेन्द्रियमार्गणायां चाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालमाह—

सुहमेगिंदिम्मि असखा लोगा तितिरियाइउरलाण ।
वाससहस्सा बायरपज्जत्तेगिंदिये संखा ॥१५९॥

(प्रे०) "सुहमेगिंदिम्मि" इत्यादि, सूक्ष्मैकेन्द्रियौघमार्गणायां तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रौदारिकशरीरलक्षणप्रकृतिचतुष्कस्याऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमितसमयप्रमाणो गुरुतया बन्धकालो वेद्यः, मार्गणायामस्यां तावत्कालं संततं बध्यमानत्वात् , तत्रेदमवगन्तव्यम्—औदारिकशरीरनाम्न उत्कृष्टबन्धकालः सम्पूर्णस्वकायस्थितिप्रमाणोऽस्ति,शेषप्रकृतित्रयस्य तु सूक्ष्मतेजोवायुकायसमुदितकायस्थितिरूपोऽस्ति । "वास"इत्यादि, बादरपर्याप्तैकेन्द्रियमार्गणायां प्रकृतप्रकृतिचतुष्कस्य प्रकृष्टबन्धकालः संख्येयसहस्रवर्षाणि अस्ति, स च बन्धकालो नीचैर्गोत्रतिर्यग्द्विकप्रकृतित्रयस्य बादरपर्याप्ततेजोवायुकायिकसमुदितकायस्थितिमपेक्ष्योपपादनीयः, औदारिकशरीरनामकर्मणश्चैतादृशो बन्धकालो बादरपर्याप्तपृथ्वीकायिकादिपञ्चापेक्षया भावनीयः, एकेन्द्रियौघमार्गणायां याः शेषषट्पञ्चाशत्प्रकृतय उक्तास्तासामेवाऽत्राऽप्युत्कृष्टबन्धकालो 'सव्वासु मुहुत्तो' इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तरूपोऽवसातव्यः ॥१५९॥

अथ बादरैकेन्द्रियौघमार्गणायामुत्कृष्टबन्धकालमाह

गुरुकायठिई णेयो बायरएगिंदियम्मि उरलस्स ।
अंगुलअसखभागो कम्मठिई वाऽस्थि तितिरियाईण ॥१६०॥ (गीतिः)

(प्रे०) "गुरुकाय" इत्यादि, बादरैकेन्द्रियौघमार्गणायामौदारिकशरीरनामकर्मण उत्कृष्टतया बन्धकालो मार्गणाया अस्या उत्कृष्टकायस्थितिप्रमितो ज्ञेयः, मार्गणायामस्यामस्याध्रुवबन्धि-

त्वेऽपि भवप्रत्ययेन सततं बध्यमानत्वात् । "अंगुल" इत्यादि, तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतित्रयस्याऽङ्गुलासंख्येयभागगताऽऽकाशप्रदेशप्रमितसमयप्रमाणो गुरुबन्धकालः । ननु मार्गणायामस्यामौदारिकशरीरनाम्न उत्कृष्टबन्धकालः स्वोत्कृष्टकायस्थितिप्रमितोऽभिहितः, तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्ररूपस्य प्रकृतित्रयस्य चाङ्गुलासंख्येयभागगताकाशप्रदेशप्रमाणः, अत्रैतन्मार्गणासत्कगुरुकायस्थितिरप्यङ्गुलासंख्येयभागगताकाशप्रदेशप्रमाणरूपा एवाऽस्ति, अतः कालद्वयेऽपि न किमपि वैलक्षण्यं दृश्यते, उभयोरपि समानत्वात्, अत औदारिकशरीरनाम्नस्तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतित्रिकस्य च गुरुकायस्थितिमितो गुरुबन्धकालः समुदिततयैव वक्तव्यः, न पृथक् पृथक्, इति चेत्, अत्रोच्यते, मार्गणायामस्यामौदारिकशरीरनामकर्मणोऽङ्गुलासंख्येयभागरूपस्वगुरुकायस्थितिलक्षणबन्धकालापेक्षया तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतीनामङ्गुलासंख्येयभागरूपबन्धकालो न्यूनोऽस्ति, अङ्गुलासंख्येयभागलक्षणकालस्याप्यसंख्यातविधत्वात्, अन्यच्च मार्गणायामस्यामौदारिकशरीरनामकर्मणो गुरुकायस्थितिप्रमितो गुरुबन्धकालः समुदितपञ्चपृथिवीकायिकादिकमाश्रित्यानवरतं बध्यमानत्वेन विधते, तिर्यग्द्विकादिप्रकृतीनां चोक्तप्रमाणो बन्धकालस्तेजोवायुकायिकानेवाश्रित्य प्राप्यते, अन्यत्र पृथ्वीकायिकादिषु तु मनुष्यद्विकादिप्रकृतिभिः सह परावर्तमानतया बध्यमानत्वेन तिर्यग्द्विकादिप्रकृतीनामन्तर्मुहूर्तमात्र एव बन्धकालः, तस्मादौदारिकशरीरनामकर्मणस्तिर्यग्द्विकादिप्रकृतीनां च गुरुबन्धकालस्य पृथक्पृथगभिधानं कृतम् । "**कम्मठिई वाऽत्थि**" इत्यादिना मतान्तरं कथयति, मतान्तरे बादरतेजस्कायबादरवायुकायिकयोः समुदितापि कायस्थितिरुत्कृष्टा सप्ततिकोटिकोटिसागरोपमप्रमाणकर्मस्थितिप्रमाणा वर्तते, अतो मतान्तरेण निरुक्तप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालस्तावन्मितोऽवसातव्यः । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयमनुष्यगतिजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानषट्कमनुष्यानुपूर्वीविहायोगतिद्विकत्रसदशकस्थावरदशकाऽऽतपोद्योतपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाणां षट्पञ्चाशच्छेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां प्रकृष्टो बन्धकालः 'सव्वासु मुहुत्तंतो' इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमितो बोद्धव्यः ॥१६०॥

अथ द्वीन्द्रियादिमार्गणासु तदाह

गुरुकायठिई उरलस्स विगलपत्तेअतस्समत्तेसुं ।
भूदगसाहारणतस्सुहुमियरसमत्तबायरेसु भवे ॥१६१॥ (गीतिः)

(प्रे०) "**गुरुकायठिई**" इत्यादि, द्वीन्द्रियौघत्रीन्द्रियौघचतुरिन्द्रियौघप्रत्येकवनस्पतिकायौघपर्याप्तद्वीन्द्रिय--पर्याप्तत्रीन्द्रिय-पर्याप्तचतुरिन्द्रिय--पर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिकायरूपास्वष्टमार्गणासु तथा पृथ्वीकायौघाऽप्कायौघसाधारणवनस्पतिकायौघसूक्ष्मपृथ्वीकायौघसूक्ष्माऽप्कायौघसूक्ष्मसाधारणवनस्पतिकायौघ--बादरपृथ्वीकायौघबादरा-ऽप्कायौघबादरसाधारणवनस्पतिकायौघबादरपर्याप्तपृथ्वीकायबादरपर्याप्ताऽप्कायबादरपर्याप्तसाधारणवनस्पतिकायवनस्पतिकायौघरूपासु त्रयोदशमार्गणास्विति सर्व--

संख्यैकविंशतिमार्गणासु स्वप्रायोग्योत्कृष्टकायस्थितिप्रमाण औदारिकशरीरनामकर्मण उत्कृष्टतया बन्धकालः, ध्रुवबन्धिकल्पत्वात्तस्यैतासु । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानषट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासगोत्रद्वयरूपाणामेकोनषष्टिशेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां गुरुबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणः सव्वासु मुहुत्त ो इत्यादिनाऽवगन्तव्यः । पर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियाऽपर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियाऽपर्याप्तबादरैकेन्द्रियाऽपर्याप्तद्वीन्द्रियापर्याप्तत्रीन्द्रियाऽपर्याप्तचतुरिन्द्रियसूक्ष्मपर्याप्तपृथ्वीकायसूक्ष्मपर्याप्तऽप्कायसूक्ष्मपर्याप्ततेजस्कायसूक्ष्मपर्याप्तवायुकायसूक्ष्मपर्याप्तसाधारणवनस्पतिकाया--ऽपर्याप्तबादरपृथ्वी--कायाऽपर्याप्तबादराऽप्काया-ऽपर्याप्तबादरतेजस्कायाऽपर्याप्तबादरवायुकायाऽपर्याप्तबादरसाधारणवनस्पतिकायरूपासु शेषकायेन्द्रियमार्गणास्वनुक्तोऽपि 'सव्वासु मुहुत्तंतो इत्यादिति स्वप्रायोग्याणां सर्वासामध्रुवबन्धिप्रकृतीनामन्तर्मुहूर्तप्रमाणो गुरूभूतो बन्धकालोऽवसेयः, यतो ह्येताः सर्वा मार्गणा अन्तर्मुहूर्तस्थितिका वर्तन्ते । विशेषस्त्वयमत्र-औदारिकशरीरनामकर्मणोऽत्र ध्रुवबन्धित्वेन प्रकृतमार्गणाप्रायोग्यकायस्थितिलक्षणान्तर्मुहूर्तमानो गुरुबन्धकालो वक्तव्यः, तथैव च तेजस्कायवायुकायिकसत्कमार्गणासु तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतीनामपि । शेषस्वप्रायोग्याध्रुवबन्धिप्रकृतीनां गुरुबन्धकालस्त्वन्यन्तर्मुहूर्तं स्वकीयगुरुकायस्थितिसत्कोऽन्तर्मुहूर्तसंख्यातभागरूपमवसातव्यम् ॥१६१॥

अथ द्विपञ्चेन्द्रियादिमार्गणास्वध्रुवबन्धिप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालमाह

ओघव्व दुपंचिंदियतसचक्खुअचक्खुभवियसण्णीसुं ।
तिरियाइअडवीसाअ णवरि णयणियरसण्णीसुं ॥१६२॥
सायस्स मुहुत्तंतो दुपणिंदितसेसु चक्खुसण्णीसुं ।
साहियतेत्तीसुदही तिरियदुगोरालणीआणं ॥१६३॥

(प्रे०) 'ओघव्व' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौघपर्याप्तत्रसचक्षुरचक्षुर्भव्यसंज्ञिरूपास्वष्टमार्गणासु 'तिरियदुगं णीअं तह णरदुगवइराणि उरलं च ॥ उरलोवंगपणिंदियतसपरघूमासत्तायरतिगाणि । पुमसुखगइपढमागिइसुहगतिगुच्चसुरविउव्वदुगं ॥ जिणसाय' इतिसंग्रहगाथात्रयेषु गदितानामष्टाविंशत्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनामुत्कृष्टो बन्धकाल ओघवदवसेयः, परं चक्षुरचक्षुःसंज्ञिमार्गणासु सातवेदनीयं विहाय पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौघपर्याप्तत्रसचक्षुर्दर्शनसंज्ञिलक्षणासु च मार्गणासु तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रौदारिकशरीरनामकर्मलक्षणं प्रकृतिचतुष्कं परित्यज्येति। तदेवम्-पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौघपर्याप्तत्रसचक्षुरचक्षुर्भव्यसंज्ञिरूपास्वष्टसु मार्गणासु तिर्यग्द्विकाद्यष्टाविंशतिप्रकृतिभ्यः पञ्चेन्द्रियजातित्रसपराघातोच्छ्वासबादरत्रिकरूपाणां सप्तानां प्रकृतीनां किञ्चिदधिकचतुरशीत्यधिकशतसागरोपमाणि, सुरद्विकवैक्रियद्विकप्रकृतिचतुष्कस्य साधिकपल्योपमत्रयं, पुरुषवेदसुखगतिसमचतुरस्रसंस्थानसुभगत्रिकोच्चैर्गोत्ररूपाणां सप्तानां प्रकृतीनां साधिकद्वात्रिंशदधिकसागरोपमशतं, मनु-

ष्पद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननप्रकृतीनां त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, जिननामौदारिकाङ्गोपाङ्गनामकर्मणोः साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, अचक्षुर्दर्शनभव्यमार्गणाद्वये तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतीनामसंख्यातलोकाकाशप्रदेशप्रमाणसमयप्रमितः, औदारिकशरीरनाम्नश्चाऽसंख्यपुद्गलपरावर्तो गुरुबन्धकालोऽधिगम्यः, तावत्कालं तत्र संततं बध्यमानत्वात् । द्विपञ्चेन्द्रियद्वित्रसभव्यमार्गणास्वोधवत्सातवेदनीयस्य प्रकृष्टबन्धकालो देशोनपूर्वकोटिप्रमाणो विज्ञेयः । अत्र वृत्तौ प्रकृतमार्गणाभ्यो यासु मार्गणासु यासां प्रकृतीनां वर्जनं कृतं तास्वोघोक्तगुरुबन्धकालस्याऽघटमानत्वाद्विशेषमुपदर्शयति 'णवरि' इत्यादि, चक्षुरचक्षुर्दर्शनसंज्ञिरूपासु तिसृषु मार्गणासु सातवेदनीयस्य प्रकृष्टबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमितो वर्तते, स पुनरेवम्—एतासां मार्गणानां द्वादशगुणस्थानं यावदवस्थानादासु मार्गणासु देशोनपूर्वकोटिवर्षप्रमितः सातवेदनीयस्य गुरुबन्धकालो न संभवति, किन्तु षष्ठगुणस्थानं यावदसातवेदनीयेन साकं सातवेदनीयं परावर्तमानभावेन बध्यते, तत्परावर्तनमपि प्रत्यन्तर्मुहूर्तं प्रजायते, तथा सप्तमगुणस्थानकादारभ्य द्वादशगुणस्थानपर्यन्तं सततं सातवेदनीयस्य बध्यमानत्वेऽपि तेषां गुणस्थानकानां समुदितकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाण एव अस्ति, अत इह सातवेदनीयस्य गुरुबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाण एव प्राप्यते, नाधिकः । 'दुपणिंदिय' इत्यादि पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौघपर्याप्तत्रसचक्षुर्दर्शनसंज्ञिरूपासु षण्मार्गणासु तिर्यग्द्विकौदारिकशरीरनीचैर्गोत्ररूपस्य प्रकृतिचतुष्कस्य प्रकृष्टबन्धकालः साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमितोऽस्ति तद्यथा—सप्तमनरकवासी कश्चिन्नारकस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमलक्षणस्वोत्कृष्टायुष्कपर्यन्तमेताः प्रकृतीर्बध्नाति ततश्च च्युत्वा तिर्यक्पञ्चेन्द्रियभवे जातोऽन्तर्मुहूर्तपर्यन्तमपि बध्नाति, अतोऽन्तर्मुहूर्ताऽधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणो गुरुबन्धकालः प्रकृतप्रकृतीनामत्र प्राप्यते। नीचैर्गोत्रस्य तु नरकभवात्पूर्वमप्यन्तर्मुहूर्तं यावत् तद्बन्धलाभेनाऽन्तर्मुहूर्तद्वयाधिको निरुक्तबन्धकालो प्राप्यते ।तथाऽसातवेदनीयहास्यादियुगलद्वयस्त्रीनपुंसकवेदद्वयनरकद्विकैकेन्द्रियादिजातिचतुष्काहारकद्विकप्रथमसंहननवर्जसंहननपञ्चकप्रथमसंस्थानवर्जसंस्थानपञ्चकाऽशुभखगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिस्थावरदशकातपोद्योतरूपाणामेकचत्वारिंशत्प्रकृतीनां गुरुबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणः "सव्वासु मुहुत्ततो" इत्यादिना ज्ञातव्यः । शेषाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्तत्रसमार्गणाद्वयेऽनुक्तोऽप्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां गुरुबन्धकालः "सव्वासु मुहुत्ततो" इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो बोद्धव्यः, सोऽपि स्वगुरुकायस्थित्यपेक्षया सङ्ख्येयभागरूपो बोद्धव्यः, औदारिकशरीरनाम्नश्चाऽन्मुहूर्तमात्रोऽपि गुरुकायस्थितिप्रमाणो ज्ञातव्यः, अस्मिन् मार्गणाद्वये तस्य ध्रुवबन्धित्वात् ॥१६३॥तेजस्कायौघादिमार्गणासु प्रकृतं कथयति—

तेउअणिलेसु सेसि सुहुमियरसमत्तियरेसुं च ।
उरलतितिरिआईण समसमकायट्ठिई जेट्ठा ॥ १६४ ॥

(प्रे०) "तेउ" इत्यादि, तेजस्कायिकौघवायुकायिकौघसूक्ष्मतेजस्कायिकौघबादरतेजस्कायिकौघसूक्ष्मवायुकायिकौघबादरवायुकायिकौघपर्याप्तबादरतेजस्कायिकपर्याप्तबादरवायुकायिकरूपास्वष्टमार्ग-

णासु तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रौदारिकशरीरनामकर्मरूपाणां चतसृणां प्रकृतीनां गुरुबन्धकालः स्वकीयस्वकीयज्येष्ठकायस्थितिसमयप्रमाणोऽस्ति, उक्तमार्गणासु प्रकृतिचतुष्टयस्य ध्रुवबन्धिकल्पत्वेन सदैव बध्यमानत्वात् । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानषट्कविहायोगतिद्विकत्रसदशकस्थावरदशकाऽऽतपोद्योतपराघातोच्छ्वासरूपाणां त्रिपञ्चाशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनामुत्कृष्टो बन्धकालः 'सव्वासु मुहुत्त ॥' इत्यादितोऽन्तर्मुहूर्तरूपोऽधिगन्तव्यः, सूक्ष्मपर्याप्ताऽपर्याप्ततेजस्कायवायवोर्बादराऽपर्याप्ततेजस्काये तथा वायुकायिकानां तेष्वेव त्रिभेदेषु जीवानां कायस्थितिरुत्कृष्टाऽप्यन्तर्मुहूर्तप्रमाणाऽस्ति, अतः सर्वासां प्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तादधिको नैव प्राप्यते, तस्मात् 'सव्वासु मुहुत्तो' इत्यादिना गतार्थत्वेन पृथग् नोक्तस्तथाऽपि निरुक्तप्रकृतिचतुष्कस्य बन्धकालात् शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालः संख्येयगुणो हीनो बोद्धव्यः ॥१६४॥

औदारिककाययोगमार्गणायामध्रुवबन्धिप्रकृतीनां गुरुबन्धकालं दर्शयितुकाम आह

उरले सगकायठिई जेट्ठा ओरालियस्स बोद्धव्वो ।
देसूणा तिसहस्सा वासा तिरियदुगणीआण ॥१६५॥

(प्रे०) "उरले" इत्यादि औदारिककाययोगमार्गणायामौदारिकशरीरनाम्न उत्कृष्टबन्धकालः स्वकायस्थितिमितो बोद्धव्यः, कायस्थितिश्चौदारिकमार्गणाया देशोनद्वाविंशतिसहस्रवर्षप्रमाणा वर्तते, इयत्प्रमाणो बन्धकालोऽत्र बादरपृथ्वीकायापेक्षयोपपद्यते । तद्यथा—बादरपर्याप्तपृथ्वीकायानां भवस्थितिर्द्वाविंशतिसहस्रवर्षप्रमिता विद्यते, प्रतिपादिता च तथैव जीवसमासस्य हैमवृत्तौ कालद्वारे "तत्र बादरपृथिवीकायिनां 'बावीसं' त्ति द्वाविंशति वर्षसहस्राण्युत्कृष्टा भवस्थितिः । अन्तर्मुहूर्तन्यूनामियत्प्रमाणां भवस्थितिं यावत् सततमौदारिकशरीरनाम केचन बादरपृथ्वीकायिका बध्नन्ति, अन्तर्मुहूर्तन्यूनत्वं चात्राऽपर्याप्तावस्थासत्कं गृह्यते, अपर्याप्तावस्थायामौदारिकमिश्रकाययोगसत्त्वेनौदारिककाययोगमार्गणाया एवाभावात् । 'देसूणा' इत्यादि तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्ररूपस्य प्रकृतित्रयस्य प्रकृष्टबन्धकालो देशोनानि त्रीणि वर्षसहस्राणि वर्तते, स च बादरपर्याप्तवायुकायिकापेक्षया घटामञ्चति, बादरवायुकायिकः सहस्रत्रयवर्षभवस्थितिकोऽस्ति । उक्ता च तस्य तावत्प्रमाणा भवस्थितिर्जीवसमासस्य हैमवृत्तौ कालद्वारे "बादरानिलाना त्रीणि वर्षसहस्राणि" बादरवायुकायिकजीवस्याऽपर्याप्तावस्थासत्कमन्तर्मुहूर्तं वर्जयित्वौदारिककाययोगावस्थायां संततमेताः प्रकृतयो बध्यन्ते, अपर्याप्तावस्थायामौदारिककाययोगमार्गणाया असत्त्वेन न तत्कालस्यात्र गणना क्रियते । ननु पृथिवीकायिकापेक्षयौदारिककाययोगमार्गणाया उत्कृष्टकायस्थितिर्देशोनद्वाविंशतिसहस्रप्रमिता वर्तते, अत आसां प्रकृतीनां गुरुबन्धकालो देशोनद्वाविंशतिवर्षसहस्रप्रमितः कथं नोक्तः ? इति चेन्न, पृथिवीकायिकेषु मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रप्रकृतिभिःसह यथासंभवं तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतीनां परावर्तमानभावेन बध्यमानत्वात् । वायुकायि-

केषु तु तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतीनां मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रप्रकृतिभिः सह परावर्तमानयोग्यतैव नास्ति, वायुकायिकानां मनुष्यभव उत्पत्त्यभावेन मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतीनामबन्धकत्वात् , अतो वायुकायिकाः सततं तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतित्रयं बध्नन्ति तस्माद् वायुकायिकानाश्रित्यौदारिकमार्गणायामेतासां प्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालो घटते । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयदेवनरकमनुष्यगतित्रयजातिपञ्चकवैक्रियद्विकाहारकद्विकौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहनन षट्कसंस्थानषट्कदेवनरकमनुष्यानुपूर्वीत्रयविहायोगतिद्विकत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासजिननामोच्चैर्गोत्ररूपाणां शेषपञ्चषष्ट्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालः 'सव्वासु मुहुत्तंतो' इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो ज्ञातव्यः ॥१६५॥

कार्मणकाययोगाऽनाहारकलक्षणमार्गणाद्वयेऽध्रुवबन्धिनीनामुत्कृष्टबन्धकालमभिधित्सुराह

कम्माणाहारेसुं पंचसुराईण होइ दो समया ।
सेसाण पयडीणं सट्ठीए होइ समयतिगं ॥ १६६ ॥

(प्रे०) "कम्मा" इत्यादि, कार्मणकाययोगमार्गणायामनाहारकमार्गणायां च सुरद्विकवैक्रियद्विकजिननामरूपाणां पञ्चप्रकृतीनां गुरुबन्धकालो द्वौ समयौ विद्येते, यत आसां पञ्चप्रकृतीनां बन्धकस्त्रस एव, तस्य चोत्कृष्टतया द्विसामयिकैव विग्रहगतिर्विद्यते । उक्तं च स्थानाङ्गत्रिस्थानकाध्ययनस्य चतुर्थोद्देशवृत्तौ 'उक्कोसेणं त्ति त्रसानां हि त्रसनाड्यान्तरुत्पादात् वक्रद्वयं भवति ।' 'सेसाणं' इत्यादि, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयजातिपञ्चकौदारिकद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकाऽऽतपोद्योतपराघातोच्छ्वासगोत्रद्वयरूपाणां षष्टिप्रकृतीनां मार्गणयोरनयोरुत्कृष्टबन्धकालः त्रिसमयप्रमाणोऽस्ति, स्थावराणामुत्कृष्टतया त्रिसामयिकविग्रहगतिसत्त्वात् ॥१६६॥

स्थावरप्रायोग्यप्रकृतीनां त्रसप्रायोग्यप्रकृतीनां चोत्कृष्टत्वेन बन्धकालं मतान्तरेण प्ररूपयितुमाह—

थावरपाउग्गाण बत्तीसाए हवेज्ज समयतिगं ।
दुसमा तेतीसाए तसपाउग्गाण बिंति परे ॥ १६७ ॥

(प्रे०) "थावर" इत्यादि, स्थावरजीवः स्थावरत्वेनोत्पद्यते तदा मार्गणयोरनयोर्वर्तमानेन तेन बध्यमानानां स्थावरप्रायोग्यानां द्वात्रिंशत्प्रकृतीनां प्रकृष्टो बन्धकालः त्रिसामयिको भवति । त्रयस्त्रिंशत्त्रसप्रायोग्यप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालो द्विसमयप्रमाणोऽस्तीति परे ब्रुवन्ति, तद्यथा स्थावरजीवः स्थावरत्वेनोत्पद्यते तदा त्रसप्रायोग्यप्रकृतीर्नैव बध्नातीति परेषां मतम् , अत एतन्मते स्थावरजीवो विग्रहगतौ त्रसप्रायोग्यप्रकृतीर्यदि बध्नाति तदा तस्योत्पादोऽपि त्रसेष्वेव, तस्मात् त्रसप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकस्थावराणां विग्रहगतिकालस्य द्विसामयिकत्वेन त्रसप्रायोग्यप्रकृतीनां प्रकृष्टबन्धकालः समयद्वयप्रमाण एव प्राप्यते ॥१६७॥

त्रसस्थावरप्रायोग्यप्रकृतयः का इत्याशङ्काऽपनोदाय ता गाथाद्वयेनोपदर्शयति

थावरपाउग्गाओ दुत्तीसपयडीउ अधुवबंधीओ ।
सायेयरहस्सरई सोगारइणपुमतिरियदुगं ॥ १६८ ॥
एगिंदियहुंडउरलपरधाऊसासआयवदुगाणि ।
णवथावराइवायरतिगथिरजुगलजसणीआणि ॥ १६९ ॥

(प्रे०) "थावर" इत्यादि, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयनपुंसकवेदतिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिहुंडकसंस्थानौदारिकशरीरपराघातोच्छ्वासाऽऽतपोद्योतस्थावरसूक्ष्माऽपर्याप्तसाधारणाऽस्थिराऽशुभदुर्भगानादेयायशःकीर्तिबादरपर्याप्तप्रत्येकस्थिरशुभयशःकीर्तिनीचैर्गोत्ररूपाः स्थावरप्रायोग्यद्वात्रिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतयः, एतद्व्यतिरिक्ताश्च त्रयस्त्रिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतयस्त्रसप्रायोग्या बोद्धव्याः । त्रसप्रायोग्यप्रकृतिनाम–यासां प्रकृतीनां विपाकस्त्रसेष्वेव न तु स्थावरेषु ताः 'त्रसप्रायोग्याः प्रकृतय' इति व्यपदिश्यन्ते । शेषयोगमार्गणास्वध्रुवबन्धिप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालः "सव्वासु मुहुत्तंतो" इत्यनेन संदिष्टोऽपि शिष्यावबोधार्थंमस्माभिः स प्रतिपाद्यते, तदेवम्–औदारिकमिश्रमार्गणायामपर्याप्तावस्थावर्तिसम्यग्दृष्टेः पुरुषवेदसुरद्विकवैक्रियद्विकपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानशुभविहायोगतिपराघातोच्छ्वासजिननामत्रसचतुष्कसुभगत्रिकोच्चैर्गोत्रप्रकृतीनां निरन्तरबन्धित्वेन तस्यौदारिकमिश्रकाययोगस्योत्कृष्टकालप्रमाणात्मकोऽन्तर्मुहूर्तमात्रो गुरुबन्धकालो ज्ञातव्यः । औदारिकाङ्गोपाङ्गस्य च गुरुबन्धकालो युगलिकभवेऽपर्याप्तावस्थासम्बन्ध्यौदारिकमिश्रकाययोगस्योत्कृष्टकालप्रमितोऽस्ति । औदारिकशरीरनाम्नस्त्वौदारिकमिश्रकाययोगप्रायोग्योत्कृष्टकायस्थितिरूपोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽस्ति । शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां तु परावर्तमानत्वापेक्षयाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो गुरुबन्धकालो विज्ञेयः, स च दर्शितान्तर्मुहूर्तापेक्षया संख्येयभागरूपः ।

वैक्रियकाययोगवैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणाद्वये पुरुषवेदमनुष्यद्विकतिर्यग्द्विकपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतिपराघातोच्छ्वासजिननामत्रसचतुष्कसुभगत्रिकनीचैर्गोत्रलक्षणानां प्रकृतीनां गुरुबन्धकालो मार्गणयोरनयोरुत्कृष्टकायस्थितिलक्षणाऽन्तर्मुहूर्तरूपो वेदयितव्यः, सोऽप्यत्र तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतीनां सप्तमनरकापेक्षया, शेषप्रकृतीनां च देवनारकापेक्षया संभवति, शेषाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनां त्वन्तर्मुहूर्तप्रमाणो गुरुबन्धकालः परावर्तमानभावेन प्राप्यते, सोऽपि कायस्थितिरूपाऽन्तर्मुहूर्तापेक्षया संख्येयभागरूपो विज्ञेयः ।

आहारकाहारकमिश्रकाययोगमार्गणयोः सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनामेतत्कायस्थितिरूपाऽन्तर्मुहूर्तप्रमितात्संख्येयभागरूपाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो गुरुबन्धकालोऽस्ति, शेषप्रकृतीनां च स एव कायस्थित्यात्मको विज्ञेयः

मनोयोगवचनयोगयोः पञ्चसु पञ्चसु मार्गणासु सर्वासामध्रुवबन्धिप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽस्ति, मार्गणानामासां प्रकृष्टकालस्याऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणत्वात् ।।१६८-९।।

वेदेषु प्रकृतीनामध्रुवबन्धिनीनामुत्कृष्टबन्धकालं निरूपयन्नादौ स्त्रीवेदमार्गणायां दर्शयितुकाम आह

थीअ पणवण्णपलिआ देसूणा होइ सगपुमाईण ।
तिणराईणं तिण्हं उरलोवंगाइमाणं च ॥ १७० ॥
अहिअपणवण्णपलिआ पणपरघाइउरलाण तित्थस्स ।
देसूणपुव्वकोडी ऊणातिपल्लाऽत्थि चउसुराईण ॥ १७१ ॥(गीतिः)

(प्रे०) "थीअ" इत्यादि, स्त्रीवेदमार्गणायां पुरुषवेदसुखगतिसमचतुरस्रसंस्थानसुभगत्रिकोच्चैर्गोत्ररूपाणां सप्तप्रकृतीनां, मनुष्यद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननरूपाणां तिसृणां प्रकृतीनामौदारिकाङ्गोपाङ्गपञ्चेन्द्रियजातित्रसनामरूपाणां तिसृणां प्रकृतीनां च देशोनपञ्चपञ्चाशत्पल्योपमप्रमाण उत्कृष्टो बन्धकालः, तदित्थम्–ईशानदेवलोकवर्तिनी पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमप्रमितायुष्मत्यपरिगृहिता देवी स्वोत्पत्तेरन्तर्मुहूर्तानन्तरं सम्यक्त्वमवाप्यैताः प्रकृतीरायुरन्तं यावद् बध्नाति । "अहिय" इत्यादि, पराघातोच्छ्वासबादरत्रिकलक्षणानां पञ्चप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्चोत्कृष्टबन्धकालः साधिकपञ्चपञ्चाशत्पल्योपमप्रमाणोऽस्ति, तद्यथा–काचित् तिरश्ची मानुषी वेशानेऽपरिगृहिता पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमायुष्का देवी संजाता, ततश्च पुनश्च्युत्वा तिरश्ची मानुषी वा संजायते, तर्हि सा देवभवात्पूर्वभवसत्के पश्चात्भवसत्के चान्तर्मुहूर्तकाले तथा देवभवसत्कपञ्चपञ्चाशत्पल्योपमकाले पञ्चानां पराघातप्रभृतिप्रकृतीनां बन्धं प्रकरोति । औदारिकशरीरनामकर्म च देवभवात्पाश्चात्येऽन्तर्मुहूर्ते देवभवसत्कपञ्चपञ्चाशत्पल्योपमात्मके च काले बध्नाति । अथ पूर्वभवसत्कचरमान्तर्मुहूर्तस्य किमर्थमग्रहणमितिचेद् , आह–अत्र देवभवात्पूर्वभवचरमाऽन्तर्मुहूर्ते वैक्रियद्विकस्यैव बन्धो भवतीत्यतस्तदग्रहणम् । "तित्थस्स" इत्यादि, तीर्थकरनामकर्मण उत्कृष्टबन्धकालो देशोनपूर्वकोटिवर्षप्रमितो विज्ञेयः, तदेवम्–पूर्वकोटिवर्षायुष्मती काचिन्मानुषी वर्षाष्टकादूर्ध्वं जिननाम निकाच्य यावदायुरन्तं बध्नाति, तस्मादेतादृशो जिननामकर्मणो गुरुबन्धकालोऽवाप्यते, कालकरणानन्तरं मार्गणाया विच्छेदेन ततोऽधिकतरकालो नावाप्यते । "ऊणातिपल्ला" इत्यादि, सुरद्विकवैक्रियद्विकरूपाणां चतसृणां प्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालो देशोनपल्योपमत्रयमस्ति, भावना मानुषीमार्गणावत्कार्या । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्त्रीनपुंसकवेदद्वयतिर्यग्नरकगतिद्वयैकेन्द्रियादिजातिचतुष्काहारकद्विकप्रथमसंहननवर्जसंहननपञ्चकप्रथमसंस्थानवर्जसंस्थानपञ्चकतिर्यग्नरकानुपूर्वीद्वयाऽशुभविहायोगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिस्थावरदशकातपोद्योतनीचैर्गोत्ररूपाणां पञ्चचत्वारिंशदध्रुवबन्धिशेषप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालः 'सव्वासु मुहुत्ततो' इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तात्मकोऽवसेयः ॥१७०-१॥

पुरुषवेदमार्गणायामधुनाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकाल व्याख्यातुकाम आह

पुरिसे ओघव्व भवे बारपुमाईण पणणराईणं ।
तेत्तीसा अयरा सगपणिदिआईण छण तिसट्ठिसय ॥ १७२ ॥ (गीतिः)

(प्रे०) "पुरिसे" इत्यादि, पुरुषवेदमार्गणायाम्, "पुमसुखगइपढमागिइसुहगतिगुच्चसुरविउव्वदुग। जिण" इति संग्रहगाथांशेषु प्रतिपादितानां द्वादशपुरुषवेदादिप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकाल ओघवद् भवति, तद्यथा–पुरुषवेदसुखगतिसमचतुरस्रसंस्थानसुभगत्रिकोच्चैर्गोत्ररूपस्य प्रकृतिसप्तकस्य द्वात्रिंशदधिकशतसागरोपमाणि, सुरद्विकवैक्रियद्विकलक्षणस्य प्रकृतिचतुष्कस्य साधिकं पल्योपमत्रयम्, जिननामकर्मणश्चाप्यधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि प्रकृष्टबन्धकालः, भावना पुनरत्रौघवदवगन्तव्या । "पण" इत्यादि, मनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननरूपाणां पञ्चानां प्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणोऽवगन्तव्यः, पुरुषवेदमार्गणावर्तिभिरनुत्तरवासिसुरैरनवरत त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमितप्रकृष्टस्वायुःस्थितिं यावदेतत्प्रकृतिपञ्चकस्य बध्यमानत्वात् । अत्र मनुष्यद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननप्रकृतित्रयस्योत्कृष्टबन्धकालो यद्यप्योघवदस्ति, तथापि बन्धकालसाम्यादौदारिकद्विकेन सह पृथगुक्तमित्यदोषः, । औदारिकाङ्गोपाङ्गनामकर्मण उत्कृष्टबन्धकाल ओघवत्कथं नाभिहित इति चेद्, आह–ओघे साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणः तदुत्कृष्टबन्धकालोऽभिहितः, स च सप्तमनरकापेक्षया संघटते, नारकाश्च न पुरुषवेदमार्गणायां वर्तन्ते, नपुंसकवेदवत्त्वात्तेषाम्, अत ओघवन्नोक्तम्, अत्र तु परिपूर्णत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणोऽभिहितः, स चानुत्तरसुरापेक्षया घटत एव, तेषां पुरुषवेदवत्त्वात् । "सगपणिंदिय" इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातित्रसपराघातोच्छ्वासबादरत्रिकलक्षणानां सप्तप्रकृतीनां गुरुबन्धकालस्त्रिषष्टयधिकशतसागरोपमाणि, तदेवम्–मार्गणायामस्यां वर्तमानः कश्चित्सम्यग्दृष्टिः षट्षष्टिसागरोपमकालं यावदेताः प्रकृतीर्गुणप्रत्ययेन बध्नाति, नवमग्रैवेयके चोत्पन्न एकत्रिंशत्सागरोपमकालं मिथ्यात्वभावे वर्तमानोऽपि भवप्रत्ययेन बध्नाति, स्वायुरन्तिमान्तर्मुहूर्ते सम्यक्त्वं समासाद्य पुनरपि तथैवाऽऽषट्षष्टिसागरोपमकालं बध्नाति, तस्मात्प्रकृतीनामासामेतावद्प्रमाणो बन्धकालोऽवाप्तुं शक्यः । "सण्णासु मुहुत्तंतो" इत्यादिनाऽनन्तरस्त्रीवेदमार्गणोक्तानां वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्त्रीनपुंसकवेदद्वयनरकतिर्यग्गतिद्वयैकेन्द्रियप्रभृतिजातिचतुष्काहारकद्विकाऽऽद्यसंहननवर्जसंहननपञ्चकाऽऽद्यसंस्थानवर्जसंस्थानपञ्चकतिर्यग्नरकानुपूर्वीद्वयाऽशुभखगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिस्थावरदशकातपोद्योतनीचैर्गोत्ररूपाणां पञ्चचत्वारिंशत्शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो विज्ञेयः ॥१७२॥

इदानीमध्रुवबन्धिप्रकृतीनां नपुंसकवेदमार्गणायामुत्कृष्टबन्धकालमभिधित्सुराह

णपुंसे तेत्तीसुदही, सत्तपुमाइतिणराइगापूणा ।
साहियतेत्तीसुदही, उरलोवंगाइअट्ठण्ह ॥ १७३ ॥
तिरिदुगुरलणीआणं ओघव्व हवेज्ज चउसुराईणं ।
देसूणपुव्वकोडी तिरयस्स तिसागराऽऽहिया ॥ १७४ ॥

(प्रे०) "पापुमे" इत्यादि, नपुंसकवेदमार्गणायां पुरुषवेदसुखगतिसमचतुरस्रसंस्थानसुभगत्रिकोच्चैर्गोत्रमनुष्यद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननरूपाणां दशप्रकृतीनां गुरुबन्धकालो देशोनत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणोऽस्ति, भावना पुनरेवम्–मार्गणायामस्यां वर्तमानस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुष्कः कश्चित्सप्तमनारकः स्वोत्पत्त्यन्तर्मुहूर्तानन्तरं समधिगतसम्यक्त्व एताः प्रकृतीर्निरन्तरं बघ्नाति यावत्स्वायुषोऽन्तिमान्तर्मुहूर्तमवतिष्ठते, चरमान्तर्मुहूर्ते च तिर्यग्भव एव तस्योत्पत्तिभावेन विगतसम्यक्त्वो भवति, प्रथमचरमान्तर्मुहूर्तयोश्च सम्यक्त्ववैकल्येन तस्य पुरुषवेदादिप्रकृतप्रकृतीनां बन्धः सततं न भवति, तस्मादत्राऽन्तर्मुहूर्तद्वयन्यूनत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमितो गुरुबन्धकालः प्रकृतीनामासामुपलभ्यते । "साहिय" इत्यादि, "उरलोवगपणिंदियतसपरघूसासबायरतिगाणि" इति संग्रहगाथाशकलेषु भाषितानामष्टानामौदारिकाङ्गोपाङ्गपञ्चेन्द्रियजातित्रसपराघातोच्छ्वासबादरत्रिकप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालः साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि विद्यते, योजनात्वेवं कार्या–एतन्मार्गणागतः सप्तमनारकस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमकालपर्यन्तमेता अष्टप्रकृतीरनवरतं बघ्नाति, सप्तमनरकाच्चोद्वृत्य तिर्यग्भवे नपुंसकवेदितयोत्पन्नः सन्नन्तर्मुहूर्तकालं बघ्नाति । त्रसचतुष्कपञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासरूपाः सप्तप्रकृतीस्तु सप्तमनरकभवात्पूर्वमप्यन्तर्मुहूर्तकालं बघ्नाति । नचौदारिकाङ्गोपाङ्गनाम्नः कथं न सप्तमनरकभवात्पूर्वं बन्ध इति वाच्यम् सप्तमनरकं जिगमिषोर्जीवस्य नरकप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वेन वैक्रियद्विकस्य बन्धे वर्तमानत्वात् । "तिरिदुगे" इत्यादि, तिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्व्यौदारिकशरीरनीचैर्गोत्रलक्षणानां चतसृणां प्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकाल ओघवदस्ति, तत्पुनरेवम्–तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्ररूपस्य प्रकृतित्रयस्योत्कृष्टबन्धकालोऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणः, औदारिकशरीरनामकर्मणश्चासंख्यपुद्गलपरावर्तप्रमाणः, भावना पुनरत्रौघवद्भावनीया । "चउ" इत्यादि, सुरद्विकवैक्रियद्विकलक्षणस्य प्रकृतिचतुष्कस्य देशोनपूर्वकोटिवर्षप्रमित उत्कृष्टबन्धकालः, यतो हि युगलिकेषु नपुंसकवेदोदयाभावेन नपुंसकवेदमार्गणायां वर्तमानः कर्मभूमिज एव पूर्वकोटिवर्षायुष्कः कश्चित्तिर्यङ् मनुष्यो वा जन्मतः सम्यक्त्वानुत्पत्तिप्रायोग्यकालस्य गमनानन्तरं लब्धसम्यक्त्वः प्रकृतिचतुष्टयमेतत्स्वायुरन्तं यावदनवरतं बघ्नाति । "तित्थस्स" इत्यादि, जिननामकर्मणस्साधिकसागरोपमत्रयमुत्कृष्टबन्धकालो वेदयितव्यः, अयमपि मुख्यवृत्त्या तृतीयनरकापेक्षया प्राग्वद्विभावनीयः । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्त्रीनपुंसकवेदद्वयनरकगत्येकेन्द्रियादिजातिचतुष्काहारकद्विकप्रथमसंहननवर्जसंहननपञ्चकप्रथमसंस्थानवर्जसंस्थानपञ्चकनरकानुपूर्व्यशुभखगति–स्थिरशुभयशःकीर्तिस्थावरदशकातपोद्योतरूपाणां द्विचत्वारिंशत्शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनामान्तर्मुहूर्तिको गुरुबन्धकालः 'सव्वासु मुहुत्ततो' इत्यादिगाथयाऽधिगम्यः ॥१७३-१७४॥

वेदमार्गणासु प्रकृतीनामध्रुवबन्धिनीनामुत्कृष्टबन्धकालमभिधाय साम्प्रतमपगतवेदमार्गणायां तत्समतया चाऽकषायादिमार्गणासु तमुपदर्शयन्नाह

गयवेए अकसाये केवलजुगले तहा अहक्खाये ।
सायस्स जाणियव्वो, कोडी पुव्वाण देसूणा ॥१७५॥

(प्रे०) "गयवेए" इत्यादि, अपगतवेदाऽकषायकेवलज्ञानकेवलदर्शनयथाख्यातसंयमनामासु पञ्चसु मार्गणासु सातवेदनीयस्य ज्येष्ठो बन्धकालो देशोनपूर्वकोटिवर्षप्रमाणः, यतो हि पूर्वकोटिवर्षायुष्काः केचन मनुष्याः शीघ्रातिशीघ्रं क्षपकश्रेणिं समुपलभ्य मार्गणास्वासु समधिगतप्रवेशाः त्रयोदशगुणस्थानकस्याऽऽचरमसमयं तद्बध्नन्ति । अत्रापि यो विशेषः स उच्यते—केवलज्ञानकेवलदर्शनमार्गणयोरेतद्व्यतिरिक्ताऽपगतवेदादिमार्गणापेक्षया सातवेदनीयस्य प्रकृष्टबन्धकालोऽल्पः, त्रयोदशगुणस्थानकालप्रमाणत्वात् प्रकृष्टतया तद्बन्धकालस्य, परस्परं तु तुल्यः । तदपेक्षया यथाख्याताऽकषायमार्गणयोः तद्बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तेनाधिकः, मार्गणयोरनयोर्द्वादशगुणस्थानकालस्यापि समावेशात्, ततोऽपि गतवेदमार्गणायामधिकोऽन्तर्मुहूर्तेन, नवमगुणस्थानकसत्कक्रियत्कालस्य दशमगुणस्थानकालस्य चापि प्रविष्टत्वादस्यां मार्गणायाम्, अपगतवेदमार्गणायां शेषप्रकृतीनां ज्येष्ठो बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणमेव 'सव्वासु मुहुत्तंतो' इत्यादिनाऽवगन्तव्यः । शेषमार्गणाचतुष्केऽन्यासां प्रकृतीनां बन्धाभावात् बन्धकालो नास्ति । शेषासु क्रोधमानमायालोभलक्षणासु मार्गणासु ज्येष्ठो बन्धकालोऽखिलाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनामन्तर्मुहूर्तप्रमाणः 'सव्वासु मुहुत्तंतो' इत्यादिगाथयाऽवगन्तव्यः, आसां मार्गणानां प्रकृष्टकालस्याऽपि तावत्प्रमाणत्वात् ॥१७५॥

मतिज्ञानादिमार्गणासु सम्यक्त्वौघप्रभृतिमार्गणासु च प्रकृतीनामध्रुवबन्धिनीनामुत्कृष्टबन्धकालं चिन्तयन्नाह

णाणतिगे ओहिम्मि य सम्मखइअवेअगेसु णायव्वो ।
जेट्ठा सगकायठिई चउद्दसपणिंदियाईणं ॥१७६॥
पचण्ह णराईण तेत्तीसुदही जिणस्स तेऽब्भहिया ।
सुरविउवदुगस्सऽहियतिपल्लोहिदुगम्मि पुव्वकोडी वा ॥१७७॥ (गीतिः)
णवरि चउसुराईण ऊणतिपल्लाणि वेअगे णेयो ।
सायस्स पुव्वकोडी देसूणा सम्मखइएसुं ॥ १७८ ॥

(प्रे०) "णाण" इत्यादि, मतिज्ञानश्रुतज्ञानावधिज्ञानावधिदर्शनसम्यक्त्वौघक्षायिकसम्यक्त्वक्षयोपशमसम्यक्त्वलक्षणासु सप्तसु मार्गणासु 'पणिंदियतसपरघूसासबायरतिगाणि । पुमसुखगइपढमागिइसुहगतिगुच्चे'त्ति सग्रहगाथाशेषु भाषितानां पञ्चेन्द्रियजातिप्रमुखाणां चतुर्दशानां प्रकृतीनां प्रकृष्टबन्धकालः स्वीयस्वीयोत्कृष्टकायस्थितिप्रमाणो विज्ञेयः, एतन्मार्गणावर्तिभिरसुमद्भिरनवरतं तावत्कालं प्रकृतीनामासां गुणप्रत्ययेन बध्यमानत्वात् । 'पंचण्ह' इत्यादि संग्रहगाथासु यथाक्रमतो गदितस्य मनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्योत्कृष्टबन्धकालस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, विजयाद्यनुत्तरवासिदेवानां तावत्कालं बन्धसद्भावात्तस्य । 'जिणस्स' इत्यादि, तीर्थकरनामकर्मण उत्कृष्टबन्धकालः साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणः, भावना त्वत्रोप-

वद् विधेया । 'सुरविउव' इत्यादि, सुरद्विकवैक्रियद्विकरूपस्य प्रकृतिचतुष्कस्योत्कृष्टबन्धकालो देशोनपूर्वकोटित्रिभागेनाधिकः पल्योपमत्रयप्रमितो विज्ञातव्यः, भावनौघतुल्या ज्ञातव्या । "ओहिदुगम्मि" इत्यादि, देवद्विकवैक्रियद्विकयोरुत्कृष्टबन्धकालोऽवधिज्ञानावधिदर्शनमार्गणयोः पूर्वकोटिवर्षप्रमाणः, कुतः ? इतिचेदाह–युगलधर्मिष्ववधिज्ञानदर्शनौ न स्तः, यतो यः कश्चिद् देवो नारको वा ससम्यक्त्वोऽवधिज्ञानेन सह पूर्वकोटिवर्षायुष्के मनुष्य एवोत्पद्यते, तस्मात्तत्र गुणप्रत्ययेन पूर्वकोटिं यावन्निरन्तरं प्रकृतप्रकृतिचतुष्कं बध्यते, अतो निरुक्तबन्धकालो घटामश्चति । 'वा' इति अत्र वा शब्दो मतान्तरद्योतकः, महाबन्धकारादयो युगलधर्मिष्वप्यवधिज्ञानदर्शने इच्छन्ति, अतस्तन्मते मतिज्ञानमार्गणावद् देशोनपूर्वकोटित्रिभागेनाधिकः पल्योपमत्रयमितः प्रकृतप्रकृतिचतुष्कस्योत्कृष्टबन्धकालो वेदयितव्यः ।

अथ मतिज्ञानप्रभृतिमार्गणासु सुरद्विकादिप्रकृतिचतुष्कस्योत्कृष्टबन्धकालोऽभ्यधिकपल्योपमत्रयप्रमितोऽभिहितः, तत्क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां न सङ्गच्छत इत्यतः "णवरि" इत्यादिना विशेषं दर्शयति, तद्यथा–क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां सुरद्विकवैक्रियद्विकलक्षणस्य प्रकृतिचतुष्कस्य प्रकृष्टो बन्धकालो देशोनत्रिपल्योपमप्रमाणो ज्ञेयः, देशोनत्वं चेह–युगलिकभवे कृतकरणभिन्नानां क्षायोपशमिकसम्यक्त्ववतामुत्पादाभावनिमित्तकमेवाऽवसातव्यम् । ततः किं ? युगलिकभवप्रथमसमयाद् जघन्यतो यावत्कालं सम्यक्त्वं न प्राप्नोति तावत्कालमेतत्प्रकृतिचतुष्कस्य निरन्तरं बन्धाभावोऽस्ति, अतः सूक्तं "ऊणतिपल्लाणि" इति । शेषभावना मानुषीमार्गणावत्कार्या । "सायस्स" इत्यादि, सम्यक्त्वौघक्षायिकसम्यक्त्वमार्गणाद्वये सातवेदनीयस्योत्कृष्टबन्धकालः किंचिदूनपूर्वकोटिवर्षप्रमितोऽस्ति, स चौघवज्ज्ञातव्यः । मतिश्रुतावधिज्ञानमार्गणात्रयेऽवधिदर्शनमार्गणायां क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां च वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयाहारकद्विकास्थिरशुभयशःकीर्त्यस्थिराशुभऽयशःकीर्तिरूपाणां चतुर्दशप्रकृतीनाम्, सम्यक्त्वौघक्षायिकसम्यक्त्वाख्यमार्गणयोश्च सातवेदनीयवर्जानामासामेव त्रयोदशप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालः 'सव्वासु मुहुत्तंतो' इत्यादिगाथयाऽन्तर्मुहूर्तरूपो ज्ञातव्यः ॥१७६-७८॥

अथ मनःपर्यवज्ञानमार्गणायां तत्सादृश्यात्सामायिकसंयमाऽऽदिमार्गणासु चोत्कृष्टबन्धकालमध्रुवबन्धिप्रकृतीनामभिदधाति

मणणाणसमइएसुं छेए परिहारदेसविरईसुं ।
जेट्ठा सगकायठिई, गुणवीसपणिंदियाईणं ॥ १७९ ॥

(प्रे०) "मण" इत्यादि, मनःपर्यवज्ञानसामायिकछेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिदेशविरतिसंयमलक्षणासु पञ्चसु मार्गणासु 'पणिंदियतसपरघूसासखायरतिगाणि । पुमसुखगइपढमागिइसुहगतिगुच्चसुरविउवदुग ॥ जिण'इति संग्रहगाथावयवेषु गदितानां पञ्चेन्द्रियजातिप्रमुखाणामेकोनविंशतिप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालः स्वीयस्वीयज्येष्ठकायस्थितिप्रमाणो ज्ञेयः, तदेवम्–मार्गणानामासां गुर्वी कायस्थिति-

देशोनपूर्वकोटिवर्षप्रमाणा विद्यते, एतावत्प्रमाणः पञ्चेन्द्रियजातिप्रभृतिप्रकृतीनां बन्धकालो मनः पर्यवसामायिकच्छेदोपस्थापनीयमार्गणासु पूर्वकोटिवर्षायुष्कस्य श्रेणिमनुपगतजीवस्यापेक्षया प्राप्यते, स्वायुःपूर्णतां यावत्तेन निरन्तरं बध्यमानत्वात् , श्रेणिमुपगते तु तासां प्रकृतीनां तादृशो बन्धकालो नैव प्राप्यते, श्रेणौ तासां बन्धव्यावृत्तिभावात् । परिहारविशुद्धिदेशविरतिसंयममार्गणयोश्च श्रेणेः प्रारम्भाऽभावात् पूर्वकोटिवर्षायुष्कः कश्चिदसुमान् यथायोग्यकाले परिहारविशुद्धिसंयमं देशविरतिसंयमं वा समधिगम्य यावज्जीवं प्रकृतप्रकृतीनां बन्धं विधत्त इतिरीत्या निरुक्तबन्धकालः प्राप्यते । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयाहारकद्विकस्थिरशुभयशःकीर्त्यस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिरूपाणां शेषचतुर्दशप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणः 'सव्वासु मुहुत्ततो' इत्यादिना बोद्धव्यः । देशविरतौ शेषतया द्वादश प्रकृतयो बोध्याः, आहारकद्विकस्य बन्धाभावात् ॥१७९॥

अज्ञानमार्गणासु तत्साम्यान्मिथ्यात्वाभव्यलक्षणमार्गणाद्वये चाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालं प्रतिपादयितुमना आह

तिरिदुगुरलणीआणं अण्णाणदुगे अभवियमिच्छेसु ।
ओघव्व एगतीसा अयराऽब्भहिया णरदुगस्स ॥ १८० ॥
देसूण पल्लतिगं सुखगइआइछगचउसुराईणं ।
साहियतेत्तीसुदही उरलोवंगाइअट्ठण्हं ॥ १८१ ॥

(प्रे०) 'तिरि' इत्यादि मत्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽभव्यमिथ्यात्वमार्गणाचतुष्टये तिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्व्यौदारिकशरीरनीचैर्गोत्ररूपस्य प्रकृतिचतुष्टयस्योत्कृष्टो बन्धकाल ओघवद्बोद्धव्यः, तद्यथा—तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतीनामसंख्यातलोकाकाशप्रदेशप्रमाणः, औदारिकशरीरनामकर्मणश्चाऽसंख्यातपुद्गलपरावर्तप्रमाण उत्कृष्टबन्धकालः, अत्र भावनौघत एव वेदयितव्या । 'एगतीसा' इत्यादि मनुष्यगतिमनुष्यानुपूर्वीलक्षणस्य प्रकृतिद्वयस्योत्कृष्टो बन्धकाल एकत्रिंशत्सागरोपमप्रमाणोऽस्ति, प्रकृतमार्गणास्तुत्कृष्टस्थितिकनवमग्रैवेयकदेवस्य भवप्रत्ययेनानवरतमेकत्रिंशत्सागरोपमप्रमितस्वायुरन्तं यावद् बध्यमानत्वात् , तदूर्ध्वं मनुष्यगतावप्यन्तर्मुहूर्तकालं मनुष्यद्विकस्य बध्यमानत्वाच्च । 'देसूण' मित्यादि, 'सुखगइपढमागिइसुहगतिगुच्च' इति संग्रहगाथावयवेषूक्तानां षण्णां प्रकृतीनां सुरद्विकवैक्रियद्विकरूपस्य प्रकृतिचतुष्कस्य च प्रकृष्टो बन्धकालो देशोनपल्योपमत्रयप्रमाणोऽस्ति, अपर्याप्ताऽवस्थासत्कमन्तर्मुहूर्तकालं परित्यज्य यावदायुःसमाप्ति मार्गणास्वासु वर्तमानैर्युगलिकैर्निरन्तरं बध्यमानत्वात् । 'साहिय' इत्यादि, 'उरलोवगपणिंदियतसपरघूसासबायरतिगाणि' इति संग्रहगाथावयवेषु प्रतिपादितानामष्टानां प्रकृतीनां साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि प्रकृष्टो बन्धकालः, घटनाऽत्र नपुंसकमार्गणावद्विधेया । 'सव्वासु मुहुत्ततो' इत्यादिगाथयाऽन्तर्मुहूर्तप्रमितो गुरुतया बन्धकालो वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयनरकगत्येकेन्द्रियादिजातिचतुष्कसंहननपट्कप्रथम-

संस्थानवर्जसंस्थानपञ्चकनरकानुपूर्व्यशुभविहायोगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिस्थावरदशकातपोद्योतरूपाणां द्वाचत्वारिंशच्छेषाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनामवसातव्यः ॥१८०-१८१॥

साम्प्रतं विभङ्गज्ञानमार्गणायामुत्तरप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालं कथयति

विब्भंगे तिरियउरलदुगणीआण हवेज्ज तेत्तीसा।
अयरा ते अब्भहिया, सत्तण्ह पणिदियाईण॥ १८२ ॥
अण्णे उ बारसण्ह वि भणन्ति देसूणजलहितेत्तीसा।
मणुयदुगस्सिगतीसा अयराऽण्णे विंति देसूणा ॥ १८३ ॥

(प्रे०) "विब्भंगे" इत्यादि, विभङ्गज्ञानमार्गणायां तिर्यग्द्विकौदारिकद्विकनीचैर्गोत्ररूपाणां पञ्चप्रकृतीनां प्रकृष्टबन्धकालस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणोऽस्ति, प्रकृतमार्गणावत्युत्कृष्टकायस्थितिकनारकस्यानवरतं स्वायुरन्तं यावद्बध्यमानत्वात्। "ते अब्भहिया" इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातित्रसपराघातोच्छ्वासबादरत्रिकरूपाणां सप्तानां प्रकृतीनां साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाण उत्कृष्टबन्धकालोऽस्ति, तदेवम्—अवाप्तविभङ्गज्ञानः कश्चिज्जीवस्तिर्यग्भवे मनुष्यभवे वा सप्तमनरकमुत्पित्सुश्चरमान्तर्मुहूर्ते पञ्चेन्द्रियजातिप्रभृतिसप्तप्रकृतीर्बध्नाति, सप्तमनरके चोत्पद्य त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणस्वोत्कृष्टकायस्थितिपर्यन्तं बध्नाति, अतोऽन्तर्मुहूर्तेनाऽधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणो बन्धकालः प्रकृष्टतयाऽत्रोपलभ्यते। "अण्णे" इत्यादिना प्रकृतद्वादशप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालविषयं मतान्तरमुपदर्शयति, अत्रोक्तानां द्वादशप्रकृतीनां देशोनत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणं प्रकृष्टबन्धकालं परे ब्रुवन्ति, तेषां मते प्रकृतमार्गणाया उत्कृष्टकायस्थितेस्तावन्मात्रत्वात्। 'मणुय' इत्यादि, मनुष्यद्विकस्योत्कृष्टबन्धकाल एकत्रिंशत्सागरोपमप्रमाणोऽवसेयः, नवमग्रैवेयके केनचिद्विभङ्गज्ञानिना तावत्प्रमाणकालं संततं मनुष्यद्विकस्य बध्यमानत्वात्, तदूर्ध्वं मार्गणाविच्छेदान्न साधिकता। "अण्णे" इत्यादि, परे मनुष्यद्विकस्योत्कृष्टबन्धकालं देशोनैकत्रिंशत्सागरोपमप्रमितं ब्रुवन्ति, यतस्तेऽपर्याप्तावस्थायां नारकदेवानामपि विभङ्गज्ञानमेव न मन्यन्ते, पर्याप्तावस्थायमेव तस्याऽङ्गीकारात्, अत उभयत्र देशोनत्वं परमतेनाऽपर्याप्तावस्थासत्काऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणं विज्ञेयम्, तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयदेवद्विकनरकद्विकैकेन्द्रियादिजातिचतुष्कवैक्रियद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कखगतिद्विकस्थिरषट्कस्थावरदशकाऽऽतपोद्योतोच्चैर्गोत्ररूपाणां द्विपञ्चाशच्छेषप्रकृतीनां प्रकृष्टो बन्धकालः 'सव्वासु मुहुत्तंतो' इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽवसातव्यः ॥१८२-८३॥

साम्प्रतं संयमौघाऽसंयममार्गणयोरध्रुवबन्धिप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालं निरूपयितुमाह

गुरुकायठिई वीसापणिदियाईण संयमे णेयो ।
अजए पंचदसण्हं उरलोवंगाइपयडीणं ॥ १८४ ॥
विण्णेयो अब्भहिया तेत्तीसा सागराऽत्थि ओघव्व ।
पंचण्ह सुराईण, तिरियाईणं च सत्तण्हं ॥ १८५ ॥

(प्रे०) 'गुरुकाय' इत्यादि संयमौघमार्गणायाम् 'पणिंदियतसपरघूसासचायरतिगाणि । पुमसुखगइपढमागिइसुहगतिगुच्चधुरविउव्वदुगं ॥ जिण साय' इतिसंग्रहगाथाशकलेषु कथितानां पञ्चेन्द्रियजातिप्रभृतीनां विंशतिप्रकृतीनामुत्कृष्टो बन्धकालः स्वोत्कृष्टकायस्थितिप्रमाणोऽवसेयः, मार्गणायामस्यां वर्तमानैरसुमद्भिस्तावत्कालं निरन्तरं बध्यमानत्वात्तासाम् । परमत्र सातवेदनीयस्यैतादृशोत्कृष्टबन्धकालः किञ्चिन्न्यूनो ज्ञातव्यः, यतः सोऽप्योघवदन्तर्मुहूर्तेनाधिकस्त्रयोदशगुणस्थानप्रकृष्टकालप्रमाण एव ज्ञातव्यः, संयममार्गणाया उत्कृष्टकायस्थितितस्त्रयोदशगुणस्थानकस्यप्रकृष्टकालो हीन एव । असातवेदनीयहास्यादियुगलद्वयाहारकद्विकस्थिरशुभयशःकीर्त्यस्थिराऽशुभायशःकीर्तिरूपाणां शेषाणामध्रुवबन्धिनीनां त्रयोदशप्रकृतीनां 'सव्वासु मुहुत्तंतो' इत्यादिगाथातोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽधिगन्तव्यः ।

'अजए' इत्यादि असंयममार्गणायाम् 'उरलोवंगपणिंदियतसपरघूसासचायरतिगाणि । पुमसुखगइपढमागिइसुहगतिगुच्च' इति संग्रहगाथात्रयवेषु भणितानां पञ्चदशानामौदारिकाङ्गोपाङ्गप्रमुखप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालः साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमितः, स पुनरेवम्—औदारिकाङ्गोपाङ्गस्याभिहितप्रकारो बन्धकालः सप्तमनरकापेक्षया समधिगम्यः, सप्तमनारकेण सततं तावत्कालं तस्य बध्यमानत्वात्, साधिकत्वं चाऽत्र सप्तमनरकभवादूर्ध्वं तिर्यग्भवेऽन्तर्मुहूर्तं यावद्बध्यमानत्वादवसेयम्, पञ्चेन्द्रियजातिप्रमुखाणां चतुर्दशप्रकृतीनां चैतत्प्रकारो बन्धकालोऽनुत्तरदेवान्प्रतीत्यैव ज्ञातव्यः, साधिकत्वं पुनरत्राऽनुत्तरभवानन्तरं मनुष्यभवेऽन्तर्मुहूर्तन्यूनपूर्वकोटिवर्षं यावत् प्रकृतीनामासां बध्यमानत्वेन तावत्प्रमाणं बोद्धव्यम् । यद्वा सप्ततिकाभाष्यवृत्तौ मोहनीयस्य सप्तदशप्रकृत्यात्मकबन्धस्थानस्योत्कृष्टकालो द्वात्रिंशदुत्तरशतसागरोपमप्रमाण उक्त, अत एतद्ग्रन्थानुसारेण चतुर्थतृतीयगुणस्थानकयोः समुदितकालस्य द्वात्रिंशदुत्तरशतसागरोपमप्रमाणत्वेनौदारिकाङ्गोपाङ्गवर्जशेषपञ्चेन्द्रियजातिप्रमुखसप्तप्रकृतीनां बन्धकालो दीर्घकालेन ततोऽप्यधिकः, पुरुषवेदादिसप्तानां तु बन्धकालस्तावन्मात्रो अन्तर्मुहूर्तेनाधिकः कथयितव्यः । 'ओघव्व'इत्यादि सुरद्विकवैक्रियद्विकजिननामरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्य तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रनरद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननौदारिकशरीरनामकर्मरूपस्य च संग्रहगाथोक्तस्य प्रकृतिसप्तकस्यौघवदुत्कृष्टबन्धकालोऽधिगम्यः, तदेवम्—सुरादिप्रकृतिचतुष्कस्य साधिकपल्योपमत्रयप्रमाणः, जिननाम्नः साधिकस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमितः, तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्राणामसंख्यलोकाकाशप्रदेशप्रमाणः, मनुष्यद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननप्रकृतिनां त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमलक्षणः, औदारिकशरीरनामकर्मणश्चासंख्येयपुद्गलपरावर्तप्रमितो गुरुतया बन्धकालः, भावनाप्यत्रौघवद्भावनीया । अत्र जिननामबन्धकालेऽयं विशेषो ज्ञातव्यः—प्रस्तुतमार्गणायां न ओघवद् देशोनपूर्वकोटिद्वयाधिकस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपममितः किन्तु देशोनैकपूर्वकोट्यधिक एव, अनुत्तरभवात्पूर्वमनुष्यभवे सर्वविरतिधरत्वेन मार्गणाया बहिर्भूतत्वादिति । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगल-

द्वयस्त्रीनपुंसकवेदद्वयनरकगत्येकेन्द्रियादिजातिचतुष्कप्रथमसंहननवर्जसंहननपञ्चकप्रथमसंस्थानवर्जसंस्थानपञ्चकनरकानुपूर्व्यशुभखगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिस्थावरदशकातपोद्योतरूपाणां चत्वारिंशत्शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालः, 'सव्वासु मुहुत्ततो' इति गाथातोऽन्तर्मुहूर्तरूपोऽवसेयः॥१८४-८५॥

अथ सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायामध्रुवबन्धिप्रकृतीनां प्रकृष्टबन्धकालं निरूपयितुकाम आह–

सासायणम्मि होइ तितिरियाइणरदुगणवुरलाईणं ।
तह सुखगइआईण वसण्ह उक्कोसकायठिई ॥ १८६ ॥

(प्रे०) 'सासायणम्मि' इत्यादि, सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायां 'तिरियदुगं नीअं तह णरदुग" उरल च ॥ उरलोवगपणिंदियतसपरघूसासबायरतिगाणि । सुखगइपढमागिइसुहगतिगुच्चसुरविउवदुग' इति संग्रहगाथोक्तानां तिर्यग्द्विकादिचतुर्त्रिंशतिप्रकृतीनां स्वीयगुरुकायस्थितिप्रमाणो गुरुबन्धकालः, तद्यथा–षडावलिकाप्रमिता सास्वादनमार्गणायाः प्रकृष्टकायस्थितिरस्ति, मार्गणायामस्यां वर्तमानं सप्तमनारकजीवमाश्रित्य तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतित्रयस्य, आनतादिदेवमाश्रित्य मनुष्यद्विकस्य, देवनारकावाश्रित्यौदारिकद्विकस्य, युगलिकमपेक्ष्य च सुखगतिप्रभृतीनां दशप्रकृतीनामेतादृशो बन्धकालो ग्राह्यः यतो हि सर्वेऽप्येते जीवा भवप्रत्ययेनोक्तप्रकृतिप्रतिपक्षप्रकृतिबन्धाभावादेताः स्वप्रायोग्याः प्रकृतीर्मार्गणायामस्यां निरुक्तकालं बध्नन्ति । पञ्चेन्द्रियजातिप्रमुखाणां सप्तप्रकृतीनां तु गतिचतुष्कमाश्रित्यैतादृशबन्धकालो ज्ञातव्यः, चतसृषु गतिषु वर्तमानानां सास्वादनभावप्राप्ताना जीवानां षडावलिकां यावत्प्रकृतीनामासां गुणप्रत्ययेन निरन्तरं बध्यमानत्वात् । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्त्रीपुरुषवेदद्वयचरमसंहननवर्जसंहननपञ्चकमध्यमसंस्थानचतुष्काऽशुभखगतिस्थिरशुभयशःकीर्त्यस्थिरषट्कोद्योतरूपाणां शेषाणामष्टाविंशत्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनामुत्कृष्टो बन्धकालः'सव्वासु मुहुत्ततो'इत्यादिगाथयाऽन्तर्मुहूर्तात्मकोऽवगन्तव्यः । उपशमसम्यक्त्वमिश्रसम्यक्त्वरूपयोः शेषमार्गणयोः स्वप्रायोग्याणां सर्वासामध्रुवबन्धिप्रकृतीनामुत्कृष्टो बन्धकालः 'सव्वासु मुहुत्ततो' इति गाथयाऽन्तर्मुहूर्तलक्षणो ज्ञातव्यः, मार्गणयोरनयोरुत्कृष्टतः कायस्थितेस्तावन्मात्रत्वात् तावत्कालं च तासां संततं बध्यमानत्वात् ॥१८६॥

आहारकमार्गणायामुत्कृष्टबन्धकालमध्रुवबन्धिप्रकृतीनामभिदधाति

आहारे तिणराइगउरलोवगाइएगवीसाण ।
ओघव्व सकायठिई गुरू तितिरियाइउरलाणं॥ १८७ ॥

(प्रे०) 'आहारे' इत्यादि, आहारकमार्गणायां "मनुष्यद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननप्रकृतित्रयस्य तथा ॥ उरलोवंगपणिंदियतसपरघूसासबायरतिगाणि । पुमसुखगइपढमागिइसुहगतिगुच्चसुरविउवदुगं । जिणसाय" इति संग्रहगाथोक्तानामेकविंशत्यौदारिकाङ्गोपाङ्गादिप्रकृतीनां चेति सर्वसङ्ख्यया चतुर्विंशतिप्रकृतीनामोघवदुत्कृष्टबन्धकालः, तदेवम्–नरद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननप्रकृतित्रयस्य त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, सुरद्विकवैक्रियद्विकप्रकृतिचतुष्कस्य साधिकपल्योपमत्रयम् , पञ्चेन्द्रिय-

जातित्रसपराघातोच्छ्वासबादरत्रिकरूपाणां सप्तप्रकृतीनां किञ्चिदधिकपञ्चाशीत्यधिकसागरोपमशतम्, औदारिकाङ्गोपाङ्गस्य साधिकानि त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, पुरुषवेदसुखगतिप्रथमसंस्थानसुभगत्रिकोच्चैर्गोत्ररूपाणां सप्तप्रकृतीनां किञ्चिदधिकद्वात्रिंशदधिकं सागरोपमशतम्, सातवेदनीयस्य देशोनपूर्वकोटिवर्षाणि, जिननाम्नश्च साधिकानि त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणीति, भावनाऽप्यत्रौघवत्कार्या। 'सकायठिइ' इत्यादि, तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रौदारिकशरीरनामकर्मरूपाणां चतसृणां प्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालो मार्गणाया अस्या उत्कृष्टकायस्थितिसमयप्रमाणोऽस्ति, भावना पुनरेवम्–आहारकमार्गणाया गुर्वी कायस्थितिरङ्गुलासंख्येयभागगताकाशप्रदेशप्रमाणसमयप्रमिता विद्यते, एतावत्कालं निरन्तरं बन्धो मार्गणायामस्यां तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतित्रयस्य तेजस्कायिकवायुकायिकजीवानाश्रित्य विज्ञेयः, न पुनरन्यान्पृथ्वीकायादिजीवानाश्रित्य, प्रकृतित्रयस्यास्यैतैः परावर्तमानभावेन बध्यमानत्वात्, औदारिकशरीरनाम्नस्तु पृथ्वीकायिकादीन्प्रतीत्यैतादृशबन्धकालो ज्ञातव्यः; तावत्कालं तैर्निरन्तरं बध्यमानत्वात्। तथाऽसातवेदनीयहास्यादियुगलद्वयस्त्रीनपुंसकवेदद्वयनरकगत्येकेन्द्रियादिजातिचतुष्का-ऽऽहारकद्विकप्रथमसंहननवर्जसंहननपञ्चकप्रथमसंस्थानवर्जसंस्थानपञ्चकाऽशुभखगतिनरकानुपूर्वीस्थिरशुभयशःकीर्तिस्थावरदशकातपोद्योतरूपाणामेकचत्वारिंशत्शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां प्रकृष्टो बन्धकालः 'सव्वासु मुहुत्तंतो' इतिगाथातोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽवसेयः। आसामध्रुवबन्धिप्रकृतीनां गुणप्रत्ययेन भवप्रत्ययेन वाऽधिकबन्धकालस्याऽलाभात्। इत्युक्त उत्कृष्टबन्धकालः, तदुक्ते च समाप्तिमगादेकजीवाश्रित कालद्वारम् ॥१८७॥

॥ इति श्रीप्रेमप्रभाटीकाविभूषिते बन्धविधाने उत्तरप्रकृतिबन्धे प्रथमाधिकारे चतुर्थं कालद्वारं समाप्तम् ॥



॥ पञ्चममन्तरद्वारम् ॥

सम्प्रति क्रमप्राप्तं पञ्चममेकजीवाश्रयमन्तरद्वारं निरूपयिषुर्ग्रन्थकार आदौ गाथाचतुष्टयेन-प्रकृतिसंग्रहमुपदर्शयति

अत्थाइम्मि किरिअ जं जाओ वुच्चन्ति ता कमा गेज्झा ।
एत्तो आहारदुगं निद्ददुगं च तइअकसाया ॥ १८८ ॥
दुइअकसाया मिच्छं थीणद्धितिगमणचउगयीणपुमा ।
संघयणागिइपणगं दुहगतिगं कुखगई णीअं ॥ १८९ ॥
तिरियदुगुज्जोआयवथावरएगिंदिसुहुमतिगविगला ।
णिरयसुरविउव्वदुगं उच्चणरदुगवइरोरलुवंगाणि ॥ १९० ॥ (गीतिः)
उरल परघूसासा बायरतिगतसपणिंदिजिणसाया ।
हस्सरइथिरसुहजसा, असायअरइदुगअथिरदुगअजसा ॥ १९१ ॥(गीतिः)

(प्रे०) "अत्था" इत्यादि, अन्तरद्वारप्ररूपणायां यां प्रकृतिमादौ कृत्वा याः प्रकृतयो वक्ष्यन्ते, ता वक्ष्यमाणास्विय आभ्यः प्रकृतिभ्यः क्रमतो ग्राह्याः । "आहारदुग"मित्यादि, आहारकशरीराहारकाङ्गोपाङ्गनिद्राप्रचलाप्रत्याख्यानावरणक्रोधादिचतुष्काणीति सङ्ख्ययाऽष्टप्रकृतयः प्रथमगाथायां कथिताः । "दुइअ" इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणक्रोधादिचतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धिनिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कस्त्रीवेदनपुंसकवेदप्रथमसंहननवर्जसंहननपञ्चकप्रथमसंस्थानवर्जसंस्थानपञ्चकदुर्भगदुस्वरानादेयाऽशुभखगतिनीचैर्गोत्राणीति द्वितीयगाथायामेकोनत्रिंशत्प्रकृतयो भणिताः । "तिरिय" इत्यादि, तिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्व्युद्योताऽऽतपस्थावरैकेन्द्रियजातिसूक्ष्माऽपर्याप्तसाधारणद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियजातिनरकगतिनरकानुपूर्वीदेवगतिदेवानुपूर्वीवैक्रियशरीरवैक्रियाङ्गोपाङ्गोच्चैर्गोत्रनरगतिनराणुपूर्वीवज्रर्षभनाराचसंहननौदारिकाङ्गोपाङ्गाणीति तृतीयगाथायां त्रयोविंशतिप्रकृतय उक्ताः । "उरल"मित्यादि औदारिकशरीरपराघातोच्छ्वासबादरपर्याप्तप्रत्येकत्रसपञ्चेन्द्रियजातिजिननामसातवेदनीयहास्यरतिस्थिरशुभयशःकीर्त्यसातवेदनीयाऽरतिशोकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिनामानीत्येकविंशतिप्रकृतयश्चतुर्थगाथायामभिहिताः। समुदिताश्चैता एकाशीतिसंख्याका ज्ञेयाः, शेषाः पुनः स्वस्थाने नामादितो वक्ष्यन्ते ॥१८८-९१॥

अथौघतः सर्वासां प्रकृतीनां जघन्यं बन्धान्तरं निरूपयितुकाम आह-

अंतरमाहारजुगलतइअकसायाइसोलसाऊणं ।
हस्सं अंतमुहुत्तं णिद्ददुगस्स व खणो खणोऽज्जेसिं ॥ १९२ ॥

(प्रे०) "अंतर"मित्यादि, आहारकद्विकस्य "तइयकसाया ॥ दुइअकसाया मिच्छ थीणद्धितिगमण" इति संग्रहगाथावयवेषूक्तानां प्रत्याख्यानावरणचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्करूपाणां षोडशानां प्रकृतीनामायुश्चतुष्कस्य च बन्धस्य जघन्यमन्तरम-

न्तर्मुहूर्तमस्ति, भावनाविधिस्त्वेवम्-विवक्षितप्रकृतेर्बन्धविच्छेदं विधाय कतिपयकालं तथैव स्थित्वा पुनरपि तद्बन्धं विधत्ते तदा मध्ये यो बन्धशून्यकालस्तदन्तरमिहोच्यते। कश्चिज्जीवो यदोपशमश्रेणेरारोहकोऽपूर्वकरणगुणस्थानकस्य षष्ठे भाग आहारकद्विकस्य बन्धव्युच्छित्तिं विधाय यावदुपशमश्रेणेरन्ततो गत्वा ततश्चाऽवपत्याऽष्टमगुणस्थानकस्य षष्ठं भागमुपलभ्य पुनरपि तद्बन्धं प्रारभते, तदा तद्बन्धसत्कमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमितं भवति, उपशमश्रेणेरारोहाऽवरोहकालस्याऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणत्वात् । अथवाऽप्रमत्तसंयतगुणस्थानस्थ आहारकद्विकबन्धकः प्रमत्तसंयताख्यगुणस्थानकमागच्छति तदाऽऽहारकद्विकबन्धं व्यवच्छेदयति जघन्यतयाऽन्तर्मुहूर्तं तत्र तथैव स्थित्वा पुनरप्रमत्तसंयताख्यगुणस्थानकमागत्य तद्बन्धमारभते, तदाप्यप्रमत्तसंयतगुणस्थानद्वयाऽन्तरेऽन्तर्मुहूर्तरूपमन्तरमाहारकद्विकबन्धस्याऽवाप्यते एतादृशाऽन्तरद्वयमध्ये यत्कनिष्ठमन्तरं तदेवात्रोपादेयम् । देशविरतिगुणस्थानके कश्चित्प्राणी प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं बद्ध्वा तदन्ते तदन्तं च विधाय संयमं प्राप्नोति, अन्तर्मुहूर्तकालं च तत्रोषित्वा पुनरपि पञ्चमगुणस्थानं प्राप्नोति तद्बन्धं च विरचयति, तदा मध्ये प्रत्याख्यानावरणचतुष्कसंबन्धि जघन्यतयाऽन्तर्मुहूर्तलक्षणमन्तरं लभ्यते । अप्रत्याख्यानावरणचतुष्केऽप्येवमेव भावना कर्तव्या, परं देशविरतिगुणस्थानकस्थानेऽविरतिसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकं संयमस्थाने तु संयमं देशविरतिगुणस्थानकं च वाच्यम् । अत्र-'अन्तर्मुहूर्तादारभ्य देशोनपूर्वकोटिं यावत्संयमायुष्कमिति' आचाराङ्गवृत्त्यभिप्रायेण संयमस्य जघन्यकालोऽन्तर्मुहूर्तमस्ति अतस्तत्प्रयुक्तमन्तरमपि तावत्प्रमाणमवसातव्यम् । 'संजए णं भंते। संजतेत्ति पुच्छा, गोयमा? ज० एगं समयं' इति प्रज्ञापनाद्यभिप्रायेण संयमस्य जघन्यकालः समयोऽस्ति, अतस्तत्प्रयुक्तमन्तरं कषायाष्टकस्य समयमात्रं भवतीत्यपि ध्येयम् । मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कलक्षणे प्रकृत्यष्टकेऽपि प्रथमतुर्यगुणस्थानकापेक्षयैवमेव भावना कार्या । आयुश्चतुष्कस्य जघन्यं बन्धान्तरमन्तर्मुहूर्तमस्ति, तद्यथा—चत्वार्यप्यायूंषि अष्टभिराकर्षैरपि बध्यन्ते, तत्र आकर्षद्वयजघन्यान्तरालस्याप्यन्तर्मुहूर्तमितत्वेनायुर्बन्धजघन्यान्तरस्याऽपि तावन्मितत्वमवसेयम् , अत्र विशेषभावना मूलप्रकृतिबन्धवत्कार्या । "**निद्दुगस्स**" इत्यादि, निद्राप्रचलयोरेकसामयिकं बन्धसत्कं जघन्यमन्तरं वर्तते, तदेवम्—कश्चिन्मनुष्योऽपूर्वकरणाख्याऽष्टमगुस्थानकस्य प्रथमभागान्ते निद्राद्विकस्य बन्धविच्छेदानन्तरं समयमेकं तत्र स्थित्वा मृत्युमवैति गत्वा च देवभवं पुनस्तद्बन्धमारभते, तदा तस्य समयमेकं जघन्यतोऽन्तरमायाति । 'वा' इति वाशब्दोऽभिप्रायान्तरद्योतकः -अन्येषामभिप्रायेणाऽष्टमगुणस्थानकस्य प्रथमभागान्ते निद्राद्विकबन्धविच्छेदानन्तरं तदैव जीवो न म्रियते, परं जघन्यतोऽप्यन्तर्मुहूर्तानन्तरमेव, तदा तदभिप्रायेण निद्राद्विकस्य जघन्यमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमितं भवति, तत्त्वं त्वत्र कर्मविदा वेद्यम् । "खणो" इत्यादि, उपर्युक्तप्रकृतिव्यतिरिक्तानां शेषध्रुवाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जघन्यतः समयात्मकमन्तरमस्ति । अयं भावः—ज्ञानावरणपञ्चकं चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्कं संज्वलनचतुष्कं भयजुगुप्से तैजसकार्मणशरीरद्वयं वर्ण-

चतुष्कमगुरुलघुरुपघातो निर्माणमन्तरायपञ्चकं चेत्येकोनत्रिंशत्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जिननामकर्मणश्च बन्धसत्कं जघन्यमन्तरं समयरूपं वर्तते, तद्यथा—कश्चित्प्राण्युपशमश्रेणिमारोहन् यथायोग्यं स्वबन्धविच्छेदस्थानं संप्राप्य तादृशप्रकृतीनां बन्धव्युच्छित्तिमाधाय समयमेकं चाऽबन्धकतया स्थित्वा पश्चात्त्रमुपैति, सुरगतौ चोत्पद्य पुनस्तद्बन्धमारचयति, तदा तासां प्रकृतीनां जघन्यतया समयलक्षणमन्तरं संप्राप्तं भवति । तथाऽऽयुश्चतुष्काऽऽहारकद्विकजिननामवर्जानां सर्वासामध्रुवबन्धिप्रकृतीनां परावर्तमानभावेन बध्यमानत्वाज्जघन्यबन्धाऽन्तरं समयमात्रं प्राप्यते ॥१९२॥

ओघतः सर्वासां प्रकृतीनां बन्धस्य जघन्यमन्तरं निरूप्य साम्प्रतमोघत एव तदुत्कृष्टतयाभिधित्सुराह

बत्तीससागरसयं परमं मिच्छाइपंचवीसाए ।
मज्झऽट्ठकसायाण कोडी पुव्वाण देसूणा ॥ १९३ ॥

(प्रे०) "बत्तीसा" इत्यादि, 'मिच्छं थीणद्धितिगमणचउगथीणपुमा । सघयणागिइपणगं दुहगतिगं कुखगई नीअ'॥इति संग्रहगाथावयवेषु गदितानां मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतीनां पञ्चविंशतिप्रकृतीनां प्रकृष्टमन्तरं द्वात्रिंशदधिकसागरोपमशतप्रमितमस्ति, भावनाप्रकारस्त्वेवम्-काश्चित्प्रकृतप्रकृतयो मिथ्यात्वगुणस्थानके बन्धप्रायोग्याः सन्ति काश्चिच्च सास्वादनगुणस्थानकेऽपि, मिथ्यात्वगुणस्थानकस्य द्वात्रिंशदभ्यधिकसागरोपमशतप्रमाणमन्तरमुत्कृष्टतो वर्तते, तदेवम्—कश्चिज्जीवो मिथ्यात्वगुणस्थानकं त्यक्त्वा लब्धसम्यक्त्वः षट्षष्टिं सागरोपमाणां यावत्सम्यक्त्वभावे स्थित्वा मिश्रगुणस्थानकमधिगच्छति, पुनश्च जातसम्यग्दृष्टिः षट्षष्टिसागरोपमकालं यावत्तथैव स्थित्वा यदा मिथ्यात्वगुणस्थानकं प्राप्नोति, तदा तादृशमन्तरमवाप्यते, मिथ्यात्वद्वयान्तरे चाऽस्मिन् मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतयः पञ्चविंशतिप्रकृतयो नैव बध्यन्ते, तस्मात्प्रकृतीनामासामीदृशमन्तरं प्रकृष्टतया प्रदर्शितम्, उक्तं च पञ्चमकर्मग्रन्थे देवेन्द्रसूरिपादैः-'पढमसघयणआगिइखगइअणमिच्छदुभगथीणतिगं । नीयनपुइत्थि दुतीस पणिंदिसु अबघठिइ परमा ॥ ५७ ॥ अत्र दुतीस ति द्वात्रिंशशतमतराणां भवतीति शेष.' इति वृत्तिः । "मज्झ" इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपाणां मध्यमाष्टकषायाणां बन्धस्योत्कृष्टमन्तरं देशोनपूर्वकोटिवर्षाणि, अन्तरप्रयोजकीभूताया देशविरतेः सर्वविरतेर्वोत्कृष्टकालस्य तावत्प्रमाणत्वात् ॥१९३॥

होइ असखपरट्टा णिरयणरसुराउदुगणिरयाईणं ।
तिरियाउस्स पुहुत्त कलहिसयाणं मुणेयव्वं ॥ १९४ ॥

(प्रे०) "होइ" इत्यादि, नरकायुर्मनुष्यायुर्देवायुर्नरकद्विकं देवद्विकं वैक्रियद्विकं चेति नवानां प्रकृतीनां बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरमसंख्यातपुद्गलपरावर्तप्रमाणमस्ति, अन्तरप्रयोजकीभूतैकेन्द्रियकायस्थितेरुत्कृष्टतस्तावत्प्रमाणत्वात्, एतदुक्तं भवति—यः कश्चित्द्बद्धैकेन्द्रियप्रायोग्यति-

र्यगायुष्कः संज्ञी द्विचरमान्तर्मुहूर्ते वैक्रियषट्कस्य बन्धं कृत्वा स्वभवस्य चरमान्तर्मुहूर्ते चाऽबन्धं विधायैकेन्द्रियेषूत्पद्यते तत्र भवप्रत्ययेनासां प्रकृतीनामबन्धकतया तिष्ठति, तत्रोत्कृष्टकायस्थितिं यावत् स्थित्वा विकलेन्द्रियेष्वपर्याप्तपञ्चेन्द्रिये च जायते तदा तत्राऽपि भवप्रत्ययेन नैव बध्नाति, पुनरप्येकेन्द्रियविकलेन्द्रियाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियेषूत्कृष्टतो यावत्कालं निर्गमयितुं शक्यते तावत्कालं निर्गमय्य पर्याप्तपञ्चेन्द्रियेषूत्पद्यते, तत्राऽन्तर्मुहूर्तानन्तरं वैक्रियषट्कं बध्नाति, तदा साधिकैकेन्द्रियोत्कृष्टकायस्थितिप्रमाणमुत्कृष्टमन्तरमवाप्यते । एवमायुष्कत्रयस्याऽपि भावनीयम्, किन्तु तत्राऽयं विशेषः–कश्चिज्जीवः संज्ञीषु सागरोपमशतपृथक्त्वकालादर्वागेवाऽऽयुष्कप्रकृतित्रये विवक्षितैकाऽऽयुःप्रकृतेर्बन्धं विधायान्तर्मुहूर्तानन्तरमबन्धं च कृत्वा कञ्चित्कालं सागरोपमशतपृथक्त्वं व्यतीत्य दर्शितरीत्योत्कृष्टकालं यावत् पर्याप्तपञ्चेन्द्रियाद् भिन्नजीवभेदेषु स्थित्वा पुनः पर्याप्तपञ्चेन्द्रियेष्वपि सागरोपमशतपृथक्त्वकालादनन्तरं विवक्षिताऽऽयुःप्रकृतेः पुनर्बन्धं विदधाति, तदोत्कृष्टमन्तरं प्राप्यते । अथवा प्रकृतान्तरं एकेन्द्रियकायस्थितितो यत्माधिकत्वमस्ति, तत्तु स्वयं यथागमं ज्ञातव्यमिति । 'तिरियाउस्स" इत्यादि, तिर्यगायुष्कस्य बन्धसम्बन्धि ज्येष्ठमन्तरं सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमितमवसातव्यम्, तद्यथा–यः कश्चिज्जन्तुस्तिर्यगायुर्बद्ध्वा तिर्यग्गतौ जातः, तदनन्तरं ततो मृत्वा देवनरकमनुष्यगतीनामन्यतमगति सत्कं देवाद्यायुष्कमेव बध्नाति, न पुनस्तिर्यगायुष्कम्, सोऽपि तत्र जातः सन् भूयो भूयः प्रकृष्टतया सागरोपमशतपृथक्त्वकालपर्यन्तं तस्मिन्नेव गतित्रये भ्रमन् तावत्कालपर्यन्तं तत्तद्गतिप्रायोग्यमेवायुर्बध्नाति न पुनस्तिर्यग्गतिप्रायोग्यम्, प्रान्ते भवे यदि बध्नीयादायुस्तर्हि तिर्यगायुरेव, अतस्तिर्यगायुष्कस्येदृशमन्तरं प्राप्तं भवति । उक्तं च जीवाभिगमे–

तिरिक्खजोणियस्स अंतर जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण सागरोपमसयपुहुत्तं साइरेकं । तट्टीका–जघन्येनान्तर्मुहूर्तं तच्च कस्यापि तिर्यक्त्वेन मृत्वा मनुष्यभवेऽन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा भूयस्तिर्यक्त्वेनोत्पद्यमानस्य द्रष्टव्यम्, उत्कर्षतः सातिरेकं सागरोपमशतपृथक्त्वम्, तच्च नैरन्तर्येण देवनारकमनुष्यभवभ्रमणेनाऽवसातव्यम् ॥१९४॥

तेवट्ठिसागरसयं तिरियाइतिगस्स णरदुगुच्चाणं ।
लोगाऽसंखा अहिय पल्लतिग तिवइराईण ॥ १९५ ॥

(प्रे०) 'तेवट्ठि' इत्यादि, तिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्व्युद्योतलक्षणस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धसत्कं त्रिपष्ट्यधिकसागरोपमशतमुत्कृष्टमन्तरमस्ति, तदित्थम्–कश्चिज्जन्तुरेकत्रिंशत्सागरोपमलक्षणोत्कृष्टस्थितिके नवमग्रैवेयके उत्पद्यते तत्र मिथ्यात्वमनुभूय चरमान्तर्मुहूर्ते च सम्यक्त्वं संप्राप्य नानाभवेषु षट्षष्टिसागरोपमकालं तथैव सम्यक्त्वेन सह व्यतिक्रम्य मिश्रगुणस्थानकमवाप्नोति, अन्तर्मुहूर्तादनन्तरं च पुनर्जातसम्यग्दृष्टिः षट्षष्टिसागरोपमकालमेवमेव सम्यक्त्वेन सह व्यतिक्रामति, तदनन्तरं मिथ्यात्वं प्राप्य पुनरेताः प्रकृतीर्बध्नाति, तदा तावत्प्रमाणमन्तरं प्रकृतप्रकृतित्रयस्य प्राप्यते, मिश्रसम्यक्त्वसम्यक्त्वावस्थयोरेताः प्रकृतयो नैव बध्यन्ते, देवमनुष्यप्रायोग्याणामेव प्रकृतीनां तत्र बध्यमानत्वात्, नवमग्रैवेयके च सत्यामपि मिथ्यात्वावस्थायां भवप्रत्ययेनैव प्रकृतीनामासां बन्धाभावः, मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतीनामेव बन्धस्य तत्र विद्यमानत्वात्, अत्र तदप्यन्तरं व्याख्यानतः

सातिरेकपल्योपमचतुष्केनाधिकं ज्ञेयम् , तच्च नानाप्रकारैः पूर्यत इति । 'णर' इत्यादि, मनुष्यगति-मनुष्यानुपूर्व्युच्चैर्गोत्ररूपाणां तिसृणां प्रकृतीनां बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमित-समयप्रमाणं वर्तते, तद्यथा—कश्चित्प्राणी प्रकृतित्रयमेतत्तेजस्कायवायुकायव्यतिरिक्तावस्थायां बद्ध्वाऽ-संख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणसमयप्रमितोत्कृष्टकायस्थितिकेषु तेजस्कायिकवायुकायिकेषूत्पन्नः सन् तावत्कालपर्यन्तं न बध्नाति, तत्र तस्य तावत्कालं तिर्यग्गतिप्रायोग्यप्रकृतीनामेव बन्धविधायित्वात् , पुनः पृथ्व्यादिषु जातः सन् यदा बध्नाति तदाऽभिहितप्रमाणमन्तरमत्र प्राप्यते । 'अहियं' इत्यादि, वज्रर्षभनाराचसंहननौदारिकद्विकात्मकस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धसत्कमन्तरं साधिकं पल्योपमत्रयं वर्तते । तत्पुनरेवम्—पूर्वकोटिवर्षायुष्कः कश्चित्प्राणी स्वायुषस्तृतीयभागे युगलिकसत्कमायुर्बद्ध्वाऽन्तर्मुहूर्तानन्तरं क्षयोपशमसम्यक्त्वमासाद्य क्रमेण क्षायिकसम्यक्त्वं संप्राप्तः सन्नेतत्प्रकृतित्रयं यावदायुर्न बध्नाति; उत्पद्य पुनर्युगलिकभवे पल्योपमत्रयं यावन्न बध्नाति, उभयत्रापि तस्य देवप्रायोग्यप्रकृतीनामेव बन्धविधायकत्वात् । तदनन्तरं देवभवे गत्वा तद्बन्धमारभते तदा तावत्प्रमाणमन्तरं प्राप्तं भवति ॥१९५॥

पणसीइसागरसयं णवायथाईण अद्धपरिअट्टो ।
आहारदुगस्सूणो सेसाण भवे मुहुत्तंतो ॥१९६॥

(प्रे०) 'पणसीइ' इत्यादि, 'आयवथावरएगिंदिसुहुमतिगविगला' इति संग्रहगाथाशकलोक्तानामातपनामकर्मप्रभृतीनां नवानां प्रकृतीनां बन्धस्य पञ्चाशीत्यधिकसागरोपमशतप्रमाणमुत्कृष्टतयाऽन्तरमवसेयम् , तदेवम्—त्रसचतुष्कपञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासलक्षणानां प्रकृतीनां यावत्प्रमाणो गुरुबन्धकालस्तावत्प्रमाण एवाऽधिकृतप्रकृतीनां बन्धविरहकालोऽस्ति । त्रसादिप्रकृतीनां चैतादृग्बन्धकालस्य भावना पुनरोघतः प्रकृष्टबन्धकालप्ररूपणायां भावितैव । 'अद्धपरिअट्टो' इत्यादि आहारकद्विकस्य बन्धसत्कं गुर्वन्तरं देशोनाऽपार्धपुद्गलपरावर्तप्रमितमस्ति, योजना पुनरेवम्— आहारकद्विकं बद्ध्वाऽप्रमत्तसंयतगुणस्थानकात्पतितः कश्चित्प्राणी मिथ्यात्वादिभावं प्राप्य प्रस्तुतद्विकस्याबन्धकः सन्प्रकृष्टतया देशोनार्धपुद्गलपरावर्तकालमेव संसृतिगहने पर्यटति नाधिकं, तदनन्तरं मोक्षभावात्तस्य, मोक्षप्राप्तेः प्रागन्तर्मुहूर्ते पुनराहारकद्विकं बध्नाति, तदा तं जीवमाश्रित्य प्रस्तुतान्तरमाहारकद्विकस्य घटते । 'सेसाणं' इत्यादि, इहोक्तव्यतिरिक्तानां शेषाणां प्रकृतीनां बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं वर्तते, ताश्चेमाः सप्तपञ्चाशत् शेषप्रकृतयः—ज्ञानावरणपञ्चकं स्त्यानर्द्धित्रिकवर्जदर्शनावरणषट्कं वेदनीयद्विकं हास्यषट्कं संज्वलनचतुष्कं पुरुषवेदः पञ्चेन्द्रियजातिस्तैजसकार्मणशरीरद्वयं समचतुरस्रसंस्थानं वर्णचतुष्कं शुभखगतिः त्रसदशकमस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिनामत्रयमातपोद्योतवर्जप्रत्येकषट्कमन्तरायपञ्चकं चेति । यासां ध्रुवबन्धिनीनां बन्धविच्छेदः श्रेणौ, तथाऽध्रुवबन्धिप्रकृतिषु याः प्रकृतयश्चतुर्गतिषु बन्धयोग्यास्तथा यासां बन्धविच्छेदः षष्ठगुण-

स्थानके तदूर्ध्वगुणस्थानके वा तासां ध्रुवाध्रुवप्रकृतीनां बन्धान्तरमन्तर्मुहूर्तादधिकं नैवाऽऽयाति; अतः शेषसर्वप्रकृतीनामुत्कृष्टान्तरमन्तर्मुहूर्तमुक्तमिति, तदित्थम्–उपशमश्रेणिमारोहन् कश्चिज्जीवो यथायोग्यं सातवेदनीयवर्जप्रकृतीनामासां बन्धविच्छेदं विदधदेकादशगुणस्थानं प्राप्य पुनस्ततोऽवपतन् स्वप्रायोग्यबन्धस्थानं लब्ध्वैताः प्रकृतीर्बध्नाति तदा बन्धविच्छेदावसरेऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणमन्तरमुपलभ्यते। एतादृशेऽप्यन्तर्मुहूर्तलक्षणेऽन्तरे यदल्पबहुत्वं तदेवम्–सर्वस्तोकमन्तर्मुहूर्तलक्षणमन्तरं ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्काऽन्तरायपञ्चकरूपाणां चतुर्दशप्रकृतीनां, एकादशगुणस्थानसत्ककालप्रमितत्वात्तस्य, ततः संज्वलनलोभस्य किंचिदधिकम्, आरोहकदशमैकादशावरोहकदशमगुणस्थानकालात्मकत्वात्तस्य। ततो मायामानक्रोधानां यथोत्तरं किञ्चित्साधिकमन्तरम्, श्रेणेरारोहकस्य किञ्चित्कालं पूर्वं पूर्वमेवासां बन्धविच्छेदस्य भावात्, अवरोहकस्य तु पश्चात्पश्चात्पुनर्बन्धसद्भावाच्च, ततोऽपि भयजुगुप्सयोः किञ्चिदधिकम्, उपशमश्रेणावूर्ध्वं गच्छतो नवमदशमैकादशगुणस्थानत्रयकालप्रमितत्वादधः पततस्तस्यैव पुनरपि नवमदशमगुणस्थानकद्वयकालप्रमितत्वाच्च, ततः पुनर्नवानां ध्रुवबन्धिनामप्रकृतीनां साधिकं, अष्टमगुणस्थानषष्ठभागे बन्धविच्छेदेनारोहकावरोहकयोरष्टमगुणस्थानकस्य सप्तमभागरूपस्य किंचित्कालस्याऽपि समावेशात्, ततोऽपि निद्राद्विकस्याऽधिकं, उपर्युक्तकाले किंचिदधिककालस्य समावेशात्। आभ्योऽतिरिक्तानां शेषप्रकृतीनामन्तर्मुहूर्तलक्षणेऽन्तरे यदल्पबहुत्वम्, तत्स्वधिया विभावनीयम्। सातवेदनीयस्य प्रकृष्टं बन्धसत्कमन्तरं प्रतिपक्षप्रकृतिबन्धकालप्रयुक्तं ज्ञेयम् ॥१९६॥

ओघतो जघन्योत्कृष्टतया द्विविधं बन्धान्तरं निरूप्य साम्प्रतमादेशतः सर्वमार्गणासु सर्वासामायुष्कर्मवर्जानां प्रकृतीनामेकजीवमाश्रित्य तन्निरूपयिषुरादौ जघन्यतो निरूपयन्नाह

सव्वासु मग्गणासुं अवक्खमाणाण आउवज्जाणं।
सप्पाउग्गाण भवे जहण्णगं अंतरं समयो ॥१९७॥

(प्रे०) "सव्वासु" इत्यादि, सकलासु गत्यादिमार्गणास्वायुष्कचतुष्कवर्जानां वक्ष्यमाणविभिन्नानां 'सप्पाउग्गाण' इति मार्गणाबन्धार्हाणां प्रकृतीनां जघन्यं बन्धान्तरं समयप्रमाणं भवति, तत्र तत्तन्मार्गणासु याः प्रकृतयोऽध्रुवबन्धिन्यस्तासां समयप्रमाणमन्तरमध्रुवबन्धापेक्षया ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च समयप्रमाणमन्तरमुपशमश्रेणौ समयमेकमबन्धं कृत्वा कालकरणेन पुनर्बन्धं विदधतं जीवमपेक्ष्य विज्ञेयम् ॥१९७॥

नरकमार्गणासु कतिपयासु च देवमार्गणासु यासां प्रकृतीनामेकजीवमाश्रित्य बन्धाऽन्तरं न भवति तासां निषेधयन् यासां पुनः समयादतिरिक्तं भवति तासां जघन्यतो दर्शयंश्चाह–

णिरयपढमाइतिणिरयतइआइगअट्ठमंतदेवेसुं ।
णेयं भिन्नमुहुत्तं मिच्छाईण अडयडीणं ॥१९८॥

णो अत्थि अंतरं खलु सेसधुववसुरलुवंगआईणं ।
तुरियाइतिणिरयेसुं णिरयव्वऽत्थि जिणवज्जाणं ॥१९९॥

(प्रे०) "णिरय" इत्यादि, नरकौघरत्नप्रभाशर्कराप्रभावालुकाप्रभारूपासु चतसृषु नरकमार्गणासु सनत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलान्तकशुक्रसहस्राररूपासु च षट्सु देवमार्गणासु 'मिच्छं थीणद्धितिगमणचउग' इति संग्रहगाथावयवेपूक्तानां मिथ्यात्वस्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कलक्षणस्य प्रकृत्यष्टकस्य जघन्यं बन्धान्तरमन्तर्मुहूर्तात्मकमवसातव्यम्, एतत्प्रकृतिबन्धहेतुभूतस्य मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकस्य जघन्याऽन्तरस्याप्यन्तर्मुहूर्तप्रमाणत्वात् । 'णो' इत्यादि अप्रत्याख्यानावरणादिकषायद्वादशकं ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणषट्कं भयजुगुप्सेऽन्तरायपञ्चकं वर्णचतुष्कमगुरुलघुरूपघातो निर्माणं तैजसकार्मणशरीरद्वयं चेति शेषनवत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां 'उरलुवंगाणि ॥ उरलं परघूसासा बायरतिगतसपणिंदिजिण' इति संग्रहगाथाशकलेषु भणितानामौदारिकाङ्गोपाङ्गादीनां दशप्रकृतीनां चानवरतं बध्यमानत्वेन बन्धान्तरं नास्ति । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयमनुष्यद्विकतिर्यग्द्विकसंस्थानषट्कसंहननषट्कखगतिद्विकस्थिरषट्काऽस्थिरषट्कोद्योतगोत्रद्वयरूपाणां द्विचत्वारिंशच्छेषप्रकृतीनां मार्गणास्वासु 'सव्वासु मग्गणासु' इत्यादिगाथया समयात्मकं जघन्यं बन्धान्तरमवसातव्यम्, प्रकृतिभ्य आभ्यः कासाञ्चित्प्रकृतीनां परावर्तमानत्वेन बध्यमानत्वात्, कासाञ्चित्प्रकृतीनामध्रुवबन्धित्वाच्च । "तुरियाइ" इत्यादि, पङ्कप्रभाधूमप्रभातमःप्रभालक्षणमार्गणात्रये तीर्थकृन्नामकर्म परित्यज्य स्वप्रायोग्यसकलप्रकृतीनां जघन्यं बन्धान्तरं नरकौघादिमार्गणावद् विज्ञेयम् । तीर्थकृन्नामकर्मणस्त्वत्र मार्गणासु बन्धाभावेन वर्जनं कृतम् ॥१९८-९९॥

अथ सप्तमनरकमार्गणायामाह

अडमिच्छाइतिरियणरगोअदुगाणं भवे तमतमाए ।
भिन्नमुहुत्तमियरधुवणवुरलुवंगाइगाणं णो ॥२००॥

(प्रे०) "अडमिच्छाइ" इत्यादि, तमस्तमाख्यसप्तमनरकमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्करूपाणामष्टानां प्रकृतीनां तिर्यग्द्विकमनुष्यद्विकगोत्रद्विकरूपस्य च प्रकृतिषट्कस्य बन्धसत्कं जघन्यमन्तरमन्तर्मुहूर्तरूपमवसातव्यम्, भावना त्वेवम् मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रप्रकृतित्रयं मार्गणायामस्यां सम्यक्त्वप्रत्ययेन बध्यते, सम्यक्त्वस्य च जघन्यतयाऽन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणमस्ति, सम्यक्त्वद्वयान्तराले मिथ्यात्वाऽवस्थायामेतत्प्रकृतित्रयं नैव बध्यते, तस्मात्तदन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणमुपलभ्यते । मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकं तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतित्रयं च मिथ्यात्वादिहेतुना बध्यते, मिथ्यात्वादेर्लभ्यन्तरमन्तर्मुहूर्तमस्ति, मिथ्यात्वद्वयाऽन्तराले सम्यक्त्वावस्थायां पुनरेताः प्रकृतयो बन्धतो न भवन्ति, तस्मादासां प्रकृतीनां बन्धस्याऽन्तर्मुहूर्तलक्षणमन्तरं जघन्यतया प्राप्यते । "इयर" इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृत्यष्टकवर्जानां शेषैकोनचत्वारिंशद्-

ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकाङ्गोपाङ्गौदारिकशरीरपराघातोच्छ्वासबादरत्रिकत्रसपञ्चेन्द्रियजातिरूपाणां नवानां प्रकृतीनां च बन्धस्याऽन्तरमेव नास्ति, मार्गणायामस्यां बन्धतो सततं प्राप्यमाणत्वात् । नरकौघादिमार्गणासूक्तानां शेषाणा द्विचत्वारिंशत्प्रकृतिमध्यात् तिर्यग्द्विकादिषट्प्रकृतिवर्जषट्त्रिंशत्प्रकृतीनामत्राऽपि 'सव्वासु मग्गणासु' इत्यादिगाथया समयात्मकं बन्धसत्कं लघ्वन्तरं ज्ञातव्यम् । ॥२००॥

अथ तिर्यगोघादिमार्गणासूत्तरप्रकृतिबन्धस्य जघन्यमन्तरं प्रतिपाद्यते

भिन्नमुहुत्तं तिरियतिपणिदितिरियेसु बारसण्ह भवे ।
दुइअकसायाईण ण भवे सेसधुवबन्धीणं ॥२०१॥

(प्रे०) "भिन्नमुहुत्तं" इत्यादि, तिर्यगोघतिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिमतीमार्गणास्वप्रत्याख्यानावरणचतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कलक्षणानां द्वादशप्रकृतीना जघन्यं बन्धान्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणमस्ति, मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृत्यष्टकस्य बन्धसत्कमन्तरं प्रागवद्भावनीयम् । अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य त्वेवम्–मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकाच्चतुर्थगुणस्थानकाद्वा कश्चिदप्रत्याख्यानावरणचतुष्कबन्धकजीवो देशविरतिगुणस्थानं संप्राप्य तत्र तस्याबन्धको भूत्वा जघन्यतया च तत्राऽन्तर्मुहूर्तमवस्थाय पुनरपि अधस्तनं किमपि गुणस्थानकमाप्नोति,तदाऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य पुनर्बन्धाद् बन्धान्तरस्य विच्छेदो भवति,इत्थमन्तर्मुहूर्तप्रमाणमप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य लघुभूतमन्तरं प्राप्यते । "ण भवे" इत्यादि, ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कसञ्ज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणां शेषाणां पञ्चत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धान्तरं नास्ति, तासां निरन्तरं बध्यमानत्वात् । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्काऽऽनुपूर्वीचतुष्कविहायोगतिद्विकत्रसदशकस्थावरदशकाऽऽतपोद्योतपराघातोच्छ्वासगोत्रद्विकरूपाणा शेषाणामध्रुवबन्धिनीनां षट्षष्टिप्रकृतीनामेकसामयिकं जघन्यबन्धान्तरं 'सव्वासु मग्गणासु' इत्यादिगाथया विज्ञेयम् ॥२०१॥

अथाऽपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियादिमार्गणासु तथा सकलैकेन्द्रियविकलेन्द्रियपृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिकायभेदेषु तदाह

असमत्तपणिदितिरियमणुसपणिदियतसेसु सव्वेसुं ।
एगिंदियविगलेसुं कायपणगसव्वभेएसुं ॥२०२॥
धुवबंधिउरालोभ सव्वेसुं तेउवाउभेएसुं ।
तिण्ह णीआईण वि णो हवए अंतरं चेव ॥२०३॥

(प्रे०) "असमत्त" इत्यादि, अपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्तमनुष्यापर्याप्तपञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्तत्रसरूपासु चतसृषु मार्गणासु, ओघसूक्ष्मौघबादरौघसूक्ष्मपर्याप्तबादरपर्याप्तसूक्ष्माऽपर्याप्तबादराऽपर्या-

सभेदविशिष्टासु सप्तस्वेकेन्द्रियमार्गणासु ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदभिन्नासु तिसृषु द्वीन्द्रियमार्गणासु तिसृषु त्रीन्द्रियमार्गणासु तिसृषु चतुरिन्द्रियमार्गणासु ओघसूक्ष्मौघबादरौघसूक्ष्मपर्याप्तबादरपर्याप्त-सूक्ष्माऽपर्याप्तबादराऽपर्याप्तभेदेन सप्तसु पृथ्वीकायमार्गणासु सप्तस्वप्कायमार्गणासु सप्तसु तेजस्काय-मार्गणासु सप्तसु वायुकायिकमार्गणासु ओघप्रत्येकौघपर्याप्तप्रत्येकाऽपर्याप्तप्रत्येकसाधारणौघसूक्ष्मसा-धारणौघबादरसाधारणौघपर्याप्तसूक्ष्मसाधारणाऽपर्याप्तसूक्ष्मसाधारणपर्याप्तबादरसाधारणाऽपर्याप्तबादरसा-धारणभेदभिन्नासु वनस्पतिकायसत्कैकादशमार्गणासु चेत्येवं सर्वसङ्ख्यया नवपञ्चाशन्मार्गणासु सप्त-चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्च सर्वदैव बध्यमानत्वेन बन्धाऽन्तरं नास्ति। "सव्वेसु" इत्यादि, तेजस्कायवायुकायिकयोः प्रत्येकं सप्तसु सप्तसु मार्गणासु नीचैर्गोत्रतिर्यग्द्वि-करूपस्य प्रकृतित्रयस्याऽपि न विद्यते बन्धाऽन्तरम् ,सततं तत्र बध्यमानत्वात् । तथा वेदनीयद्विकहा-स्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानषट्कतिर्यग्म--नुष्यानुपूर्वीद्वयविहायोगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासगोत्रद्वयरूपाणां शेषाणा-मेकोनषष्टिप्रकृतीनां 'सव्वासु मग्गणासु' इत्यादिगाथया चतुर्दशतेजस्कायवायुकायिकमार्गणावर्जा-सूक्तशेषमार्गणासु, तिर्यग्द्विकमनुष्यद्विकगोत्रद्वयवर्जानामासामेव त्रिपञ्चाशत्शेषप्रकृतीनां चतुर्दशसु तेजस्कायवायुकायिकमार्गणासु च समयात्मकं जघन्यतो बन्धान्तरं वेदयितव्यम् ॥२०२-३॥

अथ मनुष्यौघप्रभृतिषु मार्गणासूत्तरप्रकृतीनां जघन्यबन्धान्तरं विचारयन्नाह

तिण्णरेसु मुहुत्तंतो आहारदुगधुवबंधितित्थाणं।

(प्रे०) "तिणरेसु" इत्यादि, मनुष्यौघपर्याप्तमनुष्यमानुषीरूपासु तिसृषु मार्गणास्वाहारक-द्विकस्य सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जिननामकर्मणश्च लघुभूतं बन्धान्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणमस्ति। भावना पुनरेवम्–मिथ्यात्वाद्यद्वादशकषायस्त्यानर्द्धित्रिकप्रकृतीनां जघन्यं बन्धान्तरमोघवज्ज्ञातव्यम् । शेषध्रुवबन्धिनीनां जिननाम्नश्च जघन्यं बन्धाऽन्तरमुपशमश्रेणौ यः कश्चित् स्वस्वबन्धविच्छेदस्थाने बन्धविच्छेदं कृत्वा उपशान्तमोहगुणस्थानकं प्राप्य तत्रान्तर्मुहूर्तं स्थित्वाऽद्धाक्षयेण श्रेणितः पतित्वा स्वस्वबन्धस्थाने पुनर्बन्धं करोति तं जीवमाश्रित्य तत्तत्प्रकृतीनां जघन्यं बन्धाऽन्तरं प्राप्यते । विशेष-भावना जिननामवर्जानां आसां प्रकृतीनामोघतो जघन्यान्तरप्रस्तावे यथाकृता तथा कर्तव्या, नवरमत्र कालकरणाभावे तत्तद्गुणस्थानकस्य यावदल्पकालः प्राप्यते तावत्कालो ग्राह्यः । आहारकद्विकस्य जघन्यं बन्धान्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणमोघवज्ज्ञातव्यम् । 'सव्वासु मग्गणासु' इत्यादिगाथया शेषषट्-पञ्चाशदध्रुवबन्धिनीनां जघन्यं बन्धान्तरं समयप्रमाणमवसातव्यम् ॥. -२०४॥

अथ देवौघादिमार्गणासु जघन्यं बन्धसत्कमन्तरमाह

सुरपढमदुकप्पेसुं अडमिच्छाईण लहु मुहुत्तंतो ॥२०४॥ (गीतिः)
सेसधुवबंधिणीणं तह जिणछुरलाइगाण णेव भवे।
देवव्व जाणियव्वं भवणतिगे तित्थवज्जाण ॥२०५॥

(प्रे०) "सुर" इत्यादि, देवौघसौधर्मेशानाख्यमार्गणात्रये मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कस्वरूपाणामष्टानां प्रकृतीनां जघन्यं बन्धान्तरमन्तर्मुहूर्तमस्ति, मिथ्यात्वगुणस्थानकविरहकालस्य जघन्यतोऽप्यन्तर्मुहूर्तप्रमितत्वात् । 'सेस' इत्यादि, ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्काऽप्रत्याख्यानावरणादिद्वादशकषायभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणरूपाणामेकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जिननामौदारिकशरीरपराघातोच्छ्वासबादरत्रिकरूपाणां सप्तानां प्रकृतीनां च बन्धाऽन्तरमेव नास्ति, तासां निरन्तरं बध्यमानत्वादत्र । आसु मार्गणासु तीर्थकृन्नामकर्मणो बन्धः सर्वैर्देवैर्न क्रियते, परं कैश्चिदेव, स तु सततमेव, अतस्तदन्तरं नास्ति । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयैकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजातिद्वयौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानषट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्विकत्रसस्थिरषट्कस्थावराऽस्थिरषट्कातपोद्योतगोत्रद्वयलक्षणानामष्टचत्वारिंशत्शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनामेकसामयिकं बन्धसत्कं लघ्वन्तरं 'सव्वासु मग्गणासु' इत्यादिगाथया ज्ञातव्यम्, अध्रुवबन्धित्वात्तासाम् । 'देवव्व' इत्यादि, भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्करूपासु तिसृषु मार्गणासु केवलं जिननाम वर्जयित्वा शेषाशेषप्रकृतीनां बन्धस्य लघुभूतमन्तरं सुरौघादिमार्गणावदभिधेयम् । जिननामवर्जनं त्वत्र बन्धविरहादेव । ॥२०४-५॥ अथाऽऽनतादिमार्गणासु जघन्यं बन्धान्तरं कथयति

णेयं भिन्नमुहुत्तं अडमिच्छाईण आणयाईसु ।
सेसधुववधिणरदुगवसुरलुवंगाइगाणं णो ॥२०६॥

(प्रे०) "णेय" मित्यादि, आनतप्राणतारणाच्युतनवग्रैवेयकरूपासु त्रयोदशमार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्करूपस्य प्रकृत्यष्टकस्याऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणं जघन्यं बन्धान्तरं ज्ञेयम्, मिथ्यात्वगुणस्थानसत्काऽन्तरस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणत्वात्, तदन्तरे तावत्कालपर्यन्तं तस्याऽवध्यमानत्वाच्च । "सेस" इत्यादि, एतत्प्रकृत्यष्टकवर्जशेषैकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां मनुष्यद्विकौदारिकद्विकपराघातोच्छ्वासबादरत्रिकत्रसपञ्चेन्द्रियजातिजिननामरूपाणां द्वादशप्रकृतीनां निरन्तरं बध्यमानत्वेन बन्धाऽन्तरं नास्ति । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयसंहननषट्कसंस्थानषट्कखगतिद्विकस्थिरषट्कास्थिरषट्कगोत्रद्वयरूपाणां सप्तत्रिंशत्शेषप्रकृतीनां जघन्यं बन्धान्तरं 'सव्वासु मग्गणासु' इतिगाथया समयात्मकमवसातव्यम्, अध्रुवबन्धित्वात् ॥२०६॥

अथानुत्तरादिमार्गणासु प्रकृतान्तरमाह

पचसु अणुत्तरेसुं आहारदुगम्मि देसमीसेसुं ।
णो अत्थि अंतर खलु वारहसायाइवज्जाणं ॥२०७॥

(प्रे०) "पञ्चसु" इत्यादि, अनुत्तररूपासु पञ्चसु मार्गणास्वाहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगदेशविरतिसंयममिश्रसम्यक्त्वरूपासु चतसृषु मार्गणासु च सातवेदनीयाऽसातवेदनीयरत्यरतिहा-

ऽपशोकस्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिरूपा द्वादशप्रकृतीर्वर्जयित्वा शेषाणां स्वप्रायोग्याणां प्रकृतीनां बन्धस्याऽन्तरं नास्ति, सततं तद्बन्धसद्भावात् । तथा सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनां बन्धसत्कं जघन्यमन्तरं 'सव्वासु मग्गणासु' इत्यादिगाथया समयप्रमाणं वेदयितव्यम् , परावर्तमानत्वेन बध्यमानत्वात्तासाम् ॥२०७॥ अथ यासु मार्गणास्वोघवज्जघन्यान्तरं तास्त्वाह

ओघव्व जाणियव्वं दुपणिदितसणयणेयरभवेसु ।
सण्णिम्मि तहाहारे आहारदुगाइचोसाए ॥२०८॥

(प्रे०) 'ओघव्व' त्यादि पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौघपर्याप्तत्रसचक्षुरचक्षुर्दर्शनभव्यसंज्याहारकरूपासु नवसु मार्गणासु 'आहारदुग जिणदुग च तइअकसाया। दुइअकसाया मिच्छ थीणद्धितिगमण' इति संग्रहगाथाऽवयवेषु भापितानामाहारकद्विकादिविंशतिप्रकृतीनां जघन्यतो बन्धाऽन्तरमोघवदवसातव्यम् , तदेवम्—आहारकद्विकस्य प्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रभृतिप्रकृतिषोडशकस्य च बन्धसत्कं जघन्यमन्तरमन्तर्मुहूर्तं विद्यते, निद्राद्विकस्य च समयः, मतान्तरेण पुनरन्तर्मुहूर्तम् , भावना पुनरत्रौघवदवसातव्या । मार्गणास्वास्वेतद्विंशतिप्रकृतिव्यतिरिक्तानां नवविंशतिध्रुवबन्धिप्रकृतीनां सप्तपञ्चाशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च समयप्रमाणं जघन्यं बन्धान्तरं 'सव्वासु मग्गणासु' इत्यादिगाथातोऽवसेयम् , विशेषभावना ओघतोऽवसेया ॥२०८॥

अथ पञ्चमनोयोगादिमार्गणासु जघन्यमन्तरमुच्यते

पणमणवयउरलेसु सगयालीसधुवबंधिणीण तहा ।
तित्थाहारदुगाण णो हवए अंतरं चेव ॥२०९॥

(प्रे०) "पणमण" इत्यादि मनःसामान्य-सत्यमनो-ऽसत्यमनः-सत्यासत्यमनो-ऽसत्यामृषामनो-वचनौघ-सत्यवचना-ऽसत्यवचन-सत्यासत्यवचना-ऽसत्यामृषावचनौदारिककाययोगरूपासु मार्गणास्वेकादशसु सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां तथा जिननामाहारकद्विकरूपस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धाऽन्तरमेव न भवति, कुतः ? प्रकृतीनामासां बन्धविच्छेदानन्तरं भूयोऽपि बन्धे योऽन्तरकालोऽवाप्यते तदपेक्षयौदारिककाययोगवर्जमार्गणानामासां कायस्थितिकालस्याल्पत्वेन मध्य एव मार्गणायाः परावृत्तिभावात् ,औदारिककाययोगमार्गणाया एकेन्द्रियजीवापेक्षया दीर्घावस्थानेऽपि तत्राऽपि प्रकृतप्रकृत्यबन्धस्य तु संज्ञिनामेव लाभात् , तेषां प्रत्यन्तर्मुहूर्तं योगानां परावृत्तेश्चाऽबन्धोत्तरं बन्धप्रारम्भं यावन्न विद्यते प्रस्तुतमार्गणायामवस्थानम् , तथा च न भवति प्रस्तुतान्तरमपीति । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्काऽऽनुपूर्वीचतुष्कखगतिद्विकत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासगोत्रद्विकरूपाणां शेषपट्पञ्चाशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनां 'सव्वासु मग्गणासु' इत्यादिगाथया समयप्रमितं बन्धसत्कं लघ्वन्तरमधिगम्यम् ॥२०९॥ अथ काययोगौघमार्गणायां तदुच्यते

काये आहारजुगलतइअकसायाइसोलसण्हं णो ।
ओघव्व अंतरं खलु निद्दापयलाण विण्णेयं ॥२१०॥

(प्रे०) "काये" इत्यादि, काययोगौघमार्गणायामाहारकद्विकस्य 'तइअकसाया ॥ दुइअकसाया मिच्छ थीणद्धितिगमणचउग' इत्यादिसंग्रहगाथाशकलेषु भणितानां प्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्कप्रभृतीनां षोडशप्रकृतीनां च बन्धस्याऽन्तरं नास्ति, कुतः ? इति चेद् उच्यते, ओघत आसां प्रकृतीनां संज्ञिजीवेष्वेव जघन्यतोऽप्यन्तमुहूर्तप्रमाणं बन्धसत्कमन्तरमवाप्यते, संज्ञिषु प्रकृतकाययोगौघमार्गणा अभिहितजघन्याऽन्तरकालादतीवस्तोककालस्थायिनी वर्तते, तस्मादबन्धानन्तरं पुनर्बन्धादर्वागेव प्रकृतमार्गणाया अपगमात् प्रकृतप्रकृतीनां बन्धस्याऽन्तरं नैवाऽवाप्तुं शक्यत इति । "ओघव्व" इत्यादि, निद्राप्रचलयोर्बन्धस्याऽन्तरमोघवद्विज्ञेयम्, तदेवम्--एकेन मतेन समयलक्षणं तदन्यमतेन चाऽन्तमुहूर्तलक्षणं निद्राद्विकस्य बन्धसत्कमन्तरं विद्यते, अत्र युक्तिः प्रागुक्तैव । तथा ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकोनत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कानुपूर्वीचतुष्कविहायोगतिद्विकत्रसदशकस्थावरदशकाऽऽतपोद्योतपराघातोच्छ्वासजिननामगोत्रद्विकरूपाणां सप्तषष्ट्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च बन्धस्यैकसामयिकमन्तरं 'सव्वासु मग्गणासु' इत्यादिगाथातोऽवसेयम् । एकोनत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जिननाम्नश्च सामयिकमन्तरमोघवद् विभावनीयम् , शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां त्वध्रुवबन्धित्वादेव समयमेकं बन्धान्तरं विज्ञेयम् ॥२१०॥

अथौदारिकमिश्रकाययोगे तथा वैक्रियद्विके जघन्यमन्तरमाह

णत्थि उरालियमीसे धुवबंधिजिणुरलचउसुराईणं ।
णेव भवे विउवदुगे जिणछुरलाइधुवबंधीणं ॥२११॥

(प्रे०) "णत्थि" इत्यादि, औदारिकमिश्रमार्गणायां सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जिननामौदारिकशरीरसुरद्विकवैक्रियद्विकरूपाणा पण्णां प्रकृतीनां च बन्धस्याऽन्तरं नास्ति, ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धस्याऽन्तरं तदा भवति यदा कश्चिज्जीवो मिथ्यात्वाद्यधस्तनगुणस्थानतः सम्यक्त्वाद्युपरितनगुणस्थानकं सम्प्राप्य पुनर्मिथ्यात्वादिगुणस्थानकं प्राप्नोति, अत्र तु मिथ्यात्वसम्यक्त्वगुणस्थानकयोः परावृत्तेरभावेन ध्रुवबन्धिप्रकृतिनां बन्धसत्कमन्तरं नैवायाति । तथा मार्गणायामस्यां जिननामसुरद्विकवैक्रियद्विकरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्य सम्यग्दृष्टिजीवैस्तथा मार्गणागतशेषसर्वजीवैरौदारिकशरीरनाम्नोऽनवरतं बध्यमानत्वादासां पट्प्रकृतीनां बन्धस्यान्तराभावो ज्ञातव्य इति । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानषट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासगोत्रद्विकरूपा-

णामेकोनषष्टयध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जघन्यं बन्धसम्बन्ध्यन्तरं 'सव्वासु मग्गणासु' इत्यादिगाथातः समयात्मकं बोद्धव्यम् । "णेव भवे" इत्यादिना वैक्रियकाययोगवैक्रियमिश्रकाययोगाख्यमार्गणयोः प्रस्तुतमाह–निरुक्तमार्गणाद्वये सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरपराघातोच्छ्वासबादरत्रिकजिननामरूपाणां सप्तप्रकृतीनां च बन्धसत्कमन्तरं नास्ति, तच्चैवम्–मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृत्यष्टप्रकृतिवर्जशेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरादिषट्प्रकृतीनां च निरन्तरं बध्यमानत्वेनाऽन्तरं नास्ति, जिननाम्नस्तु तद्बन्धकजीवैः सततं बध्यमानत्वेनाऽन्तराभावो बोद्धव्यः । मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकस्य बन्धान्तराभावो वैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणायां मिथ्यात्वसम्यक्त्वगुणस्थानकयोः परावृत्तेरभावादवसातव्यः, तस्यैवाष्टकस्य बन्धान्तराभावो वैक्रियकाययोगमार्गणायां तु मिथ्यात्वगुणस्थानकस्य जघन्यान्तराऽपेक्षया मार्गणाकालस्याऽल्पतरत्वाज्ज्ञेयः । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयैकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजातिद्वयौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानषट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्विकत्रसस्थिरषट्कस्थावराऽस्थिरषट्कातपोद्योतगोत्रद्वयरूपाणामष्टचत्वारिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जघन्यं बन्धसत्कमन्तरं 'सव्वासु मग्गणासु' इत्यादिगाथातः समयप्रमाणमवसेयम् ॥२११॥

अधुना कार्मणानाहारकमार्गणयोः प्रकृतं भण्यते

कम्माणाहारेसु ण धुवबंधिजिणुरलअडसुराईणं ।
समयो सेसाण भवे अहवा सयमुज्जमण्णमये ॥२१२॥

(प्रे०) "कम्माणाहरेसु" इत्यादि, कार्मणकाययोगाऽनाहारकमार्गणाद्वये सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां तीर्थकरनामौदारिकशरीरसुरद्विकवैक्रियद्विकरूपाणां षण्णां प्रकृतीनां च बन्धस्याऽन्तरं नास्ति, यतो मार्गणयोरनयोर्यैर्जीवैरेता बध्यन्ते तैरनवरतमेव । "समयो" इत्यादि, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानषट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकाऽऽतपोद्योतपराघातोच्छ्वासगोत्रद्विकरूपाणामेकोनषष्टिशेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धसत्कं जघन्यमन्तरं समयप्रमाणमस्ति । "अहवा" इत्यादि, अथवा प्रकृतीनामासां बन्धस्य जघन्यमन्तरमन्यमतेन स्वयं विचारणीयम् । "अण्णमये" इति शब्देन ये त्रसप्रायोग्यप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालो द्विसमयप्रमाण एव, न तु मार्गणाकायस्थितिरूपत्रिसमयप्रमाण इति मन्यन्ते, तेऽत्राऽभिप्रेताः, तेषां मते त्रसप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धस्याऽन्तरं नास्ति, त्रसप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकालस्य द्विसमयप्रमाणस्यैवोत्कृष्टतया स्वीकृतत्वात्, यत्र हि जघन्यतोऽपि त्रिसामयिको बन्धकालः, तत्रैव द्विर्बन्धसंभवेन बन्धस्याऽन्तरं प्राप्यते । शेषस्थावरप्रायोग्यप्रकृतिषु यासां सातवेदनीयादिप्रकृतीनां परावर्तमानभावेन बन्धस्तासां प्रकृतीनां बन्धस्य समयप्रमाणमन्तरमवसातव्यम्, द्विर्बन्धभावात्, शेषाणां तिर्यग्द्विकादीनां जघन्यं बन्धान्तरं यथासमयं वक्तव्यमिति ॥२१२॥

साम्प्रतं वेदमार्गणासूत्तरप्रकृतिबन्धस्य जघन्यतोऽन्तरं दर्शयितुकाम आदौ स्त्रीवेदमार्गणाया-माह—

थीए आहारजुगलतइअकसायाइसोलसण्ह भवे ।
भिन्नमुहुत्तं हवए णो जिणसेसधुवबधीणं ॥२१३॥

(प्रे०) "थीए" इत्यादि, स्त्रीवेदमार्गणायामाहारकद्विकस्य प्रत्याख्यानावरणचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्करूपाणां षोडशप्रकृतीनां च बन्धस्य लध्वन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवति । तदित्थम्—कश्चित्स्वप्रमत्तगुणस्थानके आहारकद्विकस्य बन्धं विधाय प्रमत्तगुणस्थानकं गत्वाऽबन्धं करोति ततश्चागत्य पुनरप्यप्रमत्तगुणस्थानके तद्बन्धं करोति तदाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणमन्तरं प्राप्तं भवति । शेषषोडशप्रकृतीनां तु भावनाऽऽौघवदनुसंधेया । 'हवए'इत्यादि, ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णादिचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जिननाम्नश्च बन्धसत्कमन्तरं नास्ति, तच्चैवम्—संज्वलनचतुष्कज्ञानावरणादिचतुर्दशप्रकृतीना सततमिह बध्यमानत्वेन, शेषत्रयोदशध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च बन्धविच्छेदानन्तरं पुनर्बन्धात्प्राग् मार्गणाया विच्छेदेनाऽन्तरं न प्राप्यते, जिननाम्नस्तु श्रेणौ बन्धविच्छेदानन्तरं पुनर्बन्धात्प्राग् मार्गणाया विच्छेदेन, कालकरणे तु देवगतौ पुरुषवेदितयैवोत्पादेन मार्गणाया विच्छेदात् , नरकाभिमुखानामबन्धलाभेऽपि मरणानन्तरं नरकगतौ नपुंसकवेदितयोत्पादेन मार्गणाया विच्छेदाद् बन्धान्तरं निषिद्धम् । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कानुपूर्वीचतुष्कखगतिद्विकत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासगोत्रद्विकरूपाणां षट्पञ्चाशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनामेकसामयिकं बन्धसत्क जघन्यमन्तरं 'सव्वासु मग्गणासु' इत्यादिगाथया ज्ञातव्यम् ॥२१३॥

अथ नपुंसकवेदमार्गणायामाह

तित्थयराहारजुगलतइअकसायाइसोलसण्ह भवे ।
णपुमे अतमुहुत्त ण होइ सेसधुवबधीणं ॥२१४॥

(प्रे०) "तित्थ" इत्यादि, नपुंसकवेदमार्गणायां तीर्थकरनामाहारकद्विकप्रत्याख्यानावरणचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्करूपाणामेकोनविंशतिप्रकृतीनां बन्धसत्कं जघन्यमन्तरमन्तर्मुहूर्तमस्ति,तदित्थम्—मार्गणायामस्यां विद्यमानः कश्चिद् बद्धनरकायुष्कः प्राणी जिननामकर्म निकाच्य प्रान्तेऽन्तर्मुहूर्तं मिथ्यात्वभावमवाप्य तद्बन्धं न करोति नारके चोत्पन्नः सन्नन्तर्मुहूर्तानन्तरं सम्यक्त्वं संप्राप्य पुनरपि तद्बन्धमारभते तदा तादृशमन्तरं लभ्यते । आहारकद्विकस्य स्त्रीवेदमार्गणावत् , प्रत्याख्यानावरणादिप्रकृतीनां चौघवद् भावना भाव्या । "ण होइ"इत्यादि, मार्गणायामस्यां प्रत्याख्यानावरणादिषोडशप्रकृतिव्यतिरिक्तानां शेषैकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धान्तरं नास्ति । हेतुस्तु स्त्रीवेदमार्गणावद् विभावनीयः । अत्र स्त्रीवेद-

मार्गणोक्तानामेव शेषषट्षष्ट्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धस्य जघन्यमन्तरमेकसामयिकं 'सव्वासु मग्गणासु' इत्यादिगाथातोऽवसेयम् ॥२१४॥

अथ पुरुषवेदमार्गणायामाह

पुरिसे ण अंतरं खलु संजलणावरणणवगविग्घाणं ।
ओघव्व जाणियव्वं आहारदुगाइवीसाए ॥२१५॥

(प्रे०) "पुरिसे" इत्यादि, पुरुषवेदमार्गणायां संज्वलनचतुष्कज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कान्तरायपञ्चकरूपाणामष्टादशप्रकृतीनां बन्धस्याऽन्तरं नास्ति, श्रेणावपि मार्गणाचरमसमयं यावदनवरतमासां बध्यमानत्वात् । "ओघव्व" इत्यादि 'आहारदुगं निद्दुगं च तइअकसाया ॥ दुइअकसाया मिच्छं थीणद्धितिगमणचउग' इति संग्रहगाथात्रयवेषु भाषितानामाहारकद्विकप्रभृतिप्रकृतीनां विंशतेर्बन्धस्य जघन्यतयाऽन्तरमोघवदधिगन्तव्यम् । तद्यथा—निद्राद्विकबन्धस्यैकमतेन समयप्रमाणम्, अन्यमतेनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणं जघन्यमन्तरमस्ति, तथाऽऽहारकद्विकस्य प्रत्याख्यानावरणादिप्रकृतिषोडशकस्य च बन्धसत्कमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमितं विद्यते । भावना पुनरोघवदत्र परिभावनीया । तथा भयजुगुप्सावर्णचतुष्कतैजसकार्मणशरीरद्वयाऽगुरुलघूपघातनिर्माणरूपाणां ध्रुवबन्धिनीनामेकादशप्रकृतीनां वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कानुपूर्वीचतुष्कखगतिद्विकत्रसदशकस्थावरदशकाऽऽतपोद्योतपराघातोच्छ्वासजिननामगोत्रद्वयरूपाणां सप्तषष्ट्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च बन्धसत्कं लघ्वन्तरं 'सव्वासु मग्गणासु' इत्यादिगाथया समयप्रमितं ज्ञातव्यम् । भयादिप्रकृत्येकादशप्रकृतीनां जिननाम्नश्चैतादृशमन्तरमुपशमश्रेणौ यः कश्चित्प्राणी प्रकृतीनामासां बन्धविच्छेदस्थानं प्राप्य बन्धव्युच्छित्तिं कृत्वा स्थित्वा च तत्र समयमेकं प्राप्तमृत्युर्देवेषूत्पन्नः सन् भूयोऽपि स तद्बन्धमारचयति तदा प्राप्यते । शेषाध्रुवबन्धिप्रस्तुतप्रकृतीनामेतादृशे बन्धसत्केऽन्तरे भावना प्राग्वद् भाव्या ॥२१५॥

इदानीमपगतवेदादिमार्गणासु स्वबन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धस्य जघन्यमन्तरमुच्यते

सायस्स णो अवेअअकसायकेवलदुगाहखायेसुं ।
गयवेए वीसाए सेसाण भवे मुहुत्तंतो ॥२१६॥

(प्रे०) "सायस्स" इत्यादि, अवेदाऽकषायकेवलज्ञानकेवलदर्शनयथाख्यातसंयमाख्यमार्गणापञ्चके सातवेदनीयस्याऽनवरतं बध्यमानत्वेन बन्धान्तरं नास्ति । "गयवेए" इत्यादि, गतवेदमार्गणायां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्कयशःकीर्त्युच्चैर्गोत्राऽन्तरायपञ्चकलक्षणानां शेषाणां विंशतिप्रकृतीनां बन्धसत्कं जघन्यमन्तरमन्तर्मुहूर्तं भवति, उपशमश्रेणौ बन्धविच्छेदानन्तरमन्तर्मुहूर्तादर्वाक्प्रत्यवतरणाभावेन प्रकृतीनामासामन्तर्मुहूर्ताऽनन्तरमेव पुनर्बन्धभावात् ॥२१६॥

अधुना क्रोधमार्गणायां स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धस्य जघन्यमन्तरमुपदर्शयन्नाह

धुवणामनिद्दुगभयकुच्छावज्जधुववंधिणीण तहा ।
आहारदुगस्स ण खलु कोहे निद्दादुगस्स ओधव्व ॥११७॥ (गीति)

(प्रे०) "धुवणाम" इत्यादि, क्रोधमार्गणायां वर्णादिचतुष्कतैजसकार्मणशरीरद्वयाऽगुरुलघूपघातनिर्माणनिद्राद्विकभयजुगुप्सावर्जानां चतुस्त्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां तथाऽऽहारकद्विकस्य च बन्धाऽन्तरं नास्ति, मार्गणायामस्यामासां ज्ञानावरणादीनां कासाञ्चित् प्रकृतीनां निरन्तरं बध्यमानत्वात् मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतीनां कासाञ्चित्प्रकृतीनां बन्धविच्छेदानन्तरं पुनर्बन्धात्पूर्वं प्रकृतमार्गणाया विच्छेदाच्च। "निद्दुगस्स" इत्यादि, मार्गणायामस्यां निद्राद्विकबन्धस्य जघन्यतोऽन्तरमोघवद्विज्ञेयम् । तदेवम्–एकमतेन समयरूपम् , अन्यमतेन चाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणं निद्राद्विकबन्धस्य जघन्यमन्तरमस्ति । तथा वर्णादिचतुष्कतैजसकार्मणशरीरद्वयाऽगुरुलघूपघातनिर्माणभयजुगुप्सालक्षणानामेकादशध्रुवबन्धिप्रकृतीनां वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कानुपूर्वीचतुष्कखगतिद्विकत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासजिननामगोत्रद्विकरूपाणां सप्तपञ्चाशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च बन्धस्य जघन्यमन्तरं 'सव्वासु मग्गणासु 'इत्यादिगाथया समयलक्षणमवगन्तव्यम् । तद्भावना त्वेवम्–उपर्युक्तानामेकादशध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जिननाम्नश्च समयप्रमाणं बन्धान्तरमुपशमश्रेणौ बन्धविच्छेदस्थाने बन्धविच्छेदं विधाय समयमेकं च तत्र स्थित्वा मरणमुपगतस्य देवभवे समुत्पद्य पुनर्बन्धप्रारम्भे प्राप्यते । शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां प्राग्वद् बन्धान्तरं भावनीयम् ॥११७॥

अथ मानादिमार्गणास्वन्तरं दर्शयन्नाह

कोहव्व माणमायालोहेसुं णवरि अंतरं समयो ।
कमसो संजलणाण एगस्स य दोण्ह य चउण्हं ॥११८॥

(प्रे०) "कोहव्व" इत्यादि, मानमायालोभलक्षणासु तिसृषु मार्गणासु सर्वासां स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धसत्कं जघन्यतोऽन्तरं क्रोधमार्गणावज्ज्ञातव्यम् । "णवरि" इत्यादिनाऽपवादं दर्शयति–मानमार्गणायां सञ्ज्वलनक्रोधस्य, मायामार्गणायां सञ्ज्वलनक्रोधमानयोः, लोभमार्गणायां च संज्वलनचतुष्कस्य बन्धाऽन्तरं समयप्रमाणं वर्तते, तदित्थम् मार्गणास्वासु वर्तमानः कश्चिज्जीव उपशमश्रेणिमारोहति, तदा प्रकृतीनामासां बन्धविच्छेदस्थाने बन्धविच्छेदमाधाय तत्रैव पुनः समयमेकमुषित्वा मृत्युमुपैति, उत्पद्य च देवभवे पुनरपि तद्बन्धमारभते तदा प्रकृतीनामासामत्र समयप्रमाणमन्तरं लभ्यते ॥११८॥

अथ विज्ञानादिमार्गणासु प्रकृतमन्तरमाह—

निद्दादुगस्स हवए ओघव्व तिणाणओहिसम्मेसुं ।
भिन्नमुहुत्तं अट्ठकसायाहारदुगचउसुराईण ॥११९॥ (गीतिः)
पचण्ह णराईण वासपुहुत्तं भवे ... ... ।

(प्रे०) "निद्दादुगस्स" इत्यादि, मतिज्ञानश्रुतज्ञानाऽवधिज्ञानाऽवधिदर्शनसम्यक्त्वौघलक्षणासु पञ्चसु मार्गणासु निद्राद्विकबन्धस्य जघन्यमन्तरमोघवद् वर्तते। "भिन्नमुहुत्तं" इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्काहारकद्विकसुरद्विकवैक्रियद्विकरूपाणां चतुर्दशप्रकृतीनां बन्धस्य जघन्याऽन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवति। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्याहारकद्विकस्य च बन्धान्तरविषये भावना सविशेषेणौघवत्कार्या। सुरादिचतुष्कस्योपमशमश्रेणौ बन्धविच्छेदं कृत्वा उपशान्तमोहगुणस्थानकं यावद् गत्वा पुनः क्रमेणावतरतोऽस्य बन्धस्थानं प्राप्य पुनर्बन्धकस्यापेक्षया निरुक्तं जघन्यान्तरं प्राप्यते। 'पंचण्ह' इत्यादि, मनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्य जघन्यबन्धान्तरं वर्षपृथक्त्वप्रमितं भवति, योजना पुनरेवम्–एतत्प्रकृतिपञ्चकबन्धकः कश्चित्सम्यग्दृष्टिर्देवो जघन्यतया वर्षपृथक्त्वप्रमाणं नरायुर्बद्ध्वा मनुष्यभवे सम्यक्त्वेन साकं समुत्पद्य वर्षपृथक्त्वरूपं स्वायुः परिपालयित्वा पुनरपि देवभवं याति तदा मनुष्यद्विकादिप्रकृतीनामासां देवभवयोरन्तरालीयं मनुष्यभवसत्कं वर्षपृथक्त्वप्रमाणमन्तरं भवति, गुणप्रत्ययाद् देवगतिप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वेन तस्य मनुष्यगतौ मनुष्यद्विकादिप्रकृतिबन्धाभावात्, सम्यग्दृशां वर्षपृथक्त्वतोऽल्पायुषि उत्पादाभावाच्च न ततो न्यूनमन्तरम्। मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृतिषोडशकं निद्राद्विकं च विहाय शेषाणामेकोनत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतित्रसदशकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासजिननामोच्चैर्गोत्ररूपाणां सप्तविंशत्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च बन्धसत्कं जघन्यमन्तरं 'सव्वासु मग्गणासु' इत्यादिगाथया समयरूपमवसातव्यम्। ध्रुवबन्धिनीनामेकोनत्रिंशज्ज्ञानावरणीयादिप्रकृतीनां सातवेदनीयादिद्वादशवर्जशेषपुरुषवेदादिपञ्चदशप्रकृतीनां चोपशमश्रेणौ यथायोगं बन्धविच्छेदस्थाने बन्धविच्छेदं कृत्वा समयानन्तरं म्रियमाणस्य समयरूपमन्तरं संप्राप्तं भवति, सातवेदनीयादिद्वादशाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च परावर्तमानत्वेनाऽध्रुवत्वेन च बध्यमानत्वात् ॥११९॥

अथ मनःपर्यवज्ञानसंयमौघमार्गणयोर्बन्धान्तरं जघन्यतयाऽऽह

.. . . मुहुत्तंतो।
मणणाणसजमेसु बारससायाइवज्जाण ॥ १२० ॥

(प्रे०) "मुहुत्तंतो" इत्यादि मनःपर्यवज्ञानसंयमौघमार्गणयोः सातवेदनीयाऽसातवेदनीयहास्यशोकारत्यरतिस्थिरास्थिरशुभाऽशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिलक्षणा द्वादशप्रकृतीर्वर्जयित्वा ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सावर्णादिचतुष्कतैजसकार्मणशरीरद्वयाऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकत्रिंशत्शेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनां पुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वीशुभखगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिवर्जत्रसादिसप्तकपराघातोच्छ्वासजिननामोच्चैर्गोत्ररूपाणामेकोनविंशतिशेषमार्गणाप्रायोग्याध्रुवबन्धिप्रकृतीनामाहारकद्विकस्य च जघन्य-

मन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं ज्ञातव्यम् । अत्रापि ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामाहारकद्विकवर्जोक्ताध्रुवबन्धिप्रकृतीनां चोपशमश्रेणिं प्रतीत्येदमन्तरं प्राप्यते, आहारकद्विकस्य त्वोघवदन्तरं भावनीयम् । सातवेदनीयप्रभृतीनां द्वादशप्रकृतीनां बन्धसत्कं लघुभूतमन्तरं 'सव्वासु मग्गणासु' इत्यादिगाथात एकसामयिकं विज्ञेयम्, परावर्तमानतया बध्यमानत्वात् ॥१२०॥

अथ मत्यज्ञानादिमार्गणासु ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां सूक्ष्मसम्परायमार्गणायां च बन्धप्रायोग्याणां सर्वासां प्रकृतीनामन्तरं निषेधयन्नाह

धुवबंधीणं ण भवे तिअणाणाभवियमिच्छअमणेसुं ।
णो सुहमसंपराये सप्पाउग्गाण सव्वेसिं ॥ १२१ ॥

(प्रे०) 'धुवबंधीण'मित्यादि, मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानाऽभव्यमिथ्यात्वाऽसंज्ञिरूपासु षट्सु मार्गणासु सर्वासां सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धाऽन्तरं नास्ति, निरन्तरं बध्यमानत्वात् । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्काऽऽनुपूर्वीचतुष्कखगतिद्विकत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासगोत्रद्विकरूपाणां षट्षष्टिशेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धसत्कं जघन्यतयाऽन्तरं समयप्रमाणं 'सव्वासु मग्गणासु' इत्यादिगाथातोऽवसेयम् । 'णो सुहम' इत्यादि, सूक्ष्मसम्परायसंयममार्गणायां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्काऽन्तरायपञ्चकोच्चैर्गोत्रयशःकीर्तिसातवेदनीयरूपाणां सप्तदशस्वप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धाऽन्तरं न विद्यते, अनवरतं बध्यमानत्वात् ॥१२१॥

एतर्हि सामायिकादिमार्गणासूत्तरप्रकृतीनां बन्धस्य जघन्यमन्तरमुच्यते

सामाइअछेएसुं तह परिहारे भवे मुहुत्तंतो ।
आहारदुगस्स ण खलु बारससायाइवज्जाणं ॥ १२२ ॥

(प्रे०) 'सामाइअ' इत्यादि, सामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिसंयमलक्षणासु तिसृषु मार्गणास्वाहारकद्विकस्य जघन्यबन्धान्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमितं भवति, एतादृशमन्तरमत्र सप्तमगुणस्थानकात्षष्ठगुणस्थानकं गत्वाऽन्तर्मुहूर्तादूर्ध्वं पुनः सप्तमगुणस्थानकं प्राप्याहारकद्विकस्य बन्धविधातुरेव प्राप्यते, न तूपशमश्रेण्यपेक्षया, बन्धविच्छेदानन्तरं पुनर्बन्धादर्वागेवास्य मार्गणाद्वयस्य विच्छेदात्, परिहारविशुद्धिमार्गणायां तु श्रेणेरभावादेव । 'ण खलु' इत्यादि, सातवेदनीयाऽसातवेदनीयहास्यशोकरत्यरतिस्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिरूपा द्वादशप्रकृतीः परित्यज्य शेषाणां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कसञ्ज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सावर्णादिचतुष्कतैजसकार्मणशरीरद्वयाऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां तथा पुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वीसुखगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिवर्जत्रसादिसप्तपराघातोच्छ्वासजिननामोच्चैर्गोत्ररूपाणामेकोनविंशत्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनामन्तरं नास्ति, परिहारविशुद्धिमार्गणायां सर्वा-

सामनवरतं बध्यमानत्वात् । सामायिकच्छेदोपस्थापनीयमार्गणयोस्तु कासाञ्चित्प्रकृतीनामनवरतं बध्यमानत्वात् ,कासाञ्चित्प्रकृतीनां च बन्धविच्छेदभावेऽपि पुनर्बन्धात्प्राक्प्रस्तुतमार्गणयोर्विच्छेदात् । सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनां 'सव्वासु मग्गणासु' इत्यादि गाथातो जघन्यं बन्धाऽन्तरं समयात्मकं समधिगम्यम् ॥१२२॥ इदानीमसंयममार्गणायां तदाह

जिणअडमिच्छाईणं भिन्नमुहुत्त असंजमे णेयं ।
णेव भवे सेसाण धुवबंधीण धुणवंत्ताए ॥ १२३ ॥

(प्रे०) 'जिणअड' इत्यादि, असंयममार्गणायां जिननामकर्मणो मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्करूपस्य प्रकृत्यष्टकस्य च जघन्यं बन्धाऽन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमितं ज्ञातव्यम् । तद्यथा–मिथ्यात्वगुणस्थानेऽस्यां मार्गणाया वर्तमानो यः कश्चिन्मनुष्यो नरकायुर्बद्ध्वा सम्यक्त्वं प्राप्य जिननाम निकाचयति भवप्रान्ते नरकं जिगमिषुर्मिथ्यात्वं प्राप्नोति तत्र जिननाम न बध्नाति तदनन्तरं नरके समुत्पद्याऽपर्याप्तावस्थायां,पर्याप्तावस्थायामपि जघन्यतो यावत्सम्यक्त्वं न प्राप्नोति तावत्कालं मिथ्यात्व भावेन जिननाम न बध्नाति सम्यक्त्वकाले पुनर्बध्नाति इत्थं तं जीवमाश्रित्य मिथ्यात्वकालप्रमाणमन्तर्मुहूर्तं जिननाम्नो जघन्यं बन्धान्तरं प्राप्यते, तथा मिथ्यात्वगुणस्थानकस्य जघन्यान्तरकालस्यान्तर्मुहूर्तप्रमितत्वेन तत्प्रयुक्तं मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृत्यष्टकस्य बन्धान्तरं तत्तुल्यं भवति । 'णेव' इत्यादि, मिथ्यात्वाद्यष्टप्रकृतीर्विहाय शेषैकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धस्याऽन्तरं नास्ति, मार्गणायामस्यां संतत बध्यमानत्वात् । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्काऽऽनुपूर्वीचतुष्कखगतिद्विकत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासगोत्रद्विकरूपाणां शेषषट्पञ्चाशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जघन्यं बन्धाऽन्तरं 'सव्वासु मग्गणासु' इत्यादिना समयप्रमाणं वेदयितव्यम् ॥१२३॥ अथ त्रिकृष्णादिलेश्यामार्गणासूत्तरप्रकृतिबन्धस्य जघन्यमन्तरं निरूपयितुकाम आह–

णेयं मिच्छाईण अट्ठण्ह किण्हणीलकाऊसु ।
भिन्नमुहुत्त हवए णो जिणसेसधुवबंधीण ॥ १२४ ॥

(प्रे०) "णेयं" इत्यादि, कृष्णनीलकापोतलेश्यालक्षणासु तिसृषु मार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्करूपस्य प्रकृत्यष्टकस्य बन्धसत्कं जघन्यमन्तरमन्तर्मुहूर्तम् । 'हवए' इत्यादि, जिननाम्नो मिथ्यात्वादिप्रकृत्यष्टकवर्जशेषैकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च बन्धान्तरं नास्ति, ननु मिथ्यात्वाद्यष्टानामेव कुतः, न पुनरप्रत्याख्यानावरणादीनामपि इति चेत् , आसां ध्रुवबन्धित्वेन स्थिरलेश्याकजीवापेक्षया एवान्तरस्योत्पत्तेः, न च स्थिरलेश्याकदेवनारकाणां मिथ्यात्वाद्यष्टप्रकृतीर्विहाय शेषध्रुवबन्धिनीनामबन्धो लभ्यते, इत्यतो मिथ्यात्वाद्यष्टानामेव तद्भवति, न तु तदितरध्रुवबन्धिनीनाम् । न च मा भवतु यन्मते चतुर्थगुणस्थानं यावदेवाशुभलेश्याः, न

पुनस्तदूर्ध्वम्, तन्मते पञ्चमादिगुणस्थानप्राप्तानामप्रत्याख्यानावरणादेरबन्धलाभेऽपि तत्र प्रस्तुताऽशुभलेश्यामार्गणाया एवाऽप्रवर्तनेन तदबन्धस्य मार्गणाबहिर्भावित्वात्, परं यन्मते षष्ठगुणस्थानं यावदशुभलेश्याऽङ्गीकारस्तन्मते तु अप्रत्याख्यानावरणादीनां तद्भविष्यतीति वाच्यम्, तेषां हि पञ्चमगुणादिगामिनामस्थिरलेश्याकत्वेन तद्गुणान्तराभिमुखावस्थात आरभ्य तद्गुणप्राप्त्यनन्तरमपि, कियत्कालं यावत् नियमतो शुभलेश्याकत्वेनाऽप्रत्याख्यानावरणाद्यबन्धप्रारम्भस्य शुभलेश्याभावित्वात्, नहि यन्मार्गणायां यस्याः प्रकृतेरबन्धप्रारम्भालाभस्तस्यां मार्गणायां तत्प्रकृतिबन्धस्यैकजीवाश्रयमन्तरं सम्भवति, निरन्तरे मार्गणाकालेऽबन्धप्रारम्भस्य तदनु बन्धप्रारम्भस्य च लाभेऽन्तरसम्भवात्, अत एव जिननाम्नोऽपि प्रस्तुतान्तरं निषिद्धम्, कृष्णनीलयोस्तद्बन्धाऽबन्धयोरप्रारम्भात्, कापोतलेश्यायां जिननामसत्कर्माणं नारकजीवमपेक्ष्य तद्बन्धप्रारम्भसम्भवेऽपि ततः प्राग् निरन्तरप्रवृत्तायां तन्मार्गणायां तदबन्धप्रारम्भस्यालाभादित्यलम् ॥२२४॥

अथ तेजोलेश्यामार्गणायां प्रकृतं प्रतिपादयति

तेऊअ मुहुत्तंतो मिच्छाईणं हवेज्ज अट्ठण्ह ।
सेसधुवाहारजुगलजिणछुरलाईण णेव भवे ॥ २२५ ॥
देवविउव्वदुगाणं सहस्सवासाणि दस मुणेयव्व ।

(प्रे०) "तेऊअ" इत्यादि, तेजोलेश्यामार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्करूपाणामष्टप्रकृतीनां जघन्यं बन्धान्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमितमस्ति, इदञ्चान्तरं देवानाश्रित्य विज्ञेयम्, भावना प्राग्वत्कार्या । "सेस" इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयाद्यष्टप्रकृतिवर्जशेषैकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामाहारकद्विकस्य जिननाम्न औदारिकशरीरपराघातोच्छ्वासबादरत्रिकरूपाणां षट्प्रकृतीनां च बन्धान्तरं नास्ति,कासाञ्चित्प्रकृतीनां निरन्तरं बध्यमानत्वात्कासाञ्चित्प्रकृतीनां च द्विर्बन्धाभावात् । इदमुक्तं भवति–तेजोलेश्यामार्गणाया मिथ्यादृष्टिप्रभृतिसप्तगुणस्थानकेष्वेव सत्त्वात् श्रेणेरभावेन मध्यमकषायाष्टकवर्जज्ञानावरणीयाद्येकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बादरत्रिकपराघातोच्छ्वासप्रकृतीनां च निरन्तरं बध्यमानत्वादन्तराभावोऽस्ति । जिननाम्नो बन्धो येषामस्ति तैस्तन्निरन्तरं बध्यत इति तस्याप्यन्तराभावः, तथाऽऽहारकद्विकमध्यमकषायाऽष्टकौदारिकशरीरप्रकृतीनां बन्धविच्छेदानन्तरं पुनर्बन्धादर्वाग् मार्गणाया विच्छेदेन द्विर्बन्धाभावादन्तराभावो ज्ञेयः । 'देवविउव्व" इत्यादि, प्रस्तुतमार्गणायां देवद्विकवैक्रियद्विकरूपस्य प्रकृतिचतुष्कस्य बन्धसत्कं जघन्यमन्तरं दशसहस्रवर्षप्रमाणं ज्ञातव्यम्, तदेवम्–मार्गणायामस्यां वर्तमानो मिथ्यादृष्टिः कश्चित्तिर्यङ् मनुष्यो वा भवान्तिमान्तर्मुहूर्तं चरमसमयपर्यन्तं प्रकृतप्रकृतिचतुष्कं बध्नाति, ततो मृत्वा जघन्यस्थितिकदेवत्वेन जातः स्वायुःसमाप्तिं यावदेतत्प्रकृतिचतुष्कं न बध्नाति, तत्र सम्यक्त्वं प्राप्य कालं च कृत्वा मनुष्यभव उत्पन्नः पुनर्बध्नाति, अत एतावदन्तरं संप्राप्यते । तथा वेदनीयद्विकहास्यादि-

युगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयैकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजातिद्वयौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थान-षट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रसस्थिरषट्कस्थावराऽस्थिरषट्कातपोद्योतगोत्रद्वयरूपाणामष्ट-चत्वारिंशत्शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां 'सव्वासु मग्गणासु' इत्यादिगाथातः समयप्रमाणं जघन्यबन्धान्तरं विज्ञेयम् ॥१२५॥ अथ पद्मलेश्यामार्गणायामाह

पउमाअ मुहुत्तंतो मिच्छाईण अडपयडीण ॥ १२६ ॥
सेसधुवाहारजुगलदुरलदुवगाइगाण णेव भवे ।
अब्महिआ दो अयरा सुरविउवदुगाण विण्णेय ॥ १२७ ॥

(प्रे०) "पउमाअ" इत्यादि, पद्मलेश्यामार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्करूपस्य प्रकृत्यष्टकस्य बन्धसत्कं जघन्यान्तरमन्तर्मुहूर्तमवसातव्यम् , भावना प्राग्वत्कार्या । "सेस" इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृत्यष्टकवर्जानां शेषाणामेकोनचत्वारिंद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामाहारकद्विकौदारिकद्विकपराघातोच्छ्वासबादरत्रिकत्रसपञ्चेन्द्रियजातिजिननामरूपाणां द्वादशप्रकृतीनां च बन्धाऽन्तरं नास्ति, मार्गणायामस्यां कासाञ्चित्प्रकृतीनां निरन्तरं बध्यमानत्वात् कासाञ्चित्प्रकृतीनां पुनर्द्विर्बन्धाभावाच्च । "अब्भहिया" इत्यादि, सुरद्विकवैक्रियद्विकरूपस्य प्रकृतिचतुष्कस्य बन्धसत्कं जघन्यमन्तरं साधिकसागरोपमद्वयं बोद्धव्यम् , भावना पुनरेवम्—पद्मलेश्यामार्गणायां वर्तमानस्तिर्यङ् मनुष्यो वा भवचरमसमये देवचतुष्कं बद्ध्वा जघन्यतोऽपि सनत्कुमारदेवभवे साधिकसागरोपमद्वयस्थितिमत्त्वेन जायते तदा तावत् कालपर्यन्तं नैव तद् बध्नाति तत्र सम्यक्त्वं लब्ध्वा कालं च कृत्वा सम्यक्त्वेन सार्कं मनुष्यभव उत्पद्य पुनस्तद्बन्धमारभते तदेयत्प्रमाणमन्तरमुपलब्धं भवति । 'सव्वासु मग्गणासु' इत्यादिगाथातो वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयसंहननषट्कसंस्थानषट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयस्थिरषट्काऽस्थिरषट्कोद्योतगोत्रद्विकरूपाणां द्विचत्वारिंशत्शेषाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धस्य जघन्यमन्तरं समयात्मकं समधिगम्यम् ॥१२६–१२७॥

अथ शुक्ललेश्यामार्गणायां तदाह

सुक्काअ मुहुत्तंतो थीणद्धितिगाणचउगमिच्छाणं ।
सुरविउवदुगाण तहा आहारदुगस्स बोद्धव्व ॥ १२८ ॥
ओधव्व जाणियव्व निद्दापयलाण अंतरं नत्थि ।
मज्झट्ठकसायाणं तह मणुयोरालियदुगाणं ॥ १२९ ॥

(प्रे०) "सुक्काअ" इत्यादि, शुक्ललेश्यामार्गणायां स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयरूपाणामष्टप्रकृतीनां सुरद्विकवैक्रियद्विकरूपस्य प्रकृतिचतुष्कस्याऽऽहारकद्विकस्य च बन्धसत्कं जघन्यमन्तरमन्तर्मुहूर्तमस्ति, तदित्थम्—मार्गणायामस्यां मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृत्यष्टकस्य मिथ्यात्वगुणस्थानकस्य जघन्यतयाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणान्तरापेक्षया, आहारकद्विकस्य सुरादि-

चतुष्कस्य चोपशमश्रेणौ बन्धविच्छेदानन्तरं पुनरपि बन्धकरणापेक्षयेदृशमन्तरमवसातव्यम् । आहारकद्विकस्य प्रमत्तगुणस्थानकापेक्षयाऽन्तरं नैवाऽऽयाति, तत्रैतन्मार्गणाया विच्छेदात् । "ओघव्व" इत्यादि, निद्राप्रचलाख्यप्रकृतिद्वयबन्धस्य जघन्यमन्तरमोघवज्ज्ञातव्यम् ,तच्चैवम्—एकमतेन समयप्रमाणं, द्वितीयमतेन त्वन्तर्मुहूर्तप्रमाणमिति । अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कमनुष्यद्विकौदारिकद्विकरूपाणां द्वादशानां प्रकृतीनां मार्गणायामस्यां बन्धान्तरं नास्ति, हेत्वादिकं तेजोलेश्यामार्गणावज्ज्ञेयम् , परं मनुष्यद्विकौदारिकाङ्गोपाङ्गप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मवद् भावना कार्या । ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सावर्णादिचतुष्कतैजसकार्मणशरीरद्वयाऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकोनत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां समयप्रमाणमन्तरमोघवत्तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयपञ्चेन्द्रियजातिसंहननषट्कसंस्थानषट्कखगतिद्विकत्रसदशकाऽस्थिरषट्कपराघातोच्छ्वासजिननामगोत्रद्विकरूपाणां पञ्चचत्वारिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च 'सव्वासु मग्गणासु' इत्यादिगाथातः समयप्रमाणं जघन्यबन्धान्तरं ज्ञेयम् । अत्राध्रुवबन्धिनीषु कासाञ्चित्पञ्चेन्द्रियजातिपराघातादीनां श्रेणावबन्धापेक्षया, शेषाणामध्रुवबन्धित्वान्निरुक्ताऽन्तरं ज्ञेयमिति ॥२२८-२२९॥

अथ क्षायिकोपशमसम्यक्त्वमार्गणाद्वये उत्तरप्रकृतीनां बन्धस्य जघन्यमन्तरमभिधीयते

खइउवसमेसु बारहआहारदुगाइचउसुराईणं ।
ओहिव्व होइ णो च्चिअ भवे णराईण पचण्हं ॥ २३० ॥

(प्रे०) "खइउवसमेसु" इत्यादि, क्षायिकसम्यक्त्वोपशमसम्यक्त्वरूपे मार्गणाद्वये 'आहारदुग निद्ददुग च तइअकसाया । दुइअकसाया' इति संग्रहगाथावयवेषु कथितानां द्वादशानामाहारकद्विकप्रभृतिप्रकृतीनां सुरद्विकवैक्रियद्विकरूपाणां चतसृणां प्रकृतीनां च बन्धस्य जघन्यमन्तरमवधिज्ञानमार्गणावद् भवति, तदेवम्—निद्राद्विकस्य समयः, मतान्तरेण पुनरन्तर्मुहूर्तम् , प्रत्याख्यानावरणचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्का-ऽऽहारकद्विकसुरद्विकवैक्रियद्विकप्रकृतीनां चान्तर्मुहूर्तम् , भावनाऽवधिज्ञानमार्गणावद् भावनीया । "णो च्चिअ" इत्यादि, मार्गणाद्वयेऽस्मिन् मनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननलक्षणस्य प्रकृतिपञ्चकस्य बन्धान्तरं नास्ति, तदेवम्—उपशमसम्यक्त्वमार्गणायां वर्तमाना देवा नारकाश्च प्रकृतिपञ्चकस्याऽस्याऽनवरतं बन्धकाः सन्ति, देवनारकाणां मार्गणायामस्यां प्रकृतिपञ्चकस्याऽस्य ध्रुवबन्धिकल्पत्वात् , तस्मात्तद्बन्धस्याऽन्तरं न प्राप्यते । क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायां वर्तमाना मनुष्या देवप्रायोग्यप्रकृतीर्बध्नन्ति ततश्च मृत्वा देवे नारके वोत्पद्य प्रथमसमयादेव मनुष्यद्विकादिप्रकृतीर्बध्नन्ति यावदायुश्चरमसमयम् , ततश्च च्युत्वा मनुष्यभवमायान्ति तदापि ते देवप्रायोग्यप्रकृतीर्बध्नन्ति, परं तदनन्तरं पुनर्देवभवे नरकभवे वा नोत्पद्यन्ते, अतो मनुष्यद्विकादिप्रकृतीनामन्तरं नैव प्राप्तं भवति, इदं सर्वं क्षायिकसम्यग्दृष्टेरुत्कृष्टतोऽपि भवचतुष्कादधिका भवा नैव विद्यन्त इति मतेन विज्ञेयम् । अन्यथा तु स्वयं विभावनीयम् । तथा

ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सावर्णादिचतुष्कतैजसकार्मणशरीरद्वयाऽगुरुलघूपघातनिर्माणान्तरायपञ्चकरूपाणामेकोनत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतित्रसदशकोऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासजिननामोच्चैर्गोत्ररूपाणां सप्तत्रिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जघन्यं बन्धाऽन्तरं 'सव्वासु मग्गणासु' इति गाथातः समयप्रमाणमवसातव्यम् । तत्र सातवेदनीयादिद्वादशानां परावर्तमानबन्धत्वेन शेषनवविंशतिध्रुवबन्धिनीनां तथा सातवेदनीयादिद्वादशवर्जशेषपञ्चदशमार्गणाप्रायोग्यध्रुवकल्पानां चोपशमश्रेणौ जघन्यतः समयमात्राबन्धस्य लाभेन जघन्यं समयमात्रमन्तरं ज्ञातव्यमिति ॥२३०॥

अथ क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां तदाह

अट्ठकसायाण तहा आहारदुगस्स वेअगे णेय ।
भिन्नमुहुत्तं णरउरलदुगवइराण वरिसपुहुत्तं ॥ २३१ ॥
देवविउव्वदुगाणं साहियपलिओवमं मुणेयव्वं ।
णो अत्थि अंतरं खलु बारससायाइवज्जाणं ॥ २३२ ॥

(प्रे०) "अट्ठकसायाण" इत्यादि, क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां प्रत्याख्यानावरणचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कलक्षणानामष्टकषायप्रकृतीनामाहारकद्विकस्य च बन्धसत्कं लघुतयाऽन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमितं ज्ञातव्यम्-भावना तूक्तप्राया । "णरउरल" इत्यादि, मनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननरूपाणां पञ्चानां प्रकृतीनां बन्धस्य जघन्यमन्तरं वर्षपृथक्त्वप्रमाणं वेदयितव्यम् , भावनाऽवधिज्ञानमार्गणावत्कार्या । "देवविउव्व" इत्यादि, सुरद्विकवैक्रियद्विकरूपाणां चतसृणां प्रकृतीनां बन्धस्य जघन्यतोऽन्तरं साधिकपल्योपममितं ज्ञातव्यम् । योजना पुनरेवं कार्या-क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणावर्ती तिर्यङ् मनुष्यो वा विपद्य एतत्प्रकृतिचतुष्कं बद्ध्वा देवभवे जघन्यतः साधिकपल्योपमप्रमाणायुष्को देवो भवति तत्र च स भवप्रत्ययेन सुरद्विकादिप्रकृतीर्न बध्नाति ततश्च प्रच्युत्य मनुष्यभवमायातः सन् बध्नाति, अत उक्तप्रमाणमन्तरं लब्धं भवति, आवश्यकवृत्त्याद्यभिप्रायेण तु प्रस्तुतान्तरं परिपूर्णं पल्योपमप्रमाणमवसातव्यमिति । "णो अत्थि" इत्यादि, सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीरुते शेषाणां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सावर्णादिचतुष्कतैजसकार्मणशरीरद्वयाऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां पुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतित्रसचतुष्कसुभगसुस्वराऽऽदेयपराघातोच्छ्वासजिननामोच्चैर्गोत्ररूपाणां पञ्चदशानां मार्गणाप्रायोग्यध्रुवबन्धिकल्पानां च बन्धसत्कमन्तरं नास्ति, सततं बध्यमानत्वात् । सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनां बन्धस्य जघन्यतोऽन्तरं 'सव्वासु मग्गणासु" इत्यादिगाथया समयप्रमाणं समधिगन्तव्यम् , परावर्तमानतो बध्यमानत्वात् ॥२३१-२३२॥ अथ सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायां तदुच्यते

सासाणे पयडीणं तेयण्णासाअ अंतरं नत्थि।
धुवबंधिपणिदियपरधाऊसासतसचउगाणं ॥ १३३ ॥

(प्रे०) "सासाणे" इत्यादि, सास्वादनमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयवर्जाः पञ्चचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपाः सप्त प्रकृतयश्चेति त्रिपञ्चाशत्प्रकृतीनां बन्धस्याऽन्तरं नास्ति, अनवरतं बन्धभावादासामत्र। वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषस्त्रीवेदद्वयतिर्यग्मनुष्यदेवगतित्रयौदारिकद्विकवैक्रियद्विकचरमसंस्थानवर्जसंस्थानपञ्चकचरमसंहनन-वर्जसंहननपञ्चकतिर्यग्मनुष्यदेवानुपूर्वीत्रयखगतिद्वयस्थिरषट्काऽस्थिरषट्कोद्योतगोत्रद्वयरूपाणां पञ्चचत्वारिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धस्य जघन्यतोऽन्तरं "सव्वासु मग्गणासु" इत्यादि गाथया समयात्मकं विज्ञेयम्। इत्यायुर्वर्जप्रकृतीनां बन्धस्य जघन्यतयाऽन्तरप्ररूपणा ॥१३४॥

निखिलासु मार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धसत्कं जघन्यतोऽन्तरमभिधाय सम्प्रति गुरुतया तच्चिन्तयितुकाम आह

कम्मणाहारेसुं अणिसिद्धाणतरं गुरु समयो।
सेसासु मुहुत्तंतो, अवक्खमाणाउवज्जाणं ॥ १३५ ॥

(प्रे०) "कम्मणाहारेसु" इत्यादि, कार्मणकाययोगमार्गणायामनाहारकमार्गणायां च जघन्यतोऽन्तरप्ररूपणायां मार्गणयोरनयोर्यासां प्रकृतीनामन्तरं निषिद्धमस्ति ताः प्रकृतीर्वर्जयित्वाऽन्यासां प्रकृतीनां बन्धस्योत्कृष्टमन्तरं समयप्रमाणं ज्ञातव्यम्, मार्गणाकायस्थितेस्त्रिसामयिकत्वेनाधिकान्तरस्यालाभात्। समयान्तराः प्रकृतय एकेन मतेनैकोनषष्टिरिति, ताश्चौदारिकशरीरनामवर्जाः कालद्वारोक्ता ज्ञेयाः, अन्यमतेन तु स्वयं विज्ञेया इति। "सेसासु" इत्यादि कार्मणकाययोगानाहारकमार्गणाद्वयव्यतिरिक्तासु शेषासु मार्गणास्वायुष्कर्मवर्जानां वक्ष्यमाणव्यतिरिक्तानाम् 'अणिसिद्धाणतर गुरु' इत्यादिकस्याऽत्रापि सम्बन्धनात्, अवक्ष्यमाणानिषिद्धान्तराणां प्रकृतीनां बन्धसत्कमुत्कृष्टमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमितमधिगन्तव्यम्। अयं भावः—कार्मणानाहारकवर्जासु मार्गणासु जघन्यान्तरप्रस्तावे यासां प्रकृतीनामन्तरं निषिद्धं तासां प्रकृतीनां गुर्वन्तरप्रस्तावेऽप्यन्तरं नैवायाति, ततोऽनिषिद्धान्तरासु प्रकृतिषु प्रस्तुते यासामन्तरं पृथग् न दर्शयिष्यते तासामन्तरमुत्कृष्टतोऽप्यन्तर्मुहूर्तप्रमाणमेवावसातव्यम्। अन्तर्मुहूर्तादधिकं प्रकृष्टमन्तरं भवप्रत्ययेन वा गुणप्रत्ययेन वोभयप्रत्ययेन वाऽबन्धप्रयुक्तमायाति, सप्तमादिगुणस्थानादूर्ध्वं व्यवच्छिद्यमानबन्धवतीनां ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां तथा यासां प्रकृतीनां भवादिप्रत्ययेनोत्कृष्टमन्तरं न प्राप्यते तासां प्रकृतीनां तथाऽन्तर्मुहूर्तकायस्थितिकमार्गणासु यासां प्रकृतीनामन्तरं प्राप्यते तासां सर्वासां प्रकृतीनां बन्धसत्कमन्तरमन्तर्मुहूर्तादधिकं न प्राप्यते। यासु मार्गणासु यासां सातवेदनीयादिद्वादशानां बन्धः तासु तासां द्वादशानामपि बन्धान्तरमुत्कृष्टतोऽप्यन्तर्मुहूर्तादधिकं नैवाऽऽयातीत्यपि ध्येयम् ॥१३५॥

अथ यासु मार्गणासु यासां प्रकृतीनामन्तरमन्तर्मुहूर्तादधिकं तासु तासामन्तरं दर्शयन्नादौ तावत्क्रमप्राप्तं नरकमार्गणासु प्रकृष्टमन्तरं प्रतिपादयितुमाह

मिच्छाइअट्ठवीसाअ सव्वणिरयेसु णरदुगुच्चाणं ।
णिरयचरमणिरयेसुं देसूणा सगुरुकायठिई ॥ २३६ ॥

(प्रे०) "मिच्छाई" इत्यादि, नरकौघरत्नप्रभाशर्कराप्रभावालुकाप्रभापङ्कप्रभाधूमप्रभातमःप्रभातमस्तमःप्रभारूपासु सर्वासु नरकमार्गणासु "मिच्छं थीणद्धितिगमणचउथीणपुमा । संघयणागिइपणग दुहगतिग कुखगई णीअ ॥ तिरियदुगुज्जोअ"इति संग्रहगाथावयवेषु प्रोक्तानामष्टाविंशतिप्रकृतीनां बन्धसत्कमुत्कृष्टमन्तरं किञ्चिन्न्यूनमार्गणाप्रायोग्योत्कृष्टकायस्थितिप्रमाणमवसेयम्, कथमिति चेद्, उच्यते, मार्गणास्वासु वर्तमानः कश्चिन्मिथ्यादृष्टिजीवः स्वोत्पत्तेरन्तर्मुहूर्तानन्तरं सम्यक्त्वमुपलभ्य स्वायुश्चरमाऽन्तर्मुहूर्ते पुनरपि मिथ्यात्वमवाप्नोति तदा सम्यक्त्वावस्थायां मिथ्यात्वमोहनीयादीनामष्टाविंशतिप्रकृतीनां बन्धव्यावृत्तिभावेनाऽन्तर्मुहूर्तद्वयन्यूनमेतन्मार्गणाप्रायोग्योत्कृष्टकायस्थितिप्रमितमुत्कृष्टतयाऽन्तरं प्राप्यते, तस्मादासु मार्गणास्वेतत्प्रमाणमन्तरमभिहितम् । "णरदुग" इत्यादि, नरकौघसप्तमनरकलक्षणे मार्गणाद्वये मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्ररूपस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धसत्कमन्तरमुत्कृष्टतया किञ्चिदूनस्वगुरुकायस्थितिप्रमाणं भवति, तच्चैवंरीत्या बोध्यम्—सप्तमनरके कस्यचिन्मिथ्यादृष्टिजीवस्य स्वोत्पत्तेरन्तर्मुहूर्तानन्तरं सम्यक्त्वप्राप्तिर्जायते, तदा तस्य मनुष्यद्विकादिप्रकृतित्रयस्य बन्धो भवति, अन्तर्मुहूर्तादनु मिथ्यात्वावाप्तौ सत्यां तद्बन्धव्यावृत्तिर्भवति यावद् देशोनत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, उपान्त्याऽन्तर्मुहूर्ते पुनः सम्यक्त्वलाभे जाते पुनस्तद्बन्धो भवति, चरमान्तर्मुहूर्ते च भूयोऽपि मिथ्यात्वप्राप्तौ पुनरपि तद्बन्धव्यावृत्तिर्जायते, तदा मार्गणाद्वयेऽस्मिन्नन्तर्मुहूर्तचतुष्केण न्यूनस्वगुरुकायस्थितिप्रमितमन्तरमुपलब्धं भवति । जघन्यतोऽन्तरप्ररूपणायां यासां कासाञ्चिद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धसत्कमन्तरं नास्तीति प्रतिपादितम्, तदत्राऽपि सर्वासु मार्गणासु वेदयितव्यम् । तत्र प्रतिपादितत्वाद् ग्रन्थकारेणाऽत्र "अणिसिद्धाण" इत्यनेन तद्वर्जानामेवात्र कथयिष्यमाणत्वात् निषिद्धान्तराः प्रकृतयः पुनर्नामतः पृथग् न कथयिष्यन्ते, किन्तु विस्मरणशीलस्य शिष्यस्य स्मृत्यर्थमस्माभिस्तु ताः कथयिष्यन्ते । मिथ्यात्वाद्यष्टकवर्जशेषैकोनचत्वारिंशत्शेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकद्विकपराघातोच्छ्वासबादरत्रिकत्रसपञ्चेन्द्रियजातिजिननामरूपाणां दशानां प्रकृतीनां च बन्धस्याऽन्तरं न विद्यते । रत्नप्रभाशर्कराप्रभावालुकाप्रभापङ्कप्रभाधूमप्रभातमःप्रभारूपासु षट्सु मार्गणासु साताऽसातवेदनीयहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदमनुष्यगतिसमचतुरस्रसंस्थानवज्रर्षभनाराचसंहननमनुष्यानुपूर्वीशुभखगतिस्थिरषट्काऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिनामोच्चैर्गोत्रलक्षणानां शेषाणां द्वाविंशत्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां नरकौघसप्तमनरकमार्गणयोश्च मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रवर्जानामासामेवैकोनविंशतिप्रकृतीनां, 'सेसासु मुहुत्तंतो' इत्यादिना प्रकृष्टं बन्धसत्कमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं ज्ञातव्यम्, गुणप्रत्ययेनाऽधिकाऽन्तरस्याऽलाभात् ॥२३६॥

अथ तिर्यगोघमार्गणायां कासाञ्चित्प्रकृतीनामुत्कृष्टमन्तरमुपदर्श्यते ।

तिरिये मिच्छाईणं णवण्ह पल्लाऽत्थि तिण्णि देसूणा ।
णिरयाईण णवण्हं तह णेय जह भणिअमोहे ॥ १३७ ॥
देसूणपुव्वकोडी हवए णपुमाइअट्ठवीसाए ।
दुइअकसायाण तहा उरालदुगवइररिसहाण ॥ १३८ ॥

(प्रे०) **'तिरिये'** इत्यादि, तिर्यगोघमार्गणायां 'मिच्छ थीणद्धितिगाणचउत्थी' इति संग्रहगाथाशकलेषु भणितानां नवानां मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृतीनां बन्धस्योत्कृष्टमन्तरं देशोनपल्योपमत्रयमस्ति, भावना पुनरेवम्–कश्चिन्मिथ्यादृष्टिर्जीवो युगलिकभवे त्रिपल्योपमस्थितिमत्त्वेन तिर्यक्तयोत्पद्याऽपर्याप्तावस्थानन्तरं प्राप्तसम्यक्त्वः सन् मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृतिनवकं न बध्नाति, चरमान्तर्मुहूर्ते मिथ्यात्वमवाप्य पुनर्बध्नाति, अतोऽन्तर्मुहूर्तद्वयन्यूनपल्योपमत्रयप्रमितमन्तरं प्रकृष्टतया प्राप्तं भवति । **'णिरयाईण'** इत्यादि, मार्गणायामस्यां 'णिरयसुरविउव्वदुगं उच्चणरदुग' इति संग्रहगाथावयवेषु भाषितानां नरकगत्यादीनां नवानां प्रकृतीनामुत्कृष्टतया बन्धसत्कमन्तरमोघवद् बोद्धव्यम्, तदित्थम्–मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्ररूपस्य प्रकृतित्रयस्य प्रकृष्टं बन्धाऽन्तरमसंख्यलोकाकाशप्रदेशप्रमाणसमयप्रमितं, नरकद्विकसुरद्विकवैक्रियद्विकलक्षणानां च षण्णां प्रकृतीनामसंख्यातपुद्गलपरावर्तप्रमाणं विज्ञेयम्, भावना त्वत्रौघवदवसातव्या । **'देसूण'** इत्यादि, 'णपुमा संघयणागिइपणगं दुहगतिग कुखगई णीअ ॥ तिरियदुगुज्जोआयवथावरएगिंदिसुहुमतिगविगला ।' इति संग्रहगाथांशेषु कथितानां नपुंसकवेदादीनामष्टाविंशतिप्रकृतीनामप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य तथौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननरूपाणां त्रिप्रकृतीनां बन्धसत्कमुत्कृष्टमन्तरं देशोनपूर्वकोटिवर्षप्रमितं भवति, तदेवम्–पर्याप्तयुगलतिर्यग्भिरेताः प्रकृतयो न बध्यन्ते, देवप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वात्तेषाम्, युगलिकव्यतिरिक्तैस्तु तैर्बध्यन्ते, तेभ्यः केचन पूर्वकोटिवर्षस्थितिका भवन्ति, ते ह्यपर्याप्तावस्थानन्तरं पर्याप्तावस्थायां यथायोग्यकाले देशविरतिमवाप्यैताः प्रकृतीर्न बध्नन्ति, प्रान्ते चाऽन्तर्मुहूर्ते पुनरपि मिथ्यात्वं प्राप्य बध्नन्ति, तदा देशोनपूर्वकोटिवर्षलक्षणं प्रकृष्टं बन्धाऽन्तरं लभ्यते । ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कसञ्ज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णादिचतुष्कागुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणां शेषाणां पञ्चत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धाऽन्तरं नास्ति, स्वप्रकृष्टगुणस्थानकं यावन्निरन्तरं बध्यमानत्वात् । वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतित्रसदशकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासरूपाणां पञ्चविंशतिशेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धस्य "सेसासु मुहुत्तंतो" इत्यादिना, प्रकृष्टमन्तरमन्तर्मुहूर्तात्मकं वेदितव्यम्, परावर्तमानबन्धेनान्तरस्य लाभात् ॥१३७-१३८॥

अथ त्रिपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणासु तद् भण्यते

तिपणिंदियतिरियेसुं मिच्छाईणं णवण्ह पयडीणं ।
तिण्णि पलिओवमाइं देसूणाइं मुणेयव्वं ॥२३९॥
देसूणपुव्वकोडी णेयं णपुमाइअट्ठवीसाए ।
दुइअकसायाण तहा णिरयणरुरलदुगवइराणं ॥२४०॥

(प्रे०) "तिपणिंदिय"इत्यादि, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिमतीरूपासु तिसृषु मार्गणासु 'मिच्छं थीणद्धितिगमणचउगथी' इति संग्रहगाथाशकलेऽभिहितानां मिथ्यात्वमोहनीयादीनां नवानां प्रकृतीनां बन्धसम्बन्धि गुर्वन्तरं देशोनपल्योपमत्रयप्रमाणमस्ति, अत्र तिर्यगोघमार्गणावद् भावना कर्तव्या। "देसूणा"इत्यादि,'णपुमा । संघयणागिइपणगं दुहगतिग कुखगई णीअ ॥ तिरियदुगुज्जोआयवथावरएगिंदिसुहुमतिगविगला।" इति संग्रहगाथाद्वयेषु प्रोक्तानां नपुंसकवेदादीनामष्टाविंशतिप्रकृतीनामप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य नरकद्विकमनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननरूपाणां सप्तप्रकृतीनां च बन्धसत्कमन्तरं प्रकृष्टतया देशोनपूर्वकोटिवर्षाणि, अत्राऽपि भावना तिर्यगोघमार्गणावत् कार्या, परं मार्गणास्वासु नरकद्विकमनुष्यद्विकयोरेतादृशमन्तरं तिर्यगोघवन्न प्राप्यते, एकेन्द्रियादीनामप्रवेशात् ,अतस्तासां प्रकृतीनामन्तरभावनाऽयुगलिकतिर्यगपेक्षया मिथ्यात्वाद्वाद्वयापान्तराले सम्यक्त्वाद्यवस्थायां गुणप्रत्ययेनाबन्धेन कर्तव्या । शेषपञ्चत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धस्याऽन्तरं नास्ति। 'सेसासु मुहुत्ततो' इत्यादिना वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदसुरगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानसुरानुपूर्वीसुखगतित्रसदशकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाणां शेषाणां त्रिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनां प्रकृष्टं बन्धान्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं ज्ञेयम् ॥२३९-४०॥

साम्प्रतं मनुष्यमार्गणासूत्तरप्रकृतिबन्धस्य गुरुभूतमन्तरं दर्शयितुकाम आह

तिणरेसुं बोद्धव्वं णवमिच्छाईण ऊणपल्लतिगं ।
पुव्वाकोडिपुहुत्तं आहारदुगस्स णायव्वं ॥२४१॥
देसूणपुव्वकोडी होअइ णपुमाइअट्ठवीसाए ।
मज्झऽट्ठकसायाण णिरयणरुरलदुगवइराणं ॥२४२॥

(प्रे०) "तिणरेसु" इत्यादि, मनुष्यौघपर्याप्तमनुष्यमानुषीरूपासु तिसृषु मार्गणासु 'मिच्छं थीणद्धितिगमणचउगथी' इति संग्रहगाथांशेषु कथितानां मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतीनां नवानां प्रकृतीनां बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरं देशोनपल्योपमत्रयप्रमाणं तिर्यगोघवज्ज्ञातव्यम् । "पुव्वा" इत्यादि, आहारकद्विकस्य बन्धसत्कं प्रकृष्टमन्तरं पूर्वकोटिपृथक्त्ववर्षप्रमितं ज्ञातव्यम् । तद्यथा—युगलिकेषु संयमाभावेनैतत्प्रकृतिद्वयस्य बन्धाभावोऽस्ति, तद्वर्जशेषमनुष्यकायस्थितौ प्रथमभवे वर्षाष्टकानन्तरं संयमं प्राप्य बध्नाति ततः परिणामपातेनाऽविरतो भूत्वा नैव बध्नाति, चरमभवे पुनश्चरमान्तर्मुहूर्ते संयमं प्राप्य बध्नाति,तदोक्तप्रमाणमुत्कृष्टमन्तरमुपलब्धं भवति । "देसूणा" इत्यादि, 'णपुमा ।

संघयणागिइपणगं दुहगतिगं कुखगई नीअं ॥ तिरियदुगुज्जोआयवथावरएगिंदियसुहुमतिगविगला' इतिसंग्रहगाथावयवेषूक्तानां नपुंसकवेदादीनामष्टाविंशतिप्रकृतीनामप्रत्याख्यानावरणचतुष्कअन्याख्यानावरणचतुष्कलक्षणस्य प्रकृत्यष्टकस्य नरकद्विकनरद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननरूपाणां सप्तप्रकृतीनां च प्रकृष्टतो बन्धाऽन्तरं देशोनपूर्वकोटिवर्षप्रमाणं भवति, प्रत्याख्यानावरणचतुष्कवर्जानां भावना पञ्चेन्द्रियतिर्यग्वत्कार्या । प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य तु कथितबन्धान्तरं देशोनप्रकृष्टसंयमकालेन ज्ञातव्यमिति । मार्गणास्वासु ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कसंज्वलनचतुष्कभयकुत्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णादिचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वीसुखगतित्रसदशकास्थिराऽशुभायशःकीर्तिपराधातोच्छ्वासजिननामोच्चैर्गोत्ररूपाणामेकत्रिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च बन्धस्य गुर्वन्तरं 'सेसासु मुहुत्तंतो' इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तमधिगम्यम् । तदप्यत्र ज्ञानावरणाद्येकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जिननामकर्मणश्चोपशमश्रेणौ बन्धविच्छेदानन्तरं पुनर्बन्धापेक्षया शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च परावर्तमानापेक्षया विज्ञेयम् ॥२४१-२॥

अथ देवमार्गणासु प्रकृतीनां गुरुभूतमन्तरमुपदर्शयन्नाह

देवे मिच्छाईसु पणवीसाए य तिण्ह तिण्ह कमा ।
उवरिमगेविज्जऽट्ठमवुड्ढअसुरूणगुरुकायठिई ॥२४३॥

(प्रे०)'देवे' इत्यादि देवौघमार्गणायां 'मिच्छ थीणद्धितिगमणचउगथीणपुमा । सघयणागिइपणगं दुहगतिग कुखगई नीअं॥' इति संग्रहगाथाशेषु प्रतिपादितानां मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतीनां पञ्चविंशतिप्रकृतीनां बन्धसत्कं गुर्वन्तरं नवमग्रैवेयकस्य देशोनैकत्रिंशत्सागरोपमप्रमितोत्कृष्टकायस्थितिरूपं वर्तते नवमग्रैवेयकेऽपर्याप्तावस्थां परित्यज्य पर्याप्तावस्थायां मिथ्यात्वद्वयापान्तराले सम्यक्त्वावस्थायामेतावत्कालं प्रकृतीनामासां बन्धविरहात् । तिर्यग्द्विकोद्योतलक्षणप्रकृतित्रयस्य गुरुबन्धान्तरमष्टमदेवलोकसत्कदेशोनाष्टादशसागरोपमप्रमितप्रकृष्टकायस्थित्यात्मकमस्ति, यतो हि सहस्राराख्याष्टमदेवलोके वर्तमानाः प्रकृष्टकायस्थितिमन्तो देवाः पर्याप्तावस्थायां मिथ्यात्वद्वयान्तरे सम्यक्त्वावस्थायामभिहितकालं यावत् प्रकृतित्रयमेतन्नैव बध्नन्ति । आतपस्थावरैकेन्द्रियरूपाणां तिसृणां प्रकृतीनां च बन्धस्योत्कृष्टमन्तरमन्तर्मुहूर्तन्यूनेशानाख्यद्वितीयदेवलोकसम्बन्धिसाधिकसागरोपमद्वयलक्षणगुरुकायस्थितिस्वरूपमवसेयम् , ईशानदेवलोके वर्तमानानां साधिकसागरोपमद्वयोत्कृष्टस्थितिकानां देवानां पर्याप्तावस्थाया मिथ्यात्वाद्वाद्वयान्तरे सम्यग्दृष्टित्वावस्थायामुक्तकालपर्यन्तं प्रकृतीनामासां बन्धाभावात् , देशोनत्वमत्र भवाद्याऽन्तर्मुहूर्तं तदन्तिमान्तर्मुहूर्तं चेत्यऽन्तर्मुहूर्तद्वयेन ज्ञेयम् , ननु प्रकृतानां पञ्चविंशतिप्रकृतीनां त्रिप्रकृतीनां त्रिप्रकृतीनां चाऽन्तरं देशोनत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणं वक्तव्यम्, देवानां प्रकृष्टकायस्थितेस्तावत्प्रमाणत्वादिति चेन्न, उक्ता-

धिकस्थितिकदेवानां तत्तत्प्रकृतीनां बन्धाभावेन तासां बन्धसत्काऽन्तरस्याऽसंभवात् । एकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरजिननामपराघातोच्छ्वासबादरत्रिकरूपस्य प्रकृतिसप्तकस्य च निरन्तरं बध्यमानत्वेन बन्धाऽन्तरं नास्ति । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदमनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकाङ्गोपाङ्गवज्रर्षभनाराचसंहननसमचतुरस्रसंस्थानशुभखगतिमनुष्यानुपूर्वीत्रस-स्थिरषट्काऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्त्युच्चैर्गोत्राणां पञ्चविंशतिप्रकृतीनां बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरं 'सेसासु मुहुत्तंतो' इत्यादिनान्तर्मुहूर्तप्रमाणमवसेयम् ॥२४३॥

उवरिमगेविज्जऽट्ठमदुइअसुरंतेसु सूणजेट्ठठिई ।
कमसो मिच्छाईसुं पणवीसाए य तिण्ह तिण्ह कमा ॥२४४॥ (गीति)

(प्रे०) 'उवरिम'इत्यादि, 'उपरिमग्रैवेयकाष्टमद्वितीयसुरांतेषु'अत्र प्रान्तवर्ति 'अन्त' इति पदं 'द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते' इति न्यायेनोपरिमग्रैवेयकादिपदैः सार्कं सम्बन्धनीयम् , 'उपरिमग्रैवेयकान्तेषु'=भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कसौधर्मेशानसनत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलान्तकशुक्रसहस्राराऽऽनतप्राणतारणाच्युतनवग्रैवेयकरूपासु चतुर्विंशतिमार्गणासु, 'अष्टमान्तेषु'—भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कसौधर्मेशानसनत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलान्तकशुक्रसहस्रारलक्षणास्वेकादशमार्गणासु, 'द्वितीयसुरान्तेषु' भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कसौधर्मेशानरूपासु पञ्चसु मार्गणास्वित्यर्थः । उपरिमग्रैवेयकान्तेष्वष्टमान्तेषु द्वितीयान्तेष्वित्यादिनोपदर्शितेषु त्रिविधमार्गणासमुदायेषु मिथ्यात्वमोहनीयादिषु सग्रहगाथायामुक्तासु प्रकृतिषु क्रमेण पञ्चविंशतिप्रकृतीनां, तिसृणां, तिसृणां च प्रकृतीनां बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरं 'स्वोनज्येष्ठस्थितिः'स्वस्वप्रायोग्यदेशोनोत्कृष्टकायस्थितिप्रमितं भवति । इदमत्र हृदयम्—भवनपतिप्रभृतिनवमग्रैवेयकपर्यन्तासु चतुर्विंशतिमार्गणासु 'मिच्छ थीणद्धितिगमणाचउअथीणपुमा । सघयणागिइपणग दुहगतिग कुखगई णी.अं॥' इति सग्रहगाथाशकलेष्वभिहितानां मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतीनां पञ्चविंशतिप्रकृतीनाम् , भवनपत्यादिसहस्रारावसानास्वेकादशमार्गणासु तिर्यग्द्विकोद्योतलक्षणप्रकृतित्रयस्य, भवनपतिप्रमुखेशानान्तासु पञ्चसु मार्गणासु चातपस्थावरैकेन्द्रियस्वरूपाणां तिसृणां प्रकृतीनां स्वस्वप्रायोग्यदेशोनप्रकृष्टकायस्थितिप्रमाणं बन्धसम्बन्धि प्रकृष्टमन्तरं बोद्धव्यम्, मार्गणास्वासु मिथ्यात्वाद्धाद्वयापान्तराले सम्यक्त्वावस्थायां तावत्कालमेतासां प्रकृतीनां बन्धविरहात् , अत्राऽपि देशोनत्वं भवाद्यान्तिमाऽन्तर्मुहूर्तद्वयेनावसेयम् । आनतादिनवमग्रैवेयकान्तमार्गणासु एकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिनीनां तथा मनुष्यद्विकौदारिकद्विकपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्कपञ्चेन्द्रियजातिनामरूपैकादशमार्गणाप्रायोग्यध्रुवबन्धिनीनां जिननाम्नश्च सर्वसंख्ययैकपञ्चाशत्प्रकृतीनां सततं बध्यमानत्वेन बन्धसत्कमन्तरं नास्ति । वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदवज्रर्षभनाराचसंहननसमचतुरस्रसंस्थानशुभखगतिस्थिरषट्काऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्त्युच्चैर्गोत्ररूपाणां त्रिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरं 'सेसासु मुहुत्तंतो' इत्यादितोऽन्त-

मुहूर्तमवसातव्यम् । सनत्कुमारादिसहस्रारान्तमार्गणास्वनन्तरोक्तमनुष्यद्विकवर्जज्ञानावरणीयाद्येकोनपञ्चाशत्प्रकृतीनां बन्धस्य सततं सद्भावेनाऽन्तरं नास्ति। तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदमनुष्यद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननसमचतुरस्रसंस्थानस्थिरषट्काऽस्थिराऽशुभायशःकीर्त्युच्चैर्गोत्ररूपाणां द्वाविंशत्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरं 'सेसासु मुहुत्ततो' इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तरूपमवसेयम्। सौधर्मेशानमार्गणाद्वये मिथ्यात्वमोहनीयाद्यष्टप्रकृतिवर्जशेषैकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जिननामौदारिकशरीरपराघातोच्छ्वासबादरत्रिकरूपाणां च सप्तप्रकृतीनां निरन्तरं बध्यमानत्वेनाऽन्तरं नास्ति, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदमनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकाङ्गोपाङ्गसमचतुरस्रसंस्थानवज्रर्षभनाराचसंहननमनुष्यानुपूर्वीशुभखगतित्रसस्थिरषट्काऽस्थिराशुभायशःकीर्तिनामोच्चैर्गोत्ररूपाणां पञ्चविंशत्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धमन्तरं प्रकृष्टमन्तरं 'सेसासु मुहुत्ततो' इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तस्वरूपं विज्ञेयम्। भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्करूपासु तिसृषु मार्गणासु जिननामवर्जशेषसकलप्रकृतीनां सौधर्मेशानमार्गणाद्वयवद् बन्धसत्कं प्रकृष्टमन्तरं विचारणीयम्। इदानीमुक्तव्यतिरिक्तपञ्चानुत्तरदेवमार्गणासु स्वबन्धप्रायोग्यप्रकृतिषु यासां प्रकृतीना बन्धान्तरं विद्यते तासां तत् 'सेसासु मुहुत्ततो' इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणं ज्ञातव्यम्। तद्यथा—सातवेदनीयादिद्वादशानामन्तर्मुहूर्तप्रमाणमुत्कृष्टमन्तरं ज्ञातव्यम्। शेषबध्यमानप्रकृतीनां सततं बध्यमानत्वादन्तरं नास्ति। ॥२४४॥ अथैकेन्द्रियादिमार्गणासूत्तरप्रकृतीनां प्रकृष्टबन्धान्तरं प्रदर्श्यते—

विण्णेयमसंखेज्जा लोगा मणुसदुगेउच्चगोआणं ।
एगिंदिये तह सुहुमएगिंदियकायजोगेसुं ॥२४५॥

(प्रे०) 'विण्णेय'मित्यादि, एकेन्द्रियौघसूक्ष्मैकेन्द्रियौघकाययोगौघरूपासु तिसृषु मार्गणासु मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रलक्षणप्रकृतित्रयस्य बन्धसत्कमन्तरमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशसमयप्रमितं प्रकृष्टतया विज्ञेयम्, तच्चैवम्—मार्गणास्वासु वर्तमानस्तेजस्कायवायुकायिकवर्जपृथ्वीकायिकादिजीव एतत्प्रकृतित्रयं बद्ध्वैतन्मार्गणासत्कतेजोवायुकाययोरुत्पन्नः सन् प्रकृष्टतयाऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणसमयप्रमिततेजोवायुकायिकसमुदितोत्कृष्टकायस्थितिपर्यन्तं पुनः पुनस्तत्रैवोत्पद्यते तदा स तावत्कालमेतत्प्रकृतित्रयं नैव बध्नाति तदनन्तरं पुनरपि पृथ्वीकायिकादित्वेन जायमानो बध्नाति, अतस्तेजस्कायवायुकायिकभवयोरेव पुनः पुनरुत्पद्यमानं जीवमाश्रित्यैव तादृशमन्तरमवाप्यते। इदं त्वत्राऽवधेयम्—एकेन्द्रियौघकाययोगौघमार्गणयोरुक्तप्रकृतित्रयस्योत्कृष्टमन्तरं तेजोवायुकायिकसमुदितकायस्थितिरूपम्, सूक्ष्मैकेन्द्रिये तु तत्सूक्ष्मतेजोवायुकायिकसमुदितकायस्थितिरूपं विज्ञेयम्। एकेन्द्रियौघसूक्ष्मैकेन्द्रियौघमार्गणायोः शेषसप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनाम्नश्च बन्धसत्कमन्तरं नास्ति, जघन्यान्तरप्रस्तावे निषिद्धत्वात्। तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्गतिजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानषट्कतिर्यगानुपूर्वीखगतिद्वयत्र-

सदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासनीचैर्गोत्ररूपाणां शेषाणां षट्पञ्चाशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनां 'सेसासु मुहुत्तंतो' इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणमन्तरं प्रकृष्टतोऽवसेयम् , अध्रुवबन्धित्वात् । काययोगमार्गणायां त्वौदारिकशरीरवैक्रियषट्कजिननामसहितानां चतुःषष्टिध्रुवेतरप्रकृतीनामन्तर्मुहूर्तप्रमाणमन्तरं ज्ञातव्यम् , ध्रुवबन्धिनीषु पञ्चज्ञानावरणषड्दर्शनावरणसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सावर्णनामध्रुवबन्धिपञ्चान्तरायाणां बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणमवसातव्यम् तदित्थम्—श्रेणौ आसां प्रकृतीनां यथास्वं बन्धविच्छेदसमयादर्वाक्समये मार्गणाप्रारम्भः तत्तत्प्रकृतीनां बन्धश्च, तदनन्तरसमये तत्तत्प्रकृतीनाम अबन्धको भूत्वाबन्धकतया तावत्तिष्ठति यावच्छ्रेणौ काययोगित्वेन चरमसमयम् , तत्र कालं कृत्वा देवेषूत्पद्य पुनर्बन्धं करोति तदा प्रकृतान्तरं प्राप्यते, इत्थमेव जिननामबन्धान्तरं ज्ञातव्यम् । शेषमिथ्यात्वादिषोडशध्रुवबन्धिप्रकृतीनामाहारकद्विकस्य चान्तरं नास्ति, जघन्यान्तरप्रस्तावे निषिद्धत्वादिति ॥२४५॥

अथ बादरैकेन्द्रियौघपर्याप्तबादरैकेन्द्रियमार्गणयोस्तदुच्यते

सि अंगुलऽसखसो कम्मठिई वाऽत्थि बायरेगक्खे ।
संखेज्जसहस्ससमा, पज्जत्ते बायरेगक्खे ॥२४६॥

(प्रे०) 'सि' इत्यादि, बादरैकेन्द्रियौघमार्गणायां तासामेव मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रप्रकृतीनां बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरमङ्गुलाऽसंख्येयभागगताकाशप्रदेशप्रमितसमयप्रमाणं वेदयितव्यम् ,तदप्यन्तरं मार्गणायामस्यां तेजोवायुकायिकभवयोरेव पुनः पुनरुत्पद्यमानजीवापेक्षया ग्राह्यम् , पृथ्वीकायिकादीनामपेक्षया तु तदसंभवः, तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतिभिस्साकं मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रप्रकृतित्रयस्य परावर्तमानत्वेन बन्धभावात् । 'कम्मठिई वा' इत्यादि मतान्तरेण पुनर्मार्गणायामस्यां मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रप्रकृतीनां बन्धस्य गुर्वन्तरं सप्ततिकोटिकोटिसागरोपमात्मकप्रकृष्टकर्मस्थितिप्रमाणं बोद्धव्यम् , मार्गणायामस्यां बादरतेजोवायुकायिकसमुदितोत्कृष्टकायस्थितेरपि सप्ततिकोटिकोटिसागरोपमप्रमाणतया तैः स्वीकृतत्वात् ; अत्रापि तेजोवायुकायिकतयोत्पद्यमानमाश्रित्य प्रकृतित्रयस्यास्येदृगन्तरं भावनीयम् । 'संखेज्ज' इत्यादि, पर्याप्तबादरैकेन्द्रियमार्गणायां मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्ररूपस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धसम्बन्धि ज्येष्ठमन्तरं संख्येयसहस्रवर्षाणि वर्तते, मार्गणायामस्यां पर्याप्तबादरतेजोवायुकायिकसमुदितकायस्थितेरुत्कृष्टतया तावत्प्रमाणत्वात् , इहाप्येतादृशमन्तरं तेजोवायुकायिकतयोत्पद्यमानं जीवं प्रतीत्य भावनीयम् । मार्गणाद्वयेऽपि नु सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनाम्नश्च बन्धसत्कमन्तरं नास्ति, सततमत्र बन्धतो विद्यमानत्वात् । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्गतिजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गसंस्थानषट्कसंहननषट्कतिर्यगानुपूर्वीविहायोगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकपराघातोच्छ्वासातपोद्योतनीचैर्गोत्ररूपाणां शेषषट्पञ्चाशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धस्योत्कृष्टमन्तरं 'सेसासु मुहुत्तंतो' इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणमवसातव्यम् ॥२४६॥

अथ पञ्चेन्द्रियौघादिमार्गणासूत्कृष्टमन्तरमाह

तइअकसायाईण पणचत्ताअ तह तिवइराईण ।
दुपणिंदितसेसु णयणसण्णीसुं होइ ओघव्व ॥२४७॥

(प्रे०) 'तइअ' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौघपर्याप्तत्रसकायचक्षुर्दर्शनसंज्ञिरूपासु षट्सु मार्गणासु 'तइअकसाया ॥ दुइअकसाया मिच्छ थीणद्धितिगमणचउगथीणपुमा । सवयणागिइपणग दुहगतिग कुखगई णीअ ॥ तिरियदुगुज्जोआयवथावरएगिंदिसुहुमतिगविगला ।' इति संग्रहगाथांशेषु प्रतिपादितानां प्रत्याख्यानावरणचतुष्कादिपञ्चचत्वारिंशत्प्रकृतीनां तथा 'वइरुरलुवंगाणि॥ उरल' इति संग्रहगाथांशेनोक्तानां वज्रर्षभनाराचादीनां तिसृणां प्रकृतीनां चेति सर्वसङ्ख्ययाऽष्टचत्वारिंशत्प्रकृतीनां बन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमोघवद् भवति, तदेवम्–प्रत्याख्यानावरणाऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कयोर्बन्धस्यान्तरं देशोनपूर्वकोटिवर्षप्रमितम् , मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कस्त्रीवेदनपुंसकवेदप्रथमसंहननवर्जसंहननपञ्चकप्रथमसंस्थानवर्जसंस्थानपञ्चकदुर्भगत्रिकाऽशुभखगतिनीचैर्गोत्ररूपाणां पञ्चविंशतिप्रकृतीनां बन्धान्तरं द्वात्रिंशदधिकसागरोपमशतमानम् , आतपस्थावरैकेन्द्रियसूक्ष्मत्रिकविकलत्रिकरूपाणां प्रकृतीनां नवकस्य बन्धमन्कमन्तरं माधिकपल्योपमचतुष्केणाधिकपञ्चाशीत्यधिकशतसागरोपमाणि, वज्रर्षभनाराचौदारिकद्विकलक्षणप्रकृतित्रयस्य सातिरेकं पल्योपमत्रयम् , तिर्यग्द्विकोद्योतलक्षणप्रकृतित्रयस्य च बन्धसत्कमन्तरं प्रकृष्टतया त्रिषष्ट्यधिकसागरोपमशतं यथासमयं साधिकं च विज्ञेयम् , अत्र भावना पुनरोघवद्भावनीया ॥१४७॥

अथैतास्वेव मार्गणासु नरकद्विकादिप्रकृतीनामुत्कृष्टं बन्धान्तरं भण्यते–

पणसीइसागरसयं निरयदुगस्सऽत्थि सगसुराईणं ।
साहियतेत्तीसुदही आहारदुगस्स ऊणजेट्ठठिई ॥२४८॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'पणसीइ' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियौघादिप्रागुक्तषण्मार्गणासु नरकद्विकबन्धस्य प्रकृष्टमन्तरं पञ्चाशीत्यधिकसागरोपमशतप्रमितमस्ति, ओघप्ररूपणायां स्थावरादिप्रकृतीनामुत्कृष्टान्तरस्य भावना यथा कृता तथैवाऽत्राऽपि कार्या, यद्यपि पञ्चमकर्मग्रन्थाभिप्रायेण पञ्चेन्द्रियेषु नरकद्विकस्याबन्धकालस्त्रिषष्टयधिकशतसागरोपमप्रमाणो निर्दिष्टस्तथापि एकेन्द्रियजात्यादीनामबन्धकाल इव नरकद्विकस्य बन्धान्तरं पञ्चाशीत्यधिकशतसागरोपमप्रमाणं घटते, ग्रन्थान्तरेषु च तस्यान्तरं तथैव दर्शितम् ,अतो ग्रन्थान्तरमवलम्ब्यैतन्निरूपितं प्रस्तुतग्रन्थे, अतो न कश्चिद्विरोधः। 'सगसुराईणं' इत्यादि, सुरविउव्वदुग उच्चणरदुग' इति संग्रहगाथावयवेषु प्रोक्तानां सुरद्विकादीनां सप्तानां प्रकृतीनां बन्धस्याऽन्तरं प्रकृष्टतया साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपममानमस्ति, भावना पुनरित्थं भावनीया–केश्चित् सप्तमनरकाभिमुखस्तिर्यङ्मनुष्यो वा स्वभवान्ते सप्तमनरकप्रायोग्यप्रकृतीर्बध्नाति, सप्तमनरके चोत्पद्य त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणस्वायुःस्थितिपर्यन्तं तिर्यग्गतिप्रायोग्यप्रकृतीर्बध्नाति तद-

न्तरं सप्तमनरकादुद्वृत्य तिर्यग्भवे प्रथमान्तर्मुहूर्तेऽपि तिर्यक्प्रायोग्यप्रकृतीर्बध्नाति तस्मात्तावत्कालं देवप्रायोग्या मनुष्यप्रायोग्याश्च प्रकृतय उच्चैर्गोत्रं च नैव बध्यन्ते, अत उक्तप्रमाणमन्तरं प्राप्यते, अत्र वैक्रियद्विकस्याऽन्तरप्ररूपणायामुत्तरभवसत्कमेवाऽन्तर्मुहूर्तं ग्राह्यम्, न पूर्वभवसत्कम्, तत्र तस्य बध्यमानत्वात्। 'आहारदुग' इत्यादि, मार्गणास्वास्वाहारकद्विकबन्धस्य देशोनस्वोत्कृष्टकायस्थितिप्रमाणं ज्येष्ठमन्तरं वर्तते, तद्यथा–प्रस्तुतमार्गणासु वर्तमानः कश्चिज्जीवो शीघ्रातिशीघ्रं यथावसरं संयमं सम्प्राप्याऽप्रमत्तसंयतगुणस्थानक आहारकद्विकं बध्नाति तदूर्ध्वं तदधस्तनेषु गुणस्थानकेषु गत्वा देशोनस्वोत्कृष्टकायस्थितिं यावन्न बध्नाति, तत्पश्चात्स्वकायस्थितेर्द्विचरमान्तर्मुहूर्ते पुनरपि सप्तमगुणस्थानं समुपलभ्य तद्बन्धं प्रकुरुते, इत्थमीदृशमन्तरं प्राप्यते। तथा ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णादिचतुष्काऽगुरुलघूपघात–निर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जिननामौघवत्श्रेणौ दीर्घाबन्धकालेन तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानशुभविहायोगतित्रसदशकाऽस्थिरा-ऽशुभा ऽयशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासरूपाणां पञ्चविंशत्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां मध्ये कासाञ्चित्प्रकृतीनां परावर्तमानबन्धेन कासाञ्चिच्च प्रकृतीनामुपशमश्रेणिमाश्रित्येति बन्धस्य गुर्वन्तरं 'सेसाण मुहुत्तंतो' इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणं बोद्धव्यम् ॥२४८॥

साम्प्रतं वेदमार्गणासूत्तरप्रकृतिबन्धस्याऽन्तरं चिन्तयन्नादौ तावत्स्त्रीवेदमार्गणायामाह–

थीअ पणवण्णपलिआ होअइ मिच्छाइएगतीसाए।
देसूणाऽब्भहिया उण बारससुहुमाइगाण भवे ॥२४९॥
मज्झऽट्ठकसायाण ओघव्व हवेज्ज ऊणपल्लतिगं।
पचण्ह णराईण आहारदुगस्स ऊणजेट्ठठिई ॥२५०॥ (गीति)

(प्रे०) 'थीअ' इत्यादि, स्त्रीवेदमार्गणायां 'मिच्छ थीणद्धितिगमणचउणथीणपुमा। सघयणागिइपणग दुहगतिग कुखगई णीअ ॥ तिरियदुगुज्जोआयवथावरएगिंदि' इति संग्रहगाथाशकलेषु भाषितानां मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतीनामेकत्रिंशत्प्रकृतीनां बन्धसत्कमुत्कृष्टमन्तरं देशोनपञ्चपञ्चाशत्पल्योपमप्रमाणं भवति, मार्गणायामस्यां वर्तमानया पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमप्रमाणायुष्कया कयाचिद् देव्या मिथ्यात्वाद्वाद्वयान्तरे सम्यक्त्वावस्थायां भवप्रथमान्तिमान्तर्मुहूर्तद्वयन्यूनपञ्चपञ्चाशत्पल्योपमकालं यावत् प्रकृतीनामासामबन्धात्। 'अब्भहिया' इत्यादि, 'सुहुमतिगविगलाणिरयसुरविउव्वदुग' इति संग्रहगाथांशेपूक्तानां सूक्ष्मत्रिकप्रभृतीनां द्वादशप्रकृतीनां बन्धसम्बन्धिगुरुभूतमन्तरं साधिकपञ्चपञ्चाशत्पल्योपमप्रमाणं भवति, भावना पुनरेवम्–एतन्मार्गणागता काचित् तिरश्ची मानुषी वा देवसत्कमायुर्बध्नाति ततश्चरमेऽन्तर्मुहूर्ते तस्याः देवप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वात् सूक्ष्मत्रिकविकलत्रिकनरकद्विकप्रकृतीर्न बध्नाति सा ततश्च मृत्वा देवीतया संजाता सती देवद्विकं वैक्रियद्विकमुत्कृष्ट-

प्रकृतीश्च पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमलक्षणां स्वोत्कृष्टायुःस्थितिं यावन्न बध्नाति ततश्च च्युत्वा पुनरपि मनुष्य-भवे तिर्यग्भवे वा स्त्रीत्वेनोत्पन्नाऽन्तर्मुहूर्तकालं यावत्ता एव द्वादशप्रकृतीर्न बध्नाति, अत उक्तप्रमाण-मन्तरं सम्पन्नं भवति । 'मज्झऽट्ठकसायाणं' इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्या-नावरणचतुष्कलक्षणस्य मध्यमकषायाष्टकस्य बन्धसत्कमुत्कृष्टमन्तरमोघवद् भवति, तच्च देशोनपूर्व-कोटिवर्षप्रमाणं ज्ञेयम् । 'ऊणपल्लतिगं' इत्यादि, 'णरदुगवइरुरलुवंगाणि ॥ उरल' इति मनुष्य-द्विकादिपञ्चप्रकृतीनां बन्धसत्कमुत्कृष्टतोऽन्तरं देशोनपल्योपमत्रयप्रमितं भवति, मार्गणायामस्यां वर्तमानया पल्योपमत्रयायुष्मत्या युगलिन्याऽपर्याप्तावस्थासत्कमन्तर्मुहूर्तकालं विहाय स्वायुःसमाप्तिं यावत् प्रकृतीनामासामबध्यमानत्वात् । 'आहारदुगस्स' इत्यादि, आहारकद्विकस्य बन्धसत्कं गुर्वन्तरं देशोनस्वोत्कृष्टकायस्थितिमानं वर्तते, तदित्थम्—स्त्रीवेदमार्गणायाः प्रकृष्टा कायस्थितिः पल्योपमशतपृथक्त्वप्रमिताऽस्ति, एतन्मार्गणावर्तिनी काचिन्मानुषी योग्यकाले संयमं समुपलभ्य सप्तमगुणस्थानके प्रकृतिद्वयमेतद् बध्नाति, ततस्तदधस्तनगुणस्थानकेषु गता सती न बध्नाति, यावदन्तिमाऽन्तर्मुहूर्तं मार्गणाया अस्या अवतिष्ठते, अन्तिमाऽन्तर्मुहूर्ते च पुनरपि सप्तमगुणस्थानकं लब्ध्वा बध्नाति, तदाऽत्रेदमन्तरं प्राप्तं भवति । ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कसंज्वलनचतुष्कभय-जुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकलक्षणानामेकत्रिंशद्ध्रुव-बन्धिप्रकृतीनां जिननाम्नश्च बन्धसत्कमन्तरं नास्ति, कासाञ्चित्प्रकृतीनां निरन्तरं बध्यमानत्वात् कासाञ्चित्प्रकृतीनां तु पुनर्बन्धात्प्राग् मार्गणाया अस्या विच्छेदात् । तथा वेदनीयद्विकहास्यादि-युगलद्वयपुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतित्रसदशकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपरा-घातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाणां षड्विंशत्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धस्य 'सेसाण मुहुत्तंतो' इत्यादिगाथातो गुर्वन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणमधिगन्तव्यम् ,घटना त्वत्र परावर्तमानत्वमाश्रित्य स्वयं समूहनीया।२४९-५०॥

अथ पुरुषवेदमार्गणायां तदभिधीयते

पुरिसे तेत्तीसाए तइअकसायाइगाण ओघव्व ।
जलहितिवड्ढिजुअसयं चउद्दसण्ह तिरियाईणं ।२५१॥
अब्भहिय पल्लतिगं णराइपणगस्स चउसुराईणं ।
साहियतेत्तीसुदही आहारदुगस्स ऊणजेट्ठठिई ॥२५२॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'पुरिसे' इत्यादि, पुरुषवेदमार्गणायां 'तइअकसाया ॥ दुइअकसाया मिच्छं थीणद्धितिगमण-चउगथीणपुमा । सघयणागिइपणगं दुहगतिगं कुखगइ णीअ' मित्यादि गाथांशेषु भणितानां प्रत्या-ख्यानावरणचतुष्कादित्रयस्त्रिंशत्प्रकृतीनां बन्धस्य गुर्वन्तरमोघवदवसेयम् , तदेवम् प्रत्याख्याना-वरणचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कलक्षणकषायाऽष्टकस्य देशोनपूर्वकोटिवर्षाणि, शेषाणां मिथ्या-त्वमोहनीयप्रभृतिपञ्चविंशतिप्रकृतीनां द्वात्रिंशदभ्यधिकसागरोपमशतम् , भावनौघवद् भावनीया ।

'अलहि' इत्यादि, 'तिरियदुगुज्जोआयवथावरएगिंदिसुहुमतिगविगला ॥ णिरय' इत्यादि संग्रहगाथाशकलोक्तानां तिर्यग्द्विकादिचतुर्दशप्रकृतीनां बन्धसत्कमुत्कृष्टमन्तरं त्रिषष्ट्यधिकशतसागरोपमप्रमितं वर्तते, तदपि व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिरितिन्यायान्मूलकारेणाऽनुक्तमपि सातिरेकपल्योपमचतुष्टयेनाऽधिकं ग्राह्यम् , भावना पुनरेवम्–प्रकृतमार्गणावर्ती यः कश्चित्प्राणी त्रिपल्योपमायुष्केषु युगलधार्मिकेषु समुत्पन्नस्तत्र चैतास्तिर्यग्द्विकादिचतुर्दशप्रकृतीर्न बध्नाति देवप्रायोग्यप्रकृतीनामेव बन्धकत्वाद् युगलधर्मिणाम् , ततः पर्यन्तान्तर्मुहूर्ते सम्यक्त्वमासाद्य पल्योपमस्थितिकेषु देवेषूत्पन्नस्तत्रापि सम्यक्त्वप्रत्ययादेताः प्रकृतीर्न बध्नाति,ततोऽपरिपतितसम्यक्त्वो मनुष्येषूत्पद्य दीक्षामनुपाल्य-नवमग्रैवेयके सुर एकत्रिंशत्सागरोपमस्थितिकः समुत्पन्नः, ततोऽन्तर्मुहूर्तोर्ध्वं मिथ्यात्वं जगाम, तत्र च वर्तमानो मिथ्यादृष्टिरपि भवप्रत्ययादेवैताः प्रकृतीर्न बध्नाति, तदनु पर्यन्तान्तर्मुहूर्ते सम्यग्दर्शनमवाप्याऽप्रतिपतितसम्यक्त्वो मनुष्येषूत्पद्य सर्वविरतिं परिपाल्य तथैव गृहीतसम्यक्त्वो वारत्रयमच्युतगमनेन षट्षष्टिसागरोपमाणि पूरयित्वा मनुष्येष्वन्तर्मुहूर्तं सम्यग्मिथ्यात्वमनुभूय तदन्तरितं द्वितीयषट्षष्टिसागरप्रमाणं सम्यग्दर्शनकाल वारद्वयं विजयादिगमनेन पूरयति, तं जीवमाश्रित्य प्रकृतमन्तरं प्राप्तं भवति । 'अब्भहियं' इत्यादि, मनुष्यद्विकप्रथमसंहननौदारिकाङ्गोपाङ्गौदारिकशरीररूपस्य नरादिपञ्चकस्य बन्धसत्कं प्रकृष्टमन्तरं साधिकपल्योपमत्रयप्रमितं भवति, तदित्थम्–पुरुषवेदमार्गणायां वर्तमानः पूर्वकोटिवर्षायुष्कः कश्चिज्जन्तुः स्वायुषस्तृतीयभागे उत्कृष्टस्थितिकं युगलिकसत्कमायुर्बद्ध्वा वेदकं सम्यक्त्वमासादयति ततः क्षायिकसम्यक्त्वं च, तदा तस्य मनुष्यपञ्चकबन्धस्य विच्छेदभावेन स्वायुःसमाप्तिं यावत्तद्बन्धविरहः, ततश्च मृत्वा युगलिकत्वेनोत्पन्नस्य तस्य त्रिपल्योपमप्रमितस्वायुःपर्यन्तमपि तद्बन्धविरहः, देवप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वात्तस्य, तदनन्तरं देवलोके जातः सन् प्रकृतिपञ्चकमेतद् बध्नाति तस्मादीदृशमन्तरं संप्राप्तं भवति । 'चउसुराईण'मित्यादि, पुरुषवेदमार्गणायां सुरद्विकवैक्रियद्विकलक्षणस्य प्रकृतिचतुष्कस्य बन्धसम्बन्धि गुर्वन्तरं साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, घटना पुनरेवम्–एतन्मार्गणावर्ती कश्चिन्मनुष्य उपशमश्रेणिमारूढ उक्तप्रकृतिचतुष्कस्याबन्धं कृत्वा पुनर्बन्धात्प्राक् तत्रैव च पञ्चत्वं प्राप्याऽनुत्तरदेवभवे जायते तदोपशमश्रेणौ बन्धविच्छेदादनन्तरमनुत्तरदेवभवे च तस्य प्रकृतीनामासामबन्धकत्वादुपशमश्रेणिगताऽबन्धसत्काऽन्तर्मुहूर्ताभ्यधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमितमुत्कृष्टतयाऽन्तरमुपलभ्यते । "आहारदुगस्स" इत्यादि, आहारकद्विकबन्धस्य प्रकृष्टतोऽन्तरं देशोनसागरोपमशतपृथक्त्वरूपस्योत्कृष्टकायस्थितिस्वरूपमवसेयम् , भावना पुनरत्रेत्थंरीत्या कार्या–पुरुषवेदमार्गणायां वर्तमानो मनुष्यो यथायोगं शीघ्रतया सप्तमगुणस्थानकं संप्राप्याहारकद्विकं च तत्र बद्ध्वा तदूर्ध्वं तदधस्तनगुणस्थानेषु गच्छति, तत्र च वर्तमानः स तावत्कालमाहारकद्विकं न बध्नाति मार्गणाया अस्याश्चरमान्तर्मुहूर्ते पुनरपि स सप्तमगुणस्थानकमवाप्य तद्बध्नाति तदा देशोनसागरोपमशतपृथक्त्वे-

प्रमाणमन्तरं लभ्यते, ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्काऽन्तरायपञ्चकरूपाणामष्टादशध्रुवबन्धिप्रकृतीनां सततं बन्धतो विद्यमानत्वेनाऽन्तरं नास्ति, नामनवध्रुवबन्धिनिद्राद्विकभयजुगुप्सारूपाणां शेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनां वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतित्रसदशकाऽस्थिराऽशुभायशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासजिननामोच्चैर्गोत्ररूपाणां सप्तविंशत्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरं 'सेसासु मुहुत्तंतो' इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तरूपं विज्ञेयम् । शेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जिननाम्नः कासाञ्चिदध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च श्रेणावबन्धानन्तरं पुरुषवेदोदयचरमसमये कालकरणेन कासाञ्चिदध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च तत्प्रतिपक्षप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालेनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणं प्रकृष्टमन्तरमवगमातव्यम् ॥२५०-१॥

अथ नपुंसकवेदमार्गणायामुत्कृष्टमन्तरमाह

णपुमे तेत्तीसुदही हवेज्ज मिच्छाइअट्ठवीसाए ।
देसूणाऽब्भहिया उण होइ णवण्हायवाईण ॥२५२॥
देसूणपुव्वकोडी मज्झऽट्ठकसायतिवइराईणं ।
ओघव्वाहारजुगलणवणिरयाईण बोद्धव्व ॥२५३॥

(प्रे०) "णपुमे" इत्यादि, नपुंसकवेदमार्गणायां 'मिच्छं थीणद्धितिगमणचउगथीणपुमा । सघयणागिइपणगं दुहगतिग कुखगई णीअं ॥ तिरियदुगुज्जोअ' इति संग्रहगाथावयवेषु प्रोक्तानामष्टाविंशतिमिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृतीनां बन्धस्योत्कृष्टतोऽन्तरं देशोनत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमितमस्ति, सप्तमनरके केनचिज्जीवेन प्रथमचरमाऽन्तर्मुहूर्तगतमिथ्यात्वद्वयाऽन्तरे सम्यक्त्वावस्थायां तावत्कालं प्रकृतीनामासामवध्यमानत्वात् । "अब्भहिया" इत्यादि, 'आयवथावरएगिंदिसुहमतिगविगला' इति संग्रहगाथाऽवयवेषूक्तानामातपादीनां नवानां प्रकृतीनां बन्धसत्कमुत्कृष्टतोऽन्तरं साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, घटना पुनरेवम्-नपुंसकवेदमार्गणायां वर्तमानस्य कस्यचित् तिरश्चो मनुष्यस्य वा सप्तमनरकभवात् पूर्वं चरमान्तर्मुहूर्ते नरकप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धकत्वेनाऽऽतपादीनां नवानां प्रकृतीनां बन्धो न संभवति, सोऽपि ततो मृत्वा सप्तमनरके जातः सन् त्रयस्त्रिंशदब्धिप्रमितस्वायुःसमाप्तिं यावन्नैताः प्रकृतीर्बध्नाति, सप्तमनरकान्निर्गत्य च तिर्यग्भवे उत्पन्नोऽसावाद्येऽन्तर्मुहूर्तेऽपि न बध्नाति, तस्मादुक्तप्रमाणमन्तरं प्राप्यते । "देसूण" इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कवज्रर्षभनाराचसंहननौदारिकद्विकरूपाणामेकादशप्रकृतीनां बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरं देशोनपूर्वकोटिवर्षमानं बोद्धव्यम् । घटना पुनरत्र कषायाष्टकस्य पुरुषवेदमार्गणावत् कर्तव्या, अत्र युगलिकानामप्रवेशेन प्रथमसंहननौदारिकद्विकप्रकृतीनां भावना तु द्वितीयकषायवद् देशविरत्यादिकालेन कर्मभूमिजतिर्यग्मनुष्यानाश्रित्य कर्तव्या । "ओघव्व" इत्यादि, आहारकद्विकस्य 'णिरयसुरविउव्वदुग उच्चणरदुग' इत्यनेन कथितानां नरकद्विकादीनां नवानां प्रकृतीनां च बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरमोघवद् बोध्यम्, तदेवम्-आहारकद्विकस्य देशोनापार्धपुद्गलपरावर्तप्रमाणम्, नरकद्विकदेव-

द्विकवैक्रियद्विकप्रकृतीनामसङ्ख्येयपुद्गलपरावर्तप्रमाणम्, उच्चैर्गोत्रमनुष्यद्विकप्रकृतीनां चाऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमितसमयप्रमाणम्, भावना पुनरत्रौघवद् विधेया । ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धसत्कमन्तरं नास्ति, मार्गणायामस्यां जघन्यान्तरप्रस्तावे तासामन्तरस्य निषिद्धत्वात् । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतित्रसदशकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासजिननामरूपाणां षड्विंशत्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धस्य गुर्वन्तरं 'सेसासु मुहुत्तंतो' इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तात्मकं विज्ञेयम् । जिननाम्न इयत्प्रमाणमन्तरं नरकाभिमुखस्य मिथ्यात्वावस्थायामबन्धं प्रतीत्याऽत्र वेदयितव्यम्, शेषप्रकृतीनां तु परावर्तमानत्वमाश्रित्य ॥२५२-२५३॥

अथ मतिज्ञानप्रभृतिमार्गणासूत्तरप्रकृतीनां बन्धसत्कमुत्कृष्टमन्तरमभिधित्सुराह

मज्झऽट्ठकसायाण ओघव्व तिणाणओहिसम्मेसु ।
पंचण्ह णराईणं कोडी पुव्वाण णायव्वं ॥२५४॥
देवविउव्वाहारगदुगाण तेत्तीससागराऽब्भहिया ।
उअ जेट्ठा कायठिई देसूणाहारजुगलस्स ॥२५५॥

(प्रे०) "मज्झ" इत्यादि, मतिज्ञानश्रुतज्ञानाऽवधिज्ञानाऽवधिदर्शनसम्यक्त्वौघलक्षणासु पञ्चमार्गणास्वप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कलक्षणस्य मध्यकषायाष्टकस्य बन्धसत्कं गुर्वन्तरमोघवदधिगन्तव्यम् । तत्तु देशोनपूर्वकोटिवर्षरूपं ज्ञातव्यम् । "पंचण्ह" इत्यादि, अधिकृतमार्गणासु 'णरदुगवइरुरलुवंगाणि ॥ उरल' इति संग्रहगाथावचनोक्तस्य मनुष्यद्विकादिप्रकृतिपञ्चकस्य बन्धसत्कं ज्येष्ठमन्तरं पूर्वकोटिवर्षप्रमाणमस्ति, मार्गणास्वासु वर्तमानस्य पूर्वकोटिवर्षायुष्मतः सम्यग्दृष्टिमनुष्यस्य प्रथमत आरभ्य यावदायुःपूर्णतां देवप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वेन प्रकृतीनामासामबन्धात् । "देव" इत्यादि, देवद्विकवैक्रियद्विका-ऽऽहारकद्विकरूपाणां षण्णां प्रकृतीनां बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरं साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमितं विद्यते, तदेवम्—मार्गणास्वासु वर्तमानः कश्चिदुपशमश्रेणेरारोहकोऽपूर्वकरणगुणस्थानकषष्ठभागे प्रकृतीनामासां बन्धविच्छेदमाधायोपशमश्रेणेरन्ततो गत्वा पुनः प्रपतन्नेतत्प्रकृतिबन्धात्प्राक्समये कालं कृत्वाऽनुत्तरेषूत्पन्नः सन् त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणस्वोत्कृष्टायुःसमाप्तिं यावन्नैताः प्रकृतीर्बध्नाति ततश्च च्युत्वा मनुष्यत्वेनोत्पद्य प्रथमसमयतः पुनर्देवद्विकवैक्रियद्विकयोर्बन्धं करोति, आहारकद्विकस्य तु पूर्वकोट्यायुष्कप्रान्ते संयमं प्राप्य बन्धं करोति, इत्थं तं जीवमाश्रित्यैतावदन्तरमुपलभ्यते । "उअ" इत्यादिना आहारकद्विकविषये मतान्तरं दर्शयति, तच्चैवम्—मतिज्ञानादिमार्गणासु मतान्तरेणाऽऽहारकद्विकबन्धसम्बन्धि प्रकृष्टमन्तरं देशोनं साधिकषट्षष्टिसागरोपमप्रमितमतिज्ञानादिमार्गणाप्रायोग्यप्रकृष्टकायस्थितिप्रमाणं विज्ञेयम्, मार्गणास्वासु वर्तमानस्य कस्यचिज्जीवस्याहारकद्विकबन्धप्रायोग्यं पौर्व्यं पाश्चात्यं चान्तर्मुहूर्तकालं

मुक्त्वा मध्यकाले प्राधान्येनाविरतसम्यक्त्वावस्थायामवस्थानेनाहारकद्विकबन्धाभावात् । तथा ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सावर्णचतुष्कतैजसकार्मणशरीरद्वयागुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनाम्, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतित्रसदशकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराघातोच्छ्वास—तीर्थकृन्नामोच्चैर्गोत्रस्वरूपाणां सप्तविंशत्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च बन्धसत्कमुत्कृष्टमन्तरं 'सेसासु मुहुत्तंतो' इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणमवसेयम् । भावना पुनरत्र यथायोगं ध्रुवबन्धिनीनां जिननाम्नश्चोपशमश्रेणिमाश्रित्य, शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च परावर्तमानत्वेन बध्यमानत्वमाश्रित्य ज्ञातव्या । ॥२५४-५॥

अथाऽज्ञानादिमार्गणास्वन्यप्रकृतीनां बन्धस्य गुर्वन्तरं दर्शयितुमना आह

देसूणं पल्लतिग अण्णाणदुगे अभवियमिच्छेसुं ।
सोलसणपुमाईणं तहा उरालदुगवइराण ॥२५६॥
तिरियाइतिगस्स अहियइगतीसुदही णवायवाईणं ।
साहियतेत्तीसुदही णवणिरयाईण ओघव्व ॥२५७॥

(प्रे०) "देसूणं" इत्यादि, मत्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽभव्यमिथ्यात्वलक्षणे मार्गणाचतुष्टये 'णपुमा । संघयणागिइपणगं दुहगतिग कुखगई णीअ ॥ इति संग्रहगाथांशेषु कथितानां षोडशानां प्रकृतीनां तथौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननरूपस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धसत्कमन्तरं प्रकृष्टतो देशोनं पल्योपमत्रयम्, मार्गणास्वासु वर्तमानेन युगलिकेन प्रकृतीनामासामपर्याप्तावस्थासत्काऽन्तर्मुहूर्तन्यूनपल्योपमत्रयकालपर्यन्तमबध्यमानत्वात्, अपर्याप्तावस्थायां तु ताः प्रकृतयोऽपि बध्यन्ते, अतोऽपर्याप्तावस्थासत्काऽन्तर्मुहूर्तस्य वर्जनं कृतम् । "तिरियाइ" इत्यादि, तिर्यग्द्विकोद्योतरूपस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धसत्कमुत्कृष्टतोऽन्तरं साधिकैकत्रिंशत्सागरोपमाणि, तदित्थम्—मार्गणास्वासु वर्तमानो बद्धैकत्रिंशत्सागरोपमस्थितिकदेवायुष्कः कश्चिन्मनुष्यः स्वायुषोऽन्तिमेऽन्तर्मुहूर्ते तिर्यग्द्विकोद्योतरूपस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धव्यावृत्तिं विधाय देवप्रायोग्यप्रकृतीर्बध्नाति ततश्च कालं कृत्वा नवमग्रैवेयके सुरतया जातः सन्नेकत्रिंशत्सागरोपमप्रमाणस्वायुरुत्कृष्टस्थितिपर्यन्तं मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वेन तिर्यग्द्विकादिप्रकृतित्रयं न बध्नाति, ततोऽपि प्रच्युत्य मनुष्यभवे चोत्पद्य प्रथमाऽन्तर्मुहूर्ते नैतत्प्रकृतित्रयं बध्नाति, अतोऽनया रीत्याऽभिहितप्रमाणमन्तरं प्राप्तं भवति। "णवायवाईणं" इत्यादि, आयवथावरएगिंदिसुहुमविगविगला । इति संग्रहगाथाशकलेषु भणितानामातपादीनां नवानां प्रकृतीनां बन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, मार्गणास्वासु वर्तमानेन केनचिज्जीवेन सप्तमनरके त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमकालपर्यन्तं तथा सप्तमनरकभवात्पौर्व्ये पाश्चात्ये चाऽन्तर्मुहूर्ते प्रकृतीनामासामबध्यमानत्वात् । "णवणिरयाईण" इत्यादि; 'णिरयसुरविउव्वदुग वइणरदुग' इति संग्रहगाथांशेषु कथितानां नरकद्विकप्रभृतीनां नवानां प्रकृतीनां बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरमोघवदवसेयम्, तद्यथा—नरक-

द्विकसुरद्विकवैक्रियद्विकरूपाणां षण्णां प्रकृतीनामसंख्येयपुद्गलपरावर्तप्रमाणम् , मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रप्रकृतित्रयस्य चाऽसंख्येयलोका-ऽऽकाशप्रदेशप्रमितसमयप्रमाणमस्ति, अत्र भावनौघवत्कार्या । शेषाणां ज्ञानावरणादिसप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धान्तरं नास्ति, मिथ्यात्वस्य द्विर्बन्धाभावेन शेषाणां सततं बध्यमानत्वात् । शेषवेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषस्त्रीवेदद्वयपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानशुभखगतित्रसदशकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासरूपाणां च षड्विंशत्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धसत्कमुत्कृष्टमन्तरं 'सेसासु मुहुत्तंतो' इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तरूपमवसेयम् , परावर्तमानत्वेन बध्यमानत्वात् ॥२५६ ७॥

इदानीमयतमार्गणायामचक्षुर्भव्यमार्गणयोश्चोत्तरप्रकृतीनां बन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमुपदर्शयन्नाह

अजए तेत्तीसुदही णेयं मिच्छाइअट्ठवीसाए ।
देसूणाऽब्भहिया उण होइ णवण्हायवाईणं ॥२५८॥
बारसणिरयाईणं ओघव्व भवे अचक्खुभवियेसुं ।
आहारदुगस्स तहा तइअकसायाइसत्तवण्णाए॥२५९॥ (गीतिः)

(प्रे०) "अजए" इत्यादि, असंयममार्गणायाम् 'मिच्छ थीणद्धितिगमणचउणथीणपुमा । संघयणागिइपणगं दुहगतिग कुखगई णीअं ॥ तिरियदुगुज्जोअ' इति संग्रहगाथावयवेषु प्रतिपादितानां मिथ्यात्वमोहनीयादीनामष्टाविंशतिप्रकृतीनां प्रकृष्टं बन्धसत्कमन्तरं देशोनत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणं ज्ञेयम् , एतन्मार्गणावर्तिना सप्तमनरकगतेन केनचिज्जन्तुनाऽपर्याप्तावस्थामतिक्रम्य पर्याप्तावस्थायां लब्धसम्यक्त्वेन भवद्विचरमान्तर्मुहूर्तं यावत्सम्यक्त्वितयाऽवस्थानेन प्रकृतीनामासां तावत्कालमबध्यमानत्वात् । "अब्भहिया"इत्यादि, 'आयवथावरएगिदिसुहुमतिगविगला' इति संग्रहगाथांशेषु भावितानामातपनामकर्मादीनां नवानां प्रकृतीनां बन्धसत्कमुत्कृष्टतोऽन्तरं साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणं ज्ञातव्यम् , भावना पुनरत्र मत्यज्ञानादिमार्गणावत् कार्या । "बारस" इत्यादि, नरकद्विकसुरद्विकवैक्रियद्विकरूपस्य वैक्रियषट्कस्य बन्धसम्बन्धि गुर्वन्तरं प्रकृतमार्गणायामसंख्यपुद्गलपरावर्तप्रमितम् , मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रप्रकृतीनामसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणसमयप्रमितम्, वज्रर्षभनाराचसंहननौदारिकद्विकलक्षणप्रकृतित्रयस्य च साधिकपल्योपमत्रयप्रमाणमस्ति, भावना पुनरत्रौघवद् विभावनीया । ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्काऽप्रत्याख्यानावरणादिद्वादशकषायभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धस्याऽन्तरं नास्ति, अनवरतं बध्यमानत्वादत्र तासाम् । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानशुभखगतित्रसदशकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासजिननामलक्षणानां शेषषड्विंशत्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां 'सेसासु मुहुत्तंतो' इत्यादितोऽन्तर्मुहूर्तरूपं बन्धसत्कं प्रकृष्टमन्तरं विज्ञेयम् , इह जिननाम्नो बन्धान्तरं नपुंसकमार्गणायां दर्शितप्रकारेण

ज्ञेयम् । "अचक्खु" इत्यादि, "ओघव्व भवे" इति पदद्वयमत्रापि घण्टालालान्यायेन सम्बन्धनीयम् । अचक्षुर्भव्यमार्गणयोराहारकद्विकस्य 'तइअकसाया'। दुइअकसाया मिच्छ थीणद्धितिगमण-चउगथीणपुमा । सघयणागिइपणगं दुहगतिग कुखगई नीअं ॥ तिरियदुगुज्जोआय थावरएगिंदिसुहुमतिग-विगला । णिरयसुरविउव्वदुग उरलदुगवइररलुवंगाणि ॥ उरल" इति संग्रहगाथाशकलेषु कथितानां सप्तपञ्चाशत्प्रकृतीनां चेत्येकोनषष्टिप्रकृतीनां प्रकृष्टं बन्धसत्कमन्तरमोघवद् भवति, तदेवम्-मिथ्यात्वमोहनीयप्रकृतेरारतो नीचैर्गोत्रकर्मपर्यन्तानां पञ्चविंशतिप्रकृतीनां द्वात्रिंशदधिकशतसागरोपमप्रमाणम्, मध्यकषायाष्टकस्य देशोनपूर्वकोटिवर्षाणि, वैक्रियषट्कस्याऽसंख्येयपुद्गलपरावर्तप्रमाणम्, तिर्यग्द्विकोद्योतप्रकृतीनां त्रिषष्ट्यधिकसागरोपमशतम्, मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रप्रकृतीनामसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणसमयमितम्, औदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननप्रकृतीनां साधिकपल्योपमत्रयम्, आतपादिप्रकृतिनवकस्य पञ्चाशीत्यधिकसागरोपमशतम्, आहारकद्विकस्य चाऽपार्धपुद्गलपरावर्तमानम् । भावना पुनरोघवद् विधेया । ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनाम्, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानशुभखगतित्रसदशकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासजिननामरूपाणां षड्विंशत्यध्रुवबन्धिनीनां च प्रकृष्टं बन्धसत्कमन्तरं 'सेसाण मुहुत्तंतो' इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तरूपमवसेयम्, भावना प्रागवद् भावनीया । इदमत्राऽवधेयम्-अनयोर्मार्गणयोः सर्वासां प्रकृतीनामन्तरस्य सर्वथौघवत्कथने कोऽपि दोषो नास्ति, तथाऽपि 'सेसाण मुहुत्तंतो' इत्यादिना शेषप्रकृतीनामत्रान्तर्मुहूर्तप्रमाणान्तरस्य प्राप्यमाणत्वेनैकोनषष्टिप्रकृतीनामेव प्रकृष्टमन्तरमोघवदतिदिष्टमिति ॥२५८-९॥

साम्प्रतं लेश्यामार्गणासूत्तरप्रकृतीनां बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरं प्रदर्शयन्नादौ तावत्कृष्णलेश्यामार्गणायां तदाह

किण्हाअ अट्ठवीसामिच्छाईण तह णरदुगुच्चाणं ।
ऊणा गुरुकायठिई विउव्वदुगस्स जलहिदुवीसा ॥२६०॥
किण्हाए णीलाए हवेज्ज सुरदुगतिआयवाईणं ।
पल्लासंखियभागो भणन्ति अण्णे मुहुत्तंतो ॥२६१॥

(प्रे०) "किण्हाअ" इत्यादि, कृष्णलेश्यामार्गणायाम् 'मिच्छं थीणद्धितिगमणचउगथीणपुमा । सघयणागिइपणगं दुहगतिग कुखगई णीअं ॥ तिरियदुगुज्जोअ' इति संग्रहगाथाशकलेषूदितानां मिथ्यात्वमोहनीयादीनामष्टाविंशतिप्रकृतीनां मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रप्रकृतीनाञ्च बन्धसत्कं गुर्वन्तरं मार्गणाया अस्या देशोनगुरुकायस्थितिरस्ति, इदञ्चान्तरमुत्कृष्टस्थितिकसप्तमनारकमाश्रित्य ज्ञेयम् भावनाऽपि सप्तमनरकमार्गणावत्कार्या । "विउव्वदुगस्स" इत्यादि, वैक्रियद्विकस्य बन्धसत्कं प्रकृष्टमन्तरं द्वाविंशतिसागरोपमाणि, तदित्थम्-षष्ठं नरकं जिगमिषुः स्वायुषः प्रान्तेऽन्तर्मुहूर्ते मार्गणा-

यामस्यां प्रविष्टः कश्चित्तिर्यङ् मनुष्यो वा वैक्रियद्विकं बध्नाति, ततश्च कालं कृत्वा षष्ठनरके जातस्य तस्यैतत्प्रकृतिद्वयबन्धो न जायते यावद् द्वाविंशतिसागरोपमप्रमाणस्वायुषश्चरममन्तर्मुहूर्तमवतिष्ठते तस्मिंश्चाऽन्तर्मुहूर्ते सम्यक्त्वमवाप्य नरकान्निर्गतोऽसौ मनुष्यत्वेनोत्पद्यते तदाऽऽद्यसमयादेव वैक्रियद्विकं बध्नाति, तस्मात्षष्ठनारकजीवमाश्रित्य मार्गणायामेतस्यामुक्तप्रमाणमन्तरं प्राप्यते। न च सप्तमनारकमाश्रित्य निरुक्तप्रकृतिद्वयस्यान्तरं देशोनकायस्थितिप्रमाणं कथं नोक्तम्, उत्कृष्टान्तरस्य प्रस्तावादिति वाच्यम्, सप्तमनरकादुद्वृत्तस्य सम्यक्त्वाभावेनाऽपर्याप्तावस्थायां वैक्रियद्विकस्याबध्यमानत्वात्पर्याप्तावस्थायां बन्धभावेऽपि ततः प्रागेव मार्गणाया विच्छेदाच्च। "किण्हाए" इत्यादि, कृष्णनीललेश्यामार्गणाद्वये सुरद्विकाऽऽतपस्थावरैकेन्द्रियजातिरूपाणां पञ्चप्रकृतीनां बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरं पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणमस्ति, भावनाविधिस्त्वेवम्—अनयोर्मार्गणयोस्तिर्यङ् मनुष्यो वा सुरद्विकं बद्ध्वा ततश्च कालं कृत्वा भवनपतिषु व्यन्तरेषु वा देवत्वेन जायते, तदा तत्र भवप्रत्ययेन तावत्कालं सुरद्विकं नैव बध्नाति ततः पुनः सम्यक्त्वेन सह च्युत्वा मनुष्यत्वेन समुत्पद्यते तदा तद्बन्धः पुनः प्रारभत इत्येवं रीत्योक्तमानमन्तरं सुरद्विकस्योपलभ्यते। एतन्मार्गणाद्वये वर्तमानो भवनपतिदेवो व्यन्तरदेवो वा स्वोत्पत्तेरन्तर्मुहूर्तादनु सम्यक्त्वमवाप्याऽऽतपस्थावरैकेन्द्रियजातिरूपं प्रकृतित्रयं न बध्नाति, भवान्तिमाऽन्तर्मुहूर्ते भूयोऽपि मिथ्यात्वमवाप्य बध्नाति, तस्मादुक्तप्रमाणमन्तरमस्य प्रकृतित्रयस्योपलब्धं भवति। न च भवनपतिव्यन्तरदेवेष्वधिकस्थितेर्लाभेऽपि प्रकृतप्रकृतिबन्धस्य प्रकृष्टमन्तरं पल्योपमाऽसंख्येयभागादधिकं कथं नोक्तमिति वाच्यम्, अशुभलेश्यावतां पल्योपमाऽसंख्येयभागादधिकस्थितिकेष्वनुत्पादात्। 'अण्णे' इत्यादि, अन्ये पुनः प्रकृतसुरद्विकप्रभृतिप्रकृतीनां बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं वदन्ति, यतोऽन्ये देवेषु पर्याप्तावस्थायामशुभलेश्यां न स्वीकुर्वन्ति, अतोऽन्येषां मतेन तिर्यग्जीवं मनुष्यं वाऽऽश्रित्य द्वयोर्बन्धयोरन्तरालेऽन्तर्मुहूर्तमानमेवाऽन्तरमुत्कृष्टतया प्राप्यते। ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्काप्रत्याख्यानावरणादिद्वादशकषायभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धस्यान्तरं नास्ति मार्गणायामस्यां तासामनवरतं बध्यमानत्वात्। जिननाम्नोऽप्यन्तरं नास्ति जघन्यान्तरप्रस्तावे निषिद्धत्वात्। वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदनरकगतिद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकद्विकसमचतुरस्रसंस्थानवज्रर्षभनाराचसंहनननरकानुपूर्वीसुखगतित्रसदशकसूक्ष्मत्रिकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासरूपाणां षट्त्रिंशदध्रुवबन्धिशेषप्रकृतीनां बन्धस्योत्कृष्टतोऽन्तरं कृष्णायां 'सेसासु मुहुत्तंतो' इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तरूपमवसातव्यम् ॥२६०-१॥

णीलाए काऊअ य हवेज्ज देसूणअट्ठकायठिई ।
वेउव्वदुगस्स तहा मिच्छाइगअट्ठवीसाए ॥२६२॥

किण्हव्व जाणियव्वं काऊए तिण्ह आयवाईणं
खइअणिरयजेट्ठट्ठिइमाणं णेय सुरदुगस्स ॥२६३॥

(प्रे०) 'णीलाए' इत्यादि, नीललेश्यामार्गणायां कापोतलेश्यामार्गणायां च वैक्रियद्विकस्य तथा, 'मिच्छ थीणद्धिनिगमणचउगथीणपुमा । सघयणागिइपणग दुहगतिगं कुखगई णीअ ॥ तिरियदुगुज्जोअ' इति संग्रहगाथाशकलेषु कथितानां मिथ्यात्वमोहनीयादीनामष्टाविंशतिप्रकृतीनां बन्धसम्बन्धि गुर्वन्तरं देशोनज्येष्ठकायस्थितिप्रमाणं भवति, भावना पुनरेवम्-पञ्चमनरकाभिमुखः स्वायुषः प्रान्तेऽन्तर्मुहूर्ते नीललेश्यामार्गणायां प्राप्तप्रवेशः कश्चित् तिर्यङ्मनुष्यो वा वैक्रियद्विकं बध्नाति मृत्वा चासौ पञ्चमनरक उत्पद्य पल्योपमासंख्येयभागाधिकदशसागरोपमात्मकस्वायुरन्तं मतान्तरेण पुनः सप्तदशसागरोपमात्मकस्वायुरन्तं यावत् नेतत्प्रकृतिद्वयं बध्नाति, तत्रैव सम्यक्त्वमवाप्य ततश्च च्युत्वा मनुष्यत्वेनोत्पन्नः सन् पुनरपि वैक्रियद्विकं बध्नाति, अतस्तावदन्तरमत्र प्राप्यते, कापोतलेश्यामार्गणाया तृतीयनरकस्थं जीवमाश्रित्य वैक्रियद्विकबन्धसत्काऽन्तरस्यैवमेव भावना विधातव्या । नीललेश्यामार्गणावर्ती कश्चित्पञ्चमनारकजीवोऽपर्याप्तावस्थायां मिथ्यात्वोदयसद्भावेन मिथ्यात्वमोहनीयप्रमुखाष्टाविंशतिप्रकृतीर्बध्नाति, पर्याप्तदशायां शीघ्रं संजातसम्यग्दृष्टिः स द्विचरमान्तर्मुहूर्तं यावद् न बध्नाति, चरमाऽन्तर्मुहूर्ते च मिथ्यात्वमवाप्य बध्नाति अतः प्रकृतीनामासामुक्तप्रमाणमन्तरमत्रोपलभ्यं भवति, एवमेव कापोतलेश्यामार्गणायां तृतीयनारकजीवमाश्रित्य स्वप्रायोग्यमुक्तप्रमाणमन्तरं प्रकृतीनामासां विचारणीयम् , देशोनत्वमत्र वैक्रियद्विकापेक्षया मिथ्यात्वमोहनीयाद्यष्टाविंशतिप्रकृतीनामधिकमवसातव्यम् । 'किण्हव्व' इत्यादि, कापोतलेश्यामार्गणायामेकेन्द्रियस्थावरातपप्रकृतित्रयस्य बन्धसत्कमुत्कृष्टमन्तरं कृष्णलेश्यामार्गणावदस्ति, तच्च पल्योपमाऽसंख्येयभागमानमिति । हेतुः पुनरत्र कृष्णलेश्यामार्गणावद् विभावनीयः । 'खइअ' इत्यादि, सुरद्विकस्य बन्धसत्कमुत्कृष्टमन्तरं क्षायिकसम्यग्दृष्टिनारकस्य प्रकृष्टभवस्थितिप्रमाणं ज्ञेयम् ; कथमिति चेद् उच्यते-अकृतकरणजीवः क्षयोपशमसम्यक्त्वं गृहीत्वा नरकेषु नैवोत्पद्यते, प्रस्तुतलेश्यागतमिथ्यादृष्टिस्तूत्पद्यते किन्तु नरकाभिमुखः स सुरद्विकं नैव बध्नाति, अतः क्षयोपशमसम्यग्दृष्टेर्मिथ्यादृष्टेर्वाऽपेक्षया प्रकृतमन्तरं नैव प्राप्यते, तस्मात्क्षायिकसम्यग्दृष्टिनरकापेक्षया प्रकृतमन्तरमुपपादनीयम् तद्यथा-कश्चित्क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्मनुष्यो भवचरमसमयं यावद् देवद्विकं बद्ध्वा कालं च कृत्वा नरके समुत्पन्नः सन् भवप्रत्ययेन स्वोत्कृष्टकालपर्यन्तं न बध्नाति, ततश्च च्युत्वा पुनरपि मनुष्यत्वेन जातः सन् देवद्विकबन्धं प्रारभत इत्येवंरीत्या देवद्विकस्य प्रकृष्टमन्तरं क्षायिकसम्यग्दृष्टिनारकप्रकृष्टभवस्थितिप्रमाणमुपलभ्यं भवति । क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामुत्पाद एकेन मतेन प्रथमं नरकं यावत् , अन्यमतेन तु तृतीयं नरकं यावद्भवति, तस्मात्तन्मतद्वयसंग्रहार्थमुक्तं 'खइअ' इत्यादि । नीलकापोतयोर्ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्काऽप्रत्याख्याना-

वरणादिद्वादशकषायभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकोनचत्वारिंशत्शेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जिननाम्नश्च मार्गणयोरनयोर्बन्धसत्कमन्तरं नास्ति। तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदनरकमनुष्यगतिद्वयद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकद्विकसमचतुरस्रसंस्थानवज्रर्षभनाराचसंहनननरकमनुष्यानुपूर्वीद्वयसुखगतित्रसदशकसूक्ष्मत्रिकाऽस्थिराऽशुभाऽ--यशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासनामोच्चैर्गोत्ररूपाणामेकोनचत्वारिंशत्शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां 'सेसासु मुहुत्ततो' इत्यादिना बन्धसत्कमुत्कृष्टमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं वेदयितव्यम् ॥२६३॥

अथ तेजःपद्मलेश्यामार्गणाद्वये प्राह

तेउपउमासु कमसो मिच्छाईणऽत्थि एगतीसाए।
अडवीसाए तह सुरविउवदुगाणूणजेट्ठठिई ॥२६४॥

(प्रे०) 'तेउपउमासु' इत्यादि, तेजोलेश्यामार्गणायां 'मिच्छ थीणद्धितिगमणचउगथीणपुमा। सघयणागिइपणग दुहगतिगं कुखगई णीअं ॥ तिरियदुगुज्जोआयवथावरएगिंदि' इति संग्रहगाथांशेषु भणितानामेकत्रिंशन्मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृतीनां सुरद्विकवैक्रियद्विकलक्षणस्य प्रकृतिचतुष्कस्य च बन्धसत्कमन्तरं प्रकृष्टतया मार्गणाया अस्या देशोनप्रकृष्टकायस्थितिरस्ति, अत्रापि मार्गणाया अस्याः प्रकृष्टकायस्थितिः साधिकसागरोपमद्वयप्रमाणा विद्यते, एतावदन्तरमीशानदेवलोकवासिनं देवं प्रतीत्य प्रत्येतव्यम्, तद्यथा–मार्गणायामस्यां वर्तमानो मिथ्यादृष्टिस्तिर्यङ् मनुष्यो वेशानदेवलोके जातः सन्नपर्याप्तदशायां मिथ्यात्वोदयसत्त्वेन मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृत्येकत्रिंशत्प्रकृतीर्बध्नाति, पर्याप्तदशायां च शीघ्रं सम्यक्त्वं लब्ध्वा न बध्नाति, भवचरमाऽन्तर्मुहूर्ते च भूयोऽपि मिथ्यात्वमवाप्य बध्नाति, अतोऽत्र साधिकसागरोपमद्वयप्रमाणमन्तरं प्राप्यते। मार्गणायामस्यां वर्तमानः कश्चित्सम्यग्दृष्टिर्मनुष्यः स्वभवचरमसमयं यावत्सुरद्विकवैक्रियद्विकलक्षणं प्रकृतिचतुष्कं बध्नाति ततश्च मृत्युमवेत्य सातिरेकसागरोपमद्वयप्रमाणस्थितिकतयेशानदेवलोके संजातोऽसौ स्वायुर्निष्ठां यावन्नैव बध्नाति ततोऽपि सम्यक्त्वेन साकं च्युत्वा मनुष्यत्वेनोत्पन्नः सन् पुनरपि तद् बध्नाति तदा तादृशमुक्तप्रमाणमन्तरं प्राप्तं भवति। ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्काऽप्रत्याख्यानावरणादिद्वादशकषायभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जिननामाऽऽहारकद्विकौदारिकशरीरपराघातोच्छ्वासबादरत्रिकरूपाणां नवानामध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च मार्गणायामस्यामन्तरं नास्ति, कासाञ्चित्प्रकृतीनामनवरतं बध्यमानत्वात्, कासाञ्चित्पुनर्द्विर्बन्धाभावात्। वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदमनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकाङ्गोपाङ्गसमचतुरस्रसंस्थानवज्रर्षभनाराचसंहननमनुष्यानुपूर्वीशुभखगतित्रस--स्थिरषट्काऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिनामोच्चैर्गोत्रलक्षणानां पञ्चविंशतिशेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धसत्कमुत्कृष्टमन्तरं 'सेसासु मुहुत्ततो' इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तात्मकं बोद्धव्यम्। पद्मलेश्यामार्गणायां 'मिच्छ

थीणद्धितिगमणचउगथीणपुमा । संघयणागिइपणगं दुहगतिगं कुखगई णीअं ॥तिरियदुगुज्जोअ' इति संग्रहगाथावयवेष्वभिहितानां मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतीनामष्टाविंशतिप्रकृतीनां सुरद्विकवैक्रियद्विकरूपस्य प्रकृतिचतुष्कस्य च बन्धसत्कमुत्कृष्टमन्तरं देशोनाष्टादशसागरोपमप्रमाणस्वोत्कृष्टकायस्थितिप्रमाणम्, मतान्तरेण देशोनदशसागरोपमप्रमाणस्वोत्कृष्टकायस्थितिप्रमाणम्, सुरद्विकवैक्रियद्विकप्रकृतीनां परिपूर्णाऽष्टादशसागरोपममितं दशसागरोपमप्रमितं वा ज्ञेयम्, भावना पुनरत्रैकेन मतेन सहस्रारदेवलोकवासिदेवमाश्रित्यान्येन मतेन च ब्रह्मदेवलोकवासिदेवमाश्रित्य तेजोलेश्यामार्गणावत्कार्या । मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृत्यष्टकं विहाय शेषाणामेकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जिननामाहारकद्विकौदारिकद्विकपराघातोच्छ्वासपञ्चेन्द्रियजातित्रसचतुष्काणां च बन्धसत्कमन्तरं नास्ति, तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदमनुष्यगतिवज्रर्षभनाराचसंहननसमचतुरस्रसंस्थानमनुष्यानुपूर्वीसुखगतिस्थिरषट्काऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिनामोच्चैर्गोत्रलक्षणानां द्वाविंशतिशेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरं 'सेसाणु मुहुत्ततो' इत्यादितोऽन्तर्मुहूर्तं ज्ञातव्यम् ।।२६४।।

अथ शुक्ललेश्यामार्गणायामाह

सुक्काऊणिगतीसा अयरा मिच्छाइपंचवीसाए ।
देवविउव्वदुगाणं देसूणा जेट्ठकायठिई ॥२६५॥

(प्रे०) 'सुक्का' इत्यादि, शुक्ललेश्यामार्गणायां 'मिच्छं थीणद्धितिगमणचउगथीणपुमा । संघयणागिइपणगं दुहगतिगं कुखगई णीअं ॥ इति संग्रहगाथावयवेषूदितानां पञ्चविंशतिप्रकृतीनां बन्धसत्कं गुर्वन्तरं देशोनैकत्रिंशदब्धिप्रमितं भवति, मार्गणायामस्यां वर्तमानेन प्रकृष्टायुष्मता नवमग्रैवेयकदेवेन प्रथमचरमाऽन्तर्मुहूर्तद्वयकालं विहायाऽन्तराले सम्यक्त्वदशायां प्रकृतीनामासामबध्यमानत्वात् । 'देवविउव्व' इत्यादि, देवद्विकवैक्रियद्विकरूपस्य प्रकृतिचतुष्कस्य बन्धसत्कमन्तरं देशोनान्तर्मुहूर्ताधिकत्रयस्त्रिंशदतरप्रमाणस्वोत्कृष्टकायस्थितिप्रमितं ज्ञेयम्, तदेवम्–एतन्मार्गणावर्ती कश्चिन्मनुष्यो भवप्रान्ताऽन्तर्मुहूर्ते शेषे सत्युपशमश्रेणिमारुह्यापूर्वकरणषष्ठभागान्त एतत्प्रकृतिचतुष्टयस्याऽबन्धं कृत्वोपशान्तमोहगुणस्थानकं स्पृष्ट्वा क्रमेण पतितः पुनर्बन्धप्राक्समये कालं कृत्वाऽनुत्तरदेवलोकेषु देवत्वेनोत्पद्यते, तत्रापि त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमितस्वायुस्थितिं यावन्न तद् बध्नाति ततश्च पुनर्मनुष्यत्वेन जातोऽसौ भवप्रथमसमयादेव बध्नाति, तदा तावत्प्रमाणमन्तरं प्राप्यते । अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कनरद्विकौदारिकद्विकप्रकृतीनां मार्गणायामस्यां बन्धस्याऽन्तरं नास्ति, द्विर्बन्धाभावात् । ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकत्रिंशच्छेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनाम्, तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजात्याहारकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतित्रसदशकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासतीर्थंकरनामोच्चैर्गोत्ररूपाणां च

त्रिंशच्छेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरम् 'सेसासु मुहुत्ततो' इत्यादितोऽन्तर्मुहूर्तस्वरूपमवसेयम्, तदप्यत्र कासाञ्चित्प्रकृतीनामुपशमश्रेणिमाश्रित्य कासाञ्चित्प्रकृतीनां परावर्तमानत्वमाश्रित्य प्राग्वदुपपादनीयम् ॥२६५॥

अथ क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायामुत्तरप्रकृतिबन्धस्य गुरुभूतमन्तरं प्रतिपाद्यते

मज्झऽट्ठकसायाणं खइए ओघव्व होइ देसूणा ।
गुरुकायठिई णेयं सुरविउवाहारजुगलाण ॥२६६॥

(प्रे०) 'मज्झ' इत्यादि, क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायामप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कलक्षणस्य कषायाष्टकस्य बन्धसत्कमुत्कृष्टतोऽन्तरमोघवद् भवति, निरूपितं च तदोघतो निरूपणावसरे देशोनपूर्वकोटित्रयप्रमितम्, भावनाऽपि तद्वदेव भावनीया । 'देसूणा' इत्यादि, सुरद्विकवैक्रियद्विकलक्षणस्य प्रकृतिचतुष्कस्याऽऽहारकद्विकस्य च बन्धसत्कमुत्कृष्टतोऽन्तरं देशोनमाधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणस्योत्कृष्टकायस्थितिप्रमितं भवति, उपपादनीयं चैतदनुत्तरदेवभवमवलम्ब्य यथागमं स्वधिया । मनुष्यपञ्चकस्यान्तरं नास्ति, पूर्वं निषिद्धत्वात् । ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकलक्षणानामेकत्रिंशच्छेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनाम्, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानशुभखगतित्रसदशकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासजिननामोच्चैर्गोत्ररूपाणां सप्तविंशतिशेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धस्य गुर्वन्तरं 'सेसासु मुहुत्ततो' इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणमवसेयम्, उपपादना पुनरत्र प्राग्वद् विज्ञेया ॥२६६॥

साम्प्रतमसंज्ञिमार्गणायामुत्तरप्रकृतिबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं कथ्यते—

अमणे णिरयाईण छण्हं हवए असंखपरिअट्टा ।
लोगा असंखिया खलु होइ णरदुगुच्चगोआण ॥२६७॥

(प्रे०) 'अमणो' इत्यादि, असंज्ञिमार्गणायां 'णिरयसुरविउव्वदुग' इतिसंग्रहगाथावयवेषूदितानां नरकद्विकादीनां षण्णां प्रकृतीनां बन्धस्य गुर्वन्तरमसंख्येयपुद्गलपरावर्ताः, मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रप्रकृतीनामसंख्येयलोकाकाशगतप्रदेशप्रमाणसमयप्रमाणमन्तरं भवति, उपपादनं चैतस्यात्रौघोक्तभावनावत्कार्यम् । ज्ञानावरणीयप्रभृतीनां सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धस्याऽन्तरं नास्ति, मार्गणायामस्यां संततं तासां बध्यमानत्वात् । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्गतिजातिपञ्चकौदारिकद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कतिर्यगानुपूर्वीखगतिद्विकत्रसदशकस्थावरदशकाऽऽतपोद्योतपराघातोच्छ्वासनीचैर्गोत्ररूपाणां सप्तपञ्चाशच्छेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां पुनर्बन्धसत्कमुत्कृष्टमन्तरं 'सेसासु मुहुत्ततो' इत्यादितोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणमवसातव्यम्, कासाञ्चित्प्रकृतीनामध्रुवबन्धित्वात् कासाञ्चित्प्रकृतीनां च परावर्तमानत्वेन बध्यमानत्वात् ॥२६७॥

इदानीमाहारकमार्गणायामुत्तरप्रकृतिबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमाह

आहारे पणचत्तातइअकसायाइतिवइराईणं ।
ओघव्वूणगुरुठिई आहारदुगणिरयाइणवगाणं ॥२६८॥(गीतिः)

(प्रे०) "आहार" इत्यादि, आहारकमार्गणायां 'तइअकसाया ॥ दुइअकसाया मिच्छं थीणद्धितिगमणचउगथीणपुमा। सघयणागिइपणग दुहगतिगं कुखगई णीअं ॥ तिरियदुगुज्जोआयवथावरएगिंदिसुहमतिगविगला ।' इति संग्रहगाथात्रयवेषूक्तानां प्रत्याख्यानावरणचतुष्कादिपञ्चचत्वारिंशत्प्रकृतीनां वज्रर्षभनाराचसंहननौदारिकद्विकरूपस्य प्रकृतित्रयस्य च बन्धसत्कं गुर्वन्तरमोघवद् वेदयितव्यम्, तदेवम्—मध्यमकषायाष्टकस्य देशोनपूर्वकोटिवर्षप्रमितम्, मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतीनां पञ्चविंशतिप्रकृतीनां साधिकद्वात्रिंशदधिकशताब्धिप्रमाणम्, मतान्तरेण पुनर्देशोनद्वात्रिंशदुत्तरसागरोपमशतम्, तिर्यग्द्विकोद्योतप्रकृतीनां साधिकत्रिषष्ट्यधिक सागरोपमशतप्रमितम्, वज्रर्षभनाराचसंहननौदारिकद्विकप्रकृतीनां साधिकपल्योपमत्रयम्, आतपादीनां नवानां प्रकृतीनां च साधिकपञ्चाशीत्यधिकसागरोपमशतप्रमितम्, भावनीयं चैतत्सर्वमोघवत् । 'ऊणगुरुठिई' इत्यादि, आहारकद्विकस्य 'णिरयसुरविउव्वदुगं उरलणरदुग'इति संग्रहगाथावयवेषु भणितानां नरकद्विकप्रभृतीनां नवानां प्रकृतीनां च मार्गणायामस्यां बन्धसत्कमन्तरं प्रकृष्टतया देशोनप्रकृतमार्गणाप्रकृष्टकायस्थितिप्रमाणं भवति, कथमिति चेत्, कथ्यते, मार्गणाया अस्याः प्रकृष्टा कायस्थितिरङ्गुलाऽसंख्यातभागगताकाशप्रदेशतुल्यसमयप्रमाणा विद्यते, उत्कृष्टतया तावत्कालमेतन्मार्गणावर्तिनो जीवस्य विग्रहगतौ गमनाभावात्, मार्गणायामस्यां वर्तमानोऽप्रमत्तसंयत आहारकद्विकं बद्ध्वा पश्चादधस्तनीयगुणस्थानकेषु गत्वा देशोनतावत्कालं तत्र स्थितः सन् तन्न बध्नाति, प्रस्तुतमार्गणायाश्च चरमेऽन्तर्मुहूर्ते पुनरप्रमत्तसंयतगुस्थानकमागतः सन् बध्नाति, अत आहारकद्विकस्योक्तप्रमाणमन्तरमत्र प्राप्तं भवति, पर्याप्तपञ्चेन्द्रियः प्रकृतमार्गणायाः आरम्भे नवानां नरकद्विकादिप्रकृतीनां बन्धं विधाय तदनन्तरं कालं च कृत्वा प्रकृतमार्गणायां तेजोवायुकायिकतयोत्पद्य भवप्रत्ययेनाऽबन्धं करोति, एतन्मार्गणायाश्चरमान्तर्मुहूर्ते संज्ञितयोत्पद्य यथायोगं बन्धं च करोति, तदा निरुक्तनरकद्विकादिप्रकृतीनामिहाऽन्तर्मुहूर्तेन न्यूना प्रकृष्टकायस्थितिरन्तरं प्रकृष्टतया प्राप्यते । तथा ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेक—त्रिंशच्छेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनां वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्र—संस्थानसुखगतित्रसदशकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासजिननामरूपाणां षड्विंश—तिशेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च 'सेसाण मुहुत्तंतो' इत्यादिना गुर्वन्तरमन्तर्मुहूर्तरूपमधिगम्यम्, कतिपयप्रकृतीनामुपशमश्रेणिमाश्रित्य, परावर्तमानत्वमाश्रित्य च कतिपयप्रकृतीनां घटना कार्या ।

एवम्—एकोनाशीतिमार्गणासूत्तरप्रकृतीनां बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरमुक्तम्; अकषायकेवलज्ञानकेवलदर्शनयथाख्यातसंयममार्गणासु बध्यमानसातवेदनीयस्यान्तरं नास्ति, तथैव सूक्ष्मसंपरायसंयमे बध्य-

मानानां सप्तदशप्रकृतीनां बन्धान्तरं नास्ति, अत एतद्व्यतिरिक्तासु शेषनवतिमार्गणासु यासां प्रकृतीनां बन्धान्तरं विद्यते तासां प्रकृष्टमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणमेवेतिकृत्वा 'सेसासु मुहुत्तंतो' इत्यनेन गतार्थत्वान्मूलकारेण पृथगेतद्विषयकप्ररूपणा न कृता, तथाऽप्यस्माभिस्तत्संक्षेपेण दर्श्यते । तद्यथा–

अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तमनुष्यापर्याप्तपञ्चेन्द्रियापर्याप्तत्रससप्तपृथ्वीकायसप्ताप्कायैकादशवनस्पतिकायनवविकलाक्षरूपास्त्रयस्त्रिंशन्मार्गणासु सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिनीनामौदारिकशरीरस्य च बन्धान्तरं नास्ति, शेषबध्यमानाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां परावर्तमानबन्धेनान्तर्मुहूर्तप्रमाणं प्रकृष्टमन्तरं विद्यते ।

पञ्चानुत्तराहारकद्विकदेशविरतिमिश्रसम्यक्त्वमार्गणासु सातवेदनीयादीनां द्वादशानां परावर्तमानबन्धेनान्तर्मुहूर्तप्रमाणं प्रकृष्टं बन्धान्तरं विद्यते, शेषबध्यमानप्रकृतीनां बन्धान्तरं नास्ति, सततं तासां बध्यमानत्वादिति ।

अपर्याप्तबादरैकेन्द्रियापर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियेषु बन्धान्तरं अपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियवत्कथनीयम् , नवरं मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रप्रकृतीनां प्रकृष्टबन्धान्तरस्यान्तर्मुहूर्तमात्रत्वेऽपि तन्मार्गणाप्रारम्भे पृथ्वीकायिकादिभवे वर्तमानो जीवो बन्धं कृत्वा तेजोवायुकायिकयोरन्यतरस्मिन् समुत्पद्य यथायोगमनेकभवान् यावत्तत्रैव स्थित्वा मार्गणाप्रान्ते पृथ्वीकायिकादितया समुत्पद्याऽन्तर्मुहूर्तानन्तरं तत्प्रकृतित्रयस्य बन्धं करोति तं जीवमाश्रित्यान्तर्मुहूर्ताधिकान्तरालीयतेजोवायुकायिकानेकभवकालप्रमाणमायाति तच्च प्रस्तुतमार्गणासु अनेकतेजोवायुकायिकभवानां समुदितकालस्यान्तर्मुहूर्तमात्रत्वादन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणमेव, एवमपि परावर्तमानबन्धमाश्रित्य प्राप्तान्तर्मुहूर्तात्संख्येयगुणमवसातव्यमिति । सप्ततेजस्कायिकेषु सप्तवायुकायिकेषु च सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धितिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रौदारिकशरीरवर्जानां शेषबध्यमानप्रकृतीनां प्रकृष्टं बन्धान्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं परावर्तमानबन्धेनावसातव्यमिति ।

पञ्चमनोयोगपञ्चवचनयोगौदारिककाययोगमार्गणासु सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिनीनामाहारकद्विकजिननामप्रकृतीनां बन्धान्तरं नास्ति, बन्धानन्तरं बन्धविच्छेदस्य प्राप्यमाणत्वेऽपि पुनर्बन्धात्प्राग् मार्गणाया विच्छेदादिति । शेषाध्रुवबन्धिनीनां ज्येष्ठबन्धान्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं परावर्तमानबन्धेनावसातव्यमिति ।

औदारिकमिश्रकाययोगे सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिनीनां जिननामौदारिकशरीरसुरद्विकवैक्रियद्विकरूपाणां षट्प्रकृतीनां च बन्धान्तरं नास्ति, तद्वर्जशेषबध्यमानाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धान्तरं प्रकृष्टतयाप्यन्तर्मुहूर्तप्रमाणमेव, तत्र मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रवर्जशेषाध्रुवबन्धिनीनां परावर्तमानबन्धेन मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रप्रकृतीनां च बन्धान्तरं तेजोवायुकायिकानामबन्धकालेन बादरापर्याप्तैकेन्द्रियमार्गणावदानेतव्यमिति ।

वैक्रियकाययोगवैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणयोर्ध्रुवबन्धिनीनामौदारिकशरीरपराघातोच्छ्वास-जिननामबादरत्रिकप्रकृतीनां च बन्धान्तरं नास्ति । शेषबध्यमानाध्रुवबन्धिनीनां प्रकृष्टबन्धान्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं परावर्तमानबन्धेन नेतव्यमिति ।

अवेदमार्गणायां सातवेदनीयस्य बन्धान्तरं नास्ति, शेषबध्यमानविंशतिप्रकृतीनां प्रकृष्टमन्तरमन्तर्मुहूर्तं श्रेणावबन्धकालेन ज्ञेयमिति ।

क्रोधमार्गणायां निद्राद्विकनवनामध्रुवबन्धिभयजुगुप्सारूपाणां त्रयोदशप्रकृतीनां बन्धान्तरं प्रकृष्टतयान्तर्मुहूर्तं श्रेणावबन्धकालेन बध्यमानसर्वाध्रुवबन्धिनीनां च परावर्तमानबन्धेनान्तर्मुहूर्तप्रमाणमवसातव्यम् । शेषध्रुवबन्धिनीनां बन्धान्तरं नास्ति ।

एवं मानमायालोभमार्गणासु वक्तव्यं, नवरं माने संज्वलनक्रोधस्य, मायायां संज्वलनक्रोधमानयोः, लोभे संज्वलनचतुष्कस्य बन्धान्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं वक्तव्यमिति ।

मनःपर्यवज्ञानसंयममार्गणयोः सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनां परावर्तमानबन्धेन, आहारकद्विकस्य प्रमत्तगुणस्थानेन श्रेणावबन्धकालेन वा, शेषध्रुवाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च श्रेणावबन्धकालेन प्रकृष्टबन्धान्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं ज्ञातव्यमिति । विभङ्गज्ञानमार्गणायां ध्रुवबन्धिनीनां बन्धान्तरं नास्ति । शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां परावर्तमानबन्धेन प्रकृष्टान्तरमन्तर्मुहूर्तं ज्ञेयमिति ।

सामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिचारित्रमार्गणासु सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनां परावर्तमानबन्धेनाहारकद्विकस्य च प्रमत्तगुणस्थानप्रमाणाबन्धकालेनान्तर्मुहूर्तप्रमाणं प्रकृष्टबन्धान्तरं नेतव्यमिति । शेषध्रुवाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धान्तरं नास्ति, जघन्यान्तरप्रस्तावे निषिद्धत्वादिति ।

उपशमसम्यक्त्वमार्गणायां मनुष्यद्विकौदारिकद्विकप्रथमसंहननप्रकृतीनां बन्धान्तरं नास्ति । सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनां परावर्तमानबन्धेनाहारकद्विकस्य प्रमत्तादिगुणस्थानकेष्वबन्धकालेन श्रेणावबन्धकालेन वा शेषबध्यमानमार्गणाप्रायोग्यध्रुवाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां श्रेणावबन्धकालेन बन्धान्तरं प्रकृष्टतयान्तर्मुहूर्तप्रमाणमवसातव्यमिति ।

सास्वादनमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयवर्जषट्चत्वारिंशत्शेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनां पञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्कप्रकृतीनां च बन्धसत्कमन्तरं नास्ति । शेषमार्गणाप्रायोग्याध्रुवबन्धिप्रकृतीनां प्रकृष्टमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणमेवावसातव्यमिति । इति भणितमायुर्वर्जशेषप्रकृतीनां बन्धसत्कमुत्कृष्टमन्तरं मार्गणासु ॥२६८॥

साम्प्रतमायुष्कर्मणां बन्धस्याऽन्तरमेकजीवमाश्रित्य निरूपयितुमना यासु मार्गणासु तन्न भवति तासु प्रतिषेधयन् शेषासु प्रथमतस्तावज्जघन्यतः प्रतिपादयँश्चाह—

सप्पाउगाऊण ण अंतर होइ पणमणवयेसुं ।
विउवे आहारदुगे कसायचउगम्मि सासाणे ॥२६९॥

सेसासु मुहुत्ततो लहुं भवे णवरि अंतरं णत्थि ।
कायुरलछलेसासुं णिरयसुराऊण केइ विब्भगे ॥२७०॥ (गीतिः)

(प्रे०)'सप्पाउग्गा'इत्यादि, ओघ सत्या-ऽसत्य-सत्यासत्या-ऽसत्यामृषाभेदेन पञ्चमनोयोगमार्गणासु पञ्चवचनयोगमार्गणासु च तथा वैक्रियकाययोगमार्गणायामाहारकाहारकमिश्रकाययोगमार्गणयोः क्रोधमानमायालोभलक्षणासु चतसृषु मार्गणासु सास्वादनमार्गणायां च स्वप्रायोग्यायुर्षां बन्धस्याऽन्तरं न भवति, प्रकृतमार्गणाकायस्थितेरायुःप्रकृतिबन्धजघन्यान्तरकालादल्पत्वेन स्वप्रायोग्यायुर्बन्धानन्तरं पुनर्बन्धात्प्राग् मार्गणानामासां विच्छेदात् । 'सेसासु' इत्यादि, उक्तशेषासु यास्वायुर्बन्धो जायते तासु नरकगत्यादिपञ्चचत्वारिंशदुत्तरशतमार्गणासु स्वप्रायोग्यायुषां बन्धस्यैकं जीवमाश्रित्य जघन्यमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवति । अथ शेषमार्गणासु स्वप्रायोग्यायुर्बन्धस्य जघन्यमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणमुपदर्शितम्, परं तत्र शेषमार्गणाऽन्तर्गतकाययोगौदारिककाययोगकृष्णादिलेश्याषट्करूपास्वष्टमार्गणासु समुपपत्तिमालभते, तद्यथा–नरकदेवायुर्बन्धकास्तिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्याः, ते च प्रकृतैकैकमार्गणासूत्कृष्टतोऽप्यन्तर्मुहूर्तादधिककालं नावतिष्ठन्ते, यावच्चाऽन्तर्मुहूर्तं ते तत्र तिष्ठन्ति तावति ह्रस्वेऽन्तर्मुहूर्ते तेषामायुर्बन्धानन्तरं पुनस्तद्बन्धो न जायते,तस्मात् प्रकृताऽष्टमार्गणास्वायुर्बन्धाऽन्तरस्याऽप्राप्यमाणत्वेनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणमन्तरमनुपपन्नमिति तामतिप्रसक्तिमपाकर्तुं विशेषमावेदयति–'णवरि'इत्यादि, काययोगौघौदारिककाययोगकृष्णनीलकापोततेजःपद्मशुक्ललेश्यालक्षणास्वष्टसु मार्गणासु नरकदेवायुषोर्यथायोगं बन्धस्याऽन्तरं नास्ति । 'केइ' इत्यादि केचन महाबन्धकारादयो विभङ्गज्ञानमार्गणायामपि नरकदेवायुर्बन्धस्याऽन्तरं नास्तीति वदन्ति, तेषां मते पञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्याणां योगादिवल्लेश्यादिवद्वा विभङ्गज्ञानस्याऽप्यन्तर्मुहूर्तादधिकस्थितेरस्वीकारात् ।।२६९-२७०।।

तदेवं भणितं सर्वमार्गणास्वायुर्बन्धसत्कं जघन्यमन्तरं यथासम्भवम्, एतर्हि तदेवोत्कृष्टतो बिभणिषुर्निरयगत्योघादिमार्गणाक्रमेणाह

सव्वणिरयदेवेसु अपसत्थतितेउपम्हलेसासु ।
तिरियणराऊण भवे जेट्ठं देसूणछम्मासा ॥२७१॥
तिरितिपणिबितिरिणराऽसण्णीसुं पुव्वकोडितसंतो ।
तिण्हाऊणऽब्भहिया कोडी पुव्वाण साउस्स ॥२७२॥
होइ अपज्जत्तेसुं पणिंदियतिरिक्खमणुसेसु ।
सव्वेसु एगिंदियविगलिंदियपंचकायेसुं ॥२७३॥ (उपगीतिः)
साउस्स गुरुभवठिई, देसूणतिभागसजुआ णेयं ।
इयराउस्स तिभागो देसूणो गुरुभवठिईए ॥२७४॥

(प्रे०) 'सव्वणिरय' इत्यादि, सर्वेष्वोघादिभेदभिन्नेष्वष्टसंख्याकेषु निरयगतिमार्गणास्थानेषु तथैव सर्वेषु त्रिंशत्संख्याकेषु देवगतिमार्गणास्थानेषु तथाऽप्रशस्तासु तिसृषु कृष्णादिलेश्यासु

तेजोलेश्यायां पद्मलेश्यायां च तिर्यग् नरायुषोर्बन्धस्य प्रत्येकमुत्कृष्टमन्तरं अन्तर्मुहूर्तलक्षणैकदेशेनोनाः षण्मासा भवन्ति, तत्पुनरेवम्–नारकदेवाः स्वायुषः षण्मासावशेष आयुर्बध्नन्ति, आयुर्बन्धनतश्च ते प्रथमाकर्षेणायुर्बन्धं समाप्य पुनरप्यवशिष्टषण्मासस्य द्विचरमान्तर्मुहूर्ते द्वितीयाकर्षेण पुनस्तद् बध्नन्तीत्येवं वारद्वयं तिर्यगायुषो मनुष्यायुषो वा बन्धं कुर्वन्तो ये केचन देवनारकास्तैः प्रकृतमार्गणासु प्रस्तुतमन्तरं प्राप्यते। इदमत्र विशेषतोऽवधेयम्–अशुभलेश्यामार्गणासु तिर्यङ्मनुष्यैस्तिर्यग्नरायुषोर्बन्धे विधीयमानेऽपि तानाश्रित्य प्रकृतायुर्द्वयबन्धस्याऽन्तरं न प्राप्यते, द्वयोस्तद्बन्धयोर्विचाले मार्गणानामासां कायस्थितेरतिह्रस्वत्वेन परावर्तमानत्वात्। 'तिरिय' इत्यादि, तिर्यगोघतिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिमतीमनुष्यौघपर्याप्तमनुष्यमानुष्यासंज्ञिरूपास्वष्टसु मार्गणासु वेद्यमानस्वायुरतिरिक्तानां त्रयाणामायुषां प्रत्येकं प्रकृष्टमन्तरं पूर्वकोटितृतीयभागाभ्यन्तरवर्ति भवति, तत्र चतुर्षु तिर्यग्गतिभेदेषु असञ्ज्ञिमार्गणास्थाने च तिर्यगायुर्वर्जानां त्रयाणामायुषां मनुष्यगतिमार्गणाभेदेषु तु मनुष्यायुर्वर्जानां त्रयाणामायुषां तज्ज्ञेयम्। भावना पुनरिहैवं कार्या–मार्गणास्वासु प्रत्येकं वर्तमानः पूर्वकोटिवर्षायुष्कः कश्चिज्जीवः स्वायुषस्त्रिभागे वेद्यमानव्यतिरिक्ताऽऽयुस्त्रयमध्येऽन्यतमस्यायुषो बन्धमारभ्यान्तर्मुहूर्तादनु प्रथमाकर्षेण तद्बन्धं समाप्य पुनरपि चरमान्तर्मुहूर्तं जघन्याबाधारूपं विहाय पूर्वकोटित्रिभागस्य द्विचरमेऽन्तर्मुहूर्ते तद् बध्नाति तदायुर्बन्धस्यऽऽन्तर्मुहूर्तद्वयन्यूनपूर्वकोटिवर्षत्रिभागरूपमन्तरं प्राप्तं भवति। 'ऽऽसञ्ज्ञिया' इत्यादि, वेद्यमानाऽऽयुषा समं नामतः समानस्योक्तशेषस्य स्वायुषो बन्धस्योत्कृष्टमन्तरं देशोनपूर्वकोटित्रिभागेनाधिकं पूर्वकोटीवर्षमितमवसेयम्, अयं भावः–तिर्यग्गत्योघादौ तिर्यगायुषो मनुष्यगतिमार्गणाभेदत्रये च मनुष्याऽऽयुषः प्रकृताऽन्तरं देशोनपूर्वकोटित्रिभागेनाधिकं पूर्वकोटिवर्षरूपं विज्ञेयम्। ननु–असञ्ज्ञिभेदवर्जतिर्यग्गतिभेदचतुष्टये "साउस्स" इत्यनेन केवलस्य तिर्यगायुषो ग्रहणं समुचितम्, तत्र केवलतिरश्चामेव प्रवेशात्, तेषां तिर्यगायुष एव वेद्यमानत्वाच्च, परमसंज्ञिमार्गणाभेदेऽपि केवलस्य तिर्यगायुषो ग्रहणं न युज्यते तत्र तिरश्चामिव मनुष्याणामपि प्रवेशेन तिर्यगायुष इव मनुष्यायुषोऽपि वेद्यमानायुष्कतया लाभात्? इति चेद् सत्यम्, तथापीह शतककृदभिप्रायवशादसंज्ञिमार्गणायां केवलास्तिर्यञ्च एव बोद्धव्याः, न मनुष्या अपि, "उक्तं च शतके" "सेसासु जाण दो दो उ"। तथा तच्चूर्णावपि–णिरयगइमणुयगइदेवगइसु दो दो जीवट्ठाणाणि सन्निपंचिंदियपज्जत्तगा अपज्जत्तगा य। अन्याभिप्रायेण तु मनुष्यायुषोत्कृष्टमन्तरं देशोनकायस्थितिप्रमाणं ज्ञेयम्, तथा च न कश्चिद् दोष इति। प्रकृताऽन्तरस्य भावना पुनरिहैवं वेदयितव्या–मार्गणास्वासु वर्तमानः पूर्वकोटिवर्षायुष्कः कश्चिज्जीवः स्वायुषस्त्रिभागेऽवशेषे निरुक्तमायुर्बद्ध्वा ततश्च मृत्वा पुनरपि पूर्वकोटिवर्षायुष्कतया तिर्यग्जीवस्तिर्यक्त्वेन मनुष्यजीवो मनुष्यत्वेन च समुत्पन्नः सन् स्वायुषोऽन्तिमान्तर्मुहूर्ते तिर्यग्जीवस्तिर्यगायुर्मनुष्यो मनुष्यायुर्बध्नाति तदा प्रकृतमन्तरमायाति, साधिकत्वमत्र किञ्चिदूनप्रथमभव-

सत्कपूर्वकोटित्रिभागेनावसेयमिति । "होइ अपज्जत्तेसु"मित्यादि, अपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्तमनुष्यमार्गणयोः सर्वेषु सप्तसंख्याकेषु एकेन्द्रियभेदेषु तथैव नवसंख्याकेषु विकलेन्द्रियभेदेषु सर्वेष्वेकोनचत्वारिंशत्संख्याकेषु पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिकायलक्षणपञ्चकायसम्बन्धिभेदेष्वित्येवं समुदितेषु सप्तपञ्चाशन्मार्गणास्थानेषु 'साउस्स' त्ति प्राग्वद् वेद्यमानायुषा सार्कं नामतः समानस्य तिर्यगाद्येकैकायुषः प्रकृष्टमन्तरं देशोनतृतीयभागेन संयुता गुरुभवस्थितिर्विज्ञेयम् तच्चैवम्–मार्गणास्वासु वर्तमान उत्कृष्टस्थितिकः कश्चिज्जीवः स्वीयायुरवशिष्टत्रिभागे प्रकृतमायुर्बन्धमाधाय ततश्च कालं कृत्वा तास्वेव मार्गणासु गुरुभवस्थितिमत्त्वेन सजातः सन् तद्भवद्विचरमाऽन्तर्मुहूर्ते निरुक्तमायुर्बध्नाति, तदा प्रकृतमन्तरं प्राप्यते, देशोनत्व त्वत्र भवद्वयसत्कायुर्बन्धसम्बन्ध्यन्तर्मुहूर्तद्वयं तथा जघन्याबाधारूपान्तर्मुहूर्तमित्यन्तर्मुहूर्तत्रयेणावसेयम् । उत्कृष्टभवस्थितिप्रदर्शिका गाथास्त्वत्रैव बन्धविधानग्रन्थे मूलप्रकृतिबन्धे प्रतिपादिताः । ताश्चेमाः

'तिरियस्स पणिंदितिरियणरतप्पज्जत्तजोणिणीण च । तिण्णि पलिओवमाइं उक्कोसा भवठिई णेया॥१२५॥
एगिंदियपुहवीणं वरिससहस्साणि होइ बावीसा । एमेव होइ तेसिं बायरबायरसमत्ताणं ॥१२६॥
बेइंदियाइगाणं कमसो बारह समा अउणवण्णा । दिवसा तह छम्मासा एवं तेसिं समत्ताण ॥१२७॥
दगवाउणं कमसो सहस्सवासाणि सत्त तिण्णि भवे । तिदिणाऽग्गिस्सेव सिं बायर-बायरसमत्ताण ॥१२८॥
वासाऽत्थि दस सहस्सा वणपत्तेअवणतस्समत्ताण । भिन्नमुहुत्त णेया सेसाण पचतीसाए ॥१२९॥' इति ।

"इयराउस्स"इत्यादि,प्रकृतमार्गणासूक्तशेषबन्धप्रायोग्यायुषां बन्धस्योत्कृष्टमन्तरं देशोनोत्कृष्टभवस्थितित्रिभागप्रमितमवगन्तव्यम् , इदमुक्तं भवति-तेजस्कायवायुकायसर्वभेदाऽपर्याप्तमनुष्यवर्जशेषद्विचत्वारिंशन्मार्गणासु मनुष्यायुष्कस्याऽपर्याप्तमनुष्यमार्गणायां तिर्यगायुष्कस्य च प्रस्तुतमन्तरं विज्ञातव्यम् , कथमिति चेद् उच्यते, प्रकृतमार्गणासु वर्तमान उत्कृष्टस्थितिकः कश्चित्प्राणी स्वायुस्त्रिभागावशेषे आयुर्बन्धं प्रारभ्याऽन्तर्मुहूर्तानन्तरं तत्समाप्य पुनरपि स्वायुश्चरमान्तर्मुहूर्ते बध्नाति तदा प्रकृतमन्तरमुपलभ्यते ॥२७१-२ ३-४॥

प्रतिपादितं गतिमार्गणास्थानेषु तत्साम्यान्मार्गणान्तरेषु च बन्धप्रायोग्यायुर्बन्धस्योत्कृष्टमन्तरम् , अथोक्तशेषेन्द्रियकायमार्गणासु तन्निजिगदिषुस्तत्रादौ द्विपञ्चेन्द्रियादिमार्गणास्वाह

मणुसाउगस्स हवए दुपणिदितसेसु चक्खुसण्णीसु ।
पुव्वकायठिई ऊणा सेसाणायरसयपुहुत्तं ॥२७५॥

(प्रे०) "मणुसाउगस्स" इत्यादि, पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौघपर्याप्तत्रसमार्गणाचतुष्टये चक्षुर्दर्शनसंज्ञिमार्गणयोश्च मनुष्यायुष्कबन्धस्याऽन्तरं प्रकृष्टतया देशोनोत्कृष्टकायस्थितिप्रमाणं भवति, तद्यथा–एकेन्द्रियादिमार्गणान्तरात्पञ्चेन्द्रियौघादिप्रस्तुताऽन्यतममार्गणायां जघन्यस्थितिकतयोत्पद्य यः कश्चिज्जीवस्तद्भवतृतीयभागे मनुष्यायुर्बध्नाति तदनु तत्रोत्पद्य मनुष्येतरायु-

बध्नाति, तदनु तत्रोत्पद्य मनुष्येतरायुर्बध्नातीत्येवं मनुष्येतरायुर्बद्ध्वा बद्ध्वा तत्रोत्पद्योत्पद्य विपद्य विपद्य च किञ्चिदूनां पञ्चेन्द्रियादिमार्गणोत्कृष्टकायस्थितिं गमयति पश्चाच्चोत्कृष्टकायस्थितेः प्रान्तभागेऽन्तर्मुहूर्तादिस्थितिकतिर्यक्त्तया वर्तमानः सभसंक्षेप्याद्धायां मनुष्यायुर्बध्नाति तदनु च तत्रोत्पद्य क्रमेण मनुष्यभवस्य पञ्चेन्द्रियादिमार्गणोत्कृष्टकायस्थितेश्च सममेव समाप्तेर्मार्गणान्तरं गच्छति, तदा तस्य प्रदर्शितप्रमाणमन्तरमुपपन्नं भवति । "सेसाण" इत्यादि, मनुष्यायुर्वर्जानां शेषाणां त्रयाणामायुषां तु प्रत्येकं बन्धसत्कमुत्कृष्टमन्तरं सागरोपमशतपृथक्त्वं भवति, मार्गणास्वासु वर्तमानस्य जीवस्य देवाद्यायुष्कत्रयमध्येऽन्यतमायुषो बन्धानन्तरं शेषत्रिगतिमत्कभ्रमणकालस्योत्कृष्टतः सागरोपमशतपृथक्त्वेन तत्प्रयुक्तान्तरस्यापि तावन्मितत्वात् ॥२७५॥

अधुनाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियादिमार्गणासु प्रकृतमाह

असमत्तपणिंदियतसउरालमीसेसु खलु मुहुत्तंतो ।
वोच्छूण उरले पुढवीभवठिइतिभागंतो ॥२७६॥

(प्रे०) "असमत्त" इत्यादि, अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्तत्रसौदारिकमिश्रकाययोगरूपासु तिसृषु मार्गणासु तिर्यग्मनुष्यायुष्कयोरुत्कृष्टमन्तरमन्तर्मुहूर्तमस्ति तच्चैवम्—अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियादिमार्गणात्रये मार्गणाकायस्थितिप्रथमभवस्थः कश्चित्तद्भवतृतीयभागे तिर्यगायुर्बध्नाति तदनन्तरं मार्गणास्वास्वेव प्रत्येकमपर्याप्ततिर्यक्त्वेनोत्पद्य तत्र च मनुष्यायुर्बद्ध्वा तदनु अपर्याप्तमनुष्यरूपेण भूत्वा पुनरपि मनुष्यायुर्बद्ध्वाऽपर्याप्तमनुष्यरूपेण भवतीत्येवं यावद्वारमपर्याप्तमनुष्यरूपेण भवितुं शक्यते तावद्वारं तद्रूपेण भूत्वा चरमेऽपर्याप्तमनुष्यभवे पुनरपि तिर्यगायुर्बध्नाति तदा तस्य निरुक्तमन्तरमुपपद्यते । एवमेव मनुष्यायुषोऽप्यन्तरस्य भावना विधेया, परं यत्र तिर्यगायुस्तत्र मनुष्यायुः, यत्र पुनर्मनुष्यायुस्तत्र तिर्यगायुरुपादेयम् । "उरले" इत्यादि, औदारिककाययोगमार्गणायां तिर्यग्मनुष्यायुष्कयोर्बन्धस्योत्कृष्टतोऽन्तरमुत्कृष्टपृथ्वीकायिकभवस्थितेर्देशोनत्रिभागो ज्ञेयः, प्रकृतमार्गणागतोत्कृष्टभवस्थितिकपृथ्वीकायिकजीवस्य स्वायुषस्त्रिभागावशेषे प्रान्ते चाऽनयोरायुषोः प्राग्भणितप्रकारेण द्विर्बन्धसम्भवात् । देवनरकायुषोरन्तराभावोऽत्र जघन्याऽन्तरप्रस्तावे प्रतिषिद्धत्वात् ॥२७६॥

साम्प्रतं शेषयोगमार्गणाभेदेषु तदुच्यते तत्राऽपि मनोवचनयोगभेदेषु वैक्रियकाययोगे आहारकतन्मिश्रयोगद्वये च प्राक् सर्वथा निषिद्धमिति शेषकाययोगभेदे तदाह

काये ऊणपुढविठिई मणुसाउस्स तिरियाउगस्स भवे ।
जेट्ठा पुढविभवठिई देसूणतिभागमब्भहिया ॥२७७॥

(प्रे०) 'काये' इत्यादि, काययोगौघमार्गणायां मनुष्यायुषो बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरं देशोनप्रकृतमार्गणाज्येष्ठकायस्थितिर्भवति, काययोगौघमार्गणाया उत्कृष्टकायस्थितिस्त्वसंख्येयपुद्गलपरावर्तप्रमाणा प्रागभिहितेति, भावना पुनरेवम्—प्रकृतमार्गणास्थोऽपर्याप्तत्रसः स्वभवत्रिभागे मनुष्यायुर्बद्ध्वा

कालं करोति, अपर्याप्तमनुष्यतयोत्पद्य कालं च कृत्वैकेन्द्रियेषु भूयो भूय उत्पद्यते, एकेन्द्रियकायस्थितिं निर्वाह्य पुनरप्यपर्याप्तद्वीन्द्रियैकेन्द्रियाणां संवेधेन काययोगमार्गणाया यावत्कालो निर्गमयितुं शक्यते तावत्कालं निर्वाह्य तद्भवान्ते यदा मनुष्यायुर्बध्नाति तदा देशोनकायस्थितिप्रमाणमुत्कृष्टमन्तरमुपपद्यते । "तिरिया" इत्यादि, तिर्यगायुष्कस्य बन्धसत्कमुत्कृष्टमन्तरं देशोनत्रिभागाधिकपृथ्वीकायभवस्थितिमानमधिगन्तव्यम् , कुतः, इति चेद् ? उच्यते, एतन्मार्गणायां प्रकृष्टायुष्कपृथ्वीकायिको जीवः स्वायुषस्त्रिभागाऽवशेषे तिर्यगायुर्बद्ध्वा क्रमेण च कालं कृत्वा पुनरपि प्रकृष्टायुष्कपृथ्वीकायिकत्वेन जातः सन् स्वायुर्द्विचरमाऽन्तर्मुहूर्ते भूयोऽपि तिर्यगायुर्बध्नाति तदा तमपेक्ष्य निरुक्तमन्तरमायाति । ननु अप्कायादीनामुत्कृष्टभवस्थितिं विहाय पृथ्वीकायोत्कृष्टभवस्थितिरत्र कथमुपात्तेति चेद् , उच्यते, निरन्तरकाययोगवद्भवेषु तस्यैव दीर्घस्थितिकत्वात् ॥२७७॥

इदानीं वेदमार्गणासु प्रकृतमाह

थीपुरिसेसु तिभागो देसूणो होइ पुव्वकोडीए ।
णिरयाउगस्स दोण्हं देसूणा सगुरुकायठिई ॥२७८॥
देवाउगस्स थीए कोडिपुहुत्तेण होइ पुव्वाण ।
अहियाऽडवण्णपलिया पुरिसे अहियुदहितेत्तीसा ॥२७९॥
णपुमे गुरुकायठिई ऊणा दोण्ह जलहीसयपुहुत्त ।
तिरियाउस्स सुराउस्स पुव्वकोडीअ तंसतो ॥२८०॥

(प्रे०) 'थीपुरिसेसु' इत्यादि, स्त्रीपुरुषवेदमार्गणाद्वये नरकायुष्कस्य गुरु बन्धसत्कमन्तरं देशोनपूर्वकोटित्रिभागप्रमाणं भवति, पूर्वकोटिवर्षायुष्कजीवस्य त्रिभागावशेषे आयुषि नरकायुर्बन्धमारभ्याऽन्तर्मुहूर्तादनु तं समाप्य द्विचरमान्तर्मुहूर्ते भूयोऽपि तद्बन्धभावात् । देशोनत्वमत्राऽन्तर्मुहूर्तत्रयेणावसातव्यम् । 'दोण्हं' इत्यादि, तिर्यग्मनुष्यायुषोरन्तरं प्रकृष्टतो देशोनस्वोत्कृष्टकायस्थितिप्रमाणं भवति, अत्र नरकायुषोऽन्तरस्याऽनुपदमुक्तत्वाद् देवायुषोऽन्तरस्य चाऽनुपदमेव वक्ष्यमाणत्वाच्च तद्द्वयवर्जतिर्यग्मनुष्यायुषी एव 'दोण्ह' इति पदेनोपादेये । भावनिका पुनरेवम्– मार्गणान्तरात्प्रकृतमार्गणयोरन्यतरमार्गणायां समायातः कश्चिज्जीवः स्वायुषस्त्रिभागावशेषे तिर्यगायुर्बद्ध्वा ततश्च कालं कृत्वा तत्रैव तिर्यक्त्वेन सजातः सन् देवायुर्मनुष्यायुर्वा बध्नाति तदनु क्रमेण मृत्वा देवत्वेन मनुष्यत्वेन वोत्पन्नः सन् नरकतिर्यगायुर्वर्जाऽऽयुर्बध्नाति, तत्पश्चात्ततो मृत्वा भूयोऽपि तद्रूपेण जातः सन्नरकतिर्यगायुर्वर्जायुर्बध्नाति, एवं पुनः पुनः कुर्वन् स प्रकृतमार्गणाया द्विचरमान्तर्मुहूर्ते पुनरपि तिर्यगायुर्बध्नाति ततश्च मृत्वा प्रकृतमार्गणां परावर्तयति, तदा तमपेक्ष्य भणितमन्तरमुपपन्नं भवति, इत्थमेव प्रकृतमार्गणाद्वये मनुष्यायुष्कविषयेऽपि भावना विधेया । 'देवाउगस्स' इत्यादि, स्त्रीवेदमार्गणायां देवायुष्कस्योत्कृष्टमन्तरं साधिकपूर्वकोटिपृथक्त्वेनाभ्यधिकाष्टपञ्चाशत्पल्योपमप्रमाणमवसातव्यम् । स्त्रीवेदोत्कृष्टकायस्थितेः पल्योपमशतपृथक्त्वप्रमाणत्वेऽपि देवभवैः समं जायमानतिर्यग्मनुष्यभवसवेधस्य प्रस्तुताऽन्तरबाधकतया पर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियपर्याप्त-

मनुष्यभवसंवेधाधीनस्यैकेन देवभवेनाधिकस्य प्रस्तुतान्तरस्यैतावन्मात्रसंभवात्, एतदुक्तं भवति-स्त्रीवेदोत्कृष्टकायस्थितिर्हि पर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्यभवानां देवभवैः समं जायमानभवसंवेधप्रधाना, न पुनर्नरकभवैः सममपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियापर्याप्तमनुष्यभवैर्विकलेन्द्रियैकेन्द्रियादिभवैः समं वा, तेषां नारकादीनां नपुंसकवेदित्वात् । देवभवैः समं संवेधस्तु देवायुर्बन्धाधीनः, तथा च यः कश्चित्प्रस्तुतमार्गणागतः तिरश्चीजीवो मानुषीजीवो वा पूर्वकोटीतृतीयभागलक्षणायामुत्कृष्टायामबाधायां वर्तमानः सन् पञ्चपञ्चाशत्पल्योपममितोत्कृष्टस्थितिकं देव्या आयुष्कं बध्नाति, ततः प्रभृति प्रस्तुतान्तरं आरभ्यते; तदनु चासौ तत्रोत्कृष्टस्थितिकदेवीतयोत्पद्य भवक्षयेण पुनः प्रस्तुतमार्गणायामेव पूर्वकोटयायुष्कमानुषीतया तिरश्चीतया वोत्पद्यते, एवं संख्येयभवान् यावत् पूर्वकोटीस्थितिकमानुष्यादितयोत्पद्योत्पद्य विपद्य विपद्य चरमभवे त्रिपल्योपमस्थितिकयुग्मितया प्रस्तुतमार्गणायामेवोत्पद्याऽसंक्षेप्याद्धायां देवायुर्बन्धं प्रारभते तदा प्रस्तुतान्तरं निष्ठां याति, न पुनरतोऽप्यूर्ध्वं प्रस्तुताऽन्तरसंभवः, मनुष्यादिकायस्थितिसमाप्तेस्तस्या मार्गणान्तरे देवीतयोत्पत्तेर्वाऽऽवश्यकत्वादित्येवं तस्य जीवस्य देवीभवात् पूर्वभवसंबन्धिनाऽन्तर्मुहूर्तोनपूर्वकोटित्रिभागाधिकेनोत्तरभवसंबन्धिना च त्रिपल्योपमाभ्यधिकपूर्वकोटीपृथक्त्वकालेनाऽभ्यधिकं देवीभवोत्कृष्टस्थितिप्रमाणं प्रस्तुतान्तरं जायते, तच्च मूलोक्तमेवेति ।

'पुरिसे' इत्यादि, पुरुषवेदमार्गणायां देवायुष्कबन्धस्य प्रकृष्टमन्तरं साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणमस्ति, तद्यथा–पूर्वकोटिवर्षायुष्कः कश्चिन्मनुष्यः स्वायुषस्त्रिभागावशेषेऽनुत्तरदेवसत्कोत्कृष्टायुर्बद्ध्वा ततश्च मृत्युमवेत्याऽनुत्तरविमाने देवतया संजातस्तत्र चायुः समाप्य पूर्वकोटिवर्षायुष्को मनुष्यो जातस्तत्र स्वायुर्द्विचरमाऽन्तर्मुहूर्ते भूयोऽपि देवायुर्बध्नाति तस्य निरुक्तमन्तरं प्राप्तं भवति, अधिकत्वं पुनरत्र अन्तर्मुहूर्तन्यूनपूर्वकोटित्रिभागाभ्यधिकपूर्वकोटिवर्षैरवसातव्यम् । "णपुंसे" इत्यादि, नपुंसकवेदमार्गणायां नरकमनुष्यायुषोरुत्कृष्टमन्तरं देशोनोत्कृष्टकायस्थितिप्रमाणमधिगम्यम्, अत्रापि 'दोण्ह' इति पदेन तिर्यक्सुरायुषोरन्तरस्यानुपदं वक्ष्यमाणत्वात्तद्वर्जनरकमनुष्यायुषोरेवाऽन्तरं वक्तव्यतायां समुपादेयम् । घटना पुनरित्थम्–नपुंसवेदमार्गणाया उत्कृष्टकायस्थितिरसंख्येयपुद्गलपरावर्तमाना वर्तते, मार्गणान्तरान्नपुंसकवेदमार्गणायां तत्प्रायोग्यजघन्यस्थितिमत्त्वेन जातः कश्चिज्जीवः स्वायुस्त्रिभागावशेषे नरकायुर्बद्ध्वा मृत्वा च नरकत्वेन संजातः सन् तत्र यथायोगं नरकदेवेतरायुर्बद्ध्वा च्युत्वा च नपुंसकत्वेन जातः, ततोऽप्येकेन्द्रियादिषु पुनः पुनः नपुंसकत्वेनोत्पद्योत्पद्य मृत्वा मृत्वा च यावन्मार्गणोत्कृष्टकायस्थितिमतिक्रामन् नपुंसकपञ्चेन्द्रियरूपे द्विचरमे भवे पुनरपि जघन्यस्थितिकं नरकायुर्बध्नाति तदनु मृत्वा नरके समुत्पद्यते ततोऽपि च्युत्वान्यत्र नपुंसकाभिन्नवेदितया जायमानो मार्गणां परावर्तयति, तस्य प्रकृतमन्तरं प्राप्तं भवति । प्रथमनरकायुर्बन्धकालस्तत्प्राक्कालो द्वितीयनरकायुर्बन्धकालस्तत्पाश्चात्यमार्गणाप्रान्तकाल-

श्रेतिकालचतुष्टयरूपेण देशोनताऽत्र ग्राह्या, एवमेव यथायोगं मनुष्यायुषोऽन्तरस्याऽपि भावना स्वयं कार्या । 'जलही' इत्यादि, तिर्यगायुषोऽन्तरं प्रकृष्टतया सागरोपमशतपृथक्त्वरूपं वर्तते, प्रस्तुतमार्गणायामविच्छिन्नतया प्रवर्तमानायां सत्यां तिर्यग्भवान् विहाय शेषमनुष्यनारकभवानां संवेधस्योत्कृष्टतः सागरोपमशतपृथक्त्वमात्रत्वात् । 'सुराउस्स' इत्यादि, देवायुष्कस्य देशोनपूर्वकोटित्रिभागरूपमुत्कृष्टमन्तरं भवति, पूर्वकोटिस्थितिके मनुष्यभवे तिर्यग्भवे चोत्कृष्टाबाधायामसंक्षेप्याद्धायां च द्विः सुरायुर्बन्धनतस्तल्लाभादिति ॥२७८ ९ २८०॥

साम्प्रतं ज्ञानादिमार्गणासु प्रकृतमाह–

णाणतिगे ओहिम्मि य सम्मत्ते वेअगे य विण्णेयं ।
अमहिया तेत्तीसा जलहीणं णरसुराऊणं ॥२८१॥
मणणाणसंजमेसुं समइअछेअपरिहारदेसेसुं ।
देवाउस्स तिभागो देसूणो पुव्वकोडीए ॥२८२॥
अण्णाणदुगे अजए अचक्खुभवियेयरेसु मिच्छत्ते ।
ओघव्व जाणियव्वं णारगतिरिणरसुराऊणं ॥२८३॥
देसूणपुव्वकोडितिभागो आउचउगस्स विब्भगे ।
अण्णे दोण्ह छमासा णिरयसुराऊण णत्थि त्ति ॥२८४॥

(प्रे०) 'णाणतिगे' इत्यादि, मनःपर्यवज्ञानमार्गणायामनन्तरं वक्ष्यमाणत्वात् केवलज्ञानमार्गणायामायुर्बन्धाभावाच्च तद्द्वयवर्जासु तिसृषु मतिश्रुतावधिज्ञानमार्गणासु अवधिदर्शनसम्यक्त्वौघक्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणास्थानेषु चेति षण्मार्गणास्थानेषु मनुष्यदेवायुषोरुत्कृष्टमन्तरं साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपममानं विज्ञेयम् , त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमस्थितिकदेवभवान्तरितयोः पूर्वकोटिस्थितिकभवयोः क्रमेणोत्कृष्टाबाधायामसंक्षेप्याद्धायामेवैकैकेनाऽऽकर्षेण देवायुर्बन्धनतो देवायुषः प्रस्तुतान्तरस्य लाभात् , पूर्वकोटिस्थितिकमनुष्यभवान्तरितयोः क्रमेणाऽनियतस्थितिकोत्कृष्टस्थितिकदेवभवयोर्यथासंख्यं षण्मासात्मिकायामबाधायामसंक्षेप्याद्धालक्षणजघन्याबाधायामेकैकाकर्षेण मनुष्यायुर्बन्धनतः प्रस्तुतमार्गणास्थजीवस्य मनुष्यायुषः प्रस्तुतोत्कृष्टान्तरस्य लाभाच्चेति । अत्राभ्यधिकता तु मनुष्यायुषि किञ्चिदूनषण्मासाभ्यधिकपूर्वकोटिप्रमाणेन देवायुषि तु किञ्चिदूनपूर्वकोटीत्रिभागाभ्यधिकपूर्वकोटिप्रमाणेन ज्ञेया । 'मणणाण' इत्यादि, मनःपर्यवज्ञानसंयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयसंयमपरिहारविशुद्धिकसंयमदेशसंयमलक्षणासु षट्सु मार्गणासु देवायुष्कस्य प्रकृष्टमन्तरं देशोनपूर्वकोटिवर्षत्रिभागरूपमवसेयम् । पूर्वकोटिवर्षायुष्कस्य त्रिभागावशेषे द्विचरमेऽन्तर्मुहूर्ते च द्विरायुर्बन्धं कुर्वतो जीवस्य प्रस्तुतान्तरस्य लाभात् । "अण्णाणदुगे" इत्यादि, मत्यज्ञानश्रुताज्ञाना-ऽसंयमा-ऽचक्षुर्दर्शन-भव्याऽभव्य-मिथ्यात्वरूपासु सप्तसु मार्गणासु नरक तिर्यग् नर-देवायुर्लक्षणानां चतसृणामायुःप्रकृतीनां प्रत्येकमुत्कृष्टमेकजीवाऽऽश्रितमन्तरमोघवद् यथाक्रममसंख्येययाः पुद्गलपरावर्ताः सागरोपमशतपृथक्त्वम-

सङ्ख्येयपुद्गलपरावर्ती असंख्येयपुद्गलपरावर्ती भवति, भावना पुनरिहोघवत एव स्वयमूह्या । 'देसूण०' इत्यादि, विभङ्गज्ञानमार्गणायां चतुर्णामायुषां प्रत्येकं प्रस्तुतान्तरं देशोनपूर्वकोटित्रिभागप्रमाणं भवति, मनुष्यतिरश्चामपर्याप्तावस्थायां विभङ्गज्ञानस्याऽनभिमतत्वेन मनुष्यभवे तिर्यग्भवे वोत्कृष्टायां पूर्वकोटित्रिभागलक्षणायामसंक्षेप्याद्धालक्षणायां जघन्याऽबाधायां चाकर्षद्वयेन द्विस्तत्तन्नरकाद्यायुश्चतुष्कं बध्नतस्तल्लाभात् । अत्र ये तिर्यग्मनुष्याणामन्तर्मुहूर्तस्थितिकमेवोत्कृष्टतो विभङ्गज्ञानं मन्यन्ते तेषां मते प्रस्तुतान्तरं दर्शयन्नाह–'अण्णे' इत्यादि, तिर्यग्मनुष्यायुषोः प्रकृतमन्तरं षण्मासप्रमाणं विज्ञेयम् , प्रकृतायुर्द्वयस्य बन्धकानां यथासंभवं देवनारकाणां प्रकृष्टाऽबाधायाः षण्मासप्रमाणत्वेनोत्कृष्टाबाधायामसंक्षेप्याद्धायां चाकर्षद्वयेनाऽऽयुर्बध्नतो यथोक्तान्तरस्यैव लाभात् । 'णिरय' इत्यादि, नरकदेवायुषोः प्रकृष्टमन्तरं नास्ति, एतन्मते प्रकृतायुर्द्वयबन्धस्योत्कृष्टान्तरप्रतिषेधस्तु तस्य जघन्यान्तरप्रतिषेधमात्रेणैव गतार्थ इति ॥२८१ २-३ ४

साम्प्रतं शुक्ललेश्यादिमार्गणासु प्रस्तुतमन्तरमुच्यते–

देसूणा छम्मासा भवे णराउस्स सुक्कखइएसु ।
खइए कोडितिभागो पुव्वाणूणो सुराउस्स ॥२८५॥
आहारगम्मि णेयं णिरयणरसुराउगाण देसूणा ।
उक्कोसा कायठिई तिरियाउस्सऽत्थि ओघव्व ॥२८६॥

(प्रे०)'देसूणा' इत्यादि, शुक्ललेश्याक्षायिकसम्यक्त्वमार्गणयोर्मनुष्यायुष्कस्य प्रकृष्टमन्तरं देशोनषण्मासप्रमितं भवति । शुक्ललेश्यायां देवानामेव तथा क्षायिकसम्यक्त्वे देवानां नारकाणां वा मनुष्यायुःप्रकृतिबन्धस्वामित्वात् तेषां चोत्कृष्टाया अप्यबाधायाः षण्मासप्रमाणत्वेन प्रस्तुतान्तरस्याऽप्यनन्तरोक्तनीत्या देशोनषण्मासप्रमाणस्य लाभात् । 'खइए' इत्यादि, क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायां देवायुष्कस्य प्रकृतमन्तरं देशोनपूर्वकोटित्रिभागप्रमाणमधिगम्यम् , तद्यथा-प्रस्तुतमार्गणायां देवायुर्बन्धं तिर्यग्मनुष्या एव प्रकुर्वन्ति ते चाऽनन्तरभवे देवतयैवोत्पद्यन्ते, ततश्च मनुष्यत्वमवाप्य सिद्ध्यन्ति, अतो भवद्वयसत्कान्तरस्याऽलाभः, तथाऽऽकर्षद्वयसत्कोत्कृष्टान्तरं प्रकृतमार्गणागतयुगलिकतिर्यक्षु न प्राप्यते, तस्मात् पूर्वकोटिस्थितिके मनुष्यभवे निकाचितजिनसत्कर्मणामेव प्राग्वदाकर्षद्वयेन द्विरायुर्बध्नतां यथोक्तमन्तरमुपपादनीयम् । इदञ्च क्षायिकसम्यग्दृशामुत्कृष्टतो भवत्रयस्य भवचतुष्कस्य वा भवनापेक्षया बोध्यम् । क्वचिद् दुष्प्रसहसूरिप्रमुखाणामिव भवपञ्चकस्य करणापेक्षया पुनरन्यथा विज्ञेयम् , श्रीमद्यशोविजयमहोपाध्यायैः कर्मप्रकृतिवृत्तौ क्षायिकसम्यग्दृशामुत्कृष्टतः पञ्चानां भवानामपि प्रतिपादितत्वात् । शुक्ललेश्यायां त्वेतन्न भवत्येव, शुक्ललेश्याकमनुष्याणां सकृदायुर्बन्धे जातेऽन्तर्मुहूर्तमध्ये लेश्याया अवश्यं परावर्तनेन पुनस्तद्बन्धात्प्रागेव मार्गणाविच्छेदभावादिति । 'आहारगम्मि' इत्यादि, आहारकमार्गणायां निरयनरसुरायुषामेकैकस्य प्रकृष्टमन्तरं देशोना कायस्थितिर्भवति । तद्यथा–आहारकमार्गणाया

एकजीवमाश्रित्योत्कृष्टकायस्थितिरङ्गुलाऽसंख्येयभागक्षेत्रगताकाशप्रदेशनिर्लेपनलक्षणासंख्योत्सर्पिण्यवसर्पिणीमाना वर्तते, मार्गणान्तरादाहारकमार्गणायामागतः कश्चित्तत्प्रायोग्यजघन्यायुष्कजीवः स्वायुषस्त्रिभागावशेषे देवायुर्नरकायुर्वा बद्ध्वा मरणमवाप्य च नरकत्वेन देवत्वेन वोत्पद्यते तत्र च देवनरकेतरायुर्बद्ध्वा कालं च कृत्वा तेन रूपेण भवतीत्येवं भूयो भूयो देवनरकेतरायुर्बद्ध्वाऽनुभूयाऽनुभूय च तत्तद् रूपं मार्गणोत्कृष्टकायस्थितिमतिगमयन् चरमे भवे वर्तमानः पुनरपि नरकायुर्देवायुर्वा बध्नाति तस्योक्तप्रमितमन्तरमुपलभ्यं भवति । इदन्त्वत्राविधेयं कालं कृत्वा तस्य जीवस्योत्पादो विग्रहेण देवनारकेषु वक्तव्यः । देशोनत्वं त्वत्र यथागममवसेयम् ।

मनुष्यायुष्कस्याप्यन्तरस्योक्तनीत्या भावना भाव्या, परं तदन्तरं किञ्चिद्बृहत् प्राप्यते, प्रथमायुर्बन्धस्य जघन्यस्थितिकाऽपर्याप्तभवत्रिभागप्रारम्भे लाभादिति । 'तिरियाउस्स' इत्यादि, तिर्यगायुष्कस्योत्कृष्टतोऽन्तरमोघवदस्ति, तच्च सागरोपमशतपृथक्त्वमिति । भावना पुनरत्रौघवदथवा नपुंसकवेदमार्गणायां भणितनीत्या भाव्या । गतमायुः प्रकृतीनामपि प्रकृष्टतो बन्धान्तरम्, गते च तस्मिन् परिसमाप्तमन्तरद्वारमिति ॥२८५-६॥

॥ इति श्रीप्रेमप्रभाटीकाविभूषिते बन्धविधाने उत्तरप्रकृतिबन्धे प्रथमाधिकारे पञ्चममन्तरद्वारं समाप्तम् ॥



॥ षष्ठं सन्निकर्षद्वारम् ॥

इदानीं क्रमायातं षष्ठं स्वस्थानपरस्थानभेदभिन्नमुत्तरप्रकृतिसत्कं सन्निकर्षद्वारं विविदिषुर्ग्रन्थकार आदावोघतः स्वस्थानापेक्षया मतिज्ञानावरणादिप्रकृतीराश्रित्य तन्निरूपयितुमाह

एगं णाणावरणं बंधंतो बंधइ च्च सेसाणि ।
चउणाणावरणाइं हवेज्ज एमेव विग्घाणं ॥२८७॥

(प्रे०) 'एगं' मित्यादि, सन्निकर्षो नाम सम्बन्धः, स च प्रस्तुते प्रकृतीनां परस्परं नियतबन्ध-स्याद्बन्धा ऽबन्धलक्षणो विज्ञेयः, इदमुक्तं भवति—या काचिद्विवक्षितप्रकृतिर्बध्यते तदानीं तया सह तदतिरिक्तप्रकृतीनां यो नियतबन्ध स्याद्बन्धा-ऽबन्धलक्षणः परस्परसम्बन्धः स सन्निकर्षोऽधिगम्यः, सोऽपि स्वस्थानपरस्थानाभ्यां द्विधा । मूलप्रकृत्यभिन्नोत्तरप्रकृतीनां यः सन्निकर्षः स स्वस्थानसन्निकर्षः, अयं भावः—यन्मूलप्रकृतौ कस्याश्चिदेकस्या उत्तरप्रकृतेर्बन्धावसरे तन्मूलप्रकृतिसत्कान्योत्तरप्रकृतीनां यो नियतबन्धो भवति, कासाञ्चित्प्रकृतीनां यो विकल्पेन बन्धो भवति, कासाञ्चिच्च प्रकृतीनां योऽबन्धो भवति, स सर्वोऽपि स्वस्थानसन्निकर्षोऽभिधीयते, तद्यथा-ज्ञानावरणमूलप्रकृतिसत्कमतिज्ञानावरणलक्षणैकोत्तरप्रकृतिबन्धकाले ज्ञानावरणमूलप्रकृतिसत्कश्रुतज्ञानावरणाद्युत्तरप्रकृतीनां नियतबन्धो भवति, सहैव सर्वासां बन्धविच्छेदात् ध्रुवबन्धित्वाच्च । मोहनीयमूलप्रकृतिसत्काऽनन्तानुबन्धिप्रभृतिमोहनीयोत्तरप्रकृतीनां बन्धेन सह मोहनीयमूलप्रकृतिसत्कमिथ्यात्वमोहनीयोत्तरप्रकृतेर्बन्धो विकल्पेन भवति, सास्वादनेऽनन्तानुबन्धिप्रभृतिप्रकृतीनां बन्धभावेऽपि मिथ्यात्वबन्धस्याऽलाभात् मिथ्यात्वगुणे सर्वासां बन्धात् । वेदनीयमूलप्रकृतिसत्कसातवेदनीयेन सहाऽसातवेदनीयस्याऽबन्धो वर्तते, परावर्तमानभावेन बध्यमानत्वात्तयोः । सर्वोत्तरप्रकृतिबन्धविषयकः सन्निकर्षः परस्थानसन्निकर्षः, अयं भावः—विवक्षितैकतरोत्तरप्रकृतिबन्धेन सार्धमन्यासामुत्तरप्रकृतीनां नियतबन्ध स्याद्बन्धाऽबन्धरूपो यः सम्बन्धः स परस्थानसन्निकर्षो विज्ञेयः, तदेवम्—मिथ्यात्वमोहनीयलक्षणैकोत्तरप्रकृतिर्बध्यते तदानीं तया सह मतिज्ञानावरणोत्तरप्रकृतेर्बन्धो नियमेन भवति, ध्रुवबन्धित्वे सति मिथ्यात्वमोहनीयबन्धविच्छेदादूर्ध्वं तद्बन्धविच्छेदात् । मिथ्यात्वमोहनीयेन सह सातवेदनीयस्य बन्धो विकल्पेन भवति सातासातवेदनीययोः परावर्तमानतया बध्यमानत्वेन मिथ्यात्वमोहनीयबन्धेन सह सातवेदनीयाऽबन्धस्याऽपि लाभात् । मिथ्यात्वमोहनीयबन्धेन सह जिननामाहारकद्विकप्रकृतीनामबन्धोऽस्ति, आसां बन्धस्य सम्यक्त्वादिविशिष्टगुणप्रत्ययिकत्वात् मिथ्यात्वस्य सम्यक्त्वादिविशिष्टगुणेष्वबध्यमानत्वाच्च, एवं सर्वासु प्रकृतिषु सन्निकर्षो भाव्यः ।

अथ प्रकृतमाह—मतिश्रुतावधिमनःपर्यवकेवलज्ञानावरणरूपासु पञ्चप्रकृतिष्वन्यतमां प्रकृतिं बध्नतो जीवा मतिज्ञानावरणप्रभृतीः शेषाश्चतस्रः प्रकृतीर्नियमेन बध्नन्ति, आसां प्रकृतीनां ध्रुवबन्धि-

त्वात्, सहैव बन्धविच्छेदाच्च । 'एमेव' इत्यादि, दानलाभभोगोपभोगवीर्यान्तरायप्रकृतिप्रधान-सन्निकर्षो ज्ञानावरणीयप्रधानसन्निकर्षवद् वेदितव्यः ॥२८७॥

साम्प्रतं स्वस्थानापेक्षया दर्शनावरणप्रकृतीनां सन्निकर्षमभिदधन्नाह

थीणद्धि बंधतो बीआवरणस्स सेसअडपयडी ।
णियमा बंधइ एवं पयलपयलणिद्दणिद्दाणं ॥२८८॥
णिद्दं बंधेमाणो ण वा उ बंधेइ थीणगिद्धितिगं ।
बंधइ च्चिअ पण सेसा एमेव हवेज्ज पयलाए ॥२८९॥
एगदरिसणावरणं बंधंतो बंधए च्च सेसाइं ।
तिदरिसणावरणाइं बंधइ ण व पंच णिद्दाओ ॥२९०॥

(प्रे०) 'थीणद्धि' मित्यादि, स्त्यानर्द्धिदर्शनावरणप्रकृतिं बध्नन् दर्शनावरणस्य चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणनिद्राप्रचलानिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलारूपा अष्टौ प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, नवप्रकृत्यात्मकबन्धस्थान एव स्त्यानर्द्धित्रिकस्य बध्यमानत्वात्, नवप्रकृत्यात्मकबन्धस्थानस्य शेषाष्टप्रकृतिबन्धाऽविनाभावात् । 'एव' मित्यादि, प्रचलाप्रचलानिद्रानिद्राप्रधानसन्निकर्षः स्त्यानर्द्धिप्रधानसन्निकर्षवत् समधिगम्यः । 'णिद्द' मित्यादि, निद्राप्रकृतिं बध्नन् जीवः स्त्यानर्द्धिप्रचलाप्रचलानिद्रानिद्रालक्षणं दर्शनावरणप्रकृतित्रयं स्याद् बध्नाति, भावना पुनरिहेत्थं भावनीया—निद्राप्रकृतेर्बन्धोऽपूर्वकरणाख्याष्टमगुणस्थानकस्य प्रथमभागपर्यन्तं भवति, स्त्यानर्द्धित्रिकस्य च द्वितीय गुणस्थानकं यावत्, यदा निद्राप्रकृतिबन्धकः प्रथमद्वितीयगुणस्थानकयोर्वर्तते तदा स्त्यानर्द्धित्रिकस्य बन्धं प्रकरोति, तदूर्ध्वगुणस्थानकेषु च वर्तमानो निद्राप्रकृतिबन्धकस्तद्बन्धं न करोति, अतो निद्राप्रकृतिबन्धकस्य स्त्यानर्द्धित्रिकबन्धविषयके सन्निकर्षे विकल्पो भवति । 'बंधइ' इत्यादि, चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणप्रचलारूपाः पञ्चदर्शनावरणीयप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, दशमगुणस्थानं यावत् दर्शनावरणचतुष्कस्य ध्रुवतया बन्धभावात् प्रचलायास्तु निद्रायाः समकमेव बन्धविच्छेदादिति । 'एमेव' इत्यादि, प्रचलाप्रधानसन्निकर्षो निद्राप्रधानसन्निकर्षवद् भाव्यः । "एगदरिसणावरण" मित्यादि, चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्केऽन्यतमदर्शनावरणं बध्नन् त्रीणि शेषदर्शनावरणानि नियमेन बध्नाति, ध्रुवबन्धित्वात् सममेव बन्धतो व्यवच्छिद्यमानत्वाच्च । 'बंधइ' इत्यादि, शेषा निद्रा-प्रचला-निद्रानिद्रा-प्रचलाप्रचला-स्त्यानर्द्धिरूपाः पञ्चप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, यत एताः प्रकृतयश्चक्षुरादिदर्शनावरणचतुष्कात् प्राग् बन्धतो व्यवच्छिद्यन्ते ॥२८८-९-२९०॥

अथ वेदनीयायुर्गोत्रकर्मणां स्वस्थानसन्निकर्षं दर्शयन्नाह

एगं तु वेअणीअं बंधेमाणो ण चेव बंधेइ ।
तप्पडिवक्खं एव विण्णेयो आउगोआण ॥२९१॥

(प्रे०) 'एगं' मित्यादि, सातासातवेदनीययोर्मध्यादेकतरं बध्नन् तत्र प्रतिपक्षभूतं वेदनीयं नैव बध्नाति, परावर्तमानतया बध्यमानत्वेनैकस्य बन्धेऽपरबन्धविरोधात् । 'एव' मित्यादि, आयुर्गो-

गोत्रकर्मणोरुत्तरप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षो वेदनीयप्रधानसन्निकर्षवद् विज्ञेयः, आयुष्कर्मणो भावना पुनरित्थं विधेया—एकस्मिन्भवे एकगतिकमेवायुर्बध्यते नापरगतिकम्, अतः एकायुर्बन्धेऽपरेषामायुषां बन्धाभावोऽस्ति ॥२९१॥

इदानीं मोहनीयकर्मणां स्वस्थानसन्निकर्षमाह

मिच्छत्त बंधतो णियमा बंधेइ सेसधुवबंधी ।
अट्ठारस अण्णयरं एग वेअं तहा जुगल ॥२९२॥
अणमेगं बंधंतो बंधइ मिच्छं णवाऽण्णधुवबंधी ।
सत्तर बंधइ णियमा एग वेअं तहा जुगलं ॥२९३॥
मिच्छअणा एगदुइअकसायबंधी व बंधए णियमा ।
सेसा धुवबंधी तह वेअ जुगल च अण्णयरं ॥२९४॥
मिच्छाऽडकसायिगतइअकसायबंधी व बंधए णियमा ।
सेसा धुवबंधी तह वेअ जुगल च अण्णयरं ॥२९५॥
बंधइ णियमा कमसो बंधंतो चरमकोहमयमाया ।
तिदुइगसंजलणाऽण्णा वा तह अण्णयरवेअजुगलाणि ॥२९६॥ (गीतिः)
संजलणलोहबंधी वा बंधेइ धुवबंधिपयडीओ ।
सेसा अट्ठारस तह वेअं जुयल पि अण्णयरं ॥२९७॥
पुमबंधी संजलणा णियमा बंधेइ णेव पडिवक्खा ।
वा सेसा धुवबंधी पण्णरस अण्णयरजुगलं पि ॥२९८॥
बंधइ ण णपुमबंधी वेअदुगं बंधए धुवा णियमा ।
तह अण्णयरं जुगल एवं थीअ णवरि व मिच्छं ॥२९९॥
हस्सरइबंधगोऽण्णजुगलं ण बारसकसायमिच्छा वा ।
णियमेगं वेअं तह सेसेवं अरइसोगाणं ॥३००॥
बारसकसायमिच्छा वा भयबंधी उ बंधए णियमा ।
सेसधुवाऽण्णयरजुगलवेआ एमेव कुच्छाए ॥३०१॥

(प्रे०) "**मिच्छत्त**"मित्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयप्रकृतिं बध्नन्ननन्तानुबन्धिप्रभृतिषोडशकषाया भयकुत्से इत्यष्टादशानां मोहनीयप्रकृतीनां स्त्रीपुरुषनपुंसकवेदेष्वन्यतमस्य वेदस्य हास्यरतिशोकारतियुगलयोरेकतरस्य युगलस्य च नियमेन बन्धं विदधाति, तत्र ध्रुवबन्धिनीनां ध्रुवबन्धित्वात् यथायोगं द्वितीयादिगुणादौ विच्छिद्यमानत्वाच्चाऽन्यासां तु प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धस्य तद्बन्धाऽविनाभावित्वाच्च, अन्यत्राऽप्येतादृशे स्थलेऽयमेव हेतुः समधिगम्यः । "**अणमेगं**"मित्यादि, अनन्तानुबन्धिचतुष्कमध्येऽन्यतमां क्रोधादिप्रकृतिं बध्नन् मिथ्यात्वमोहनीयं विकल्पेन बध्नाति, तच्चैवम्—मिथ्यात्वप्रकृतेर्बन्धविच्छेदो मिथ्यात्वगुणस्थानकचरमसमये भवति, तस्माद् यदाप्रकृतप्रकृतिबन्धविधायी प्रथमगुणस्थानके वर्तते तदा मिथ्यात्वमोहनीयप्रकृतिं बध्नाति द्वितीयगुणस्थानके वर्तते तदा नैव बध्नाति । शेषास्तिस्रोऽनन्तानुबन्धिप्रकृतयः, अप्रत्याख्यानावरण-

प्रत्याख्यानावरणसंज्वलनचतुष्करूपा द्वादशकषायाः, भयजुगुप्से चेति सप्तदशप्रकृतीनां स्त्रीपुरुषनपुंसकेष्वन्यतमवेदस्य, हास्यरतिशोकारतियुगलयोरेकतरस्य च युगलस्य बन्धं नियमेन करोति, उपपत्तिस्त्विह मिथ्यात्वप्रधानसन्निकर्षवज्ज्ञेया । "मिच्छा" इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्केऽन्यतमामेकां कषायप्रकृतिं बध्नन् मिथ्यात्वमोहनीयमनन्तानुबन्धिचतुष्कं च विकल्पतो बध्नाति, भावनाविधिस्त्वित्थम्—मिथ्यात्वमोहनीयं प्रथमगुणस्थानस्य पर्यन्तसमयेऽनन्तानुबन्धिचतुष्कं च द्वितीयगुणस्थानान्ते बन्धतो व्यवच्छिद्येते, अतो यदा प्रकृतप्रकृतिबन्धकः प्रथमगुणस्थानके वर्तते तदा मिथ्यात्वमोहनीयमनन्तानुबन्धिचतुष्कं च बध्नाति, द्वितीयतृतीयतुर्यगुणस्थानके वर्तमानो मिथ्यात्वमोहनीयं तृतीयचतुर्थगुणस्थानके वर्तमानश्चानन्तानुबन्धिचतुष्कमपि नैव बध्नाति । स एव प्रधानीकृतक्रोधाद्यन्यतमवर्जोऽप्रत्याख्यानावरणत्रयं प्रत्याख्यानावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्के इत्येकादशकषायान् भयजुगुप्से वेदत्रयेऽन्यतम वेदं हास्यादियुगलद्वय एकतरयुगलञ्च नियमेन बध्नाति, घटना पुनरिह मिथ्यात्वप्रधानसन्निकर्षवद् विज्ञेया । "मिच्छऽव" इत्यादि, प्रत्याख्यानावरणाख्यतृतीयकषायचतुष्केऽन्यतमकषायं बध्नन् मिथ्यात्वमोहनीयमनन्तानुबन्धिचतुष्कमप्रत्याख्यानावरणचतुष्कञ्च विकल्पतो बध्नाति, तत्पुनरेवम्—प्रथमद्वितीयतुर्यगुणस्थानकानां प्रान्ते यथाक्रमं मिथ्यात्वमोहनीयानन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यावरणचतुष्करूपाः प्रकृतयो व्यवच्छिद्यन्ते प्रत्याख्यावरणचतुष्कस्य बन्धः पञ्चमगुणस्थानपर्यन्तं वर्तते तस्माद् यदा पञ्चमगुणस्थानके प्रकृतप्रकृतिबन्धकः स्यात् तदा मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृतीर्न बध्नाति प्रथमगुणस्थानस्थश्च स बध्नाति । शेषास्त्रयः प्रत्याख्यानवरणकषायाः संज्वलनचतुष्कं भयजुगुप्से चेति नव ध्रुवबन्धिमोहनीयप्रकृतीरन्यतमवेदमन्यतरहास्यादियुगलं च नियमेन बध्नाति, अत्राऽपि हेतुर्मिथ्यात्वप्रधानसन्निकर्षवज्ज्ञेयः । "बधइ" इत्यादि, संज्वलनक्रोधमानमायारूपासु तिसृषु प्रकृतिष्वेकतरां प्रकृतिं बध्नन् यथाक्रमं त्रिद्व्येकसंज्वलनप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, इदमुक्तं भवति—संज्वलनक्रोधस्य बन्धकः संज्वलनमानमायालोभरूपास्तिस्रः प्रकृतीः, संज्वलनमानबन्धकः संज्वलनमायालोभलक्षणे द्वे प्रकृती, संज्वलनमायाबन्धकश्च संज्वलनलोभं नियमेन बध्नाति, संज्वलनक्रोधादीनां ध्रुवबन्धित्वे सति क्रमशो व्यवच्छिद्यमानत्वात् , मिथ्यात्वमोहनीयमनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकषायान् भयजुगुप्से अन्यतमवेदमन्यतरच्च हास्यादियुगलं तथा संज्वलनमानबन्धकः संज्वलनक्रोधम् , संज्वलनमायाबन्धकः संज्वलनक्रोधमानरूपे द्वे प्रकृती-विकल्पतो बध्नाति, प्रथमादिगुणस्थानकेषु बध्यमानत्वेन नवमगुणस्थानकस्य द्वितीयादिभागेषु चाबध्यमानत्वेन प्रथमादिगुणस्थानस्थायिना तासां बध्यमानत्वात् , नवमगुणस्थानद्वितीयादिभागस्थायिनाऽबध्यमानत्वाच्च । "संजलण" इत्यादि, संज्वलनलोभस्य बन्धको मिथ्यात्वमोहनीयमनन्तानुबन्धिचतुष्कमप्रत्याख्यानावरणचतुष्कं प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं संज्वलनक्रोधमानमायात्रयं

भयजुगुप्से चेत्यष्टादशशेषध्रुवबन्धिमोहनीयप्रकृतीः, अन्यतमवेदं, एकतरं हास्यादियुगलं विकल्पेन बध्नाति, प्रकृतीनामासां प्रथमादिगुणस्थानस्थायिना बध्यमानत्वात् , नवमगुणस्थानपञ्चम-भागस्थायिना चाऽबध्यमानत्वात् । "पुम" इत्यादि, पुरुषवेदस्य बन्धकः संज्वलनचतुष्कमवश्यमेव बध्नाति, ध्रुवबन्धित्वे सति पुरुषवेदबन्धविच्छेदादूर्ध्वं तासां बन्धविच्छेदात् ।

'णेव' इत्यादि, पुरुषवेदबन्धकः स्त्रीनपुंसकवेदौ न बध्नाति, एकवेदस्य बन्धे-ऽपरवेदस्य बन्धविरोधात् । "वा" इत्यादि, पुरुषवेदबन्धविधायी मिथ्यात्वमोहनीयानन्तानुबन्धि-चतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कभयजुगुप्सारूपाणां पञ्चदशध्रुवबन्धिमोहनीय-प्रकृतीनामन्यतरस्य च हास्यादियुगलस्य बन्धं विकल्पेन विदधाति, भावनाप्रकारस्त्वेवम्–पुरुषवे-दस्य बन्धो नवमगुणस्थानकस्य प्रथमभागपर्यन्तं वर्तते , एतासां प्रकृतीनां बन्धविच्छेदो यथा-योगं प्रथमगुणस्थानादारभ्याऽष्टमगुणस्थाने भवति, अतो यदा पुरुषवेदबन्धकः प्रथमाद्यष्टमान्त-गुणस्थानकेषु वर्तमानो यथासम्भवमेताः प्रकृतीर्बध्नाति नवमगुणस्थाने वर्तमानस्तु नैव बध्नाति । "बंधइ" इत्यादि, नपुंसकवेदं बध्नन् स्त्रीपुरुषवेदद्वयं नैव बध्नाति, एकवेदस्य बन्धेऽपरस्य बन्धा-भावात् । मिथ्यात्वमोहनीयानन्तानुबन्ध्यादिषोडशकषायभयजुगुप्सारूपा एकोनविंशतिध्रुवबन्धि-प्रकृतीरन्यतरहास्यादियुगलं च नियमेन बध्नाति, प्रकृतप्रकृतीनामेकोनविंशतेर्ध्रुवबन्धित्वाद् अन्यतरहास्यादियुगलस्य च प्रधानीकृतप्रकृतप्रकृतिबन्धस्य तद्बन्धाऽविनाभावित्वाच्च ।

स्त्रीवेदबन्धकस्यापि मोहनीयप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षो नपुंसकवेदप्रधानसन्निकर्षवद् बोद्धव्यः, नवरं मिथ्यात्वस्य स्याद्बन्धो वक्तव्यः, स्त्रीवेदबन्धविच्छेदादर्वागेव मिथ्यात्वस्य बन्धविच्छेदात् , तच्च 'पावरं' इत्यादिना विशेषेण दर्शितम् । 'हस्स" इत्यादि, हास्यरतियुगलं बध्नन् शोकारतियुगलं नैव बध्नाति, तद्विरोधित्वात्तस्य । अनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकषायान् मिथ्या-त्वमोहनीयं च विकल्पेन बध्नाति । आसां प्रकृतीनां बन्धविच्छेदादूर्ध्वमस्य युगलस्य बन्ध-विच्छेदादिति । सञ्ज्वलनचतुष्कं भयजुगुप्से च नियमेन बध्नाति, ध्रुवबन्धित्वे सति संज्व-लनचतुष्कस्य प्रकृतयुगलस्य पश्चादेव भयकुत्सयोश्च तेन सहैव बन्धविच्छेदात् , वेदत्रयेऽ-न्यतमवेदं नियमेन बध्नाति, भावना पुनरेवम्–प्रथमगुणस्थानं यावन्नपुंसकवेदमपि बध्नाति प्रथमद्वितीयगुणस्थानपर्यन्तं स्त्रीवेदमपि बध्नाति तदूर्ध्वं पुनः केवलं पुरुषवेदमेव बध्नातीति । वेदत्रयस्याऽध्रुवबन्धित्वेऽपि यथासम्भवमेकवेदस्य नवमगुणस्थानप्रथमभागं यावदवश्यतया बध्य-मानत्वादिति । 'एव'मित्यादि, अरतिशोकयोरपि सन्निकर्षो हास्यरतिसन्निकर्षवदवसातव्यः । 'भारस' इत्यादि, भयमोहनीयं बध्नन् अनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकषायान्मिथ्यात्वमोहनीयं च विकल्पेन बध्नाति, यत एताः प्रकृतयो यथायोगं प्रथमादिगुणस्थानकेषु बध्यन्तेऽपूर्वकरणगुणस्थाने च न बध्यन्ते । संज्वलनचतुष्कं जुगुप्सां हास्यादियुगलद्वयेऽन्यतरयुगलमन्यतमवेदं निय-

मेन बध्नाति तत्र संज्वलनचतुष्कस्य जुगुप्सायाश्च क्रमेण ध्रुवबन्धित्वे सति प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धविच्छेदादूर्ध्वं तत्समं च बन्धविच्छेदात् शेषाणां तु प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धस्य तद्बन्धाऽविनाभावित्वात् । 'एवमेव" इत्यादि, जुगुप्सामोहनीयप्रधानसन्निकर्षो भयमोहनीयप्रधानसन्निकर्षवद् विभावनीयः, ध्रुवबन्धित्वे सति सममेव बन्धतो व्यवच्छिद्यमानत्वादनयोरिति ॥२९२-३०१॥

साम्प्रतमोघतो नामकर्मप्रकृतीनां स्वस्थानसन्निकर्षं प्ररूपयिपुरादौ नरकगतिनामप्रकृतेस्तमाह—

णिरयगइं बधंतो, धुवणवगपणिंदिविउवदुगहुंडं ।
णिरयाणुपुव्विकुखगइपरघाऊसासअथिरछक्काणि ॥३०२॥ (गीतिः)
तसचउगं सगवीसा णियमा बंधइ ण सेसगुणचत्ता ।

(प्रे०) 'णिरयगइं' इत्यादि, नरकगतिनामकर्म बध्नन् वर्णचतुष्कतैजसकार्मणशरीरद्वयाऽगुरुलघूपघातनिर्माणरूपा नव ध्रुवबन्धिनामप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियशरीरवैक्रियाङ्गोपाङ्गहुण्डकसंस्थाननरकानुपूर्वीकुखगतिपराघातोच्छ्वासाऽस्थिराऽशुभदुर्भगदुःस्वराऽनादेयाऽयशःकीर्तित्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकरूपाः प्रकृतयश्चेति सर्वसंख्यया सप्तविंशतिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, कासाञ्चित्प्रकृतीनां ध्रुवबन्धित्वात् कासाञ्चित्प्रकृतीनां प्रतिपक्षरहितबन्धप्रायोग्यत्वेन ध्रुवबन्धकल्पत्वाच्च। ' ' इत्यादि, देवमनुष्यतिर्यग्गतित्रयमेकेन्द्रियादिजातिचतुष्कमौदारिकाहारकद्विके संहननषट्कं प्रथमादिसंस्थानपञ्चकं सुखगतिर्देवमनुष्यतिर्यगानुपूर्वीत्रयं स्थिरषट्कं स्थावरचतुष्कमातपोद्योतजिननामत्रयं चेत्येकोनचत्वारिंशत्शेषप्रकृतीर्नैव बध्नाति, नरकगतिनाम्ना सह प्रकृतीनामासां बन्धस्य विरोधात् ॥३०२॥

अथ तिर्यग्गतिनाम्नः स्वस्थान सन्निकर्षो भण्यते

तिरियगइं बंधंतो णवधुवउरलतिरिअणुपुव्वी ॥३०३॥
णियमा बंधइ वायवदुपुरलुवंगपरघायऊसासं ।
अण्णयरा वि व बंधइ पयडी संघयणसरखगई ॥३०४॥
णिरयमणुस्ससुरविउवआहारदुगजिणणामकम्माणि ।
बंधेइ णेव णियमाऽण्णाऽण्णयरा जाइआईओ ॥३०५॥

(प्रे०) "तिरिय"इत्यादि, तिर्यग्गतिनाम बध्नन् नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतीरौदारिकशरीरतिर्यगानुपूर्वीप्रकृतिद्वयं च नियमेन बध्नाति, नवध्रुवबन्धिप्रकृतीनां ध्रुवबन्धित्वात् तिर्यग्गतिबन्धस्यौदारिकशरीरतिर्यगानुपूर्वीद्वयबन्धाऽविनाभावित्वात् ।

"वायव" इत्यादि आतपोद्योतौदारिकाङ्गोपाङ्गपराघातोच्छ्वासनामरूपाः पञ्चप्रकृतीः संहननषट्केऽन्यतमसंहननं स्वरद्वयेऽन्यतरदेकं स्वरं खगतिद्वयेऽन्यतरामेकां खगतिं विकल्पेन बध्नाति । किमुक्तं भवति—आतपादिपञ्चकस्य कदाचिद् बन्धकः स्यात् कदाचिच्चाऽबन्धकः, तथा संहननस्वरखगतिप्रकृतिषु प्रत्येकमेकतरप्रकृतेः कदाचिद्बन्धकः स्यात् कदाचिच्चासां सर्वासां प्रकृतीनामबन्धकः स्यात् । भावना पुनरेवं कर्त्तव्या—तिर्यग्गतिनामबन्धकः षड्विंशति-

बन्धस्थाने आतपनाम षड्विंशतिबन्धस्थाने त्रिंशद्बन्धस्थाने चोद्योतनाम च बध्नाति, शेषतिर्यक्प्रायोग्यबन्धस्थानेषु नैव बध्नाति द्वीन्द्रियादिजातिनामसिरौदारिकाङ्गोपाङ्गनामैकतमसंहनननाम च बध्नाति, एकेन्द्रियजातिनाम्ना सह तु नैव बध्नाति, पर्याप्तप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले पराघातोच्छ्वासनाम्नी बध्नाति अपर्याप्तप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले तु नैव बध्नाति । पर्याप्तद्वीन्द्रियादिप्रायोग्यप्रकृतिबन्धवेलायामेकतरं स्वरमेकतरं खगतिनाम च बध्नाति, एकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धवेलायां तानि सर्वाण्यपि नैव बध्नाति, तस्मादत्र सन्निकर्षे विकल्पोऽभिहितः । "णिरय" इत्यादि, नरकमनुष्यदेवगतित्रयं वैक्रियद्विकमाहारकद्विकं देवमनुष्यनरकानुपूर्वीत्रयं जिननाम चेत्येकादशप्रकृतीर्नैव बध्नाति, तेन सह बन्धतो विरोधित्वात्तासामिति । "णियमा" इत्यादि, एकेन्द्रियादिजातीनामेकतरां जातिं संस्थानषट्कस्याऽन्यतमसंस्थानं सुस्वरवर्जत्रसनवकदुःस्वरवर्जस्थावरनवकयुगलनामान्यतरा नवप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । किमुक्तं भवति—त्रसस्थावरनाम्नोरेकतरं बध्नाति, बादरसूक्ष्मनाम्नोरेकतरं बध्नाति पर्याप्ताऽपर्याप्तनाम्नोरेकतरं बध्नाति, एवं प्रत्येकसाधारणादिष्वपि वक्तव्यम् ॥३०३-४-५॥

साम्प्रतं मनुष्यगतिनाम्नः स्वस्थानसन्निकर्षं निरूपयन्नाह—

> मणुयगइ बंधतो धुवेणवगपणिदिउरलजुगलाणि ।
> मणुयाणुपुव्विबायरतसपत्तेआणि बधए णियमा ॥३०६॥ (गीतिः)
> जिणपरघाऊसासं व बंधइ सरखगई वि वाऽण्णयरा ।
> संघयणागिइपज्जाइछजुगलाण णियमाऽण्णा णो ॥३०७॥

(प्रे०) 'मणुयगइ' मित्यादि, मनुष्यगतिनाम बध्नन् नामनवध्रुवबन्धिप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकशरीरौदारिकाङ्गोपाङ्गमनुष्यानुपूर्वीबादरत्रसप्रत्येकरूपाः नवप्रकृतयश्चेति षोडश प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, नवनामध्रुवबन्धिनीनां ध्रुवबन्धित्वात् मनुष्यगतिबन्धविच्छेदादूर्ध्वमपि बध्यमानत्वाच्च तथा मनुष्यगतिबन्धस्य प्रकृतपञ्चेन्द्रियजात्यादिप्रकृतिबन्धाऽविनाभावित्वात् । 'जिण' इत्यादि, जिनपराघातोच्छ्वासनामानि विकल्पेन बध्नाति, स्वरद्वये खगतिद्वये चाऽन्यतरस्वरमन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति । तद्भावना—मनुष्यगतेर्बन्धः पञ्चविंशतिबन्धस्थाने एकोनत्रिंशद्बन्धस्थाने त्रिंशद्बन्धस्थाने च भवति तत्रापर्याप्तप्रायोग्यपञ्चविंशतिं बध्नन् खगतिस्वरयोः सर्वथाऽबन्धकस्तथैव जिनपराघातोच्छ्वासप्रकृतीरपि नैव बध्नाति । शेषबन्धस्थानद्वये पराघातोच्छ्वासनाम्नी, अन्यतरां खगतिमन्यतरस्वरनाम च बध्नाति एकोनत्रिंशतो बन्धको जिननाम न बध्नाति त्रिंशतं बध्नन् सम्यग्दृष्टिर्देवो नारको वा जिननाम बध्नाति । 'संघयण' इत्यादि, देहलीदीपकन्यायेन 'अन्यतर' पदं संहननादिपदैः सार्धमपि सम्बन्धनीयम् , संहननषट्केऽन्यतमसंहननं संस्थानषट्केऽन्यतमसंस्थानं, पर्याप्तापर्याप्तयोः स्थिरास्थिरयोः शुभाशुभयोः सुभगदुर्भगयोरादेयानादेययोर्यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योश्च प्रत्येकमेकतरां प्रकृतिं नियमतो बध्नाति, प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धस्यैतदन्यतमप्रकृति-

बन्धाविनाभावित्वात् । 'अपणा'इत्यादि, देवद्विकनरकद्विकतिर्यग्द्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकस्थावरसूक्ष्मसाधारणाऽऽतपोद्योतरूपाः पञ्चदशप्रकृतीर्न बध्नाति, मनुष्यगतिव्यतिरिक्तगतिप्रायोग्यप्रकृतिबन्धेन सहाऽऽसां प्रकृतीनां बन्धभावात् ॥३०६-७॥

अथ देवगतिनाम्नः स्वस्थानसन्निकर्षं चिन्तयन्नाह-

देवगइ बधंतो धुवणवगपणिंदिविउवजुगलाणि ।
पढमागिइसुखगइपरघाऊसाससुरअणुपुव्वी ॥३०८॥
तसचउगं सुहगतिगं णियमाऽण्णयरा थिराइजुगलतिगा ।
व जिणाहारदुगाइं णाऽण्णा समगइव्व आणुपुव्वीणं ॥३०९॥ (गीति)

(प्रे०) 'देवगइ'मित्यादि, देवगतिनामकर्म बध्नन् नव ध्रुवबन्धिनामप्रकृतीः पञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतिपराघातोच्छ्वासदेवानुपूर्वीत्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकसुभगसुस्वरादेयरूपाः पञ्चदशप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्राग्वत् शेषाणां तु तद्बन्धाविनाभावित्वाद्देवगतिबन्धस्य । 'ऽण्णयरा' इत्यादि, स्थिरास्थिरयोः शुभाशुभयोर्यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योश्च प्रत्येकमेकतरां प्रकृतिं नियमेन बध्नाति । 'व' इत्यादि, जिननामाहारकद्विकरूपं प्रकृतित्रय विकल्पेन बध्नाति, तद्यथा-जिननामसत्कर्मा देवगतिमाबध्नन् तीर्थकृन्नाम बध्नाति, तदितरस्तु न बध्नाति, कश्चिद् देवगतिं बध्नन् सप्तमाष्टमगुणस्थानयोराहारकद्विकं बध्नाति तदितरस्तु न बध्नाति । 'णाऽण्णा' इत्यादि, उक्तव्यतिरिक्तशेषप्रकृतीर्नैव बध्नाति, देवगतिभिन्नगतिभिः सह यथायोगं बन्धप्रायोग्यत्वात् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-नरकतिर्यग्मनुष्यगतित्रयमेकेन्द्रियादिजातिचतुष्कमौदारिकद्विकं संहननषट्कं द्वितीयादिसंस्थानपञ्चकमशुभखगतिर्नरकतिर्यङ्मनुष्यानुपूर्वीत्रयं स्थावरचतुष्कं दुर्भगदुःस्वरानादेयत्रयमातपोद्योतनाम्नी चेति त्रयस्त्रिंशदिति । 'समगइव्व'इत्यादि,नरकतिर्यग्मनुष्यदेवानुपूर्वीचतुष्कप्रधानसन्निकर्षः स्व-स्वगतिप्रधानसन्निकर्षवद् बोद्धव्यः, तद्यथा-देवानुपूर्वीनामप्रकृतेर्देवगतिवत् , मनुष्यानुपूर्वीनामप्रकृतेर्मनुष्यगतिवत् , एवं तिर्यग्नरकानुपूर्वीनाम्नोरपि वक्तव्यम् ॥३०८-९॥

साम्प्रतमेकेन्द्रियजातिनाम्नः स्वस्थानसन्निकर्षो भण्यते-

णियमेगिंदियबंधी बधेइ खलु णवधुवतिरिदुगाणि ।
ओरालहुंडथावरदुहगाणादेयणामाणि ॥३१०॥
परघाऊसासायवदुगाणि व छवायराइजुगलाण ।
वंधइ चिअ छऽण्णयरा ण उ सेसा थावरस्सेवं ॥३११॥

(प्रे०) 'णियमे' इत्यादि, एकेन्द्रियजातिनामबन्धको नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतीस्तिर्यग्द्विकौदारिकशरीरहुण्डकसंस्थानस्थावरदुर्भगानादेयनामानि च नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्राग्वत् शेषाणां तु तद्बन्धाविनाभावित्वादेकेन्द्रियजातिबन्धस्य । 'परघा'इत्यादि, पराघातोच्छ्वासातपोद्योतनामानि विकल्पेन बध्नाति, तद्यथा-अपर्याप्तनाम्ना सहैकेन्द्रियनाम बध्नन् पराघातोच्छ्वासनाम्नी न

बध्नाति, पर्याप्तनाम्ना च सह ते बध्नाति, षड्विंशतिनामप्रकृतिबन्धस्थानं बध्नन्नातपोद्योतनाम्नो-रन्यतरद् बध्नाति, त्रयोविंशतिनामप्रकृतिबन्धस्थानं पञ्चविंशतिप्रकृतिबन्धस्थानं वा बध्नन् नैव बध्नाति, अतोऽत्र सन्निकर्षे विभाषा प्रदर्शिता । 'छण्णयरा' इत्यादि, बादरसूक्ष्मपर्याप्ताऽपर्याप्त-प्रत्येकसाधारणस्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिरूपेषु षड्युगलेषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं नियमतो बध्नाति, प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धस्यैतदन्यतरप्रकृतिबन्धाविनाभावित्वात् । 'ण उ' इत्यादि, उक्तातिरिक्तानां शेषप्रकृतीनां बन्धं न करोति, द्वीन्द्रियादिबन्धप्रायोग्यत्वात् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—नरकमनुष्यदेवगतित्रयं द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कमौदारिकाङ्गोपाङ्गं वैक्रिय-द्विकमाहारकद्विकं संहननषट्कं प्रथमादिसंस्थानपञ्चकं खगतिद्वयं नरकमनुष्यदेवानुपूर्वीत्रयं त्रस-सुभगसुस्वरादेयनामानि दुःस्वरनाम जिननाम चेति चतुस्त्रिंशदिति । 'थावरस्सेवं' इति, स्थावर-प्रधानसन्निकर्ष एकेन्द्रियप्रधानसन्निकर्षवदधिगम्यः, स्थावरनाम्न एकेन्द्रियजात्या सह नियमेन बध्य-मानत्वात् ॥३१०-११॥

साम्प्रतं द्वीन्द्रियादिजातित्रयस्य स्वस्थानसन्निकर्षमाह

विगलक्खं बंधंतो णवधुवतिरिउरलतसकुगाणि सहा ।
छेवट्ठं परोअं कुहगाणादेयहुंडाणि ॥३१२॥
णियमाऽण्णयरा चउरो चउपज्जाइजुगलाण बंधेइ ।
कुसरखगइपरघाकसासुज्जोआणि व ण सेसा ॥३१३॥

(प्रे०) 'विगल' इत्यादि, 'विकलाक्षं' द्वीन्द्रियत्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियजातिरूपं, तस्मिन्नेकै-तममिन्द्रियजातिनाम बध्नन् नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतीस्तिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्व्यौदारिकशरीरौदारि-काङ्गोपाङ्गत्रसबादरसेवार्तसंहननप्रत्येकदुर्भगाऽनादेयहुण्डकसंस्थानरूपा एकादशप्रकृतीश्च नियमतो बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्राग्वत् शेषाणां पुनस्तत्तज्जातिबन्धस्य तद्बन्धाऽविनाभावित्वात् । "अण्णा-यरा" इत्यादि, पर्याप्ताऽपर्याप्तस्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिरूपेषु चतुर्युगलेषु प्रत्येक-मेकतरां प्रकृतिं नियमेन बध्नाति, हेतुरत्रैकेन्द्रियजातिप्रधानसन्निकर्षवज्ज्ञेयः। 'कुसर' इत्यादि, दुःस्व-राऽशुभखगतिपराघातोच्छ्वासोद्योतरूपाणां पञ्चप्रकृतीनां बन्धं विकल्पेन करोति, यतोऽपर्याप्तनाम-बन्धको द्वीन्द्रियादिजातिं बध्नन्नैताः प्रकृतीर्बध्नाति, तदितरः पुनर्बध्नाति। 'ण' इत्यादि, एतद्व्य-तिरिक्तनामप्रकृतीनां बन्धं न करोति, शेषप्रकृतीनां द्वीन्द्रियादिजातिनाम्ना सह विरोधित्वात् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—देवनरकमनुष्यगतित्रयं स्वजातिवर्जजातिचतुष्कं वैक्रियद्विकमाहारकद्विकं प्रथमादिसंहननपञ्चकं प्रथमादिसंस्थानपञ्चकं सुखगतिर्देवनरकमनुष्यानुपूर्वीत्रयं सुभगसुस्वरादेयत्रयं स्थावरसूक्ष्मसाधारणत्रयमातपजिननामद्वयं चेति त्रयस्त्रिंशदिति ॥३१२-१३॥

अथ पञ्चेन्द्रियजातिनाम्नः स्वस्थानसन्निकर्षं प्रतिपादयति

पंचक्खं बंधंतो णवधुवपत्तेअबायरतसाणि ।
णियमा वाऽऽहारगदुगजिणपरघूसासउज्जोअं ॥३१४॥
चउजाइथावरदुगायवसाहाराणि णेव बंधेइ ।
संघयणस्सरखगई वाऽण्णयरा वि णियमा सेसा ॥३१५॥

(प्रे०) 'पंचक्खं' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातिनाम बध्नन् नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयः प्रत्येक-बादरत्रसनामप्रकृतयश्चेति द्वादशप्रकृतीनां बन्धं नियमेन विदधाति, तत्र ध्रुवाणां प्राग्वद् ,शेषाणां तु पञ्चेन्द्रियजातिबन्धस्य शेषबन्धाविनाभावित्वात् । 'वा' इत्यादि, आहारकद्विकजिननामपराघातो-च्छ्वासोद्योतनामानि विकल्पेन बध्नाति, भावना पुनरेवम्—अप्रमत्तसंयतेषु कश्चन पञ्चेन्द्रियजाति-बन्धक आहारकद्विकं बध्नाति, तदितरस्तु नैव बध्नाति । निकाचितजिननामा पञ्चेन्द्रियजाति बध्नन् जिननाम बध्नाति, न त्वन्यः । अपर्याप्तनामबन्धकः पञ्चेन्द्रियजातिमाबध्नन् पराघातोच्छ्-वासनाम्नी न बध्नाति, पर्याप्तनामबन्धकश्च बध्नाति । पर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकः कश्चित् पञ्चेन्द्रियजातिनाम बध्नन्नुद्योतनाम बध्नाति, तदितरो मनुष्यादिप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकः पञ्चेन्द्रियजातिमाबध्नन्नैव बध्नाति तस्मादत्र प्रकृतीनामासां बन्धस्य विभाषा कृता । 'चउ' इत्यादि, एकेन्द्रियादिजातिचतुष्कस्थावरसूक्ष्मातपसाधारणनामानि नैव बध्नाति, आसां प्रकृतीनां बन्धस्य पञ्चेन्द्रियजातिनाम्ना सह विरोधात् । 'संघयण' इत्यादि, षट्सु संहन-नेषु स्वरद्वये खगतिद्वये च प्रत्येकमन्यतमामेकामपि प्रकृतिं विकल्पेन बध्नाति, कथमिति चेद् , आह—पञ्चेन्द्रियजातिं बध्नन् यदा देवनरकप्रायोग्यप्रकृतीर्बध्नाति तदा संहननं सर्वथैव न बध्नाति, देवनारकेषु संहननाभावात् , यदा पुनर्मनुष्यतिर्यक्प्रायोग्यप्रकृतीर्बध्नाति तदा संहनन-मेकतमद् बध्नाति । अपर्याप्तनामबन्धकः पञ्चेन्द्रियजातिबन्धकाले स्वरखगतिनाम्नी नैव बध्नाति, तदितरस्तु बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, अभिहितेतरशेषप्रकृतिसमूहेषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं नियमेन बध्नाति, प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धस्यैतदन्यतरप्रकृतिबन्धाऽविनाभावित्वात् एवमेतादृशस्थले-ऽन्यत्राऽपि हेतुः स्वयं भाव्यः । ते चेमे शेषप्रकृतिसमूहाः—गतिचतुष्कम् , औदारिकवैक्रियशरीरद्वयम् , औदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयम् , संस्थानषट्कम् आनुपूर्वीचतुष्कम् , पर्याप्ताऽपर्याप्ते, स्थिराऽस्थिरे, शुभाशुभे, सुभगदुर्भगे आदेयानादेये यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति ॥३१४-१५॥

इदानीमौदारिकशरीरनाम्नः सन्निकर्षं दर्शयति ।

उरलतणुं बधंतो णवधुवबंधी उ बंधए णियमा ।
वा जिणपरघाऊसासायवदुगउरलुवगाणि ॥३१६॥
बंधइ णेव णिरयसुरविउवाहारजुगलाणि बंधइ वा ।
संघयणस्सरखगई अण्णयरा वि णियमा सेसा ॥३१७॥

(प्रे०) "उरलतणु" इत्यादि, औदारिकशरीरनाम बध्नन् नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ध्रुवबन्धित्वे सति तदूर्ध्वं बन्धविच्छेदात् । "वा" इत्यादि तीर्थकृन्नामपराघातोच्छ्वासातपोद्योतौदारिकाङ्गोपाङ्गनामानि विकल्पतो बध्नाति, जिननामपराघातोच्छ्वासनाम्नां सन्निकर्षविषया भावना पञ्चेन्द्रियजातिप्रधानसन्निकर्षवत्कर्तव्या । आतपोद्योतौदारिकाङ्गोपाङ्गनामप्रकृतीनां तु भावनैवम्-षड्विंशतिनामप्रकृतिबन्धस्थानमाबध्नन्नौदारिकशरीरनामबन्धक आतपोद्योतयोरन्यतरां प्रकृतिं बध्नाति, पञ्चविंशतिनामप्रकृतिबन्धस्थानं त्रयोविंशतिनामप्रकृतिबन्धस्थानं वा बध्नन् स आतपोद्योतनाम्नी नैव बध्नाति । एकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाल औदारिकशरीरबन्धक औदारिकाङ्गोपाङ्गं नैव बध्नाति, द्वीन्द्रियादिप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले तु तद् बध्नातीतिकृत्वाऽत्र विकल्पोऽभिहितः । "बंधइ णेव" इत्यादि, नरकद्विकदेवद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकानि स नैव बध्नाति, विरोधात् । "संघयण" इत्यादि, संहननषट्के स्वरद्वये खगतिद्वये च प्रत्येकमन्यतमां प्रकृतिमपि विकल्पेन बध्नाति, द्वीन्द्रियादिजातिबन्धकाल औदारिकशरीरनामबन्धकेनाऽन्यतमप्रकृतीनामासां बध्यमानत्वात् , एकेन्द्रियजातिबन्धकालेऽबध्यमानत्वाच्च । "णियमा" इत्यादि, उक्तातिरिक्तशेषप्रकृतिवृन्देषु प्रत्येकमन्यतमां प्रकृतिं नियमेन बध्नाति, तानि चेमानि प्रकृतिवृन्दानि—तिर्यङ्मनुष्यगतिद्वयम्, जातिपञ्चकम् , संस्थानषट्कम् , तिर्यङ्मनुष्यानुपूर्वीद्वयम् , स्थावरत्रसादिनवयुगलानि चेति ॥३१६-१७॥

अधुनौदारिकाङ्गोपाङ्गनाम्नः सन्निकर्षं निरूपयिषुराह

ओरालुवंगबंधी णवधुवपत्तेअबायरेरलतसं ।
णियमा बंधइ वा जिणपरघाऊसासउज्जोअं ॥३१८॥
थावरदुगायवविउवछक्काहारदुगिगिंदिसाहारं ।
ण उ बंधइ सरखगई वाऽण्णयरा वि णियमा सेसा ॥३१९॥

(प्रे०) "ओरालुवंगबंधी" इत्यादि, औदारिकाङ्गोपाङ्गनामबन्धको नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतीः प्रत्येकबादरौदारिकशरीरत्रसनामानि च नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां पूर्ववत् , शेषाणां पुनरौदारिकाङ्गोपाङ्गबन्धस्य शेषप्रकृतिबन्धाऽविनाभावित्वात् । "वा" इत्यादि, जिनपराघातोच्छ्वासोद्योतनामानि विकल्पतो बध्नाति,भावना पुनरिह पञ्चेन्द्रियजातिनाम्नः सन्निकर्षवत्कार्या । "थावर" इत्यादि, स्थावरसूक्ष्मातपदेवद्विकनरकद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकैकेन्द्रियजातिसाधारणनामानि नैव बध्नाति, आसां प्रकृतीनां बन्धस्यौदारिकाङ्गोपाङ्गनाम्ना सह विरोधात् । "सरखगई" इत्यादि, स्वरद्वये खगतिद्वये चाऽन्यतरां प्रकृतिं विकल्पेन बध्नाति, तद्यथा-औदारिकाङ्गोपाङ्गनामबन्धकोऽपर्याप्तनाम्ना सह प्रकृतीरेता न बध्नाति, पर्याप्तनाम्ना तु बध्नाति । "णियमा" इत्यादि, अत्राऽपि 'ऽण्णयरा' इति पदमभिसम्बध्यते । अभिहितेतरशेषप्रकृतिव्रजेषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं

नियमेन बध्नाति, तानि चेमानि शेषप्रकृतिव्रजानि–तिर्यङ्मनुष्यगतिद्वयम्, द्वीन्द्रियादि-जातिचतुष्कम्, संहननषट्कम्, संस्थानषट्कम्, तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयम्, पर्याप्ताऽपर्याप्ते, स्थिरास्थिरे, शुभाशुभे, सुभगदुर्भगे, आदेयाऽनादेये, यशःकीर्त्ययशःकीर्तिनाम्नी चेति ॥३१८ ९॥

अथ वैक्रियशरीरवैक्रियाङ्गोपाङ्गनाम्नोः सन्निकर्षमाह–

विउव्वं तणुं उवंगं वा बंधंतो ण तिरिणरदुगं ।
संघयणजाइअगिइथावरचउगायवदुगाणि ॥३२०॥
तित्थाहारदुगाणि व सेसागिइगइणुपुव्विखगईणं ।
छथिराइगजुगलाणं णियमा ऽण्णयरा वि णियमाऽण्णा ॥३२१॥

(प्रे०) "विउव्वं" इत्यादि, वैक्रियशरीरनाम वैक्रियाङ्गोपाङ्गनाम वा बध्नन् तिर्यग्द्विक-मनुष्यद्विकौदारिकद्विकसंहननषट्कैकेन्द्रियादिजातिचतुष्कमध्यमसंस्थानचतुष्कस्थावरचतुष्कातपोद्यो-तनामानि नैव बध्नाति, वैक्रियद्विकेन सममासां प्रकृतीनां बन्धस्य विरोधात्। "तित्थाहार" इत्यादि, तीर्थकृन्नामाहारकद्विकलक्षणं प्रकृतित्रयं विकल्पेन बध्नाति, तच्चैवम्-जिननामसत्कर्मा वैक्रियद्विकबन्धाऽवसरे जिननाम बध्नाति तद्व्यतिरिक्तश्च न बध्नाति, कश्चिदप्रमत्तसंयतो वैक्रियद्विकं बध्नन्नाहारकद्विकं बध्नाति तदन्यः पुनर्नैव बध्नाति, अतोऽत्र विकल्पितः। "सेसा" इत्यादि, देवनरकगतिद्वये समचतुरस्रहुण्डकसंस्थानद्वये देवनरकानुपूर्वीद्वये शुभाशुभ-खगतिद्वये स्थिरास्थिरे शुभाशुभे, सुभगदुर्भगे, सुस्वरदुःस्वरे, आदेयानादेये यशःकीर्त्ययशःकीर्ति-द्वये च प्रत्येकमेकतरां प्रकृतिं नियमेन बध्नाति, । 'णियमा'इत्यादि, अत्रोक्तातिरिक्तानां शेषप्रकृतीनां बन्धं नियमेन करोति, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः–ध्रुवबन्धिन्यो नव नामप्रकृतयः, त्रसचतुष्कम्, पराघातोच्छ्वासनाम्नी, पञ्चेन्द्रियजातिरिति षोडशप्रकृतयः, तथा वैक्रियशरीरनाम्नो बन्धेन सह वैक्रियाङ्गोपाङ्गम्, वैक्रियाङ्गोपाङ्गेन च सार्द्धं वैक्रियशरीरनामेति सप्तदशप्रकृतयः तत्र शेषासु ध्रुवबन्धिनीनां पूर्ववद्, इतरासां पुनर्वैक्रियद्विकबन्धस्येतरबन्धाविनाभावित्वात् ॥३२०-२१॥

इदानीमाहारकद्विकस्य सन्निकर्षं चिन्तयन्नाह

वाहारगतणुवंधी जिण धुवऽण्णसुरजोग्गसुहावीसं ।
णियमा बंधइ सेसा ण एवमाहारवंगस्स ॥३२२॥

(प्रे०) 'वाहारग' इत्यादि आहारकशरीरनाम बध्नन् जिननाम विकल्पतो बध्नाति, जिनना-मसत्कर्मणाऽऽहारकशरीरनामबन्धकेनाऽप्रमत्तसंयतेन बध्यमानत्वात् तदितरेणाऽप्रमत्तसंयतेनाऽब-ध्यमानत्वाच्च। 'धुवण्ण' इत्यादि जिननाम वर्जयित्वा ध्रुवनामनवकशेषदेवप्रायोग्यशुभविंशतिप्रकृती-र्नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रागवद्, शेषदेवप्रायोग्यप्रकृतिबन्धाऽविनाभावित्वादाहारकशरीर-बन्धस्य, अयमत्र भावः-त्रिंशत्प्रकृत्यात्मकदेवप्रायोग्यबन्धस्थानाद् बध्यमानाहारकशरीरवर्जशेषैकोनत्रिं-

शत् प्रकृतयो ग्राह्याः । तास्त्विमा देवप्रायोग्या एकोनत्रिंशत् प्रकृतयः-देवद्विकम्, पञ्चेन्द्रियजातिः, वैक्रियद्विकम् समचतुरस्रसंस्थानम्, सुखगतिः, त्रसदशकम्, नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयः, पराघातोच्छ्वासे, आहारकाङ्गोपाङ्गञ्चेति । 'सेसा' इत्यादि, उक्तातिरिक्तशेषा नरकतिर्यग्मनुष्यगतित्रयम्, एकेन्द्रियादिजातिचतुष्कम्, औदारिकद्विकम्, संहननषट्कम्, द्वितीयादिसंस्थानपञ्चकम्, नरकतिर्यङ्मनुष्यानुपूर्वीत्रयम्, अशुभखगतिः, स्थावरदशकम्, आतपोद्योतनाम्नी चेति षट्त्रिंशत्प्रकृतीर्न बध्नाति आहारकशरीरनाम्ना सह प्रकृतशेषप्रकृतिबन्धस्य विरोधात् । 'एव'मित्यादि आहारकाङ्गोपाङ्गप्रधानसन्निकर्ष आहारकशरीरनामप्रधानसन्निकर्षवद् वेदयितव्यः ॥३२२॥

साम्प्रतं ध्रुवबन्धिनामप्रकृतिसत्कं सन्निकर्षमभिधित्सुराह

बंधंतो एगधुवं सेसधुवा अट्ठ बंधए णियमा ।
बाहारायवदुगजिणपरघाऊसासणामाणि ॥३२३॥
अण्णयरा वि व बंधइ संघयणसरदुउवंगखगईओ ।
सेसा गइआईओ, अण्णयरा बंधए णियमा ॥३२४॥

(प्रे०) 'बंधंतो' इत्यादि, नामकर्मणो ध्रुवबन्धिनीमेकां प्रकृतिं बध्नन् शेषा अष्टौ ध्रुवबन्धिनामप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, एकतरैतत्प्रकृतिबन्धेन सहाऽन्यासामष्टानां बन्धस्याऽविनाभावित्वात् । 'बा' इत्यादि आहारकद्विकातपोद्योतजिननामपराघातोच्छ्वासनामानि विकल्पतो बध्नाति, आहारकद्विकजिननामपराघातोच्छ्वासोद्योतप्रकृतिसत्कसन्निकर्षविषया भावना पञ्चेन्द्रियजातिनामप्रधानसन्निकर्षवत्कर्तव्या । आतपनाम्नः सन्निकर्षस्य तु भावनौदारिकशरीरप्रधानसन्निकर्षवत्कार्या । 'अण्णयरा' इत्यादि, संहननषट्के, स्वरद्वये, औदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वये, खगतिद्वये च प्रत्येकमेकतरां प्रकृतिं विकल्पेन बध्नाति, सप्रतिपक्षत्वात्, एकेन्द्रियप्रायोग्यबन्धकस्याऽऽसां बन्धाभावाच्च । 'सेसा' इत्यादि, उक्तभिन्नशेषप्रकृतिव्रातेषु प्रत्येकमन्यतमां प्रकृतिं नियमेन बध्नाति, ते चेमे शेषप्रकृतिव्राताः–गतिचतुष्कं, जातिपञ्चकम्, औदारिकवैक्रियशरीरद्वये, संस्थानषट्कम् आनुपूर्वीचतुष्कम्, सुस्वरदुःस्वरवर्जत्रसस्थावरनवयुगलानि चेति ॥३२३-२४॥

इदानीं वज्रर्षभनाराचसंहनननाम्नः सन्निकर्षमाह

वइरं बंधमाणो णियमा बंधइ पणिदिउरलदुगं ।
णवधुवबंधी तह परघाऊसासतसचउगाणि ॥३२५॥
विउवछगाहारदुगायवथावरजाइचउगसंघयणा ।
बंधइ ण जिणुज्जोअं वा णियमा अण्णयरसेसा ॥३२६॥

(प्रे०) 'वइरं' इत्यादि, वज्रर्षभनाराचसंहननप्रकृतिमाबध्नन् पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिकद्विकं नव ध्रुवबन्धिनामप्रकृतयः पराघातोच्छ्वासत्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकनामानि चेत्यष्टादशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति,

तत्र ध्रुवाणां प्राग्वत्, इतरासां तु वज्रर्षभसंहननप्रकृतिबन्धस्येतरबन्धाऽविनाभावित्वात् । 'विउव्व' इत्यादि, वैक्रियद्विकदेवद्विकनरकद्विकाहारकद्विकातपस्थावरचतुष्कजातिचतुष्कद्वितीयादिसंहननपञ्चकरूपा द्वाविंशतिप्रकृतीर्नैव बध्नाति । भावनाविधिस्त्वेवम्—वज्रर्षभनाराचसंहननप्रकृतिं पर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतीर्मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतीर्वा बध्नन् बध्नाति, संहननपञ्चकवर्जा एताःप्रकृतयस्तदितरप्रायोग्या वर्तन्ते तस्मात्ताः प्रकृतीर्वज्रर्षभनाराचसंहननबन्धको नैव बध्नाति, संहननपञ्चकस्य तु विरुद्धप्रकृतित्वेन तेन तद्बन्धो न क्रियते। 'जिणु' इत्यादि, जिननामोद्योतनाम्नी विकल्पेन बध्नाति, तद्यथा—जिननामसत्कर्माणो देवनारका वज्रर्षभनाराचसंहननप्रकृतिमाबध्नतो जिननाम बध्नन्ति, तदपरे तु नैव बध्नन्ति । पर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले कश्चित्प्राणी वज्रर्षभनाराचसंहननबन्धक उद्योतनाम बध्नाति, कश्चिच्च नेत्यतो विकल्पतोऽभिधानं कृतम् । "णियमा" इत्यादि, अत्र भाषितभिन्नशेषप्रकृतिव्रजेषु प्रत्येकमेकतरां प्रकृतिं नियमतो बध्नाति, तानि चेमानि शेषप्रकृतिव्रजानि—तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयम्, संस्थानषट्कम्, तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयम् खगतिद्वयम्, स्थिरास्थिरषट्के चेति ॥३२५-२६॥

साम्प्रतं द्वितीयादिसंहननसंस्थानचतुष्कयोः सन्निकर्षं भणति ।

एमेव सण्णियासो दुइआईणं चउण्ह विण्णेयो ।
संघयणआगिईणं णवरं बंधइ ण चिअ तित्थं ॥३२७॥

(प्रे०) "एमेव" इत्यादि, ऋषभनाराचनाराचाऽर्धनाराचकीलिकासंहननचतुष्कस्य न्यग्रोधसादिवामनकुब्जसंस्थानचतुष्कस्य च सन्निकर्षो वज्रर्षभनाराचसंहननसन्निकर्षवद् वक्तव्यः । ननु वज्रर्षभनाराचसंहननसन्निकर्षे जिननाम्नः सन्निकर्षो विकल्पेन प्रतिपादितः तदत्र कथं युज्यते, यतो द्वितीयादिसंहननसंस्थानचतुष्कबन्धकैर्जिननाम नैव बध्यते, प्रकृतप्रकृत्यष्टकबन्धस्य द्वितीयगुणस्थानं यावदेव सद्भावात्, जिननाम्नस्तु चतुर्थादिगुणस्थानकेषु बन्धभावादित्याशङ्कामपहर्तुं "णवर" मित्यादिनाह—द्वितीयादिसंहननसंस्थानचतुष्काभ्यां सह जिननाम्नः सन्निकर्षो नास्ति ॥३२७॥

इदानीं सेवार्तसंहननसन्निकर्षमावेदयितुमाह—

छेवट्ठं बधंतो णिगिंदियाहारदुगविउवछक्कं ।
पणसंघयणजिणायवथावरसुहमाणि साहारं ॥३२८॥
परघूसासुज्जोअ बंधइ व सरखगई वि अण्णयरा ।
धुवणवगउरलतसदुगपत्तेआणि णियमाऽण्णयरसेसा ॥३२९॥ (गीतिः)

(प्रे०) "छेवट्ठ" इत्यादि, सेवार्तसंहननप्रकृतिं बध्नन्नेकेन्द्रियजात्याहारकद्विकनरकद्विकदेवद्विकवैक्रियद्विकप्रथमादिसंहननपञ्चकजिननामातपस्थावरसूक्ष्मसाधारणनामानि नैव बध्नाति, तद्यथा—सेवार्तसंहननबन्धकस्य प्रथमादिसंहननपञ्चकस्य विरोधादेव बन्धाभावोऽस्ति । तथा पर्याप्ताऽपर्याप्तविकलतिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्यप्रायोग्यप्रकृतीर्बध्नन् मिथ्यादृष्टिः सेवार्तसंहननप्रकृतिं

बध्नाति, संहननपञ्चकभिन्नशेषैकेन्द्रियजात्यादिप्रकृतीनां कथितेतरजीवप्रायोग्यत्वात् सम्यग्दृष्टिबन्धप्रायोग्यत्वाद् वा सेवार्तसंहननेन सह बन्धाभावः । "परधा" इत्यादि, पराघातोच्छ्वासोद्योतनामानि विकल्पेन बध्नाति, तथा स्वरद्वये खगतिद्वये चाऽन्यतरामपि प्रकृतिं विकल्पेन बध्नाति । भावना पुनरेवं विधेया—अपर्याप्तनामबन्धकाले सेवार्तसंहननप्रकृतिबन्धकः पराघातोच्छ्वासनाम्नी अन्यतरां स्वरप्रकृतिं खगतिप्रकृतिं च न बध्नाति, पर्याप्तनामबन्धकाले तु बध्नाति । पर्याप्तविकलतिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकः कश्चित् सेवार्तसंहननं बध्नन्नुद्योतनाम बध्नाति कश्चिच्च न बध्नाति, अतोऽत्र विभाषा प्रदर्शिता । "धुव" इत्यादि, नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतीरौदारिकद्विकत्रसद्विकप्रत्येकनामानि च नियमेन बध्नाति, हेतुरुभयत्र प्राग्वदनुसन्धेयः । "अण्णयर" इत्यादि उक्तव्यतिरिक्तशेषप्रकृतिवृन्देषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं नियमेन बध्नाति, इमानि च तानि प्रकृतिवृन्दानि-तिर्यङ्मनुष्यगतिद्वयम्, द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कम्, संस्थानषट्कम्, तिर्यङ्मनुष्यानुपूर्वीद्वयम्, पर्याप्ताऽपर्याप्तद्वयम्, सुस्वरवर्जस्थिरपञ्चकदुःस्वरवर्जास्थिरपञ्चके चेति सर्वसंख्यया प्रकृतयः षड्विंशतिरिति ।३२८-२९॥

साम्प्रतं समचतुरस्रसंस्थानस्य सन्निकर्षं कथयति

पढमागिइबंधी णवधुवतसचउगपरघायऊसासं ।
पंचिंदियं च णियमा व जिणाहारदुगउज्जोअं ॥३३०॥
णिरयदुगजाइथावरचउगागिइपणगआयवाणि ण उ ।
वाऽण्णयरं संघयणं बंधइ णियमाऽण्णयरसेसा ॥३३१॥
एमेव सण्णियासो सुहखगइसुहगतिगाण विण्णेयो ।

(प्रे०) "पढमा" इत्यादि, समचतुरस्रसंस्थानबन्धको नाम्नो नवध्रुवबन्धिप्रकृतीस्त्रसचतुष्कपराघातोच्छ्वासपञ्चेन्द्रियजातिनामानि च नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्राग्वद् इतरासां तु समचतुरस्रसंस्थानबन्धस्येतरबन्धाऽविनाभावात् । "जिणा" इत्यादि, जिननामाऽऽहारकद्विकोद्योतनामानि विकल्पेन बध्नाति, भावना पुनरिह पञ्चेन्द्रियजातिसन्निकर्षवत्कार्या ।"णिरय" इत्यादि, नरकद्विकैकेन्द्रियादिजातिचतुष्कस्थावरचतुष्कद्वितीयादिसंस्थानपञ्चकातपनामानि नैव बध्नाति, आसां प्रकृतीनां बन्धस्य समचतुरस्रसंस्थानप्रकृत्या साकं विरोधात् । "वा" इत्यादि, संहननषट्केऽन्यतमं संहननं विकल्पतो बध्नाति, यतो देवगतिप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकः स नैव बध्नाति तिर्यग्मनुष्यगतिप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकश्च बध्नाति । "णियमा" इत्यादि, भणितेतरप्रकृतिव्रजेषु प्रत्येकमन्यतमां प्रकृतिं नियमेन बध्नाति, तानि चेमानि प्रकृतिव्रजानि—तिर्यग्मनुष्यदेवगतित्रयम्, औदारिकशरीरवैक्रियशरीरे, औदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गे, तिर्यङ्मनुष्यदेवानुपूर्वीत्रयम्, खगतिद्वयम्, स्थिराऽस्थिरषट्के चेति सर्वसंख्यया प्रकृतयश्चतुर्विंशतिरिति ।

'एमेव' इत्यादि, शुभविहायोगतिसुभगसुस्वरादेयनामप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षः समचतुरस्रसंस्थानसन्निकर्षवद् विज्ञेयः । इदं त्वत्राऽवधेयम्—आसां प्रकृतीनां सन्निकर्षविषये स्वस्वप्रतिपक्षप्रकृतीनामबन्धक एव ज्ञातव्यः, तथा संस्थानषट्केऽन्यतमस्यैव बन्धको ज्ञेयः । एवं सर्वत्र योजनीयम् । ॥३३०-३१॥

अधुना हुण्डकसंस्थानस्य दुर्भगानादेययोश्च सन्निकर्षमावेदयितुमाह—

हुंडं बंधंतो णवधुवबंधी बंधए णियमा ॥३३२॥
बंधइ देवाहारगदुगपंचागिइजिणाणि णो चेव ॥
परघाऊसासायवदुगणामाइं व बंधेइ ॥३३३॥
संघयणुवंगदुगसरखगई वा बधए वि अण्णयरं ।
णियमाऽण्णा गइआई दुहगाणादेयगाणेवं ॥३३४॥

(प्रे०) 'हुंड' मित्यादि, हुण्डकसंस्थानं बध्नन् नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ध्रुवबन्धित्वात्, हुण्डकसंस्थानबन्धविच्छेदादूर्ध्वं तद्बन्धविच्छेदाच्च । 'बंधइ' इत्यादि, देवद्विकाहारकद्विकप्रथमादिसंस्थानपञ्चकजिननामानि नैव बध्नाति, हुण्डकसंस्थानेन सह प्रकृतीनामासां बन्धस्य विरोधात् । 'परघा' इत्यादि, पराघातोच्छ्वासातपोद्योतनामानि विकल्पेन बध्नाति, तद्यथा—पर्याप्तप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले हुण्डकसंस्थानबन्धकः पराघातोच्छ्वासनाम्नी बध्नाति, अपर्याप्तप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले च नैव बध्नाति, तथा तिर्यक्प्रायोग्यषड्विंशतिप्रकृतिबन्धस्थानं बध्नन् स आतपनाम, तिर्यक्प्रायोग्यं षड्विंशतिप्रकृतिबन्धस्थानं त्रिंशत्प्रकृतिबन्धस्थानं वा बध्नन्नुद्योतनाम च बध्नाति, तदितरहुण्डकसंस्थानप्रायोग्यबन्धस्थानानि बध्नन्नातपोद्योतनाम्नी नैव बध्नाति, अतो हुण्डकनाम्ना सहाऽऽसां बन्धोऽनियतो विज्ञेयः । 'संघयणु' इत्यादि, संहननषट्के औदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियाङ्गोपाङ्गयोः स्वरद्वये खगतिद्वये चाऽन्यतरां प्रकृतिं विकल्पेन बध्नाति, यत एकेन्द्रियजातिबन्धको हुण्डकसंस्थानबन्धकाले प्रकृतीरेता न बध्नाति, द्वीन्द्रियादिजातिबन्धकस्तु यथायोगं बध्नाति । 'णियमा" इत्यादि, अभिहितेतरशेषप्रकृतिव्रातेषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं नियमेन बध्नाति, तानि चेमानि शेषप्रकृतिवृन्दानि—नरकतिर्यग्मनुष्यगतित्रयम्, जातिपञ्चकम्, औदारिकवैक्रियशरीरद्वयम् नरकतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीत्रयम् स्वरद्वयवर्जत्रसादिनवयुगलानि चेति । 'दुहग' त्यादि, दुर्भगानादेयप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षो हुण्डकसंस्थानप्रधानसन्निकर्षवद् बोद्धव्यः, तुल्यत्वात्, अत्र पुनर्यः कश्चिद् विशेषः, स तु पूर्ववत् सुगमत्वात् स्वयं ज्ञातव्यः । ॥३३२-३-४॥

अथ कुखगतेः सन्निकर्षमाह

कुखगइं बंधंतो कुओअं संहइ व अण्णयरं ।
णियमा धुवबंधी परघाऊसासतसचउगाणि ॥३३५॥

जिणथावरचउगायवदेवाहारदुगिगिदिखगई णो ।
णियमा सेसाऽण्णयरा गइआई दुस्सरस्सेवं ॥३३६॥

(प्रे०) 'दुक्खगइं' इत्यादि, अशुभविहायोगतिं बध्नन्नुद्योतनाम विकल्पेन बध्नाति, यतो विकलत्रिकतिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकालेऽशुभविहायोगतिं बध्नता केनचिदुद्योतनाम बध्यते केनचित्तु न बध्यते । 'संहइं' इत्यादि, संहननषट्केऽन्यतमसंहननं विकल्पेन बध्नाति, कुखगतिबन्धकेन नरकप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकालेऽन्यतमसंहननस्याऽबध्यमानत्वात्, तिर्यग्मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले च बध्यमानत्वात् । 'णियमा' इत्यादि, नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतीः पराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्कप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्राग्वद् शेषाणां तु कुखगतिबन्धस्य शेषबन्धाविनाभावित्वात् । 'जिण' इत्यादि, जिननामस्थावरचतुष्कातपदेवद्विकाहारकद्विकैकेन्द्रियजातिसुखगतिप्रकृतीर्नैव बध्नाति, भावना पुनरत्रैवमाधेया—कुखगतिप्रकृतिः पर्याप्तत्रसप्रायोग्यप्रकृतिभिः सार्धमेव बध्यते, तस्मात्तद्भिन्नैकेन्द्रियप्रायोग्याणामपर्याप्तप्रायोग्याणां वा स्थावरचतुष्कैकेन्द्रियजात्यातपप्रकृतीनां बन्धोऽशुभखगतिनाम्ना सह विरुद्धः, तथा कुखगतिप्रकृतेर्बन्धो द्वितीयगुणस्थानं यावदेव भवति, जिननामाहारकद्विकप्रकृतीनां तु यथायोगं चतुर्थादिगुणस्थानकेषु भवति, अत आसां बन्धोऽशुभखगतिप्रकृत्या सह विरुद्धः, देवद्विकेन सार्द्धं सुखगतेरेव बन्धसद्भावेन कुखगतिप्रकृतिबन्धो तेनाऽपि सह विरुद्धः, तथा खगतिसामान्याभिधानेऽपि प्रकृतकुखगतेः प्रतिपक्षभूतायाः सुखगतेरेवादानं कार्यम् । तस्या अपि प्रतिपक्षभूतत्वादेव प्रकृतप्रकृत्या सह बन्धाभावः तस्मादत्र प्रकृतीनामासां निषेधात्मकः सन्निकर्ष उपदर्शितः । 'णियमा' इत्यादि, अभिहितातिरिक्तशेषप्रकृतिव्रजेषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं नियमेन बध्नाति, इमानि च तानि शेषप्रकृतिव्रजानि—नरकतिर्यङ्मनुष्यगतित्रयम्, द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कम्, संस्थानषट्कम्, औदारिकवैक्रियशरीरद्वयम्, औदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयम्, नरकतिर्यङ्मनुष्यानुपूर्वीत्रयम्, स्थिरास्थिरषट्के चेति । 'दुस्सरस्सेव' मिति दुःस्वरनामप्रधानसन्निकर्षः कुखगतिप्रधानसन्निकर्षवद् बोद्धव्यः ॥३३५-६॥

अथ पराघातोच्छ्वासपर्याप्तनाम्नां सन्निकर्षं प्रतिपादयति

परघायं बंधंतो अपज्जणामं ण बंधए णियमा ।
णवधुवपज्जूसासं व जिणाहारायवदुगाणि ॥३३७॥
बंधइ अण्णयरा अवि वा सधयणदुउवगसरखगई ।
णियमाऽण्णा गइआई पज्जूसासाण एमेव ॥३३८।

(प्रे०) 'परघायं' इत्यादि, पराघातनाम बध्नन्नपर्याप्तनाम न बध्नाति, तेन सह तद्बन्धविरोधात् । 'णियमा'इत्यादि, नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतीः पर्याप्तोच्छ्वासनाम्नी च नियमतो बध्नाति, हेतुरत्र प्राग्वदवसेयः । 'व'इत्यादि, जिननामाहारकद्विकातपोद्योतनामानि विकल्पतो बध्नाति, अत्र

भावना आतपनाम्न औदारिकशरीरनामसन्निकर्षवत्कार्या, जिननामाहारकद्विकोद्योतप्रकृतीनां च पञ्चेन्द्रियजातिसन्निकर्षवत्कार्या । 'बंधइ' इत्यादि, संहननषट्के औदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वये स्वरद्वये खगतिद्वये चाऽन्यतरां प्रकृतिं विकल्पेन बध्नाति, यत एकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकः पराघातनाम बध्नन्नेताः प्रकृतीर्न बध्नाति, शेषप्रायोग्यबन्धकस्तु यथायोगं बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, भणितेतरशेषप्रकृतिवृन्देषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं नियमेन बध्नाति, अन्यतरप्रकृतीनां बन्धस्य पराघातनामसहचारित्वात् । तानि चेमानि शेषप्रकृतिवृन्दानि—गतिचतुष्कम् , जातिपञ्चकम् , औदारिकशरीरवैक्रियशरीरे, संस्थानषट्कम् , आनुपूर्वीचतुष्कम् , पर्याप्तसुस्वरवर्जत्रसाऽष्टकाऽपर्याप्तदुःस्वरवर्जस्थावराष्टके चेति । 'पज्ज' इत्यादि, पर्याप्तोच्छ्वासनामप्रधानसन्निकर्षः पराघातप्रधानसन्निकर्षवदवसेयः ॥३३७-८॥

साम्प्रतमुद्योतनाम्नः सन्निकर्षमावेदयितुमाह

उज्जोअं बधंतो धुवतिरिदुगउरलबायरतिगाणि ।
तह परघाऊसासं णियमा बधइ वुरलुवगं ॥३३९॥
सुहमतिगणिरयणरसुरविउवाहारदुगआयवजिणं णो ।
संघयणस्सरखगई वाऽण्णयरा वि णियमा सेसा ॥३४०॥

(प्रे०) "उज्जोअं" इत्यादि, उद्योतनाम बध्नन् नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतीस्तिर्यग्द्विकौदारिकशरीरबादरत्रिकपराघातोच्छ्वासनामानि नियमेन बध्नाति, तद्यथा—तत्र ध्रुवाणां प्राग्वद् , तथा पर्याप्तबादरैकेन्द्रियविकलतिर्यक्पञ्चेन्द्रियजीवानां बन्धप्रायोग्यमिदमुद्योतनाम वर्तते, अतो यदा तैरुद्योतनाम बध्यते तदा तिर्यग्द्विकादिप्रकृतप्रकृतयोऽप्यवश्यंतया बध्यन्ते, तस्मादुद्योतनाम्ना समं तिर्यग्द्विकादीनां बन्धो नियतो लभ्यते ।

'वुरलुवंग' मिति, औदारिकाङ्गोपाङ्गं विकल्पतो बध्नाति, एकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकेनोद्योतनामबन्धकाले प्रकृतेरस्या अबध्यमानत्वात् , पर्याप्तविकलतिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकेन च बध्यमानत्वात् । 'सुहम' इत्यादि, सूक्ष्माऽपर्याप्तसाधारणनरकद्विकमनुष्यद्विकदेवद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकाऽऽतपजिननामानि नैव बध्नाति, उद्योतनाम्ना सार्द्धमासां प्रकृतीनां बन्धस्य विरोधात् । 'संघयण' इत्यादि, संहननषट्के स्वरद्वये खगतिद्वये चैकतरामपि प्रकृतिं विकल्पेन बध्नाति, एकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाल उद्योतनामबन्धकेन प्रकृतीनामासामबध्यमानत्वात् , पर्याप्तविकलतिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले पुनर्बध्यमानत्वाच्च । 'णियमा' इत्यादि, जातिपञ्चकं संस्थानषट्कं त्रसस्थावरे स्वरवर्जस्थिरास्थिरपञ्चके चेति त्रयोविंशतिभणितेतरशेषप्रकृतिव्रातेषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं नियमेन बध्नाति ॥३३९-४०॥

इदानीमातपनाम्नः सन्निकर्षमुपदर्शयन्नाह

आयवबंधो णवधुवतिरिदुगएगिंदिउरलहुंडाणि ।
तह परघाऊसासं बायरतिगथावराणि तहा ॥३४१॥
दुहगाणादेयाइं णियमा बंधइ थिराइजुगलाणं ।
तिण्हं णियमाऽण्णयरा तिण्णि ण चिअ सेसअडतीसा ॥३४२॥

(प्रे०) 'आयव' इत्यादि, आतपनामबन्धको नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतीस्तिर्यग्द्विकमेकेन्द्रियजातिमौदारिकशरीरं हुण्डकसंस्थानं पराघातोच्छ्वासनाम्नी बादरपर्याप्तप्रत्येकस्थावरनामानि दुर्भगानादेयनाम्नी चेति समुदिता द्वाविंशतिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । तदेवम्–तत्र ध्रुवाणां प्राग्वद् शेषाणां पुनरातपनामबन्धस्य पर्याप्तबादरैकेन्द्रियप्रायोग्यत्वेन शेषप्रकृतप्रकृतिबन्धाऽविनाभावित्वान्नियतबन्धो ज्ञेयः । 'थिराइजुगलाण' मित्यादि, स्थिराऽस्थिरे शुभाशुभे यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति युगलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, । 'ण'इत्यादि; अभिहिताऽतिरिक्तशेषप्रकृतीर्नैव बध्नाति, तासां शेषाणां बादरपर्याप्तप्रत्येकैकेन्द्रियाप्रायोग्यत्वात् , आतपस्य तु तथाविधैकेन्द्रियप्रायोग्यत्वाच्च । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः–देवनरकमनुष्यगतित्रयम् , द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कम् , औदारिकाङ्गोपाङ्गम्, वैक्रियद्विकम्, आहारकद्विकम् , संहननषट्कम् , प्रथमादिसंस्थानपञ्चकम्, देवनरकमनुष्यानुपूर्वीत्रयम् , खगतिद्वयम् ,त्रससुभगसुस्वरादेयनामानि,सूक्ष्मसाधारणाऽपर्याप्तदुःस्वरनामानि, जिननाम, उद्योतनाम चेत्यष्टात्रिंशदिति ॥३४१-४२॥

अथ जिननाम्नः सन्निकर्ष उच्यते

जिणबंधो णियमा णवधुवपढमागिइपणिंदियाणि तहा ।
परघाऊसाससुहखगइतसचउगसुहगतिगाणि ॥३४३॥
वइराहारदुगाणि व बधइ णियमा उ सत्त अण्णयरा ।
णरसुरउरलविउव्वदुगतिथिराइजुगलाण ण उ सेसा ॥३४४॥

(प्रे०) "जिण" इत्यादि, जिननामबन्धको नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतीः समचतुरस्रसंस्थानपञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वाससुखगतित्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकसुभगसुस्वरादेयनामप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति, तदित्थम्–जिननामबन्धश्चतुर्थादिगुणस्थानेषु जायते तत्र चैताः प्रकृतयो ध्रुवतया बध्यन्ते । "वइरा" इत्यादि, वज्रर्षभनाराचसंहननाहारकद्विकरूप प्रकृतित्रयं विकल्पतो बध्नाति, भावनाविधिस्त्वेवम्–मनुष्यो यदि जिननाम बध्नीयात्तर्हि वज्रर्षभनाराचसंहननं नैव बध्नाति, तस्य देवप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वात् , यदि पुनर्देवनारकौ जिननाम बध्नीयातां तदा ताभ्यां वज्रर्षभनाराचसंहननं बध्यते, मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतिबन्धविधायित्वात् । आहारकद्विकं तु सप्तमादिगुणस्थानस्थायिनः केचिज्जिननामबन्धका बध्नन्ति केचिच्च न बध्नन्ति तथा चतुर्थादिगुणस्थानस्थायिनश्च ते नैव बध्नन्ति । "णिअमा" इत्यादि, मनुष्यद्विकदेवद्विकयोरेकतरं द्विकमौदारिकवैक्रियद्विकयोरप्येकतरं द्विकं स्थिराऽस्थिरे शुभाशुभे यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति त्रिषु युगलेषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिमिति सप्ताऽन्यतर-

प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, । "ण" इत्यादि, उक्तव्यतिरिक्तशेषप्रकृतीर्नैव बध्नाति, आसां शेषप्रकृतीनां तृतीयाद्यधस्तनगुणस्थानेषु बन्धसम्भवेन जिनना।मा। सह बन्धाऽसम्भवात् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः नरकतिर्यग्गतिद्वयमेकेन्द्रियादिजातिचतुष्कं द्वितीयादिसंहननपञ्चकं द्वितीयादिसंस्थानपञ्चकं नरकतिर्यगानुपूर्वीद्वयमशुभखगतिः स्थावरचतुष्कं दुर्भगत्रिकमातपोद्योतनाम्नी चेत्यष्टात्रिंशतिरिति ॥३४३-३४४॥

इदानीं त्रसनाम्नः सन्निकर्षं निरूपयितुमाह

तसबंधी बंधइ चिअ णवधुवपत्तेअबायराणि णवा ।
जि णपरघाऊसासुज्जोआहारदुगणामाणि ॥३४५॥
बंधेइ ण एगिंदियथावरसुहमायवाणि साहारं ।
संघयणस्सरखगई वाऽण्णयरा वि णियमा सेसा ॥३४६॥

(प्रे०) "तसबंधी" इत्यादि, त्रसनामबन्धको नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतीः प्रत्येकबादरनाम्नी च नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रागवद् , शेषाणां पुनस्त्रसनामबन्धस्य तद्बन्धाऽविनाभावित्वात् । 'ण वा' जिननामपराघातोच्छ्वासोद्योताहारकद्विकेनामानि विकल्पतो बध्नाति, भावना पुनरत्र पञ्चेन्द्रियजातिसन्निकर्षानुसारेण भाव्या। "बंधेइ" इत्यादि, एकेन्द्रियजातिस्थावरसूक्ष्मातपसाधारणनामानि न बध्नाति, प्रकृतीनामासामेकेन्द्रियबन्धप्रायोग्यत्वेन त्रसनाम्ना सह बन्धविरोधात् । "संघयण"इत्यादि, संहननषट्के सुस्वरदुःस्वरयोः शुभाशुभखगत्योश्च प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिमपि विकल्पतो बध्नाति, भावना पञ्चेन्द्रियजातिसन्निकर्षवदत्र कार्या । 'णियमा' इत्यादि, उक्तव्यतिरिक्तशेषप्रकृतिव्रातेषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं नियमेन बध्नाति, । ते चेमे शेषप्रकृतिव्राताः-गतिचतुष्कम् , द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कम् , औदारिकवैक्रियशरीरे, औदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गे संस्थानषट्कम् , आनुपूर्वीचतुष्कम् , पर्याप्ताऽपर्याप्ते, स्थिरास्थिरे, शुभाशुभे, सुभगदुर्भगे, आदेयानादेये, यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति ॥३४५-६॥

साम्प्रतं बादरनाम्नः सन्निकर्षमाह

बायरबंधी सुहमं ण बंधइ णवधुवबंधिणो णियमा ।
वा आहारायवदुगपरघाऊसासतित्थाणि ॥३४७॥
बंधइ अण्णयरा अवि वा संघयणदुखगसरखगई ।
णियमाऽण्णा गइआई पत्तेअस्सेवमेव भवे ॥३४८॥

(प्रे०)"बायर"इत्यादि, बादरनामबन्धकः सूक्ष्मनाम नैव बध्नाति, तद्बन्धस्य बादरनाम्ना सह विरोधात् । "णव" इत्यादि, नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ध्रुवबन्धित्वे सति सहैव बन्धविच्छेदात् । "वा" इत्यादि, आहारकद्विकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासजिननामप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, यत आहारकद्विकजिननामप्रकृतीनां यथायोग चतुर्थादिगुणस्थानस्थो बादरनामबन्धको

बन्धं विदधाति अन्यत्राऽबन्धको भवति, आतपादिचतुष्प्रकृतयोऽपर्याप्तप्रायोग्यबादरनामबन्धकेन न बध्यन्ते, पर्याप्तप्रायोग्यबन्धकेन यथासंभवं बध्यन्ते । "बंधइ" इत्यादि, संहननषट्के औदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वये स्वरद्वये खगतिद्वये चाऽन्यतरप्रकृतिमपि विकल्पेन बध्नाति, एकेन्द्रियप्रायोग्यबादरनामबन्धकेन सर्वथा आसामबध्यमानत्वात् , त्रसप्रायोग्यबन्धकेन यथासंभवं एषु प्रकृतिसमूहेष्वेकतमस्य बध्यमानत्वाच्च ।"णियमा" इत्यादि, इहोक्तातिरिक्तशेषप्रकृतिव्रजेषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं नियमतो बध्नाति, इमानि च तानि शेषप्रकृतिव्रजानि–गतिचतुष्कम् , जातिपञ्चकम् औदारिकवैक्रियशरीरे, संस्थानषट्कम् , आनुपूर्वीचतुष्कम् , बादरसुस्वरवर्जत्रसाष्टकसूक्ष्मदुःस्वरवर्जस्थावराष्टके चेति । "पत्तेअ" इत्यादि, प्रत्येकनामप्रधानोऽपि सन्निकर्ष एवमेव भवति, तत्समानत्वात् , अत्राऽपि सूक्ष्मनाम स्याद् बध्नाति तथा स्वप्रतिपक्षप्रकृतिं नैव बध्नातीति कथनीयम् ॥२४७-८॥

सम्प्रति स्थिरनाम्नः सन्निकर्षमाह

थिरबंधी बंधइ च्चिअ णवधुवपज्जपरघायऊसासे ।
व जिणाहारायवदुगमपज्जणिरयदुगअथिरं ण ॥३४९॥
बंधइ अण्णयरा अवि वा संघयणदुउवंगसरखगई ।
णियमाऽण्णा गइआई एमेव सुहस्स णायव्वो ॥३५०॥

(प्रे०) 'थिर' इत्यादि, स्थिरनामबन्धको नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतीः पर्याप्तपराघातोच्छ्वासनामानि च नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्राग्वद् , शेषाणां तु स्थिरनामबन्धस्य शेषप्रकृतिबन्धाऽविनाभावित्वात् । 'व' इत्यादि, जिननामाहारकद्विकातपोद्योतनामानि विकल्पतो बध्नाति, भावना पूर्ववत्कार्या । 'अपज्ज' इत्यादि, अपर्याप्तनरकद्विकास्थिरनामानि नैव बध्नाति, स्थिरनाम्ना सह प्रकृतीनामासां बन्धस्य विरोधात् , स्थिरनाम्नो हि बन्धोऽपर्याप्तप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकैर्नरकप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकैश्च नैव विधीयते, अस्थिरनाम्न एव तैर्बध्यमानत्वात् । 'बंधइ' इत्यादि, संहननषट्के औदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गयोः स्वरद्वये खगतिद्वये चाऽन्यतरामपि प्रकृतिं विकल्पतो बध्नाति, बादरनामसन्निकर्षे यथाऽऽसां प्रकृतीनां भावना कृता तथैवात्रापि सा कार्या । 'णियमा' इत्यादि, उक्तव्यतिरिक्तशेषप्रकृतिवृन्देषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं नियमेन बध्नाति, तानि चेमानि शेषप्रकृतिवृन्दानि–देवमनुष्यतिर्यग्गतित्रयम् , जातिपञ्चकम् , औदारिकवैक्रियशरीरे, संस्थानषट्कम् , देवमनुष्यतिर्यगानुपूर्वीत्रयम् , त्रसस्थावरे, बादरसूक्ष्मे, प्रत्येकसाधारणे, शुभाशुभे, सुभगदुर्भगे, आदेयानादेये, यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति । 'एमेव' इत्यादि, एवमेव सन्निकर्षः शुभनाम्नो ज्ञातव्यः ॥३४९-५०॥

इदानीं यशःकीर्तिनाम्नः सन्निकर्ष उच्यते

जसबंधी णेव णिरयदुगसुहमतिगअजसाणि बंधइ वा ।
पुणवीसणवधुवाई तह अण्णयराऽण्णगइआई ॥३५१॥

(प्रे०) 'जसबंधी' इत्यादि, यशःकीर्तिनामबन्धको नरकद्विकसूक्ष्मत्रिकाऽयशःकीर्तिरूपाः षट्प्रकृतीर्नैव बध्नाति, यशःकीर्तिनाम्ना सममासां प्रकृतीनां बन्धस्य विरोधात् । 'वा' इत्यादि, नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयः पराघातोच्छ्वासे बादरत्रिकमातपोद्योतनाम्नी जिननामाहारकद्विकं चेत्येकोनविंशतिध्रुवबन्ध्यादिप्रकृतीस्तथोक्तातिरिक्तशेषान्यतरगत्यादिप्रकृतीर्विकल्पतो बध्नाति, यथासंभवं प्रथमाद्यष्टमगुणस्थानषष्ठभागपर्यन्तमासां प्रकृतीनां यशःकीर्तिनाम्ना सह बध्यमानत्वात् , तदूर्ध्वं पुनरबध्यमानत्वाच्च । ताश्चेमा गत्याद्यन्यतराः प्रकृतयः–नरकगतिवर्जगतित्रयेऽन्यतमा गतिः, अन्यतमा जातिः, औदारिकवैक्रियशरीरनामद्वयेऽन्यतरशरीरनाम, औदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतराङ्गोपाङ्गनाम, अन्यतमसंहनननाम, अन्यतमसंस्थानम् , नरकानुपूर्वीवर्जानुपूर्वीत्रयेऽन्यतमाऽऽनुपूर्वी, अन्यतरा खगतिः, त्रसस्थावरस्थिरास्थिरशुभाशुभसुभगत्रिकदुर्भगत्रिकरूपेषु षट्सु युगलेष्वन्यतराः षट्प्रकृतयश्चेति । विशेषतो भावना क्रियते, तद्यथा नरकद्विकसूक्ष्मत्रिकायशःकीर्तिनामप्रकृतीनां प्रस्तुतयशःकीर्तिबन्धकः सर्वथाऽबन्धको भवति । नामध्रुवनवप्रकृतयः पराघातोच्छ्वासबादरत्रिकप्रकृतयश्च यशःकीर्तिनामबन्धकेनाष्टमगुणस्थानषष्ठभागं यावद् निरन्तरं बध्यन्ते, तदूर्ध्वं तु नैव बध्यन्ते । आतपोद्योतजिननामाहारकद्विकप्रकृतयः स्वबन्धयोग्यगुणस्थानेऽपि कैश्चिद् बध्यन्ते कैश्चिन्न बध्यन्ते स्वबन्धविच्छेदस्थानोर्ध्वं तु नैव बध्यन्ते । संहननषट्के, औदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वये स्वरद्वये खगतिद्वये चान्यतमा प्रकृतिर्विकल्पेन बध्यते, एकेन्द्रियनाम्ना सह यशःकीर्तिबन्धक आसां प्रकृतीनां सर्वथाऽबन्धक एव । त्रसनाम्ना सह यथासंभवमन्यतमाया बन्धकः , स्वबन्धविच्छेदादूर्ध्वं तु सर्वथाऽबन्धक एव । गतित्रयजातिपञ्चकशरीरद्वयसंस्थानषट्काऽऽनुपूर्वीत्रयत्रसस्थावर-स्थिरास्थिर शुभाशुभ सुभगदुर्भगाऽऽदेयाऽनादेयरूपेषु प्रकृतिसमूहेषु प्रत्येकमेकतमां प्रकृतिं स्वबन्धयोग्यगुणस्थानं यावन्नियमेन बध्नाति, तदूर्ध्वं तु सर्वथा न बध्नातीति ॥३५१॥

साम्प्रतं सूक्ष्मनाम्नः सन्निकर्षं दिदर्शयिषुराह

णियमा उ सुहुमबंधी णवधुवतिरिदुगइगिंदियाणि तहा ।
ओरालहुंडथावरदुहगाणादेयअजसाणि ॥३५२॥
पज्जाइगजुगलाण चउरोऽण्णयरा वि बंधए णियमा ।
परघाऊसासाणि व णऽण्णा साहारणस्सेव ॥३५३॥

(प्रे०) 'णियमा' इत्यादि, सूक्ष्मनामबन्धको नामनवध्रुवबन्धितिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजात्यौदारिकशरीरहुण्डकस्थावरदुर्भगानादेयायशःकीर्तिरूपा अष्टादशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्राग्वत् , तिर्यग्द्विकादीनां तु सूक्ष्मनामबन्धस्य तद्बन्धाऽविनाभावित्वात् । 'पज्जाइग' इत्यादि, पर्याप्ताऽपर्याप्ते, प्रत्येकसाधारणे स्थिरास्थिरे शुभाशुभे चेति चतुर्षु युगलेषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं नियमेन बध्नाति, । 'परघा' इत्यादि, पराघातोच्छ्वासनाम्नी स्याद् बध्नाति, यतोऽस्य प्रकृतिद्वयस्य पर्याप्तप्रायोग्यत्वेन पर्याप्तप्रकृतिमाबध्नन् सूक्ष्मनामबन्धकस्तद्बन्धं विदधाति, अपर्याप्त-

प्रकृतिमाबध्नन् पुनर्न तद्बन्धं विदधाति । 'ण' इत्यादि, उक्तेतरशेषनामप्रकृतीनां बन्धं न विधत्ते, सूक्ष्मनाम्ना सह विरोधात्तासाम् । ताश्चेमा अबन्धप्रायोग्याः शेषनामप्रकृतयः–देवनरकमनुष्यगतित्रयम्, द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कम्; औदारिकाङ्गोपाङ्गम्, वैक्रियद्विकम्, आहारकद्विकम् संहननषट्कम्, प्रथमादिसंस्थानपञ्चकम्, देवनरकमनुष्यानुपूर्वीत्रयम्, खगतिद्वयम्, त्रसबादरसुभगसुस्वरादेययशःकीर्तिनामानि, दुःस्वरनाम, आतपोद्योतजिननामानि चेत्यष्टात्रिंशदिति । 'साहारणस्स' इत्यादि, साधारणनाम्नोऽप्येवमेव सन्निकर्षो विभावनीयः । केवलं सूक्ष्मबादरनाम्नोः स्याद् बन्धः प्रत्येकनाम्नो बन्धाभावश्च विज्ञेयः ॥३५२-३॥

अधुनाऽपर्याप्तनाम्नः सन्निकर्षमाह

असमत्त बधंतो णवधुवुरलहुडपचअथिराई ।
णियमा बधइ वा उण छेवट्ठोरालुवगाणि ॥३५४॥
दुगइदुअणुपुव्वीण पणजाईण तितसाइजुगलाणं ।
णियमाऽण्णयरा बधइ ण उ बधइ सेसतेत्तीसा॥३५५॥

(प्रे०) "असमत्त" मित्यादि, अपर्याप्तनाम बध्नन् नवध्रुवबन्धिप्रकृतय औदारिकशरीरं हुण्डसंस्थानमस्थिराऽशुभदुर्भगानादेयाऽयशःकीर्तिनामानि चेति षोडशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्राग्वत्, औदारिकशरीरादीनां पुनरपर्याप्तनामबन्धस्य तद्बन्धाविनाभावित्वात् । "वा" इत्यादि, सेवार्तसंहननौदारिकाङ्गोपाङ्गप्रकृतिद्वयं स्याद् बध्नाति, तच्चैवम्-अपर्याप्तनाम बध्नन् यदैकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतीर्बध्नाति, तदैतत्प्रकृतिद्वयं न बध्नाति, यदि पुनर्द्वीन्द्रियादिप्रायोग्यप्रकृतीर्बध्नाति तदा तु तद्बध्नाति । "दुगइ" इत्यादि, तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयमेकेन्द्रियादिजातिपञ्चकं त्रसस्थावरे बादरसूक्ष्मे प्रत्येकसाधारणे चेति प्रकृतिव्रातेषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं नियमेन बध्नाति । "ण उ" इत्यादि, इहोक्तव्यतिरिक्तास्त्रयस्त्रिंशत्शेषनामप्रकृतीर्नैव बध्नाति, अपर्याप्तनाम्ना सह तद्बन्धस्य विरोधात् । ताश्चेमा अबन्धप्रायोग्यास्त्रयस्त्रिंशत्शेषप्रकृतयः–देवनरकगतिद्वयम्, वैक्रियद्विकम्, आहारकद्विकम्, प्रथमादिसंहननपञ्चकम्, प्रथमादिसंस्थानपञ्चकम्, देवनरकानुपूर्वीद्वयम्, खगतिद्वयम्, पर्याप्तस्थिरशुभसुभगसुस्वरादेययशःकीर्तिनामानि दुःस्वरं जिननामपराघातोच्छ्वासातपोद्योतनामानि चेति ॥३५४-५५॥

इदानीमस्थिरनाम्नः सन्निकर्ष उच्यते ।

बधइ व अथिरबंधी, जिणपरघूसासआयवदुगाणि ।
णियमा णवधुवबंधी णेव थिराहारगदुगाणि ॥३५६॥
बधइ अण्णयरा अवि वा संधयणदुवगसरखगई ।
णियमाऽण्णा गइआई एव असुहअजसाण भवे ॥३५७॥

(प्रे०)"बंधइ" इत्यादि, अस्थिरनामबन्धको जिननामपराघातोच्छ्वासातपोद्योतनामानि विकल्पतो बध्नाति, बादरनामसन्निकर्षे आसां प्रकृतीनां यथा भावना कृता तथैवेह कार्या । 'णियमा'

इत्यादि; नवध्रुवबन्धिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, हेतुरत्र प्राग्वदनुसन्धेयः । "णेव" इत्यादि, स्थिरनामाहारकद्विकरूपं प्रकृतित्रयं नैव बध्नाति, तद्यथा–अस्थिरनाम्ना सह विरोधात्स्थिरनाम न बध्यते; आहारकद्विकमप्रमत्तसंयता एव बध्नन्ति, ते चाऽस्थिरनाम नैव बध्नन्ति, प्रमत्तगुणस्थानं यावदेव बध्यमानत्वात्तस्य, तस्मादत्र प्रकृतप्रकृतित्रयस्य निषेधात्मकः सन्निकर्षो दर्शितः । "बंध०" इत्यादि, संहननषट्के, औदारिकवैक्रियाऽङ्गोपाङ्गद्वये स्वरद्वये, खगतिद्वये च प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं विकल्पेन बध्नाति, एकेन्द्रियप्रायोग्यत्रसप्रायोग्यबन्धकापेक्षया पूर्ववद् भावना कार्या । "णियमा" इत्यादि, अत्र कथितभिन्नशेषप्रकृतिवृन्देषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं नियमेन बध्नाति, हेतुः पुनरत्र प्राग्वद्भाव्यः । इमानि च तानि शेषप्रकृतिवृन्दानि- गतिचतुष्कम् , जातिपञ्चकम् , औदारिकवैक्रियशरीरद्वयम् , संस्थानषट्कम् , आनुपूर्वीचतुष्कम् , सुस्वरदुःस्वरस्थिरास्थिरवर्जत्रसादिसप्रतिपक्षयुगलाष्टकं चेति । "एवं" इत्यादि, अशुभाऽयशःकीर्तिप्रधानसन्निकर्ष एवमेव भवतीति विज्ञेयम् । विशेषस्त्वत्र प्राग्वद् वेद्यः ॥३५६-७॥

इति ओघतो नामप्रकृतिसन्निकर्षः स्वस्थानतः समाप्तः, तत्समाप्तौ चौघतः स्वस्थानसन्निकर्ष समाप्तः।

एतावत्पर्यन्तमोघतः स्वस्थानसन्निकर्षमभिधाय साम्प्रतं तमेवादेशतो मार्गणासु निरूपयन्नादौ ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायोत्तरप्रकृतिप्रधानं तं दर्शयति

ओघव्व सण्णियासो सव्वासु हवेज्ज पढमचरमाणं ।
बीयावरणस्स भवे तिणरदुपणिंदियतसेसु ॥३५८॥
पणमणवयजोगेसुं कायुरलतिवेअचउकसायेसुं ।
णयणेयरसुक्कासु भविये सण्णिम्मि आहारे ॥३५९॥

(प्रे०) "ओघव्व" इत्यादि, 'सव्वासु' त्ति, वक्ष्यमाणासु सप्तत्युत्तरशतमार्गणासु ज्ञानावरणपञ्चकाऽन्तरायपञ्चकयोः संनिकर्ष ओघवद् भवति, स चैवम्-ज्ञानावरणपञ्चकेऽन्यतमां प्रकृतिमाबध्नत एतन्मार्गणागतजीवाः शेषज्ञानावरणचतुष्कं नियमाद् बध्नन्ति, एवमेवाऽन्तरायपञ्चकेऽन्यतमां प्रकृतिं बध्नन् शेषाऽन्तरायचतुष्कं नियमाद् बध्नातीति । हेतुरत्रौघवदवसेयः ।

"बीयावरणस्स" इत्यादि, मनुष्यौघपर्याप्तमनुष्यमानुषीपञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौघपर्याप्तत्रसरूपाः सप्तमार्गणाः, ओघ-सत्या-ऽसत्य सत्यासत्या-ऽसत्याऽमृषाभेदैः पञ्चमनोयोगमार्गणाः पञ्चवचनयोगमार्गणाश्च काययोगौघौदारिककाययोगस्त्रीपुरुषनपुंसकवेदक्रोधमानमायालोभरूपा नवमार्गणाः, चक्षुरचक्षुर्दर्शनशुक्ललेश्यालक्षणास्तिस्रो मार्गणा भव्यमार्गणा संज्ञिमार्गणा आहारकमार्गणा चेति समुदितासु द्वात्रिंशन्मार्गणासु दर्शनावरणीयस्य सन्निकर्ष ओघवद् भवति तद्यथा–स्त्यानर्द्धिदर्शनावरणप्रकृतिबन्धकः प्रचलाप्रचलाप्रकृतिबन्धको निद्रानिद्राप्रकृतिबन्धको वा शेषाष्टावपि दर्शनावरणप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । निद्राप्रकृतिबन्धकः प्रचलाप्रकृतिबन्धको वा स्त्यानर्द्धिप्रचलाप्रचला-

निद्रानिद्राप्रकृतित्रयं विकल्पतो बध्नाति, चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्कं स्वभिन्ननिद्राप्रचलयोरन्यतरां च नियमेन बध्नाति । चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्केऽन्यतमां प्रकृतिं बध्नन् शेषदर्शनावरणत्रयं नियमेन बध्नाति, स्त्यानर्द्धित्रिकनिद्राद्विकरूपाः पञ्चप्रकृतीश्च विकल्पतो बध्नाति, भावना पुनरोघतोऽवसातव्या ॥३५८-९॥

इदानीमपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यक्प्रभृतिमार्गणासु दर्शनावरणस्य सन्निकर्षमाह

असमत्तपणिंदितिरियमणुयपणिंदियतसेसु सव्वेसुं ।
एगिंदियविगलेसुं सव्वेसुं पचकायेसुं ॥३६०॥
तिअणाणअभवियेसुं सासणमिच्छामणेसु बधंतो ।
बीआवरणस्सेग वंधइ नियमाऽट्ठ सेसाओ ॥३६१॥

(प्रे०) "असमत्त" इत्यादि, अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तमनुष्यापर्याप्तपञ्चेन्द्रियापर्याप्तत्रसरूपाश्चतस्रो मार्गणाः, एकेन्द्रियस्य सर्वा मार्गणास्ताश्च सप्त, द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियाणां सर्वा मार्गणास्ताश्च समुदिता नव, पृथ्वीकायाऽप्कायतेजस्कायवायुकायवनस्पतिकायानां सर्वा मार्गणास्ताश्चैकोनचत्वारिंशत् , मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानाऽभव्यमार्गणाचतुष्कं सास्वादनमिथ्यात्वाऽसंज्ञिमार्गणात्रयं चेति समुदितासु षट्षष्टिमार्गणासु दर्शनावरणनवक एकतमां प्रकृतिं बध्नन् शेषा अष्टावपि दर्शनावरणप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति भावनाविधिस्त्वेवम्—दर्शनावरणस्य नवप्रकृत्यात्मकस्थानं द्वितीयगुणस्थानकपर्यन्तं बध्यते, आभ्यो मार्गणाभ्यो यथायोगं कासुचिन्मार्गणासु प्रथममेव गुणस्थानं प्राप्यते कासुचिच्च प्रथमद्वितीयगुणस्थानकद्वयम् , सास्वादनमार्गणायां च केवलं द्वितीयं गुणस्थानकम् , अतः प्रस्तुतमार्गणासु वर्तमानो जीवो दर्शनावरणनवके एकतरां प्रकृतिं बध्नन् शेषा अष्टावपि प्रकृतीरवश्यं बध्नाति ॥३६०-१॥

अथाऽनुत्तरसुरादिमार्गणासु दर्शनावरणप्रकृतीनां सन्निकर्ष उपदर्श्यते

पंचसु अणुत्तरेसु आहारदुगपरिहारदेसेसु ।
वेअगमीसेसु इगं बीआवरणस्स बधंतो ॥३६२॥
बधइ णियमाऽण्णा पण अवेअसुहुमेसु दरिसणावरण ।
एगं बधेमाणो सेसतिगं बधए णियमा ॥३६३॥

(प्रे०) 'पञ्चसु' इत्यादि, पञ्चाऽनुत्तरमार्गणासु आहारकाहारकमिश्रकाययोगपरिहारविशुद्धिदेशविरतिचारित्ररूपासु चतसृषु मार्गणासु क्षयोपशमसम्यक्त्वमिश्रमार्गणयोश्चेति समुदितास्वेकादशमार्गणासु स्त्यानर्द्धित्रिकवर्जशेषदर्शनावरणषट्केऽन्यतमां प्रकृतिं बध्नन् शेषपञ्चदर्शनावरणप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, मार्गणास्वासु षड्दर्शनावरणप्रकृत्यात्मकैकस्यैव बन्धस्थानस्य सद्भावादिति । "अवेअ" इत्यादि, अपगतवेदसूक्ष्मसंपरायमार्गणयोः चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्कमध्येऽन्यतमां प्रकृतिमाबध्नन् शेषदर्शनावरणत्रयं नियमेन बध्नाति, एतन्मार्गणाद्वयेऽस्य दर्शनावरणचतुष्कस्य युगपद् बध्यमानत्वात् ॥३६२-३॥

अधुना मतिज्ञानादिमार्गणासु दर्शनावरणप्रकृतेः सन्निकर्षं दर्शयति

चउणाणसंजमेसुं समइअछेओहिसम्मखइएसुं ।
तहुवसमे बंधंतो अण्णयरं णिद्दपयलाणं ॥३६४॥
बंधइ णियमाऽण्णा पण बंधतो एगदंसणावरणं ।
णिद्ददुगं वा बंधइ सेसतिगं बंधए णियमा ॥३६५॥

(प्रे०) 'चउ' इत्यादि, मतिज्ञानश्रुतज्ञानाऽवधिज्ञानमनःपर्यवज्ञानसंयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयाऽवधिदर्शनसम्यक्त्वौघक्षायिकसम्यक्त्वोपशमसम्यक्त्वरूपास्वेकादशमार्गणासु निद्राप्रचलाप्रकृतिद्वयेऽन्यतरां बध्नन् चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्कं निद्राप्रचलयोःप्रधानीकृतेतरां चेति पञ्चदर्शनावरणप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । "बंधंतो" इत्यादि, चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्केऽन्यतमां प्रकृतिं बध्नन् निद्राप्रचलारूपं प्रकृतिद्वयं विकल्पतो बध्नाति, घटना पुनरित्थं कर्तव्या—निद्राद्विकस्य बन्धविच्छेदोऽपूर्वकरणगुणस्थानकस्याद्यभागान्ते भवति, अतस्तदूर्ध्वं निद्राद्विकं मार्गणास्वासु न बध्यते तत्पूर्वं तु बध्यते इतिकृत्वा विकल्पोऽभिहितः । "सेसतिगं" इत्यादि, अस्मिन् दर्शनावरणप्रकृतिचतुष्केऽन्यतमां प्रकृतिं बध्नन् शेषदर्शनावरणत्रयं नियमेन बध्नाति, यतो दर्शनावरणचतुष्कं युगपदेव बध्यते ॥३६४-५॥

एतर्हि शेषमार्गणासु दर्शनावरणीयस्य सन्निकर्षं कथयति

अण्णह ओघव्व भवे थीणद्धितिगस्स सेसमेगं तु ।
बंधतो थीणद्धियतिगं व सेसपणगं णियमा ॥३६६॥

(प्रे०) "अण्णह" इत्यादि, अन्यत्राऽभिहितेतरशेषमार्गणासु स्त्यानर्द्धित्रिकस्य सन्निकर्ष ओघवद् भवति, तद्यथा—शेषमार्गणासु स्त्यानर्द्धित्रिकेऽन्यतमां दर्शनावरणीयप्रकृतिं बध्नन् जीवो नियमेन शेषा अष्टावपि दर्शनावरणीयप्रकृतीर्बध्नाति । भावना पुनरोघतोऽनुसन्धेया । "सेसमेगं तु" इत्यादि, स्त्यानर्द्धित्रिकवर्जशेषदर्शनावरणषट्के एकतमां प्रकृतिं बध्नन् स्त्यानर्द्धित्रिकं विकल्पतो बध्नाति, यतः स्त्यानर्द्धित्रिकं प्रथमद्वितीयगुणस्थानकयोर्बध्यते, तदूर्ध्वं तु न बध्यते, अतः प्रथमद्वितीयगुणस्थानस्थस्तद् बध्नाति तदूर्ध्वगुणस्थानस्थो न बध्नाति । "सेसपणगं" इत्यादि, शेषदर्शनावरणपञ्चकं च नियमेन बध्नाति, शेषमार्गणासु वर्तमानैर्जीवैः शेषदर्शनावरणषट्कस्य समुदिततयैव बध्यमानत्वात्, ताश्चेमाः शेषमार्गणाः—अष्टौ नरकभेदाः अपर्याप्तवर्जचतुस्तिर्यग्भेदाः, पञ्चानुत्तरवर्जपञ्चविंशतिदेवभेदाः, औदारिकमिश्रवैक्रियद्विककार्मणकाययोगाः, असंयममार्गणा, कृष्णनीलकापोततेजःपद्मलेश्यामार्गणाः, अनाहारकमार्गणा चेत्यष्टचत्वारिंशन्मार्गणाः, आसु मार्गणासु दर्शनावरणस्य नवप्रकृत्यात्मकं षट्प्रकृत्यात्मकं च द्वे बन्धस्थाने विद्येते, अतो निद्राद्विकस्य सार्द्धमन्यदर्शनावरणचतुष्कमपि नियमेन बध्नाति ॥३६६॥

अथ मार्गणासु वेदनीयकर्मणः सन्निकर्षमाह

वेअस्स सण्णियासो अवेअअकसायकेवलदुगेसु ।
सुहमाहक्खायेसु ण होइ ओघव्व सेसासु ॥३६७॥

(प्रे०) 'वेअस्स' इत्यादि, अपगतवेदाऽकषायकेवलज्ञानकेवलदर्शनसूक्ष्मसम्परायथाख्यातरूपासु षट्सु मार्गणासु वेदनीयकर्मणः सन्निकर्षो नास्ति, सातवेदनीयरूपस्यैकस्यैव वेदनीयकर्मणोऽत्र बन्धभावात् । 'ओघव्व' इत्यादि, इहोक्तशेषमार्गणासु वेदनीयकर्मणः सन्निकर्ष ओघवद् विज्ञेयः,तदेवम्–शेषमार्गणास्वेकतरं वेदनीयं बध्नन् तत्प्रतिपक्षभूतं वेदनीयकर्म नैव बध्नाति, परावर्तमानतया बध्यमानत्वेनैकस्य बन्धेऽपरस्य बन्धविरोधात् ॥३६७॥

साम्प्रतं मार्गणासु मोहनीयकर्मणः सन्निकर्षमावेदयितुमाह

तिणरदुपंचिंदियतसपणमणवयकायउरललोहेसु ।
णयणेयरसुक्कासु भविये सण्णिम्मि आहारे ॥३६८॥
मोहस्स सण्णियासो ओघव्व " .... ।

(प्रे०) "तिणर" इत्यादि, मनुष्यौघपर्याप्तमनुष्यमानुषीपञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौघपर्याप्तत्रसमनःसामान्यसत्यमनोऽसत्यमनः- सत्यासत्यमनोऽसत्यामृषामनो-वचनौघ-सत्यवचनाऽसत्यवचन सत्यासत्यवचनाऽसत्यामृपावचनकाययोगौघौदारिककाययोगलोभकषायचक्षुरचक्षुर्दर्शनशुक्ललेश्याभव्यसंज्ञ्याहारकरूपासु षड्विंशतिमार्गणासु मोहनीयकर्मणः सन्निकर्ष ओघवद् भवति, तद्यथा-मिथ्यात्वमोहनीयं बध्नन् षोडशकषाया भयकुत्से इत्यष्टादशप्रकृतीनां स्त्रीपुरुषनपुंसकवेदेष्वन्यतमवेदस्य, हास्यरतिशोकाऽरतियुगलयोरेकतरस्य युगलस्य च नियमेन बन्धं विधत्ते । अनन्ताऽनुबन्धिचतुष्कमध्येऽन्यतमां कषायप्रकृतिं बध्नन् मिथ्यात्वमोहनीयं विकल्पेन बध्नाति । अन्यतमास्तिस्रोऽनन्तानुबन्धिप्रकृतयोऽप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनचतुष्करूपाश्च पञ्चदशकषायाः भयजुगुप्से चेति सप्तदशप्रकृतीनां वेदत्रयेऽन्यतमवेदं हास्यरतिशोकारतियुगलद्वयेऽन्यतरदेकं युगलं च नियमेन बध्नाति ।

अप्रत्याख्यानावरणचतुष्केऽन्यतमामेककषायप्रकृतिमाबध्नन् मिथ्यात्वमोहनीयमनन्तानुबन्धिचतुष्कं च विकल्पतो बध्नाति । अन्यतमाऽप्रत्याख्यानावरणत्रयं प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं संज्वलनचतुष्कं भयकुत्से चेति त्रयोदशध्रुवबन्धिप्रकृतीर्वेदत्रयेऽन्यतममेकं वेदं हास्यादियुगलद्वयेऽन्यतरयुगलं च नियमेन बध्नाति । प्रत्याख्यानावरणचतुष्केऽन्यतमं कषायं बध्नन् मिथ्यात्वमोहनीयाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपा नवमोहनीयप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, अन्यतमास्त्रयः प्रत्याख्यानावरणकषायाः संज्वलनचतुष्कं भयजुगुप्से चेति नवध्रुवबन्धिप्रकृतीनामन्यतमवेदस्यान्यतरस्यैकस्य हास्यादियुगलद्वये युगलस्य च बन्धं नियमेन करोति ।

संज्वलनक्रोधस्य बन्धकः संज्वलनमानमायालोभरूपास्तिस्रः प्रकृतीः, संज्वलनमानबन्धकः संज्वलनमायालोभलक्षणे द्वे प्रकृती, संज्वलनमायाबन्धकश्च संज्वलनलोभं नियमेन बध्नाति, शेषकषाया मिथ्यात्वं भयजुगुप्सेऽन्यतमवेदमन्यतरहास्यादियुगलं च विकल्पेन बध्नाति। संज्वलनलोभबन्धको मिथ्यात्वमोहनीयमनन्तानुबन्धिचतुष्कमप्रत्याख्यानावरणचतुष्कं प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं संज्वलनक्रोधादित्रयं भयजुगुप्से चेत्यष्टादशशेषध्रुवबन्धिप्रकृतीरन्यतमवेदमेकतरं च हास्यादियुगलं विकल्पेन बध्नाति। पुरुषवेदस्य बन्धकः सञ्ज्वलनचतुष्कं नियमेन बध्नाति, स्त्रीनपुंसकवेदौ न बध्नाति, मिथ्यात्वमोहनीयाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कभयजुगुप्सारूपपञ्चदशध्रुवबन्धिमोहनीयप्रकृतीनामन्यतरस्य हास्यादियुगलस्य च बन्धं विकल्पेन विदधाति। नपुंसकवेदबन्धकः तदन्यवेदद्वयं न बध्नाति, मिथ्यात्वमोहनीयमनन्तानुबन्धिप्रभृतिषोडशकषायभयजुगुप्सारूपा एकोनविंशतिप्रकृतीरन्यतरहास्यादियुगलं च नियमेन बध्नाति। स्त्रीवेदबन्धकोऽन्यवेदद्वयं नैव बध्नाति, अनन्तानुबन्धिचतुष्कप्रभृतिषोडशकषायभयजुगुप्सारूपा अष्टादशप्रकृतीरन्यतरहास्यादियुगलं च नियमेन बध्नाति, मिथ्यात्वमोहनीय च विकल्पेन बध्नाति।

हास्यरतियुगलं बध्नन् शोकाऽरतियुगलं नैव बध्नाति, अनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकषायान् मिथ्यात्वमोहनीयं च विकल्पेन बध्नाति, स्त्रीपुरुषनपुंसकवेदेष्वन्यतमं वेदं संज्वलनचतुष्कं भयजुगुप्से च नियमेन बध्नाति, एवमेव शोकाऽरतियुगलस्यापि सन्निकर्षो ज्ञातव्यः, केवलं तत्प्रतिपक्षहास्यरतियुगलस्य बन्धो न भवति।

भयमोहनीयं बध्नन्ननन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकषायान् मिथ्यात्वमोहनीयं च विकल्पेन बध्नाति, संज्वलनचतुष्कं जुगुप्सां हास्यादियुगलद्वयेऽन्यतरयुगलमन्यतमवेदं च नियमेन बध्नाति, एवमेव जुगुप्सामोहनीयस्य सन्निकर्षो ज्ञातव्यः। भावना सर्वत्रौघानुसारेण कर्तव्या ॥३६८॥

अथ नरकादिमार्गणासु मोहस्य सन्निकर्षमाह

—.... ... .—हवेज्ज सव्वणिरयेसुं।
सुरगेविज्जतेसु उरालमीसे विउव्वदुगे ॥३६९॥
कम्मे असजमे तह तिअसुहलेसासु तह अणाहारे ।
मिच्छणपुमथीआइमदुइअकसायाण ओघव्व ॥३७०॥
दुइअकसायव्व भवे सेसाण णवरि थीणपुमवेआ ।
पुमवधी बधइ ण उ, एगजुगलबधगो जुगलमण्ण ॥३७१॥ (गीति)

(प्रे०) "हवेज्ज सव्वणिरयेसु" इत्यादि, नरकौघरत्नप्रभाशर्कराप्रभावालुकाप्रभापङ्कप्रभाधूमप्रभातमःप्रभातमस्तमःप्रभारूपास्वष्टनरकमार्गणासु देवौघभवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कसौधर्मेशानसनत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलान्तकशुक्रसहस्रारानतप्राणताऽऽरणाच्युतनवग्रैवेयकरूपासु पञ्चविंशतिदेवमार्गणास्वौदारिकमिश्रमार्गणायां वैक्रियवैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणयोः कार्मणकाययोगमार्गणायाम-

संयममार्गणायां कृष्णनीलकापोतलेश्यामार्गणात्रये, अनाहारकमार्गणायां चेति समुदितासु द्वाचत्वारिंशन्मार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयनपुंसकवेदस्त्रीवेदाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपाणामेकादशमोहनीयप्रकृतीनां सन्निकर्ष ओघवद् बोद्धव्यः, सोऽपि तत एव भाव्यः। शेषप्रकृतीनां संनिकर्षस्य द्वितीयाप्रत्यख्यानावरणकषायवत्कथयिष्यमाणत्वादप्रत्याख्यानावरणस्य संनिकर्षो दर्श्यते, तद्यथा-अप्रत्याख्यानावरणचतुष्केऽन्यतमामेकां कषायप्रकृतिं बध्नन् मिथ्यात्वमोहनीयमनन्तानुबन्धिचतुष्कं च विकल्पेन बध्नाति। शेषप्रत्याख्यानावरणकषायान् प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं संज्वलनचतुष्कं भयजुगुप्से वेदत्रयेऽन्यतमवेदं हास्यादियुगलद्वय एकतरं युगलं च नियमेन बध्नाति। 'दुइअ' इत्यादि, शेषप्रकृतीनां संनिकर्षो द्वितीयाप्रत्याख्यानावरणकषायवज्ज्ञातव्यः तद्यथा-प्रत्याख्यानावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्साप्रकृतिष्वन्यतमां प्रकृतिं बध्नन् शेषप्रकृतीनामप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्यान्यतरयुगलस्यान्यतमवेदस्य च नियमेन बन्धकः, मिथ्यात्वानन्तानुबन्धिप्रकृतीनां विकल्पेन बन्धकः। एवमेव हास्यरतिशोकारतिपुरुषवेदप्रकृतिप्रधानसंनिकर्षोऽपि ज्ञातव्यः, नवरं हास्यरत्योरन्यतरबन्धकः शेषा नियमेन बध्नाति, प्रतिपक्षयुगलं नैव बध्नाति, एवमेव शोकारत्योः कथनीयम्, तथा पुरुषवेदबन्धकः स्त्रीनपुंसकवेदौ नैव बध्नातीति विशेषो 'णवरि' इत्यादिना चरमगाथायामुक्तः ॥३६९-७०-७१॥

साम्प्रतं तिर्यगोघादिमार्गणासु मोहनीयकर्मणः सन्निकर्षं प्रदर्शयितुमाह

ओघव्व सण्णियासो तिरिये तीसुं पणिंदितिरियेसुं।
बारसकसायइत्थीणपुंसमिच्छाण विण्णेयो ॥३७२॥
तइअकसायव्व भवे सेसाण णवरि थीणपुंसाणि।
पुमबंधी बंधइ ण उ विरुद्धजुगलं जुगलबंधी ॥३७३॥

(प्रे०) "ओघव्व" इत्यादि, तिर्यगोघतिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिमतीरूपासु चतसृषु मार्गणासु अनन्तानुबन्धिचतुष्काप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपद्वादशकषायाः स्त्रीवेदनपुंसकवेदमिथ्यात्वमोहनीयानि चेति पञ्चदशप्रकृतीनां सन्निकर्ष ओघवद् विज्ञेयः, स तु तत एव विभावनीयः, तथाऽपि तृतीयप्रत्याख्यानावरणकषायस्य संनिकर्षो दर्श्यते, तद्यथा-प्रत्याख्यानावरणचतुष्केऽन्यतमत्कषायं बध्नन् मिथ्यात्वमोहनीयाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, शेषप्रत्याख्यानकषायत्रयसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सालक्षणा नवप्रकृतीरन्यतमं वेदमेकतरं हास्यादियुगलं च नियमेन बध्नाति। "तइअ" इत्यादि, निरुक्तातिरिक्तमोहनीयप्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्षस्तृतीयकषायवद् विज्ञेयः, तद्यथा-संज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सास्वन्यतमां प्रकृतिं बध्नन् मिथ्यात्वमोहनीयाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपा नवमोहनीयप्रकृतीर्विकल्पतो बध्नाति, यतो यदा प्रकृतमार्गणावर्ती प्रकृतप्रकृतिबन्धको जीवो मिथ्यात्वगुणस्थाने वर्तते तदा मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृतीर्बध्नाति

यदा तु पञ्चमगुणस्थानके वर्तते तदा तु न बध्नाति । शेषप्रकृतिपञ्चकं प्रत्याख्यानावरणचतुष्क-मन्यतमं वेदमेकतरं च हास्यादियुगलं नियमेन बध्नाति, प्रकृतमार्गणाप्रायोग्योत्कृष्टगुणस्थानकं यावद् ध्रुवतया बध्यमानत्वात् । शेषमोहनीयप्रकृतीनां तृतीयकषायवदतिदेशे समापतन्तीमापत्तिं निराकर्तुं "णवरि" इत्यादिनाऽऽह—पुरुषवेदस्य बन्धकः, स्त्रीनपुंसकवेदद्वयं नैव बध्नाति, एकस्य बन्धेऽपरवेदयोरबन्धात् । एवं हास्यादियुगलद्वयस्यैकतरं युगलं बध्नन् विरुद्धं युगलं न बध्नाति, तथा च पुरुषवेदस्य बन्धको मिथ्यात्वमोहनीयाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काप्रत्याख्यानावरण-चतुष्करूपा नवप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति संज्वलनचतुष्कं प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं भयजुगुप्सेऽन्य-तरहास्यादियुगलं च नियमेन बध्नाति, अन्यतरहास्यादियुगलबन्धको मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिनव-मोहनीयप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, संज्वलनचतुष्कं प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं भयजुगुप्सेऽन्यतम-वेदं च नियमेन बध्नाति, हेतुस्तत्र प्राग्वद् विभावनीयः ॥३७२-३॥

साम्प्रतमपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यक्प्रभृतिमार्गणासु मोहनीयकर्मणः सन्निकर्षं प्रतिपादयितुमाह—

असमत्तपणिदितिरियमणुयपणिंदियतसेसु सव्वेसुं ।
एगिंदियविगलेसुं सव्वेसुं पंचकायेसुं ॥३७४॥
मिच्छअभवियअमणेसु बधतो मिच्छमणणधुववंधी ।
णियमा अट्ठारस तह अण्णयरा वेअजुगलाणं ॥३७५॥
एमेव सण्णियासो सेसाणं णवरि वेअजुगलाण ॥
एग बंधेमाणो ण चेव बंधेइ पडिवक्खा ।३७६॥

(प्रे०) "असमत्त" इत्यादि, अपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियापर्याप्तमनुष्याऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रिया-ऽपर्याप्तत्रसरूपाश्चतस्रो मार्गणाः, ओघसूक्ष्मौघाऽपर्याप्तसूक्ष्मपर्याप्तसूक्ष्मबादरौघाऽपर्याप्तबादरपर्याप्त-बादरभेदेन सप्तैकेन्द्रियमार्गणाः, ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेन तिस्रो द्वीन्द्रियमार्गणाः, तिस्रस्त्रीन्द्रियमार्गणाः, तिस्रश्चतुरिन्द्रियमार्गणाः, ओघादिसप्तभेदेन सप्तपृथ्वीकायमार्गणाः सप्ताऽप्कायमार्गणाः सप्ततेजस्काय-मार्गणाः सप्तवायुकायमार्गणाः, एकादशवनस्पतिकायमार्गणाः, मिथ्यात्वाऽभव्याऽसंज्ञिरूपास्तिस्रो मार्ग-णाश्चेति सर्वसंख्यया द्वाषष्टिमार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयं बध्नन् षोडशकषाया भयजुगुप्से चेत्य-ष्टादशध्रुवबन्धिप्रकृतीरन्यतरवेदमन्यतरहास्यादियुगलं च नियमेन बध्नाति, यतो मार्गणास्वासु प्रथममेव गुणस्थानकं वर्तते, तत्रैताः प्रकृतयोऽवश्यभावेन बध्यन्ते । 'एमेव' इत्यादि, मिथ्यात्व-मोहनीयप्रकृतिव्यतिरिक्तमोहनीयप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षो मिथ्यात्वमोहनीयसन्निकर्षवद् विज्ञेयः, शेषमोहनीयप्रकृतिसमुदायगतस्याऽन्यतमवेदस्यान्यतरहास्यादियुगलस्य च सन्निकर्षविषयकं 'णवरि' इत्यादिनाऽपवादमाह—अन्यतमस्य वेदस्य बन्धकः शेषवेदद्वयं न बध्नाति, तथा अन्यत-रहास्यादियुगलं बध्नन् प्रतिपक्षभूतं युगलं न बध्नाति, विरोधादिति ॥३७४-५-६॥

इदानीं पञ्चानुत्तरसुरादिमार्गणासु मोहनीयप्रकृतीनां सन्निकर्षमाह

पणऽणुत्तरमीसेसुं आहारदुगपरिहारदेसेसुं ।
पुमवंधी वंधइ चिअ धुववंधी जुगलमण्णयरं ॥३७७॥
एवं धुववंधीण हवेज्ज एमेव दोण्ह जुगलाणं ।
परमेगजुगलवंधी ण चेव वंधइ जुगलमण्णं ॥३७८॥

(प्रे०) 'पण' इत्यादि, पञ्चानुत्तरसुरमार्गणाः, मिश्रमार्गणा, आहारकाहारकमिश्रकाययोग-परिहारविशुद्धिदेशविरतिमार्गणाश्चेति दशमार्गणासु पुरुषवेदवन्धकः स्वप्रायोग्यध्रुवबन्धिप्रकृतीरन्यतरहास्यादियुगलं च नियमेन बध्नाति, आसु मार्गणासु मोहनीयस्यैकैकविधस्यैव बन्धस्थानस्य भावेन स्वोत्कृष्टगुणस्थानं यावदवश्यमेव आसां बध्यमानत्वात् । 'एवं' इत्यादि, स्वप्रायोग्यध्रुव-बन्धिप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षः पुरुषवेदवदस्ति । 'एमेव' इत्यादि, हास्यादियुगलद्वयप्रधानसन्नि-कर्षोऽपि पुरुषवेदवद् विज्ञेयः, तत्राऽपि **'परमे'** इत्यादिनाऽपवादमुपदर्शयति—अस्मिन् युगलद्वये एकतरं युगलं बध्नन्नन्यद् युगलं नैव बध्नाति, विरोधित्वात् । स्वप्रायोग्यमोहनीयध्रुवबन्धिप्रकृतयः—परिहाराहारकद्विकमार्गणासु संज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सारूपाः षट् , देशविरतौ ता एव प्रत्याख्याना-वरणचतुष्कसंहिता दश, शेषासु अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कसहितास्ताश्चतुर्दश ज्ञातव्याः ॥३७७-८॥

अथ त्रिवेदक्रोधरूपासु चतसृषु मार्गणासु मोहनीयकर्मणां सन्निकर्षमाह—

संजलणतिगूणाणं तिवेअकोहेसु अत्थि ओघव्व ।
तिण्हं संजलणाणं हवेज्ज संजलणकोहव्व ॥३७९॥
णवरं वंधेमाणो तीसु वेएसु एगमण्णयरं ।
संजलणं णियमेण अण्णयरं वंधए वेअं ॥३८०॥

(प्रे०) 'संजलण' इत्यादि, स्त्रीपुरुषनपुंसकवेदरूपासु तिसृषु मार्गणासु क्रोधमार्गणायां च संज्वलनमानमायालोभवर्जा शेषमोहनीयप्रकृतिप्रधानसन्निकर्ष ओघवदस्ति । 'तिण्हं' इत्यादि, संज्वलनमानमायालोभरूपं सञ्ज्वलनत्रिकं प्रधानीकृत्य सन्निकर्षः ओघोक्तसञ्ज्वलनक्रोध-प्रधानसन्निकर्षवद् भवति, तद्यथा—संज्वलनकषायत्रिकमध्ये एकतमकषायं बध्नन् शेषसंज्वलनकषाय-द्वयं सञ्ज्वलनक्रोधं च नियमेन बध्नाति, मिथ्यात्वमोहनीयमनन्तानुबन्ध्यादिद्वादशकषायान् भय-जुगुप्सेऽन्यतमवेदमन्यतरहास्यादियुगलं विकल्पतो बध्नाति । भावनाऽप्योघत एव विज्ञेया । "णवरं" इत्यादिना त्रिवेदमार्गणास्वन्यतरसञ्ज्वलनप्रधाने संनिकर्षेऽपवादमुपदर्शयति स्त्रीपुरुषनपुंसक-वेदरूपासु तिसृषु मार्गणासु सञ्ज्वलनक्रोधादिष्वन्यतमां कषायप्रकृतिमावध्नन्नेकतमवेदं नियमेन बध्नाति मार्गणास्वासु प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धस्याऽन्यतरवेदबन्धाऽविनाभावित्वात् ॥३७९-८०॥

अथावेदमार्गणायां मोहनीयस्य सन्निकर्षं दर्शयन् तथाऽकषायादिमार्गणासु तं निषेधयन्नाह—

संजलणाण अवेए ओघव्वऽत्थि चउसंजलणवंधी ।
अकसायकेवलदुगाहखायसुहुमेसु णेव भवे ॥३८१॥

(प्रे०) 'संजलणाण' इत्यादि, अवेदमार्गणायां संज्वलनचतुष्कात्प्रत्येकं प्राधान्येन संज्वलनानां संनिकर्षमोघवद् भवति । अयं भावः-अवेदमार्गणायां केवलं संज्वलनचतुष्कं बन्धार्हम्, तत्र संज्वलनक्रोधं बध्नन् शेषत्रिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, संज्वलनमानं बध्नन् मायालोभप्रकृतिद्वयं नियमेन बध्नाति, क्रोधं तु भजनया बध्नाति, संज्वलनमायां बध्नन् लोभं नियमेन शेषक्रोधमानप्रकृतिद्वयं विकल्पेन बध्नाति, संज्वलनलोभं बध्नन् शेषप्रकृतित्रयं विकल्पेन बध्नातीति । अथाकषायादिमार्गणासु मोहनीयबन्धस्याभावात् तस्य सन्निकर्षविचारणापि नास्ति, अतो निषेधयति 'णेव भवे' इति । अकषायादिमार्गणास्त्विमाः-अकषायकेवलज्ञानकेवलदर्शनयथाख्यातसंयमसूक्ष्मसम्परायसंयममार्गणा इति ॥३८१॥

अथ मानमार्गणायां सन्निकर्षमाह-

माणम्मि सण्णियासो दुसंजलणवज्जिआण ओघव्व ।
संजलणाण दोण्हं हवेज्ज संजलणमाणव्व ॥३८२॥

(प्रे०) 'माणम्मि' इत्यादि, मानमार्गणायां संज्वलनमायालोभवर्जशेषप्रकृतिप्रधानसन्निकर्ष ओघवद् विज्ञातव्यः । संज्वलनमायालोभप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षः संज्वलनमानवद् भवति, मार्गणाचरमसमयं यावदेतत्प्रकृतित्रिकस्य युगपद् बध्यमानत्वेन समानत्वात् । संनिकर्षस्त्वेवम्-संज्वलनमानमायालोभप्रकृतिष्वन्यतमां प्रकृतिं बध्नन् शेषद्वयं नियमेन बध्नाति, ध्रुवबन्धित्वे सति मार्गणाचरमसमयं यावद् बध्यमानत्वात्, तथा मिथ्यात्वमोहनीयमनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकषायान् सञ्ज्वलनक्रोधं भयजुगुप्सेऽन्यतमवेदमन्यतरयुगलं च विकल्पेन बध्नाति, प्रथमादिगुणस्थानकेषु तासां बध्यमानत्वात् नवमगुणस्थानकद्वितीयभागेऽबध्यमानत्वाच्च ॥३८२॥

साम्प्रतं मायामार्गणायां सन्निकर्षोऽभिधीयते ।

ओघव्व सण्णियासो हवेज्ज संजलणलोहवज्जाण ।
मायाअ चरमसमयव्व अत्थि सजलणलोहस्स ॥३८३॥

(प्रे०) 'ओघव्व' इत्यादि, मायामार्गणायां संज्वलनलोभवर्जशेषमोहनीयप्रकृतिप्रधानसन्निकर्ष ओघवद् भवति । 'चरमसमयव्व' इत्यादि, संज्वलनलोभस्य सन्निकर्षः संज्वलनमायावद् भवति । स पुनरेवम्-संज्वलनलोभस्य बन्धकः संज्वलनमायां नियमेन बध्नाति तथा भयजुगुप्सेऽन्यतमवेदमन्यतरहास्यादियुगलं च मिथ्यात्वमोहनीयमनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकषायान् सञ्ज्वलनक्रोधमानप्रकृती च विकल्पेन बध्नाति । हेतुः पुनरत्राऽनन्तरमार्गणोक्तानुसारेण ज्ञेयः ॥३८३॥ अधुना मतिज्ञानप्रभृतिमार्गणासु मोहनीयप्रकृतीनां सन्निकर्षं कथयति

णाणतिगे ओहिम्मि य सम्मत्ते खाइए उवसमे य ।
दुइआण कसायाणं, अणुत्तरसुरव्व विण्णेयो ॥३८४॥

एगं तइअकसायं बंधंतो बंधए कसाया वा ।
दुइआ बंधइ णियमा पुरिसणवधुवण्णयरजुगलं ॥३८५॥
बंधइ चिअ बंधंतो पुरिसचरमकोहमाणमाया य ।
कमसो संजलणाणं चत्तारो तिण्णि दो एगं ॥३८६॥
वा जुगलमण्णयरमवि तह सेसा बंधए चरमलोहं ।
बंधंतो वा बंधइ पुमसेसधुवाऽण्णयरजुगलं ॥३८७॥
भयबंधी वा बंधइ मज्झकसायाऽट्ठ बंधए णियमा ।
अण्णयरमेगजुगलं पुमसेसधुवा तहेव कुच्छाए ॥३८८॥ (गीतिः)
हस्सरइत्तो एगं बंधतो बंधए ण पडिवक्खं ।
जुगलं वाऽट्ठ कसाया णियमाऽण्णेमेव अरइसोगाण ॥३८९॥(गीति)

(प्रे०) 'णाण' इत्यादि, मतिज्ञानश्रुतज्ञानावधिज्ञानाऽवधिदर्शनसम्यक्त्वौघक्षायिकसम्यक्त्वो-पशमसम्यक्त्वलक्षणासु सप्तसु मार्गणासु अप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपस्य द्वितीयकषायस्य प्राधान्येना-ऽनुत्तरमार्गणावत्सन्निकर्षो विज्ञेयः, तद्यथा—अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कमध्येऽन्यतमामेकां कषाय-प्रकृतिमाबध्नन् शेषाऽप्रत्याख्यानावरणत्रयं प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं सञ्ज्वलनचतुष्कं भयजुगुप्से पुरुषवेदमन्यतरहास्यादियुगलं च नियमेन बध्नाति, यतो—मार्गणास्वासु द्वितीयकषायश्चतुर्थगुण-स्थानके बध्यते तत्र चैता मोहनीयप्रकृतयोऽवश्यंतया तेन सार्द्धं बध्यन्ते इति । "एगं" इत्यादि, प्रत्याख्यानावरणचतुष्कमध्ये, एकां कषायप्रकृतिं बध्नन् ,अप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपान् तृतीयकषा-यान् विकल्पेन बध्नाति, यतो मार्गणास्वासु पञ्चमगुणस्थानके प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं बध्यते तत्राऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कं न बध्यते चतुर्थगुणस्थाने तु बध्यते । पुरुषवेद शेषप्रत्याख्यानावरणत्रयं सञ्ज्वलनचतुष्क भयजुगुप्सेऽन्यतरयुगलं नियमेन बध्नाति, तत्र प्रत्याख्यानावरणचतुष्केऽन्यतरकषाय-बन्धस्य शेषप्रत्याख्यानावरणत्रयबन्धाऽविनाभावित्वात् शेषध्रुवाणां ध्रुवबन्धित्वे सति प्रत्याख्याना-वरणचतुष्कबन्धविच्छेदादनु बन्धविच्छेदात् , अन्यतरयुगलस्याऽध्रुवबन्धित्वेऽपि प्रधानीकृतप्रकृति-बन्धस्य तद्बन्धाविनाभावित्वात् । 'बंधइ' इत्यादि, पुरुषवेदसंज्वलनक्रोधमानमायाप्रकृतीर्बध्नन् नियमेन क्रमशः संज्वलनकषायाणां चतस्रः तिस्रो द्वे एकां प्रकृतीर्बध्नाति, एतदुक्तं भवति—पुरुषवेद-बन्धकः संज्वलनचतुष्कं नियमेन बध्नाति, संज्वलनक्रोधबन्धकः सञ्ज्वलनमानमायालोभरूपा-स्तिस्रः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, संज्वलनमानबन्धकः सञ्ज्वलनमायालोभरूपे द्वे प्रकृती नियमेन बध्नाति, सञ्ज्वलनमायाबन्धकश्च संज्वलनलोभलक्षणामेकां प्रकृतिं नियमेन बध्नाति । विवक्षित-प्रकृतिबन्धविच्छेदतो नियमेन बध्यमानप्रकृतीनां बन्धविच्छेदस्योत्तरत्र भावादिति । 'वा' इत्यादि, अन्यतरं हास्यादियुगलमप्रत्याख्यानावरणचतुष्कं प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं भयजुगुप्से विकल्पतो बध्नाति, तथा संज्वलनक्रोधमानमायाबन्धका उक्तप्रकृतीस्तथा पुरुषवेदमपि विकल्पतो

बध्नन्ति, यतो विकल्पेन बध्यमानप्रकृतीनां बन्धविच्छेदतो प्रधानीकृतप्रकृतेर्बन्धविच्छेदस्योत्तरत्र भावात् ।

"चरमलोहं" इत्यादि, संज्वलनलोभं बध्नन् पुरुषवेदमप्रत्याख्यानावरणचतुष्कं प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं शेषसंज्वलनत्रिकं भयजुगुप्सेऽन्यतरयुगलं च विकल्पतो बध्नाति, नवमगुणस्थानस्य पञ्चमे भागेऽबध्यमानत्वात् चतुर्थादिगुणस्थानकेषु यथासम्भवं बध्यमानत्वाच्च । "भयबंधो" इत्यादि, भयमोहनीयस्य बन्धकोऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपान् मध्यमाष्टकषायान् विकल्पेन बध्नाति, यतः षष्ठादिगुणस्थानके वर्तमानः कषायाष्टकं न बध्नाति चतुर्थगुणस्थानके वर्तमानस्तु बध्नाति । "बंधए" इत्यादि, अन्यतरहास्यादियुगलं पुरुषवेदं संज्वलनचतुष्कं जुगुप्सां चेति नियमेन बध्नाति, एवमेव कुत्सामोहनीयप्रधानसन्निकर्षो भयमोहनीयवद् बोद्धव्यः, समानत्वात् ।"हस्स"इत्यादि, हास्यरतिप्रकृतिद्वये एकतरां प्रकृतिं बध्नन् तत्प्रतिपक्षभूतं शोकारतियुगलं न बध्नाति, विरोधित्वात् । "वा" इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपं मध्यमकषायाष्टकं विकल्पतो बध्नाति, संज्वलनचतुष्कं भयजुगुप्से हास्यरतिद्वयेऽन्यतरप्रकृतिं पुरुषवेदं च नियमेन बध्नाति, तत्र सञ्ज्वलनचतुष्कस्य भयजुगुप्सयोश्च ध्रुवबन्धित्वे सति सञ्ज्वलनचतुष्कबन्धस्य हास्यरतिबन्धविच्छेदादुत्तरत्राऽपि भावात् भयजुगुप्सयोश्च हास्यरतिभ्यां सहैव बन्धविच्छेदात् तथा प्रकृतमार्गणासु पुरुषवेदस्य हास्यरतिबन्धविच्छेदादूर्ध्वमपि स्वबन्धविच्छेदस्थानं यावत्सततं बध्यमानत्वात् । 'एमेव' इत्यादि, अरतिशोकप्रकृतिद्वयप्रधानसन्निकर्षो हास्यमोहनीयवद् वेदयितव्यः, तुल्यत्वात् । परमत्र ताभ्यां सह हास्यरत्योरबन्धरूपः सन्निकर्षो वक्तव्य इति विशेषः ॥३८४-५-६-७-८-९॥

साम्प्रतं मनःपर्यवज्ञानादिमार्गणासु मोहनीयप्रकृतीनां सन्निकर्षो भण्यते ।

मणणाणसंजमेसुं समइअछेएसु बंधए णियमा ।
मायाइपुरिसबंधो कमेणदुतिचउगसंजलणा ॥३९०॥
वा जुगलमण्णयरमवि तह सेसाओ भयं तु बंधंतो ।
णियमाऽण्णयरं जुगलं तह सेसेमेव कुच्छाए ॥३९१॥
हस्सरइत्तो एग बंधंतो बंधए अरइसोगं ।
जुगलं ण चेव णियमा सेसेवं अरइसोगाणं ॥३९२॥
बधंतो संजलणं लोह बधेइ पुरिसभयकुच्छा ।
तह संजलणतिगं वा बंधइ वाण्णयरजुगलं पि ॥३९३॥

(प्रे०) "मणणाण" इत्यादि, मनःपर्यवज्ञानसंयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयसंयमलक्षणासु चतसृषु मार्गणासु मायादिबन्धकः पुरुषवेदबन्धकश्च क्रमेणैकद्वित्रिचतुःसंज्वलनकषायान् नियमेन बध्नाति, इदमुक्तं भवति-प्रकृतमार्गणासु संज्वलनमायाबन्धकः संज्वलनलोभं संज्वलनमानबन्धकः

संज्वलनमायालोभौ, संज्वलनक्रोधबन्धकः संज्वलनमानमायालोभान् , पुरुषवेदबन्धकश्च संज्वलनचतुष्कमवश्यमेव बध्नाति, अत्र तत्तत्प्रधानीकृतप्रकृतेर्बन्धविच्छेदादूर्ध्वमपि यथासम्भवं प्रकृतप्रकृतीनां बन्धविच्छेदस्थानं यावत्सततं बध्यमानत्वात् । "वा" इत्यादि, पुरुषवेदसंज्वलनक्रोधमानमायाबन्धकाः, हास्यादियुगलद्वये एकतरमपि युगलं शेषप्रकृतीश्च विकल्पेन बध्नाति, हेतुभावनादिकं ज्ञानमार्गणावत्कार्यम् । "भय" इत्यादि, भयमोहनीयं बध्नन् हास्यादियुगलद्वये एकतरं युगलं जुगुप्सां संज्वलनचतुष्कपुरुषवेदरूपाः शेषप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति, हेतुरत्र ज्ञानमार्गणावज्ज्ञेयः । "एमेव" इत्यादि, जुगुप्सामोहनीयप्रधानसन्निकर्षोऽत्र भयमोहनीयवद् विज्ञेयः, तत्सदृशत्वात् । "हस्सरइत्तो" इत्यादि, हास्यरतिप्रकृत्योरेकतरां प्रकृतिमाबध्नन्नरतिशोकरूपं युगलं नैव बध्नाति, ताभ्यां सहैतद्युगलबन्धस्य विरोधात् । "णियमा" इत्यादि, हास्यरत्योरन्यतरप्रकृतिं पुरुषवेदसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सारूपाः सप्तप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति, अत्र ज्ञानमार्गणावद्धेतुरवसेयः । "एवं" इत्यादि, अरतिशोकप्रकृतिद्वयप्रधानसन्निकर्षो हास्यरतिवद् वक्तव्यः, तत्समानत्वात् । "बंधंतो" इत्यादि, संज्वलनलोभं बध्नन् पुरुषवेदभयकुत्सासंज्वलनक्रोधादित्रयरूपाः षट्प्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । "बन्धइ" इत्यादि, हास्यादियुगलद्वयेऽन्यतरयुगलमपि विकल्पेन बध्नाति, पुरुषवेदादिप्रकृतीनामन्यतरयुगलस्य च बन्धस्य संज्वलनलोभबन्धविच्छेदस्य प्रागेव विच्छेदभावात् । ॥३९०-१-२-३॥

इदानीमज्ञानत्रिके सन्निकर्षमाह

ओघव्व अणाणतिगे मिच्छाणचउगणपुंसगित्थीण ।
सेसाण अणव्व णवरि पडिवक्खं णेव पुमजुगलबंधी ॥३९४॥ (गीति)

(प्रे०) "ओघव्व" इत्यादि, मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानरूपासु तिसृषु मार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कनपुंसकवेदस्त्रीवेदप्रकृतिप्रधानसन्निकर्ष ओघवद् विज्ञेयः । ओघवदासां यथायोगं प्रथमद्वितीयगुणस्थानद्वयं यावद् बन्धस्य सद्भावात् । सन्निकर्षस्ततो ज्ञेयः । "सेसाण" इत्यादि, निरुक्तसप्तप्रकृतिव्यतिरिक्तशेषमोहनीयप्रकृतिप्रधानसंनिकर्षोऽनन्तानुबन्धिकषायवद् वेदयितव्यः । तद्यथा—अप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणसञ्ज्वलनचतुष्कमध्येऽन्यतमां प्रकृतिं बध्नन् शेषैकादशकषायानन्तानुबन्धिचतुष्कं भयजुगुप्सेऽन्यतमवेदमन्यतरयुगलं च नियमेन बध्नाति, मिथ्यात्वमोहनीयं तु विकल्पेन बध्नाति । भयबन्धकः षोडशकषायान् जुगुप्सामन्यतमवेदमन्यतरयुगलं च नियमेन बध्नाति, मिथ्यात्वमोहनीयं च विकल्पेन बध्नाति, एवमेव सन्निकर्षो जुगुप्सामोहनीयस्य ज्ञातव्यः, तत्सदृशत्वात् । पुरुषवेदबन्धकः षोडश कषायान् भयजुगुप्सेऽन्यतरयुगलं च नियमेन बध्नाति, मिथ्यात्वमोहनीयं तु विकल्पेन बध्नाति । हास्यरत्योरन्यतरप्रकृतिमाबध्नन्नेतत्प्रकृतिद्वयेऽन्यतरां प्रकृतिं षोडशकषायान् भयजुगुप्सेऽन्यतमवेद नियमेन बध्नाति, मिथ्यात्वमोहनीयं तु विकल्पेन बध्नाति । अरति-

शोकप्रधानसन्निकर्ष एवमेवाभिधातव्यः, समानत्वात् । ननु शेषमोहनीयप्रकृतीनां सन्निकर्षोऽनन्तानुबन्धिचतुष्कवदत्रादिष्टः, तदनुसारेण त्वन्यतमवेदेन साकं प्रतिपक्षवेदसन्निकर्षापत्तिः स्यात्, तथा हास्यरतियुगलेन सह शोकारत्योः सन्निकर्षापत्तिः स्यादित्यापत्तिद्वयमपाकर्तुमपवादमुपदर्शयति "णवरि" इत्यादि, अन्यतमवेदबन्धकस्तत्प्रतिपक्षभूतौ वेदौ हास्यादियुगलबन्धकस्तद्विपक्षभूतं युगलं च नैव बध्नाति, विरोधात् ॥२९४॥

साम्प्रतं तेजःपद्मलेश्याद्वये सन्निकर्षमाह

बारसकसायदुजुगलवेआणोघव्व तेउपम्हासु ।
एगं बंधतो भयकुच्छासजलणचउगाओ ॥२९५॥
बंधेइ पंच सेसा णियमा वा मिच्छबारसकसाया ।
बंधइ णियमाऽण्णयरं एगं वेअं तहा जुगलं ॥२९६॥
पुमबंधी वेअदुगं ण बंधइ व मिच्छबारसकसाया ।
णियमा भयकुच्छाचउसजलणाऽण्णयरंजुगलं च ॥२९७॥

(प्रे०) 'बारस' इत्यादि, तेजःपद्मलेश्यामार्गणाद्वयेऽनन्तानुबन्धिचतुष्कादिद्वादशकषायान् हास्यादियुगलद्वयं स्त्रीनपुंसकवेदद्वयं च प्रधानीकृत्य सन्निकर्ष ओघवज्ज्ञातव्यः । 'एगं' इत्यादि, भयजुगुप्सासंज्वलनचतुष्कप्रकृतिष्वन्यतमा प्रकृतिमाबध्नन् शेषा एता पञ्चप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, मार्गणयोरनयोर्बन्धविच्छेदाभावादासाम् । 'वा' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयमनन्तानुबन्धिचतुष्कादिद्वादशकषायांश्च विकल्पेन बध्नाति । भयादिप्रकृतिबन्धविच्छेदात्प्रागासां बन्धविच्छेदात् । 'बंधइ' इत्यादि, वेदत्रयेऽन्यतमवेदमेकतरं हास्यादियुगलं च नियमेन बध्नाति । 'पुमबंधो' इत्यादि, पुरुषवेदबन्धकः शेषवेदद्वयं न बध्नाति, वेदत्रयादन्यतरैकवेदस्यैव बन्धसम्भवात् । "व" इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयं द्वादशकषायांश्च विकल्पेन बध्नाति । 'बंधइ' इत्यादि, भयजुगुप्से संज्वलनचतुष्कमन्यतरहास्यादियुगलं च नियमेन बध्नाति, मार्गणयोरनयोर्बन्धविच्छेदाभावात्तासाम् । ॥२९५-६-७॥

साम्प्रतं क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां मोहनीयप्रकृतीनां सन्निकर्षमाह

ओहिव्व वेअगे खलु भवे अडकसायहस्सछक्काणं ।
कुच्छव्व सण्णियासो पुमसजलणाण विण्णेयो ॥२९८॥

(प्रे०) 'ओहिव्व' इत्यादि, क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायामप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपस्य कषायाष्टकस्य हास्यषट्कस्य च प्रधानभावेन सन्निकर्षोऽवधिज्ञानमार्गणावद् भवति, तत्पुनरेवम्-अप्रत्याख्यानावरणचतुष्केऽन्यतम कषायमाबध्नन् शेषाऽन्यतमाऽप्रत्याख्यानावरणत्रयं प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं संज्वलनचतुष्कं भयजुगुप्से पुरुषवेदमेकतरहास्यादियुगलं च नियमेन बध्नाति । प्रत्याख्यानावरणचतुष्कमध्यादेकतमां कषायप्रकृतिमाबध्नन् शेषाऽन्यतमप्रत्याख्यानावरणत्रयं सज्वलनचतुष्कं भयजगुप्सेऽन्यतरयुगलं पुरुषवेदं च नियमेन बध्नाति, अप्रत्याख्यानावरण-

चतुष्कं विकल्पेन बध्नाति । हास्यरतिप्रकृतिद्वय एकतरप्रकृतिबन्धकस्य शोकारत्योर्बन्धो नास्ति। मध्यमकषायाष्टकस्य विकल्पेन बन्धोऽस्ति, संज्वलनचतुष्कस्य भयजुगुप्सयोः पुरुषवेदस्य हास्यरतिद्वयेऽन्यतरप्रकृतेश्च बन्धो नियमेनाऽस्ति, एवमेवाऽरतिशोकप्रधानसन्निकर्षोऽपि विभावनीयः । भयबन्धकस्य मध्यमकषायाष्टकस्य बन्धो विकल्पेन वर्तते, संज्वलनचतुष्कस्य जुगुप्सायाः पुरुषवेदस्य हास्याद्यन्यतरयुगलस्य च बन्धो नियमेन वर्तते । इत्थमेव कुत्सामोहनीयप्रधानसन्निकर्षोऽप्यभिधेयः। 'कुच्छव्व' इत्यादि, पुरुषवेदसंज्वलनचतुष्कप्रधानसन्निकर्षो जुगुप्सामोहनीयवद् विज्ञेयः,तद्यथा–पुरुषवेदबन्धकस्य संज्वलनचतुष्के एकतमकषायबन्धकस्य च मध्यमकषायाष्टकस्य बन्धो विकल्पेनाऽस्ति, पुरुषवेदबन्धकस्य संज्वलनचतुष्कस्य भयजुगुप्सयोर्हास्याद्यन्यतरयुगलस्य च नियमेन बन्धो भवति, एकतमसंज्वलनकषायबन्धकस्य तु शेषसंज्वलनत्रयस्य भयजुगुप्सयोरेकतरहास्यादियुगलस्य पुरुषवेदस्य च बन्धो नियमेन भवति । इह हेतोरवगतिः पुनरवधिज्ञानमार्गणानुसारेण भयमोहनीयप्रधानसन्निकर्षवत्कार्या ॥३९८॥

अथ सास्वादनमार्गणायामधिकृतं वक्ति

> सासाणे बधंतो एगधुवं बंधएऽण्णधुवबधो ।
> णियमा सत्तरस तहा वेअं जुगलं च अण्णयरं ॥३९९॥
> एमेव सण्णियासो सेसाण णवरि वेअजुगलाण ।
> एगं बधमाणो ण चेव बधेइ पडिवक्खं ॥४००॥

(प्रे०) "सासाणे" इत्यादि, सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायामेकां ध्रुवबन्धिप्रकृतिं बध्नन्नन्याः सप्तदशध्रुवबन्धिमोहनीयप्रकृतीरन्यतरवेदमेकतरहास्यादियुगलं च नियमेन बध्नाति, इदमुक्तं भवति सास्वादनमार्गणायां षोडशकषाया भयजुगुप्से चेत्यष्टादश प्रकृतयो मोहनीयस्य ध्रुवबन्धिन्यः सन्ति, अत आसामेकां प्रकृतिमाबध्नन् शेषाः सप्तदशप्रकृतीरपि नियमेन बध्नातीति । एवं स्त्रीपुरुषवेदद्वयादेकं वेदं युगलद्वयादेकं च युगलं नियमेन बध्नाति। 'एमेव' इत्यादि, एवमेव शेषाणां वेदद्वययुगलद्वयरूपाणां षण्णां मोहनीयप्रकृतीनां सन्निकर्षो विज्ञातव्यः, समानत्वात्। नवरं पूर्ववदेकवेदस्य बन्धेऽन्यवेदस्य तथैवैकतरयुगलस्य बन्धेऽन्ययुगलस्य बन्धनिषेधो वक्तव्यः, स च 'णवरि' इत्यादिना दर्शितो मूले ॥३९९-४००॥

साम्प्रतं मार्गणास्वायुष्कविषयं सन्निकर्षं चिन्तयितुकाम आह

> आउस्स सण्णियासो सत्तमणिरयाणयाइदेवेसु ।
> सव्वाणिवाऊसुं आहारदुगम्मि मणणाणे ॥४०१॥
> संजमसामइएसु छेए परिहारदेसविरईसु ।
> एगपयडिबधाओ ण होइ ओघव्व सेसासु ॥४०२॥

(प्रे०) 'आउस्स' इत्यादि, तमस्तमःप्रभानरकमार्गणायामानतप्राणताऽऽरणाच्युतनवग्रैवेयकपञ्चानुत्तररूपास्वष्टादशदेवमार्गणासु सप्तसु तेजस्कायिकमार्गणासु सप्तसु वायुकायमार्गणासु, आहारक-

काययोगाहारकमिश्रकाययोगमार्गणाद्वये मनःपर्यवज्ञानमार्गणायां संयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिदेशविरतरूपासु पञ्चसु संयममार्गणासु चेति समुदितास्वेकचत्वारिंशन्मार्गणास्वायुष्कस्यैकस्यैव बन्धात्सन्निकर्षो नास्ति । 'ओघ०व' इत्यादि, उक्तेतरमार्गणास्वायुष्काणां सन्निकर्ष ओघवद् विज्ञेयः, तद्यथा—एकस्यायुष्कस्य बन्धेऽपरेषामायुषां बन्धो न भवति । ताश्चेमाः शेषमार्गणाः-सप्तमनरकवर्जशेषसप्तनरकमार्गणाः, पञ्चतिर्यगोघादिमार्गणाः, चतस्रो मनुष्यमार्गणाः, देवौघभवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कप्रथमाद्यष्टमान्तदेवरूपा द्वादशसुरमार्गणाः, एकोनविंशतिरिन्द्रियमार्गणाः, सप्तपृथ्वीकायमार्गणाः सप्ताऽप्कायमार्गणाः एकादशवनस्पतिकायमार्गणाः तिस्रः त्रसकायमार्गणाश्चेति समुदिता अष्टाविंशतिकायमार्गणाः, वैक्रियमिश्राहारकाहारकमिश्रकार्मणकाययोगवर्जाश्चतुर्दशयोगमार्गणाः, वेदत्रयमार्गणाः, कषायमार्गणाचतुष्कम् , मतिश्रुताऽवधिज्ञानमार्गणात्रयम् , मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानरूपास्तिस्रोऽज्ञानमार्गणाः, असंयममार्गणा, चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनमार्गणात्रयम् , षड्लेश्यामार्गणाः, भव्याभव्यमार्गणाद्वयम् , सम्यक्त्वौघक्षायिकवेदकसास्वादनमिथ्यात्वमार्गणापञ्चकम् ,संज्ञ्यसञ्ज्ञिमार्गणाद्वयम् , आहारकमार्गणा चेति समुदिता द्वाविंशत्युत्तरशतमार्गणा इति । वैक्रियमिश्रकार्मणकाययोगाऽवेदाऽकषायकेवलज्ञानकेवलदर्शनसूक्ष्मसंपराययथाख्यातसंयमोपशमसम्यक्त्वमिश्रानाहारकरूपास्वेकादशमार्गणास्वायुषो बन्धाभावात्सन्निकर्षो न भावनीय इति ॥४०१-२॥

आदेशतो ज्ञानावरणादिषड्मूलकर्मसत्कप्रकृतीनां सन्निकर्षं निरूप्य साम्प्रतं मार्गणासु नामकर्मसत्कप्रकृतीनां तं निरूपयन्नादौ कासुचिन्मार्गणासु च तं निषेधयन् पञ्चेन्द्रियौघादिमार्गणासु तमुपदर्शयितुमाह—

णामस्स सण्णियासो णो चेव भवे अवेअसुहमेसुं ।
विण्णेयो ओघव्व दुपणिदितसपणमणवयेसुं ॥४०३॥
कायपुरिसणपुमेसुं कोहे माणम्मि मायलोहेसुं ।
चक्खुअचक्खूसु तहा भविये सण्णिम्मि आहारे ॥४०४॥

(प्रे०) '**णामस्स**' इत्यादि, अपगतवेदसूक्ष्मसम्परायसंयममार्गणयोर्नामकर्मणः सन्निकर्षो न भवति, मार्गणाद्वयेऽस्मिन् नामकर्मण एकस्या एव प्रकृतेर्बन्धात् । '**विण्णेयो**' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौघपर्याप्तत्रसरूपाश्चतस्रो मार्गणाः पञ्चमनोयोगमार्गणाः, पञ्चवचोयोगमार्गणाः, काययोगौघपुरुषवेदनपुंसकवेदक्रोधमानमायालोभचक्षुर्दर्शनाऽचक्षुर्दर्शनभव्यसंज्ञ्याहारकरूपा द्वादशमार्गणा इति सर्वसंख्यया षड्विंशतिमार्गणासु सर्वासां नामप्रकृतीनां सन्निकर्ष ओघवद् विज्ञेयः, अनेकविधजीवानां श्रेणेश्चात्र प्राप्यमाणत्वेनौघतः प्राप्यमाणानां नामप्रकृतिसन्निकर्षस्थानानामत्राऽपि प्राप्यमाणत्वात् ॥४०३-४॥

साम्प्रतं नरकौघादिमार्गणासु नामप्रकृतीनां सन्निकर्षमावेदयितुमाह ।

णिरयपढमाइतिणिरयतइआइगअट्ठमंतदेवेसुं ।
तिरियगइं बंधतो, णवधुववंधितिरिअणुपुव्वी ॥४०५॥
पंचिंदियुरालियदुगपरघाऊसासतसचउक्काणि ।
णियमा बंधइ णरदुगतित्थाणि ण चेव वुज्जोअ ॥४०६॥
संघयणागिइखगइछथिराइजुगलाण बंधए णियमा ।
अण्णयरा णव एव होज्जुज्जोआणुपुव्वीणं ॥४०७॥
णरगइबंधी णवधुवपरघाऊसासतसचउक्काणि ।
पंचिंदियुरलदुगणरअणुपुव्वी बंधए णियमा ॥४०८॥
संघयणागिइखगइछथिराइजुगलाण उ णियमाऽण्णयरा ।
तिरिदुगउज्जोआणि ण जिण व एवमणुपुव्वीए ॥४०९॥
णियमा पणिदिबंधी णवधुवबंधिपरघायऊसास ।
तसचउगुरलदुगाणि य बंधइ वुज्जोअतित्थाणि ॥४१०॥
णियमाऽण्णयरा सेसा गइआई तित्थवज्जसेसाण ।
एमेव णवरि णवसुहअथिरासुहअजसबंधी उ ॥४११॥
ण उ बंधइ पडिवक्खा बंधतो पंचसंघयणआई ।
चउदस ण चेव बंधइ तित्थसपडिवक्खणामाणि ॥४१२॥
जिणबंधी णवधुवणरउरलदुगपणिंदितसचउक्काणि ।
सुखगइसंघयणागिइपरघूसाससुहगतिगाणि ॥४१३॥
बंधइ णियमाऽण्णयरा थिराइजुगलाण तिण्ण ण उ सेसा ।
एमेव चउत्थाइतिणिरयेसु परं विणा तित्थं ॥४१४॥

(प्रे०) 'णिरय' इत्यादि, नरकौघरत्नप्रभाशर्कराप्रभावालुकाप्रभारूपासु चतसृषु नरकमार्गणासु सनत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलान्तकशुक्रसहस्राररूपासु षट्सु देवमार्गणासु च तिर्यग्गतिनाम बध्नन् नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयस्तिर्यगानुपूर्वीपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकपराघातोच्छ्वासत्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकप्रकृतयश्चेति समुदिता एकोनविंशतिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्राग्वत्, शेषाणां तु मार्गणास्वासु तिर्यग्गतिबन्धकस्य तिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतीनामेव बन्धकत्वेन तिर्यग्गतिबन्धस्य तद्बन्धाऽविनाभावित्वात् । 'णर' इत्यादि, मनुष्यद्विकजिननामनी नैव बध्नाति, यतः प्रकृतित्रयस्याऽस्य बन्धस्य तिर्यग्गतिनाम्ना सह विरोधो वर्तते । 'वुज्जोअ' इत्यादि, उद्योतनाम विकल्पेन बध्नाति, प्रकृतमार्गणासु पर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यबन्धकाले केनचित्तिर्यग्गतिनामबन्धकेन तस्य बध्यमानत्वात् केनचिच्चाऽबध्यमानत्वात् । 'संघयणा' इत्यादि, संहननषट्कं संस्थानषट्कं खगतिद्वयं स्थिरास्थिरे शुभाशुभे सुभगदुर्भगे सुस्वरदुःस्वरे, आदेयाऽनादेये यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति प्रकृतिव्रातेषु प्रत्येकमेकतरां प्रकृतिं नियमेन बध्नाति, हेतुरत्रोघवदनुसन्धेयः । 'एव' मित्यादि, उद्योततिर्यगानुपूर्वीनामप्रधानसन्निकर्षोऽत्र तिर्यग्गतिनामप्रधानसन्निकर्षवद् विज्ञेयः । 'णरगइबंधी' इत्यादि, मनुष्यगतिबन्धको नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयः पराघातोच्छ्वासत्रसबाद-

रपर्याप्तप्रत्येकप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकमनुष्यानुपूर्वीप्रकृतयश्चेत्येकोनविंशतिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्राग्वत् शेषाणां तु मनुष्यगतिनामबन्धस्य तद्बन्धाऽविनाभावित्वात् । 'संघयणा' इत्यादि, संहननषट्कं संस्थानषट्कं खगतिद्वयं स्थिरास्थिरे शुभाशुभे सुभगदुर्भगे सुस्वरदुःस्वरे आदेयानादेये यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति प्रकृतिव्रातेषु प्रत्येकमेकतरां प्रकृतिं नियमेन बध्नाति, प्रकृतमार्गणासु पर्याप्तप्रायोग्यबन्धकत्वेनोक्तप्रकृतिबन्धाविनाभावित्वान्मनुष्यगतिबन्धस्य । 'तिरि' इत्यादि, तिर्यग्द्विकोद्योतरूपं प्रकृतित्रयं नैव बध्नाति, मनुष्यगतिनाम्ना सहैतत्प्रकृतिबन्धस्य विरोधात् । 'जिणं व' त्ति, तीर्थकृन्नाम विकल्पेन बध्नाति, यतोऽधिकृतमार्गणासु जिननामसत्कर्मा मनुष्यगतिनामबन्धवेलायां जिननाम बध्नाति तदितरस्तु न बध्नाति । 'एवं' इत्यादि मनुष्यानुपूर्वीनामप्रधानसन्निकर्षोऽत्र मनुष्यगतिसन्निकर्षवदवसातव्यः, समानत्वात् । 'णियमा' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातिनामबन्धको नवध्रुवबन्धिप्रकृतयः पराघातोच्छ्वासे त्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकौदारिकद्विकप्रकृतयश्चेति समुदिताः सप्तदशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां ध्रुवबन्धित्वात् शेषाणां च प्रकृतमार्गणासु ध्रुवबन्धिकल्पत्वात् । 'उज्जोअ' इत्यादि, उद्योतजिननाम्नी विकल्पेन बध्नाति, एतत्प्रकृतिद्वयस्य कयापि प्रकृत्या सह नियमेन बन्धाभावात् सर्वत्र तस्य बन्धो विकल्पेन समायाति । 'णियमा' इत्यादि, अत्रोक्तप्रकृतिव्यतिरिक्तगत्यादिप्रकृतिव्रातेषु प्रत्येकमन्यतमां प्रकृतिं नियमेन बध्नाति, ते चेते गत्यादिप्रकृतिव्राताः—तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयम् संहननषट्कम् , संस्थानषट्कम् , तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयम् , खगतिद्वयम् , स्थिरास्थिरे, शुभाशुभे, सुभगदुर्भगे सुस्वरदुःस्वरे, आदेयानादेये यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति । 'तित्थवज्ज'इत्यादि, जिननामवर्जशेषप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षः पञ्चेन्द्रियजातिप्रधानसन्निकर्षवद् विज्ञेयः, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—औदारिकद्विकं संहननषट्कं संस्थानषट्कं नामध्रुवबन्धिनवप्रकृतयः खगतिद्वयं त्रसदशकमस्थिरषट्कं पराघातोच्छ्वासनाम्नी चेति त्रिचत्वारिंशत्प्रकृतयः । ननु जिनवर्जशेषप्रकृतीनां सन्निकर्षः पञ्चेन्द्रियसन्निकर्षवदतिदिष्टः, स तु वज्रर्षभनाराचसंहननसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिसुभगत्रिकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिरूपाणां द्वादशप्रकृतीनां सन्निकर्षविषये तत्प्रतिपक्षप्रकृतिभिः सहानुपपद्यते तत्प्रतिपक्षप्रकृतीनां बन्धस्य ताभिः सहाऽसम्भवादितिशङ्कामुन्मूलयितुं तथैवाऽन्यासां प्रकृतीनां सन्निकर्षविषयेऽप्यनुपपत्तिमपाकर्तुमपवादं 'णवरि' इत्यादिनाह—वज्रर्षभनाराचसंहननसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतिसुभगत्रिकस्थिरशुभयशःकीर्तिरूपाणां नवप्रकृतीनां तथाऽस्थिराऽशुभायशःकीतिप्रकृतीनां च बन्धकस्तत्प्रतिपक्षप्रकृतीर्न बध्नाति । 'बंधंतो' इत्यादि, द्वितीयादिपञ्चसंहननपञ्चसंस्थानाशुभखगतिदुर्भगत्रिकरूपासु चतुर्दशप्रकृतिष्वेकतरप्रकृतिबन्धकः सप्रतिपक्षप्रकृतिजिननामकर्माणि नैव बध्नाति । आसां बन्धकोऽसम्यग्दृष्टिरतो जिननामापि नैव बध्नाति । अथ जिननाम्नोऽवशिष्टस्तस्माद् 'जिणबंधा' इत्यादिना तस्यैवाह—जिननाम्नो बन्धको नाम्नो नवध्रुवबन्धिप्रकृतयो मनुष्यद्विक-

मौदारिकद्विकं पञ्चेन्द्रियजातित्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकरूपं त्रसचतुष्कं सुखगतिः प्रथमसंहननं प्रथमसंस्थानं पराघातोच्छ्वासनामनी सुभगत्रिकं चेति षड्विंशतिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति। तद्यथा—तत्र ध्रुवाणां प्राग्वद्, मनुष्यद्विकौदारिकद्विकप्रथमसंहननप्रकृतीनां तु प्रकृतदेवनरकमार्गणासु जिननामबन्धविधायिनो मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वात्, शेषाणां पुनर्जिननामबन्धस्य शेषप्रकृतिबन्धाऽविनाभावित्वान्नियतबन्धो विज्ञेयः। 'थिराथिरा' इत्यादि, स्थिरास्थिरे शुभाशुभे यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति युगलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, अत्रोक्तोक्तजिननामप्रधानसन्निकर्षवद्धेतुरधिगम्यः। 'ण उ' इत्यादि, एतद्व्यतिरिक्तशेषनामप्रकृतीर्न बध्नाति, जिननाम्ना सह शेषप्रकृतीना बन्धस्य प्रथमद्वितीयगुणस्थानप्रत्ययिकत्वेन विरोधात्। ताश्चेमाः शेषनामप्रकृतयः-तिर्यग्गतिः, द्वितीयादिसंहननपञ्चकम्, द्वितीयादिसंस्थानपञ्चकम्, तिर्यगानुपूर्वी, कुखगतिः, दुर्भगत्रिकम्, उद्योतनाम चेति सप्तदश। 'एमेव' इत्यादि, पङ्कप्रभाधूमप्रभातमःप्रभारूपासु तिसृषु नरकमार्गणासु नरकौघमार्गणावज्जिननाम विना नामकर्मणः सन्निकर्षो वेदितव्यः, जिननाम्नो वर्जनमत्र बन्धाभावादवसेयम् ॥४०५ ४१४॥

अथ सप्तमनरकमार्गणायां नामकर्मणः सन्निकर्षमाह

चरमणिरये तिरियगइबंधी णवधुवपणिंदिउरलदुगं।
परघूसासतसचउगअणुपुव्वी बंधए णियमा ॥४१५॥
बंधइ णेव णरदुग उज्जोअं व णियमा य अण्णयरा।
संघयणाई सेसा तहेव उज्जोअतयणुपुव्वीणं ॥४१६॥(गीति.)
एमेव दुहगतिगपणसंघयणागिइकुखगइणामाण।
णवरं पडिवक्खाओ पयडीओ णेव बंधेइ ॥४१७॥
णरगइबंधी णवधुवपणिंदिओरालजुगलसुहखगई।
सुहसंघयणागिइपरघाऊसासणरअणुपुव्वी ॥४१८॥
तसचउगं सुहगतिगं अण्णयरा य तिथिराइजुगलाणं।
णियमा बंधइ सेसाणेमेव णराणुपुव्वीए ॥४१९॥
णियमा पणिंदिबंधी णवधुवउरलदुगतसचउक्काणि।
तह परघाऊसास बंधइ उज्जोअणामं वा ॥४२०॥
णियमा सेसाऽण्णयरा गइआई एवमेव सेसाण।
णवरि वइराइबंधी पडिवक्खा णेव बंधेइ ॥४२१॥

(प्रे०) "चरमणिरये" इत्यादि, तमस्तमःप्रभाख्यसप्तमनरकमार्गणायां तिर्यग्गतिनाम्नो बन्धको नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिकद्विकं पराघातोच्छ्वासे त्रसचतुष्कं तिर्यगानुपूर्वी चेत्येकोनविंशतिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, एतन्मार्गणावर्तीनां प्रथमद्वितीयगुणस्थाने पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यक्प्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वेन तिर्यग्गतिबन्धेन साकमासां प्रकृतीनां बन्धस्याऽविनाभावात्। "णेव" इत्यादि, मनुष्यगतिमनुष्यानुपूर्वीप्रकृतिद्वयं नैव बध्नाति, तिर्यग्गतिना॰॥

सहैतत्प्रकृतिद्वयबन्धस्य विरोधात् । "उज्जोअं व" इति, उद्योतनाम विकल्पेन बध्नाति । "णियमा" इत्यादि, संहननादिशेषप्रकृतिष्वन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः शेषसंहनना-दिप्रकृतयः–संहननषट्कं संस्थानषट्कं खगतिद्विकं स्थिरास्थिरषट्के चेति । "तहेव" इत्यादि, उद्योततिर्यगानुपूर्वीनाम्नी प्रधानीकृत्य सन्निकर्षस्तिर्यग्गतिनामवदस्ति । उद्योतनामबन्धको नियमेन तिर्यग्गतिनाम बध्नातीति विशेषः । "एमेव" इत्यादि, दुर्भगत्रिकद्वितीयादिसंहनन-पञ्चकद्वितीयादिसंस्थानपञ्चककुखगतिप्रधानसन्निकर्षस्तिर्यग्गतिनामवदस्ति । "णवरं" इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति-परं प्रतिपक्षभूतप्रकृतीर्नैव बध्नाति, यथा-दुर्भगनामबन्धकः सुभगनाम नैव बध्नाति, दुःस्वरनामबन्धकः सुस्वरनाम, एवं सर्वत्र विज्ञेयम् , आभिः प्रकृतिभिः सह तिर्यग्गतेर्नियमेन बन्धः, आसां बन्धका मिथ्यादृष्टिसास्वादनाः, ते च भवप्रत्ययेन नियमात्तिर्यग्गतिं बध्नन्तीति कृत्वेति । "णरगइबंधो" इत्यादि, मनुष्यगतिबन्धकः नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिक-द्विकं सुखगतिः प्रथमसंहननं प्रथमसंस्थानं पराघातोच्छ्वासे मनुष्यानुपूर्वी त्रसचतुष्कं सुभगत्रिकं चेति पञ्चविंशतिप्रकृतीः स्थिरादियुगलत्रयेऽन्यतराः तिस्रः प्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति । "सेसा" इत्यादि, उक्तातिरिक्तशेषनामप्रकृतीर्न बध्नाति, तच्चैवम्–मिश्रदृष्ट्यादयो मनुष्यगतेर्बन्धका वर्तन्ते ते च शेषप्रकृतीर्गुणप्रत्ययान्नैव बध्नन्ति, ताश्चेमाः शेषनामप्रकृतयः–तिर्यग्द्विकं पञ्चसंहननानि पञ्चसंस्थानानि कुखगतिर्दुर्भगत्रिकं उद्योतनाम चेति । "एमेव" इत्यादि, मनुष्यानुपूर्वीप्रधान-सन्निकर्षो मनुष्यगतिनामवदवगन्तव्यः, तद्बन्धस्य मनुष्यगत्या सहचारित्वात् । "णियमो" इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातिनाम्नो बन्धकः नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतय औदारिकद्विकं त्रसचतुष्कं पराघातोच्छ्वासे चेति सप्तदश प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां ध्रुवबन्धित्वादेव शेषाणां तु प्रस्तुतमार्गणायां ध्रुवबन्धिकल्पत्वात् । "उज्जोअ" इत्यादि, उद्योतनाम विक-ल्पेन बध्नाति । "णियमा" इत्यादि, उक्तशेषनामप्रकृतिष्वन्यतमप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः शेषगत्यादिनामप्रकृतयः–तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयं संहननषट्कं संस्थानषट्कं खगतिद्वयं स्थिरास्थिरषट्के चेति त्रिंशत् । "एवमेव" इत्यादि, उक्त-शेषनामप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षः पञ्चेन्द्रियजातिप्रधानसन्निकर्षवद् विज्ञेयः, ताश्चेमाः शेषनाम-प्रकृतयः–औदारिकशरीरौदारिकाङ्गोपाङ्गनामद्वयं वज्रर्षभनाराचसंहननं समचतुरस्रसंस्थान नवध्रुव-बन्धिनामप्रकृतयः सुखगतिः त्रसदशकमस्थिराशुभायशःकीर्तित्रिकं पराघातोच्छ्वासे चेति । "णवरि" इत्यादिनाऽपवादमुपदर्शयति–परन्तु वज्रर्षभनाराचसंहननादिप्रकृतिबन्धकस्तत्प्रतिपक्ष-प्रकृतिं नैव बध्नाति, विरोधात् , तद्यथा–वज्रर्षभनाराचसंहननबन्धकः शेषसंहननपञ्चकं नैव बध्नाति, समचतुरस्रसंस्थानबन्धकः शेषसंस्थानपञ्चकं नैव बध्नाति, स्थिरनामबन्धकोऽस्थिरनाम नैव बध्नातीत्येवं सर्वत्र योज्यम् ॥४१५-२२॥

इदानीं तिर्यगोघादिमार्गणासु नामप्रकृतिसन्निकर्षं प्रतिपादयति ।

तिरियतिपणिंदियतिरियअण्णाणअसवियमिच्छअमणेसुं ।
ओघव्व णवरि बंधो णो तित्थाहारजुगलाणं ॥४२२॥
जसबंधी खलु णवधुवपरघाऊसासबायरतिगाणि ।
णियमा बंधेइ णिरयदुगसुहुमतिगाजसाइ णो ॥४२३॥
बंधेइ आयवदुगं वा संघयणदुउवंगसरखगई ।
वाऽण्णयरा अवि बंधइ णियमाओ सेसगइआई ॥४२४॥

(प्रे०) "तिरिय" इत्यादि, तिर्यगोघ-तिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघ-पर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिरश्री-मत्यज्ञान-श्रुताज्ञान विभङ्गज्ञाना-ऽभव्यमिथ्यात्वऽसंज्ञिरूपासु दशसु मार्गणासु नामकर्मणः सन्निकर्ष ओघवदवसातव्यः। "णवरि"इत्यादिना समापतन्तीमापत्तिमपाकर्तुमपवादमुपदर्शयति-जिननामाहारकद्विकरूपस्य प्रकृतित्रयस्याऽत्र बन्धाभावेन सन्निकर्षो न भवति, कयापि प्रकृत्या सह सन्निकर्षो न वाच्यः, तत्प्रधानोऽपि संनिकर्षो न भवतीत्यर्थः।"जसबंधी"इत्यादि, यशःकीर्तिनामबन्धको नवध्रुव बन्धिनामप्रकृतयः पराघातोच्छ्वासे बादरत्रिकं चेति चतुर्दशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, अष्टमगुणस्थानस्य सप्तमभागनवमादिगुणस्थानवर्जेषु सर्वस्थानेषु तेन सहासां प्रकृतीनां बन्धस्याविनाभावात् । "बंधेइ" इत्यादि, नरकद्विकसूक्ष्मत्रिकाऽयशःकीर्तिनामप्रकृतीर्नैव बध्नाति, यशःकीर्तिनाम्नो बन्धेन सहासां प्रकृतीनां बन्धस्य विरोधात् । "बंधेइ" इत्यादि, आतपोद्योतप्रकृतिद्वयं विकल्पेन बध्नाति,यतो हि–एकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले केचन यशःकीर्तिं बध्नन्त एतत्प्रकृतिद्वयं बध्नन्ति केचिन्नैव बध्नन्ति । द्वीन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धका यशःकीर्तिं बध्नन्त आतपनाम नैव बध्नन्ति, उद्योतनाम विकल्पेन बध्नन्ति, मनुष्यगतिप्रायोग्यबन्धकस्तूभयप्रकृतिद्वयं नैव बध्नाति । "वा" इत्यादि, संहननषट्केऽन्यतमसंहननमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतराऽङ्गोपाङ्गं स्वरद्वयेऽन्यतरस्वरं खगतिद्वयेऽन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति ।"नियमाओ" इत्यादि, अन्यतरपदमत्राप्यनुवर्तते, उक्तातिरिक्तगत्यादिनामप्रकृतिष्वन्यतराः प्रकृतीर्नियमतो बध्नाति, ताश्चेमाः शेषनामप्रकृतयः–देवद्विकं मनुष्यद्विकं तिर्यग्द्विकं जातिपञ्चकमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयं संस्थानषट्कं त्रसस्थावरे स्थिरास्थिरे शुभाशुभे सुभगदुर्भगे आदेयाऽनादेये चेति । अत्र श्रेणेरभावाद् यशःकीर्तिप्रकृत्यात्मकैकविधबन्धस्थानस्याभावादोघवत् सन्निकर्षो न प्राप्यते, अतः पृथक् सन्निकर्षः कथितः ॥४२२-२४॥

इदानीमपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियादिमार्गणासु सकलैकेन्द्रियविकलेन्द्रियपृथ्वीकायाप्कायवनस्पतिकायमार्गणासु च नामकर्मणः सन्निकर्षो निरूप्यते

असमत्तपणिंदितिरियमणुयपणिंदियतसेसु सव्वेसुं ।
एगिंदियविगलिंदियपुहवीसलिलवणकायेसुं ॥४२५॥
ओघव्व तिरियणरदुगथावरजाइचउगायवदुगाणं ।
णवरि ण णरदुगबंधे जिण अबंधे सपाउग्गा ॥४२६॥

बंधइ पणिंदिबंधी णवधुवपत्तेअतसुरलदुगाणि ।
णियमाओ वा बंधइ परघाऊसासउज्जोअं ॥४२७॥
चउजाइआयवसुहमथावरसाहारणाणि बंधइ णो ।
सरखगई वाऽण्णयरा बंधइ णियमाऽण्णगइआई ॥४२८॥
उरलतणुं बधंतो णवधुववंधीउ बंधए णियमा ।
परघाऊसासायवदुगुरलुवंगाणि बंधइ वा ॥४२९॥
संघयणस्सरखगई वाण्णयरा वि णियमाऽण्णगइआई।
एमेव सण्णियासो धुवबंधीणं णवण्ह भवे ॥४३०॥
पंचिंदियव्व णेयो उरलोवंगस्स णवरि बधेइ ।
एगिंदियं ण णियमा अण्णयरा सेसजाई उ ॥४३१॥
वइरं वंधेमाणो णियमा बंधेइ उ णवधुवबंधी ।
पंचिंदियुरलदुगपरघाऊसासतसचउगाणि ॥४३२॥
चउजाइआयवाइं पणसघयणाणि थावरचउक्क ।
चउदसपयडी ण णियम बंधइ उज्जोअणाम वा ॥४३३॥
णियमाऽण्णयरा सेसा गइआई एवमेव विण्णेयो ।
चउसंघयणपणागिइपसत्यखगइसुहगतिगाणं ॥४३४॥
छेवट्ठतसाण भवे पणिंदियव्व णवर ण बंधेइ ।
एगिंदियपडिवक्खा णियमा सेसाऽण्णयरजाई ॥४३५॥
उरलव्व हुंडबायरपत्तेअअथिरदुगाजसाण तहा ।
दुहगाणादेयाण णवरि ण बंधेइ पडिवक्खा ॥४३६॥
धुवबंधिउरालियदुगपरघाऊसासतसचउक्काणि ।
कुखगइबंधी णियमा बंधइ उज्जोअणामं वा ॥४३७॥
बंधइ णउ एगिंदियआयवथावरचउक्कसुहखगई ।
णियमाऽण्णयरा सेसा गइआई दुस्सरस्सेवं ॥४३८॥
परघाय बंधतो धुवबंधिउरालपज्जऊसासं ।
णियमा बधइ वा उण आयवदुगुरालुवंगाणि ॥४३९॥
बंधइ ण अपज्जत्तं सरसंघयणखगई व अण्णयरा ।
णियमाऽण्णा गइआई पज्जूसासाण एमेव ॥४४०॥
एमेव थिरसुहाणं णवर बधइ ण चेव पडिवक्खं ।
एमेव जसस्स णवरि ण सुहमसाहारणाइं पि ॥४४१॥

(प्रे० 'असमत्त' इत्यादि,अपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रिय-मनुष्य-पञ्चेन्द्रिय-त्रसरूपासु चतसृष्व-पर्याप्तमार्गणासु ओघ-सूक्ष्मौघबादरौघपर्याप्तसूक्ष्मपर्याप्तबादराऽपर्याप्तसूक्ष्माऽपर्याप्तबादरभेदेन सप्तै-केन्द्रियमार्गणासु ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेन तिसृषु द्वीन्द्रियमार्गणासु तिसृषु त्रीन्द्रियमार्गणासु तिसृषु चतुरिन्द्रियमार्गणासु ओघादिसप्तभेदेन सप्तसु पृथ्वीकायमार्गणासु सप्तसु अप्कायमार्गणासु सप्तसु साधारणवनस्पतिकायमार्गणासु ओघ-प्रत्येकौघपर्याप्तप्रत्येकाऽपर्याप्तप्रत्येकभेदेन चतसृषु वनस्पतिकाय-

मार्गणासु चेति सर्वसम्मीलितासु पञ्चचत्वारिंशन्मार्गणासु तिर्यग्द्विकजातिचतुष्कस्थावरचतुष्कातपोद्योतप्रकृतीनां संनिकर्षः सर्वथौघवद् भवति, ओघवदत्रापि प्रकृतीनामासां बन्धेन सह नियतबन्धवत्यः स्याद्बन्धवत्यो बन्धाभाववत्यः प्रकृतयो लभ्यन्ते, यद्यपि ओघे तु तिर्यग्द्विकादिप्रकृतप्रकृतीनां संनिकर्षे बन्धाभाववत्प्रकृतितया आहारकद्विकदेवद्विकवैक्रियद्विकनरकद्विकजिननामप्रकृतीनामुक्तेऽप्यत्र नास्ति तत्प्रसङ्गः, यत आसु मार्गणासु आसां सर्वथा बन्धाभावः ।

मनुष्यद्विकप्रधानसंनिकर्षोऽप्यौघवत्कथनीयः, किन्तु जिननाम्नोऽत्र बन्धाभावात्स्याद्बन्धो न वक्तव्य इति विशेषः, सोऽपि 'णवरि' इत्यादिना मूले कथितः ।

'बंधइ' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातिबन्धको नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतीः प्रत्येकनाम त्रसनाम बादरनाम औदारिकद्विकं चेति चतुर्दशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, हेतुरत्र सुगमः । 'वा' इत्यादि, पराघातोच्छ्वासोद्योतनामानि विकल्पेन बध्नाति, हेतुरत्र निगदसिद्धः। 'चउ'इत्यादि, एकेन्द्रियादिजातिचतुष्कातपसूक्ष्मस्थावरसाधारणनामानि नैव बध्नाति, पञ्चेन्द्रियजात्या सहासां बन्धस्य विरोधात् । 'सर' इत्यादि, स्वरद्वयेऽन्यतरत्स्वरं खगतिद्वयेऽन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति, पर्याप्तनाम्ना सह बध्यमानत्वादपर्याप्तनाम्ना च सहाऽबध्यमानत्वात्तासाम् । 'णियमा'इत्यादि, अभिहितातिरिक्तशेषगत्यादिनामप्रकृतिष्वन्यतराः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, हेतुरत्र सुगमः । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयं संहननषट्कं संस्थानषट्कं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयं पर्याप्ताऽपर्याप्ते स्थिरास्थिरे शुभाशुभे सुभगदुर्भगे आदेयानादेये यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति ।

'उरलतणू' इत्यादि,औदारिकशरीरनामबन्धको नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति,ध्रुवबन्धित्वात् । 'परघा'इत्यादि,पराघातोच्छ्वासातपोद्योतौदारिकाङ्गोपाङ्गनामानि विकल्पतो बध्नाति, अपर्याप्तैकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धावसरे तेनाऽबध्यमानत्वात्पर्याप्तप्रायोग्यादिप्रकृतिबन्धावसरे यथासंभवं बध्यमानत्वात्तासाम् । 'संघयण' इत्यादि, संहननषट्केऽन्यतमसंहननं स्वरद्वयेऽन्यतरस्वरं खगतिद्वये चान्यतरां खगतिं विकल्पेन बध्नाति,एकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले तेनाबध्यमानत्वाद् द्वीन्द्रियादिप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले च बध्यमानत्वात् । 'णियमा'इत्यादि, उक्तशेषगत्यादिनामप्रकृतिष्वन्यतमाः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, हेतुरत्र सुगमः,ताश्चेमाः शेषा गत्यादिनामप्रकृतयः तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयं जातिपञ्चकं संस्थानषट्कं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयं सुस्वरदुःस्वरवर्जत्रसस्थावरनवके चेति । 'एमेव'इत्यादि नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षे औदारिकशरीरनामप्रधानसन्निकर्षवज्ज्ञेयः।

'पंचिंदियव्व'इत्यादि,औदारिकाङ्गोपाङ्गप्रधानसन्निकर्षः पञ्चेन्द्रियजातिप्रधानसन्निकर्षवदस्ति । किन्तु यो विशेषः सः, 'णवरि'इत्यादिना भण्यते—औदारिकाङ्गोपाङ्गनामबन्धक एकेन्द्रियजातिनाम नैव बध्नाति, शेषजातिष्वन्यतमां जातिं नियमेन बध्नाति ।

'वइरं' इत्यादि, वज्रर्षभनाराचसंहननं बध्नन् नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजाति-रौदारिकद्विकं पराघातोच्छ्वासे त्रसचतुष्कं चेत्यष्टादशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, हेतुरत्रौघानुसारेण भाव्यः। 'चउ' इत्यादि, एकेन्द्रियादिजातिचतुष्कमातपनाम द्वितीयादिसंहननपञ्चकं स्थावरचतुष्कं चेति चतुर्दशप्रकृतीर्न बध्नाति, आसां बन्धस्य वज्रर्षभनाराचसंहनननाम्ना सह विरुद्धत्वात्। उद्योतनाम विकल्पेन बध्नाति। 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषगत्यादिचतुर्विंशतिनामप्रकृतिष्व-न्यतमाः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, वज्रर्षभनाराचबन्धस्याऽन्यतमप्रकृतिबन्धाऽविनाभावित्वात्। 'एमेव' इत्यादि, द्वितीयादिसंहननचतुष्कं प्रथमादिसंस्थानपञ्चकं सुखगतिः सुभगत्रिकं चेति त्रयो-दशप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षो वज्रर्षभनाराचसंहननप्रधानसन्निकर्षवद् विज्ञेयः। किन्तु बन्धनिषेधे स्वस्वप्रतिपक्षप्रकृतीनां बन्धनिषेधो ज्ञातव्यः।

'छेवट्ठ' इत्यादि, सेवार्तसंहननत्रसनाम्नी प्रधानीकृत्य सन्निकर्षः पञ्चेन्द्रियजाति-प्रधानसन्निकर्षवज्ज्ञेयः। 'णवरं' इत्यादिनाऽपवादं दर्शयति—एकेन्द्रियजातिं न बध्नाति, सेवार्त-संहननत्रसनाम्नोर्बन्धेन सह तद्बन्धस्य विरोधात्। एवं सेवार्तसंहननप्रतिपक्षभूतशेषसंहनन-प्रकृतीः सेवार्तसंहनननामबन्धको नैव बध्नाति तथा त्रसबन्धकः तत्प्रतिपक्षभूतं स्थावरनाम नैव बध्नाति। 'णियमा' इत्यादि, एकेन्द्रियव्यतिरिक्तशेषाऽन्यतमां जातिं नियमेन बध्नाति।

'उरलव्व' इत्यादि हुण्डकसंस्थानबादरप्रत्येकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिनाम्नां दुर्भगाऽनादेय-नाम्नोश्च प्रधानभावेन सन्निकर्ष औदारिकशरीरनामप्रधानसन्निकर्षवदवसेयः। 'णवरि' इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति—आसां प्रकृतीनां प्रतिपक्षभूताः प्रकृतीर्न बध्नाति, यथा—हुण्डकसंस्थानबन्धकः शेषतत्प्रतिपक्षभूतसंस्थानपञ्चकं न बध्नाति, बादरनामबन्धकः सूक्ष्मनाम नैव बध्नातीत्येवमत्र सर्वत्र योज्यम्।

धुवबंधि' इत्यादि, अशुभखगतिबन्धको नामध्रुवबन्धिप्रकृतय औदारिकद्विकं पराघा-तोच्छ्वासे त्रसचतुष्कं चेति सप्तदशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, अत्र हेतुर्नरकगतिमार्गणावज्ज्ञेयः। 'उज्जो-अणामं' इत्यादि, उद्योतनाम विकल्पेन बध्नाति। 'बंधइ' इत्यादि, एकेन्द्रियजात्यातपनामस्थावर-चतुष्कसुखगतिरूपाः सप्तप्रकृतीर्नैव बध्नाति, कुखगतिनाम्ना सहासां बन्धस्य विरोधात्। 'णियमा' इत्यादि, एतत्प्रकृतिव्यतिरिक्तशेषगत्यादिद्वात्रिंशत्प्रकृतीष्वऽन्यतराः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति। 'दुस्स-रस्स' इत्यादि, दुःस्वरनाम्नः सन्निकर्षोऽशुभखगतिसन्निकर्षवद् विज्ञेयः। अत्रापि स्वप्रतिपक्ष-सुस्वरनाम्नोऽबन्धस्तथा खगतिद्वयेऽन्यतरां खगतिं नियमेन बध्नातीति विशेषः।

"परघायं" इत्यादि, पराघातनाम बध्नन् नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतय औदारिकशरीरनाम पर्याप्त-नाम श्वासोच्छ्वासनाम चेति द्वादशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, अत्र ध्रुवाणां ध्रुवबन्धित्वात्, शेषाणां

प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धस्य शेषप्रकृतिबन्धाऽविनाभावित्वात्। "वा उण" इत्यादि, आतपोद्योतौदारिकाङ्गोपाङ्गनामानि विकल्पेन बध्नाति "बंधइ" इत्यादि, अपर्याप्तनाम न बध्नाति, पराघातनाम्ना सहाऽस्य बन्धविरोधात्। "सर" इत्यादि, स्वरद्वयेऽन्यतरस्वरं संहननषट्केऽन्यतमसंहनननाम खगतिद्वयेऽन्यतरां खगतिं विकल्पेन बध्नाति, हेतुरत्र प्राग्वदनुसन्धेयः। "णियमा" इत्यादि, उक्तातिरिक्तगत्यादिप्रकृतिभ्योऽन्यतराः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयं जातिपञ्चकं संस्थानषट्कं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयं त्रसस्थावरे बादरसूक्ष्मे प्रत्येकसाधारणे स्थिरास्थिरे शुभाशुभे सुभगदुर्भगे आदेयाऽनादेये यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति। "पज्जुस्सासाण" इत्यादि, पर्याप्तोच्छ्वासप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षः पराघातप्रधानसन्निकर्षवज्ज्ञेयः। "एमेव" इत्यादि, स्थिरशुभनामप्रधानसन्निकर्षः पराघातनामप्रधानसन्निकर्षवदस्ति। "णवरं" इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति-स्थिरनाम्नः प्रतिपक्षभूतमस्थिरनाम शुभनाम्नः प्रतिपक्षभूतमशुभनाम नैव बध्नाति, परस्परं बन्धस्य विरोधात्। "एमेव" इत्यादि, यशःकीर्तिनामप्रधानः सन्निकर्षोऽपि पराघातप्रधानसन्निकर्षवज्ज्ञातव्यः। "णवरि" इत्यादिना विशेषं प्रतिपादयति-यशःकीर्तिप्रतिपक्षभूतमयशःकीर्तिनाम सूक्ष्मसाधारणनाम्नी च नैव बध्नाति, यशःकीर्तिनाम्ना सार्धमासां बन्धस्य विरोधात्। ॥४२५-४१॥

सम्प्रति मनुष्यौघादिमार्गणासु तमाह

ओघव्व सण्णियासो तिणरउरलथीसु होइ णामस्स।
णवरं बंधइ णरउरलदुगवइराणि ण उ जिणबंधी ॥४४२॥
देवविउव्वियजुगलं णियमा बधेइ बधतो।
णरउरलदुगवइराइ ण चेव बंधेइ जिणणाम ॥४४३॥ (उपगीति)

(प्रे०) "ओघव्व" इत्यादि, मनुष्यौघपर्याप्तमनुष्यमानुष्यौदारिककाययोगस्त्रीवेदमार्गणापञ्चके नामप्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्ष ओघवदस्ति। "णवरं" इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति--जिननामबन्धको मनुष्यद्विकौदारिकद्विकप्रथमसंहननप्रकृतिपञ्चकं नैव बध्नाति, मार्गणास्वासु जिननामबन्धकस्य सम्यग्दृष्टित्वेन देवप्रायोग्यप्रकृतीनामेव बध्यमानत्वात्। "देव" इत्यादि, देवद्विकवैक्रियद्विकप्रकृतिचतुष्कं नियमेन बध्नाति, मार्गणास्वासु जिननामबन्धस्य देवद्विकादिप्रकृतप्रकृतिबन्धाऽविनाभावित्वात्। स्त्रीवेदमार्गणायां जिननाम मानुष्येव बध्नाति न तु देवीतिरश्च्यौ, जिननामबन्धकस्यात्र मनुष्यमानुष्योः देवेषु पुरुषवेदित्वेनोत्पादात्तिर्यक्षु चाऽनुत्पादात्। "बंधंतो" इत्यादि, मनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननप्रकृतिबन्धको जिननाम नैव बध्नाति, मार्गणास्वासु प्रकृतीनामासां बन्धस्य जिननाम्ना सह विरोधात्, यतो हि मार्गणास्वासु मनुष्यद्विकादिप्रकृतीः प्रथमद्वितीयगुणस्थानगता एव बध्नन्तीति ॥४४२-३॥

इदानीं देवौघादिमार्गणासु प्रकृतमाह

सुरसोहम्मविउव्वियदुगेसु णियमा उ तिरियगइबंधी ।
णवधुवुरलबायरतिगपरघाऊसासतिरियअणुपुव्वी ॥४४४॥ (गीतिः)
णेव जिणणरदुगाई बंधइ वायवदुगुरलुवंगाणि ।
संघयणस्सरखगई वाऽण्णयरा वि णियमा सेसा ॥४४५॥
एवं उज्जोअतयणुपुव्वीणं बंधए च्च णरबंधी ।
धुवपंचिदियुरलदुगपरघूसासतसचउगअणुपुव्वी ॥४४६॥ (गीतिः)
बंधइ णायवतिरिदुगएगिंदियथावराणि वा तित्थं ।
णियमा संघयणाई अण्णयरेवं णराणुपुव्वीए ॥४४७॥(गीतिः)
णियमेगिंदियबंधी णवधुवतिरियदुगउरलहुंडाणि ।
परघूसासं थावरदुहगाणादेयबायरतिगाणि ॥४४८॥(गीति)
थायवदुगमण्णयरा णियमा तिण्णि तिथिराइजुगलाणं ।
बंधइ ण उ तेवीसा सेसायवथावराणेवं ॥४४९॥
णियमा पणिंदिबंधी णवधुवबंधिपरघायऊसासं ।
तसचउगुरलदुगाणि य बंधइ धुज्जोअतित्थाणि ॥४५०॥
एगिंदियावरायवणामाणि ण बंधएऽण्णगइआई ।
अण्णयरा णियमेवं तसुरालियुवंगणामाणं ॥४५१॥
सुखगइसंघयणागिइसुहगतिगाणं हवेज्ज एमेव ।
सन्निकरिसो खलु णवरि ण चेव बंधेइ पडिवक्खा ॥४५२॥
संघयणपणगआगिइचउगअसुहखगइदुस्सराण भवे ।
एमेव सण्णियासो णवरि ण चिअ तित्थपडिवक्खा ॥४५३॥
उरलं बंधतो धुवपरघाऊसासबायरतिगाणि ।
णियमा बंधइ वा जिणआयवदुगउरलुवंगाणं ॥४५४॥
संघयणस्सरखगई वाऽण्णयरा वि णियमाऽण्णगइआई ।
एमेव सण्णियासो सेसाणं तित्थवज्जाणं ॥४५५॥
णवरि ण चिअ पडिवक्ख थिरसुहजसअथिरदुगअजसबंधी ।
जिणपडिवक्खा हुंडगदुहगाणादेयबंधी णो ॥४५६॥
जिणबंधी णवधुवणरउरलदुगपणिंदितसचउक्काणि ।
सुखगइसंघयणागिइपरघूसाससुहगतिगाणि ॥४५७॥
बंधइ णियमाऽण्णयरा थिराइजुगलाण तिण्णि णउ सेसा ।
एमेव उ भवणतिगे णवरि जिणस्स ण भवे बंधो ॥४५८॥

(प्रे०) "सुर" इत्यादि, देवौघसौधर्मेशानवैक्रियकाययोगवैक्रियमिश्रकाययोगरूपासु पञ्चसु मार्गणासु तिर्यग्गतिबन्धको नवध्रुवबन्धिप्रकृतय औदारिकशरीरनाम बादरत्रिकं पराघातोच्छ्वासे तिर्यगानुपूर्वी चेति षोडशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तद्यथा—आसु मार्गणासु तिर्यगानुपूर्वीवर्जशेषपञ्चदशप्रकृतीनां निरन्तरबन्धित्वान्नियमेन बन्धः, अतः प्रकृते सर्वप्रकृतीनां सन्निकर्षे तासां नियमेन बन्धे अयमेव हेतुर्ज्ञातव्यः । तिर्यगानुपूर्वीतिर्यग्गत्योर्बन्धस्य परस्परमविनाभावित्वादेकस्या बन्धे

ऽपरस्या बन्धो नियमेन भवति । 'णेव' इत्यादि, जिननाममनुष्यद्विकरूपं प्रकृतित्रयं नैव बध्नाति तिर्यग्गतिनाम्ना सहाऽस्य प्रकृतित्रयबन्धस्य विरोधात् । "वायव" इत्यादि, आतपद्विकौदारिकाङ्गोपाङ्गप्रकृतित्रयं विकल्पतो बध्नाति, यतो मार्गणास्वासु तिर्यग्गतिबन्धक एकेन्द्रियप्रायोग्यबन्धकाले न बध्नात्यौदारिकाङ्गोपाङ्गम्, आतपद्विकबन्धस्याध्रुवत्वात् । "संघयणा" इत्यादि, संहननषट्केऽन्यतमं संहननं स्वरद्वयेऽन्यतरत्स्वरं खगतिद्वयेऽन्यतरां खगतिं विकल्पेन बध्नाति, पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतीर्बध्नता तेनासामन्यतरप्रकृतीनां बध्यमानत्वादेकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतीर्बध्नता चाऽबध्यमानत्वात् । "णियम"इत्यादि, उक्तातिरिक्तनामप्रकृतिष्वन्यतराः प्रकृतीरपि नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः—एकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजातिद्वयं संस्थानषट्कं त्रसस्थावरे स्थिराऽस्थिरे शुभाशुभे सुभगदुर्भगे आदेयाऽनादेये यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति । "एवं" इत्यादि, उद्योततिर्यगानुपूर्वीनामप्रधानसन्निकर्षः तिर्यग्गतिनामप्रधानसन्निकर्षवज्ज्ञेयः । "बंधए" इत्यादि, मनुष्यगतिबन्धको नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिकद्विकं पराघातोच्छ्वासनाम्नी त्रसचतुष्कं मनुष्यानुपूर्वी चेत्येकोनविंशतिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तत्रौदारिकाङ्गोपाङ्गत्रसमनुष्यानुपूर्वीवर्जशेषपञ्चदशप्रकृतीनां प्राग्वत्, औदारिकाङ्गोपाङ्गत्रसमनुष्यानुपूर्वीनाम्नां मनुष्यगतिबन्धस्य तद्बन्धाऽविनाभावित्वात् । "बंधइ ण" इत्यादि, आतपोद्योततिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिस्थावरनामानि नैव बध्नाति, आसां बन्धस्य मनुष्यगतिनाम्ना सह विरोधात् । "वा" इत्यादि, जिननाम विकल्पेन बध्नाति, यतो जिननामसत्कर्मा जिननाम बध्नाति तदितरस्तु नैव बध्नाति । "णियमा" इत्यादि, उक्तातिरिक्तसंहननादिप्रकृतिव्रातेषु प्रत्येकमन्यतराः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ते चेमे शेषप्रकृतिव्राताः—संहननषट्कं संस्थानषट्कं खगतिद्वयं स्थिराऽस्थिरषट्के चेति । "एवं" इत्यादि, मनुष्यानुपूर्वीनामप्रधानसन्निकर्षो मनुष्यगतिवद् विज्ञेयः ।

"णियमा"इत्यादि, एकेन्द्रियजातिनामबन्धको नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयस्तिर्यग्द्विकौदारिकशरीरहुण्डकसंस्थानपराघातोच्छ्वासस्थावरदुर्भगाऽनादेयबादरत्रिकप्रकृतयश्चेत्येकविंशतिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तत्र पञ्चदशानां प्रागिव शेषाणां पुनरेकेन्द्रियजातिबन्धस्य तत्प्रकृतिबन्धाऽविनाभावित्वात् । "वायव"इत्यादि, आतपोद्योतनाम्नी विकल्पतो बध्नाति, एतत्प्रकृतिद्वयबन्धस्य सर्वत्राध्रुवत्वात् । "अण्णयरा" इत्यादि, स्थिरास्थिरे शुभाशुभे यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति युगलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । "णउ" इत्यादि, उक्तातिरिक्तत्रयोविंशतिनामप्रकृतीर्नैव बध्नाति, एकेन्द्रियजातिनाम्ना सह शेषप्रकृतीनां बन्धस्य विरोधात् । ताश्चेमाः—मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, औदारिकाङ्गोपाङ्गम्, संहननषट्कम्, प्रथमादिसंस्थानपञ्चकम्, मनुष्यानुपूर्वी, खगतिद्वयम्, त्रससुभगसुस्वरादेयनामानि, दुःस्वरनाम, जिननाम चेति । "आयव" इत्यादि, आतपस्थावरनामप्रधानः सन्निकर्ष एकेन्द्रियजातिप्रधानसन्निकर्षवद् वेदितव्यः । "णियमा" इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजाति-

बन्धको नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयः पराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्कौदारिकद्विकप्रकृतयश्चेति सप्तदशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तत्र त्रसौदारिकाङ्गोपाङ्गनाम्नोर्नियतबन्धः पञ्चेन्द्रियजातिबन्धस्य तद्बन्धाऽविनाभावाद् विज्ञेयः, शेषपञ्चदशानां च प्राग्वत् । "वुज्जोअ" इत्यादि, उद्योतजिननाम्नी विकल्पतो बध्नाति, यतो हि तिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकालेऽत्र पञ्चेन्द्रियजातिबन्धकाः केचनोद्योतनाम बध्नन्ति केचन च न, तथा मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले तु कोऽपि तन्नैव बध्नाति, जिननाम च केचन पञ्चेन्द्रियजातिबन्धकाः सम्यग्दृशो बध्नन्ति, केचन च न बध्नन्ति, मिथ्यादृष्टिप्रभृतिश्च कोऽपि तन्न बध्नाति । "एगिंदि" इत्यादि, एकेन्द्रियजातिस्थावरातपनामानि नैव बध्नाति, पञ्चेन्द्रियजातिनाम्ना सार्धमासां प्रकृतीनां बन्धस्य विरोधात् । "ऽण्ण" इत्यादि, उक्तातिरिक्तगत्यादिनामप्रकृतिष्वन्यतराः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः–तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयं संहननषट्कं संस्थानषट्कं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयं खगतिद्वयं स्थिराऽस्थिरषट्के चेति । "एवं" इत्यादि, त्रसौदारिकाङ्गोपाङ्गनामप्रधानसन्निकर्षः पञ्चेन्द्रियजातिप्रधानसन्निकर्षवज्ज्ञेयः । "सुखगइ" इत्यादि, शुभखगतिवज्रर्षभनाराचसंहननसमचतुरस्रसंस्थानसुभगत्रिकप्रकृतीनां प्रधानभावेन सन्निकर्षः पञ्चेन्द्रियजातिवद् वेदितव्यः । "णवरि" इत्यादिनाऽपवादमुपदर्शयति-शुभखगतिप्रभृतिप्रकृतप्रकृतीनां प्रत्येकं प्रतिपक्षभूतां प्रकृतिं नैव बध्नाति, विरोधात् । "संघयण" इत्यादि, द्वितीयादिसंहननपञ्चकद्वितीयादिसंस्थानचतुष्काऽशुभखगतिदुःस्वरप्रकृतीनामपि प्राधान्येन यः सन्निकर्षः स पञ्चेन्द्रियजातिप्रधानसन्निकर्षवदस्ति । "णवरि" इत्यादिना विशेषं दर्शयति-जिननाम प्रकृतप्रकृतिप्रतिपक्षभूतप्रकृतिं च नैव बध्नाति, विरोधात् । "उरलं" इत्यादि, औदारिकशरीरनामबन्धको नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयः पराघातोच्छ्वासे बादरत्रिकं चेति चतुर्दशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, आसु मार्गणासु निरन्तर बन्धित्वादासाम् । "वा" इत्यादि, जिननामातपोद्योतौदारिकाङ्गोपाङ्गनामानि विकल्पेन बध्नाति, तद्यथा–आसु मार्गणासु केचन सम्यग्दृष्टिजीवा औदारिकशरीरनाम बध्नन्तो जिननाम बध्नन्ति, केचन च न बध्नन्ति, मिथ्यादृष्टिप्रभृतयश्च नैव बध्नन्ति, आतपनामैकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले केचन बध्नन्ति, केचन च न बध्नन्ति, पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले च न कोऽपि बध्नाति, एकेन्द्रियप्रायोग्यबन्धकाले तिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले चोद्योतनाम केचिद् बध्नन्ति, केचिच्च न बध्नन्ति, मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले च कोऽपि नैव बध्नाति, औदारिकाङ्गोपाङ्गनामैकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकालेऽसौ न बध्नाति पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले च बध्नाति । 'संघयण' इत्यादि, संहननषट्केऽन्यतमसंहननं स्वरद्वयेऽन्यतरस्वरं खगतिद्वयेऽन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति, एकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले तेनासामन्यतरप्रकृतीनामबध्यमानत्वात् पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यबन्धकाले च बध्यमानत्वात् । 'णियमा' इत्यादि, अभिहितेतरगत्यादिप्रकृतिष्वन्यतराः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः–तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयमेकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजातिद्वयं

संस्थानषट्कं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयं त्रसस्थावरे स्थिराऽस्थिरे शुभाशुभे सुभगदुर्भगे आदेयानादेये यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति। 'एमेव' इत्यादि, तीर्थकृन्नामवर्जानां शेषप्रकृतीनां प्रधानभावेन सन्निकर्ष औदारिकशरीरनामवदस्ति। नामनवध्रुवबन्धिपराघातोच्छ्वासबादरत्रिकस्थिरशुभयशःकीर्त्यस्थिराशुभायशःकीर्तिहुण्डदुर्भगानादेयप्रकृतयः शेषप्रकृतितया ज्ञातव्याः। 'णवरि' इत्यादिनाऽत्राऽतिदेशे कासुचित्प्रकृतिष्वपवादमुपदर्शयति–स्थिरशुभयशःकीर्तिनामाऽस्थिराशुभाऽयशःकीर्तिप्रकृतीनां बन्धक एतत्प्रतिपक्षप्रकृतिं नैव बध्नाति, परस्परं विरोधात्। हुण्डकसंस्थानदुर्भगाऽनादेयप्रकृतीनां बन्धको जिननाम तत्प्रतिपक्षप्रकृतिं च नैव बध्नाति। 'जिणबंधी' इत्यादि, जिननामबन्धको नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयो मनुष्यद्विकमौदारिकद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिस्त्रसचतुष्कं सुखगतिर्वज्रर्षभनाराचसंहननं समचतुरस्रसंस्थानं पराघातोच्छ्वासे सुभगत्रिकं चेति षड्विंशतिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, हेतुरत्रोघवदधिगम्यः। 'ऽण्णयरा' इत्यादि, स्थिरास्थिरे शुभाशुभे यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति युगलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति। 'णउ' इत्यादि, उक्तातिरिक्तप्रकृतीर्नैव बध्नाति, ताश्चेमाः–तिर्यग्द्विकमेकेन्द्रियजातिर्द्वितीयादिसंहननपञ्चकं द्वितीयादिसंस्थानपञ्चकं कुखगतिः स्थावरनाम दुर्भगत्रिकमातपोद्योतनाम्नी चेति। 'एमेव' इत्यादि, भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कमार्गणात्रये देवौघमार्गणावन्नामप्रकृतीनां सन्निकर्षोऽस्ति। 'णवरि' इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति–जिननाम्नो बन्धाभावादत्र सन्निकर्षो नास्ति। किमुक्तं भवति–जिननामप्रधानीकृतसन्निकर्षो नास्ति तथैव यया प्रकृत्या सह जिननाम्नो विकल्पेन बन्ध उक्तस्तत्रापि मार्गणास्वासु जिननामप्रकृतिर्न कथनीयेति ॥४४४-५८॥

अधुनाऽऽनतादित्रयोदशदेवमार्गणासु प्रकृतमाह

बंधइ च्चिअ णरगधी गेविज्जतेसु आणयाईसु ।
धुवतसचउपणिंदियपरघूसासुरलदुगतयणुपुव्वी ॥४५९॥ (गीतिः)
व जिण बंधइ णियमा अण्णयरा सेससंघयणआई ।
एमेव सण्णियासो गुणवीसाए धुवाईणं ॥४६०॥
णिरयव्व जिणस्स मणुयगइपयडिव्व इयराण णवरं णो ।
पडिवक्खा तह जिणमवि अथिराइतिवज्जअसुहबंधी णो ॥४६१॥ (गीति)

(प्रे०) 'बंधइ' इत्यादि, आनतप्राणताऽऽरणाऽच्युतनवग्रैवेयकरूपासु त्रयोदशमार्गणासु मनुष्यगतिबन्धको नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयः त्रसचतुष्कं पञ्चेन्द्रियजातिः पराघातोच्छ्वासे औदारिकद्विकं मनुष्यानुपूर्वी चेत्येकोनविंशतिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, अत्र ध्रुवाणां ध्रुवबन्धित्वात् शेषाणाञ्च ध्रुवबन्धिकल्पत्वात्। 'व' इत्यादि, जिननाम विकल्पेन बध्नाति, अत्र केनचित्सम्यग्दृष्टिना बध्यमानत्वात्केनचिच्चाऽबध्यमानत्वात् तथा सर्वैर्मिथ्यादृष्ट्यादिभिरबध्यमानत्वात्तस्य। 'बंधइ' इत्यादि, उक्तातिरिक्तप्रकृतिव्रातेषु प्रत्येकमन्यतराः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ते चैते–संहनन-

षट्कं खगतिद्वयं स्थिरषट्काऽस्थिरषट्के चेति । 'एमेव' इत्यादि, एकोनविंशतिध्रुवबन्धिप्रभृतिनामप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षो मनुष्यगतिसन्निकर्षवदस्ति, ताश्चेमाः-नवध्रुवबन्धिप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिकद्विकमनुष्यानुपूर्वीत्रसचतुष्कं पराघातोच्छ्वासे चेति । 'जिणच०व' इत्यादि, जिननामप्रधानसन्निकर्षो नरकौघवद् विज्ञेयः, तद्यथा-जिननामबन्धको नवध्रुवबन्धिप्रकृतयो मनुष्यद्विकौदारिकद्विके पञ्चेन्द्रियजातिस्त्रसचतुष्कं सुखगतिः प्रथमसंहननसंस्थाने पराघातोच्छ्वासे सुभगत्रिकं चेति षड्विंशतिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । स्थिरास्थिरे शुभाशुभे यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति युगलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, एतद्व्यतिरिक्तप्रकृतीर्नैव बध्नाति, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-द्वितीयादिसंहननपञ्चकं द्वितीयादिसंस्थानपञ्चकमशुभखगतिर्दुर्भगत्रिकं चेति अत्र तिर्यग्द्विकोद्योतप्रकृतयोऽबन्धे न वक्तव्याः, प्रस्तुतमार्गणासु बन्धाभावादिति । 'मणुयग०' इत्यादि, उक्तातिरिक्तनामप्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्षो मनुष्यगतिप्रधानसन्निकर्षवज्ज्ञेयः, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः संहननषट्कं संस्थानषट्कं खगतिद्वयं स्थिरास्थिरषट्कद्वयं चेति । "णवरं" इत्यादिनाऽपवादमाह-शेषप्रकृतिषु स्वप्रतिपक्षप्रकृतिं नैव बध्नाति, तद्यथा-प्रथमसंहननबन्धको द्वितीयादिसंहननपञ्चकं नैव बध्नाति, एवमेवाऽन्यासु शेषप्रकृतिष्वपि विज्ञेयम् । "तह" इत्यादि, अस्थिराशुभायशःकीर्तिरूपत्र्यस्थिरादिप्रकृतिवर्जशेषाशुभप्रकृतिबन्धकस्तत्प्रतिपक्षप्रकृतिं जिननाम च नैव बध्नाति, विरोधात् , ताश्चेमाः शेषाशुभप्रकृतयः-प्रथमवर्जसंहननसंस्थानपञ्चककुखगतिदुर्भगदुःस्वरानादेयनामानीति ॥४५९-६१॥

अथ पञ्चानुत्तरमार्गणासु स उच्यते ।

पणऽणुत्तरेसु णरगइबंधी तित्थं व बंधए णियमा ।
तिथिराइगजुगलाण अण्णयरा तिण्णि तह सेसा ॥४६२॥
एमेव सण्णियासो हवेज्ज सेसाण णवरि बधंतो ।
तिथिराइगजुगलाओ एगं बधइ ण पडिवक्खं ॥४६३॥

(प्रे०) 'पण' इत्यादि, पञ्चानुत्तरमार्गणासु मनुष्यगतिबन्धको जिननाम विकल्पतो बध्नाति, यतः केनचिदत्र तद् बध्यते केनचिच्च न बध्यते । "णियमा" इत्यादि, स्थिरास्थिरे शुभाशुभे यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति युगलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रः प्रकृतीस्तद्व्यतिरिक्ताः पञ्चविंशतिनामप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति, मनुष्यगतिबन्धस्य तद्बन्धाऽविनाभावित्वात् । "एमेव" इत्यादि, मनुष्यगतिव्यतिरिक्तत्रिंशन्नामप्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्षो मनुष्यगतिप्रधानसन्निकर्षवद् भवति । "णवरि" इत्यादि, स्थिरास्थिरे शुभाशुभे यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति युगलत्रयेऽन्यतरां प्रकृतिं बध्नन् तत्प्रतिपक्षभूतां प्रकृतिं नैव बध्नातीति ॥४६२-३॥

अथ सर्वतेजोवायुकायभेदेष्वपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्वत्सविशेषं सन्निकर्षमतिदिशन्नाह

सव्वागणिवाऊसुं होइ अपज्जगपणिंदितिरियव्व ।
णवरि तिरिदुगं णियमा बंधेइ ण चेव मणुयदुगं ॥४६४॥

(प्रे०) "स०वा" इत्यादि, सर्वतेजोवायुकायभेदेषु नामप्रकृतीनां सन्निकर्षोऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्वद् भवति, तथापि तत्र कासाञ्चित् प्रकृतीनां सन्निकर्षविषये मनुष्यद्विकस्य बन्धो विकल्पेनोक्तः कासाञ्चित्प्रकृतीनां सन्निकर्षे तस्य बन्धनिषेध उक्तस्तथा मनुष्यद्विकप्रधानीकृतसन्निकर्षोऽप्युक्तः, किन्तु सोऽत्र न सम्भवति, मनुष्यद्विकस्य बन्धाभावात् , अतः "णवरि" इत्यादिना विशेष दर्शयति । अत्र सर्वासां प्रकृतीनां सन्निकर्षवेलायां तिर्यग्द्विकस्य बन्धो नियमेन वक्तव्यः ॥४६४॥

इदानीमौदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां प्रकृतः प्रस्तूयते

णियमोरलमीसे सुरगइबंधी धुवपणिंदिविउव्वदुगं ।
परघूसाससुहागिइसुखगइअणुसुहगतिगतसचउक्कं ॥४६५॥ (गीतिः)
ब जिणं णियमा तिण्ह थिराइजुगलाण तिण्णि अण्णयरा ।
ण उ सेसेमेव विउव्वदुगतित्थसुराणुपुव्वीण ॥४६६॥
णियमा पणिंदिबंधी णवधुववधितसजुगलपत्तेअं ।
ण उ जाइचउगआयववथावरसुहमाणि साहारं ॥४६७॥
पत्तेअस्स व चउरो संघयणसरखगई व अण्णयरा ।
गइआई णियमेवं तसस्स णवरि चउजाइअण्णयरा ॥४६८॥ (गीतिः)
णियमाऽज्जागिइबंधी पणिंदियधुवपरघायऊसासा ।
तसचउगं णायववथावरजाइचउक्कपडिवक्खा ॥४६९॥
व जिणुज्जोआ बंधइ अण्णयरं सहइं व अण्णयरा ।
णियमाऽण्णा गइआई एवं सुहगातिगसुखगईण भवे ॥४७०॥ (गीतिः)
परघाय बंधतो अप्पज्जत्तं ण बंधए णियमा ।
णवधुवपज्जूसास वायवदुगतित्थणामाणि ॥४७१॥
बंधइ अण्णयरा अवि वा संघयणदुव्वगसरखगई ।
णियमाऽण्णा गइआई पज्जूसासाण एमेव ॥४७२॥
एमेव थिरसुहाणं णवरं वंधइ ण चेव पडिवक्खं ।
एमेव जसस्स णवरि ण सुहमसाहारणाइं पि ॥४७३॥
बायरबंधी सुहमं ण बंधइ णवधुवबंधिणी णियमा ।
परघाऊसासायवदुगजिणणामाणि बंधइ वा ॥४७४॥
अण्णयरा अवि बंधइ वा संघयणदुव्वगसरखगई ।
णियमाऽण्णा गइआई एव पत्तेअतिअथिराईण ॥४७५॥ (गीतिः)
सेसाण सण्णियासो भवे अपज्जगपणिंदितिरियव्व ।
णवरि व णवधुवबंधी देवविउव्वदुगजिण णियरबंधी ॥४७६॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'णियमो' इत्यादि, औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां देवगतिबन्धको नवध्रुवबन्धिप्रकृतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकपराघातोच्छ्वाससमचतुरस्रसंस्थानसुखगतिदेवानुपूर्वीसुभगत्रिकत्रस-

चतुष्करूपाश्चतुर्विंशतिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, देवप्रायोग्याष्टाविंशतिबन्धस्थानस्य बन्धकाले प्रधानीकृतप्रकृतिसहितप्रकृतचतुर्विंशतिप्रकृतयोऽवश्यंतया बध्यन्त इति नियमेन देवगतिबन्धस्य प्रकृतचतुर्विंशतिप्रकृतिबन्धाऽविनाभावित्वात् । 'व' इत्यादि, जिननाम विकल्पेन बध्नाति, यतोऽस्यां मार्गणायां सम्यग्दृष्टिमनुष्येण केनचिज्जिननाम देवगतिमाबध्नता बध्यते केनचिच्च न बध्यते । 'णियमा' इत्यादि, स्थिरास्थिरे शुभाशुभे यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति युगलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'णउ' इत्यादि, कथितशेषनामप्रकृतीर्नैव बध्नाति, शेषप्रकृतीनां बन्धस्य देवगतिनाम्ना सह विरोधात् । ताश्चेमाः—तिर्यग्द्विकं मनुष्यद्विकमेकेन्द्रियादिजातिचतुष्कमौदारिकद्विकं संहननषट्कं द्वितीयादिसंस्थानपञ्चकं कुखगतिः स्थावरचतुष्कं दुर्भगत्रिकमातपोद्योतनाम्नी चेत्येकत्रिंशदिति । 'एमेव' इत्यादि, वैक्रियद्विकदेवानुपूर्वीजिननामप्रधानसन्निकर्षो देवगतिप्रधानसन्निकर्षवज्ज्ञेयः । 'णियमा' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातिबन्धको नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतित्रसबादरप्रत्येकनामानि नियमेन बध्नाति । 'ण' इत्यादि, एकेन्द्रियादिजातिचतुष्कातपस्थावरसूक्ष्मसाधारणनामानि नैव बध्नाति, पञ्चेन्द्रियजातिनाम्ना सममेषां बन्धस्य विरोधात् । 'पत्तेअस्स' इत्यादि, जिनपराघातोच्छ्वासोद्योतरूपाश्चतस्रः प्रत्येकप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, हेतुरत्र प्राग्वदनुसन्धेयः । 'संघयण' इत्यादि, संहननषट्केऽन्यतरसंहननं स्वरद्वयेऽन्यतरस्वरं खगतिद्वयेऽन्यतरां खगतिं विकल्पेन बध्नाति, तद्यथा-देवप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकः संहननं नैव बध्नाति तिर्यग्मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकस्त्वन्यतरसंहननं बध्नाति, अपर्याप्तप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले स्वरखगतिप्रकृतीः पञ्चेन्द्रियजातिबन्धको नैव बध्नाति, पर्याप्तप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले च बध्नाति । 'गइआई' इत्यादि, उक्तातिरिक्तगत्यादिनामप्रकृतिव्रातेषु प्रत्येकमन्यतराः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ते चेमे प्रकृतिव्राताः—देवमनुष्यतिर्यग्गतित्रयमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयं संस्थानषट्कं देवमनुष्यतिर्यगानुपूर्वीत्रयं पर्याप्ताऽपर्याप्ते स्थिरास्थिरे शुभाशुभे सुभगदुर्भगे आदेयानादेये यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति । 'एवं' इत्यादि, त्रसनामप्रधानसन्निकर्षः पञ्चेन्द्रियजातिप्रधानसन्निकर्षवद् बोद्धव्यः । 'णवरि' इत्यादिनाऽपवादं वक्ति—द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्केऽन्यतमां जातिं नियमेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, समचतुरस्रसंस्थानबन्धकः पञ्चेन्द्रियजातिनवध्रुवबन्धिनामप्रकृतिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपाः षोडश प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । हेतुरत्रोघतोऽनुसन्धेयः । 'ण' इत्यादि, आतपनामस्थावरचतुष्कैकेन्द्रियादिजातिचतुष्कद्वितीयादिसंस्थानपञ्चकरूपाश्चतुर्दशप्रकृतीर्नैव बध्नाति, समचतुरस्रसंस्थाननाम्ना सह बन्धविरोधादासाम् । 'व' इत्यादि, जिननामोद्योतनाम्नी विकल्पेन बध्नाति, अत्र समचतुरस्रसंस्थानबन्धकेन केनचित्सम्यग्दृष्टिनैव जिननाम बध्यते, केनचिच्च न बध्यते, उद्योतनाम तु पर्याप्ततिर्यक्प्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले केनचिद् बध्यते केनचिच्च नैव बध्यते, तथा मनुष्यगतिबन्धकालेऽपि नैव बध्यते । 'अण्णयरं' इत्यादि, अन्यतरत्संहनननाम

विकल्पेन बध्नाति, अत्र देवप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकेन तस्याऽबध्यमानत्वात् तिर्यग्मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकेन च बध्यमानत्वात् । 'अण्णयरा' इत्यादि, उदितव्यतिरिक्तगत्यादिनामप्रकृतिव्रातेषु प्रत्येकमन्यतराः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ते चैते–नरकगतिवर्जगतित्रयं औदारिकवैक्रियशरीरद्वयमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयं नरकानुपूर्वीवर्जानुपूर्वीत्रयं खगतिद्वयं स्थिराऽस्थिरषट्के चेति । 'एवं' इत्यादि, सुभगसुस्वरादेयसुखगतिनामप्रधानसन्निकर्षः समचतुरस्रसंस्थानप्रधानसन्निकर्षवज्ज्ञेयः । नवरं संस्थानषट्केऽन्यतमसंस्थानं नियमेन बध्नाति तथा स्वप्रतिपक्षप्रकृतीर्नैव बध्नाति । 'परघाय'इत्यादि पराघातनामबन्धकोऽपर्याप्तनाम नैव बध्नाति, पराघातनाम्ना सहाऽपर्याप्तनाम्नो बन्धस्य विरोधात् । "णियमा" इत्यादि, नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतिपर्याप्तोच्छ्वासनामानि नियमेन बध्नाति । 'वा' इत्यादि, आतपोद्योतजिननामानि विकल्पेन बध्नाति, संहननषट्केऽन्यतरत्संहननमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतरदङ्गोपाङ्गं स्वरद्वयेऽन्यतरत्स्वरं खगतिद्वयेऽन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति, भावना पुनरेवम्–अत्र जिननाम पराघातं बध्नता केनचित्सम्यग्दृष्टिनैव बध्यते, न सर्वैः । पर्याप्तैकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले केनचिदातपनाम बध्यते केनचिच्च न बध्यते तथा द्वीन्द्रियादिप्रायोग्यबन्धकाले केनापि न बध्यते । पराघातं बध्नता मनुष्यगत्यादिबन्धकाले उद्योतनाम नैव बध्यते पर्याप्ततिर्यक्प्रायोग्यबन्धकाले च केनचिदेव बध्यते न सर्वैः । एकेन्द्रियप्रायोग्यबन्धकाले तेन संहननषट्कं स्वरद्वयं खगतिद्वयमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयं च नैव बध्यन्ते पर्याप्तद्वीन्द्रियादिप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले चाऽन्यतमसंहननमन्यतरस्वरखगती औदारिकाङ्गोपाङ्गं च बध्यन्ते, वैक्रियाङ्गोपाङ्गं च देवप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकेन बध्यते तस्मादत्र बन्धस्य विकल्पितम् । 'णियमा" इत्यादि, अभिहितेतरगत्यादिनामप्रकृतिव्रातेषु प्रत्येकमन्यतराः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ते चेमे–देवमनुष्यतिर्यग्गतित्रयं जातिपञ्चकमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयं संस्थानषट्कं देवमनुष्यतिर्यगानुपूर्वीत्रयं स्वरपर्याप्तापर्याप्तवर्जत्रसस्थावराष्टके चेति । "पज्जू" इत्यादि, पर्याप्तोच्छ्वासनामप्रधानसन्निकर्षः पराघातप्रधानसन्निकर्षवदस्ति । 'एमेव' इत्यादि, स्थिरशुभनामप्रधानसन्निकर्षः पराघातप्रधानसन्निकर्षवदस्ति । 'णवरं' इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति–स्थिरशुभनाम्नोः बन्धकः प्रतिपक्षभूतां प्रकृतिं नैव बध्नाति, विरोधात् । 'एमेव' इत्यादि, यशःकीर्तिनामप्रधानोऽपि सन्निकर्षः पराघातप्रधानसन्निकर्षवज्ज्ञेयः । 'णवरि'इत्यादिनापवाद उच्यते–अयशःकीर्तिनाम सूक्ष्मसाधारणनाम्नी च यशःकीर्तिनामबन्धको नैव बध्नाति, यशःकीर्तिनाम्ना सहाऽऽसां प्रकृतीनां बन्धस्य विरोधात् । बादरप्रत्येकनाम्नी नियमतो बध्नाति । 'बायर' इत्यादि,बादरनामबन्धकः सूक्ष्मनाम नैव बध्नाति, विरोधात् । 'णव' इत्यादि, नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, हेतुरत्र सुगमः । 'परघा' इत्यादि, पराघातोच्छ्वासातपोद्योतजिननामानि विकल्पेन बध्नाति, प्राग्वदत्र हेतुरनुसन्धेयः । 'अण्णयरा' इत्यादि, संहननषट्केऽन्यतरत्संहननमौदारि-

कवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतराङ्गोपाङ्गं स्वरद्वयेऽन्यतरत्स्वरं खगतिद्वयेऽन्यतरां खगतिं विकल्पेन बध्नाति, अत्राऽपि हेतुः प्राग्वद् विभाव्यः। 'णियमाऽण्णा' इत्यादि; उक्तव्यतिरिक्तगत्यादिप्रकृतिव्रजेषु प्रत्येकमन्यतराः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति। तानि चेमानि प्रकृतिव्रजानि—देवमनुष्यतिर्यग्गतित्रयं जातिपञ्चकमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयं संस्थानषट्कं देवमनुष्यतिर्यगानुपूर्वीत्रयं त्रसस्थावरे पर्याप्ताऽपर्याप्ते प्रत्येकसाधारणे स्थिरास्थिरे शुभाशुभे सुभगदुर्भगे आदेयानादेये यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति। 'एवं' इत्यादि, प्रत्येकाऽस्थिराशुभाऽयशःकीर्तिनामप्रधानसन्निकर्षो बादरनामप्रधानसन्निकर्षवज्ज्ञेयः। 'सेसाण'इत्यादि, उक्तातिरिक्तप्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्षोऽपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियमार्गणावद् विज्ञेयः। 'णवरि'इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति—नवध्रुवबन्धिनामबन्धको देवद्विकवैक्रियद्विकजिननामरूपाः पञ्चप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, तथा तद्वर्जशेषप्रकृतिभिः सह जिननामसुरद्विकवैक्रियद्विकरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्य सन्निकर्षो नास्तीति वक्तव्यम्, शेषप्रकृतिबन्धेन सह तद्बन्धस्य विरोधात्। ताश्चेमाः—तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयमेकेन्द्रियादिजातिचतुष्कं संहननषट्कं द्वितीयादिसंस्थानपञ्चकमौदारिकद्विकं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयं कुखगतिः स्थावरसूक्ष्माऽपर्याप्तसाधारणदुर्भगानादेयदुःस्वरनामानि आतपोद्योतनाम्नी नवध्रुवबन्धिप्रकृतयश्चेत्येकत्रिंशदिति ॥४६५-४७६॥

इदानीमाहारकाहारकमिश्रकाययोगदेशविरतिमार्गणासु तमाह

आहारदुगे देसे सुरगइबंधी जिणं व बधेइ।
णियमाऽण्णयरा तिण्णि तिथिराइजुगलाण तह सेसा ॥४७७॥
एमेव सण्णियासो सव्वाण णवरि थिराइजुगलतिगा।
एग बंधेमाणो ण चेव बधेइ पडिवक्ख ॥४७८॥

(प्रे०) 'आहारदुगे' इत्यादि, आहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगमार्गणयोर्देशविरतिसंयममार्गणायां च सुरगतिबन्धको जिननाम विकल्पेन बध्नाति, मार्गणास्वासु केषाञ्चिज्जीवानामेव तद्बन्धकत्वात्। 'णियमा' इत्यादि, स्थिरास्थिरे शुभाशुभे यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति युगलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रः प्रकृतीस्तथोक्तातिरिक्तनामप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—नवध्रुवबन्धिप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजातिर्वैक्रियद्विकं समचतुरस्रसंस्थानं देवानुपूर्वी सुखगतिः त्रसचतुष्कं सुभगत्रिकं पराघातोच्छ्वासनाम्नी चेति चतुर्विंशतिरिति। 'एमेव' इत्यादि, देवगतिव्यतिरिक्तप्रकृतीना प्राधान्येन सन्निकर्षः सुरगतिप्रधानसन्निकर्षवज्ज्ञेयः। 'णवरं' इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति-स्थिराऽस्थिरे शुभाशुभे यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति युगलत्रयेऽन्यतरां प्रकृतिं बध्नन् तत्प्रतिपक्षभूतां प्रकृतिं नैव बध्नाति, विरोधात्। ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजातिर्वैक्रियद्विक समचतुरस्रसंस्थानं देवानुपूर्वी सुखगतिः त्रसदशकमस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिनामानि पराघातोच्छ्वासनाम्नी जिननाम चेत्येकत्रिंशदिति ॥४७७-८॥

सन्निकर्षवद् भवति । 'जसबंधो' इत्यादि, यशःकीर्तिनामबन्धकोऽयशःकीर्तिनाम नैव बध्नाति, विरोधात् । 'सिआ' इत्यादि, देवमनुष्यगतिद्वयौदारिकवैक्रियाऽऽहारकशरीरत्रयौदारिकवैक्रियाऽऽहारकाङ्गोपाङ्गत्रयदेवमनुष्यानुपूर्वीद्वयस्थिरास्थिरद्वयशुभाशुभद्वयरूपेषु षट्प्रकृतिव्रातेषु प्रत्येकमन्यतराः षट्प्रकृतीरुक्तातिरिक्तप्रकृतीश्च विकल्पेन बध्नाति, यतो मार्गणास्वासु नवमादिगुणस्थानगतो यशःकीर्तिनामबन्धक एतान्प्रकृतिव्रातान् शेषप्रकृतीश्च नैव बध्नाति अविरतसम्यग्दृष्टिप्रभृतिगुणस्थानगतः स यथासंभवं तेष्वन्यतमाः प्रकृतीः शेषप्रकृतीश्च बध्नाति । 'जिण' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातिबन्धको जिननामवज्रर्षभनाराचसंहननाहारकद्विकरूपास्तिस्रः प्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, तद्यथा—जिननामाऽऽहारकद्विकबन्धयोग्यतावद्भिः जिननामाऽऽहारकद्विकप्रकृतित्रयं बध्यते, नापरैः, मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले तेन वज्रर्षभनाराचसंहननं बध्यते, देवप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले तु न बध्यते । 'णियमा' इत्यादि, गतिद्वयशरीरद्वयाङ्गोपाङ्गद्वयानुपूर्वीद्वयस्थिरादियुगलत्रयेष्वन्यतराः सप्त प्रकृतीरुक्तातिरिक्तविंशतिप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति,हेतुरत्र सुगमत्वात्स्वयं विभाव्यः । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयः समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिस्त्रसचतुष्कं सुभगत्रिकं पराघातोच्छ्वासनाम्नी चेति । 'एवं' इत्यादि, अभिहितेतरषड्विंशतिप्रकृतीनां प्रधानभावेन सन्निकर्षः पञ्चेन्द्रियजातिप्रधानसन्निकर्षवद् विद्यते । 'णवरि' इत्यादिना विशेषं दर्शयति—स्थिरशुभनामबन्धकस्तत्प्रतिपक्षभूतास्थिराशुभनाम्नी नैव बध्नाति, विरोधात् । अस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिबन्धकस्तत्प्रतिपक्षभूतस्थिरशुभयशःकीर्तिनामान्याहारकद्विकं च नैव बध्नाति, परस्परं बन्धस्य विरोधात् अस्थिरादिप्रकृतिबन्धस्याऽऽहारकद्विकेबन्धात् प्रागेव विच्छेदाच्च ॥४८१-८॥

अथ मनःपर्यवज्ञानमार्गणायां संयमौघादिमार्गणासु च प्रकृतमाह

मणणाणसंजमेसुं समइअछेएसु बधए वा उ ।
देवगइं बंधंतो तित्थाहारदुगणामाणि ॥४८९॥
णियमाऽण्णयरा तिण्णि तिथिराइजुगलाण सेसचउवीसा ।
एमेव सण्णियासो जसआहारदुगवज्जाणं ॥४९०॥
णवरं थिरसुहबंधी पडिवक्खं णेव बंधेइ ।
अथिरदुगअजसबंधी पडिवक्खाहारजुगलाणि ॥४९१॥ (उपगीति)
आहारगतणुबंधी बंधेइ ण अथिरअसुहअजसाणि ।
बंधइ जिणं व णियमा सेसा एवं उवंगस्स ॥४९२॥
जसबंधी बंधेइ ण अजसं दोण्णि दुथिराइजुगलाणं ।
बंधइ अण्णयरा अवि वा बंधइ सेसअडवीसा ॥४९३॥
परिहारविसुद्धीए हवेज्ज मणपज्जवव्व सव्वेसिं ।
परमत्थि सण्णियासो जसणामस्स थिरणामव्व ॥४९४॥

(प्रे०) "मणणाण" इत्यादि, मनःपर्यवज्ञानसंयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयसंयमरूपासु

चतसृषु मार्गणासु देवगतिनामबन्धको जिननामाहारकद्विकं च विकल्पेन बध्नाति, तद्बन्धयोग्याऽयोग्यतामाश्रित्य भावना स्वयं प्रागुक्तानुसारेण कार्या । "णियमा" इत्यादि, स्थिरादियुगलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रः प्रकृतीस्तथोक्तशेषचतुर्विंशतिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रागवत् , शेषाणां तु देवगतिबन्धस्य तत्प्रकृतिबन्धाविनाभावित्वात् , ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकं समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिर्देवानुपूर्वी त्रसचतुष्कं सुभगत्रिकं पराघातोच्छ्वासनाम्नी चेति । "एमेव" इत्यादि, यशःकीर्तिनामाहारकद्विकवर्जशेषत्रिंशत्प्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्षो देवगतिप्रधानसन्निकर्षवद् वर्तते । "णवरं" इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति-स्थिरशुभनाम्नोर्बन्धकः तत्प्रतिपक्षभूताऽस्थिराऽशुभनाम्नी नैव बध्नाति, परस्परं बन्धस्य विरोधात् । अस्थिराऽशुभायशःकीर्तिनाम्नां बन्धकस्तत्प्रतिपक्षभूतस्थिरशुभयशःकीर्तिनामान्याहारकद्विकं च नैव बध्नाति, विरोधात् । "आहारगतणु" इत्यादि, आहारकशरीरनाम्नो बन्धकोऽस्थिराशुभायशःकीर्तिनामानि नैव बध्नाति,तथाहि-आहारकद्विकमप्रमत्तसंयतादिगुणस्थानयोर्बध्यते, अस्थिरादिप्रकृतित्रयं च प्रमत्तसंयतगुणस्थानान्ते बन्धतो व्यवच्छिद्यते, तस्मादाहारकद्विकबन्धकोऽस्थिरादिप्रकृतित्रयं नैव बध्नाति । "जिणं" इत्यादि, जिननाम विकल्पेन बध्नाति, तद्बन्धयोग्याऽयोग्यतामाश्रित्य भावना विधेया । "णियमा" इत्यादि, अभिहितशेषप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, हेतुरत्र प्रागवदनुसन्धेयः । ताश्चेमाः-नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयो देवद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिर्वैक्रियद्विकमाहारकाङ्गोपाङ्गं समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिस्त्रसदशकं पराघातोच्छ्वासनाम्नी चेत्यकोनत्रिंशदिति । 'एवं' इत्यादि, आहारकाङ्गोपाङ्गनामप्रधानसन्निकर्ष आहारकशरीरनामप्रधानसन्निकर्षवदवगन्तव्यः । 'जसबंधो' इत्यादि, यशःकीर्तिबन्धकोऽयशःकीर्तिनाम नैव बध्नाति, विरोधात् । "दोण्णि" इत्यादि, स्थिराऽस्थिरशुभाशुभयुगलद्वयेऽन्यतरे द्वे प्रकृती उक्तशेषाष्टाविंशतिनामप्रकृतीश्च विकल्पेन बध्नाति, नवमप्रभृतिगुणस्थानकेषु यशःकीर्तिनामबन्धकेनामामबध्यमानत्वात्प्रमत्तसंयतादिगुणस्थानकेषु बध्यमानत्वाच्च। ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयो देवद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिर्वैक्रियद्विकमाहारकद्विकं समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिस्त्रसचतुष्कं सुभगत्रिकं पराघातोच्छ्वासनाम्नी जिननाम चेत्यष्टाविंशतिरिति । "परिहारविसुद्धीए" इत्यादि, परिहारविशुद्धिसंयममार्गणायां स्वप्रायोग्यसर्वप्रकृतीनां सन्निकर्षो मनःपर्यवज्ञानमार्गणावद् भवति । "परमत्थि" इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति-यशःकीर्तिप्रधानसन्निकर्षः स्थिरनामवद् विज्ञेयः, अस्यां मार्गणायां श्रेणेरभावाद् यशःकीर्तिप्रकृतिरेकाकिनी नैव बध्यत इति कृत्वा ॥४८९-९४॥

अथ प्रशस्तलेश्यामार्गणासु संनिकर्षं दर्शयन्नाह-

तित्थाहारदुगाणि व पसत्थलेसासु देवगइबंधी ।
धुवसुखगइआगिइपरघाऊसासतसचउगसुहगतिगं ॥४९५॥ (गीति.)

अधुना कार्मणकाययोगानाहारकमार्गणयोः स उच्यते

कम्माणाहारेसुं उरालमीसव्व सव्वपयडीणं ।
णवरि णरउरलदुगवइरबंधी तित्थं व बंधेइ ॥४७९॥
तित्थयरं बंधतो णरसुरउरालियविउव्वियदुगाणं ।
अण्णयरा चत्तारो णियमा बंधेइ वा वइरं ॥४८०॥

(प्रे०) 'कम्मा' इत्यादि, कार्मणकाययोगानाहारकमार्गणयोः सर्वासां नामप्रकृतीनां सन्निकर्ष औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणावद् वेदितव्यः । 'णवरि' इत्यादिना विशेषं प्रदर्शयति–मनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननपञ्चकेऽन्यतमस्य बन्धको जिननाम विकल्पतो बध्नाति, यतो हि मार्गणयोरनयोर्जिननामबन्धकतया केचन सम्यग्दृष्टिदेवनारका अपि प्राप्यन्ते ते च मनुष्यद्विकादिपञ्चप्रकृतिबन्धकाले जिननाम बध्नन्ति, शेषा न बध्नन्ति । 'तित्थयरं' इत्यादि, जिननामबन्धको मनुष्यसुरद्विकयोरन्यतरद्विकमौदारिकवैक्रियद्विकयोरन्यतरद्विकं च नियमेन बध्नाति, जिननामबन्धस्य प्रकृतान्यतरप्रकृतिबन्धाविनाभावित्वात् । 'वा' इत्यादि, वज्रर्षभनाराचसंहननं विकल्पतो बध्नाति, अनयोर्मार्गणयोर्देवगतिप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले जिननामबन्धकेन तस्याऽबध्यमानत्वात् मनुष्यगतिप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले तु बध्यमानत्वात् ॥४७९-८०॥

अथ मत्यादिज्ञानत्रयप्रभृतिमार्गणासु तमाह

मणुयगई बंधतो तिणाणऽवहिसम्मखइउवसमेसुं ।
तित्थं वा बंधेइ ण सुरविउवाहारजुगलाणि ॥४८१॥
णियमाऽण्णयरा तिण्णि तिथिराइजुगलाण सेसपणवीसा ।
एमेवोरालियदुगवइरमणुस्साणुपुव्वीणं ॥४८२॥
देवगइं बंधतो मणुयोरालदुगवइररिसहाण ।
णच्चिअ बंधइ वा उण तित्थयराहारजुगलाणि ॥४८३॥
णियमाऽण्णयरा तिण्णि तिथिराइजुगलाण सेसचउवीसा ।
एमेव सण्णियासो विउवदुगसुराणुपुव्वीण ॥४८४॥
णाहारगतणुबंधी णरउरलअथिरदुगअजसवइराणि ।
बंधइ जिण व णियमा सेसा एवं उवंगस्स ॥४८५॥
जसबंधी अजसं णो चेव सिआ बंधए छ अण्णयरा ।
गइतणुवगाऽणुपुव्विदुथिराइजुगलाण तह सेसा ॥४८६॥
जिणवइराहारदुग पणिंदिबंधी व बंधए णियमा ।
अण्णयरा गइआई सत्त तहा सेसवीसाओ ॥४८७॥
एव सेसाण णवरि थिरसुहबंधी ण चेव पडिवक्खं ।
अथिरदुगअजसबंधी पडिवक्खाहारगदुगाणि ॥४८८॥

(प्रे०) 'मणुय' इत्यादि, मतिश्रुतावधिज्ञानाऽवधिदर्शनसम्यक्त्वौघक्षायिकसम्यक्त्वोपशमसम्यक्त्वरूपासु सप्तसु मार्गणासु मनुष्यगतिं बध्नन् जिननाम विकल्पेन बध्नाति केषाञ्चिद्-

देवनारकाणां तद्बन्धकत्वात् शेषाणां त्वबन्धकत्वात्, उपशमे तु केवलं देवानामेव तद्बन्धकत्वाच्च । 'ण' इत्यादि, सुरद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकानि नैव बध्नाति, मनुष्यगतिनाम्ना सहामीं बन्धस्य विरोधात् । 'णियमा' इत्यादि, स्थिरास्थिरे शुभाशुभे यशःकीर्त्ययशःकीर्तिनाम्नी चेति युगलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'सेस' इत्यादि, उक्तातिरिक्तपञ्चविंशतिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—नवध्रुवबन्धिप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिकद्विकं समचतुरस्रसंस्थानं वज्रर्षभनाराचसंहननं मनुष्यानुपूर्वी सुखगतिस्त्रसचतुष्कं सुभगत्रिकं पराघातोच्छ्वासनाम्नी चेति पञ्चविंशतिरिति, तत्र ध्रुवाणां ध्रुवबन्धित्वात्, प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धविच्छेदादूर्ध्वं तद्बन्धविच्छेदात्, वज्रर्षभनाराचसंहननस्य मनुष्यगतिनाम्ना सहात्र तत्प्रतिपक्षसंहननप्रकृतिबन्धाभावात्, औदारिकद्विकमनुष्यानुपूर्वीप्रकृतीनां मनुष्यगतिबन्धस्य तद्बन्धाविनाभावित्वात्, शेषप्रकृतीनां च प्रकृतमार्गणासु तत्प्रतिपक्षप्रकृतीनां बन्धाभावेन ध्रुवबन्धिकल्पत्वात् । 'एमेव' इत्यादि, औदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननमनुष्यानुपूर्वीप्रधानसन्निकर्षो मनुष्यगतिप्रधानसन्निकर्षवज्ज्ञेयः । 'देवगइं' इत्यादि, देवगतिं बध्नन् मनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननप्रकृतिपञ्चकं नैव बध्नाति, तद्बन्धस्य देवगतिनाम्ना सह विरोधात् । 'वा' इत्यादि, जिननामाहारकद्विकं च विकल्पेन बध्नाति, केषाञ्चिज्जीवानामेव तद्बन्धकत्वात् । 'णियमा' इत्यादि, स्थिरादियुगलत्रयेऽन्यतराः तिस्रः प्रकृतीः शेषचतुर्विंशतिप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—नव ध्रुवबन्धिप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजातिर्वैक्रियशरीर-वैक्रियाङ्गोपाङ्गनाम्नी समचतुरस्रसंस्थानं देवानुपूर्वी सुखगतिस्त्रसचतुष्कं सुभगत्रिकं पराघातोच्छ्वासनाम्नी चेति, हेतुः पुनरिहोक्तदेवगतिप्रधानसन्निकर्षवद् भाव्यः । 'एमेव' इत्यादि, वैक्रियद्विकदेवानुपूर्वीनाम्नी प्रधानीकृत्य सन्निकर्षो देवगतिप्रधानसन्निकर्षवज्ज्ञेयः । 'णाहारग' इत्यादि, आहारकशरीरनामबन्धको मनुष्यद्विकौदारिकद्विकाऽस्थिरद्विकाऽयशःकीर्तिवज्रर्षभनाराचसंहनननामानि नैव बध्नाति, तद्यथा—आहारकशरीरनामबन्धकस्य देवप्रायोग्यप्रकृतीनामेव बन्धकत्वेन न मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतिपञ्चकस्य बन्धः, प्रमत्तगुणस्थानकान्तेऽस्थिराऽशुभायशःकीर्तिप्रकृतीनां बन्धविच्छेदेन तस्यास्थिरादिप्रकृतित्रयस्याऽपि बन्धविरहः । 'जिणं' इत्यादि, जिननाम विकल्पेन बध्नाति, तद्बन्धयोग्यताविद्भिर्बध्यमानत्वात्तदपरैस्त्वबध्यमानत्वात् । 'णियमा' इत्यादि, देवद्विकं नवध्रुवबन्धिप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजाति वैक्रियद्विकमाहारकाङ्गोपाङ्गं समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिस्त्रसदशकं पराघातोच्छ्वासनाम्नी चेति नवविंशतिशेषप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तद्यथा—नाम्नो नवध्रुवबन्धिप्रकृतीनां ध्रुवबन्धित्वे सत्याहारकशरीरनाम्ना सममेव बन्धतो व्यवच्छिद्यमानत्वेनाहारकशरीरनाम्ना सह नियतबन्ध एव प्राप्यते, तथा-देवद्विकपञ्चेन्द्रियजातिप्रभृतिप्रकृतीनां बन्धं विनाऽऽहारकशरीरनाम नैव बध्यत इति कृत्वा तासामपि बन्धो ध्रुवतया प्राप्यते । 'एवं' इत्यादि, आहारकाङ्गोपाङ्गप्रधानसन्निकर्ष आहारकशरीरनामप्रधान-

सन्निकर्षवद् भवति । 'जसबंधो' इत्यादि; यशःकीर्तिनामबन्धकोऽयशःकीर्तिनाम नैव बध्नाति, विरोधात् । 'सिअ' इत्यादि, देवमनुष्यगतिद्वयौदारिकवैक्रियाऽऽहारकशरीरत्रयौदारिकवैक्रियाऽऽहारकाङ्गोपाङ्गत्रयदेवमनुष्यानुपूर्वीद्वयस्थिरास्थिरद्वयशुभाशुभद्वयरूपेषु षट्प्रकृतिव्रातेषु प्रत्येकमन्यतराः षट्प्रकृतीरुक्तातिरिक्तप्रकृतीश्च विकल्पेन बध्नाति, यतो मार्गणास्वासु नवमादिगुणस्थानगतो यशःकीर्तिनामबन्धक एतान्प्रकृतिव्रातान् शेषप्रकृतीश्च नैव बध्नाति अविरतसम्यग्दृष्टिप्रभृतिगुणस्थानगतः स यथासंभवं तेष्वन्यतमाः प्रकृतीः शेषप्रकृतीश्च बध्नाति । 'जिण' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातिबन्धको जिननामवज्रर्षभनाराचसंहननाहारकद्विकरूपाश्चतस्रः प्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, तद्यथा– जिननामाऽऽहारकद्विकबन्धयोग्यतावद्भिः जिननामाऽऽहारकद्विकप्रकृतित्रयं बध्यते, नापरैः, मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले तेन वज्रर्षभनाराचसंहननं बध्यते, देवप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले तु न बध्यते । 'णियमा' इत्यादि, गतिद्वयशरीरद्वयाङ्गोपाङ्गद्वयानुपूर्वीद्वयस्थिरादियुगलत्रयेष्वन्यतराः सप्त प्रकृतीरुक्तातिरिक्तविंशतिप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति,हेतुरत्र सुगमत्वात्स्वयं विभाव्यः । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः–नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयः समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिस्त्रसचतुष्कं सुभगत्रिकं पराघातोच्छ्वासनाम्नी चेति । 'एवं' इत्यादि, अभिहितेतरषड्विंशतिप्रकृतीनां प्रधानभावेन सन्निकर्षः पञ्चेन्द्रियजातिप्रधानसन्निकर्षवद् विद्यते । 'णवरि' इत्यादिना विशेषं दर्शयति–स्थिरशुभनामबन्धकस्तत्प्रतिपक्षभूतास्थिराशुभनाम्नी नैव बध्नाति, विरोधात् । अस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिबन्धकस्तत्प्रतिपक्षभूतस्थिरशुभयशःकीर्तिनामान्याहारकद्विकं च नैव बध्नाति, परस्परं बन्धस्य विरोधात् अस्थिरादिप्रकृतिबन्धस्याऽऽहारकद्विकबन्धात् प्रागेव विच्छेदाच्च ॥४८१-८॥

अथ मनःपर्यवज्ञानमार्गणायां संयमौघादिमार्गणासु च प्रकृतमाह

मणणाणसंजमेसुं समइअछेएसु बधए वा उ ।
देवगइं बंधतो तित्थाहारदुगणामाणि ॥४८९॥
णियमाऽण्णयरा तिण्णि तिथिराइजुगलाण सेसचउवीसं ।
एमेव सण्णियासो जसआहारदुगवज्जाणं ॥४९०॥
णवरं थिरसुहबंधी पडिवक्ख णेव बंधेइ ।
अथिरदुगअजसबंधी पडिवक्खाहारजुगलाणि ॥४९१॥ (उपगीति)
आहारगतणुबंधी बंधेइ ण अथिरअसुहअजसाणि ।
बंधइ जिणं व णियमा सेसा एवं उवंगस्स ॥४९२॥
जसबंधी बंधेइ ण अजस दोण्णि दुथिराइजुगलाणं ।
बंधइ अण्णयरा अवि वा बंधइ सेसअडवीसा ॥४९३॥
परिहारविसुद्धीए हवेज्ज मणपज्जवव्व सव्वेसिं ।
परमत्थि सण्णियासो जसणामस्स थिरणामव्व ॥४९४॥

(प्रे०) "मणणाण"इत्यादि, मनःपर्यवज्ञानसंयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयसंयमरूपासु

चतसृषु मार्गणासु देवगतिनामबन्धको जिननामाहारकद्विकं च विकल्पेन बध्नाति, तद्बन्धयोग्याऽयोग्यतामाश्रित्य भावना स्वयं प्रागुक्तानुसारेण कार्या । "णियमा" इत्यादि, स्थिरादियुगलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रः प्रकृतीस्तथोक्तशेषचतुर्विंशतिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रागवत् , शेषाणां तु देवगतिबन्धस्य तत्प्रकृतिबन्धाविनाभावित्वात् , ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः–नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकं समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिर्देवानुपूर्वी त्रसचतुष्कं सुभगत्रिकं पराघातोच्छ्वासनाम्नी चेति । "एमेव" इत्यादि, यशःकीर्तिनामाहारकद्विकवर्जशेषत्रिंशत्प्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्षो देवगतिप्रधानसन्निकर्षवद् वर्तते । "णवरं" इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति-स्थिरशुभनाम्नोर्बन्धकः तत्प्रतिपक्षभूताऽस्थिराऽशुभनाम्नी नैव बध्नाति, परस्परं बन्धस्य विरोधात् । अस्थिराऽशुभायशःकीर्तिनाम्नां बन्धकस्तत्प्रतिपक्षभूतस्थिरशुभयशःकीर्तिनामान्याहारकद्विकं च नैव बध्नाति, विरोधात् । "आहारगतणु" इत्यादि, आहारकशरीरनाम्नो बन्धकोऽस्थिराशुभायशःकीर्तिनामानि नैव बध्नाति, तथाहि–आहारकद्विकमप्रमत्तसंयतादिगुणस्थानयोर्बध्यते. अस्थिरादिप्रकृतित्रयं च प्रमत्तसंयतगुणस्थानान्ते बन्धतो व्यवच्छिद्यते, तस्मादाहारकद्विकबन्धकोऽस्थिरादिप्रकृतित्रयं नैव बध्नाति । "जिणं" इत्यादि, जिननाम विकल्पेन बध्नाति, तद्बन्धयोग्याऽयोग्यतामाश्रित्य भावना विधेया । "णियमा" इत्यादि, अभिहितशेषप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, हेतुरत्र प्रागवदनुसन्धेयः । ताश्चेमाः–नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयो देवद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकमाहारकाङ्गोपाङ्गं समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिस्त्रसदशकं पराघातोच्छ्वासनाम्नी चेत्येकोनत्रिंशदिति । 'एवं' इत्यादि, आहारकाङ्गोपाङ्गनामप्रधानसन्निकर्ष आहारकशरीरनामप्रधानसन्निकर्षवदवगन्तव्यः । 'जसबंधो" इत्यादि, यशःकीर्तिबन्धकोऽयशःकीर्तिनाम नैव बध्नाति, विरोधात् । "दोण्णि" इत्यादि, स्थिराऽस्थिरशुभाशुभयुगलद्वयेऽन्यतरे द्वे प्रकृती उक्तशेषाष्टाविंशतिनामप्रकृतीश्च विकल्पेन बध्नाति, नवमप्रभृतिगुणस्थानकेषु यशःकीर्तिनामबन्धकेनामामबध्यमानत्वात्प्रमत्तसंयतादिगुणस्थानकेषु बध्यमानत्वाच्च। ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः–नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयो देवद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिर्वैक्रियद्विकमाहारकद्विकं समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिस्त्रसचतुष्कं सुभगत्रिकं पराघातोच्छ्वासनाम्नी जिननाम चेत्यष्टाविंशतिरिति । "परिहारविसुद्धीए" इत्यादि, परिहारविशुद्धिसंयममार्गणायां स्वप्रायोग्यसर्वप्रकृतीनां सन्निकर्षो मनःपर्यवज्ञानमार्गणावद् भवति । "परमत्थि" इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति–यशःकीर्तिप्रधानसन्निकर्षः स्थिरनामवद् विज्ञेयः, अस्यां मार्गणायां श्रेणेरभावाद् यशःकीर्तिप्रकृतिरेकाकिनी नैव बध्यत इति कृत्वा ॥४८९-९४॥

अथ प्रशस्तलेश्यामार्गणासु संनिकर्षं दर्शयन्नाह-

तित्थाहारदुगाणि व पसत्थलेसासु देवगइबंधी ।
धुवसुखगइआगिइपरघाऊसासतसचउगसुहगतिग ॥४९५॥ (गीति.)

विउव्वदुगपणिंदियसुरअणुपुव्वी य तिथिराइजुगलाणं ।
अण्णयरा णियमाऽण्णा णेव विउव्वदुगसुरऽणुपुव्वीण ॥४९६॥ (गीतिः)
आहारदुगस्सेव णवरि अथिरअसुहअजसणामाणि ।
णो चिअ बंधइ णियमा थिरसुहजसणामकम्माणि ॥४९७॥
सेसाण हवेज्ज कमा पढमतइअणवमकप्पदेवव्व ।
णवरि अथिरअसुहअजसबंधी व सुरविउव्वदुगाणि ॥४९८॥
धुवसुखगइआगिइजिणपरघाऊसासतसदसगबंधी ।
पंचिंदियबंधी य व सुरविउवाहारगदुगाणि ॥४९९॥
सुक्काअ व जसबंधी धुवसयलजिणपरघायऊसासा ।
तसचउगाहारदुगं तह सेसाऽण्णयरगइआई ॥५००॥

(प्रे०) 'तित्थ' इत्यादि, त्रिप्रशस्तलेश्यामार्गणासु लाघवार्थमतिदेशेन बाहुल्यतया संनिकर्षं दर्शयति । तत्रापि प्रथमं देवगतिविषयकसंनिकर्षं व्यक्तं दर्शयति । तद्यथा—सुरगतिबन्धको नवध्रुवबन्धिप्रकृतयः पराघातोच्छ्वासे सुभगत्रिकं त्रसचतुष्कं देवानुपूर्वी सुखगतिः समचतुरस्रसंस्थानं पञ्चेन्द्रियजातिर्वैक्रियद्विकं चेति चतुर्विंशतिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, हेतुरत्र प्राग्वदवसेयः । जिननामाहारकद्विकप्रकृतित्रयं विकल्पेन बध्नाति, तद्बन्धयोग्याऽयोग्यतां प्रतीत्य भावना कार्या । 'तिथिराइ' इत्यादि, स्थिरास्थिरे शुभाशुभे यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति युगलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, । 'ऽण्णाण' इत्यादि, उक्तव्यतिरिक्ताः प्रकृतीर्नैव बध्नाति, देवगतिनाम्ना सार्धं शेषप्रकृतीनां बन्धविरोधात् । 'एवं' इत्यादि, वैक्रियद्विकदेवानुपूर्वीनामप्रधानसन्निकर्षः सुरगतिप्रधानसन्निकर्षवदस्ति । 'आहारदुग' इत्यादि, आहारकद्विकप्रधानोऽपि सन्निकर्षः सुरगतिप्रधानसन्निकर्षवद् विद्यते । 'णवरि' इत्यादिनाऽपवादमाह—आहारकद्विकबन्धकोऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिनामानि नैव बध्नाति, प्रमत्तसंयतगुणस्थानान्त एव तेषां बन्धविच्छेदात् । 'णियमा' इत्यादि, स्थिरशुभयशःकीर्तिनामकर्माणि नियमेन बध्नाति । 'सेसाण' इत्यादि, प्रकृतप्रशस्तमार्गणात्रयेऽभिहितेतरस्वप्रायोग्यप्रकृतीना प्राधान्येन सन्निकर्षः क्रमेण प्रथमतृतीयनवमदेवमार्गणावद् बोद्धव्यः, इदमुक्तं भवति—तेजोलेश्यामार्गणाया स्वप्रायोग्यशेषप्रकृतीना सन्निकर्षः सौधर्मदेवमार्गणावत् , पद्मलेश्यामार्गणायां सनत्कुमारदेवमार्गणावत् , शुक्ललेश्यामार्गणायां चानतदेवमार्गणावद् विज्ञेयः । 'णवरं' इत्यादिनाऽपवादमुपदर्शयति—अस्थिराऽशुभायशःकीर्तिनामबन्धको देवद्विकवैक्रियद्विके विकल्पतो बध्नाति, तथा नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतिपञ्चेन्द्रियजातिसुखगतिसमचतुरस्रसंस्थानजिननामपराघातोच्छ्वासत्रसदशकबन्धको देवद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकरूपाः षट्प्रकृतीर्विकल्पतो बध्नाति, तद्यथा—सौधर्मादिमार्गणासु केवल देवानामेव प्रवेशोऽस्ति, प्रस्तुतमार्गणासु पुनर्मनुष्यादिजीवानामपि प्रवेशोऽस्ति, ते च नवध्रुवबन्धिनामप्रभृतिप्रकृतप्रकृतिबन्धकाले देवद्विकवैक्रियद्विकप्रकृतिचतुष्कं नियमेन बध्नाति, प्रकृतमार्गणागता

देवाः पुनर्नैव बध्नन्ति, आहारकद्विकं तु प्रकृतमार्गणागताः केचन एवाऽप्रमत्तसंयता बध्नन्ति न पुनः सर्वे, अतोऽत्र विकल्पो दर्शितः, शुक्ललेश्यामार्गणायां नवध्रुवबन्ध्यादिबन्धकस्य मनुष्यद्विकौदारिकद्विकयोर्मूले साक्षादनुक्तोऽपि देवद्विक-वैक्रियद्विकविकल्पबन्धाभिधानसामर्थ्येन गम्यमानः स्यात्बन्धोऽवसेयः।

अथ यासां प्रकृतीनां संनिकर्षो निरपवादस्ताश्चेमाः—तेजोलेश्यामार्गणायां एकेन्द्रियजातिस्थावरातपतिर्यग्द्विकोद्योतमनुष्यद्विकौदारिकद्विकसंहननषट्कद्वितीयादिसंस्थानपञ्चकाऽशुभखगति-दुर्भगत्रिकरूपाः पञ्चविंशतिरिति, पद्मलेश्यामार्गणायामेकेन्द्रियजातिस्थावरातपनामवर्जा द्वाविंशतिः, शुक्ललेश्यामार्गणायां चैकेन्द्रियजातिस्थावरातपतिर्यग्द्विकोद्योतवर्जा एता एवैकोनविंशतिर्ग्राह्याः। शुक्ललेश्यामार्गणायां यो विशेषतः सन्निकर्षोऽस्ति, तं 'सुक्काअ' इत्यादिना दर्शयति—यशःकीर्तिनामबन्धको नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतिपञ्चेन्द्रियजातिजिननामपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्काहारकद्विकप्रकृतीनां बन्धो विकल्पेन भवति तथा देवद्विकमनुष्यद्विकयोरौदारिकद्विकवैक्रियद्विकयोः संहननषट्के संस्थानषट्के खगतिद्वये स्थिरास्थिरयोः शुभाशुभयोः, सुभगदुर्भगयोः सुस्वरदुःस्वरयोरादेयानादेययोरन्यतराः प्रकृतीरपि विकल्पेन बध्नाति, यदा श्रेणौ केवलं यशःकीर्तिं बध्नाति तदा शेषाः सर्वाः प्रकृतीर्नैव बध्नाति शेषकाले तु यथायोग्यं बध्नाति न बध्नाति चेति कृत्वा विकल्पेन सर्वासां प्रकृतीनां बन्धो भणित इति ॥४९५-५००॥

इदानीं क्षयोपशमसम्यक्त्वमिश्रसम्यक्त्वसास्वादनमार्गणासु नामप्रकृतिसन्निकर्षं प्रतिपादयितुकाम आह

ओहिव्व होइ वेअगमीसेसु णवरि जसस्स उ थिरव्व।
मीसे ण चेव बंधो तित्थाहारजुगलाण भवे ॥५०१॥
पम्हव्व सण्णियासो सासाणे णवरि णो भवे बंधो।
अतिमसंघयणागिइतित्थाहारदुगणामाण ॥५०२॥

(प्रे०) "ओहिव्व" इत्यादि, वेदकसम्यक्त्वमिश्रसम्यक्त्वमार्गणाद्वये नामप्रकृतिसन्निकर्षोऽवधिज्ञानमार्गणावद् भवति, स तु स्वयमेव ततोऽवलोक्यः, ग्रन्थगौरवभियाऽत्र नोच्यते। "णवरि" इत्यादिना विशेषं प्रतिपादयति-यशःकीर्तिनाम्नः सन्निकर्षः स्थिरनामसन्निकर्षवद् वर्तते, तद्यथा-यशःकीर्तिनाम्नो बन्धको नवध्रुवबन्धिनामपराघातोच्छ्वासपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतित्रसचतुष्कसुभगत्रिकप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति। जिननामाहारकद्विकप्रथमसंहनननामानि विकल्पतो बध्नाति। देवमनुष्यगतिद्वये, औदारिकवैक्रियशरीरद्वये, औदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वये, देवमनुष्यानुपूर्वीद्वये, स्थिरादियुगलद्वये चाऽन्यतरां प्रकृतिं नियमेन बध्नाति, अयशःकीर्तिनाम नैव बध्नाति, विरुद्धत्वात्। मिश्रे आहारकद्विकजिननाम्नोर्बन्धाभावात्तद्विषयकसन्निकर्षो नास्ति, स तु "मीसे" इत्यादिना दर्शितः। 'पम्हव्व' इत्यादि, सास्वादनमार्गणायां नामप्रकृतीनां सन्निकर्षः पद्मलेश्यावत्

विज्ञेयः । "णवरि" इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति–सेवार्तसंहननहुण्डकसंस्थानजिननामाहारकद्विक-नाम्नां सन्निकर्षो नास्ति, मार्गणायामस्यां प्रकृतीनामासां बन्धविरहात् । एवं नामकर्मणः स्व-स्थानसन्निकर्षो मार्गणास्थानेषु समाप्तः ॥५०१ २॥

इदानीं मार्गणासु गोत्रकर्मणः सन्निकर्षं निरूपयिषुराह

पणऽणुत्तरसव्वागणिपवणाहारगदुगेसु गयवेए ।
चउणाणसंजमेसुं समइअछेअपरिहारेसुं ॥५०३॥
देससुहुमोहिसम्मगवेअगखइएसु उवसमे मीसे ।
गोअस्स सण्णियासो ण भवे ओघव्व सेसासुं ॥५०४॥

(प्रे०) "पण" इत्यादि, पञ्चानुत्तरमार्गणाः, ओघ-सूक्ष्मौघ-बादरौघ-पर्याप्तसूक्ष्म पर्याप्तबादराऽ-पर्याप्तसूक्ष्मा-ऽपर्याप्तबादरभेदभिन्नाः सप्त तेजस्कायमार्गणाः सप्तवायुकायमार्गणा आहारककाययोगाहारक-मिश्रकाययोगमार्गणे गतवेदमार्गणा मतिज्ञानश्रुतज्ञानावधिज्ञानमनःपर्यवज्ञानरूपाश्चतुर्ज्ञानमार्गणाः, संयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिदेशविरतिसूक्ष्मसम्परायरूपाः षट्संयममार्गणाः, अवधिदर्शनमार्गणा सम्यक्त्वौघक्षयोपशमसम्यक्त्वक्षायिकसम्यक्त्वोपशममिश्रसम्यक्त्वरूपाः पञ्च-सम्यक्त्वमार्गणाश्चेत्यष्टात्रिंशन्मार्गणासु गोत्रकर्मणः सन्निकर्षो नास्ति, तेजोवायुकायवर्जमार्गणा-स्वासूच्चैर्गोत्रस्यैकस्यैव बन्धभावात् तेजोवायुकायमार्गणासु केवलं नीचैर्गोत्रस्यैव बध्यमानत्वाच्च । "ओघव्व" इत्यादि, अत्रोक्तातिरिक्तासु मार्गणासु गोत्रकर्मणः सन्निकर्ष ओघवदस्ति, तद्यथा-अन्यतरदेकं गोत्रकर्म बध्नन् तद्व्यतिरिक्तं गोत्रं नैव बध्नाति । ताश्चेमाः शेषमार्गणाः–अष्टौ नरक-मार्गणाः, तिर्यगोघादिपञ्चमार्गणा, मनुष्यौघादिचतुर्मार्गणाः, पञ्चानुत्तरवर्जशेषपञ्चविंशतिदेवौघादि-मार्गणाः, ओघादिसप्तभेदेन सप्तैकेन्द्रियमार्गणाः, ओघादिभेदत्रयेण तिस्रो द्वीन्द्रियमार्गणाः तिस्रः त्रीन्द्रियमार्गणास्तिस्रश्चतुरिन्द्रियमार्गणास्तिस्रः पञ्चेन्द्रियमार्गणाश्चेत्येकोनविंशतिरिन्द्रियमार्गणाः, ओघादिसप्तभेदेन सप्त पृथ्वीकायमार्गणाः, सप्ताऽप्कायमार्गणाः, एकादशवनस्पतिकायमार्गणाः तिस्र-स्त्रसकायमार्गणाश्चेत्यष्टाविंशतिः कायमार्गणाः, ओघसत्याऽसत्यसत्यासत्यासत्याऽमृषाभेदेन पञ्चमनो-योगमार्गणाः, पञ्चवचनयोगमार्गणाः, काययोगौघौदारिककाययोगौदारिकमिश्रकाययोगवैक्रियकाय-योगवैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणापञ्चकम्, कार्मणकाययोगमार्गणा चेति षोडश योगमार्गणाः, स्त्रीपुरुष-नपुंसकवेदमार्गणात्रयम्, क्रोधमानमायालोभमार्गणाचतुष्कम्, मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानमार्ग-णात्रयम्, असंयममार्गणा चक्षुरचक्षुर्दर्शनमार्गणाद्वयम्, कृष्णादिलेश्यामार्गणाषट्कम्, भव्याभव्य-मार्गणाद्वयम्, सास्वादनमिथ्यात्वमार्गणाद्वयम्, संज्ञ्यसंज्ञिमार्गणाद्वयम्, आहारकानाहारकमार्गणा-द्वयं चेति द्वात्रिंशदधिकशतमिति । अकषायकेवलज्ञानकेवलदर्शनयथाख्यातसंयममार्गणाचतुष्के सर्वथैव गोत्रकर्मणो बन्धविरहात्, तत्सन्निकर्षप्रसङ्ग एव नास्ति, 'मूलं नास्ति कुतः शाखा' इति न्यायात् । इति गोत्रकर्मणः स्वस्थानसन्निकर्षः समाप्तः, तत्समाप्तौ च स्वस्थानसन्निकर्षः समाप्तिमगात् ॥५०३-४॥

॥ इति बन्धविधाने उत्तरप्रकृतिबन्धे प्रथमाधिकारे स्वस्थानसन्निकर्षः ॥

॥ अथ परस्थानसन्निकर्षः ॥

साम्प्रतं परस्थानसन्निकर्षं प्रतिपादयन्नादावोधतो ज्ञानावरणादिप्रकृतिप्रधानं परस्थानसन्निकर्षं निरूपयति

णियमा बंधइ एग विग्घावरणणवगाउ बंधंतो ।
सेसा तेरस अण्णयरवेअणीअजसअजसगोआणि ॥५०५॥ (गीति.)
बंधइ व सेसधुवचउआउगआहारआयवदुगाणि ।
जिणपरघाऊसासा तह सेसाऽण्णयरजुगलाई ॥५०६॥

(प्रे०) 'णियमा' इत्यादि, अन्तरायपञ्चकं ज्ञानावरणपञ्चकं चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्कं चेति चतुर्दशप्रकृतिष्वेकां प्रकृतिमाबध्नन् शेषास्त्रयोदशप्रकृतीः साताऽसातवेदनीययोरन्यतरद् वेदनीयं यशःकीर्त्ययशःकीर्तिद्वयेऽन्यतरां प्रकृतिमुच्चैर्नीचैर्गोत्रद्वयेऽन्यतरद् गोत्रं च नियमेन बध्नाति । 'बंधइ' इत्यादि, निद्रापञ्चकं मिथ्यात्वमोहनीयानन्तानुबन्धिचतुष्कप्रभृतिषोडशकषायभयजुगुप्सारूपा एकोनविंशतिर्मोहनीयप्रकृतयस्तैजसकार्मणशरीरद्वयं वर्णचतुष्कमगुरुलघूपघातनिर्माणनामानि चेति नव नाम्नो ध्रुवबन्धिप्रकृतयश्चेति शेषत्रयस्त्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतय आयुष्कचतुष्कमाहारकद्विकमातपोद्योतनाम्नी जिननामपराघातोच्छ्वासनामानि चेति चतुश्चत्वारिंशत्प्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । 'तह' इत्यादि, तथाऽभिहितेतरप्रकृतिवृन्देषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं विकल्पेन बध्नाति, तानि चेमानि शेषप्रकृतिवृन्दानि—हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं गतिचतुष्कं जातिपञ्चकमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयं संहननषट्कं संस्थानषट्कमानुपूर्वीचतुष्कं खगतिद्वयं त्रसस्थावरादियुगलनवकं चेति, शेषध्रुवबन्धिनीनां प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धविच्छेदस्थानं यावद् बन्धः, तदूर्ध्वं त्वबन्ध इति कृत्वा तथा शेषाध्रुवबन्धिनीनां त्वध्रुवबन्धित्वादेव विकल्पेन बन्धः ।

अत्र परस्थानसन्निकर्षे विवक्षितप्रकृत्या सह तदितरप्रकृतीनां कुत्रचिन्नियतबन्धरूपः कुत्रचिद् विकल्पबन्धरूपः कुत्रचित्तदितराऽन्यतरप्रकृतीनां नियतबन्धरूपः कुत्रचित् तद्विकल्पबन्धरूपः सन्निकर्षोऽस्ति, तत्र हेतोरवगत्यै तथा ग्रन्थलाघवार्थं नियमाः प्रदर्श्यन्ते । तद्यथा—

(१) यासां ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धविच्छेदस्थानं प्रधानीकृतप्रकृतेर्बन्धविच्छेदस्थानेन समं पश्चात् तत ऊर्ध्वं वर्तते तासां ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां नियमेन बन्धो वक्तव्यः । मार्गणासु पुनः स्वोत्कृष्टगुणस्थानं यावद् बध्यमानध्रुवबन्धिप्रकृतीनां तथा मार्गणाप्रायोग्यध्रुवबन्धिकल्पानां नियमेन बन्धः सर्वप्रकृतीनां संनिकर्षे कथनीयः । इति प्रथमनियमः ।

(२) यासां ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धविच्छेदस्थानं प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धविच्छेदस्थानादर्वाग् वर्तते तासां प्रकृतीनां बन्धो विकल्पेन प्राप्यते । इति द्वितीयनियमः ।

(३) (अ) यस्याः प्रधानीकृतप्रकृतेर्बन्धेन सहैकेन्द्रियजातिनाम्नो देवनरकान्यतरगतेर्वा विकल्पेन बन्धार्हत्वं तत्र क्रमेणाङ्गोपाङ्गसंहननस्वरखगतिनाम्नां संहननस्य च विकल्पेन बन्धार्हत्वं विज्ञेयम् ।

(२) (ख) यत्रातपोद्योतनाम्नोर्बन्धार्हत्वं तथैवायुष्कचतुष्काहारकद्विकजिननाम्नामपि बन्धार्हत्वं तत्र तेषां विकल्पेन बन्धो भवति ।

(३) (क) यत्राऽपर्याप्तनाम्नो विकल्पेन बन्धार्हत्वं तत्र पराघातोच्छ्वासनाम्नोस्तथा तत्रैव केवलस्थावरप्रायोग्यातिरिक्तप्रधानीकृतप्रकृतिसन्निकर्षे खगतिस्वरनाम्नोरपि विकल्पेन बन्धो भवति ।

(४) यत्र सप्रतिपक्षप्रकृतिष्वेकतरस्याः प्रकृतेर्बन्धविच्छेदस्थानं यस्याः प्रधानीकृतप्रकृतेर्बन्धविच्छेदस्थानेन समं यद्वा तत ऊर्ध्वं प्राप्यते तत्र सप्रतिपक्षप्रकृतिष्वेकतरस्याः प्रकृतेर्नियमेन बन्धः प्राप्यते ।

यथा—अनन्तरवक्ष्यमाणप्रधानीकृतनिद्राप्रकृतिसन्निकर्षे प्रथमनियमेन भयजुगुप्साभज्वलनचतुष्काणां ज्ञानावरणादिचतुर्दशानां नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतीनां प्रचलायाश्च नियमेन बन्धः, द्वितीयनियमानुसारेण शेषध्रुवबन्धिनीनां विकल्पेन बन्धः, तृतीयनियमप्रथमांशेनाऽङ्गोपाङ्गसंहननस्वरखगतिनाम्नां विकल्पेन बन्धः, तृतीयनियमद्वितीयांशेनायुश्चतुष्कातपोद्योताहारकद्विकजिनप्रकृतीनां विकल्पेन बन्धः, तृतीयनियमतृतीयांशेन पराघातोच्छ्वासयोर्विकल्पेन बन्धः, चतुर्थनियमेन सातासातवेदनीययोरेकतरस्य युगलद्वय एकतरयुगलस्य वेदत्रयेऽन्यतमवेदस्य इत्येवं स्थिरास्थिरादिष्वपि नियमेन बन्धः कथितः । एवं सर्वत्र प्रकृतनियमानुसारेण हेतुभावनिकाप्रभृतयोऽनुसन्धेयाः ॥५०५-६॥

इदानीं निद्राद्विकप्रधानं परस्थानसन्निकर्षमाह

बंधइ व णिद्दबंधी जिणथीणद्धितिगबारसकसाया ।
मिच्छाहारायवदुगपरघाऊसासचउआऊ ॥५०७॥
णियमाऽण्णा धुवबंधी वा संघयणदुउवंगसरखगई ।
अण्णयराऽण्णा णियमा एमेव हवेज्ज पयलाए ॥५०८॥

(प्रे०) 'बंधइ' इत्यादि, निद्राप्रकृतिबन्धको जिननामस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयाऽऽहारकद्विकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासाऽऽयुष्कचतुष्करूपाः सप्तविंशतिप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, भावनाप्रकारस्त्वेवम्—मिथ्यात्वमोहनीयातपनामनरकायुःप्रकृतित्रयं मिथ्यात्वगुणस्थाने वर्तमानः सन् निद्राद्विकप्रकृतिबन्धको बध्नाति तदितरगुणस्थानकेषु च वर्तमानो नैव बध्नाति, प्रथमद्वितीयगुणस्थानगतः स स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कतिर्यगायुरुद्योतनामरूपा नवप्रकृतीर्बध्नाति तृतीयादिगुणस्थानगतश्च नैव बध्नाति, प्रथमादिगुणस्थानत्रयवर्ती स जिननाम नैव बध्नाति तूर्यादिगुणस्थानकेष्वपि तद्बन्धयोग्यतावान् बध्नाति, नापरः, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कमनुष्यायुष्कप्रकृतिपञ्चकं प्रथमादिगुणस्थानेषु वर्तमानः स बध्नाति पञ्चमादिगुणस्थानकेषु च नैव बध्नाति, प्रथमादिगुणस्थानपञ्चके स्थितः स प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं बध्नाति, न तु तदपरगुणस्थानकेषु, देवायुस्तृतीयवर्जप्रथमादिसप्तमान्तगुणस्थानगतः कश्चिद् बध्नाति कश्चिन्न बध्नाति, पराघातोच्छ्वासना[illegible]स

पर्याप्तप्रायोग्यप्रकृतिबन्धवेलायां बध्नाति, अपर्याप्तप्रायोग्यप्रकृतिबन्धवेलायां च नैव बध्नाति । आहारकद्विकं तद्बन्धयोग्यतावान्नैव कश्चिदप्रमत्तापूर्वकरणसंयतः स बध्नाति, न तु तदितरः, तस्मादत्रासां प्रकृतीनां निद्राप्रकृत्या सह सन्निकर्षो विकल्पितः । "णियमा" इत्यादि, अत्रोक्तातिरिक्ता ध्रुवबन्धिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, अत्र प्रथमनियमेन भावना कार्या । ताश्चेमाः शेषध्रुवबन्धिप्रकृतयः—ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं प्रचला सञ्ज्वलनचतुष्कं भयजुगुप्से नाम्नो नवध्रुवबन्धिन्यो-ऽन्तरायपञ्चकं चेति त्रिंशदिति । "वा" इत्यादि, संहननषट्केऽन्यतरत्संहननमङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतराङ्गोपाङ्गं स्वरद्वयेऽन्यतरत्स्वरं खगतिद्वयेऽन्यतरां खगतिं विकल्पेन बध्नाति, एकेन्द्रियप्रायोग्यबन्धकाले तेनासां प्रकृतीनामबध्यमानत्वाद् द्वीन्द्रियादिप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले च बध्यमानत्वात् । "अण्णयरा" इत्यादि, उक्तातिरिक्तप्रकृतिवृन्देषु प्रत्येकमन्यतरप्रकृतिं नियमेन बध्नाति, हेतोरवगतिश्चतुर्थनियमेन कार्या । तानि चेमानि शेषप्रकृतिवृन्दानि—वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं गतिचतुष्कं जातिपञ्चकमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयं संस्थानषट्कमानुपूर्वीचतुष्कं स्वरवर्जत्रसस्थावरादियुगलनवकं गोत्रद्वयं चेति । "एमेव" इत्यादि, प्रचलाप्रकृतेः प्राधान्येन सन्निकर्षो निद्राप्रधानसन्निकर्षवद् भवति ।।५०७ ८।।

साम्प्रतं स्त्यानर्द्धित्रिकस्याऽनन्तानुबन्धिचतुष्कस्य च परस्थानसन्निकर्षं निरूपयितुमाह

थीणद्धितिगअणचउगबंधी बंधइ व मिच्छचउआऊ ।
परघाऊसासायवदुगाणि णियमाऽण्णधुवबंधी ।।५०९।।
तित्थाहारदुगाणि ण बंधइ संघयणुवंगसरखगई ।
वाऽण्णयरा णियमाऽण्णा अण्णयरा चेअणीआई ।।५१०।।

(प्रे०) "थीणद्धि" इत्यादि, स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कप्रकृतिबन्धको मिथ्यात्वमोहनीयायुष्कचतुष्कपराघातोच्छ्वासातपोद्योतरूपा नव प्रकृतीर्विकल्पतो बध्नाति । तद्यथा-प्रकृतप्रकृतिबन्धकः प्रथमगुणस्थाने वर्तते तदा मिथ्यात्वमोहनीयं बध्नाति द्वितीयगुणस्थानके तु नैव बध्नाति, अपर्याप्तप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले आतपोद्योतनाम्नी पराघातोच्छ्वासनाम्नी च नैव बध्नाति, पर्याप्तबादरैकेन्द्रियप्रायोग्यबन्धकाले चातपनाम पर्याप्तैकेन्द्रियादिबन्धकाले चोद्योतनाम कश्चित्प्रकृतप्रकृतिबन्धको बध्नाति, पर्याप्तप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले च पराघातोच्छ्वासनाम्नी बध्नाति, आयुषो बन्धस्य तु सर्वत्र कादाचित्कत्वान्न नियमेन बन्धः, तस्मादासां प्रकृतीनां सन्निकर्षो विकल्पतोऽभिहितः । "णियमा" इत्यादि, उक्तशेषध्रुवबन्धिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, हेतुरत्र प्रथमनियमेन भाव्यः । "तित्थाहार" इत्यादि, जिननामाहारकद्विकप्रकृतित्रयं नैव बध्नाति, स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कप्रकृतिभिः सहासां बन्धस्य विरोधात् , विरोधश्च जिननाम्नो बन्धस्य तुर्यादिगुणस्थानकेषु आहारकद्विकस्य चाऽप्रमत्तादिसंयतस्यैव भावात् स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिप्रकृतीनां

च द्वितीयगुणस्थानकान्त एव बन्धविच्छेदाद् विज्ञेयः। "संघयण" इत्यादि, अन्यतरत्संहननमन्यतरदङ्गोपाङ्गमन्यतरत्स्वरमन्यतरां च खगतिं विकल्पेन बध्नाति, अत्र हेतुस्तृतीयनियमस्य प्रथमांशेन विज्ञेयः। "णियमा" इत्यादि, उक्तशेषवेदनीयादिप्रकृतिव्रजेषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं नियमेन बध्नाति, भावना पुनरत्र चतुर्थनियमेन भाव्या। तानि चेमानि प्रकृतिव्रजानि—वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं गतिचतुष्कं जातिपञ्चकमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयं संस्थानषट्कमानुपूर्वीचतुष्कं स्वरवर्जत्रसस्थावरादियुगलनवकं गोत्रद्विकं चेति ॥५०९, ५१०॥

इदानीं सातवेदनीयस्य परस्थानसन्निकर्षमाह

बंधइ ण सायबंधी असायणारगतिगाणि सगवण्णा।
धुवबंधिआइगा वा तह वाऽण्णयरा वि जुगलाई ॥५११॥

(प्रे०) "बंधइ" इत्यादि, सातवेदनीयस्य बन्धकोऽसातवेदनीयनरकत्रिकप्रकृतीर्नैव बध्नाति, यतः सातवेदनीयस्य बन्धेन सहाऽसातवेदनीयस्य परावर्तमानतया बध्यमानत्वेन विरोधोऽस्ति, तथा सातवेदनीयबन्धकस्य नरकत्रिकबन्धप्रायोग्यपरिणामाभावोऽस्ति। तथा सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृत्यातपोद्योतपराघातोच्छ्वासजिननामाहारकद्विकनरकायुर्वर्जायुस्त्रयरूपाः सप्तपञ्चाशत्प्रकृतीस्तथा शेषप्रकृतिवृन्देष्वन्यतरहास्यादियुगलादिप्रकृतीरपि विकल्पेन बध्नाति, यत उपशान्तमोहादिगुणस्थानेषु सातवेदनीयवर्जसर्वशेषप्रकृतीनां बन्धाभावः, अन्यत्र तु यथासंभवं शेषध्रुवाध्रुवप्रकृतीनां बन्धभाव इति, शेषप्रकृतिवृन्दानि चेमानि-हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं नरकगतिवर्जगतित्रयं जातिपञ्चकमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयं संहननषट्कं संस्थानषट्कं नरकानुपूर्वीवर्जानुपूर्वीत्रयं खगतिद्वयं त्रसस्थावरादियुगलदशकं गोत्रद्वयं चेति ॥५११॥

सम्प्रत्यसातवेदनीयस्याऽरतिशोकाऽस्थिरादिप्रकृतीनां च प्रकृतं भणति

बंधइ असायबंधी वा थीणद्धितिगबारसकसाया।
मिच्छाउगतिगजिणपरघाऊसासायवदुगाणि ॥५१२॥
णियमाऽण्णा धुवबंधी णो सायाहारदुगसुराऊणि।
बंधइ अण्णयराविं व संघयणउवंगसरखगई ॥५१३॥
अट्ठारस अण्णयरा णियमा बंधेइ सेसवेआई।
एमेव हवेज्ज अरइसोगअथिरअसुहअजसाणं ॥५१४॥

(प्रे०) "बंधइ" इत्यादि, असातवेदनीयबन्धकः स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयदेवायुर्वर्जायुष्कत्रयजिननामपराघातोच्छ्वासातपोद्योतरूपाश्चतुर्विंशतिप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, भावना पुनरिह ध्रुवाणां द्वितीयनियमेन तथा शेषाणां तृतीयनियमस्य द्वितीयतृतीयांशाभ्यां यथायोगं कार्या। "णियमा" इत्यादि, उक्तशेषैकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, शेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनां पञ्चदशानाम्(?)ऽसातवेदनीयबन्ध-

विच्छेदादूर्ध्वमपि प्रवर्तनात् । "णो" इत्यादि, सातवेदनीयाहारकद्विकदेवायुष्करूपाश्चतस्रः प्रकृतीर्नैव बध्नाति, तद्यथा—साताऽसातवेदनीयप्रकृत्योः परावर्तमानतया बध्यमानत्वेनैकस्या बन्धेऽपरस्या बन्धाभाव इति नियमेनासातवेदनीयबन्धकः सातवेदनीयं नैव बध्नाति, असातवेदनीयं प्रमत्तसंयतगुणस्थानं यावदेव बध्यते तद्वाहारकद्विकमप्रमत्तसंयतगुणस्थानाद्यपूर्वकरणगुणस्थानषष्ठभागपर्यन्तं च बध्यते, अतोऽसातवेदनीयबन्धकस्याहारकद्विकबन्धानवसरः । असातवेदनीयबन्धप्रायोग्यपरिणामस्य देवायुर्बन्धाप्रायोग्यत्वेनाऽसातवेदनीयबन्धविधायी देवायुर्नैव बध्नाति । "बंधइ"इत्यादि, अन्यतरत्संहननमन्यतरदङ्गोपाङ्गमन्यतरत्स्वरमन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति, हेतुरत्र तृतीयनियमस्य प्रथमांशेन भावनीयः । "अट्ठारस" इत्यादि, उक्तातिरिक्तप्रकृतिव्रजेषु प्रत्येकमन्यतरा अष्टादशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, चतुर्थनियमेन भावना भाव्या । तानि चेमानि शेषप्रकृतिव्रजानि-वेदत्रयं हास्यादियुगलद्वयं गतिचतुष्कं जातिपञ्चकमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयं संस्थानषट्कमानुपूर्वीचतुष्कं स्वरवर्जत्रसस्थावरादियुगलनवकं गोत्रद्विकं चेति । "एमेव" इत्यादि, अरतिशोकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिनाम्ना प्राधान्येन सन्निकर्षोऽसातवेदनीयप्रधानसन्निकर्षवदेव भवति । नवरमरतिशोकयोरन्यतरप्रकृतेर्बन्धकस्तदन्यस्याः प्रकृतेर्नियमेन बन्धकः, हास्यरत्योस्त्वबन्धक एव ॥५१२-१४॥

इदानीमप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्ककषायाणां प्रकृतसन्निकर्षं प्रतिपादयन्नाह—

मज्झऽट्ठकसायाणं थीणद्धितिगव्व णवरि बंधइ वा ।
थीणद्धितिगाणजिणा दुइअकसाया वि वा तइअवधो ॥५१५॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'मज्झ' इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपाणामष्टमध्यमकषायाणां प्रधानभावेन सन्निकर्षः स्त्यानर्द्धित्रिकप्रधानसन्निकर्षवद् विज्ञेयः । 'णवरि' इत्यादिना विशेषं दर्शयति, तद्यथा—स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कजिननामप्रकृतीर्मध्यमाष्टकषायबन्धको विकल्पेन बध्नाति, प्रत्याख्यानावरणचतुष्कबन्धकोऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कं विकल्पेन बध्नाति । विकल्पेन बन्धस्त्वेवम्—मध्यमाष्टकषायबन्धकः प्रथमद्वितीयगुणस्थानयोर्वर्तते तदा स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कमनवरतं बध्नाति, तृतीयादिगुणस्थानकेषु च नैव बध्नाति । कश्चित्तद्बन्धार्हो जीवोऽप्रत्याख्यानावरणबन्धकश्चतुर्थगुणस्थानके प्रत्याख्यानावरणचतुष्कबन्धकश्च चतुर्थपञ्चमगुणस्थानकयोर्जिननाम बध्नाति न तु प्रथमादिगुणस्थानत्रये । तथा प्रत्याख्यानावरणचतुष्कबन्धकः प्रथमादिगुणस्थानचतुष्केऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कं बध्नाति, न तु पञ्चमगुणस्थानक इति कृत्वाऽऽसां प्रकृतीनां सन्निकर्षो विकल्पतयैव प्राप्यत इति ॥५१५॥

इदानीं सञ्ज्वलनकषायचतुष्कस्य स प्रतिपाद्यते

संजलणकोहबंधी आवरणणवगतिसंजलणविग्घा ।
णियमा बधइ अण्णयरवेअणीयजसअजसगोआणि ॥५१६॥ (गीतिः)

वाऽण्णधुवबंधिआई तह अण्णयरा वि सेसजुगलाई ।
चरमसयाईणेवं णवरि कमा वेददुतिगसंजलणा ॥५१७॥　　(गीतिः)

(प्रे०) 'संजलण' इत्यादि, सञ्ज्वलनक्रोधस्य बन्धको ज्ञानावरणपञ्चकं चक्षुरादिदर्शनावरणचतुष्कं सञ्ज्वलनमानमायालोभत्रयमन्तरायपञ्चकं चेति सप्तदशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, सञ्ज्वलनक्रोधबन्धविच्छेदानन्तरमासां बन्धविच्छेदस्य भवनात् । 'अण्णयर' इत्यादि, अन्यतरवेदनीयं यशःकीर्त्ययशःकीर्तिद्वयेऽन्यतरप्रकृतिमन्यतरच्च गोत्रं विकल्पेन बध्नाति । 'ऽण्णधुवबंधि' इत्यादि, उक्तातिरिक्तध्रुवबन्धिप्रकृतीः पराघातोच्छ्वासातपोद्योताहारकद्विकजिननामायुष्कचतुष्करूपास्तथाऽभिहितेतरप्रकृतिव्रातेषु प्रत्येकमन्यतरामपि प्रकृतिं विकल्पेन बध्नाति, ताश्चेमाः शेषध्रुवबन्धिप्रकृतयः-स्त्यानर्द्धित्रिकं निद्राद्विकं मिथ्यात्वमोहनीयमनन्तानुबन्धिचतुष्कप्रभृतिद्वादशकषाया भयकुत्से नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयश्चेत्येकोनत्रिंशदिति । तथा शेषप्रकृतिव्राताश्चैते—हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं गतिचतुष्कं जातिपञ्चकमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयं संहननषट्कं संस्थानषट्कमानुपूर्वीचतुष्कं खगतिद्वयं यशःकीर्तियुगलवर्जत्रसस्थावरादियुगलनवकं चेति । भावना पुनरिहैवम्—सञ्ज्वलनक्रोधस्य बन्धः शेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनामन्यतराध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च बन्धविच्छेदस्थानादूर्ध्वमपि जायते, अत आसां प्रकृतीनां बन्धं तद्बन्धस्थानं यावदनवरतं सञ्ज्वलनक्रोधबन्धविधायी विदधाति, तदूर्ध्वं गुणस्थानकेषु नैव तद्बन्धं विदधातीति हेतोरासां प्रकृतीनां सञ्ज्वलनक्रोधेन सह सन्निकर्षो विकल्पतया लभ्यते, आतपोद्योताहारकद्विकजिननामप्रकृतीनामायुष्कचतुष्कस्य च तु भावना तृतीयनियमस्य द्वितीयांशेन कार्या, पराघातोच्छ्वासयोश्च तृतीयांशेन कार्या । 'चरम' इत्यादि, सञ्ज्वलनमानमायालोभप्रकृतित्रयप्रधानसन्निकर्षः सञ्ज्वलनक्रोधप्रधानसन्निकर्षवद् विज्ञेयः । 'णवरि' इत्यादिनाऽपवादपदमुपदर्श्यते—सञ्ज्वलनमानबन्धकः सञ्ज्वलनक्रोधं, सञ्ज्वलनमायाबन्धकः सञ्ज्वलनक्रोधमानौ, सञ्ज्वलनलोभबन्धकः सञ्ज्वलनक्रोधमानमायाप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । तत्पुनरेवम्—सञ्ज्वलनक्रोधस्य बन्धविच्छेदानन्तरमपि संज्वलनमानस्य बन्धो जायते तस्मात्तद्बन्धस्थानं यावत् सञ्ज्वलनक्रोधं संज्वलनमानबन्धविधायी बध्नाति, तदूर्ध्वं तु नैव बध्नाति, एवमुत्तरत्राऽपि भावना कार्या ॥५१६-१७॥

अथ भयकुत्सयोस्तमाह ।

भयबंधो णियमाओ णवावरणविग्घसंजलणकुच्छा ।
बंधइ वा अडवीसा सेसा धुवबंधिआईओ　　॥५१८॥
णियमाऽण्णयरा जसियरवेअजुगलवेअणीअगोआण ।
वाऽण्णयरा गइआई सेसा एमेव कुच्छाए　　॥५१९॥

(प्रे०) 'भयबंधो' इत्यादि, भयमोहनीयबन्धको ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्काऽन्तरायपञ्चकसञ्ज्वलनचतुष्ककुत्सामोहनीयरूपा एकोनविंशतिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, अत्र प्रथमनियमेन

भावना कार्या । 'बंधइ' इत्यादि, मार्धगाथा कण्ठ्या, भावनाहेत्वादिकं संज्वलनक्रोधप्रकृतिवत्कार्यमिति । नवरमत्र वेदत्रयस्यान्यतमवेदस्यान्यतरयुगलस्य च नियमेन बन्धो वक्तव्य इति विशेषः, यतो भयबन्धविच्छेदानन्तरं पुरुषवेदस्य बन्धविच्छेदः, हास्यरत्योर्मैथुनेन समं बन्धविच्छेद इति । 'एमेव' इत्यादि, जुगुप्सामोहनीयप्रधानसन्निकर्षो भयमोहनीयप्रधानसन्निकर्षवद् वेदितव्यः ॥५१८-१९॥

साम्प्रत हास्यरत्योः परस्थानसन्निकर्षमाह

रइहस्सजुगलबंधी णेव अरइसोगणिरयतिगपयडी ।
णियमा आवरणणवगभयकुच्छासजलणविग्धा ॥५२०॥
वाऽण्णधुवबधिआई सगतीसाऽण्णयरवेअणीआई ।
णियमा चउरो वंधइ वाऽण्णयरा सेसगइआई ॥५२१॥

(प्रे०) 'रइहस्स' इत्यादि, हास्यरतियुगलस्य बन्धकोऽरतिशोकनरकत्रिकरूपाः पञ्चप्रकृतीर्नैव बध्नाति । तद्यथा—हास्यरतिशोकारतियुगलद्वयस्य परावर्तमानतया बध्यमानत्वेनैकतरयुगलस्य बन्धेऽपरस्य बन्धाभावोऽस्ति तथा हास्यरतिबन्धप्रायोग्यपरिणामस्य नरकत्रिकबन्धानर्हत्वान्नरकत्रिकं हास्यरतिबन्धको नैव बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कभयकुत्सासञ्ज्वलनचतुष्काऽन्तरायपञ्चकरूपा विंशतिप्रकृतीर्नियमतो बध्नाति, आसां ध्रुवबन्धित्वे सति हास्यरतियुगलबन्धविच्छेदेन सह भयकुत्साबन्धविच्छेदस्य शेषाणां पुनस्तयोर्बन्धविच्छेदादूर्ध्वं बन्धविच्छेदस्य भावादिति । 'वा' इत्यादि, उक्तशेषध्रुवबन्धिप्रभृतिसप्तत्रिंशत्प्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, ताश्चेमाः—स्त्यानर्द्धित्रिकं निद्राद्विकं मिथ्यात्वमोहनीयमनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकषाया नाम्नो नवध्रुवबन्धिप्रकृतयः पराघातोच्छ्वासातपोद्योतजिननामाहारकद्विकनरकायुर्वर्जायुस्त्रिकप्रकृतयश्चेति । भावना पुनरत्र ध्रुवाणां द्वितीयनियमेन पराघातोच्छ्वासयोस्तृतीयनियमस्य तृतीयांशेन शेषाणां पुनर्द्वितीयांशेनाऽवगन्तव्या । "ऽण्णयर" इत्यादि, अन्यतरवेदनीयमन्यतरगोत्रं यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योरन्यतरां प्रकृतिं वेदत्रयेऽन्यतमवेदं च नियमेन बध्नाति, हेतुः पुनरिह चतुर्थनियमेन ज्ञेयः । 'वाऽण्णयरा' अभिहितशेषप्रकृतिवृन्देषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं विकल्पेन बध्नाति, प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धविच्छेदात्प्राग् बन्धविच्छेदादासां प्रकृतीनाम् , तानि चेमानि शेषप्रकृतिवृन्दानि---नरकवर्जगतित्रिकं जातिपञ्चकमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयं संहननषट्कं संस्थानषट्कं नरकवर्जानुपूर्वीत्रिकं खगतिद्वयं त्रसस्थावरादियुगलनवकं चेति ॥५२०-२१॥ अथ स्त्रीवेदस्य स उच्यते

मिच्छाउतिगुज्जोआ थीबंधी व ण जिणायवाणि तहा ।
वेआहारदुगणिरयतिगथावरजाइचउगाणि ॥५२२॥
णियमाऽण्णधुवपणिंदियपरघाऊसासतसचउक्काणि ।
वाऽण्णयर संघयण णियमाऽण्णयराऽण्णवेअणीआई ॥५२३॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'मिच्छा' इत्यादि, स्त्रीवेदबन्धको मिथ्यात्वमोहनीयं देवमनुष्यतिर्यगायुष्कत्रयमुद्योतनाम च विकल्पेन बध्नाति, भावना पुनरेवं कार्या—स्त्रीवेदबन्धकः प्रथमगुणस्थानके वर्तेत तदा मिथ्यात्वमोहनीयं बध्नाति, द्वितीयगुणस्थानके च नैव बध्नाति, उद्योतनाम देवमनुष्यप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले नैव बध्नाति, पर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रकृतिबन्धकाले कश्चिदेव बध्नाति न सर्वे स्त्रीवेदबन्धकाः, नरकायुर्वर्जायुष्कत्रयस्य विकल्पेन बन्धः पूर्ववद् विज्ञेयः। नरकायुर्वर्जनं चात्र स्त्रीवेदेन सह तद्बन्धविरोधादवसेयम्—विरोधश्च नपुंसकवेदेन सहैव तस्य बध्यमानत्वात्। 'ण' इत्यादि, जिननामातपनाम्नी पुरुषनपुंसकवेदाहारकद्विकनरकत्रिकस्थावरचतुष्कजातिचतुष्कप्रकृतीश्च नैव बध्नाति, स्त्रीवेदेन सहासां प्रकृतीनां बन्धस्य विरोधात्, विरोधश्चात्रानया रीत्या विज्ञेयः—जिननामचतुर्थादिगुणस्थानकेषु बध्यते आहारकद्विकं चाऽप्रमत्तसंयतगुणस्थानकाद्यपूर्वकरणगुणस्थानषष्ठभागपर्यन्तं बध्यते तर्हि स्त्रीवेदः प्रथमद्वितीयगुणस्थानयोरेव बध्यते। नरकत्रिकस्थावरचतुष्कजातिचतुष्काऽऽतपनामभिः सह नपुंसकवेद एव बध्यते, नापरः, एकतरवेदबन्धेऽपरवेदद्वयबन्धाभाव इति नियमात् स्त्रीवेदेन सह पुरुषनपुंसकवेदौ न बध्येते। 'णियमा' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयवर्जशेषपट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीः पञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपा सप्त प्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां ध्रुवबन्धित्वात् शेषाणां च प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धकस्य पर्याप्तपञ्चेन्द्रियप्रायोग्यबन्धकत्वेन प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धस्य तद्बन्धाऽविनाभावित्वात्। 'वा' इत्यादि, अन्यतरत्संहननं विकल्पेन बध्नाति, यतः स्त्रीवेदबन्धको देवप्रायोग्यप्रकृतीर्बध्नाति तदा संहननं नैव बध्नाति, यदा च तिर्यग्मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतीर्बध्नाति तदा तद् बध्नाति। 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषवेदनीयादिप्रकृतिसमुदायेषु प्रत्येकमन्यतरप्रकृतिं नियमेन बध्नाति, चतुर्थनियमेन भावना भाव्या, ते चेमे शेषप्रकृतिसमुदायाः—वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं नरकगतिवर्जगतित्रिकमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयं संस्थानषट्कं खगतिद्वयं नरकवर्जानुपूर्वीत्रिकं स्थिरास्थिरादियुगलषट्कं गोत्रद्वयं चेति ॥५२२-२३॥

अथ नपुंसकवेदस्य सन्निकर्षं निरूपयति

बंधइ ण णपुमबंधी वेआहारदुगजिणसुरतिगाणि।
व तिआउज्जोअयवदुगपरघाऊसासणामाणि ॥५२४॥
णियमा धुवबंधीओ वा संघयणदुखगसरखगई।
अण्णयरा अवि बंधइ णियमाऽण्णा वेअणीयाई ॥५२५॥

(प्रे०) 'बंधइ' इत्यादि, नपुंसकवेदबन्धकः स्त्रीपुरुषवेदद्वयाहारकद्विकजिननामदेवायुर्देवगतिदेवानुपूर्वीरूपा अष्टौ प्रकृतीर्नैव बध्नाति, नपुंसकवेदेन सहासां बन्धस्य विरोधात्, विरोधश्च स्त्रीवेदसन्निकर्षानुसारेण वेदद्वयाहारकद्विकजिननामप्रकृतीनां विज्ञेयः, देवत्रिकस्य च नपुंसकवेदेन

सह देवत्रिकेतरत्रिकाणामेव बध्यमानत्वाद् विज्ञेयः। 'व' इत्यादि, देवायुर्वर्जायुष्कत्रयातपोद्योतपराघातोच्छ्वासनामानि विकल्पेन बध्नाति, तत्र पराघातोच्छ्वासयोस्तृतीयनियमस्य तृतीयांशेन शेषाणां तद्द्वितीयांशेन भावना कार्या। 'णियमा' इत्यादि, सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, प्रथमनियमेन भावना विधेया। 'वा' इत्यादि, संहननषट्केऽन्यतरसंहननमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतरदङ्गोपाङ्गं स्वरद्वयेऽन्यतरस्वरं खगतिद्वयेऽन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति, एकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले तेनासामबध्यमानत्वाद् द्वीन्द्रियादिप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले च बध्यमानत्वात्। 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषवेदनीयादिप्रकृतिसमूहेषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं नियमेन बध्नाति, चतुर्थनियमेन हेतुरवसेयः। ते चेमे शेषवेदनीयादिप्रकृतिसमूहाः—वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं गतित्रिकं जातिपञ्चकमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयं संस्थानषट्कमानुपूर्वीत्रिकं स्वरद्वयवर्जत्रसस्थावरादियुगलनवकं गोत्रद्वयञ्चेति ॥५२४-२५॥

सम्प्रति पुरुषवेदस्य प्रकृतः प्रस्तूयते

णिरयतिगदुवेअायवथावरजाइचउगाणि पुमबंधी।
ण णियअ बंधइ णियमा णवावरणसजलणविग्घा ॥५२६॥
बंधइ णियमाऽण्णयरा वि वेअणीअजसजुगलगोआणं।
वाऽण्णधुवाइतिचत्ता वाऽण्णयरा सेसजुगलाई ॥५२७॥

(प्रे०) 'णिरय' इत्यादि, पुरुषवेदबन्धको नरकत्रिकस्त्रीनपुंसकवेदद्वयातपस्थावरचतुष्कजातिचतुष्करूपाश्चतुर्दशप्रकृतीर्नैव बध्नाति, भावना पुनरत्र स्त्रीवेदसन्निकर्षानुसारेण भाव्या। 'णियमा' इत्यादि, ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसञ्ज्वलनचतुष्काऽन्तरायपञ्चकरूपा अष्टादशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, आसां प्रकृतीनां ध्रुवबन्धित्वे सति पुरुषवेदबन्धविच्छेदानन्तरं बन्धविच्छेदादिति। 'बंधेइ' इत्यादि, अन्यतरद् वेदनीयं यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योरन्यतरां प्रकृतिमन्यतरगोत्रं च नियमेन बध्नाति, चतुर्थनियमेन भावना भाव्या। 'वा' इत्यादि, उक्तशेषध्रुवबन्ध्यादित्रिचत्वारिंशत्प्रकृतीनां बन्धं विकल्पेन करोति, ।'वाऽण्णयरा' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतिवृन्देषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं विकल्पेन बध्नाति, शेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनामन्यतरप्रकृतीनां च बन्धविच्छेदादूर्ध्वमपि पुरुषवेदस्य बन्धसत्त्वात्। ताश्चेमा एकोनत्रिंशत् शेषध्रुवबन्धिप्रकृतयश्चतुर्दशाध्रुवबन्धिप्रकृतयश्च-स्त्यानर्द्धित्रिकं निद्राद्विकं मिथ्यात्वमोहनीयमनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकषाया भयजुगुप्से नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयश्चेति तथाऽऽयुस्त्रयपञ्चेन्द्रियजात्याहारकद्विकपराघातोच्छ्वासोद्योतजिननामत्रसचतुष्करूपाश्चतुर्दशप्रकृतयश्चेति त्रिचत्वारिंशत् प्रकृतयः। तथा शेषप्रकृतिवृन्दानि चेमानि—हास्यादियुगलद्वयं नरकवर्जगतित्रिकमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयं संहननषट्कं संस्थानषट्कं नरकवर्जानुपूर्वीत्रिकं खगतिद्वयं स्थिरास्थिरादियुगलपञ्चकं चेति ॥५२६-५२७॥

णियमा धुवगुणचत्ता णरदुगतेसदुगपणिंदिपत्तेआ ।
बंधइ व मिच्छथीणद्धितिगअणजिणपरधायऊसासा ॥५३६॥ (गीतिः)
वाऽण्णयरा सरखगई णियमाऽण्णा-ऽण्णयरवेअणीआई ।
एव मणुयदुगस्स उ णवरं बंधइ व मणुयाउ ॥५३७॥

(प्रे०) "बंधइ" इत्यादि, मनुष्यायुष्कबन्धको नरकत्रिकतिर्यक्त्रिकदेवत्रिकाणि वैक्रियद्विकाहारकद्विकातपोद्योतस्थावरद्विकैकेन्द्रियादिजातिचतुष्कसाधारणनामानि चेति द्वाविंशतिप्रकृतीर्नैव बध्नाति, मनुष्यायुष्केण सहाऽमां प्रकृतीनां बन्धस्य विरुद्धत्वात् । "णियमा" इत्यादि, ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं निद्राद्विकमप्रत्याख्यानावरणादिद्वादशकषाया भयकुत्से नवनाम्नो ध्रुवबन्धिप्रकृतयोऽन्तरायपञ्चकं चेत्येकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीर्नरद्विकौदारिकद्विकत्रसद्विकपञ्चेन्द्रियजातिप्रत्येकनामानि च नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथमनियमेन भावना कार्या, शेषाणां तु मनुष्यायुष्कबन्धस्य तद्बन्धाऽविनाभावित्वात् । 'व' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कजिननामपराघातोच्छ्वासनामानि विकल्पतो बध्नाति । "वा" इत्यादि, अन्यतरत्स्वरमन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति । "णियमा" इत्यादि, उक्तान्यवेदनीयादिप्रकृतिव्रातेषु प्रत्येकमन्यतरप्रकृतिं नियमेन बध्नाति, अत्र स्थलत्रयेऽपि भावना ध्रुवबन्धिनीनां प्रथमनियमेन अन्यतरप्रकृतीना चतुर्थनियमेन शेषाणां पुनस्तृतीयनियमस्याशयथासंभवं विधेया । ते चेमे शेषप्रकृतिव्राताः—वेदनीयद्विकं वेदत्रिकं हास्यादियुगलद्वयं संहननषट्कं संस्थानषट्कं पर्याप्तापर्याप्तद्विकं स्वरवर्जस्थिरास्थिरादियुगलपञ्चकं गोत्रद्विकञ्चेति । "एवं" इत्यादि, मनुष्यगतिमनुष्यानुपूर्वीद्वयप्रधानसन्निकर्षो मनुष्यायुःप्रधानसन्निकर्षवदस्ति । "णवरं" इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति—मनुष्यायुर्विकल्पेन बध्नाति, स्वायुषस्तृतीयादि भागेऽप्यन्तर्मुहूर्तमात्रमायुषो बध्यमानत्वात् । ॥५३५ ६-७॥ अथ देवायुषस्तमभिदधाति-

देवाउगबंधी थीणद्धियतिगमिच्छबारसकसाया ।
तित्थाहारदुगाणि व णियमा थीपुरिसवेअमण्णयर ॥५३८॥ (गीति.)
सायरइहस्सियरधुवदेवविउव्वदुगपणिदिसुहखगई ।
परघूसासमुहागिइतसदसगुच्चाणि ण उ सेसा ॥५३९॥
एमेव सुरदुगस्स उ णवर वा णिद्दुगसुराऊणि ।
णियमाऽण्णयरा छ दुजुगलवेअणीअतिथिराइजुगलाणं ॥५४०॥ (गीति)

(प्रे०) 'देवाउगबंधो' इत्यादि, देवायुष्कबन्धकः स्त्यानर्द्धित्रिकमिथ्यात्वमोहनीयाऽनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकषायजिननामाहारकद्विकरूपा एकोनविंशतिप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, तत्र ध्रुवबन्धिनीनां द्वितीयनियमेन तथा जिननामाहारकद्विकप्रकृतीनां तृतीयनियमस्य द्वितीयांशेन भावना भाव्या । 'णियमा' इत्यादि, स्त्रीपुरुषवेदद्वयेऽन्यतरवेदं नियमेन बध्नाति । तथा सातवेदनीयं हास्यरती ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं निद्राद्विकं सञ्ज्वलनचतुष्कं भयकुत्से नव•

ध्रुवबन्धिनामानि अन्तरायपञ्चकं चेति एकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः, देवद्विकं वैक्रियद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिः सुखगतिः पराघातोच्छ्वासनाम्नी समचतुरस्रसंस्थानं त्रसदशकमुच्चैर्गोत्रं चेति चतुःपञ्चाशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथमनियमप्रसरात् तथा शेषप्रकृतीनां देवायुर्बन्धकस्य देवप्रायोग्यप्रकृतिस्थानबन्धकत्वेन देवायुर्बन्धस्य तद्बन्धाऽविनाभावित्वात् । 'ण उ' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीर्नैव बध्नाति । ताश्चेमाः-असातवेदनीयमरतिशोकमोहनीये नपुंसकवेदो नरकतिर्यग्मनुष्यगतित्रयमेकेन्द्रियादिजातिचतुष्कमौदारिकद्विकं संहननषट्कं द्वितीयादिसंस्थानपञ्चकं नरकतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीत्रयं कुखगतिः आतपोद्योतस्थावरदशकं नीचैर्गोत्रं चेत्येकत्रिंशदिति । 'एमेव' इत्यादि, देवगतिदेवानुपूर्वीप्रधानसन्निकर्षों देवायुर्वद् विज्ञेयः । **'णवर'** मित्यादिना विशेषोऽभिधीयते—निद्राद्विकदेवायुःप्रकृतित्रयं विकल्पेन बध्नाति, तद्यथा—देवद्विकं निद्राद्विकबन्धविच्छेदादूर्ध्वमपि बध्यते, अतो देवद्विकबन्धको निद्राद्विकं तद्बन्धस्थानं यावदनवरतं बध्नाति, तदनु च नैव बध्नातीति कृत्वाऽत्र विकल्पेन सन्निकर्षोऽभिहितः देवायुःसन्निकर्षस्य भावना प्राग्वत्कार्या । **'णियमा'** इत्यादि, हास्यादियुगलद्वयेऽन्यतरयुगलं वेदनीयद्वयेऽन्यतरद् वेदनीयं स्थिरास्थिरयोरन्यतरां प्रकृतिं शुभाशुभयोरन्यतरां प्रकृतिं यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योरन्यतरां प्रकृतिं च नियमेन बध्नाति, देवद्विकबन्धस्य तद्बन्धाऽविनाभावित्वात् ॥५३८ ३९-४०॥

अथ क्रमप्राप्तस्य नामकर्मसत्कोत्तरप्रकृतीनां परस्थानसंनिकर्षस्यावसरः । तत्र प्रथमं गतिनामकर्मणामसौ प्ररूपणीयस्तथापि तस्य तत्तदायुष्केण समप्रुक्तत्वादथ जातिनामकर्मणोऽवसरस्तत्रादावेकेन्द्रियजातेस्तत्समत्वेन स्थावरनाम्नोऽपि सोऽभिधीयते

णियमेगिंदियबंधी बंधइ धुवणपुमतिरिदुगाणि तहा ।
ओरालहुंडथावरदुहगाणादेयणीआणि ॥५४१॥
णियमाऽण्णयरा दुजुगलछब्बायराइ दुगवेअणीआणं ।
परघाऊसासायवदुगतिरियाऊणि व ण सेसा ॥५४२॥
एमेव थावरस्स य .... ।

(प्रे०) **'णियमे'** इत्यादि, एकेन्द्रियजातिनाम्नो बन्धकः सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतिनपुंसकवेदतिर्यग्द्विकौदारिकशरीरहुंडकसंस्थानस्थावरदुर्भगानादेयनीचैर्गोत्ररूपाः षट्पञ्चाशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । **'णियमा'** इत्यादि, वेदनीयद्वयहास्यादियुगलद्वयबादरसूक्ष्मद्वयपर्याप्ताऽपर्याप्तद्वयप्रत्येकसाधारणद्वयस्थिराऽस्थिरद्वयशुभाशुभद्वययशःकीर्त्ययशःकीर्तिद्वयेषु प्रत्येकमन्यतरप्रकृतिं नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथमनियमप्रसरात्, अन्यतरप्रकृतीनां चतुर्थनियमप्रसरात्, शेषाणां पुनरेकेन्द्रियजातिबन्धस्य तद्बन्धाविनाभावित्वात् । **'परघा'** इत्यादि, पराघातोच्छ्वासातपोद्योततिर्यगायूरूपाः पञ्चप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, भावना पुनरिह तृतीयनियमस्य द्वितीयतृतीयांशाभ्यां यथासंभवं कर्तव्या । **'ण'** इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीर्नैव बध्नाति, एकेन्द्रियजातिनाम्ना सहासां प्रकृ-

अथ मिथ्यात्वमोहनीयस्य परस्थानसन्निकर्षं प्ररूपयति

बंधेइ मिच्छबंधी णियमा छायालसेसधुवबंधी ।
वाऽऽउगचउगायवदुगपरघाऊसासणामाणि ॥५२८॥
तित्थाहारदुगाणि ण वा संघयणदुउवंगसरखगई ।
अण्णयरा अवि बंधइ णियमाऽण्णा वेअणीआई ॥५२९॥

(प्रे०) "बंधेइ" इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयप्रकृतिबन्धकः शेषषट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, अत्र प्रथमनियमेन हेतुरधिगम्यः । "वा" इत्यादि, आयुष्कचतुष्काऽऽतपोद्योतपराघातोच्छ्वासनामानि विकल्पतो बध्नाति, तथाहि–आयुश्चतुष्कं मिथ्यात्वमोहनीयप्रकृतिबन्धकः स्वायुषस्तृतीयादिभागे कदाचिद् बध्नाति, तदितरकाले च नैव बध्नाति, आतपोद्योतपराघातोच्छ्वासनामान्यपर्याप्तप्रायोग्यप्रकृतिबन्धावसरे नैव बध्नाति, पर्याप्तप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले च पराघातोच्छ्वासनाम्नी बध्नाति, पर्याप्तैकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले आतपनाम कश्चिद्बध्नाति, पर्याप्तैकेन्द्रियद्वीन्द्रियादिप्रकृतिबन्धकाले च कश्चिदुद्योतनाम बध्नाति, अतोऽत्रासां प्रकृतीनां सन्निकर्षो विकल्पितः । "तित्था" इत्यादि, जिननामाहारकद्विकप्रकृतित्रयं नैव बध्नाति, जिनस्य सम्यक्त्वप्रत्ययिकत्वेनाहारकद्विकस्य संयमप्रत्ययिकत्वेन मिथ्यात्वमोहनीयेन सहास्य प्रकृतित्रयस्य बन्धविरोधात् । "वा" इत्यादि, अन्यतरत्संहननमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गयोरन्यतरदङ्गोपाङ्गं स्वरद्वयेऽन्यतरत्स्वरं खगतिद्वयेऽन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति, एकेन्द्रियप्रायोग्यबन्धकाले तासामबध्यमानत्वाद् द्वीन्द्रियादिप्रायोग्यबन्धकाले च बध्यमानत्वात् । "णियमा" इत्यादि, उक्तशेषवेदनीयादिप्रकृतिव्रातेषु प्रत्येकमन्यतराः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, हेतुरत्र चतुर्थनियमेन भाव्यः, ते चेमे शेषप्रकृतिव्राताः–वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं गतिचतुष्कं जातिपञ्चकमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयं संस्थानषट्कमानुपूर्वीचतुष्कं स्वरवर्जत्रसस्थावरादियुगलनवकं गोत्रद्वयं चेति । ॥५२८-२९॥

इदानीं नरकायुष्कस्य परस्थानसंन्निकर्षं प्रतिपादयन्नाह

णिरयाउं बधंतो णियमा बंधइ असायधुववंधी ।
तह णपुमसोगअरई णिरयविउवदुगपणिंदिहुंडाणि ॥५३०॥ (गीतिः)
कुखगइपरघाऊसासतसचउगअथिरछक्कणीआणि ।
सेसा बधइ ण णिरयदुगस्स एव पर व णिरयाउ ॥५३१॥ (गीतिः)

(प्रे०) "णिरयाउं" इत्यादि, नरकायुर्बन्धकोऽसातवेदनीयसप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिनपुंसकवेदशोकाऽरतिनरकद्विकवैक्रियद्विकपञ्चेन्द्रियजातिहुंडकसंस्थानाऽशुभविहायोगतिपराघातोच्छ्वास-त्रसचतुष्काऽस्थिरषट्कनीचैर्गोत्ररूपा एकसप्ततिः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथमनियमप्रसरात् शेषाणां पुनः प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धस्य तद्बन्धाऽविनाभावित्वात् । "सेसा" इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीर्नैव बध्नाति, शेषप्रकृतीनां बन्धस्य नरकायुषा सह बन्धविरोधात् , तास्त्विमाः शेषप्रकृतयः–

सातवेदनीयं हास्यरती स्त्रीपुरुषवेदद्वयं देवमनुष्यतिर्यग्गतित्रयमेकेन्द्रियादिजातिचतुष्कमौदारिकद्विकमाहारकद्विकं संहननषट्कं प्रथमवर्जसंस्थानपञ्चकं नरकवर्जानुपूर्वीत्रिकं सुखगतिरातपोद्योतजिननामानि स्थिरषट्कं स्थावरचतुष्कमुच्चैर्गोत्रमायुश्चतुष्कं चेत्यष्टचत्वारिंशदिति । "णिरय" इत्यादि, नरकगतिनरकानुपूर्वीप्रधानसन्निकर्षो नरकायुःप्रधानसन्निकर्षवदस्ति । "णर" इत्यादिनाऽपवाद उच्यते–नरकायुर्नरकद्विकबन्धको विकल्पेन बध्नाति, यतः स्वायुषस्तृतीयादिभागे कदाचित्तद् बध्यते तदितरकाले च न ॥५३०-३१॥ अथ तिर्यगायुषः स उच्यते

तिरियाउ बंधतो मिच्छत्तोरालदुगणामाणि ।
परघाऊसासायवदुगणामाणि य व बंधेइ ॥५३२॥
सेसधुवबंधितिरिदुगउरालणीआणि बधए णियमा ।
ण जिणणिरयणरसुरतिगविउव्वाहारगदुगुच्चाणि ॥५३३॥
संघयणस्सरखगई वाऽण्णयरा सेसवेअणीआई ।
णियमा एमेव तिरियदुगस्स णवरं व तिरियाउ ॥५३४॥

(प्रे०) "तिरिआउ" इत्यादि, तिर्यगायुर्बन्धको मिथ्यात्वमोहनीयौदारिकाङ्गोपाङ्गपराघातोच्छ्वासातपोद्योतरूपाः षट्प्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, भावना पुनरेवम्–प्रथमगुणस्थानस्थितेन तिर्यगायुर्बन्धकेन मिथ्यात्वमोहनीयं बध्यते, द्वितीयगुणस्थानस्थितेन नैव बध्यत इतिकृत्वाऽत्र विकल्पोऽभिहितः, प्रकृतशेषप्रकृतिपञ्चकस्य भावना तृतीयनियमस्य प्रथमद्वितीयतृतीयांशानुसारेण कार्या । "सेस" इत्यादि, शेषपट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धितिर्यग्द्विकौदारिकशरीरनीचैर्गोत्ररूपाः पञ्चाशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथमनियमप्रसङ्गात्, शेषाणां पुनः प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धस्य तद्बन्धाऽविनाभावित्वात् । "ण" इत्यादि, जिननामनरकत्रिकनरत्रिकदेवत्रिकवैक्रियद्विकाहारकद्विकोच्चैर्गोत्ररूपाः पञ्चदशप्रकृतीर्नैव बध्नाति, आसां प्रकृतीनां बन्धस्य तिर्यगायुषा सह विरुद्धत्वात् । "संघयणा" इत्यादि, अन्यतमं संहननं स्वरद्वयेऽन्यतरत्स्वरं खगतिद्वयेऽन्यतरां खगतिं विकल्पेन बध्नाति, हेतुरत्र तृतीयनियमस्य प्रथमांशानुसारेण विज्ञेयः । "सेस" इत्यादि, उक्तशेषवेदनीयादिप्रकृतिव्रातेषु प्रत्येकमन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, इह चतुर्थनियमेन हेतुर्विभाव्यः, शेषप्रकृतिव्राताश्चेमे–वेदनीयद्विकं जातिपञ्चकं संस्थानषट्कं स्वरवर्जत्रसस्थावरनवकं वेदत्रयं हास्यादियुगलद्वयं चेति । "एमेव" इत्यादि, तिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्वीप्रधानसन्निकर्षस्तिर्यगायुःप्रधानसन्निकर्षवद् भवति । "णवर" इत्यादिनाऽपवादमुपदर्शयति–तिर्यगायुर्विकल्पेन बध्नाति, यतस्तिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्वीबन्धकः स्वायुषस्तृतीयादिभाग एवायुर्बध्नाति, न तदितरकाले । ॥५३२-३४॥ अधुना मनुष्यायुष्कस्य प्रकृत उच्यते

बधइ णराउबधी ण चेव निरयतिरिसुरतिगाणि तहा ।
विउव्वाहारायवथावरदुगचउजाइसाहारं ॥५३५॥

तीना बन्धस्य विरोधात् । ताश्चेमाः—स्त्रीपुरुषवेदद्वयमायुस्त्रयं देवनरकमनुष्यगतित्रयं द्वीन्द्रियादि-जातिचतुष्कमौदारिकाङ्गोपाङ्गं वैक्रियद्विकमाहारकद्विकं संहननषट्कं प्रथमादिसंस्थानपञ्चकं देवनरकमनुष्यानुपूर्वीत्रयं खगतिद्वयं जिननाम त्रसनाम सुभगनामादेयनाम स्वरद्वयमुच्चैर्गोत्रञ्चेति चत्वारिंशदिति । 'एवं' इत्यादि, अनेनैव प्रकारेण स्थावरनामप्रधानोऽपि सन्निकर्षो बोध्यः, विशेषाभावादिति । ।।५४१-४२।। अथ द्वीन्द्रियादित्रयस्य परस्थानसन्निकर्षो भण्यते ।

... .. — · णियमा खलु बधए विगलबंधी ।
अण्णयरा सत्त जुगलचउपज्जाइजुगवेअणीआण ।।५४३।। (गीति.)
णियमा धुवबंधिणपुमतिरियोरालतमजुगलहुंडाणि ।
छेवट्ठं पत्तेअं दुहगाणादेयणीआणि ।।५४४।।
तिरियाउगअसुहखगइसरउज्जोअपरघायऊसासा ।
वा बंधइ णो चिअ उण गुणयालीसाउ सेसाओ ।।५४५।।

(प्र०) 'णियमा' इत्यादि, द्वीन्द्रियादिजातित्रयेऽन्यतमां प्रकृतिं बध्नन् हास्यादियुगलद्वय-पर्याप्तापर्याप्तद्वयस्थिरास्थिरद्वयशुभाशुभद्वययशःकीर्त्ययशःकीर्तिद्वयवेदनीयद्वयेष्वन्यतमां प्रकृतिं नियमेन बध्नाति, चतुर्थनियमेन भावना भाव्या । 'णियमा' इत्यादि, सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृति-नपुंसकवेदतिर्यग्द्विकौदारिकद्विकत्रसचतुरस्रहुण्डकसंस्थानसेवार्तसंहननप्रत्येकनामदुर्भगानादेयनीचैर्गोत्र-रूपाः षष्टिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथमनियमप्रसङ्गात् शेषाणां तु प्रधानीकृतप्रकृति-बन्धस्य तद्बन्धाऽविनाभावित्वात् । 'तिरिया' इत्यादि, तिर्यगायुष्काऽशुभखगतिदुःस्वरोद्योत-पराघातोच्छ्वासनामानि विकल्पेन बध्नाति, अत्र तृतीयनियमस्य द्वितीयतृतीयांशाभ्यां यथासंभवं भावना भावनीया । 'णो चिअ' इत्यादि, उक्तशेषैकोनचत्वारिंशत्प्रकृतीर्नैव बध्नाति, विरोधात् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—स्त्रीपुरुषवेदद्वयं देवमनुष्यनरकगतित्रयमेकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजाति-द्वयं द्वीन्द्रियादित्रयेऽन्यतरजातिद्वयं वैक्रियद्विकमाहारकद्विकं प्रथमादिसंहननपञ्चकं प्रथमादिसंस्थानपञ्चकं देवनरकमनुष्यानुपूर्वीत्रयं सुखगतिः सुभगत्रिकं स्थावरसूक्ष्मसाधारणत्रयमातपनाम जिननामोच्चैर्गोत्रमायुस्त्रिकं चेति ।।५४३-४-५।।

अथ पञ्चेन्द्रियजातेः परस्थानसन्निकर्षः कथ्यते

व पणिदियबंधी पणणिद्दाबारसकसायचउआऊ ।
मिच्छाहारगदुगजिणपरघाऊसासउज्जोआ ।।५४६।।
सेसा धुवबंधी तसदुगपत्तेआणि बंधए णियमा ।
चउजाइआयवसुहमथावरसाहारणाणि ण उ ।।५४७।।
संघयणस्सरखगई वा अण्णयरा वि बंधए णियमा ।
सोलस उ वेअणीअप्पभिई सेसा उ अण्णयरा ।।५४८।।

(प्र०) 'व' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातिबन्धकः स्त्यानर्द्धित्रिकनिद्राद्विकाऽनन्तानुबन्धिप्रभृति-

...दशकषायाचतुष्कचतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयाहारकद्विकजिननामपराघातोच्छ्वासोद्योतनामानि विकल्पेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां द्वितीयनियमेन शेषाणां च तृतीयनियमस्य द्वितीयतृतीयांशाभ्यां यथायोग हेतुर्विभाव्यः । 'सेसा' इत्यादि, ज्ञानावरणपञ्चक दर्शनावरणचतुष्कं संज्वलनचतुष्क भयजुगुप्से नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयोऽन्तरायपञ्चकं चेत्येकोनत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीस्त्रसबादरप्रत्येकनामानि च नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथमनियमेन शेषाणां प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धस्य तद्बन्धाविनाभावित्वात् । 'चउ' इत्यादि, एकेन्द्रियादिजातिचतुष्कातपसूक्ष्मस्थावरसाधारणानि नैव बध्नाति, पञ्चेन्द्रियजातिनाम्ना सहासां प्रकृतीनां बन्धस्य विरोधात् । 'संघयण' इत्यादि ,अन्यतमत्संहननमन्यतरत्स्वरमन्यतरां च खगतिं विकल्पेन बध्नाति । तदेवम्–देवनरकगतिप्रायोग्यबन्धकः संहननं न बध्नाति, तदन्यः पुनर्बध्नाति, अपर्याप्तप्रायोग्यबन्धकः स्वरखगतिनाम्नी न बध्नाति, पर्याप्तप्रायोग्यबन्धकस्तु बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषवेदनीयप्रभृतिप्रकृतिवृन्देषु प्रत्येकमन्यतराः षोडशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, चतुर्थनियमेन हेतुरिह भाव्यः । तानि चेमानि शेषप्रकृतिवृन्दानि-वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं गतिचतुष्कमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वय संस्थानषट्कमानुपूर्वीचतुष्कं पर्याप्तापर्याप्ते स्थिरास्थिरे शुभाशुभे सुभग दुर्भगे आदेयानादेये यशःकीर्त्ययशःकीर्ती गोत्रद्वयं चेति ॥५४६ ७ ८॥

अधुनौदारिकशरीरनाम्नः सोऽभिधीयते -

> बंधइ व उरलबंधी थीणद्धितिगाणमिच्छआउदुगं ।
> ओरालुवगजिणपरघाऊसासायवदुगाणि ॥५४९॥
> णियमाऽण्णा धुवबंधी आहारदुगविउवदुगाणि ण उ ।
> संघयणस्सरखगई वा अण्णयरा वि णियमाऽण्णा ॥५५०॥

(प्रे०) 'बंधइ' इत्यादि, औदारिकशरीरनाम्नो बन्धकः स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयतिर्यग्मनुष्यायुष्कद्विकौदारिकाङ्गोपाङ्गजिननामपराघातोच्छ्वासातपोद्योतरूपा अष्टादशप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, भावनिका पुनरत्र ध्रुवाणां द्वितीयनियमेन शेषाणां यथासंभव तृतीयनियमस्यांशैर्ज्ञेया । 'णियमा' इत्यादि, ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कनिद्राद्विकाऽप्रत्याख्यानावरणादिद्वादशकषायभयजुगुप्सानवध्रुवबन्धिनामप्रकृत्यन्तरायपञ्चकरूपा एकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, प्रथमनियमप्रसरात् । 'आहार' इत्यादि, आहारकद्विकदेवत्रिकनरकत्रिकवैक्रियद्विकरूपा दशप्रकृतीर्नैव बध्नाति, औदारिकशरीरनाम्ना सहासां बन्धस्य विरुद्धत्वात् । 'संघयण' इत्यादि, अन्यतमं संहननमन्यतरत्स्वरमन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति, तृतीयनियमस्य द्वितीयांशेन भावनाऽत्र भाव्या । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतिवृन्देषु प्रत्येकमन्यतरप्रकृतिं नियमेन बध्नाति, चतुर्थनियमेन हेतुरिह भाव्यः, तानि चेमानि शेष-

प्रकृतिवृन्दानि-वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं तिर्यग्मनुष्यगतिद्विकं जातिपञ्चकं संस्थानषट्कं तिर्यङ्मनुष्यानुपूर्वीद्विकं स्वरवर्जत्रसस्थावरादियुगलनवकं गोत्रद्विकं चेति ॥५४९-५०॥

अथ वैक्रियद्विकस्य परस्थानसन्निकर्ष उच्यते

व विउव्वियदुगबंधी बंधइ पणणिद्दबारसकसाया ।
मिच्छणिरयदेवाउगतित्थाहारदुगणामाणि ॥५५१॥
बंधइ ण चेव तिरिणरतिगजाइचउगुरलायवदुगाणि ।
संघयणछगं मज्झिमआगिइथावरचउक्काणि ॥५५२॥
णियमाऽण्णधुवपणिंदियपरघाऊसासतसचउक्काणि ।
णियमा पणरस सेसा अण्णयरा वेअणीआई ॥५५३॥

(प्रे०) 'व' इत्यादि, वैक्रियशरीरवैक्रियाङ्गोपाङ्गयोर्बन्धकः स्त्यानर्द्धित्रिकनिद्राद्विकाऽनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकषायमिथ्यात्वमोहनीयनरकायुर्देवायुस्तीर्थकृन्नामाहारकद्विकरूपास्त्रयोविंशतिप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, तत्र ध्रुवबन्धिनीनां द्वितीयनियमेन शेषाणां तु तृतीयनियमांशानुसारेण हेतुरत्र विभावनीयः । 'ण चेव' इत्यादि, तिर्यक्त्रिकमनुष्यत्रिकजातिचतुष्कौदारिकद्विकातपोद्योतसंहननषट्कमध्यमसंस्थानचतुष्कस्थावरचतुष्करूपा अष्टाविंशतिप्रकृतीर्नैव बध्नाति, वैक्रियद्विकेन सहासां बन्धस्य विरोधात्, विरोधश्चात्र देवायुःसन्निकर्षानुसारेण समधिगम्यः । 'णियमा' इत्यादि, ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसञ्ज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सानवध्रुवबन्धिनामप्रकृत्यन्तरायपञ्चकरूपा एकोनत्रिंशत्शेषध्रुवबन्धिप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजातिः पराघातोच्छ्वासनाम्नी त्रसचतुष्कं चेति षट्त्रिंशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथमनियमप्रसरात्, शेषाणां पुनः प्रधानीकृतप्रकृतीबन्धस्य तद्बन्धाऽविनाभावित्वात् । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतिव्रातेषु प्रत्येकं पञ्चदशाऽन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, चतुर्थनियमप्रसरात् । ते चेमे शेषप्रकृतिव्राताः–वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं देवनरकगतिद्वयं समचतुरस्रहुण्डकसंस्थानद्वयं खगतिद्वयं देवनरकानुपूर्वीद्वय स्थिरास्थिरादियुगलषट्क गोत्रद्वय चेति ॥५५१-२-३॥

साम्प्रतमाहारकशरीराङ्गोपाङ्गयोर्भण्यते–

आहारगतणुबंधी णियमा धुवऊणतीससायपुमा ।
हस्सरइसुरविउवदुगपणिंदिआहारुवंगाणि ॥५५४॥
तह सुखगइआगिइपरघाऊसासतसदसगउच्चाणि ।
णिद्दुगजिणसुराऊ वाऽण्णा णेव उवगस्स ॥५५५॥

(प्रे०) "आहार" इत्यादि, आहारकशरीरनाम्नो बन्धको ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं सञ्ज्वलनचतुष्कं भयकुत्से नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयोऽन्तरायपञ्चकं चेत्येकोनत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीः सातवेदनीयपुरुषवेदहास्यरतिसुरद्विकवैक्रियद्विकपञ्चेन्द्रियजातिनामाहारकाङ्गोपाङ्गनामानि सुखगतिसमचतुरस्रसंस्थानपराघातोच्छ्वासत्रसदशकोच्चैर्गोत्रप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां

प्रथमनियमप्रसरात्, शेषाणां पुनराहारकशरीरनामबन्धस्य तद्बन्धाऽविनाभावित्वात् । "णिद्द" इत्यादि, निद्राद्विकजिननामदेवायुःप्रकृतिचतुष्कं विकल्पेन बध्नाति । भावना पुनरिहैवम्–आहारकशरीरनाम्नो बन्धो निद्राद्विकबन्धविच्छेदस्थानादूर्ध्वमपि जायते, अतो निद्राद्विकं स्वबन्धस्थान यावदनवरतमाहारकशरीरनामबन्धको बध्नाति तदनन्तरं तु नैव बध्नातीति हेतोरत्र बन्धो विकल्पितः । जिननामदेवायुषोर्बन्धः केनचिदेव क्रियते अतोऽनयोर्बन्धो विकल्पितः । 'पण्णा' इत्यादि, अभिहितेतरप्रकृतीर्नैव बध्नाति, विरोधात् । स्त्यानर्द्धित्रिकमसातवेदनीयं शोकारती मिथ्यात्वमोहनीयमनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकषायाः स्त्रीनपुंसकवेदद्वयं नरकतिर्यग्मनुष्यायुष्कत्रय नरकतिर्यग्मनुष्यगतित्रयमेकेन्द्रियादिजातिचतुष्कमौदारिकद्विकं संहननषट्कं द्वितीयादिसंस्थानपञ्चकं नरकतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीत्रयं कुखगतिः स्थावरदशकमातपोद्योतनाम्नी नीचैर्गोत्रं चेत्येकषष्टिरिति ॥५५४-५५॥

अथ नवध्रुवबन्धिनाम्नां परस्थानसन्निकर्षं प्रतिपादयन्नाह

एगधुवणामबंधी वाऽऽयवपणिद्दबारसकसाया ।
मिच्छाहारगदुगजिणपरघाऊसासआयवदुगाणि ॥५५६॥   (गीति')
णियमाऽण्णा धुवबंधी वा सधयणदुउवगसरखगई ।
अण्णयरा अवि बंधइ णियमाऽऽणा वेअणीआई ॥५५७॥

(प्रे०) "एगधुव" इत्यादि, नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतिष्वेकतरां प्रकृतिं बध्नन्नायुष्कचतुष्कस्त्यानर्द्धित्रिकनिद्राद्विकाऽनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकषायमिथ्यात्वमोहनीयाहारकद्विकजिननाम--पराघातोच्छ्वासातपोद्योतरूपा नवविंशतिप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, हेतुस्तु द्वितीयतृतीयनियमानुसारेण योज्यः । "णियमा" इत्यादि, उक्तशेषध्रुवबन्धिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति प्रथमनियमेन हेतुरत्र विज्ञेयः, ताश्चेमाः-ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं सञ्ज्वलनचतुष्कं भयकुत्सेऽन्यतरा नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतिष्वष्टौ प्रकृतयोऽन्तरायपञ्चकं चेत्यष्टाविंशतिरिति । 'वा' इत्यादि, अन्यतमं संहननमन्यतरदङ्गोपाङ्गमन्यतरत् स्वरमन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति, तृतीयनियमप्रथमांशस्यात्र प्रसरात् । 'णियमा' इत्यादि, भणितशेषवेदनीयादिप्रकृतिवृन्देष्वन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, चतुर्थनियमस्यात्र प्रसरात् । तानि चेमानि–वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं गतिचतुष्कं जातिपञ्चकमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयं संस्थानषट्कमानुपूर्वीचतुष्कं स्वरवर्जत्रसस्थावरादियुगलनवकं गोत्रद्विकं चेति ॥५५६-५७॥

इदानीमौदारिकाङ्गोपाङ्गनाम्नः स कथ्यते

ओरालुवगबंधी बंधइ ण उ णिरयसुरतिगेगिंदी ।
विउवाहारदुगायवथावरसाहारसुहमाणि ॥५५८॥
वा बंधइ सरखगई अण्णयरा अवि व थीणगिद्धितिग ।
अणमिच्छआउदुगजिणपरघाऊसासउज्जोआ ॥५५९॥

णियमाऽण्णा धुवबंधी तह उरलपसत्थअवायरत्ताणि ।
बंधइ णियमा सेसा अण्णयरा वेअणीआई ॥५६०॥

(प्रे०) "ओराल" इत्यादि, औदारिकाङ्गोपाङ्गनाम्नो बन्धको नरकत्रिकदेवत्रिकैकेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकाहारकद्विकातपस्थावरसाधारणसूक्ष्मनामरूपाः पञ्चदशप्रकृतीर्नैव बध्नाति, तेन सहासां बन्धविरोधात् । 'वा' इत्यादि, अन्यतरत्स्वरमन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति । "अवि" इत्यादि, स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयतिर्यग्मनुष्यायुर्द्वयजिननामपराघातोच्छ्वासोद्योतनामानि विकल्पेन बध्नाति, उभयत्र हेतुर्यथासंभवं द्वितीयतृतीयनियमानुसारेण समधिगम्यः । "णियमा" इत्यादि, उदितशेषध्रुवबन्धिप्रकृतीरौदारिकशरीरत्रसप्रत्येकबादरनामानि च नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथमनियमप्रसरात् शेषाणां प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धस्य तद्बन्धाविनाभावित्वात् । ताश्चेमाः शेषध्रुवबन्धिप्रकृतयः-ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं निद्राद्विकमप्रत्याख्यानावरणादिद्वादशकषाया भयकुत्से नवध्रुवबन्धिनामान्यन्तरायपञ्चकं चेत्येकोनचत्वारिंशदिति । 'बधइ' इत्यादि, भणितशेषवेदनीयादिप्रकृतिव्रातेषु प्रत्येकमन्यतराः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, हेतुरत्र चतुर्थनियमेन भावनीयः । ते चेमे शेषप्रकृतिव्राताः-वेदनीयद्वयं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयं द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कं संहननपट्कं संस्थानपट्कमानुपूर्वीद्वयं पर्याप्तापर्याप्तद्विकं स्वरवर्जस्थिरास्थिरादियुगलपञ्चकं गोत्रद्वयं चेति ॥५५८-६०॥

अथ वज्रर्षभनाराचसंहनननाम्नस्तत्साम्येन द्वितीयादिसंहननसंस्थानचतुष्कयोरपि स उपदर्श्यते ।

व वइरबंधी मिच्छऽणथीणद्धितिगाउदुगजिणुज्जोआ ।
णियमाऽण्णधुवपणिंदियपरघूसासुरलजुगलतसचउगं ॥५६१॥ (गीति)
विउवडगाहारदुगायवथावरजाइचउगपडिवक्खा ।
ण उ बधइ णियमाऽण्णा अण्णयरा वेअणीआई ॥५६२॥
वइरव्व मज्झिमाण चउसंघयणागिईण होइ पर ।
ण जिण बधइ णियमा थीणद्धितिगाणचउगाणि ॥५६३॥

(प्रे०) 'व' इत्यादि, वज्रर्षभनाराचसंहनननाम्नो बन्धकः मिथ्यात्वमोहनीयाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कस्त्यानर्द्धित्रिकतिर्यग्मनुष्यायुष्कद्वयजिननामोद्योतरूपा द्वादशप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । भावना द्वितीयतृतीयनियमानुसारेण भाव्या । 'णियमा' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकवर्जशेषैकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीः पञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपा नवप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथमनियमप्रसरात्, शेषाणां प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धस्य तद्बन्धाविनाभावित्वात् । 'विउव' इत्यादि, देवत्रिकनरकत्रिकवैक्रियद्विकाहारकद्विकातपस्थावरचतुष्कैकेन्द्रियादिजातिचतुष्कद्वितीयादिसंहननपञ्चकरूपाश्चतुर्विंशतिप्रकृतीर्नैव बध्नाति, वज्रर्षभनाराचसंहनननाम्ना सहासां प्रकृतीनां बन्धस्य विरोधात् । 'णियमा' इत्यादि, कथितशेषवेदनीया-

दिप्रकृतिसमूहेषु प्रत्येकमन्यतराः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, चतुर्थनियमेन भावना कार्या । ते चेमे प्रकृतिसमूहाः–वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयं संस्थानपट्कं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयं खगतिद्वयं स्थिराऽस्थिरादियुगलषट्कं गोत्रद्वयं चेति । 'वइरन्त्र' इत्यादि, मध्यमसंहननचतुष्कमध्यमसंस्थानचतुष्कयोः प्राधान्येन सन्निकर्षो वज्रर्षभनाराचसंहननप्रधानसन्निकर्षवज्ज्ञेयः । 'परं'इत्यादिना विशेष उपदर्श्यते–जिननाम नैव बध्नाति, एतच्चतुष्काभ्यां जिननाम्नो बन्धस्य विरोधात् ,विरोधश्च जिननाम्नो बन्धस्य तुर्यादिगुणस्थानकेषु सद्भावात् द्वितीयगुणस्थानकान्ते च प्रकृतसंहननसंस्थानचतुष्कद्वयस्य बन्धविच्छेदादवसेयः । 'णियमा' इत्यादि, स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्करूपाः सप्तप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, प्रथमनियमप्रसरात् ॥५६१-२ ३॥

इदानीं सेवार्तसंहननस्य परस्थानसन्निकर्षमाह

छेवट्ठं बंधतो अण्णयरा बंधए व सरखगई ।
बधइ व तिरिणराउगपरघाऊसासउज्जोआ ॥५६४॥
बधइ ण णिरयसुरतिगविउवाहारदुगतित्थपडिवक्खा ।
एगिंदियायवसुहुमथावरसाहारणाइ च ॥५६५॥
णियमा धुवबंधिउरलदुगपत्तेयतसबायराइ तु ।
बंधइ णियमा सेसा अण्णयरा वेअणीआई ॥५६६॥

(प्र०) 'छेवट्ठं' इत्यादि, सेवार्तसंहननं बध्नन् स्वरद्वयेऽन्यतरत्स्वरं खगतिद्वये चान्यतरां खगतिं विकल्पतो बध्नाति । 'बधइ' इत्यादि, तिर्यग्नरायुर्द्वयपराघातोच्छ्वासोद्योतरूपाः पञ्चप्रकृतीर्विकल्पतो बध्नाति, तृतीयनियमाशेषयथायोगं भावना विधेया । 'बंधइ' इत्यादि, नरकत्रिकसुरत्रिकवैक्रियद्विकाहारकद्विकजिननामप्रथमादिसंहननपञ्चकैकेन्द्रियजात्यातपसूक्ष्मस्थावरसाधारणरूपा एकविंशतिप्रकृतीर्नैव बध्नाति, सेवार्तसंहननेन सहामीं बन्धस्य विरोधित्वात् । 'णियमा' इत्यादि, सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतय औदारिकद्विकप्रत्येकत्रसबादरनामानि चेति द्विपञ्चाशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथमनियमप्रसरात् , शेषाणां तु प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धस्य तद्बन्धाविनाभावात् । 'णियमा' इत्यादि, अभिहितेतरवेदनीयादिप्रकृतिव्रातेषु प्रत्येकमन्यतराः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति चतुर्थनियमप्रसरात्, इमे च ते शेषप्रकृतिव्राताः–वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयं द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कं संस्थानपट्कं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयं पर्याप्तापर्याप्ते स्थिराऽस्थिरे शुभाशुभे सुभगदुर्भगे आदेयानादेये यशःकीर्त्ययशःकीर्ती गोत्रद्वयं चेति॥५६४-५ ६॥

सम्प्रति समचतुरस्रसंस्थानस्य तत्समतया सुखगतिसुभगत्रिकप्रकृतीनां च परस्थानसंनिकर्षः प्रकाश्यते

पढमागिइबंधी वा बधइ पणणिद्दबारसकसाया ।
मिच्छतिरिणरसुराउगतित्थाहारदुगउज्जोआ॥५६७॥

णियमाऽण्णधुवपणिंदियपरघाऊसासतसचउक्काणि ।
णायवपडिवक्खणिरयतिगथावरजाइचउगाणि ॥५६८॥
संघयण वाऽण्णयरं णियमाऽण्णयराऽण्णवेअणीआई ।
एमेव सण्णियासो पसत्थखगइसुहगतिगाणं ॥५६९॥

(प्रे०) 'पढमा' इत्यादि, समचतुरस्रसंस्थाननाम्नो बन्धकः निद्राद्विकस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकषाय मिथ्यात्वमोहनीयतिर्यगायुर्नरायुःसुरायुर्जिननामाहारकद्विकोद्योतनामरूपाः पञ्चविंशतिप्रकृतीर्विकल्पतो बध्नाति, दर्शितद्वितीयतृतीयनियमानुसारेण भावना कार्या । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषैकोनत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतिपञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपाः षट्त्रिंशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथमनियमप्रसरात् शेषाणां पुनः प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धस्य तद्बन्धाऽविनाभावित्वात् । ताश्चेमाः शेषध्रुवबन्धिप्रकृतयः—ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं सञ्ज्वलनचतुष्कं भयकुत्से नवनाम्नो ध्रुवबन्धिप्रकृतयोऽन्तरायपञ्चकं चेत्येकोनत्रिंशदिति । 'णायव' इत्यादि, आतपनामद्वितीयादिसंस्थानपञ्चकनरकत्रिकस्थावरचतुष्कजातिचतुष्करूपाः सप्तदशप्रकृतीर्नैव बध्नाति, समचतुरस्रसंस्थानप्रकृत्या सहासां बन्धस्य विरुद्धत्वात् । 'संघयणं' इत्यादि, अन्यतमसंहननं विकल्पेन बध्नाति तिर्यग्मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले तस्य बध्यमानत्वाद् देवप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले चाऽबध्यमानत्वात् । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषवेदनीयादिप्रकृतिसमुदायेषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं नियमेन बध्नाति, चतुर्थनियमप्रसरात् , ते चेमे शेषप्रकृतिसमुदायाः—वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वय वेदत्रय गतित्रयमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वय खगतिद्वयं नरकवर्जानुपूर्वीत्रयं स्थिरषट्कमस्थिरषट्कं गोत्रद्वयं चेति । "एमेव" इत्यादि, सुखगतिसुभगसुस्वरादेयनाम्ना प्राधान्येन सन्निकर्षः समचतुरस्रसंस्थानवदवसातव्यः । नवरं स्वप्रतिपक्षप्रकृतीनामबन्धस्तथा संस्थानषट्केऽन्यतमसंस्थानस्य नियमेन बन्धो वाच्यः ॥५६७-८ ९॥

अथ हुण्डकसंस्थाननाम्नः परस्थानसन्निकर्षमावेदयितुमाह

हुंडगबंधो बंधइ णियमा धुवबंधिसत्तचत्ताओ ।
बंधइ व आउतिगपरघाऊसासायवदुगाणि ॥५७०॥
देवतिगाहारगदुगजिणपडिवक्खा ण बंधएऽण्णयरा ।
सरसंघयणउवगखगई व णियमाऽण्णवेअणीआई ॥५७१॥ (गीति)

(प्रे०) 'हुंडग' इत्यादि, हुण्डकसंस्थानबन्धकः सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, प्रथमनियमप्रसरात् । 'बंधइ व' इत्यादि, नरकतिर्यग्मनुष्यायुष्कत्रयपराघातोच्छ्वासातपोद्योतरूपाः सप्तप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, हेतुरिह तृतीयनियमानुसारेण विभावनीयः । 'देव' इत्यादि, देवायुर्देवगतिदेवानुपूर्वीरूपं देवत्रिकमाहारकद्विकं जिननाम हुण्डकसंस्थानप्रतिपक्षभूताः प्रथमादिपञ्चसंस्थानप्रकृतयश्चेत्येकादशप्रकृतीर्नैव बध्नाति, हुण्डसंस्थाननाम्ना सहासां बन्धस्य विरोधात् ।

'ऽण्णयरं' इत्यादि, अन्यतरत्स्वरमन्यतमं संहननमन्यतरदङ्गोपाङ्गमन्यतरां च खगतिं विकल्पतो बध्नाति, एकेन्द्रियप्रायोग्यबन्धकालेऽबध्यमानत्वात् द्वीन्द्रियादिप्रायोग्यबन्धकाले च बध्यमानत्वात् । 'णियमा' इत्यादि उक्तशेषप्रकृतिव्रातेषु प्रत्येकमन्यतरप्रकृतिं नियमेन बध्नाति, हेतुरत्र चतुर्थनियमेनाऽवसेयः । ते चेमे शेषप्रकृतिव्राताः—वेदनीयद्वयं हास्यादियुगलद्वय वेदत्रयं देवगतिवर्जगतित्रयं जातिपञ्चकं शरीरद्वयमानुपूर्वीत्रयं स्वरवर्जत्रसस्थावरादियुगलनवकं गोत्रद्वयं चेति ॥५७० ७१॥

अथाऽशुभखगतिनाम्नस्तत्समत्वेन दुःस्वरनाम्नश्च परस्थानसन्निकर्षः प्ररूप्यते

अपसत्थखगइबंधी ण चेव बंधेइ सुरतिगेगिंदी ।
आहारदुगजिणायवथावरचउगसुहखगईओ ॥५७२॥
मिच्छत्तुज्जोअणिरयतिरियणराऊ व बंधए णियमा ।
छायालसेसधुवपरघाऊसासतसचउगाणि ॥५७३॥
संघयणं वाऽण्णयरं बंधइ अण्णयरवेअणीआई ।
सेसा णियमा बंधइ विण्णेयो दुस्सरस्सेव ॥५७४॥

(प्रे०) 'अपसत्थ' इत्यादि, अप्रशस्तविहायोगतिनाम्नो बन्धको देवत्रिकैकेन्द्रियजातिनामाहारकद्विकजिननामातपस्थावरचतुष्कशुभखगतिरूपास्त्रयोदशप्रकृतीर्नैव बध्नाति, कुखगतिनाम्ना सहासां बन्धस्य विरोधात् । 'मिच्छत्तु' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयोद्योतनरकतिर्यग्मनुष्यायुष्कत्रयरूपाः पञ्चप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, तत्र मिथ्यात्वस्य द्वितीयनियमेन शेषाणां च तृतीयनियमस्य द्वितीयांशेन भावना कार्या । 'णियमा' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयवर्जषट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीः पराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपाः षट्प्रकृतीश्च नियमतया बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथमनियमप्रसरात् , शेषाणां पुनः प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धकस्य पर्याप्तद्वीन्द्रियादिप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वेन प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धस्य तद्बन्धाऽविनाभावित्वात् । 'संघयणं' इत्यादि, अन्यतमं संहननं विकल्पतो बध्नाति, यतो नरकप्रायोग्यबन्धकः संहननं न बध्नाति तदितरगतिबन्धकस्तु तद् बध्नाति । 'अण्णयरं' इत्यादि, उक्तशेषवेदनीयादिप्रकृतिव्रातेषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं नियमतो बध्नाति, चतुर्थनियमेन हेतुरत्र ज्ञेयः । ते चेमे प्रकृतिव्राताः—वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं देववर्जगतित्रयमानुपूर्वीत्रयमौदारिकवैक्रियशरीरद्वय तदङ्गोपाङ्गद्वयं द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कं संस्थानषट्कं स्थिरास्थिरादियुगलषट्कं गोत्रद्वयं चेति । 'विण्णेया' इत्यादि, दुःस्वरनामप्रधानसन्निकर्षोऽशुभखगतिवद् विज्ञेयः॥५७२-३-४॥

अधुना पराघातनाम्नस्तत्समतया पर्याप्तोच्छ्वासनाम्नश्च परस्थानसन्निकर्षः प्रोच्यते

परघायं बंधतो वा बंधइ मिच्छबारसकसाया ।
पणणिद्दाचउआउगतित्थाहारायवदुगाणि ॥५७५॥
बंधइ ण अपज्जत्तं णियमा सेसधुवपज्जऊसासा ।
दुववंगसंघयणसरखगई **बंधइ** व अण्णयरा ॥५७६॥

बधइ णियमाऽट्ठारस सेसा अण्णयरवेअणीआई ।
एमेव सण्णियासो पज्जत्तूसासणामाण ॥५७७॥

(प्रे०) 'परघायं' इत्यादि, पराघातनाम बध्नन् मिथ्यात्वमोहनीयानन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकषायाः स्त्यानर्द्धित्रिकनिद्राद्विकायुष्कचतुष्कं जिननामाहारकद्विकातपोद्योतनामानि चेति सप्तविंशतिप्रकृतीर्विकल्पतो बध्नाति, घटना तु द्वितीयतृतीयनियमानुसारतः कार्या । "बंधइ"इत्यादि, अपर्याप्तनाम नैव बध्नाति, विरोधात् , विरोधश्च पराघातनाम्ना सह पर्याप्तनाम्न एव बध्यमानत्वादवसेयः । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषध्रुवबन्धिप्रकृतीः पर्याप्तोच्छ्वासनाम्नी च नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथमनियमप्रसरात् पराघातोच्छ्वासयोश्च प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धस्य तद्बन्धाविनाभाविन्वात् , ताश्चेमाः—ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं सञ्ज्वलनचतुष्कं भयकुत्से नामनवध्रुवबन्धिन्योऽन्तरायपञ्चकञ्चेत्येकोनत्रिंशदिति । 'दुउवंग' इत्यादि, औदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गयोरन्यतरदङ्गोपाङ्गमन्यतमं संहननमन्यतरत्स्वरमन्यतरां खगतिं च विकल्पतो बध्नाति, तृतीयनियमानुसारेणात्र भावना स्वयं परिभावनीया । 'बंधइ' इत्यादि, भणितशेषवेदनीयादिप्रकृतिवृन्देषु प्रत्येकमन्यतरा अष्टादशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, चतुर्थनियमेन भावना भावयितव्या । तानि चेमानि-वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रय गतिचतुष्कमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयं जातिपञ्चकं संस्थानपट्कमानुपूर्वीचतुष्कं पर्याप्ताऽपर्याप्तस्वरवर्जत्रसस्थावरादियुगलाष्टकं गोत्रद्वयं चेति । 'एमेव' इत्यादि, पर्याप्तोच्छ्वासनामप्रधानसन्निकर्षः पराघातप्रधानसन्निकर्षवद् विज्ञातव्यः ॥५७५-६-७॥ अथाऽऽतपनाम्नः स उच्यते

धुवणपुमेगिंदियुरलतिरिदुगहुंडपरघायऊसासा ।
तह बायरतिगथावरदुहगाणादेयणीआणि ॥५७८॥
णियमाऽऽयवबंधी तिरियाउं बंधइ व छ णियमाऽण्णयरा ।
जुगलदुगवेअणीअतिथिराइजुगलाण ण उ सेसा ॥५७९॥

(प्रे०) 'धुव' इत्यादि, आतपनाम्नो बन्धकः सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयो नपुंसकवेदैकेन्द्रियजात्यौदारिकशरीरनामतिर्यग्द्विकहुण्डकसंस्थानपराघातोच्छ्वासबादरत्रिकस्थावरदुर्भगानादेयनीचैर्गोत्ररूपाः पञ्चदशप्रकृतयश्चेति द्वाषष्टिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथमनियमप्रसरात् शेषाणां तु प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धकस्य पर्याप्तैकेन्द्रियप्रायोग्यबन्धकत्वेन प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धस्य तद्बन्धाऽविनाभावित्वात् । 'तिरियाउं' इत्यादि, तिर्यगायुर्विकल्पतो बध्नाति । 'छ' इत्यादि, हास्यरतिशोकारतियुगलयोरन्यतरद् युगलमन्यतरद् वेदनीयं स्थिरास्थिरयोरन्यतरां शुभाशुभयोरन्यतरां यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योरन्यतरां प्रकृतिं चेति षडन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, चतुर्थनियमेन भावना ज्ञातव्या । 'ण उ' इत्यादि, भणितशेषप्रकृतीर्नैव बध्नाति, आतपनाम्ना सह शेषप्रकृतीनां बन्धविरोधात् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः स्त्रीपुरुषवेदद्वयं, देवनरकमनुष्यत्रिकत्रयं द्वीन्द्रियादि-

जातिचतुष्कं वैक्रियद्विकमाहारकद्विकमौदारिकाङ्गोपाङ्गं संहननषट्कं प्रथमादिसंस्थानपञ्चकं खगति-द्वयं त्रससुभगत्रिकनामानि सूक्ष्मापर्याप्तसाधारणदुःस्वरनामानि उद्योतनाम जिननाम उच्चैर्गोत्रं चेति चतुश्चत्वारिंशदिति ॥५७८-९॥

अधुनोद्योतनाम्नः परस्थानसन्निकर्षोऽभिधीयते-

उज्जोअं बंधतो बंधइ ण उ णिरयमणुयदेवतिगं ।
तह विउवाहारगदुगसुहुमतिगायवजिणुच्चाणि ॥५८०॥
संघयणस्सरखगई वाऽण्णयरा वि णियमा छचत्तधुवा ।
तिरिदुगुरलबायरतिगपरघाऊसासणीआणि ॥५८१॥
बंधइ वा मिच्छत्तं ओरालियुवंगतिरियाऊ ।
बंधइ णियमा सेसा अण्णयरा वेअणीयाई ॥५८२॥ (उपगीतिः)

(प्रे०) "उज्जोअं" इत्यादि, नरकत्रिकं मनुष्यत्रिकं देवत्रिकं वैक्रियद्विकमाहारकद्विकं सूक्ष्मत्रिकमातपनाम जिननामोच्चैर्गोत्रं चेत्येकोनविंशतिप्रकृतीर्नैव बध्नाति, यत उद्योतनाम्ना सहासां प्रकृतीनां बन्धो विरुद्धो वर्तते । "संघयण" इत्यादि, अन्यतमसंहननमन्यतरत्स्वरमन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति, तृतीयनियमानुसारेणेह भावना भाव्या । "णियमा" इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयवर्जषट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयस्तिर्यग्द्विकौदारिकशरीरनामबादरत्रिकपराघातो-च्छ्वासनीचैर्गोत्ररूपा नवप्रकृतयश्चेति पञ्चपञ्चाशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथमनियमप्रसरात् , शेषाणां पुनः प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धस्य तद्बन्धाविनाभावित्वात् । "बंधइ" इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयौदारिकाङ्गोपाङ्गतिर्यगायुःप्रकृतित्रयं विकल्पतया बध्नाति, भावना मिथ्यात्वस्य द्वितीयनियमानुसारेण शेषद्वयोश्च तृतीयनियमानुसारेण स्वयमवधेया । "णियमा" इत्यादि, उक्तशेषवेदनीयादिप्रकृतिव्रजेषु प्रत्येकमन्यतराः प्रकृतीर्नियमतो बध्नाति, चतुर्थनियमप्रसरात् । तानि चेमानि शेषप्रकृतिव्रजानि-वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं जातिपञ्चकं संस्थानषट्कं त्रसस्थावरद्वयं स्वरवर्जस्थिरादियुगलपञ्चकं चेति ॥५८०-१-२॥

सम्प्रति जिननाम्नः सोऽभिधीयते

जिणबंधी णियमा गुणतीसधुवपुरिससुहागिइपणिंदी ।
परघूसासतसचउगसुखगइसुहगतिगउच्चाणि ॥५८३॥
णियमाऽण्णयरा दस जुगलवेअणीअतिथिराइजुगलाण ।
सुरणरगइआणुपुव्वी उरलविउव्वदेहुवंगाण ॥५८४॥
मज्झऽट्ठकसाया तह णिद्दाहाराउजुगलवइराणि ।
वा बंधइ ण उ बंधइ सेसाओ एगचत्ताओ ॥५८५॥

(प्रे०) "जिण" इत्यादि, जिननामबन्धविधायी एकोनत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः पुरुषवेद-समचतुरस्रसंस्थानपञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्कसुखगतिसुभगसुस्वरादेयोच्चैर्गोत्रप्रकृत –

यश्चेति सम्मीलितास्त्रयश्चत्वारिंशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, प्रकृतबन्धकस्य सम्यग्दृष्टित्वेन जिननाम्नो बन्धविच्छेदं यावदासां प्रकृतीनां निरन्तर बध्यमानत्वात्। 'णियमा' इत्यादि, हास्यादियुगलद्वयेऽन्यतरद् युगलमन्यतरद् वेदनीयं स्थिरास्थिरयोरन्यतरां शुभाशुभयोरन्यतरां यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योरन्यतरां सुरमनुष्यगत्योरन्यतरां सुरनरानुपूर्वीद्वयेऽन्यतरामौदारिकवैक्रियशरीरद्वयेऽन्यतरामौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गयोरन्यतरां च प्रकृतिं चेति दशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति। "मज्झऽट्ठकसाया" इत्यादि, अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणचतुष्के निद्राद्विकाहारकद्विकदेवमनुष्यायुर्द्वयवज्रर्षभनाराचसंहननप्रकृतिसप्तकं च विकल्पतो बध्नाति, ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां द्वितीयनियमानुसारेण शेषाणां तृतीयनियमानुसारेण भावना कार्या। "ण उ" इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीर्नैव बध्नाति, जिननाम्ना सह शेषप्रकृतीनां बन्धविरोधात्। ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः–स्त्यानर्द्धित्रिकं मिथ्यात्वमोहनीयमनन्तानुबन्धिचतुष्कं स्त्रीनपुंसकवेदौ नरकत्रिकं तिर्यक्त्रिकमेकेन्द्रियादिजातिचतुष्कं द्वितीयादिसंहननपञ्चकं द्वितीयादिसंस्थानपञ्चकं कुखगतिः स्थावरचतुष्कं दुर्भगत्रिकमातपोद्योतनाम्नी नीचैर्गोत्रं चेत्येकचत्वारिंशत्। ॥५८३-४ ५॥ साम्प्रतं त्रसनाम्नः प्रकृतसन्निकर्षं निरूपयन्नाह

तसबंधी बधइ व पणणिद्दबारसकसायचउआऊ।
मिच्छाहारगदुगजिणपरघाऊसासउज्जोआ ॥५८६॥
णियमा धुवबंधीओ सेसा पत्तेअबायराइ च ।
णेगिंदियथावरदुगआयवसाहारणामाणि ॥५८७॥
संघयणस्सरखगई अण्णयरा अवि व बधए णियमा ।
सत्तर अण्णयराओ सेसाओ वेअणीयाई ॥५८८॥

(प्रे०) "तसबंधी" इत्यादि, त्रसनाम्नो बन्धकः स्त्यानर्द्धित्रिकनिद्राद्विकाऽनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकषायायुश्चतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयाहारकद्विकजिननामपराघातोच्छ्वासोद्योतरूपा अष्टाविंशतिप्रकृतीः स्याद् बध्नाति, भावना पुनरिह ध्रुवाणां द्वितीयनियमेन शेषाणां च तृतीयनियमेन समधिगम्या। "णियमा" इत्यादि, उक्तशेषैकोनत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीः प्रत्येकबादरनाम्नी च नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथमनियमप्रसरात्, शेषाणां तु प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धस्य तद्बन्धाविनाभावित्वात्। "णेगिंदिय" इत्यादि, एकेन्द्रियजातिस्थावरसूक्ष्मातपसाधारणनामानि नैव बध्नाति, त्रसनाम्ना सहासां प्रकृतीनामेकेन्द्रियप्रायोग्यत्वेन बन्धविरोधात्। "संघयण" इत्यादि, अन्यतमं संहननमन्यतरत् स्वरमन्यतरां खगतिं च स्याद् बध्नाति, भावना तृतीयनियमानुसारेण कार्या। "णियमा" इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतिवृन्देष्वन्यतरवेदनीयादिसप्तदशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, चतुर्थनियमप्रसरात्। तानि चेमानि प्रकृतिवृन्दानि–वेदनीयद्वयं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रय गतिचतुष्कं द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयं तदङ्गोपाङ्गद्वयं संस्थानषट्कमानुपूर्वीचतुष्कं पर्याप्तापर्याप्तद्वयं स्वरवर्जस्थिरादियुगलपञ्चकं गोत्रद्वयं चेति ॥५८६-७-८॥

अथ बादरनाम्नः स उच्यते-

बायरबंधी वा पणनिद्दाबारसकसायचउआऊ ।
मिच्छाहारगदुगजिणपरघाऊसासआयवदुगाणि ॥५८९॥ (गीति.)
णियमाऽण्णा धुवबंधी सुहम ण उ बंधए व अण्णयरा ।
संघयणउवंगस्सरखगई णियमाऽण्णवेअणीआई ॥५९०॥ (गीतिः)
पत्तेअस्सेव ... ।

(प्रे०) "बायर" इत्यादि, बादरनाम्नो बन्धकः स्त्यानर्द्धित्रिकं निद्राद्विकमनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकषाया आयुष्कचतुष्कं मिथ्यात्वमोहनीयमाहारकद्विकं जिननाम पराघातोच्छ्वासनाम्नी आतपोद्योतनाम्नी चेत्येकोनत्रिंशत्प्रकृतीर्विकल्पतो बध्नाति, भावना त्वत्र यथासंभवं द्वितीयतृतीयनियमानुसारतः कार्या । "णियमा" इत्यादि, उक्तशेषैकोनत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, प्रथमनियमप्रसरात् । "सुहमं" इत्यादि, सूक्ष्मनाम नैव बध्नाति, विरोधात् । 'व' इत्यादि, अन्यतमं संहननमन्यतरदङ्गोपाङ्गमन्यतरत्स्वरमन्यतरां खगतिं च विकल्पतो बध्नाति । तृतीयनियमानुसारेण भावनात्र समधिगम्या । "णियमा" इत्यादि, उक्तशेषवेदनीयाद्यन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, चतुर्थनियमप्रसरादिति । ताश्चेमा अन्यतरप्रकृतयः-अन्यतरद् वेदनीयं हास्यादियुगलद्वयेऽन्यतरद् युगलमन्यतमो वेदोऽन्यतमा गतिरन्यतमा जातिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वयेऽन्यतरत्शरीरनामान्यतमं संस्थानमन्यतराऽऽनुपूर्वी त्रसस्थावरपर्याप्ताऽपर्याप्त-प्रत्येकसाधारण स्थिराऽस्थिरशुभाशुभ सुभग-दुर्भगा-देयानादेय-यशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलेषु प्रत्येकमन्यतरा अष्टप्रकृतयोऽन्यतरद् गोत्रं चेति सर्वसम्मीलिता अष्टादशप्रकृतय इति । "पत्तेअस्स"इत्यादि, प्रत्येकनाम्नः प्राधान्येन सन्निकर्षो बादरनामवदवसेयः, यो विशेषः स तु सुगमत्वात् स्वयं भावनीयः ॥५८९-९०॥

अथ स्थिरनाम्नस्तमभिधातुमाह

थिरबंधी बंधइ व बारसकसाया ।
पणणिद्दामिच्छतिआउजिणाहारायवदुगाणि ॥५९१॥
णियमाऽण्णा धुवबंधी तह पज्जत्तपरघायऊसासा ।
णिरयतिगअपज्जोऽथिरणामाणि ण चेव बंधेइ ॥५९२॥
अण्णयरा अवि बंधइ व छसंघयणदुउवंगसरखगई ।
सेसाऽण्णयरा णियमा बंधइ एव सुहस्स भवे ॥५९३॥

(प्रे०) "थिरबंधी" इत्यादि, स्थिरनाम्नो बन्धकोऽनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकषायस्त्यानर्द्धित्रिकनिद्राद्विकमिथ्यात्वमोहनीयदेवमनुष्यतिर्यगायुष्कत्रयजिननामाहारकद्विकातपोद्योतरूपाः पड्विंशतिप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, भावना पुनरत्र ध्रुवाणां द्वितीयनियमानुसारेण शेषाणां तु तृतीयनियमानुसारेण कार्या । "णियमा" इत्यादि, उक्तशेषध्रुवबन्धिप्रकृतीस्तथा पर्याप्तपराघातोच्छ्वासनामानि नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथमनियमप्रसरात् शेषाणां च पर्याप्तप्रायोग्यप्रकृति-

बन्धकत्वेन स्थिरनामबन्धस्य तद्बन्धाविनाभावित्वात् । ताश्चेमाः शेषध्रुवबन्धिप्रकृतयः--ज्ञानावरण-पञ्चक दर्शनावरणचतुष्क संज्वलनचतुष्कं भयकुत्से नवध्रुवबन्धिनामान्यन्तरायपञ्चकं चेत्येको नविंशदिति । "णिरय" इत्यादि, नरकत्रिकाऽपर्याप्ताऽस्थिरनामानि नैव बध्नाति, स्थिरनाम्ना सहामीषां बन्धविरोधात् । "अण्णयरा" इत्यादि, अन्यतमं संहननमन्यतरदङ्गोपाङ्गमन्यतरत्स्वर-मन्यतरां च खगतिं विकल्पतो बध्नाति, हेतोरत्रगतिस्तृतीयनियमानुसारेण विधेया ।' 'वेअणी-याई" इत्यादि, अभिहितेतरा अन्यतरवेदनीयादिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, हेतुरत्र चतुर्थनियमेन विज्ञेयः, ताश्चेमाः-अन्यतरद् वेदनीयं हास्यादियुगलद्वयेऽन्यतरद् युगलमन्यतमो वेदो देवमनुष्यति-र्यग्गतित्रयेऽन्यतमा गतिरन्यतमा जातिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वयेऽन्यतरत्शरीरनाम संस्थानषट्केऽन्य-तमं संस्थानं देवमनुष्यतिर्यगानुपूर्वीत्रयेऽन्यतराऽऽनुपूर्वी, पर्याप्तापर्याप्तस्थिरास्थिरस्वरद्वयवर्जत्रसस्था-वरादियुगलसप्तकेऽन्यतराः सप्तप्रकृतयोऽन्यतरद् गोत्रं चेति । 'एव' मित्यादि, एव शुभनाम्नोऽपि सन्निकर्षो विज्ञेयः ।।५९१-२-३।।

अथ यशःकीर्तिनाम्नः स उच्यते

बधइ णियमाऽण्णयरा जसबंधी वेअणीअगोआण ।
विग्घणवावरणाणि य ण णिरयसुहमतिगअजसाणि ।।५९४।।
आहारायवदुगजिणपरघाऊसासबायरतिगाणि ।
सेसधुवतिआऊ वा वाऽण्णयरा सेसवेआई ।।५९५।।

(प्रे०) "बंधइ"इत्यादि, यशःकीर्तिनामबन्धको वेदनीयद्वयेऽन्यतरद् वेदनीयं गोत्रद्वयेऽन्यतरद् गोत्रं ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कमन्तरायपञ्चकं च नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथम-नियमप्रसरात् शेषाणां चतुर्थनियमप्रसराच्च । 'ण' इत्यादि, नरकत्रिकसूक्ष्मत्रिकायशःकीर्तिनामप्रकृ-तीर्नैव बध्नाति, विरोधात् । "आहार" इत्यादि, आहारकद्विकातपोद्योतजिननामपराघातोच्छ्वास-बादरपर्याप्तप्रत्येकरूपा दशप्रकृतीः स्त्यानर्द्धित्रिकं निद्राद्विकं मिथ्यात्वमोहनीय षोडशकषाया भयकुत्से नवध्रुवबन्धिनामानि चेति शेषास्त्रयस्त्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीर्नरकवर्जायुस्त्रयमन्यतरा वेदादिप्रकृतीश्च विकल्पतो बध्नाति, आसां प्रकृतीनां बन्धविच्छेदस्य यशःकीर्तिनाम्नः पूर्वमेव जायमानत्वेन तद्-बन्धस्थानं यावत्तासां यथासम्भवं बध्यमानत्वादूर्ध्वं त्वबध्यमानत्वात् । अन्यतरवेदादिप्रकृतयश्चेमाः-वेदत्रयेऽन्यतमवेदो हास्यादियुगलद्वयेऽन्यतरद् युगलं नरकवर्जगतित्रयेऽन्यतरा गतिर्जातिपञ्चकेऽन्य-तमा जातिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वयेऽन्यतरत्शरीरनामौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतरदङ्गोपाङ्गं संस्था-नषट्केऽन्यतम संस्थानं संहननषट्केऽन्यतमं संहनन खगतिद्वयेऽन्यतरा खगतिर्नरकवर्जानुपूर्वीत्रये-ऽन्यतमानुपूर्वी त्रसस्थावर-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-सुभगदुर्भग-सुस्वरदुःस्वरादेयाऽनादेययुगलषट्केऽन्य-तराः षट्प्रकृतयश्चेति ।।५९४-५।।

अथ सूक्ष्मनाम्नस्तत्समत्वेन साधारणनाम्नश्च परस्थानसन्निकर्षमाह

बंधेइ सुहुमबंधी णियमा धुवणपुमतिरिदुगेगिंदी ।
ओरालहुंडथावरदुहगाणादेयअजसणीआणि ॥५९६॥ (गीति)
णियमाऽण्णयरा दुजुगलचउपज्जाइजुगवेअणीआणं ।
वा तिरियाउगपरघाऊसासा णऽण्णचउचत्ता ।५९७॥
साहारणस्स एव ।

(प्रे०) 'बंधेइ' इत्यादि, सूक्ष्मनामबन्धकः सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिनपुंसकवेदतिर्यग्द्विकै-केन्द्रियजातिनामौदारिकशरीरहुण्डकसंस्थानस्थावरदुर्भगानादेयाऽयशःकीर्तिनामनीचैर्गोत्ररूपा अष्ट-पञ्चाशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथमनियमप्रसरात् शेषाणां पुनः प्रधानीकृतप्रकृति-बन्धस्य तदन्याऽविनाभावित्वात् । 'णियमा' इत्यादि, हास्यादियुगलद्वयेऽन्यतरद् युगल पर्याप्ता-ऽपर्याप्तप्रत्येकसाधारणस्थिरास्थिरशुभाशुभयुगलचतुष्केऽन्यतराश्चतस्रः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, चतुर्थ-नियममाश्रित्य भावना विधेया । 'वा' इत्यादि, तिर्यगायुःपराघातोच्छ्वासप्रकृतित्रय विकल्पतो बध्नाति, तृतीयनियमानुसारेण भावनात्र भावनीया । 'ण' इत्यादि, उक्तशेषचतुश्चत्वारिंशत् प्रकृतीर्नैव बध्नाति, विरोधात् । ताश्चेमाः—स्त्रीपुरुषवेदद्वयं देवमनुष्यनरकत्रिकत्रय द्वीन्द्रियादि-जातिचतुष्कं वैक्रियद्विकमाहारकद्विकमौदारिकाङ्गोपाङ्गं संहननषट्कं प्रथमादिसंस्थानपञ्चक खगति-द्वय त्रसबादरसुभगादेयसुस्वरयशःकीर्तिनामानि दुःस्वरनामाऽऽतपोद्योतजिननामानि उच्चैर्गोत्र चेति चतुश्चत्वारिंशदिति । 'साहारणस्स' इत्यादि, साधारणनाम्नः प्राधान्येन सन्निकर्षः सूक्ष्म-नामवदवसेयः, विशेषस्तु सुगमत्वात् स्वयं बोध्यः ॥५९६-७॥

इदानीमपर्याप्तनाम्नः सोऽभिधीयते तदनन्तरं दुर्भगानादेयनाम्नोरपि--

अपज्जबंधी उ बंधए णियमा ।
धुवबंधिणपुमुरालियहुंडगपचेअथिराइणीआणि ॥५९८॥(गीति.)
बंधइ णियमा दुजुगलदुवेअणीअतितसाइजुगलाण ।
तिरिणरगइअणुपुव्वीपणजाईण णव अण्णयरा ।५९९॥
व दुआउछिवट्ठाणि य उरालुवंगं ण सेसअडतीसा ।
दुहगाणादेयाण हुडव्व परं व मिच्छत्तं ॥६००॥

(प्रे०) 'अपज्जबंधी' इत्यादि, अपर्याप्तनामबन्धकः सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिनपुंसकवेदौदा-रिकशरीरहुण्डकसंस्थानाऽस्थिराऽशुभदुर्भगाऽनादेयायशःकीर्तिनीचैर्गोत्ररूपाः षट्पञ्चाशत्प्रकृतीर्निय-मेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथमनियमप्रसरात् शेषाणां पुनः प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धस्य तद्बन्धा-विनाभावित्वात् । 'बंधइ' इत्यादि, हास्यादियुगलद्वयसाताऽसातवेदनीयद्वयत्रसस्थावरद्वयबादर-सूक्ष्मद्वयप्रत्येकसाधारणद्वयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयजातिपञ्चकरूपेषु वृन्देषु प्रत्येक-मन्यतरा नवप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, चतुर्थनियमप्रसरात् । 'व' इत्यादि, तिर्यग्मनुष्यायुर्द्वय-

सेवार्तसंहननौदारिकाङ्गोपाङ्गरूपाश्चेतस्रः प्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, यथायोगं तृतीयनियमांशैर्भावना भाव्या। 'ण' इत्यादि, उक्तशेषाष्टत्रिंशत्प्रकृतीर्नैव बध्नाति, अपर्याप्तनाम्ना सह शेषप्रकृतीनां बन्धस्य विरुद्धत्वात्। ताश्चेमाः—स्त्रीपुरुषवेदद्वयं देवनरकत्रिकद्वयं वैक्रियद्विकमाहारकद्विक प्रथमादिसंहननपञ्चकं प्रथमादिसंस्थानपञ्चकं खगतिद्वयं पर्याप्तस्थिरशुभसुभगसुस्वरादेययशःकीर्तिनामानि दुःस्वरनाम पराघातोच्छ्वासातपोद्योतजिननामानि उच्चैर्गोत्रं चेति। 'दुहग' इत्यादि दुर्भगानादेयनाम्नोः प्राधान्येन सन्निकर्षो हुण्डकसंस्थानवद् वेदितव्यः। 'परं' इत्यादिना विशेषं प्रदर्शयन्नाह-दुर्भगानादेययोर्बन्धकः मिथ्यात्वमोहनीयं विकल्पेन बध्नाति, प्रथमगुणस्थानस्थितेन तेन मिथ्यात्वमोहनीयस्य बध्यमानत्वाद् द्वितीयगुणस्थानस्थितेन तेनाऽबध्यमानत्वाच्च ॥५९८-९-६००॥

अथ गोत्रकर्मणः परस्थानसन्निकर्षं प्ररूपयन्नादौ नीचैर्गोत्रस्य तमाह--

बंधइ व णीअबंधी मिच्छतिरिआउपरघायऊसासा।
आयवदुग च बधइ णियमाऽण्णछचत्तधुवबंधी ॥६०१॥
सुरतिगआहारगदुगजिणुच्चगोआणि णेव वाऽण्णयरा।
दुउवंगसंघयणसरखगई णियमाऽण्णवेअणीआई ॥६०२॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'बंधइ' इत्यादि, नीचैर्गोत्रस्य बन्धको मिथ्यात्वमोहनीयतिर्यङ्मनुष्यनरकायुष्कत्रयपराघातोच्छ्वासातपोद्योतनामरूपा अष्टप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, तत्र मिथ्यात्वस्य द्वितीयनियमेन शेषाणां च तृतीयनियमेन भावना विज्ञेया। 'णियमा' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयवर्जषट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, भावना प्रथमनियमानुसारेण कार्या। 'सुर' इत्यादि, देवत्रिकाहारकद्विकजिननामोच्चैर्गोत्ररूपाः सप्तप्रकृतीर्नैव बध्नाति, नीचैर्गोत्रेण सहामां बन्धस्य विरोधात्। 'दुउवंग' इत्यादि, औदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतरदङ्गोपाङ्गमन्यतमं संहननमन्यतरत्स्वरमन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति तृतीयनियमानुसारेण हेतुर्वाच्यः। 'णियमा' इत्यादि, अभिहितशेषाऽन्यतरवेदनीयादिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, चतुर्थनियमेन हेतुरत्र विज्ञेयः। ताश्चेमाः—साताऽसातवेदनीयद्वयेऽन्यतरद् वेदनीयं हास्यादियुगलद्वयेऽन्यतरद् युगलं वेदत्रयेऽन्यतमो वेदो नरकतिर्यग्मनुष्यगतित्रयेऽन्यतमा गतिर्जातिपञ्चकेऽन्यतमा जातिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वयेऽन्यतरत्शरीरनाम संस्थानषट्केऽन्यतमसंस्थानं नरकतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीत्रयेऽन्यतमानुपूर्वी स्वरवर्जत्रसस्थावरादिनवयुगलेष्वन्यतरा नवप्रकृतयश्चेति ॥६०१-२॥

अथोच्चैर्गोत्रस्य परस्थानसन्निकर्षं प्रतिपादयन्नाह

णियमा उ उच्चबंधी विग्घावरणणवगाणि वाऽण्णधुवा।
तसचउआहाराउदुगपणिंदिजिणपरघायऊसासा ॥६०३॥ (गीतिः)
णो णिरयतिरितिगायवदुगथावरजाइचउगणीआणि।
जसअजसवेअणीआ णियमाऽण्णयरा व सेसवेआई ॥६०४॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'णियमा' इत्यादि, उच्चैर्गोत्रबन्धको ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कान्तरायपञ्चकरूपाश्चतुर्दशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, प्रथमनियमप्रसरात् । 'वा' इत्यादि, उक्तान्यध्रुवबन्धित्रयस्त्रिंशत्प्रकृतीस्त्रसचतुष्काहारकद्विकदेवमनुष्यायुष्कद्वयपञ्चेन्द्रियजातिजिननामपराघातोच्छ्वासनामानि च विकल्पेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां द्वितीयनियमप्रसरात्, आहारकद्विकजिननामदेवमनुष्यायुष्कद्वयप्रकृतीनां तृतीयनियमस्य द्वितीयांशप्रसरात्, पराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्कपञ्चेन्द्रियजातिनाम्नां च बन्धविच्छेदस्य प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धविच्छेदात्प्राक्तनत्वात् । 'णो' इत्यादि, नरकत्रिकतिर्यक्त्रिकातपोद्योतस्थावरचतुष्कजातिचतुष्कनीचैर्गोत्ररूपाः सप्तदशप्रकृतीर्नैव बध्नाति, उच्चैर्गोत्रेण सहासां बन्धस्य विरोधात् । 'जस' इत्यादि, यशःकीर्त्ययशःकीर्तिभ्यामेकतरां प्रकृतिमेकतरं च वेदनीयं नियमेन बध्नाति, चतुर्थनियमप्रसरात् । 'व' इत्यादि, उक्तशेषवेदाद्यन्यतराः प्रकृतीरपि विकल्पतो बध्नाति, यत उच्चैर्गोत्रेण सहैताः शेषान्यतरप्रकृतयो यथास्वं बन्धस्थानं यावदनवरतं बध्यन्ते तदुत्तरं च नैव बध्यन्ते, नवरं एकतममपि संहननं देवगतिप्रायोग्यप्रकृतबन्धकेन न बध्यते तदन्येन पुनर्बध्यते । ताश्चेमाः—वेदत्रयेऽन्यतमो वेदो हास्यादियुगलद्वयेऽन्यतरद्युगलं देवमनुष्यगतिद्वय एकतरागतिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वयेऽन्यतरच्छरीरं तदङ्गोपाङ्गद्वय एकतरमङ्गोपाङ्गं संहननषट्केऽन्यतमं संहननं संस्थानषट्केऽन्यतमं संस्थानं खगतिद्वय एकतरा खगतिः स्थिराऽस्थिरादिषड्युगलेऽन्यतराः षट्प्रकृतयश्चेति पञ्चदशेति ॥६०३-४॥

॥ इति ओघतः परस्थानसन्निकर्षः समाप्तः ॥

ओघतः परस्थानसन्निकर्षं प्ररूप्य साम्प्रतमादेशतो मार्गणासु निरूपयन्नादौ पञ्चेन्द्रियौघादिमार्गणासु तमाह

परठाणसण्णियासो दुपणिदितसपणमणवयेसु तहा ।
कायणयणेयरेसु भविये सण्णिम्मि आहारे ॥६०५॥
सव्वेसिं पयडीण ओघव्वऽत्थि ।

(प्रे०) 'परठाण' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौघपर्याप्तत्रसमार्गणाचतुष्के ओघसत्याऽसत्यसत्यासत्याऽसत्यामृषाभेदभिन्नासु पञ्चसु मनोयोगमार्गणासु पञ्चसु च वचनयोगमार्गणासु काययोगौघमार्गणायां चक्षुरचक्षुर्दर्शनमार्गणाद्वये भव्यसञ्ज्याहारकमार्गणात्रये चेति विंशतिमार्गणासु सर्वासां प्रकृतीनां सन्निकर्ष ओघवदस्ति, ओघवच्चातुर्गतिकजीवानां श्रेणेश्च सद्भावेन सर्वविधबन्धस्थानानां लाभादिति ॥६०५॥

अथ नरकौघादिमार्गणासु परस्थानसन्निकर्षं प्रतिपादयन्नाह

.... णिरये तिणिरयेसुं ।
पढमाईसु तह छसु सणकुमाराइदेवेसु ॥६०६॥

गुणचत्तधुवपणिंदियपरघूसासुरलजुगलतसचउगा ।
एगं बंधतोऽण्णा सगचत्ता बंधए णियमा ॥६०७॥
थीणद्धियतिगमिच्छाअणचउगदुआउतित्थउज्जोआ ।
वा बंधइ णियमाऽण्णा अण्णयरा वेअणीआई ॥६०८॥
सुखगइसंघयणागिइपुमतिथिराइजुगवेअणीआण ।
दुजुगलसुहगतिगाण य एवं णवरं ण पडिवक्खा ॥६०९॥
थीणद्धिं बंधतो बंधइ वाउदुगमिच्छउज्जोआ ।
णियमाऽण्णधुवपणिंदियपरघूसासुरलजुगलतसचउगं ॥६१०॥　(गीति)
तित्थं ण चेव बंधइ णियमाऽण्णयराऽण्णवेअणीआई ।
एवं णिद्दाणिद्दापयलापयलाऽणचउगाण ॥६११॥
थीचउसंघयणागिइकुखगइदुहगतिगणीअगोआण ।
एमेव जाणियव्वो णवरं बंधइ ण पडिवक्खा ॥६१२॥
मिच्छत्तं बंधतो बंधइ वा खलु दुआउउज्जोआ ।
णियमाऽण्णधुवपणिंदियपरघूसासुरलजुगलतसचउगं ॥६१३॥　(गीति)
तित्थं ण चेव बंधइ णियमाऽण्णयराऽण्णवेअणीआई ।
एमेव छिवट्ठणपुमहुंडाण परं ण पडिवक्खा ॥६१४॥
तिरियाउं बंधतो मिच्छुज्जोआ व बंधए णियमा ।
धुवतिरियउरलदुगपरघूसासपणिंदितसचउगणीअं ॥६१५॥　(गीति)
णरतिगजिणउच्चाणि ण णियमाऽण्णयराऽण्णवेअणीआई ।
तिरिदुगउज्जोआण एवं णवरं व तिरियाउं ॥६१६॥
थीणद्धितिगचउअणा णराउबंधी व य णियमाऽण्णधुवा ।
णरउरलदुगपणिंदियपरघूसासतसचउगाणि ॥६१७॥
णेव तिरिदुगुज्जोआ णियमाऽण्णयराऽण्णवेअणीआई ।
णरदुगउच्चाणेवं णवरं बंधइ व मणुयाउं ॥६१८॥
गुणचत्तधुवपुमउरलणरदुगसंघयणआगिइपणिंदी ।
परघूसासतसचउगसुखगइसुहगतिगउच्चाणि ॥६१९॥
जिणबंधी बंधइ चिअ णराउगं व णियमा छ अण्णयरा ।
दुजुगलदुवेअणीअतिथिराइजुगलाण ण उ सेसा ॥६२०॥

(प्रे०) 'णिरये' इत्यादि, नरकौघरत्नप्रभाशर्कराप्रभावालुकाप्रभारूपासु चतसृषु नरकमार्गणासु सनत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलोकलान्तकशुक्रमहस्साररूपासु षट्सु देवमार्गणासु च मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कवर्जशेषैकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतिपञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासौदारिकद्विकत्रसचतुष्करूपास्वष्टचत्वारिंशत्प्रकृतिष्वेकतमां प्रकृतिं बध्नन् शेषसप्तचत्वारिंशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथमनियमप्रसरात् शेषाणां त्वत्र ध्रुवबन्धिकल्पत्वात् । 'थीणद्धि' इत्यादि, स्त्यानर्द्धित्रिकमिथ्यात्वमोहनीयाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कतिर्यग्मनुष्यायुष्कद्वयजिननामोद्योतरूपा द्वादशप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, तद्यथा—एकतरप्रकृतप्रकृतिबन्धकः प्रथमगुण-

स्थानके वर्तते तदा मिथ्यात्वमोहनीयं बध्नाति, द्वितीयादिगुणस्थानकेषु वर्तते तदा न बध्नाति, प्रथम-द्वितीयगुणस्थानकयोर्वर्तते तदा स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्करूपाः सप्तप्रकृतीर्बध्नाति, उद्योतनाम च कश्चिदेव बध्नाति तृतीयतुर्यगुणस्थानयोर्वर्तमानः स्यात्तदा नैव बध्नाति, आयुष्कं कदाचिदेव बध्नाति, जिननामबन्धयोग्यतावान् स जिननाम बध्नाति, तदितरश्च नैव बध्नातीत्येवं तासां प्रकृतीनां सन्निकर्षो विकल्पतयाऽभिहितः । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषवेदनीयाद्यन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, चतुर्थनियमप्रसङ्गात् । ताश्चेमाः-अन्यतरवेदनीयं हास्यादियुगलद्वयेऽन्यतरयुगलं वेदत्रयेऽन्यतमो वेदोऽन्यतमा गतिरन्यतमसंहननमन्यतमसंस्थानमन्यतमाऽऽनुपूर्वी अन्यतरा खगतिः स्थिरास्थिरादियुगलषट्केऽन्यतराः षट्प्रकृतयो गोत्रद्वयेऽन्यतरगोत्रं चेति षोडशेति । 'सुख' इत्यादि, सुखगतिवज्रर्षभनाराचसंहननसमचतुरस्रसंस्थानपुरुषवेदस्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिसाताऽसातवेदनीयहास्यशोकरत्यरतियुगलसुभगसुस्वरादेयप्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्षः प्रधानीकृतध्रुवबन्ध्यादिप्रकृतिसन्निकर्षवद् विज्ञेयः । 'णवरं' इत्यादिनाऽपवाद उच्यते—सुखगतिप्रभृतिप्रकृतिबन्धकः प्रधानीकृतप्रकृतेः प्रतिपक्षभूताऽशुभखगतिप्रभृतिप्रकृतीर्नैव बध्नाति

'थीणद्धि' इत्यादि, स्त्यानर्द्धिप्रकृतिं बध्नन् तिर्यग्मनुष्यायुष्कद्वयमिथ्यात्वमोहनीयोद्योतनामप्रकृतिचतुष्कं विकल्पतो बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धिवर्जशेषपञ्चचत्वारिंशद् ध्रुवबन्धिप्रकृतीः पञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासौदारिकद्विकत्रसचतुष्करूपा नवप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति । 'तित्थं' इत्यादि, जिननाम नैव बध्नाति, तस्य चतुर्थगुणस्थानक एव बध्यमानत्वेन स्त्यानर्द्धिनिद्रया सह बन्धविरोधात् । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषवेदनीयाद्यन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चेमाः—अन्यतरवेदनीयं हास्यादियुगलद्वयेऽन्यतरयुगलं वेदत्रयेऽन्यतमो वेदोऽन्यतमा गतिरन्यतमसंहननमन्यतमसंस्थानमन्यतमाऽऽनुपूर्वी अन्यतरा खगतिः स्थिरास्थिरादियुगलषट्केऽन्यतराः षट्प्रकृतयोऽन्यतरगोत्रं चेति षोडशेति । 'एव' इत्यादि, निद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाऽनन्तानुबन्धिचतुष्करूपस्य प्रकृतिषट्कस्य प्राधान्येन सन्निकर्षः स्त्यानर्द्धिप्रधानसन्निकर्षवद् वेदितव्यः । 'थी' इत्यादि, स्त्रीवेदमध्यमसंहननचतुष्कमध्यमसंस्थानचतुष्काऽशुभविहायोगतिदुर्भगत्रिकनीचैर्गोत्ररूपाणां चतुर्दशप्रकृतीनां प्रधानभावेन सन्निकर्षः स्त्यानर्द्धिप्रधानसन्निकर्षवदवसेयः । 'णवरं' इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति—स्त्रीवेदादिप्रकृतिबन्धकस्तत्प्रतिपक्षभूतपुरुषनपुंसकवेदादिप्रकृतीर्नैव बध्नाति, विरोधात् ।

'मिच्छत्तं' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयमाबध्नन् तिर्यग्मनुष्यायुष्कद्वयोद्योतनामप्रकृतित्रयं विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयवर्जषट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीः पञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासौदारिकद्विकत्रसचतुष्करूपा नवप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति । 'तित्थं' इत्यादि, जिननाम नैव बध्नाति, जिननाम्नो बन्धस्य सम्यक्त्वप्रत्ययिकत्वेन मिथ्यात्वेन सह

विरोधात् । 'णियमा'इत्यादि, अभिहितशेषवेदनीयाद्यन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चेमाः–अन्यतरवेदनीयं हास्यादियुगलद्वयेऽन्यतरयुगलमन्यतमो वेदोऽन्यतरगतिरन्यतरानुपूर्वी अन्यतम संहननमन्यतमं संस्थानमन्यतरा खगतिः स्थिराऽस्थिरादियुगलषट्केऽन्यतराः षट्प्रकृतयोऽन्यतरद् गोत्रं चेति षोडशेति । 'एमेव'' इत्यादि, सेवार्तसंहननपुंसकवेदहुण्डकसंस्थानप्रकृतित्रयप्रधानसन्निकर्षो मिथ्यात्वमोहनीयप्रधानसन्निकर्षवद् बोद्धव्यः । 'परं' इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति सेवार्तसंहननादिप्रकृतिबन्धकस्तत्प्रतिपक्षप्रकृतीर्नैव बध्नाति, विरोधात् ।

'तिरियाउं' इत्यादि, तिर्यगायुर्बध्नन् मिथ्यात्वमोहनीयोद्योतनामप्रकृतिद्वयं विकल्पतो बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयवर्जशेषषट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीस्तिर्यग्द्विकपञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासौदारिकद्विकत्रसचतुष्कनीचैर्गोत्ररूपा द्वादशप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति । 'णर'इत्यादि, मनुष्यत्रिकजिननामोच्चैर्गोत्रप्रकृतीर्नैव बध्नाति, तिर्यगायुषा सहासां बन्धविरोधात्, विरोधश्च तिर्यगायुषा सह तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतित्रयस्य बध्यमानत्वात्, तीर्थकृन्नाम्नश्च सम्यग्दृशैव बध्यमानत्वाद् विभावनीयः । 'णियम' इत्यादि, उक्तातिरिक्ताऽन्यतरवेदनीयादिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः–अन्यतरवेदनीयमन्यतरहास्यादियुगलमन्यतमवेदोऽन्यतरत्संहननमन्यतमसंस्थानमन्यतरा खगतिः स्थिरास्थिरादियुगलषट्केऽन्यतराः षट्प्रकृतयश्चेति त्रयोदशेति । 'तिरि' इत्यादि, तिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्व्युद्योतनामप्रधानसन्निकर्षस्तिर्यगायुःप्रधानसन्निकर्षवदस्ति । 'णवरं'इत्यादिनाऽपवादमुपदर्शयति–तिर्यगायुर्विकल्पेन बध्नाति, आयुर्बन्धस्य कादाचित्कत्वादिति ।

'थीणद्धि' इत्यादि, मनुष्यायुष्कबन्धको मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कप्रकृत्यष्टकं विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, मिथ्यात्वादिप्रकृत्यष्टकवर्जैकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीर्मनुष्यद्विकौदारिकद्विकपञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपा एकादशप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति । 'णेव' इत्यादि, तिर्यग्द्विकोद्योतनामानि नैव बध्नाति, मनुष्यायुषा सहासां बन्धस्य विरोधात् । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषवेदनीयाद्यन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चेमाः–अन्यतरवेदनीयमन्यतरहास्यादियुगलं वेदत्रयेऽन्यतमो वेदोऽन्यतमं संहननमन्यतमं संस्थानमन्यतरा खगतिः स्थिराऽस्थिरादियुगलषट्केऽन्यतराः षट्प्रकृतयोऽन्यतरगोत्रं चेति चतुर्दशेति । 'णर' इत्यादि, मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रप्रकृतित्रयस्य प्राधान्येन सन्निकर्षो मनुष्यायुर्वद् विज्ञेयः। 'णवरं' इत्यादिना विशेषं प्रदर्शयति-मनुष्यायुर्विकल्पतो बध्नाति, तथा मनुष्यद्विकं बध्नन्नुच्चैर्गोत्रं विकल्पतो बध्नाति, उच्चैर्गोत्रबन्धकस्तु मनुष्यद्विकं नियमेन बध्नाति, उच्चैर्गोत्रेण सह तिर्यग्द्विकस्य बन्धाभावात् । 'गुणाचत्त' इत्यादि, जिननामबन्धको मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकवर्जैकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीः पुरुषवेदमनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननसमचतुरस्रसंस्थानपञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्कसुखगतिसुभगत्रिकोच्चैर्गोत्ररूपा एकोनविंशतिप्रकृतीश्च नियमेन

बध्नाति । 'णराउगं' इत्यादि, मनुष्यायुर्विकल्पतो बध्नाति । 'छ' इत्यादि, हास्यादियुगलद्वयेऽन्यतरयुगलमन्यतरवेदनीयं स्थिराऽस्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलत्रयेऽन्यतराः तिस्रः प्रकृतयश्चेति षट्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'ण उ' इत्यादि, उक्तव्यतिरिक्तप्रकृतीर्नैव बध्नाति, विरोधात् । ताश्चेमाः-मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्करूपप्रकृत्यष्टकं स्त्रीनपुंसकवेदद्वयं तिर्यक्त्रिकं द्वितीयादिसंहननपञ्चकं द्वितीयादिसंस्थानपञ्चकं कुखगतिदुर्भगत्रिकमुद्योतनाम नीचैर्गोत्रं चेत्येकोनत्रिंशदिति । इह यत्र हेतुभावनिकाप्रभृतयो नोक्तास्ते प्रागुक्तनियमानुसारेण तथौघानुसारेण स्वयमेव विज्ञेयाः, एवमेवाग्रेऽप्यस्मिन् द्वारे विज्ञेयम्, ग्रन्थगौरवभयादस्माभिस्तु विशेषस्थलं विहाय नैव कथयिष्यन्ते ।६०६-६२०॥

अथ चतुर्थादिनरकत्रये प्रकृत उच्यते--

परठाणसण्णियासो सव्वेसिं तितुरिआइणिरयेसुं ।
णिरयव्व होइ णवरं जिणस्स णेव हवए बंधो ॥६२१॥

(प्रे०) "परठाण" इत्यादि, पङ्कप्रभाधूमप्रभातमःप्रभारूपासु तिसृषु नरकमार्गणासु सर्वासां प्रकृतीनां नरकौघवत्सन्निकर्षोऽस्ति । "णवरं" इत्यादिनाऽपवादमुपदर्शयति-जिननाम नैव बध्यते, अतोऽत्र तत्प्रधानसन्निकर्षो नास्ति, तथा शेषप्रकृतिभिः सहापि तस्य सन्निकर्षो न वक्तव्य इति ॥६२१॥

साम्प्रतं सप्तमनरकमार्गणायां स उच्यते

थीणद्धितिगाणेग बंधतो तमतमाअ बंधेइ ।
णेव णरदुगुच्चाणि व मिच्छतिरिक्खाउउज्जोआ ॥६२२॥
सेसधुवतिरिउरलदुगणीअपणिदिपरघायऊसासा ।
तसचउगं णियमाऽण्णा अण्णयरा वेअणीआई ॥६२३॥
थीतिरिदुगमज्झिमचउसघयणागिइकुखगइणीआणं ।
दुहगतिगुज्जोआण य एवं णवरं ण पडिवक्खा ॥६२४॥
णियमाउ मिच्छबंधी सेसधुवपणिदितिरियउरलदुगं ।
परघूसासतसचउगणीआणि य ण खलु णरदुगुच्चाणि ॥६२५॥ (गीतिः)
वा तिरियाउज्जोआ णियमाऽण्णयराऽण्णवेअणीआई ।
एवं तिरियाउणपुमछिवट्ठहुंडाण ण उण पडिवक्खा ॥६२६॥ (गीतिः)
पुणचत्तधुवपुमउरलदुगसुहसघयणआगिइपणिंदी ।
परघूसाससुहखगइणराणुपुव्वितसचउगाणि ॥६२७॥
सुहगतिगुच्चाणि य णरगइबंधी बंधए च्च छऽण्णयरा ।
दुजुगलदुवेअणीअतिथिराइजुगलाण ण उ सेसा ॥६२८॥
एमेव हवेज्ज णराणुपुव्विउच्चाण सेसपयडीण ।
णिरयव्व भवे णवरं जिणस्स णेव हवए बंधो ॥६२९॥

(प्रे०) "थीणद्धि" इत्यादि, स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्करूपप्रकृतिसप्तकेऽन्यतमस्याः बन्धकस्तमस्तमाख्यसप्तमनरकमार्गणायां मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रप्रकृतित्रयं नैव बध्नाति, स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिप्रकृतिभिः सहामां प्रकृतीनां बन्धविरोधात्, बन्धविरोधश्च तृतीयतुर्यगुणस्थानकयोरेवाऽऽसां बध्यमानत्वाद् विज्ञेयः। 'वा' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयतिर्यगायुरुद्योतनामप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, । "सेस" इत्यादि, मिथ्यात्वप्रधानीकृतैतत्प्रकृतित्रयशेषपञ्चचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीस्तिर्यग्द्विकौदारिकद्विकनीचैर्गोत्रपञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपाश्च द्वादशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । "अण्ण" इत्यादि, शेषाऽन्यतरवेदनीयादिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चेमाः-अन्यतरवेदनीयमन्यतरद्धास्यादियुगलमन्यतमो वेदोऽन्यतम संहननमन्यतमं संस्थानमन्यतरा खगतिः स्थिरास्थिरादियुगलषट्केऽन्यतराः षट्प्रकृतयश्चेति त्रयोदशेति । "थी" इत्यादि, स्त्रीवेदतिर्यग्द्विकमध्यमसंहननचतुष्कमध्यमसंस्थानचतुष्काशुभविहायोगतिनीचैर्गोत्रदुर्भगत्रिकोद्योतरूपाणां सप्तदशप्रकृतीनां प्रधानभावेन सन्निकर्षः स्त्यानर्द्धित्रिकप्रधानसन्निकर्षवज्ज्ञेयः। 'णवर' इत्यादिनाऽपवादमुपदर्शयति–स्त्रीवेदादिप्रकृतिबन्धकस्तत्प्रतिपक्षप्रकृतीर्नैव बध्नाति ।

"णियमाउ" इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयप्रकृतिबन्धकः शेषषट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीः पञ्चेन्द्रियजातितिर्यग्द्विकौदारिकद्विकपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्कनीचैर्गोत्रप्रकृतिद्वादशकं च नियमेन बध्नाति । 'ण' इत्यादि, मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्ररूपप्रकृतित्रयं नैव बध्नाति, अत्र तृतीयतुर्यगुणस्थानकयोरेव बध्यमानत्वात्तस्य । 'वा' इत्यादि, तिर्यगायुरुद्योतनामरूपप्रकृतिद्वयं विकल्पेन बध्नाति । "णियमा" इत्यादि, उक्तशेषान्यतरवेदनीयादिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चानन्तरोक्तास्त्रयोदशप्रकृतयः । "एव" इत्यादि, तिर्यगायुर्नपुंसकवेदसेवार्तसंहननहुण्डकसंस्थानप्रकृतिचतुष्कप्रधानसन्निकर्षो मिथ्यात्वमोहनीयवदवसेयः । "ण उण" इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति-प्रकृतप्रकृतिबन्धकस्तत्प्रतिपक्षप्रकृति नैव बध्नाति, विरोधात् । अत्र तिर्यगायुषः प्रथमगुणस्थान एव बन्धसद्भावेन मिथ्यात्ववदतिदेशः कृतः ।

"गुणा" इत्यादि, मनुष्यगतिनामबन्धको मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकवर्जैकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीः पुरुषवेदौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननसमचतुरस्रसंस्थानपञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासशुभखगतिमनुष्यानुपूर्वीत्रसचतुष्कसुभगत्रिकोच्चैर्गोत्ररूपा अष्टादशप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति, । "पंधए" इत्यादि, हास्यादियुगलद्वयेऽन्यतरद् युगलमन्यतरद् वेदनीयं स्थिराऽस्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रः प्रकृतयश्चेति पञ्चान्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'ण' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीर्नैव बध्नाति, विरोधात् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः -मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्करूपप्रकृत्यष्टकं स्त्रीनपुंसकवेदद्वयं तिर्यग्त्रिकं प्रथमवर्जसंहननपञ्चकं प्रथमवर्जसंस्थानपञ्चकं कुखगतिदुर्भगत्रिकमुद्योतनाम नीचैर्गोत्रं चेत्येकोनत्रिंशदिति । "एमेव"

इत्यादि, मनुष्यानुपूर्व्युच्चैर्गोत्रप्रकृतिद्वयस्य प्राधान्येन सन्निकर्षो मनुष्यगतिवद् विज्ञेयः । "सेसपयडीणं" इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीनां प्रधानभावेन सन्निकर्षो नरकौघवद् भवति । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकवर्जशेषैकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयो वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं पुरुषवेदः पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिकद्विकं वज्रर्षभनाराचसंहननं समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिस्त्रसदशकमस्थिराशुभायशःकीर्तित्रयं पराघातोच्छ्वासनाम्नी चेति सप्तषष्टिरिति । "णवरं" इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति—अत्र जिननाम्नो बन्धाभावात्तस्य सन्निकर्षो नास्ति ॥६२२-२९॥

अथ तिर्यगोघादिमार्गणासु परस्थानसन्निकर्षं निरूपयन्नाह

एग बंधतो ऽण्णा णियमा तिरियतिपणिंदितिरियेसु ।
थीणद्धियतिगमिच्छऽडकसायवज्जधुवबंधीणं ॥६३०॥
वाऽणधुवाउगपरघाऊसासायवदुगाणि वाऽण्णयरा ।
दुउवगसंघयणखगई णियमाऽण्णवेअणीआई ॥६३१॥ (गीतिः)
एमेव असायअरइसोगअथिरअसुहअजसणामाण ।
णवर ण चेव बंधइ पयडी देवाउपडिवक्खा ॥६३२॥
णियमा धुवपणचत्ता बंधंतो थीणगिद्धितिगऽणेगं ।
वा मिच्छाउचउगपरघाऊसासायवदुगाणि ॥६३३॥
अण्णयरा अवि बंधइ वा संघयणदुउवंगखगई ।
बंधइ णियमा सेसा अण्णयरा वेअणीआई ॥६३४॥
बंधेइ सायबंधी वा थीणद्धितिगमिच्छऽडकसाया ।
तिरिमणुयसुराउगपरघाऊसासायवदुगाणि ॥६३५॥
णियमाऽण्णा धुवबंधी ण असायणिरयतिगाणि वाऽण्णयरा ।
दुउवगसंघयणखगई णियमाऽण्णवेअणीआई ॥६३६॥ (गीतिः)
एव रइहस्साणं एमेव जसस्स णवरि सुहमतिग ।
णो चिअ बंधइ णियमा परघाऊसासबायरतिगाणि ॥६३७॥ (गीतिः)
पणतीसधुवपणिंदियपरघाऊसासतसचउक्काणि ।
पुमबंधी बंधइ चिअ वा बारसधुवतिआउउज्जोआ ॥६३८॥ (गीतिः)
ण दुवेअसायवणिरयतिगथावरजाइचउगाणि ।
वाऽण्णयरं संघयणं णियमाऽण्णयराऽण्णवेअणीआई ॥६३९॥ (उद्गीतिः)
बंधइ व उच्चबंधी थीणद्धितिगऽडकसायमिच्छाऊ ।
णियमाऽण्णधुवपणिंदियपरघाऊसासतसचउक्काणि ॥६४०॥ (गीतिः)
णो णिरयतिरितिगायवदुगथावरजाइचउगणीआणि ।
वाऽण्णयरं संघयण णियमाऽण्णयराऽण्णवेअणीआई ॥६४१॥ (गीतिः)
सेसाणोघव्व णवरि तित्थाहारगदुगाणि बंधइ णो ।
णरतिगउरलदुगवइरबंधी णियमाऽणथीणगिद्धितिगं ॥६४२॥ (गीतिः)

तइअकसायदुणिद्दा णियमा देवतिगविउवदुगबंधी ।
सुखगइआगिइपरघाऊसासपणिंदितसणवगबंधी　　॥६४३॥　　(गीति०)

(प्रे०) 'एगं' इत्यादि, तिर्यगोघतिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिरश्चीरूपासु चतसृषु मार्गणासु स्त्यानर्द्धित्रिकमिथ्यात्वमोहनीयाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपद्वादशप्रकृतिवर्जशेषपञ्चत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतिष्वेकां प्रकृतिमाबध्नन् शेषचतुस्त्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'वा' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपाः शेषद्वादशध्रुवबन्धिप्रकृतोरायुष्कचतुष्कपराधातोच्छ्वासातपोद्योतनामानि चेति सम्मीलिता विंशतिप्रकृतीर्विकल्पतो बध्नाति । 'वा' इत्यादि, औदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतरदङ्गोपाङ्गमन्यतमं संहननमन्यतरस्वरमन्यतरां खगतिं च विकल्पतो बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तातिरिक्ताऽन्यतरवेदनीयादिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः—अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलमन्यतमो वेदोऽन्यतमा गतिरन्यतमा जातिरन्यतरत्शरीरनामाऽन्यतमं संस्थानमन्यतमानुपूर्वी स्वरवर्जत्रसस्थावरादियुगलनवकेऽन्यतरा नव प्रकृतयोऽन्यतरद् गोत्रं चेत्येकोनत्रिंशतिरिति । 'एमेव' इत्यादि, असातवेदनीयारतिशोकाऽस्थिराशुभाऽयशःकीर्तिनामप्रकृतीनां सन्निकर्ष एवमेव भवति । 'णवरं' इत्यादिना विशिनष्टि—असातवेदनीयप्रभृतिप्रकृतिबन्धको देवायुस्तत्प्रतिपक्षसातवेदनीयादिप्रकृतीश्च नैव बध्नाति, प्रतिपक्षप्रकृतीनां परावर्तमानतया बध्यमानत्वेनासातवेदनीयादिप्रकृतिभिः सह बन्धस्य विरोधात् , देवायुष्कस्य चाऽसातवेदनीयादिप्रकृतिभिः सह बन्धाऽसम्भवात् ।

'णियमा' इत्यादि स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्करूपे प्रकृतिसप्तकेऽन्यतमां प्रकृतिं बध्नन् मिथ्यात्वमोहनीयप्रकृत्यैकतमप्रकृतिवर्जशेषपञ्चचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'वा' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयायुष्कचतुष्कपराघातोच्छ्वासातपोद्योतप्रकृतिनवकं च विकल्पेन बध्नाति । 'अण्णयरा' इत्यादि, अन्यतमं संहननमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतरदङ्गोपाङ्गमन्यतरस्वरमन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषवेदनीयाद्यन्यतराः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चानन्तरोक्ता एव नवदशप्रकृतयोऽत्र ग्राह्याः ।

'बंधेइ' इत्यादि, सातवेदनीयबन्धकः स्त्यानर्द्धित्रिकमिथ्यात्वमोहनीयाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कतिर्यग्मनुष्यदेवायुष्कत्रयपराघातोच्छ्वासातपोद्योतरूपा एकोनविंशति प्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषपञ्चत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'ण' इत्यादि, असातवेदनीयनरकत्रिकप्रकृतिचतुष्कं नैव बध्नाति, सातवेदनीयेन सह तद्बन्धविरोधात् । 'वा' इत्यादि, औदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतरदङ्गोपाङ्गमन्यतमं संहननमन्यतरस्वरमन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति । णियमा' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतिसमूहेष्वेकतमप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चेमाः—हस्यादियुगलद्वयेऽन्यतरद् युगलमन्यतमो वेदस्तिर्यग्मनुष्यदेव-

गतित्रयेऽन्यतरा गतिरन्यतमा जातिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वयेऽन्यतरच्छरीरनामान्यतमं संस्थानमानुपूर्वीत्रयेऽन्यतमानुपूर्वी स्वरवर्जत्रसस्थावरादियुगलनवकेऽन्यतरनवप्रकृतयोऽन्यतरगोत्रं चेत्यष्टादशप्रकृतयः। 'एवं' इत्यादि, हास्यरत्योः प्राधान्येन सन्निकर्षः सातवेदनीयवद् बोद्धव्यः । 'एमेव' इत्यादि, यशःकीर्तिनाम्नः सन्निकर्षः सातवेदनीयवद् बोध्यः । णवरि' इत्यादिना विशिनष्टि सूक्ष्मत्रिकं यशःकीर्तिनामबन्धको नैव बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, पराघातोच्छ्वासबादरत्रिकप्रकृतिपञ्चकं नियमेन बध्नाति ।

'पणि' इत्यादि, पुरुषवेदबन्धको मिथ्यात्वमोहनीयादिद्वादशप्रकृतिवर्जशेषपञ्चत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीः पञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपाः सप्तप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति । 'वा' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपा द्वादशध्रुवबन्धिप्रकृतीर्देवमनुष्यतिर्यगायुष्कत्रयोद्योतनामप्रकृतिचतुष्कं च विकल्पतो बध्नाति । 'णो' इत्यादि, स्त्रीनपुंसकवेदद्वयातपनरकत्रिकस्थावरचतुष्कजातिचतुष्करूपाश्चतुर्दशप्रकृतीर्नैव बध्नाति । 'वा' इत्यादि, अन्यतमसंहननं विकल्पेन बध्नाति, देवप्रायोग्यबन्धकाले तेन तस्याऽबध्यमानत्वान्मनुष्यप्रायोग्यादिबन्धकाले च बध्यमानत्वात् । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषाऽन्यतरवेदनीयादिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चेमाः—अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलं देवमनुष्यतिर्यग्गतित्रयेऽन्यतमा गतिरौदारिकवैक्रियशरीरनामद्वयेऽन्यतरच्छरीरनामौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतरदङ्गोपाङ्गनामाऽन्यतमं संस्थानमन्यतरा खगतिरन्यतरानुपूर्वी स्थिराऽस्थिरादियुगलषट्केऽन्यतरषट्प्रकृतयो गोत्रद्वयेऽन्यतरद् गोत्रं चेति षोडशेति ।

'बंधइ' इत्यादि, उच्चैर्गोत्रबन्धकः स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयदेवमनुष्यायुर्द्वयरूपाश्चतुर्दशप्रकृतीर्विकल्पतो बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयादिद्वादशप्रकृतिवर्जशेषपञ्चत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीः पञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपाः सप्तप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति । 'णो' इत्यादि, नरकत्रिकतिर्यक्त्रिकातपोद्योतस्थावरचतुष्कजातिचतुष्कनीचैर्गोत्ररूपाः सप्तदशप्रकृतीर्नैव बध्नाति, । 'वा' इत्यादि, अन्यतम संहनन विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषवेदनीयाद्यन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चेमाः-अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरहास्यादियुगलमन्यतरो वेदो देवमनुष्यगतिद्वयेऽन्यतरा गतिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वयेऽन्यतरच्छरीरनामौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतरदङ्गोपाङ्गमन्यतमं संस्थानमन्यतरा खगतिरन्यतरानुपूर्वी स्थिराऽस्थिरादियुगलषट्केऽन्यतरषट्प्रकृतयश्चेति षोडशेति ।

'सेसाण' उक्तशेषप्रकृतीनां सन्निकर्ष ओघवदस्ति, ताश्चेमाः—स्त्रीनपुंसकवेदद्वयं मिथ्यात्वमायुष्कचतुष्कं गतिचतुष्कं जातिपञ्चकमौदारिकद्विकं वैक्रियद्विकं संहननषट्कं संस्थानषट्कमानुपूर्वी-

चतुष्कं खगतिद्वयं त्रसनवकं स्थावरचतुष्कं दुर्भगत्रिकमातपोद्योतपराघातोच्छ्वासनामानि नीचैर्गोत्रं चेति नवपञ्चाशदिति । लाघवार्थं कृतातिदेशे समानतन्त्रीमापत्तिं निवारयितुकाम 'णवरि' इत्यादिनाऽपवादमाह–जिननामाहारकद्विकप्रकृतित्रयस्य प्रकृतमार्गणासु बन्धविरहात् सन्निकर्षो नैव कथनीयः ।

'णरतिग' इत्यादि, मनुष्यत्रिकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननप्रकृतिबन्धकोऽनन्तानुबन्धिचतुष्कस्त्यानर्द्धित्रिकप्रकृतिसप्तकं नियमेन बध्नाति, प्रस्तुतमार्गणासु मनुष्यद्विकादिप्रकृतीनां द्वितीयं गुणस्थानकं यावदेव बध्यमानत्वादिति ।

'तइअ' इत्यादि, देवायुष्कदेवद्विकवैक्रियद्विकबन्धकः सुखगतिसमचतुरस्रसंस्थानपराघातोच्छ्वासपञ्चेन्द्रियजातित्रसनवकबन्धकश्च प्रत्याख्यानावरणचतुष्कनिद्राद्विकरूपप्रकृतिषट्कं नियमेन बध्नाति, प्रकृतमार्गणायां तद्बन्धविच्छेदस्यैवाभावात् ॥६३० ४३॥

अथाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगादिमार्गणासु सकलैकेन्द्रियादिमार्गणासु च प्रकृतं प्रकथयितुमना आह

असमत्तपणिंदितिरियमणुयपणिंदियतसेसु सव्वेसु ।
एगिंदियविगलिंदियपुढवीसलिलवणकायेसु ॥६४४॥
एग बंधतो धुववधिउरालाउ बधए णियमा ।
सेसा सगचत्ता वाऽण्णयरा सघयणसरखगई ॥६४५॥
वा आउगआयवदुगपरघाऊसासउरलुवगाणि ।
बधइ णियमा सेसा अण्णयरा वेअणीआई ॥६४६॥
दुजुगलदुवेअणीअणपुमहुंडपणअथिराइणीआणं ।
एमेव णवरि बधइ ण चेव पडिवक्खपयडीओ ॥६४७॥
तिरिमणुयाउज्जोआ इत्थीबधी व बधए णियमा ।
धुवउरलदुगपणिंदियपरघाऊसासतसचउक्काणि ॥६४८॥ (गीतिः)
थावरजाइचउगआयवपडिवक्खा ण वेअणीआई ।
सेसाऽण्णयरा णियमा एमेव पुमस्स विण्णेयो ॥६४९॥
तिरियाउं बंधंतो णियमा धुवतिरिदुगुरलणीआणि ।
बधइ वायवदुगपरघाऊसासुरलुवगाणि ॥६५ ॥
णरतिगउज्जोआणि ण वा सरसघयणखगई वि अण्णयरा ।
णियमाऽण्णवेअणीआई एव तिरिदुगस्स आउ वा ॥६५१॥ (गीतिः)
मणुयाउगवधी धुवणरुरलतसदुगपणिंदिपत्तेआ ।
णियमा परघूसासा वधइ वाऽण्णयरसरखगई ॥६५२॥
णो तिरितिगजाइचउगसाहारणथावरायवदुगाणि ।
णियमाऽण्णयरा सेसा मणुयदुगस्सेवमेव व णराउं ॥६५३॥ (गीति.)

णियमा पणिंदिबंधी उरलतसदुगधुवबंधिपत्तेआ ।
बंधइ व तिरिणराउगपरघाऊसासउज्जोआ ॥६५४॥
चउजाइआयवसुहुमथावरसाहारणाणि बंधइ णो ।
सरखगई वाऽण्णयरा णियमाऽण्णा वेअणीआई ॥६५५॥
संघयणागिइपंचगदुखगइसुहगतिगदुस्सराणेव ।
णवरं ण अपज्जत्त णियमा पज्जपरघायऊसासा ॥६५६॥ (गीतिः)
तसुरलुवंगछिवट्ठाणा सण्णियासो पणिंदियव्व परं ।
एगिंदिय ण बंधइ णियमा सेसाऽण्णयरजाई ॥६५७॥
परघायं बंधंतो णियमा धुवउरलपज्जऊसासा ।
ण अपज्ज व दुआउगआयवदुगउरलुवंगाणि ॥६५८॥
संघयणस्सरखगई वाऽण्णयरा सेसवेअणीआई ।
णियमा एमेव भवे पज्जत्तूसासणामाणं ॥६५९॥
बायरबंधी बंधइ सुहुम ण च्चिअ णियमा धुवुरलतणू ।
वाउगआयवदुगपरघाऊसासुरलुवगाणि ॥६६०॥
संघयणस्सरखगई वाऽण्णयरा सेसवेअणीआई ।
णियमा बंधइ एव हवेज्ज पत्तेअणामस्स ॥६६१॥
सायव्व थिरसुहाण णवर ण उ बंधए अपज्जत्त ।
णियमाहिन्तो बंधइ परघाऊसासपज्जत्ता ॥६६२॥
सायव्व जसस्स परं परघाऊसासबायरतिगाणि ।
णियमाहिन्तो बंधइ ण चेव बंधेइ सुहुमतिग ॥६६३॥
धुवणरुरलदुगपरघाऊसासपणिंदितसचउक्काणि ।
णियमा उ उच्चबंधी बंधइ वा उण मणुस्साउ ॥६६४॥
तिरियदुगजाइथावरचउगायवजुगलणीअगोआणि ।
णउ बंधइ णियमाऽणा अण्णयरो य ठव्व सेसाणं ॥६६५॥

(प्रे०) 'असमत्त' इत्यादि, अपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्तमनुष्याऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्तत्रसरूपाश्चतस्रो मार्गणाः, सप्तैकेन्द्रियमार्गणाः, ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदैस्तिस्रो द्वीन्द्रियमार्गणास्तिस्रस्त्रीन्द्रियमार्गणास्तिस्रश्चतुरिन्द्रियमार्गणाश्चेति षोडशेन्द्रियमार्गणाः, ओघादिसप्तभेदैः सप्तपृथ्वीकायमार्गणाः सप्ताप्कायमार्गणा एकादशवनस्पतिकायमार्गणाश्चेति पञ्चविंशतिकायमार्गणा इति सर्वसंख्यया पञ्चचत्वारिंशन्मार्गणासु सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृत्यौदारिकशरीरनामनामेकां प्रकृतिं बध्नन् शेषसप्तचत्वारिंशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'वा' इत्यादि, अन्यतमं संहननमन्यतरस्वरमन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति । 'वा' इत्यादि, तिर्यग्मनुष्यायुर्द्वयातपोद्योतपराघातोच्छ्वासौदारिकाङ्गोपाङ्गनामरूपाः सप्तप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषवेदनीयाद्यन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, । ताश्चेमाः–अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलमन्यतमो वेदस्तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयेऽन्यतरा गतिरन्यतमा जातिरन्यतमं संस्थानं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयेऽन्य

तरानुपूर्वी स्वरवर्जत्रसस्थावरादियुगलनवकेऽन्यतरा नवप्रकृतयोऽन्यतरद् गोत्रं चेत्यष्टादश । 'दुगुं-छाए' इत्यादि, हास्यरतिशोकारतियुगलद्वयसाताऽसातवेदनीयनपुंसकवेदहुण्डकसंस्थानाऽस्थिराऽशुभ-दुर्भगानादेयाऽयशःकीर्तिनीचैर्गोत्ररूपाणां चतुर्दशप्रकृतीनां सन्निकर्ष एवमेवाऽस्ति । 'णवरि' इत्या-दिना विशेषं दर्शयति–हास्यादिप्रकृतिबन्धकस्तत्प्रतिपक्षभूतां प्रकृतिं नैव बध्नाति, परावर्तमान-प्रकृतित्वादासाम्, उक्तप्रकृतिबन्धकाले एकेन्द्रियादिपञ्चेन्द्रियपर्यन्तप्रायोग्यबन्धकत्वाच्च ।

'तिरि' इत्यादि, स्त्रीवेदबन्धकस्तिर्यग्मनुष्यायुर्द्वयोद्योतरूपं प्रकृतित्रयं विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीरौदारिकद्विकपञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रस-चतुष्करूपा नवप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति, अत्रौदारिकशरीरनाम्नो ध्रुवबन्धिकल्पत्वेन नियतबन्धो विज्ञेयः । 'थावर' इत्यादि, स्थावरचतुष्कजातिचतुष्कातपनामानि पुरुषनपुंसकवेदौ च नैव बध्नाति. स्त्रीवेदेन सहासां बन्धस्य विरोधात्, विरोधश्च स्थावरादिप्रकृतिबन्धकेन नपुंसकवेद-स्यैव बध्यमानत्वाद् वेदद्वयस्य च परावर्तमानप्रतिपक्षप्रकृतित्वाद् विज्ञेयः । 'वेअणीआई' इत्यादि, अभिहितशेषवेदनीयाद्यन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चेमाः–वेदनीयद्वय एकतरं वेदनीयमन्यत-रद् हास्यादियुगलमन्यतरा तिर्यग्मनुष्यगतिद्वये गतिरन्यतमं संहननमन्यतमं संस्थानमन्यतरा खगति-स्तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयेऽन्यतराऽऽनुपूर्वी स्थिरादियुगलषट्केऽन्यतराः षट्प्रकृतयोऽन्यतरगोत्रं चेति पञ्चदशेति । 'एमेव' इत्यादि, पुरुषवेदस्य सन्निकर्षः स्त्रीवेदवद् विज्ञेयः ।

'तिरियाउं' इत्यादि, तिर्यगायुर्बध्नन् नियमेन सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीस्तिर्यग्द्वि-कौदारिकशरीरनामनीचैर्गोत्रप्रकृतीश्च बध्नाति । 'बंधइ' इत्यादि, आतपोद्योतपराघातोच्छ्वासौ-दारिकाङ्गोपाङ्गनामानि विकल्पेन बध्नाति । 'णर' इत्यादि, मनुष्यत्रिकोच्चैर्गोत्रप्रकृतिचतुष्कं नैव बध्नाति, तिर्यगायुषा सह तस्य बन्धविरोधात् । 'वा' इत्यादि, स्वरमन्यतरत्संहननमन्यतममन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उदितशेषवेदनीयाद्यन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चेमाः–अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलमन्यतमो वेदोऽन्यतमा जातिरन्यतमं संस्थानं स्वरवर्जत्रसस्थावरादियुगलनवकेऽन्यतरा नवप्रकृतयश्चेति पञ्चदशेति । 'एवं' इत्यादि, तिर्यग्द्विकस्य प्राधान्येन सन्निकर्षस्तिर्यगायुष्कवदवसेयः । 'आउं' इत्यादिना विशेषं दर्शयति–तिर्यगायुर्विकल्पेन बध्नाति, ।

'मणुयाउगबंधी' इत्यादि, मनुष्यायुष्कबन्धकः सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीर्मनुष्यद्विकौ-दारिकद्विकत्रसद्विकपञ्चेन्द्रियजातिप्रत्येकनामानि च नियमेन बध्नाति । 'परघा' इत्यादि, परा-घातोच्छ्वासनाम्नी विकल्पेन बध्नाति । 'अण्ण' इत्यादि, अन्यतरत्स्वरमन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति । 'णो' इत्यादि, तिर्यक्त्रिकैकेन्द्रियादिजातिचतुष्कसाधारणस्थावरसूक्ष्मातपोद्यो-तरूपा द्वादशप्रकृतीर्नैव बध्नाति, विरोधात् । 'णियमा' इत्यादि, उदितशेषान्यतरप्रकृतीर्नियमेन

बध्नाति, ताश्चेमाः—अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलमन्यतमो वेदोऽन्यतमं संहननमन्यतमं संस्थानं पर्याप्ताऽपर्याप्तस्थिरास्थिरशुभाशुभसुभगदुर्भगादेयाऽनादेययशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलषट्केऽन्यतराः षट्प्रकृतयश्चेति द्वादशेति । "मणुय" इत्यादि, मनुष्यद्विकस्य प्राधान्येन सन्निकर्षो मनुष्यायुष्कवदस्ति, परं मनुष्यद्विकबन्धको मनुष्यायुर्विकल्पेन बध्नाति ।

'णियमा' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातिनाम्नो बन्धक औदारिकद्विकत्रसद्विकसप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतिप्रत्येकनामरूपा द्वापञ्चाशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'व' इत्यादि, तिर्यग्मनुष्यायुष्कद्वयपराघातोच्छ्वासोद्योतनामानि विकल्पेन बध्नाति । 'चउ' इत्यादि, एकेन्द्रियादिजातिचतुष्कातपसूक्ष्मस्थावरसाधारणनामानि नैव बध्नाति, पञ्चेन्द्रियजात्या सहासां प्रकृतीनां बन्धविरोधात् । 'सर' इत्यादि, अन्यतरत्स्वरमन्यतरां च खगतिं विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उदितशेषान्यतरवेदनीयादिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चेमाः—अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलमन्यतमो वेदस्तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयेऽन्यतरा गतिरन्यतमसंहननमन्यतमं संस्थानमन्यतमानुपूर्वी पर्याप्ताऽपर्याप्तस्थिरास्थिरशुभाशुभ सुभगदुर्भगादेयानादेययशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलषट्केऽन्यतराः षट्प्रकृतयोऽन्यतरगोत्रं चेति पञ्चदशेति । 'संघयण' इत्यादि, प्रथमादिसंहननपञ्चकप्रथमादिसंस्थानपञ्चकखगतिद्वयसुभगत्रिकदुःस्वरनाम्नां प्रधानभावेन सन्निकर्षः पञ्चेन्द्रियजातिप्रधानसन्निकर्षवदवसेयः । 'थावर' मित्यादिनाऽपवादमाह—अपर्याप्तनाम नैव बध्नाति । पर्याप्तपराघातोच्छ्वासनामानि नियमेन बध्नाति, अन्यतरत्स्वरंखगती नियमेन बध्नाति, पर्याप्ततिर्यग्मनुष्यप्रायोग्यबन्धकत्वात्प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धकस्य । 'तसु' इत्यादि, त्रसौदारिकाङ्गोपाङ्गसेवार्तसंहननप्रकृतित्रयस्य प्राधान्येन सन्निकर्षः पञ्चेन्द्रियजातिवदस्ति । 'परं' इत्यादि, एकेन्द्रियजातिनाम नैव बध्नाति, तद्व्यतिरिक्तान्यतमजातिं नियमेन बध्नाति ।

'परघायं' इत्यादि, पराघातनाम बध्नन् सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीरौदारिकशरीरनाम पर्याप्तोच्छ्वासनाम्नी च नियमेन बध्नाति । 'ण' इत्यादि, अपर्याप्तनाम नैव बध्नाति । 'व' इत्यादि, तिर्यग्मनुष्यायुर्द्वयातपोद्योतौदारिकाङ्गोपाङ्गनामप्रकृतिपञ्चकं विकल्पेन बध्नाति, । "संघयण" इत्यादि, संहननमन्यतममन्यतरत्स्वरमन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति । 'सेस' इत्यादि, उदितशेषाऽन्यतरवेदनीयादिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः-अन्यतरवेदनीयमन्यतरहास्यादियुगलमन्यतमो वेदस्तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयेऽन्यतरा गतिरन्यतमा जातिमन्यतमं संस्थानं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयेऽन्यतरानुपूर्वी पर्याप्तापर्याप्तस्थिरत्रसमस्थावरादियुगलाष्टकेऽष्टान्यतरप्रकृतयोऽन्यतरगोत्रं चेति सप्तदशेति । "एमेव" इत्यादि, पर्याप्तोच्छ्वासनाम्नोः प्राधान्येन सन्निकर्षः पराघातप्रधानसन्निकर्षवद् विज्ञेयः ।

"बायर" इत्यादि, बादरनाम्नो बन्धकः सूक्ष्मनाम नैव बध्नाति, विरोधात् । "णियमा" इत्यादि, सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीरौदारिकशरीरनाम च नियमेन बध्नाति । 'वा' इत्यादि, तिर्यग्मनुष्यायुर्द्वयातपोद्योतपराघातोच्छ्वासौदारिकाङ्गोपाङ्गरूपाः सप्तप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । "संघयण" इत्यादि, अन्यतमसंहननमन्यतरस्वरमन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति । 'सेस' इत्यादि, कथितशेषवेदनीयाद्यन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चेमाः-अन्यतरवेदनीयमन्यतरहास्यादियुगलमन्यतमो वेदस्तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयेऽन्यतरा गतिरन्यतमा जातिरन्यतमसंस्थानं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयेऽन्यतराऽऽनुपूर्वी बादरसूक्ष्मनामस्वरवर्जत्रसस्थावरादियुगलाष्टकेऽन्यतरा अष्टप्रकृतयोऽन्यतरगोत्रं चेति सप्तदशेति । "एवं" इत्यादि, प्रत्येकनाम्नः प्रधान्येन सन्निकर्षो बादरनामप्रधानसन्निकर्षवद् विज्ञेयः, नवरं व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिरितिन्यायेन सूक्ष्मबादरनाम्नो बन्धो विकल्पेन साधारणस्य चाऽबन्धो ज्ञेयः । "साथव्व" इत्यादि, स्थिरशुभनाम्नोः परस्थानसन्निकर्षः सातवेदनीयसन्निकर्षवद् भवति, तुल्यप्रायत्वात्, अथ विशेषमावेदयति "णवर" इत्यादि, अपर्याप्तनाम नैव बध्नाति, विरोधित्वेन स्वस्थानसन्निकर्षेऽपि तद्बन्धस्य निषिद्धत्वात्, पराघातोच्छ्वासपर्याप्तनामानि नियमतो बध्नाति, प्रकृतप्रकृतिभ्यां सार्धं तद्बन्धस्य नियतत्वेन स्वस्थानसन्निकर्षेऽपि तथैव भणितत्वात् । 'सायव्व' इत्यादि, यशःकीर्तिनाम्नः प्राधान्येन सन्निकर्षः सातवेदनीयप्रधानसन्निकर्षवद् विज्ञेयः । 'पर' इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति-पराघातोच्छ्वासबादरत्रिकनामानि नियमेन बध्नाति, प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धस्य तद्बन्धाविनाभावित्वात् । 'णउ' इत्यादि, सूक्ष्मत्रिकं नैव बध्नाति । "धुव" इत्यादि. उच्चैर्गोत्रं बध्नन् सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिमनुष्यद्विकपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपाणामष्टपञ्चाशत्प्रकृतीनां बन्धं नियमेन निर्वर्तयति, उच्चैर्गोत्रेण सहासां बन्धस्य नैयत्यात्, मनुष्यायुषो बन्धं विकल्पेन विदधाति, तस्य कदाचिदेव बध्यमानत्वात् । तिर्यग्द्विकजातिचतुष्कस्थावरचतुष्काऽऽतपद्विकनीचैर्गोत्ररूपास्त्रयोदशप्रकृतीर्नैव बध्नाति, विरोधात् । उक्तेभ्योऽवशिष्टानां वेदनीयादीनामन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, प्रकृतप्रकृत्या सहासां बन्धस्यावश्यम्भावित्वात् । शेषप्रकृतयश्चेमाः-अन्यतरवेदनीयमन्यतरहास्यादियुगलमन्यतमवेदोऽन्यतमसंहननमन्यतमसंस्थानमन्यतरखगतिः स्थिरादियुगलषट्केऽन्यतराः षट्प्रकृतयश्चेति । "ओघव्व" इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्षं ओघवद् विज्ञेयः । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-एकेन्द्रियादिजातिचतुष्कं स्थावरचतुष्कमातपोद्योतनाम्नी चेति। ॥६४३-६५॥ अथ मनुष्यौघादिमार्गणासु तमाह

तिमणुयओरालेसुं सव्वाणोघव्व णवरि जिणबंधी ।
णउरलदुगवइराणि ण देवविउव्वियदुग णियमा ॥६६६॥
णरतिगउरलदुगवइरबंधी णो चेव बंधए तित्थं ।
णियमाहिन्तो बंधइ थीणद्धितिगाणचउगाणि ॥६६७॥

(प्रे०) 'तिमणुय' इत्यादि, मनुष्यौघपर्याप्तमनुष्यमानुषीरूपासु तिसृषु मार्गणास्वौदारिककाययोगमार्गणायां च सर्वासां प्रकृतीनां सन्निकर्ष ओघवदस्ति। 'णवरि' इत्यादिनाऽपवादमाह–जिननामबन्धको मनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननप्रकृतिपञ्चकं नैव बध्नाति, देवद्विकवैक्रियद्विके च नियमेन बध्नाति, मार्गणास्वासु जिननाम्ना सह देवप्रायोग्यप्रकृतीनामेव बन्धभावात्। 'णर' इत्यादि, मनुष्यत्रिकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननप्रकृतिबन्धको जिननाम नैव बध्नाति, तुर्यादिगुणस्थानकेष्वेव तस्य बध्यमानत्वान्मनुष्यत्रिकादिप्रकृतीनां चात्र प्रथमद्वितीयगुणस्थानकयोरेव बध्यमानत्वात्। 'णियमाहि...ो' इत्यादि, स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कप्रकृतिसप्तकं नियमेन बध्नाति ॥६६६-६७॥

अथ देवौघादिमार्गणासु परस्थानसन्निकर्ष प्रतिपादयन्नाह

गुणचत्तधुवोरालियपरघाऊसासबायरतिगाणं ।
एग बंधतो सुरईसाणंतविउवदुगेसु ॥६६८॥
बंधइ णियमा सेसा चउचत्ता बंधए व अणमिच्छा।
थीणद्धितिगदुआउगजिणुरलुवगायवदुगाणि ॥६६९॥
अण्णयरा अवि बधइ वा सरसंघयणखगइपयडीओ।
बधइ णियमा सेसा अण्णयरा वेअणीआई ॥६७०॥
पणयालीसधुवउरलपरघाऊसासबायरतिगाणि ।
णियमेण बधंतो थीणद्धितिगाणचउगाणं ॥६७१॥
मिच्छायवाउदुगुरलुवगाणि व ण उ जिणं व अण्णयरा।
संघयणस्सरखगई णियमाऽण्णा वेअणीआई ॥६७२॥
बंधइ व सायबंधी थीणद्धितिगाणचउगमिच्छाणि।
तिरिमणुयाउगआयवदुगतित्थोरालुवगाणि ॥६७३॥
सेसगुणचत्तधुवुरलपरघाऊसासबायरतिगाणि ।
बंधइ णियमाहिन्तो ण चेव बधेइ पडिवक्खं ॥६७४॥
संघयणस्सरखगई वाऽण्णयरा वि णियमाऽण्णवेआई।
एव हवेज्ज दुजुगलअसायतिथिराइजुगलाणं ॥६७५॥
बधइ व मिच्छबंधी दुआउआयवदुगुरलुवगाणि ।
णियमा धुवबंधिउरलपरघाऊसासबायरतिगाणि ॥६७६॥ (गीतिः)
तित्थयरं णो बंधइ सरसंघयणखगई वि वाऽण्णयरा।
बंधइ णियमा सेसा अण्णयरा वेअणीआई ॥६७७।
एमेव पापुमहुंडगदुहगाणादेयणीअगोआणं ।
णवरि ण पडिवक्खा वा मिच्छं कुहगाइतिगबंधी ॥६७८॥
तिरियाउ बंधंतो मिच्छत्तायवदुगुरलुवंगाणि ।
वा बधए ण चेव हि णरतिगतित्थुच्चगोआणि ॥६७९॥

धुवणीअतिरिदुगउरलपरघाऊसासवायरतिगाणि ।
बंधइ णियमाऽण्णयरा अवि वा संघयणसरखगई ॥६८०॥
बंधइ णियमा सेसा वारस अण्णयरवेअणीआई ।
तिरिदुगउज्जोआणं एव णवरं व तिरियाउ ॥६८१॥
णियमेगिंदियबंधी धुवणपुमतिरिदुगहुंडुरलणीअ ।
परघूसासा थावरदुहगाणादेयवायरतिगाणि ॥६८२॥ (गीति)
णियमाऽण्णयरा छ दुजुगलवेअणीअतिथिराइजुगलाणं ।
तिरियाउआयवदुगं व ण सेसा थावरायवाणेवं ॥६८३॥ (गीति)
णिरयव्वऽण्णाण णवरि जिणस्स बंधो भवे ण भवणतिगे ।
वेउव्वमीसजोगे बंधो आऊण णेव भवे ॥६८४॥

(प्रे०) 'गुण' इत्यादि, देवौघभवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कसौधर्मेशानरूपासु षट्सु देवमार्गणासु वैक्रियकाययोगवैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणाद्वये च मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृत्यष्टकवर्जशेषैकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृत्यौदारिकशरीरनामपराघातोच्छ्वासबादरत्रिकरूपासु पञ्चचत्वारिंशत्प्रकृतिष्वेकतमां प्रकृतिं बध्नन् शेषाश्चतुश्चत्वारिंशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'बंधए' इत्यादि, अनन्तानुबन्धिचतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकतिर्यग्मनुष्यायुर्द्वयजिननामौदारिकाङ्गोपाङ्गातपोद्योतनामरूपाश्चतुर्दशप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । 'अण्णयरा' इत्यादि, अन्यतरत्स्वरमन्यतमसंहननमन्यतरां च खगतिं विकल्पेन बध्नाति । 'बंधइ' इत्यादि, अभिहितशेषवेदनीयाद्यन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चेमाः–एकतरं वेदनीयमेकतरं हास्यादियुगलमन्यतमो वेदोऽन्यतरा तिर्यग्मनुष्यद्वये गतिरन्यतमा जातिरेकतमसंस्थानं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयेऽन्यतरानुपूर्वी स्वरवर्जत्रसस्थावरादिनवयुगलेष्वन्यतरा नवप्रकृतयोऽन्यतरद् गोत्रं चेत्यष्टादशेति ।

"पणयालीस' इत्यादि, स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्करूपे प्रकृतिसप्तकेऽन्यतमां प्रकृतिं बध्नन् मिथ्यात्वमोहनीयप्रधानीकृतप्रकृतिवर्जशेषपञ्चचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृत्यौदारिकशरीरनामपराघातोच्छ्वासबादरत्रिकरूपा एकपञ्चाशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'मिच्छायवा' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयातपोद्योततिर्यग्मनुष्यायुर्द्वयौदारिकाङ्गोपाङ्गनामानि विकल्पेन बध्नाति । 'ण' इत्यादि, जिननाम नैव बध्नाति, तुर्यगुणस्थानक एव कस्यचिद् बन्धसत्त्वेन तद्बन्धस्य तया सह विरोधात् । 'व' इत्यादि, अन्यतमसंहननमन्यतरत्स्वरमन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, कथितशेषवेदनीयाद्यन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चाऽनन्तरोक्ता ज्ञानावरणीयादिप्रधानसन्निकर्षे कथिता एवादेयाः ।'बंधइ'इत्यादि, सातवेदनीयबन्धकः स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयतिर्यग्मनुष्यायुर्द्वयातपद्विकजिननामौदारिकाङ्गोपाङ्गनामानि विकल्पेन बध्नाति । 'सेस' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकवर्जैकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीरौदारिकशरीरनामपराघातोच्छ्वासबादरत्रिकनामानि च नियमेन बध्नाति । 'ण चेव' इत्यादि, सातवेदनीयप्रतिपक्षभूताम-

मातवेदनीयप्रकृतिं नैव बध्नाति, परावर्तमानप्रकृतित्वात् । 'संघयण' इत्यादि, अन्यतमं संहननमन्यतरत्स्वरमन्यतरां च खगतिं विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषवेदाद्यन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्च पूर्ववज्ज्ञेयाः, नवरं सातासातवेदनीयद्वयं न कथनीयम् । 'एवं' इत्यादि, हास्यशोकारत्यरत्यसातवेदनीयस्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिनाम्नां प्राधान्येन सन्निकर्षः सातवेदनीयप्रधानसन्निकर्षवदवसेयः । 'बंधइ' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयप्रधानसंनिकर्षः कथ्यते, स चानन्तरोक्तनिद्रानिद्रासनिकर्षवद् भाव्यः । गाथाद्वयी कण्ठ्या ।

"एमेव" इत्यादि, नपुंसकवेदहुण्डकसंस्थानदुर्भगानादेयनीचैर्गोत्रप्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्षो मिथ्यात्वमोहनीयवद् विज्ञातव्यः । "णवरि" इत्यादिनाऽपवाद उच्यते—नपुंसकवेदप्रभृतिप्रकृतिबन्धकस्तत्प्रतिपक्षभूतां प्रकृतिं नैव बध्नाति, दुर्भगानादेयनाम्नोर्नीचैर्गोत्रस्य च बन्धको मिथ्यात्वमोहनीयं विकल्पेन बध्नाति, प्रथमगुणस्थानके तेन तस्य बध्यमानत्वाद् द्वितीयगुणस्थानके च तेनाऽबध्यमानत्वात् ।

"तिरिआउ" इत्यादि, तिर्यगायुर्बध्नन् मिथ्यात्वमोहनीयातपोद्योतौदारिकाङ्गोपाङ्गप्रकृतिचतुष्कं विकल्पतो बध्नाति । "ण चेव" इत्यादि, मनुष्यत्रिकजिननामोच्चैर्गोत्रप्रकृतिपञ्चकं नैव बध्नाति, प्रकृतिबन्धविरोधात् । 'धुव' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयवर्जषट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीर्नीचैर्गोत्रतिर्यग्द्विकौदारिकशरीरनामपराघातोच्छ्वासबादरत्रिकरूपा नव प्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति । 'ध' इत्यादि, अन्यतमं संहननमन्यतरं स्वरमन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति । "बंधइ" इत्यादि, उक्तशेषान्यतरवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः एकतरं वेदनीयमेकतरं हास्यादियुगलमन्यतमो वेदोऽन्यतमा जातिरेकतमं संस्थानं त्रसस्थावर-स्थिराऽस्थिरशुभाशुभसुभगदुर्भगादेयानादेययशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलषट्केऽन्यतराः षट्प्रकृतयश्चेति । 'तिरि' इत्यादि, तिर्यग्द्विकोद्योतनाम्नां प्रधानतया सन्निकर्षस्तिर्यगायुष्कवदस्ति, तिर्यग्द्विकादिप्रकृतिबन्धकस्तिर्यगायुर्विकल्पेन बध्नाति ।

"णियमे" त्यादि, एकेन्द्रियजातिनामबन्धकः सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतिनपुंसकवेदतिर्यग्द्विकहुण्डकसंस्थानौदारिकशरीरनीचैर्गोत्रपराघातोच्छ्वासस्थावरदुर्भगानादेयबादरत्रिकरूपा एकषष्टिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । "णयरा" इत्यादि, हास्यरतिशोकारतियुगलद्वयेऽन्यतरद् युगलं साताऽसातवेदनीयद्वयेऽन्यतरद् वेदनीयं स्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रः प्रकृतयश्चेति षडन्यतराः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । "तिरिया" इत्यादि, तिर्यगायुरातपोद्योतप्रकृतित्रयं विकल्पेन बध्नाति । 'ण' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीर्नैव बध्नाति, एकेन्द्रियजातिनाम्ना सह शेषप्रकृतीनां बन्धस्य विरुद्धत्वात्, ताश्चेमाः-स्त्रीपुरुषवेदद्वयं मनुष्यत्रिकं पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिकाङ्गोपाङ्गं संहननषट्कं प्रथमादिसंस्थानपञ्चकं खगतिद्वयं त्रसनाम सुभगत्रिकं दुःस्वरं जिननामो-

च्चैर्गोत्रं चेति सप्तत्रिंशतिरिति । "थावर" इत्यादि, स्थावराऽऽतपनाम्नोः प्राधान्येन सन्निकर्ष एकेन्द्रियजातिप्रधानसन्निकर्षवदवसेयः । "णिरयव्व" इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीनां प्रधानभावेन सन्निकर्षो नरकौघसन्निकर्षवद् विज्ञेयः । "णवरि" इत्यादिनाऽपवाद उच्यते–भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्करूपासु तिसृषु देवमार्गणासु जिननाम्नो बन्धो नास्ति तस्मात्तदाश्रित्य सन्निकर्षोऽपि नास्ति । व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिरितिन्यायेन प्रकृतदेवौघादिमार्गणासु यया यया प्रकृत्या सह जिननाम्नः सन्निकर्षोऽभिहितः, स सन्निकर्षो भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कमार्गणासु तद्बन्धाभावान्न ग्राह्यः । वैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणायामायुषः सन्निकर्षो नास्ति, अस्यां मार्गणायामायुर्बन्धाभावात् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-स्त्रीपुरुषवेदमनुष्यायुर्मनुष्यद्विकपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कहुण्डवर्जसंस्थानपञ्चकखगतिद्वयजिननामत्रससुभगत्रिकदुःस्वरोच्चैर्गोत्ररूपाः सप्तत्रिंशतिरिति ॥६६८ ८४॥

अथा-ऽऽनतादित्रयोदशमार्गणासु स प्रतिपाद्यते

एगं बंधेमाणो गेविज्जंतेसु आणयाईसुं ।
गुणचत्तधुवणरउरलजुगलपणिंदितसचउगाणं ॥६८५॥
परघाऊसासाओ णियमाऽण्णा बंधए व बंधेइ ।
थीणद्धितिगाणचउगमिच्छणराउजिणणामाणि ॥६८६॥
बंधइ णियमाऽण्णयराऽण्णवेअणीआइगा णराउस्स ।
एवं एमेव भवे पुमदुजुगलवेअणीआणं ॥६८७॥
आइमसंघयणागिइपसत्थखगइथिरछक्कअथिराणं ।
असुहअजसउच्चाण य णवरं बंधइ ण पडिवक्खा ॥६८८॥
एगं बंधेमाणो अणथीणद्धियतिगाण बंधेइ ।
मिच्छत्तणराऊणि व ण चेव बंधेइ तित्थयरं ॥६८९॥
धुवणउरलदुगपरघाऊसासपणिंदितसचउक्काणि ।
बंधइ णियमा सेसा अण्णयरा वेअणीआई ॥६९०॥
थीचउसंघयणागिइकुखगइदुहगतिगणीअगोआणं ।
एमेव सण्णियासो णवरं बंधइ ण पडिवक्खा ॥६९१॥
धुवणउरलदुगपरघाऊसासपणिंदितसचउक्काणि ।
बंधेइ मिच्छबंधी णियमा ण जिणं व मणुयाउं ॥६९२॥
बंधइ णियमा चउदस सेसा अण्णयरवेअणीआई ।
एवं णपुमछिवट्ठगहुंडाण परं ण पडिवक्खा ॥६९३॥
जिणबंधी वाउं जुगलवेअणीअतिथिराइजुगलाण ।
अण्णयरा छ व णियमा धुवगुणचत्तपुमसेससुहा ॥६९४॥

(प्रे०) "एगं" इत्यादि, आनतप्राणतारणाच्युतनवग्रैवेयकरूपासु त्रयोदशदेवमार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकवर्जैकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतिमनुष्यद्विकौदारिकद्विकपञ्चेन्द्रियजातित्रस-

चतुष्केषु पराघातोच्छ्वासयोश्चैकतमां प्रकृतिं बध्नन् नियमेनैतास्तदन्याः प्रकृतीर्बध्नाति । 'च' इत्यादि, स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयमनुष्यायुर्जिननामरूपा दशप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । "बंधइ" इत्यादि, उक्तशेषवेदनीयाद्यन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चेमाः-एकतरं वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलमन्यतमो वेदोऽन्यतमं संहननमन्यतमं संस्थानमन्यतरा खगतिः स्थिरास्थिरादिषट्युगलेष्वन्यतराः षट्प्रकृतयोऽन्यतरद् गोत्रं चेति चतुर्दशेति । "पराउस्स" इत्यादि, मनुष्यायुष्कस्य सन्निकर्ष एवमेव विज्ञेयः । "एमेव" इत्यादि, पुरुषवेदहास्यशोकरत्यरतिसातासातवेदनीयप्रकृतीनां वज्रर्षभनाराचसंहननसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतिस्थिरषट्काऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्त्युच्चैर्गोत्रप्रकृतीनां च प्राधान्येन सन्निकर्षः प्रकृतैकतरप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षवद् विज्ञातव्यः । "णवरं" इत्यादिनापवादं प्रदर्शयति—आसां प्रकृतीनां बन्धकस्तत्प्रतिपक्षप्रकृतिं नैव बध्नाति । 'एगं' इत्यादि, अनन्तानुबन्धिचतुष्कस्त्यानर्द्धित्रिकप्रकृतिष्वेकतमां प्रकृतिं बध्नन् मिथ्यात्वमोहनीयमनुष्यायुष्कप्रकृतिद्वयं विकल्पतो बध्नाति । 'ण चेव' इत्यादि, जिननाम नैव बध्नाति, प्रस्तुतबन्धकस्य सम्यग्दृष्टित्वाभावात् । 'धुव' इत्यादि, शेषपञ्चचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीर्मनुष्यद्विकौदारिकद्विकपराघातोच्छ्वासपञ्चेन्द्रियजातित्रसचतुष्करूपा एकादशप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति । 'सेसा' इत्यादि, उक्तशेषवेदनीयाद्यन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चानन्तरोक्ताश्चतुर्दश । 'थी' इत्यादि, स्त्रीवेदमध्यमसंहननचतुष्कमध्यमसंस्थानचतुष्काशुभखगतिदुर्भगत्रिकनीचैर्गोत्रप्रकृतीनां प्रधानतया सन्निकर्षोऽनन्तानुबन्धिप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षवद् वेदितव्यः । 'णवरं' इत्यादिना विशेषं दर्शयति—एतत्प्रकृतिबन्धकस्तत्प्रतिपक्षप्रकृतिं नैव बध्नाति । 'धुव' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयबन्धकः षट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीर्मनुष्यद्विकौदारिकद्विकपराघातोच्छ्वासपञ्चेन्द्रियजातित्रसचतुष्करूपा एकादशप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति । 'ण' इत्यादि, जिननाम नैव बध्नाति । 'व' इत्यादि, मनुष्यायुर्विकल्पेन बध्नाति । "बंधइ" इत्यादि, अभिहितशेषचतुर्दशवेदनीयाद्यन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चानन्तरोक्ता एवात्र ग्राह्याः । 'एवं' इत्यादि, नपुंसकवेदसेवार्तसंहननहुण्डकसंस्थानप्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्षो मिथ्यात्वमोहनीयवद् वेद्यः । 'पर' इत्यादिनाऽपवादं प्रदर्शयति—नपुंसकवेदादिबन्धकस्तत्प्रतिपक्षप्रकृतिं नैव बध्नाति । 'जिण' इत्यादि, जिननामबन्धविधायी विकल्पेनायुष्कं बध्नाति, आयुःसामान्याभिधानेऽपि नरायुषो ग्रहणं बोध्यम्, तदतिरिक्तायुषः प्रकृते बन्धाभावात् । 'जुगल' इत्यादि, हास्यरतिशोकारतियुगलद्वयेऽन्यतरद् युगलमन्यतरवेदनीयं स्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रः प्रकृतयश्चेति षट्प्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयाद्यष्टकवर्जैकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीः पुरुषवेदं शेषशुभप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति । ताश्चेमाः शेषशुभप्रकृतयः—मनुष्यद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिकद्विकं शुभसंहननं प्रथमसंस्थानं शुभखगतिः पराघातोच्छ्वासे त्रसचतुष्कं सुभग-

त्रिकमुच्चैर्गोत्रञ्चेति । शेषप्रकृतीः पुनर्न बध्नाति, तासां प्रथमद्वितीयगुणस्थानद्वय यावद् बध्य-मानत्वादिति ॥६८५-९४॥

अथ पञ्चाऽनुत्तरमार्गणासु तमाह

पंचसु अणुत्तरेसुं गुणयालीसधुवबंधिपुरिसाणं ।
सायमणुयाउथिरसुहजसजिणवज्जसुहसेसाणं ॥६९५॥
एगं बंधतोऽण्णा णियमा बंधइ व जिणणराऊणि ।
बंधइ णियमा सेसा छऽण्णयरा वेअणीआई ॥६९६॥
मणुयाउगतित्थाण एव एमेव बारसण्ह भवे ।
सायाईण णवरं ण चेव बंधेइ पडिवक्खा ॥६९७॥

(प्रे०) 'पंचसु' इत्यादि, पञ्चानुत्तरमार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयाद्यष्टप्रकृतिवर्जकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिपुरुषवेदप्रकृतिषु सातवेदनीयमनुष्यायुःस्थिरशुभयशःकीर्तिजिननामवर्जशेषशुभप्रकृतिषु चैकतमा प्रकृतिं बध्नन् तदतिरिक्ता अन्याः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'व' इत्यादि, जिननाममनुष्यायुःप्रकृतिद्वयं विकल्पतो बध्नाति । ताश्चेमाः- शेषशुभप्रकृतयः—मनुष्यगतिः पञ्चेन्द्रिय जातिरौदारिकद्विकं वज्रर्षभनाराचसंहननं समचतुरस्रसंस्थानं मनुष्यानुपूर्वी सुखगतिस्त्रसचतुष्कं सुभगत्रिकं पराघातोच्छ्वासनामनी उच्चैर्गोत्रं चेति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषान्यतरवेदनीयादिषट्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चैताः—अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलं स्थिराऽस्थिर-शुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रः प्रकृतयश्चेति । 'मणुया' इत्यादि, मनुष्यायुर्जिननामप्रकृत्योः प्राधान्येन सन्निकर्षः प्रकृत्यैकतरप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षवदवसातव्यः । 'एमेव' इत्यादि, साताऽसातवेदनीयहास्यरतिशोकारतिस्थिरशुभयशःकीर्त्यस्थिराशुभायशःकीर्तिरूपाणां द्वादशप्रकृतीनां प्रधानभावेन सन्निकर्षः प्रकृत्यैकतरप्रकृतिसन्निकर्षवदधिगन्तव्यः । 'णवरं' इत्यादिनाऽपवादं प्रतिपादयति-सातवेदनीयादिप्रकृतिबन्धकस्तत्प्रतिपक्षभूताऽसातवेदनीयादिप्रकृतीर्नैव बध्नाति, परावर्तमानप्रकृतित्वात् ॥६९५-७॥

अथ तेजःकायवायुकायमार्गणासु परस्थानसंनिकर्षोऽभिधीयते

सव्वागणिवाऊसु एगं धुवतिरिदुगुरलणीआणं ।
बंधतो णियमाऽण्णा मधयणसरखगई व अण्णयरा ॥६९८॥ (गीति.)
तिरियाउगआयवदुगपरघाऊसासउरलुवंगाणि ।
वा णियमाऽण्णयराऽण्णा तिरियाउस्सेवमेव भवे ॥६९९॥
एवं णपुमजुगलवेअणीअहुंडगपणायिराईण ।
बायरपत्तेआण य णवरं बंधइ ण पडिवक्खा ॥७००॥
इत्थि बंधतो धुवतिरियउरलदुगपणिंदिपरघाया ।
सह ऊसासतसचउगणीआइ बंधए णियमा ॥७०१॥

वेअदुगायववथावरजाइचउक्काणि णेव बंधइ वा ।
तिरियाउज्जोआऽण्णा णियमाऽण्णयरा भवे एवं ॥७०२॥
पुमपणसंढयरणागिइसुहखगइसुहगतिगाण एमेव ।
कुखगइसराण णवरं णियमा अण्णयरचउजाई ॥७०३॥
पंचिंदियबंधी धुवतिरिउरलतसदुगणीअपत्तेआ ।
णियमा वा तिरियाउगपरघाऊसासउज्जोआ ॥७०४॥
जोइचउगयावरदुगआयवसाहारणाणि बंधइ णो ।
सरखगई वा णियमाऽणऽण्णयरा वेअणीआई ॥७०५॥
उरलोवंगछिवट्ठगतसाण पंचिंदियव्व होइ पर ।
एगिंदियं ण बंधइ णियमा सेसाऽण्णयरजाई ॥७०६॥
परघाऊसासाणं पज्जथिरसुहाण होइ उरलव्व ।
णवरं ण अपज्जत्तं णियमा पज्जपरघायऊसासा ॥७०७॥
धुवणपुमतिरिदुगउरलहुंडगपंचअथिराइणीआणि ।
णियमा अपज्जबंधी वाउछिवट्ठुरलुवंगाणि ॥७०८॥
सत्त पणजाइदुजुगलेदुवेअणीअतितसाइजुगलाणं ।
बंधइ णियमाऽण्णयरा ण उ बंधइ सेसछव्वीसा ॥७०९॥
उरलव्व जसस्स णवरि परघाऊसासबायरतिगाणि ।
णियमा ण उ अजससुहुमतिगाणि सेसाण ओघव्व ॥७१०॥

(प्रे०) 'सव्व' इत्यादि, ओघसूक्ष्मौघबादरौघपर्याप्तसूक्ष्मपर्याप्तबादराऽपर्याप्तसूक्ष्माऽपर्याप्तबादरभेदेन सप्तसु तेजस्कायमार्गणासु सप्तसु च वायुकायमार्गणासु सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतिषु तिर्यग्द्विकौदारिकशरीरनीचैर्गोत्रप्रकृतिचतुष्के चैकतमां प्रकृतिं बध्नन् तदतिरिक्ताः शेषा एताः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'संघयण' इत्यादि, अन्यतमसंहननमन्यतरस्वरमन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति । 'तिरिय' इत्यादि, तिर्यगायुरातपोद्योतपराघातोच्छ्वासौदारिकाङ्गोपाङ्गनामानि विकल्पतो बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, अभिहितशेषाऽन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चेमाः—एकतरं वेदनीयमेकतरं हास्यादियुगलमन्यतमो वेदो जातिपञ्चकेऽन्यतमा जातिरन्यतमसंस्थानं स्वरवर्जत्रसस्थावरादिनवयुगलेष्वन्यतरा नवप्रकृतयश्चेति पञ्चदशेति । 'तिरिया' इत्यादि, तिर्यगायुषः प्राधान्येन सन्निकर्षो निरुक्तैकतरप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षवद् विज्ञेयः । 'एवं' इत्यादि, नपुंसकवेदहास्यशोकरत्यरतिमाताऽसातवेदनीयहुण्डकसंस्थानास्थिराशुभदुर्भगानादेयायशःकीर्तिबादरप्रत्येकनामप्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्षः प्रकृतैकतरप्रकृतिसन्निकर्षवज्ज्ञेयः । 'णवरं' इत्यादिनाऽपवाद उच्यते—नपुंसकवेदादिप्रकृतिबन्धकस्तत्प्रतिपक्षप्रकृतिं नैव बध्नाति । 'इत्थि' इत्यादि, स्त्रीवेदबन्धकः सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीस्तिर्यग्द्विकौदारिकद्विकपञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्कनीचैर्गोत्रप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति । 'वेअ' इत्यादि, पुरुषनपुंसकवेदद्वयातपस्थावरचतुष्कजातिचतुष्करूपा एकादशप्रकृतीर्नैव बध्नाति । 'वा' इत्यादि, तिर्यगायुरुद्योतप्रकृती विकल्पतो बध्नाति । 'ऽण्णा'

इत्यादि, उक्तातिरिक्तान्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति। ताश्चेमाः—एकतरं वेदनीयमेकतरं हास्यादियुगलमेकतमं संहननमेकतमं संस्थानमन्यतरा खगतिः स्थिरास्थिरादियुगलषट्केऽन्यतराः षट्प्रकृतयश्चेत्येकादशेति। 'भवे' इत्यादि, पुरुषवेदप्रथमादिपञ्चसंहननसम्थानशुभखगतिसुभगत्रिकलक्षणानां पञ्चदशप्रकृतीनां सन्निकर्षः स्त्रीवेदवद् विज्ञेयः। 'एमेव' इत्यादि, कुखगति दुःस्वरनाम्नोरपि परस्थानसन्निकर्षः स्त्रीवेदवद् बोध्यः केवलं द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्केऽन्यतराजातिर्नियमतो बध्यते। तथा निरुक्तपुरुषवेदादिसप्तदशप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षे स्वप्रतिपक्षप्रकृति नैव बध्नातीति व्याख्येयम्। "पंचिंदिय" इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातिबन्धकः सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतितिर्यग्द्विकौदारिकद्विकत्रसबादरनीचैर्गोत्रप्रत्येकनामप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति। 'वा' इत्यादि, तिर्यगायुःपराघातोच्छ्वासोद्योतनामप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति। 'जाइ' इत्यादि, एकेन्द्रियादिजातिचतुष्कस्थावरद्विकातपसाधारणनामानि नैव बध्नाति। 'सर' इत्यादि, अन्यतरत्स्वरमन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति, अपर्याप्तप्रायोग्यप्रकृतिबन्धवेलायां तेनासां प्रकृतीनामबध्यमानत्वात्पर्याप्तप्रायोग्यबन्धवेलायां च बध्यमानत्वात्। "णियमा" इत्यादि, उक्तशेषवेदनीयाद्यन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः—एकतरं वेदनीयमेकतरं हास्यादियुगलमन्यतमो वेदोऽन्यतमं संस्थानमन्यतमं संहननं पर्याप्तापर्याप्तस्थिरास्थिरशुभाशुभसुभगदुर्भगादेयानादेययशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलषट्केऽन्यतराः षट्प्रकृतयश्चेति द्वादशेति। "ओरलो" इत्यादि, औदारिकाङ्गोपाङ्गसेवार्तसंहननत्रसनामप्रकृतित्रयस्य प्राधान्येन सन्निकर्षः पञ्चेन्द्रियजातिप्रधानसन्निकर्षवद् विज्ञेयः। 'पर' इत्यादिनाऽपवादमाह—एकेन्द्रियजातिमेतत्प्रकृतिबन्धको नैव बध्नाति। तदतिरिक्तशेषाऽन्यतरजातिं नियमेन बध्नाति। 'परघा' इत्यादि, पराघातोच्छ्वासपर्याप्तस्थिरशुभप्रकृतिपञ्चकस्य सन्निकर्ष औदारिकशरीरनामवदस्ति। "णवरं" इत्यादि, एतत्प्रकृतिबन्धकोऽपर्याप्तनाम नैव बध्नाति, पर्याप्तपराघातोच्छ्वासनामानि नियमेन बध्नाति।

'धुव' इत्यादि, अपर्याप्तनामबन्धकः सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतिनपुंसकवेदतिर्यग्द्विकौदारिकशरीरनामहुण्डकसंस्थानाऽस्थिराशुभदुर्भगानादेयायशःकीर्तिनामनीचैर्गोत्ररूपा अष्टपञ्चाशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति। 'वाउ' इत्यादि, तिर्यगायुःसेवार्तसंहननौदारिकाङ्गोपाङ्गप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति। 'सत्त' इत्यादि, जातिपञ्चकेऽन्यतमा जातिर्हास्यादियुगलद्वयेऽन्यतरयुगलमन्यतरद् वेदनीयं त्रसस्थावर-बादरसूक्ष्म-प्रत्येक साधारणलक्षण-युगलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रः प्रकृतयश्चेति सप्तप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति। 'णाउ' इत्यादि, उक्तातिरिक्तषड्विंशतिप्रकृतीर्नैव बध्नाति। ताश्चेमाः—स्त्रीपुरुषवेदद्वयं प्रथमादिसंहननपञ्चकं प्रथमादिसंस्थानपञ्चकं खगतिद्वयमातपोद्योतद्वयं पराघातोच्छ्वासनामनी पर्याप्तस्थिरषट्कदुःस्वरप्रकृतयश्च। "ओरलव" इत्यादि, यशःकीर्तिनाम्नः प्राधान्येन सन्निकर्ष औदारिकशरीरनामवज्ज्ञेयः। 'णवरि' इत्यादि, पराघातोच्छ्वासबादरत्रिकनामानि

नियमेन बध्नाति, अयशःकीर्तिसूक्ष्मत्रिकनामानि नैव बध्नाति । "सेसाण" इत्यादि, उक्तव्यतिरिक्तनवप्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्षे ओघवद्वसेयः, नवरमबध्यमानाः प्रकृतयः स्वप्रायोग्याः कथनीया इति । ताश्चेमाः शेषनवप्रकृतयः-जातिचतुष्कमातपोद्योतनाम्नी स्थावर सूक्ष्म-साधारणनामत्रयं चेति ॥६९८-७१०॥

इदानीमौदारिकमिश्रमार्गणायां स उच्यते

बंधंतो एगमुरलमीसे धुववंधिऊणचत्ताणं ।
णियमाऽण्णा वाऽण्णयरा संघयणउवगसरखगई ॥७११॥
व अडधुवआउदुगजिणपरघाऊसासआयवदुगाणि ।
बंधइ णियमा सेसा अण्णयरा वेअणीआई ॥७१२॥
दुजुगलअसायबायरपत्तेअथिराइतिजुगलाणेव ।
णवरं ण उ पडिवक्खे थिरसुहबंधी ण उ अपज्जं ॥७१३॥
णियमा य पज्जपरघाऊसासा बंधए ण जसबंधी ।
सुहुमतिगं खलु णियमा परघाऊसासबायरतिगाणि ॥७१४॥ (गीतिः)
बंधइ व सायबंधी धुववंधिदुआउआयवदुगाणि ।
जिणपरघाऊसासा ण असायं वाऽण्णयरसेसा ॥७१५॥
पुमबंधी थीणद्धियतिगमिच्छाणाउदुगजिणुज्जोआ ।
बंधेइ सिआ बंधइ वा अण्णयरं पि संघयणं ॥७१६॥
णियमाऽण्णधुवपणिंदियपरघाऊसासतसचउक्काणि ।
बंधइ ण दुवेआयवथावरजाइचउगाणि खलु ॥७१७॥
बंधइ णियमा सोलस सेसा अण्णयरवेअणीआई ।
एमेव आइमागिइपसत्थखगइसुहगतिगाणं ॥७१८॥
सुरगइबंधी णियमूणचत्तधुवपुमपणिंदिविउवदुगं ।
सुखगइआगिइपरघाऊसाससुराणुपुव्वी य ॥७१९॥
तसचउगं सुहगतिगं उच्चं छऽण्णयरवेअणीआई ।
व जिणं सेसा णेवं विउवदुगसुराणुपुव्विवतित्थाणं ॥७२०॥ (गीतिः)
णियमा पणिंदिबंधी गुणचत्तधुवतसजुगलपत्तेआ ।
चउजाइआयवसुहुमथावरसाहारणाणि ण उ ॥७२१॥
व उण अडधुवदुआउगपरघाऊसासतित्थउज्जोआ ।
बंधइ वाऽण्णयरा अवि पयडी संघयणसरखगई ॥७२२॥
बंधइ णियमा सोलस सेसा अण्णयरवेअणीआई ।
एवं तसस्स णवरं णियमा अण्णयरचउजाई ॥७२३॥
एगं बंधंतोऽण्णा परघाऊसासपज्जणामाण ।
णियमा दो ण अपज्जं णाणावरणव्व सेसाओ ॥७२४॥
बंधइ व उज्जवंधी मिच्छऽमथीणद्धितिगणराउजिण ।
णियमाऽण्णधुवपणिंदियपरघाऊसासतसचउक्काणि ॥ ७२५॥ (गीति.)

ण तिरितिगजाइथावरचउणायवजुगलणोअंगोआणि ।
वाऽण्णयरं संघयणं णियमाऽण्णयराऽण्णवेअणीआई ॥७२६॥
सेसाण अपज्जत्तगपणिंदितिरिसव्व परमवघोऽत्थि ।
सुरविउवदुगजिणाण उ सव्वह बंधइ व मिच्छत्तं ॥७२७॥
थीणद्धितिरिणरदुहगतिगचउअणइत्थिउरलदुगबंधे ।
अचरमसंघयणागिइकुखगइउज्जोअबंधे य ॥७२८॥

(प्रे०) 'बंधंतो' इत्यादि, औदारिकमिश्रमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकवर्जैकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतिष्वेकतमां प्रकृतिमाबध्नन् तदन्या अष्टात्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'वा' इत्यादि, अन्यतमसंहननमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतरदङ्गोपाङ्गमन्यतरत्स्वरमन्यतरां च खगतिं विकल्पतो बध्नाति । 'व' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्करूपा अष्टौ ध्रुवबन्धिप्रकृतीस्तिर्यग्मनुष्यायुर्द्वयजिननामपराघातोच्छ्वासातपोद्योतनामप्रकृतीश्च विकल्पेन बध्नाति । 'बंधइ' इत्यादि, अभिहितेतरवेदनीयाद्यन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चेमाः—अन्यतरद् वेदनीयं हास्यादियुगलद्वयेऽन्यतरद् युगलमन्यतमो वेदो देवमनुष्यतिर्यग्गतित्रयेऽन्यतमा गतिरन्यतमा जातिरौदारिकवैक्रियशरीरनामद्वयेऽन्यतरत्शरीरनामान्यतमसंस्थानं देवमनुष्यतिर्यगानुपूर्वित्रयेऽन्यतमाऽऽनुपूर्वी स्वरवर्जत्रसस्थावरादियुगलनवकेऽन्यतरा नवप्रकृतयोऽन्यतरद् गोत्रं चेत्येकोनविंशतिरिति । 'दुजुगल'इत्यादि,हास्यरतिशोकारतियुगलद्वयाऽसातवेदनीयबादरप्रत्येकस्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिनाम्नामेवमेवाऽनन्तरोक्तवत्सन्निकर्षो विज्ञेयः । 'णवरं' इत्यादिनाऽपवादमुपदर्शयति-एतत्प्रकृतिबन्धकस्तत्प्रतिपक्षप्रकृतिं नैव बध्नाति, स्थिरशुभनाम्नोर्बन्धकोऽपर्याप्तनाम नैव बध्नाति, ताभ्यां सह पर्याप्तनाम्न एव बध्यमानत्वात् । 'णियमा' इत्यादि, पर्याप्तपराघातोच्छ्वासनामानि नियमेन बध्नाति । 'ण' इत्यादि. यशःकीर्तिनामबन्धकः सूक्ष्मत्रिकं नैव बध्नाति, पराघातोच्छ्वासबादरत्रिकनामानि नियमेन बध्नाति ।

'बंधइ' इत्यादि, सातवेदनीयबन्धकः सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीरातपोद्योततिर्यग्मनुष्यायुःप्रकृतिचतुष्कं जिननामपराघातोच्छ्वासनामानि च विकल्पेन बध्नाति, यतः सातवेदनीयस्य बन्धकः सयोगिकेवली निरुक्तप्रकृतीर्न बध्नाति, तदन्यः सातवेदनीयबन्धकस्तु यथायोगमुक्तप्रकृतीर्बध्नाति । 'ण' इत्यादि, असातवेदनीयं नैव बध्नाति, परावर्तमानप्रकृतित्वेन विरोधात् । तथोक्तशेषाऽन्यतरप्रकृतीरपि विकल्पेन बध्नाति, सयोगिकेवली आसामन्यतरप्रकृतीनामपि सर्वथाऽबन्धकः शेषाः पुनर्बन्धकाश्चेति कृत्वा । ताश्चेमाः—अन्यतरद् हास्यादियुगलमन्यतमो वेदो देवमनुष्यतिर्यग्गतित्रयेऽन्यतमा गतिरन्यतमा जातिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वयेऽन्यतरत्शरीरं तदङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतरदङ्गोपाङ्गमन्यतमं संहननमन्यतमं संस्थानमन्यतरा खगतिर्देवमनुष्यतिर्यगानुपूर्वीत्रयेऽन्यतमानुपूर्वी त्रसस्थावरादिदशयुगलानामन्यतरा दशप्रकृतयोऽन्यतरद् गोत्रं चेति द्वाविंशतिरिति।'पुमबंधो' इत्यादि, पुरुषवेद-

बन्धकः स्त्यानर्द्धित्रिकमिथ्यात्वमोहनीयानन्तानुबन्धिचतुष्कतिर्यग्मनुष्यायुर्द्वयजिननामोद्योतनामरूपा द्वादशप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति ।'बंधइ वा'इत्यादि,अन्यतमं संहननं विकल्पेन बध्नाति ।'णियमा' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकवर्जैकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीः पञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपप्रकृतिसप्तकं च नियमेन बध्नाति । 'ण' इत्यादि,स्त्रीनपुंसकवेदद्वयातपस्थावरचतुष्कजातिचतुष्करूपा एकादशप्रकृतीर्नैव बध्नाति । 'बंधइ' इत्यादि, उक्तव्यतिरिक्तवेदनीयाद्यन्यतरषोडशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः—अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलं देवमनुष्यतिर्यग्गतित्रयेऽन्यतमा गतिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वयेऽन्यतरच्छरीरमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतराङ्गोपाङ्गमन्यतमं संस्थानमन्यतरा खगतिर्देवमनुष्यतिर्यगानुपूर्वीत्रयेऽन्यतमानुपूर्वी स्थिरास्थिरादियुगलषट्केऽन्यतरषट्प्रकृतयोऽन्यतरद् गोत्रञ्चेति । 'एमेव'इत्यादि, समचतुरस्रसंस्थानसुखगतिसुभगत्रिकप्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्षः पुरुषवेदप्रधानसन्निकर्षवदवसेयः ।

"सुरगइबंधी"इत्यादि, देवगतिबन्धको मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकवर्जैकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीः पुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसुखगतिसमचतुरस्रसंस्थानपराघातोच्छ्वाससुरानुपूर्वीत्रसचतुष्कसुभगत्रिकोच्चैर्गोत्ररूपाः सप्तदशप्रकृतीस्तथाऽन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलं स्थिराऽस्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रः प्रकृतीश्चेति षडन्यतरप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति । 'च' इत्यादि, जिननाम विकल्पेन बध्नाति । 'सेसा' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीर्नैव बध्नाति, ताश्चेमाः—मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्करूपं प्रकृत्यष्टकं स्त्रीनपुंसकवेदौ तिर्यक्त्रिकं मनुष्यत्रिकमेकेन्द्रियादिजातिचतुष्कमौदारिकद्विकं संहननषट्कं द्वितीयादिसंस्थानपञ्चकमशुभखगतिः स्थावरचतुष्कं दुर्भगत्रिकमातपोद्योतनाम्नी नीचैर्गोत्रं चेति चतुश्चत्वारिंशत्प्रकृतयः । 'एवं'इत्यादि, वैक्रियद्विकदेवानुपूर्वीजिननामरूपस्य प्रकृतिचतुष्कस्य प्राधान्येन सन्निकर्षः सुरगतिप्रधानसन्निकर्षवदवसेयः ।

'णियमा' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातिबन्धको मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकवर्जशेषैकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीस्त्रसबादरप्रत्येकप्रकृतित्रयं च नियमेन बध्नाति । 'चउ' इत्यादि, एकेन्द्रियादिजातिचतुष्कातपसूक्ष्मस्थावरसाधारणनामानि नैव बध्नाति ।'व'इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्करूपं ध्रुवबन्धिप्रकृत्यष्टकं तिर्यग्मनुष्यायुर्द्वयपराघातोच्छ्वासतीर्थकृन्नामोद्योतरूपाः षट्प्रकृतीरन्यतमं संहननमन्यतरस्वरमन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति । 'बंधइ' इत्यादि, उदितेतरवेदनीयाद्यन्यतरषोडशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चेमाः—अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलमन्यतमो वेदो देवमनुष्यतिर्यग्गतित्रयेऽन्यतमा गतिरौदारिकवैक्रियशरीरनामद्वयेऽन्यतरत् शरीरनाम तदन्यतरोपाङ्गमन्यतमं संस्थानं देवमनुष्यतिर्यगानुपूर्वीत्रयेऽन्यतमानुपूर्वी पर्याप्ताऽपर्याप्तस्थिरास्थिरशुभाशुभसुभगदुर्भगादेयानादेययशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलषट्केऽन्य-

तराः पट्प्रकृतयोऽन्यतरद् गोत्रं चेति । 'एवं' इत्यादि, त्रसनाम्नः प्रधानतया सन्निकर्षः पञ्चेन्द्रियजातिवदवसेयः । 'णवरं' इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति- त्रसनामबन्धको द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्केऽन्यतरां जातिं नियमेन बध्नाति ।

'एगं' इत्यादि, पराघातोच्छ्वासपर्याप्तेष्वेकां प्रकृतिमाबध्नन् नियमादन्यतरे प्रकृती बध्नाति, अपर्याप्तनाम नैव बध्नाति । 'णाणा' इत्यादि, उक्तप्रकृतिव्यतिरिक्तानां प्रकृतीनां प्रकृते सन्निकर्षो ज्ञानावरणप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षवद् विज्ञेयः ।

'बधइ' इत्यादि, उच्चैर्गोत्रबन्धको मिथ्यात्वमोहनीयाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कस्त्यानर्द्धित्रिकमनुष्यायुर्जिननामप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयाद्यष्टकवर्जशेषध्रुवबन्धिप्रकृतीः पञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपाः सप्तप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'ण' इत्यादि, तिर्यग्त्रिकजातिचतुष्कस्थावरचतुष्कातपोद्योतनीचैर्गोत्ररूपाश्चतुर्दशप्रकृतीर्नैव बध्नाति । 'वा' इत्यादि, अन्यतमं संहननं विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तातिरिक्तशेषवेदनीयाद्यन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चेमाः—अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलमन्यतमो वेदो देवमनुष्यगतिद्वयेऽन्यतरा गतिरन्यतमा जातिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वयेऽन्यतरच्छरीरनामौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतरदङ्गोपाङ्गनामान्यतमसंस्थानं देवमनुष्यानुपूर्वीद्वयेऽन्यतरानुपूर्वी खगतिद्वयेऽन्यतरा खगतिः स्थिरास्थिरादियुगलपट्केऽन्यतराः पट्प्रकृतयश्चेति पोडशेति । 'सेसाण' इत्यादि, उक्तमतिज्ञानावरणादिसप्ततिप्रकृतीर्विहायावशिष्टानां स्त्यानर्द्धित्रिकादिचतुश्चत्वारिंशत्प्रकृतीनां परस्थानसन्निकर्षः 'अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्वत्' अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणोक्ततत्तत्प्रकृतिप्रधानपरस्थानसन्निकर्षवदवगन्तव्यः, प्रोक्तप्रकृतीनां प्रकृतमार्गणायां सम्यग्दृशामबन्धप्रायोग्यत्वेन तत्तुल्यप्रायत्वात् , केवलं प्रकृतमार्गणायां सुरद्विकवैक्रियद्विक-जिननामलक्षणानां पञ्चप्रकृतीनां केवलसम्यग्दग्बन्धार्हाणामबन्धोऽधिकृतस्तत्तच्छेषप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षे वाच्यः, तासां केवलसम्यग्दगर्हत्वेन प्रधानीकृतशेषप्रकृतीनां सम्यग्दृगनर्हत्वेन शेषप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षे तासामबध्यमानत्वात् अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणायां पुनः सुरद्विकादिप्रकृतिपञ्चकस्य मूलत एवाबन्धाच्च । तथा प्रकृतमार्गणायां स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्क- स्त्रीवेद-नरत्रिक -तिर्यक्त्रिकौ-दारिकद्विका ऽचरमसंहननपञ्चक-मध्यमसंस्थानचतुष्क--कुखगत्यु-द्योत दुर्भगत्रिकलक्षणानामेकत्रिंशतः प्रकृतीनां सास्वादनगुणस्थानकेऽपि बध्यमानत्वेन तत्र च मिथ्यात्वस्याबध्यमानत्वेन स्त्यानर्द्धित्रिकाद्येकत्रिंशत्प्रकृतिमध्यादन्यतमप्रकृतिप्रधाने परस्थानसन्निकर्षे मिथ्यात्वमोहनीयस्य स्याद्बन्धो लभ्यते, अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणायां केवलमिथ्यादृशामेव प्रवेशेन तत्स्याद्बन्धस्यालाभः, अत एवापवदन्नाह- 'परम' इत्यादि, गतार्थम् । अक्षरगमनिकाऽपि सुगमा ॥७११-७२८॥

अथाऽऽहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगमार्गणाद्वये परस्थानसन्निकर्षं निरूपयन्नाह

आहारदुगे एग बंधतो धुविगतीसपुरिसाओ ।
सुरविउवदुगपणिंदिसुभगिइखगइपरघायाओ ॥७२९॥
ऊसाससुहगतिगतसचउगुच्चाउ णियमाऽज्जाअडचत्ता ।
तित्थाऊणि व णियमा छउण्णयरा वेअणीआई ॥७३०॥
तित्थस्सेमेव तह छसायाईणं परं ण पडिवक्खं ।
तह छअसायाईणं णवर ण सुराउपडिवक्खा ॥७३१॥
ण असायसोगअरइअथिरदुगअजसाणि बंधेइ ।
देवाउगबंधी वा तित्थं बंधेइ णियमाऽज्जा ॥७३२॥ (उपगीतिः)

(प्रे०) 'आहार' इत्यादि, आहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगमार्गणाद्वये मिथ्यात्वमोहनी-यस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकषायवर्जशेषैकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतिपुरुषवेददेवद्विकवैक्रियद्विकपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतिपराघातोच्छ्वासशुभगत्रिकत्रसचतुष्कोच्चैर्गोत्ररूपास्वेकोनपञ्चाशत्प्रकृतिष्वेकतमां प्रकृतिमाबध्नन् शेषाष्टचत्वारिंशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'तित्थ' इत्यादि, जिननामदेवायुःप्रकृती विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलं स्थिराऽस्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रः प्रकृतयश्चेति षडन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'तित्थस्स' इत्यादि, जिननाम्नः प्रधानभावेन सन्निकर्षः प्रकृतान्यतरप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षवदस्ति । 'तह' इत्यादि, सातवेदनीयहास्यरतिस्थिरशुभयशःकीर्तिरूपस्य प्रकृतिषट्कस्याऽपि प्राधान्येन सन्निकर्षः प्रकृतान्यतरप्रकृतिवद् वर्तते केवलं प्रतिपक्षभूतां प्रकृतिं नैव बध्नाति, परावर्तमानप्रकृतित्वेन विरुद्धत्वात् । 'तह' इत्यादि, असातवेदनीयशोकाऽरत्यस्थिराशुभायशःकीर्तिरूपस्य प्रकृतिषट्कस्याऽप्येवमेव सन्निकर्षो बोद्धव्यः । 'णवरं' इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति–असातवेदनीयादिप्रकृतिबन्धको देवायुस्तत्प्रतिपक्षभूतां सातवेदनीयादि-प्रकृतिं च नैव बध्नाति, असातादिप्रकृतिभिः सह सुरायुषो बन्धस्य विरोधात् प्रतिपक्षप्रकृतेश्च परावर्तमानत्वेन बध्यमानत्वात् ।

'ण' इत्यादि, देवायुर्बन्धकोऽसातवेदनीयशोकारत्यस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिरूपाः षट्प्रकृतीर्नैव बध्नाति, सुरायुषा सह तासां विरोधात् । 'वा' इत्यादि, तीर्थकृन्नाम विकल्पेन बध्नाति, केषाञ्चिज्जीवानामेव बध्यमानत्वात् । 'णियमा' इत्यादि, उक्तातिरिक्तप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति प्रकृतप्रकृतेस्तद्बन्धाऽविनाभावित्वात्, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः–एकत्रिंशज्ज्ञानावरणीयप्रभृतिध्रुवबन्धिप्रकृतयः सातवेदनीयहास्यरतिपुरुषवेददेवद्विकपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतिपराघातोच्छ्वासत्रसदशकोच्चैर्गोत्ररूपाश्चतुर्विंशतिप्रकृतयश्चेति सर्वसङ्ख्यया पञ्चपञ्चाशत्प्रकृतय इति ॥७२९-७३२॥

इदानीं कार्मणकाययोगानाहारकमार्गणयोः स उच्यते ।

कम्माणाहारेसुं उरालमीसव्व सव्वपयडीण ।
णवरि ण दुआउबंधो जिण व णरउरलदुगवइरबंधो ॥७३३॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'कम्मा' इत्यादि, कार्मणकाययोगानाहारकमार्गणाद्वये सर्वासां प्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्षं औदारिकमिश्रमार्गणोक्तसन्निकर्षवदस्ति । 'णवरि' इत्यादिनाऽपवादं निर्दिशति–औदारिकमिश्रमार्गणायां तिर्यग्मनुष्यायुर्द्वयस्य सन्निकर्षोऽभिहितः, परं प्रकृतमार्गणाद्वये स नास्ति, तद्बन्धाभावात् । 'जिणं' इत्यादि मनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्य बन्धको जिननाम विकल्पतो बध्नाति ॥७३३॥

साम्प्रतं वेदमार्गणासु तमाह

संजलणावरणविग्घाहिंतो इग तिवेएसुं ।
बंधतो णियमाऽण्णा तह चउरोऽण्णयरवेअणीआई ॥७३४॥ (गीतिः)
बंधइ व सेसधुवचउआउगआहारगायवदुगाणि ।
जिणपरघाऊसासा तह सेसाऽण्णयरजुगलाई ॥७३५॥
बंधेइ सायबंधी णवआवरणचउसंजलणविग्घा ।
णियमा अण्णयरा य तिवेअजसाजसदुगोआए ॥७३६॥
ण उ णिरयतिगअसाया वा अण्णधुवाउतित्थपरघाया ।
ऊसासाहारायवदुगाणि अण्णयरसेसजुगलाई ॥७३७॥ (गीतिः)
जसबंधी णिरयसुहमतिगअजसाणि ण उ बंधए णियमा ।
संजलणावरणविग्घा ऽण्णयरा तिवेअणीआई ॥७३८॥ (गीतिः)
वा सेसधुवतिआउगआहारदुगपरघायऊसासा ।
तित्थायवदुगवोयरतिगाणि अण्णयरसेसजुगलाई ॥७३९॥ (गीति)
उच्च बंधतो चउसंजलणावरणणवगपणविग्घा ।
बंधइ णियमा तिण्णि य अण्णयरा वेअणीआई ॥७४०॥
बंधइ वा धुवबंधी गुणतीसऽण्णा दुआउगपणिंदी ।
आहारगदुगजिणपरघाऊसासतसचउगाणि ॥७४१॥
ण उ णिरयतिरितिगायवदुगथावरजाइचउगणीआणि ।
वाऽण्णयरा जुगलाई सेसा ओघव्व सेसाणं ॥७४२॥
णवरि जिणं बंधतो णरतिगउरलदुगवइररिसहाणि
थीए ण चेव बंधइ णियमा देवविउवदुगाणि ॥७४३॥

(प्रे०) 'संजलण' इत्यादि, स्त्रीपुरुषनपुंसकवेदमार्गणात्रये संज्वलनचतुष्कज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्काऽन्तरायपञ्चकप्रकृतिष्वेकतमां प्रकृतिं बध्नन् शेषप्रकृतप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । एकतरवेदनीय वेदत्रय एकतरं वेदं यशःकीर्त्ययशःकीर्तिद्वयेऽन्यतरां प्रकृतिं गोत्रद्वयेऽन्यतरद् गोत्रं च नियमेन बध्नाति । 'बंधइ' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकनिद्राद्विकाऽनन्तानुबन्धि-

प्रभृतिद्वादशकषायभयजुगुप्सातैजसनामध्रुवबन्धिप्रकृतीरायुष्कचतुष्काहारकद्विकाऽऽतपोद्योतजिननाम-पराघातोच्छ्वासनामानि तथा शेषाऽन्यतरयुगलादिप्रकृतीश्च विकल्पेन बध्नाति । ताश्चेमाः शेषा-न्यतरप्रकृतयः—अन्यतरद्धास्यादियुगलमन्यतमा गतिरन्यतमा जातिरेकतरमौदारिकवैक्रियशरीरनामद्वये शरीरनामौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वय एकतरमङ्गोपाङ्गमन्यतमसंहननमन्यतमसंस्थानमन्यतमाऽऽनुपूर्व्य-न्यतरा खगतिस्त्रसस्थावरादियुगलदशक एकतरा दशप्रकृतयोऽन्यतरद् गोत्रं चेति ।

'बंधेइ' इत्यादि, सातवेदनीयबन्धको ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसञ्ज्वलनचतुष्काऽन्त-रायपञ्चकरूपा अष्टादशप्रकृतीः स्त्रीपुरुषनपुंसकवेदत्रयेऽन्यतमो वेदो यशःकीर्त्ययशःकीर्ति-युगलेऽन्यतरा प्रकृतिरुच्चैर्नीचैर्गोत्रद्वयेऽन्यतरगोत्रं चेति तिस्रोऽन्यतरप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति । 'ण' इत्यादि, नरकत्रिकाऽसातवेदनीयप्रकृतिचतुष्कं नैव बध्नाति, विरुद्धत्वात् । 'वा' इत्यादि, शेषध्रुवबन्ध्यायुष्कचतुष्कतीर्थकरनामपराघातोच्छ्वासाऽऽहारकद्विकातपोद्योतप्रकृतीस्तथा शेषान्य-तरयुगलादिप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, नवमगुणस्थाने आसां सर्वथाऽबन्धात् , अधस्तनगुणस्थाने यथायोग बन्धात्, विकल्पेन बन्ध उक्तः । अन्यतरशेषप्रकृतयोऽनन्तरकथिता एव ज्ञेयाः । केवलं नरकवर्जगतित्रयेऽन्यतमा गतिर्नरकवर्जानुपूर्वीत्रयेऽन्यतमानुपूर्वी च वाच्या ।

'जसबंधो' इत्यादि, यशःकीर्तिनामबन्धको नरकत्रिकसूक्ष्मत्रिकायशःकीर्तिनामानि नैव बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, सञ्ज्वलनचतुष्कज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कान्तरायपञ्चक रूपा अष्टादशप्रकृतीरेकतरं वेदनीयं वेदत्रयेऽन्यतमो वेदोऽन्यतरद् गोत्रं चेति तिस्रोऽन्यतराः प्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति । 'वा' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकनिद्राद्विकाऽनन्तानुबन्धि-प्रभृतिद्वादशकषायभयजुगुप्सातैजसनामध्रुवबन्धिदेवमनुष्यतिर्यगायुष्कत्रयाहारकद्विकपराघातोच्छ्वास-जिननामातपोद्योतबादरत्रिकरूपा द्वाचत्वारिंशत्प्रकृतीरन्यतरशेषयुगलादिप्रकृतीश्च विकल्पेन बध्नाति, ताश्चेमाः शेषान्यतरयुगलादिप्रकृतयः—अन्यतरयुगलं देवमनुष्यतिर्यग्गतित्रयेऽन्यतमा गतिरन्यतमा जातिरौदारिकवैक्रियशरीरनामद्वय एकतरं शरीरनामौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतरदङ्गोपाङ्गमन्य-तमं संहननमन्यतमं संस्थानं देवमनुष्यतिर्यगानुपूर्वीत्रयेऽन्यतमानुपूर्वी खगतिद्वयेऽन्यतरा खगतिस्त्र-सस्थावरस्थिरास्थिरशुभाशुभसुभगदुर्भगसुस्वरदुःस्वरादेयानादेययुगलषट्केऽन्यतराः षट्प्रकृतयश्चेति षोडशेति ।

'उच्चं' इत्यादि, उच्चैर्गोत्रबन्धकः सञ्ज्वलनचतुष्कज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्काऽन्त-रायपञ्चकरूपा अष्टादशप्रकृतीरन्यतरद् वेदनीयमन्यतमं वेदं यशःकीर्त्ययशःकीर्तिद्वयेऽन्यतरां प्रकृतिं चेति तिस्रोऽन्यतराः प्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति । 'बंधइ' इत्यादि, उक्तशेषैकोनत्रिंशद्ध्रुवबन्धि-प्रकृतीर्देवमनुष्यायुर्द्वयपञ्चेन्द्रियजातिनामाहारकद्विकजिननामपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपा द्वादश-

प्रकृतीश्च विकल्पेन बध्नाति । 'ण उ' इत्यादि, नरकत्रिकतिर्यक्त्रिकातपोद्योतस्थावरचतुष्कजाति-चतुष्कनीचैर्गोत्ररूपाः सप्तदशप्रकृतीर्नैव बध्नाति । 'वा' इत्यादि, उक्तातिरिक्तप्रकृतिवृन्देषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिमपि विकल्पेन बध्नाति । अन्यतरद् युगलं देवमनुष्यगतिद्वयेऽन्यतरा गतिरौदारिकद्विकवैक्रियद्विकयोरन्यतरद्विकमन्यतमं संहननमन्यतमं संस्थानं देवमनुष्यानुपूर्वीद्वयेऽन्यतराऽऽनुपूर्वी खगतिद्वयेऽन्यतरा खगतिः स्थिराऽस्थिरादियुगलपञ्चकेऽन्यतराः पञ्चप्रकृतयश्चेति चतुर्दशेति । 'ओघव्व' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीनां प्रधानभावेन सन्निकर्षं ओघवदवसेयः । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—स्त्यानर्द्धित्रिकं निद्राद्विकमसातवेदनीयं मिथ्यात्वमोहनीयमनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकषाया हास्यषट्कं वेदत्रयमायुष्कचतुष्कं गतिचतुष्कं जातिपञ्चकं नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतय औदारिकवैक्रियाहारकशरीरत्रयमौदारिकवैक्रियाहारकाङ्गोपाङ्गत्रयं संहननषट्कं संस्थानषट्कमानुपूर्वीचतुष्कं खगतिद्वयं त्रसनवकं स्थावरदशकं पराघातोच्छ्वासजिननामातपोद्योतनामानि नीचैर्गोत्रं चेति नवनवतिरिति । 'णवरि' इत्यादिनाऽपवादमुपदिशति—स्त्रीवेदमार्गणायां जिननाम बध्नन् मनुष्यत्रिकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननप्रकृतिषट्कं नैव बध्नाति, देवद्विकवैक्रियद्विकप्रकृतिचतुष्कं च नियमेन बध्नाति, जिननामबन्धकस्याऽस्यां मार्गणायां देवप्रायोग्याणामेव प्रकृतीनां बन्धविधायित्वाद् जिननामबन्धको हि स्त्रीवेदमार्गणायां मानुष्येव प्राप्यते ॥७३४ ४३॥

साम्प्रतमपगतवेदमार्गणायां प्रकृतसन्निकर्षः प्रोच्यते ।

गयवेए बंधंतो आवरणणवगजसुच्चविग्घाओ ।
एगं चउसंजलणा वा बंधइ सोल णियमाऽण्णा ॥७४४॥
संजलणलोहबंधी सायणवावरणउच्चजसविग्घा ॥
बंधइ णियमाऽहिंतो वा बंधइ तिण्णि संजलणा ॥७४५॥
अंतिमकोहाईण एव णवरि तिदुएगसंजलणा ।
कमसो णियमा बंधइ बीसाऽण्णा सायबंधी वा ॥७४६॥

(प्रे०) 'गयवेए' इत्यादि, अपगतवेदमार्गणायां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कयशः-कीर्तिनामोच्चैर्गोत्राऽन्तरायपञ्चकप्रकृतिष्वेकतमां प्रकृतिं बध्नन् संज्वलनचतुष्कं विकल्पेन बध्नाति, नवमगुणस्थानस्थो बध्नाति दशमगुणस्थानस्थो न बध्नातीति कृत्वा संज्वलनचतुष्कस्य बन्धो विकल्पितः । 'बंधइ' इत्यादि, एकतरप्रकृतिव्यतिरिक्तपञ्चदशप्रकृतयः सातवेदनीयं चेति षोडशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति ।

'संजलण' इत्यादि, सञ्ज्वलनलोभबन्धकः सातवेदनीयज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कोच्चैर्गोत्रयशःकीर्तिपञ्चान्तरायरूपाः सप्तदश प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'वा' इत्यादि, सञ्ज्वलनमानादित्रयं विकल्पेन बध्नाति, एतत्प्रकृतित्रयस्य बन्धविच्छेदस्थानादूर्ध्वं सञ्ज्वलनलोभस्य बन्धविच्छेदस्थानस्य सत्त्वात् । 'अंतिम' इत्यादि, सञ्ज्वलनक्रोधमानमायाप्रकृतित्रयस्य सन्निकर्षः

सञ्ज्वलनलोभवदवसेयः । 'णवरि' इत्यादिना विशिनष्टि–संज्वलनक्रोधबन्धकः संज्वलनमानादित्रयं संज्वलनमानबन्धकः संज्वलनमायालोभौ संज्वलनमायाबन्धकश्च संज्वलनलोभं नियमेन बध्नाति ।

'वीसा' इत्यादि, सातवेदनीयबन्धको ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्कयशःकीर्त्युच्चैर्गोत्रान्तरायपञ्चकरूपा विंशतिप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति मार्गणायामस्यामासां प्रकृतीनां बन्धस्थानं यावत्सातवेदनीयेन सह बध्यमानत्वात्तदूर्ध्वमेकादशादिगुणस्थानेषु पुनरबध्यमानत्वाच्च । ॥७४४-४६॥

इदानीं क्रोधमार्गणायां स उच्यते ।

सव्वाणोघव्व भवे कोहे णवरि णियमा उ संजलणा ।
पणविग्घावरणणवगतिसंजलणउच्चजसबंधी ॥७४७॥
सायं बंधंतो चउसजलणावरणणवगपणविग्घा ।
बंधइ णियमाऽण्णयरा दुगोअजसअजसजुगलाण ॥७४८॥

(प्रे०) 'सव्वाणो' इत्यादि, क्रोधमार्गणायां सर्वासां प्रकृतीनां परस्थानसन्निकर्ष ओघवद् भवति । 'णवरि' इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति–ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कक्रोधवर्जसञ्ज्वलनत्रिकोच्चैर्गोत्रयशःकीर्त्यन्तरायपञ्चकरूपास्वेकोनविंशतिप्रकृतिष्वन्यतमां प्रकृतिं बध्नन् सञ्ज्वलन चतुष्कं नियमेन बध्नाति, नवरं सञ्ज्वलनमानमायालोभबन्धकाः स्ववर्जशेषसंज्वलनत्रिकं नियमेन बध्नन्ति, ओघे संज्वलनक्रोधबन्धविच्छेदानन्तरं ज्ञानावरणादिप्रकृतप्रकृतीनां बन्धविच्छेदो भवति, परं क्रोधमार्गणायां त्वेताः प्रकृतयस्तथा संज्वलनक्रोधोऽपि मार्गणाचरमसमयं यावद् बध्यन्त इति कृत्वाऽयं विशेषो दर्शितः ।

'साय' मित्यादि, सातवेदनीयं बध्नन् संज्वलनचतुष्कज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कान्तरायपञ्चकरूपा अष्टादशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, प्रकृतमार्गणाचरमसमयं यावदासां बध्यमानत्वात् । 'ऽण्णयरा' इत्यादि, गोत्रद्वयेऽन्यतरगोत्रं यशःकीर्त्ययशःकीर्तिद्वयेऽन्यतरां प्रकृतिं च नियमेन बध्नाति, प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धस्य तद्बन्धाऽविनाभावित्वात् ॥७४७-४८॥

अथ मानमार्गणायां तमाह

माणे सव्वाणोघव्व णवरि णियमा अकोहसंजलणा ।
विग्घणवावरणचरममायालोहुच्चजसबंधी ॥७४९॥
सायं बंधंतो उण आवरणणवगतिसंजलणविग्घा ।
बंधइ णियमाऽण्णयरा दुगोअजसअजसजुगलाण ॥७५०॥

(प्रे०) 'माणे' इत्यादि, मानमार्गणायां सर्वासां प्रकृतीनां परस्थानसन्निकर्ष ओघवदवसेयः । 'णवरि' इत्यादिनाऽपवादमाह–ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसंज्वलनमायालोभान्तरायपञ्चको-

च्चैर्गोत्रयशःकीर्तिरूपास्वष्टादशप्रकृतिष्वेकतमां प्रकृतिं बध्नन् क्रोधवर्जसंज्वलनत्रिकं नियमेन बध्नाति, किन्तु सञ्ज्वलनमायालोभबन्धकाः संज्वलनमानमायालोभेभ्यः स्ववर्जसंज्वलनद्वयं नियमेन बध्नाति । 'साय' मित्यादि, सातवेदनीयं बध्नन् ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कक्रोधवर्ज-संज्वलनत्रिकान्तरायपञ्चकरूपाः सप्तदश प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'ऽण्णयरा' इत्यादि, अन्य-तरद्गोत्रं यशःकीर्त्ययशःकीर्तिद्वयेऽन्यतरां प्रकृतिं च नियमेन बध्नाति, उभयत्र हेतुः क्रोधमार्गणा-वज्ज्ञेयः ॥७४९-५०॥

इदानीं मायामार्गणायां सोऽभिधीयते

सव्वाणोघव्व भवे मायाए णवरि बधए णियमा ।
पणविग्धावरणणवगजसुच्चबंधी दुसंजलणा ॥७५१॥
साय बधंतो उण आवरणनवगदुसंजलणविग्धा ।
बधइ णियमाऽण्णयरा दुगोअजसअजसजुगलाण ॥७५२॥
सजलणलोहबंधी णियमा बधेइ सजलणमायं ।

(प्रे०) 'सव्वाण' इत्यादि, मायामार्गणायां सर्वासां प्रकृतीनां सन्निकर्ष ओघवदस्ति । 'णवरि' इत्यादिनाऽपवादमाह—अन्तरायपञ्चकज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कयशःकीर्त्युच्चैर्गोत्र-प्रकृतिबन्धकः सञ्ज्वलनमायालोभात्मकं संज्वलनद्वयं नियमेन बध्नाति । 'साय' इत्यादि सातवेदनीयं बध्नन्नन्तरायपञ्चकज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसञ्ज्वलनमायालोभप्रकृतीर्निय-मेन बध्नाति, गोत्रद्वययशःकीर्त्ययशःकीर्तिरूपयुगलद्वयेऽन्यतरे द्वे प्रकृती च नियमेन बध्नाति । 'संजलण' इत्यादि, संज्वलनलोभबन्धकस्त्वोघे नियमेन बध्यमानप्रकृतितोऽधिकां संज्वलन-मायामपि नियमेन बध्नाति ॥७५१-२॥

इदानीमकषायादिमार्गणासु परस्थानसन्निकर्षं निषेधयन्नाह

णेव भवे अकसाये केवलजुगले अहक्खाये ७५३॥

(प्रे०) 'णेव' इत्यादि, अकषायकेवलज्ञानकेवलदर्शनयथाख्यातसंयमरूपासु चतसृषु मार्ग-णासु परस्थानसन्निकर्षो नास्ति, एकस्याः सातवेदनीयप्रकृतेरेव बन्धसद्भावात् ॥७५३॥

इदानीं मतिज्ञानादिमार्गणासु परस्थानसन्निकर्षः प्रतिपाद्यते—

बंधइ णियमाऽण्णा चउदस णाणतिगोहिसम्मखइएसुं ।
बंधेमाणो एगं णवावरणउच्चविग्धाण ॥७५४॥
वाऽण्णधुवपुमाउगदुगपणिदिआहारजुगलवइराणि ।
सुखगइअगिइजिणपरघाऊसासतसचउगसुहेगतिगं ॥७५५॥ (गीतिः)
बंधइ णियमाऽण्णयरा दुवेअणोअजसअजसजुगलाणं ।
वा सेसा जुगलाई अण्णयरा बंधए पयडी ॥७५६॥

बंधेइ णिद्दबंधी णियमा तीसधुवपुमपणिंदी य ।
उच्चसुहागिइसुखगइपरधूसासतसचउगसुहगतिगं ॥७५७॥ (गीतिः)
वा मज्झकसायऽट्ठगआहाराउदुगतित्थवइराणि ।
णियमाऽण्णयरा सेसा एमेव हवेज्ज पयलाए ॥७५८॥
दुजुगलतिथिराइजुगलदुगइतणुउवंगआणुपुव्वीणं ।
बंधइ व सायबंधी अण्णयरा णो असायमण्णा वा ॥७५९॥ (गीति)
बंधइ असायबंधी णियमा इगतीसधुवपुमपणिंदी ।
उच्चसुहागिइसुखगइपरधूसासतसचउगसुहगतिग ॥७६०॥ (गीति)
णउ पडिवक्खसुराउगआहारदुगाणि वा अडकसाया ।
जिणवइरणराऊणि य णियमाऽण्णयरा-ऽण्णजुगलाई ॥७६१॥
सोगअरइअथिरअसुहअजसाणेव तहा थिरसुहाणं ।
णवर वा णिद्दादुगसुराउआहारगदुगाणि ॥७६२॥
भयकुच्छाबंधी पुमणवावरणउच्चसंजलणविग्धा ।
णियमाऽण्णयरा दुजुगलदुवेअणीअजसजुगलाण ॥७६३॥
बंधइ दुथिराइजुगलगइदेहउवगआणुपुव्वीण ।
वाऽण्णयरा वाऽण्णेवं रइहस्साणं परं ण पडिवक्खा ॥७६४॥ (गीति)
दुइअकसाय एगं बधतोऽण्णयरवेअणीआई ।
बंधइ णियमा दस वा बंधेइ दुआउवइरजिणा ॥७६५॥
णाहारदुगं बंधइ नियमा बंधेइ सेसबावण्णा ।
तइअकसायाणेव णवरि व बंधइ बिअकसाया ॥७६६॥
संजलणकोहबंधी उच्चणवावरणसंजलणविग्धा ।
बंधइ णियमाऽण्णयरा दुवेअणीयजसजुगलाणं ॥७६७॥
दुजुगलथिराइगजुगलगइदेहउवगआणुपुव्वीण ।
अण्णयरा वि व बंधइ वा बंधइ सेसचत्ताओ ॥७६८॥
एव पुमस्स एव चिअ संजलणमयमायलोहाणं ।
णवरं वा उण बंधइ कमसो एगदुतिसंजलणा ॥७६९॥
बंधइ णराउबंधी णियमा छऽण्णयरवेअणीआई ।
सुरतिगविउवाहारगदुगाण ण उ बंधए व जिणं ॥७७०॥
णियमाऽण्णा णउरलदुगवइराणेमेव णवरि व णराउं
व सुराउगबंधी अडकसायआहारदुगतित्था ॥७७१॥
बंधइ ण असायअरइसोगणरतिगुरलजुगलवइराणि ।
अथिरअसुहअजसाण य बंधइ णियमाऽण्णपणपण्णा ॥७७२॥
सुरगइबंधी बंधइ णियमा छऽण्णयरवेअणीआई ।
वाऽट्ठकसायदुणिद्दासुराउआहारदुगतित्था ॥७७३॥
बंधइ ण उ णरतिगुरलदुगवइराणि णियमाऽण्णछायाला ।
एमेव जाणियव्वो विउवदुगसुराणुपुव्वीणं ॥७७४॥

बंधइ पंणिंदियबंधो दस णियमाऽण्णयरवेअणीआई ।
णिद्दाहाराउगदुगमज्झकसायवइरजिणा वा ॥७७५॥
णियमाऽण्णा बायाला एवं सुहखगइआगिईण तहा ।
परघाऊसासाणं जिणतसचउगसुहगतिगाण ॥७७६॥
आहारगदुगबंधो बंधइ ण असायमज्झिमकसाया ।
सोगअरइणरतिगुरलदुगवइराथिरअसुहअजसा ॥७७७॥
णिद्दवुगसुराउजिणा वा बंधेइ णियमाऽण्णचउवण्णा ।
एवमुवसमे वि परं बंधो आऊण णेव भवे ॥७७८॥

(प्रे०) 'बंधइ' इत्यादि, मतिज्ञानश्रुतज्ञानावधिज्ञानावधिदर्शनसम्यक्त्वौघक्षायिकसम्यक्त्वरूपासु षट्सु मार्गणासु ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कोच्चैर्गोत्राऽन्तरायपञ्चकरूपासु पञ्चदशप्रकृतिष्वेकतमां प्रकृतिमाबध्नन् तद्व्यतिरिक्तप्रकृतचतुर्दशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, आसां प्रकृतीनां युगपद् बन्धविच्छेदादिति । 'वा' इत्यादि, अभिहितशेषध्रुवबन्धिप्रकृतीः पुरुषवेददेवमनुष्यायुर्द्वयपञ्चेन्द्रियजात्याहारकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननसुखगतिसमचतुरस्रसंस्थानजिननामपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्कसुभगत्रिकरूपा एकोनविंशतिप्रकृतीश्च विकल्पेन बध्नाति, प्रधानीकृतप्रकृतीनां बन्धविच्छेदतोऽर्वागासां प्रकृतीनां बन्धविच्छेदादिति । 'बंधइ' इत्यादि, अन्यतरद्वेदनीयं यशःकीर्त्ययशःकीर्तिद्वय एकतरां प्रकृतिं च नियमेन बध्नाति । 'वा' इत्यादि, उक्तातिरिक्तयुगलादिष्वन्यतराः प्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । ताश्चेमा अन्यतरशेषप्रकृतयः—अन्यतरद्धास्यादियुगलं देवमनुष्यगतिद्वयेऽन्यतरा गतिरौदारिकवैक्रियद्विकद्वय एकतरं द्विकं देवमनुष्यानुपूर्वीद्वय एकतराऽऽनुपूर्वी स्थिरास्थिरयोरेका शुभाशुभयोरेका प्रकृतिश्चेति ।

'बंधेइ' इत्यादि, निद्राप्रकृतिबन्धको ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं प्रचला सञ्ज्वलनचतुष्कं भयजुगुप्से नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयोऽन्तरायपञ्चकं चेति त्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीः पुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजात्युच्चैर्गोत्रसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्कसुभगत्रिकरूपाश्चतुर्दशप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति । 'वा' इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपा मध्यमाऽष्टकषाया आहारकद्विकजिननामवज्रर्षभनाराचसंहननप्रकृतयश्चेति द्वादशप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषान्यतरवेदनीयादिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति ,ताश्चेमाः—अन्यतरद्वेदनीयमन्यतरहास्यादियुगलं देवमनुष्यगतिद्वय एकतरा गतिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वय एकतरं शरीरनामौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वय एकतरमङ्गोपाङ्गं देवमनुष्यानुपूर्वीद्वय एकतराऽऽनुपूर्वी स्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रः प्रकृतयश्चेति । 'एमेव' इत्यादि, प्रचलाप्रकृतेः प्राधान्येन सन्निकर्षो निद्रासन्निकर्षवदवसेयः ।

'हुजुगल' इत्यादि, सातवेदनीयबन्धको हास्यादियुगलद्वय एकतरयुगलं स्थिराऽस्थिरशुभा-

शुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलत्रय एकतरास्तिस्रः प्रकृतयो देवमनुष्यगतिद्वयेऽन्यतरा गतिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वय एकतरं शरीरनामौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वय एकतरमङ्गोपाङ्गं देवमनुष्यानुपूर्वीद्वयेऽन्यतराऽऽनुपूर्वी चेति नवाऽन्यतरप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । 'णो' इत्यादि, असातवेदनीयं नैव बध्नाति । 'अण्णा' इत्यादि, उक्तातिरिक्तप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं निद्राद्विकमप्रत्याख्यानावरणादिद्वादशकषाया भयकुत्से पुरुषवेदो देवमनुष्यायुर्द्वयं पञ्चेन्द्रियजातिः वज्रर्षभनाराचसंहननं समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिस्त्रसचतुष्कं सुभगत्रिकं पराघातोच्छ्वासजिननामानि नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयोऽन्तरायपञ्चकमुच्चैर्गोत्रं चेति सप्तपञ्चाशदिति ।

'बंधइ' इत्यादि, असातवेदनीयबन्धको ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं निद्राद्विकं संज्वलनचतुष्कं भयकुत्से नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयोऽन्तरायपञ्चक चेत्येकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीः पुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिनामोच्चैर्गोत्रसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतिपराघातोच्छ्वास-त्रसचतुष्कसुभग--त्रिकरूपाश्चतुर्दशप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति । 'ण उ' इत्यादि, तत्प्रतिपक्षसातवेदनीयं देवायुराहारकद्विकप्रकृतित्रयं च नैव बध्नाति । 'अ०' इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणचतुष्के जिननामवज्रर्षभनाराचसंहननमनुष्यायूरूपं प्रकृतित्रिकं च विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' उक्तशेषान्यतरयुगलादिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः—अन्यतरद् हास्यादियुगलं देवमनुष्यगतिद्वयेऽन्यतरा गतिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वयेऽन्यतरत्शरीरनामौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वय एकतरमङ्गोपाङ्गं देवमनुष्यानुपूर्वीद्वयेऽन्यतराऽऽनुपूर्वी स्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रःप्रकृतयश्चेति नवेति । 'सोग' इत्यादि, शोकारत्यस्थिराशुभायशःकीर्तिनामप्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्षोऽसातवेदनीयप्रधानसन्निकर्षवदवसेयः । 'तहा' इत्यादि, तथा स्थिरशुभनाम्नोरपि प्रधानभावेन सन्निकर्षस्तथैवाऽसातवेदनीयवदवसातव्यः । नवरं निद्राद्विकदेवायुष्काहारकद्विकप्रकृतीनां विकल्पेन बन्धः कथनीय इति विशेषो 'णवरं' इत्यादिना दर्शितः ।

'भयकुच्छाबंधी' इत्यादि, भयकुत्साबन्धकः पुरुषवेदज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कोच्चैर्गोत्रसंज्वलनचतुष्काऽन्तरायपञ्चकरूपा विंशतिप्रकृतीर्हास्यादियुगलद्वय एकतरं युगल वेदनीयद्वय एकतरं वेदनीयं यशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगल एकतरां प्रकृतिं चेत्यन्यतराश्चतस्रः प्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति । 'बंधइ' इत्यादि, स्थिरास्थिरद्वय एकतरां प्रकृतिं शुभाशुभद्वय एकतरां प्रकृतिं देवमनुष्यगतिद्वय एकतरां गतिमौदारिकवैक्रियशरीरद्वय एकतरं शरीरनामौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वय एकतरमङ्गोपाङ्गं देवमनुष्यानुपूर्वीद्वयेऽन्यतरामानुपूर्वी चेत्यन्यतराः षट्प्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । 'वा अण्णा' इत्यादि, उक्तातिरिक्तप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । ताश्चेमाः—निद्राद्विकमप्रत्याख्यनावरण-

प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं देवमनुष्यायुष्कद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिः समचतुरस्रसंस्थानं वज्रर्षभनाराचसंहननं सुखगतिस्त्रसचतुष्कं सुभगत्रिकं पराघातोच्छ्वासजिननामानि नवनामध्रुवबन्धिप्रकृतयश्चेति पञ्चत्रिंशदिति । 'एव' इत्यादि, हास्यरत्योः प्राधान्येन सन्निकर्षो भयकुत्सावद् बोध्यः । 'णरं' इत्यादिनाऽपवादमुपदर्शयति—हास्यरतिबन्धकस्तत्प्रतिपक्षशोकारतिप्रकृतीर्नैव बध्नाति ।

'दुइअकसायं' इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणाख्यद्वितीयकषायचतुष्केऽन्यतरामेकां कषायप्रकृतिं बध्नन् वेदनीयद्वय एकतरं वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगल देवमनुष्यगतिद्वय एकतरा गतिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वय एकतरशरीरनामौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वय एकतरमङ्गोपाङ्गं देवमनुष्यानुपूर्वीद्वयेऽन्यतरानुपूर्वी स्थिरास्थिरद्वय एकतरा प्रकृतिः शुभाशुभद्वय एकतरा प्रकृतिर्यशःकीर्त्ययशःकीर्तिद्वय एकतरा प्रकृतिश्चेति दशाऽन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'वा' इत्यादि, देवमनुष्यायुर्द्वयं वज्रर्षभनाराचसंहननं जिननाम चेति चतस्रः प्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । 'णा' इत्यादि, आहारकद्विकं नैव बध्नाति, अप्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्केन समं तद्बन्धविरोधात् । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषद्विपञ्चाशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति ताश्चेमाः—ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं निद्राद्विकमप्रत्याख्यानावरणचतुष्केऽन्यतमकषायत्रयं प्रत्याख्यानावरणसञ्ज्वलनचतुष्के भयकुत्से पुरुषवेदः पञ्चेन्द्रियजातिः समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिस्त्रसचतुष्कं सुभगत्रिकं पराघातोच्छ्वासे नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतय उच्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चक चेति द्वापञ्चाशदिति । 'तइअ' इत्यादि, तृतीयकषायाणां प्राधान्येन सन्निकर्षो द्वितीयकषायवदवसेयः । 'णवरि' इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति—तृतीयकषायबन्धको द्वितीयकषायचतुष्कं विकल्पेन बध्नाति, यतश्चतुर्थगुणस्थानक एव प्रकृतमार्गणासु तद्बन्धो भवति, न तु तदूर्ध्वम् , तस्मात्तृतीयकषायबन्धकश्चतुर्थगुणस्थानके वर्तेत तदा द्वितीयकषायचतुष्कं बध्नाति, पञ्चमगुणस्थाने वर्तेत तदा नैव बध्नाति ।

'संजलण' इत्यादि, सञ्ज्वलनक्रोधबन्धक उच्चैर्गोत्रज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसञ्ज्वलनमानमायालोभत्रयाऽन्तरायपञ्चकरूपा अष्टादशप्रकृतीरन्यतरद् वेदनीयं यशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगल एकतरप्रकृतिं च नियमेन बध्नाति । 'दु' इत्यादि, अन्यतरद् हास्यादियुगलं स्थिरास्थिरयोः शुभाशुभयोश्च प्रत्येकमेकतरप्रकृतिद्वयं देवमनुष्यगतिद्वयेऽन्यतरा गतिरौदारिकवैक्रियशरीरयोरेकतरं शरीरमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतरदङ्गोपाङ्गं देवमनुष्यानुपूर्वीद्वयेऽन्यतराऽऽनुपूर्वी चेत्यष्टावन्यतरप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । 'वा' इत्यादि, उक्तव्यतिरिक्तचत्वारिंशत्प्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, ताश्चेमाः—निद्राद्विकमप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणचतुष्के भयकुत्से पुरुषवेदो देवमनुष्यायुषी पञ्चेन्द्रियजातिराहारकद्विकं समचतुरस्रसंस्थानं वज्रर्षभनाराचसंहननं सुखगतित्रसचतुष्कं सुभगत्रिकं पराघातोच्छ्वासजिननामानि नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयश्चेति । 'एवं' इत्यादि, पुरुषवेदस्य प्राधान्येन सन्निकर्षः सञ्ज्वलनक्रोधवदवसातव्यः । 'एवं' इत्यादि,

सञ्ज्वलनमानमायालोभप्रधानोऽपि सन्निकर्षः सञ्ज्वलनक्रोधवद् बोध्यः । 'णवरं' इत्यादिनाऽपवादमुपदर्शयति–सञ्ज्वलनमानबन्धकः सञ्ज्वलनक्रोधं सञ्ज्वलनमायाबन्धकः सञ्ज्वलनक्रोधमानौ सञ्ज्वलनलोभबन्धकश्च सञ्ज्वलनक्रोधमानमायाप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति ।

'बंधइ' इत्यादि, मनुष्यायुष्कबन्धकोऽन्यतरवेदनीयादिषट्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चेमाः-अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलं स्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रः प्रकृतयश्चेति । 'सुर' इत्यादि, देवत्रिकवैक्रियद्विकाहारकद्विकरूपाः सप्तप्रकृतीर्नैव बध्नाति, मनुष्यायुषा सहासां बन्धस्य विरोधात् । 'व' इत्यादि, जिननाम विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः–ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं निद्राद्विकमप्रत्याख्यानावरणादिद्वादशकषाया भयकुत्से पुरुषवेदो मनुष्यद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिकद्विकं समचतुरस्रसंस्थानं वज्रर्षभनाराचसंहननं सुखगतिस्त्रसचतुष्कं सुभगत्रिकं पराघातोच्छ्वासनाम्नी नवध्रुवबन्धिप्रकृतय उच्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकं चेत्यष्टपञ्चाशदिति । भावना पुनरिहेत्थम्–मनुष्यायुः प्रकृतमार्गणासु तुर्यगुणस्थानक एव बध्यते, तद्गुणस्थानके चावश्यंतयैतासां प्रकृतीनां बन्धो भवति, अतोऽत्र मनुष्यायुषा सहासां प्रकृतीनां सन्निकर्षो नैयत्येनाऽभिहितः । 'णरु' इत्यादि, मनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननप्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्षो मनुष्यायुर्वद् विधेयः । 'णवरि' इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति–मनुष्यद्विकादिप्रकृतिबन्धको मनुष्यायुर्विकल्पतया बध्नाति ।

'व' इत्यादि, देवायुष्कबन्धकोऽप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणचतुष्कद्वयाहारकद्विकजिननामरूपा एकादशप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । 'बंधइ' इत्यादि, असातवेदनीयारतिशोकमनुष्यत्रिकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननाऽस्थिराऽशुभायशःकीर्तिरूपा द्वादशप्रकृतीर्नैव बध्नाति, देवायुषा सहासां बन्धस्य विरोधात् । 'बंधइ' इत्यादि, अभिहितशेषपञ्चपञ्चाशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चेमाः–ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं निद्राद्विकं सातवेदनीयं सञ्ज्वलनचतुष्कं हास्यरतीभयकुत्से पुरुषवेदो देवद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिर्वैक्रियद्विकं समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिस्त्रसदशकं पराघातोच्छ्वासनाम्नी नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतय उच्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकं चेति ।

'सुरगइ' इत्यादि, देवगतिबन्धकोऽन्यतरषड्वेदनीयादिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चेमाः-अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलं स्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रः प्रकृतयश्चेति । 'चा' इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणचतुष्कद्वयनिद्राद्विकदेवायुराहारकद्विकजिननामरूपाश्चतुर्दशप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । 'बंधइ' इत्यादि, मनुष्यत्रिकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननरूपाः षट् प्रकृतीर्नैव बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उदितशेषषट्चत्वारिंशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः–ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं सञ्ज्वलनचतुष्कं भयकुत्से पुरुषवेदः पञ्चेन्द्रियजातिर्वैक्रियद्विकं समचतुरस्रसंस्थानं देवानुपूर्वी सुखगतिः त्रसचतुष्कं

सुभगत्रिकं पराघातोच्छ्वासनाम्नी नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतय उच्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकं चेति । 'एमेव' इत्यादि, वैक्रियद्विकदेवानुपूर्वीप्रकृतीनां प्रधानभावेन सन्निकर्षो देवगतिवदवसेयः ।

"बंधइ" इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातिबन्धकोऽन्यतरवेदनीयादिदशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः-अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलं देवमनुष्यगतिद्वयेऽन्यतरा गतिरौदारिक वैक्रियशरीरद्वय एकतरं शरीरनामौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गाभ्यामेकतरमङ्गोपाङ्गं देवमनुष्यानुपूर्वीद्वयेऽन्यतरानुपूर्वी स्थिरास्थिरयोरेकतरा प्रकृतिः शुभाशुभयोरेकतरा प्रकृतिर्यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योरेकतरा प्रकृतिश्चेति । 'णिद्दा' इत्यादि; निद्राद्विकाहारकद्विकदेवमनुष्यायुर्द्वयाऽप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणचतुष्कद्वयवज्रर्षभनाराचसंहननजिननामरूपाः षोडशप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । "णियमा" इत्यादि, उक्तशेषद्विचत्वारिंशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः—ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं सञ्ज्वलनचतुष्कं भयकुत्से पुरुषवेदः समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिस्त्रसचतुष्कं सुभगत्रिकं पराघातोच्छ्वासनाम्नी नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतय उच्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकं चेति । 'एवं' इत्यादि, शुभविहायोगतिसमचतुरस्रसंस्थानपराघातोच्छ्वासजिननामत्रसचतुष्कसुभगत्रिकरूपाणां द्वादशप्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्षः पञ्चेन्द्रियजातिवदवसेयः ।

"आहारग" इत्यादि, आहारकद्विकबन्धकोऽसातवेदनीयाऽप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्कद्वयशोकारतिमनुष्यत्रिकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिरूपा विंशतिप्रकृतीर्नैव बध्नाति । 'णिद्' इत्यादि, निद्राद्विकदेवायुर्जिननामरूपं प्रकृतिचतुष्कं विकल्पेन बध्नाति । "णियमा" इत्यादि, भणितशेषचतुःपञ्चाशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चेमाः—ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं सातवेदनीयं सञ्ज्वलनचतुष्कं हास्यरतिभयकुत्सामोहनीयानि पुरुषवेदो देवद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिर्वैक्रियद्विकं समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिः त्रसदशकं पराघातोच्छ्वासनाम्नी नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतय उच्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकं चेति । "एवमुवसमे" इत्यादि, उपशमसम्यक्त्वमार्गणायां सन्निकर्ष एवमेव विज्ञेयः, परमायुष्कमत्र वर्जनीयं, अस्यां मार्गणायां तद्बन्धाभावात् ।

साम्प्रतं मनःपर्यवज्ञानसंयमौघमार्गणाद्वये प्रकृतं प्रतिपादयति

एग बधेमाणो णवावरणउच्चपचविग्घाओ ।
मणणाणसजमेसुं णियमा बधेइ सेसाओ ॥७७९॥
बंधइ णियमाऽण्णयरा दुवेअणीअजसअजसजुगलाणं ।
अण्णयरा जुगलाई चउरो वा बंधइ व सेसा ॥७८०॥
एमेव जसस्स भवे णवरं बंधेइ णेव पडिवक्ख ।
णियमा णिद्दाबधी छडण्णयरा वेअणीआई ॥७८१॥

वाहारदुगाउजिणा णियमा सेसा तहेव पयलाए ।
सुरविउवदुगपणिंदियधुवणामसुहागिईण तहा ॥७८२॥
सुहखगइसुहगतिगजिणपरघाऊसासतसचउक्काणं ।
एमेव भवे णवर णिद्दापयला व बंधेइ ॥७८३॥
बधेइ सायबंधी जुगलदुगथिराइतिजुगलाण वा ।
अण्णयरा ण असायं बधइ वा सेसतेवण्णा ॥७८४॥
णियमा असायबंधी पच दुजुगलतिथिराइजुगलाणं ।
अण्णयरा व जिणं ण उ सायाहारदुगदेवाऊ ॥७८५॥
णियमा सेसा एव सोगअरइअथिरअसुहअजसाण ।
तह थिरसुहाण वि णवरि व दुणिद्दाऽऽहारदुगसुराऊणि ॥७८६॥ (गीतिः)
संजलणकोहबंधी दुवेअणीअजसअजसजुगलाण ।
णियमाऽण्णयरा बधइ वा चउअण्णयरजुगलाई ॥७८७॥
णियमाऽट्ठारस बंधइ उच्चणवावरणसंजलणविग्घा ।
बंधइ वा सेसाओ चउतीसाओ उ पयडीओ ॥७८८॥
एव पुमस्स एव चिअ संजलणमयमायलोहाणं ।
णवर वा उण बधइ कमसो एगदुतिसजलणा ॥७८९॥
भयकुच्छाबंधी पुमणवावरणउच्चसजलणविग्घा ।
णियमा ऽण्णयरा दुजुगलदुवेअणीजसजुगलाणं ॥७९०॥
दुथिराइगजुगलाणं वाऽण्णयरा बधए व सेसेव ।
रइहस्साणं णवरं बधइ सोगारई णेव ॥७९१॥
तित्थाहारदुगाणि व सुराउबंधी ण उ छ असायाई ।
बंधइ णियमाऽण्णेव आहारदुगस्स णवरि व दुणिद्दा ॥७९२॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'एग' इत्यादि, मनःपर्यवज्ञानसंयमौघमार्गणाद्वये ज्ञानावरणपञ्चकचक्षुरादिदर्शनावरणचतुष्कोच्चैर्गोत्राऽन्तरायपञ्चकरूपासु पञ्चदशप्रकृतिष्वेकतमां प्रकृतिं बध्नन् शेषाश्चतुर्दशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'बंधइ' इत्यादि, अन्यतरद् वेदनीयं यशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलेष्वेकतरां प्रकृतिं च नियमेन बध्नाति । 'अण्णयरा' इत्यादि, अन्यतरद् हास्यादियुगलं स्थिरास्थिरयुगलेऽन्यतरां प्रकृतिं शुभाशुभयुगलेऽन्यतरां प्रकृतिं चेति चतस्रोऽन्यतराः प्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । 'व' इत्यादि, उक्तातिरिक्तप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । ताश्चेमाः-निद्राद्विकं संज्वलनचतुष्कं भयकुत्से पुरुषवेदो देवत्रिकं पञ्चेन्द्रियजातिर्वैक्रियद्विकमाहारकद्विकं समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिस्त्रसचतुष्कं सुभगत्रिकं पराघातोच्छ्वासजिननामानि नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयश्चेत्यष्टात्रिंशदिति । 'एमेव' इत्यादि, यशःकीर्तिनामप्रधानः सन्निकर्ष एवमेव विज्ञेयः । 'णवरं' इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति—यशःकीर्तिनामबन्धकस्तत्प्रतिपक्षभूतायशःकीर्तिनाम नैव बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, निद्राबन्धकोऽन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलं स्थिराऽस्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रः

प्रकृतयश्चेति षडन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति। 'वा' इत्यादि, आहारकद्विकसुरायुर्जिननामानि विकल्पेन बध्नाति। 'णियमा' इत्यादि, उदितशेषप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति। ताश्चेमाः--ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं सञ्ज्वलनसचतुष्कं भयकुत्से पुरुषवेदो देवद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिर्वैक्रियद्विकं समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतित्रसचतुष्कं सुभगत्रिकं पराघातोच्छ्वासनाम्नी नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतय उच्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकं चेत्यष्टचत्वारिंशदिति। 'तहेव' इत्यादि, प्रचलाप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षो निद्रावदस्ति। 'सुर' इत्यादि, सुरद्विकवैक्रियद्विकपञ्चेन्द्रियजातिनवध्रुवबन्धिनामप्रकृतिसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतिसुभगत्रिकजिननामपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपषड्विंशतिप्रकृतिप्रधानोऽपि ---परस्थानसन्निकर्षो निद्रावद् भवति। 'णवर' इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति- एतत्प्रकृतिबन्धको निद्राप्रचलाप्रकृतिद्वयं विकल्पेन बध्नाति। 'बंधेइ' इत्यादि, सातवेदनीयबन्धकोऽन्यतरहास्यादियुगलं स्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलत्रयेऽन्यतरप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति। 'ण' इत्यादि, असातवेदनीयं नैव बध्नाति। 'वा' इत्यादि, उक्तशेषत्रिपञ्चाशत्प्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति। ताश्चेमाः--ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं निद्राद्विकं सञ्ज्वलनचतुष्कं भयकुत्से पुरुषवेदो देवत्रिकं पञ्चेन्द्रियजातिर्वैक्रियद्विकमाहारकद्विकं समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतित्रसचतुष्कं सुभगत्रिकं पराघातोच्छ्वासजिननामानि नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतय उच्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकं चेति। 'णियमा' इत्यादि, असातवेदनीयबन्धकोऽन्यतरद् हास्यादियुगल स्थिराऽस्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रः प्रकृतयश्चेति पञ्चान्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति। तद्यथा-प्रकृतमार्गणाद्वयेऽसातवेदनीय षष्ठगुणस्थानक एव बध्यते तत्रैता अन्यतराः पञ्चप्रकृतयोऽवश्यं बध्यन्ते तस्मादासां सन्निकर्षोऽसातवेदनीयप्रकृत्या सह नियततया प्राप्यते। 'व' इत्यादि, जिननाम विकल्पेन बध्नाति। 'साया' इत्यादि, सातवेदनीयाहारकद्विकदेवायूरूपं प्रकृतिचतुष्कं नैव बध्नाति, असातवेदनीयेन सह तद्बन्धस्य विरोधात्। 'णियमा' इत्यादि, उक्तान्यप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति। ताश्चेमाः-ज्ञानावरणपञ्चकं चक्षुरादिदर्शनावरणचतुष्कं निद्राद्विकं सञ्ज्वलनचतुष्कं भयकुत्से पुरुषवेदो देवद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिर्वैक्रियद्विकं समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतित्रसचतुष्कं सुभगत्रिकं पराघातोच्छ्वासनाम्नी नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतय उच्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकं चेत्येकोनपञ्चाशदिति। 'एवं' इत्यादि, शोकारत्यस्थिराशुभायशःकीर्तिरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्य प्राधान्येन सन्निकर्षोऽसातवेदनीयवदवसेयः। 'तह' इत्यादि, स्थिरशुभनाम्नोः सन्निकर्षोऽप्यसातवेदनीयवदवसेयः। 'णवरि' इत्यादिनाऽपवदति—आहारकद्विकदेवायुर्निद्राद्विकप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति।

'संजलण' इत्यादि, सञ्ज्वलनक्रोधबन्धकोऽन्यतरद् वेदनीयं यशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलेऽन्यतरां प्रकृतिं च नियमेन बध्नाति। 'वा' इत्यादि, अन्यतरद् हास्यादियुगलं स्थिरास्थिरशुभाशुभयुगलद्वयेऽन्यतरे द्वे प्रकृती चेति चतस्रोऽन्यतराः प्रकृतीर्विकल्पतो बध्नाति, यथास्वं बन्धस्थानं

यावदामां प्रकृतीनां सञ्ज्वलनक्रोधेन समं बध्यमानत्वात्तदूर्ध्वमबध्यमानत्वाच्च । 'णियमा' इत्यादि, उच्चैर्गोत्रं ज्ञानावरणपञ्चकं चक्षुरादिदर्शनावरणचतुष्कं सञ्ज्वलनमानमायालोभत्रयमन्तरायपञ्चकं चेत्यष्टादशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'बा' इत्यादि, उक्तातिरिक्तचतुस्त्रिंशत्प्रकृतीर्विकल्पतो बध्नाति । ताश्चेमाः–निद्राद्विकं भयकुत्से पुरुषवेदो देवायुर्देवगतिः पञ्चेन्द्रियजातिर्वैक्रियद्विकमाहारकद्विकं समचतुरस्रसंस्थानं देवानुपूर्वी सुखगतिस्त्रसचतुष्कं सुभगत्रिकं पराघातोच्छ्वासनाम्नी जिननाम नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयश्चेति । 'एवं' इत्यादि, पुरुषवेदप्रधानसन्निकर्षः सञ्ज्वलनक्रोधवदवसातव्यः, केवलं सञ्ज्वलनक्रोधस्य नियतबन्धो वक्तव्यः । 'एवं' इत्यादि, सञ्ज्वलनमानमायालोभप्रकृतित्रयप्रधानोऽपि सन्निकर्षः सञ्ज्वलनक्रोधवद् बोध्यः । 'णवरं' इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति–सञ्ज्वलनमानबन्धकः सञ्ज्वलनक्रोधं सञ्ज्वलनमायाबन्धकः सञ्ज्वलनक्रोधमानौ संज्वलनलोभबन्धकश्च संज्वलनक्रोधमानमायाप्रकृतित्रयं विकल्पेन बध्नाति । 'भय' इत्यादि, भयकुत्साबन्धकः पुरुषवेदज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कोच्चैर्गोत्रसंज्वलनचतुष्काऽन्तरायपञ्चकरूपा विंशतिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'अण्णयरा' इत्यादि, अन्यतरद् हास्यादियुगलं वेदनीयद्वयेऽन्यतरद् वेदनीयं यशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलेऽन्यतरां प्रकृतिं चेति चतस्रोऽन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'दु' इत्यादि, स्थिराऽस्थिरशुभाशुभयुगलद्वयेऽन्यतरप्रकृतिद्वयं विकल्पेन बध्नाति । 'व' इत्यादि, उक्तातिरिक्तप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । ताश्चैताः-निद्राद्विकं देवत्रिकं पञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकमाहारकद्विकं समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिस्त्रसचतुष्कं सुभगत्रिकं पराघातोच्छ्वासजिननामानि नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयश्चेत्येकत्रिंशदिति । 'रइ' इत्यादि, हास्यरत्योः प्राधान्येन सन्निकर्षो भयकुत्सावद् भवति । 'णवरं' इत्यादिनाऽपवाद उच्यते–हास्यरतिबन्धकः शोकारती नैव बध्नाति, हास्यरतिभ्यां सह परावर्तमानतया बध्यमानत्वात्तयोः । 'तित्था' इत्यादि, सुरायुर्बन्धकस्तीर्थकृन्नामाहारकद्विकप्रकृतित्रयं विकल्पेन बध्नाति । 'ण' इत्यादि, असातवेदनीयशोकारत्यस्थिराऽशुभायशःकीर्तिरूपं प्रकृतिषट्कं नैव बध्नाति, देवायुषा सहासां बन्धस्य विरोधात्, विरोधश्च प्राग्वद् विभाव्यः । 'णियमा' इत्यादि, उक्तातिरिक्तप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चैताः–ज्ञानावरणपञ्चकं चक्षुरादिदर्शनावरणचतुष्कं निद्राद्विकं सातवेदनीयं सञ्ज्वलनचतुष्कं भयकुत्से हास्यरती पुरुषवेदो देवद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिर्वैक्रियद्विकं समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिस्त्रसदशकं पराघातोच्छ्वासनाम्नी नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतय उच्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकं चेति पञ्चपञ्चाशदिति । 'एवं' इत्यादि, आहारकद्विकप्रधानसन्निकर्षः सुरायुर्वदस्ति केवलं निद्राद्विकस्य बन्धो विकल्पतो भवतीति विशेषः ॥७७९-९२॥

अथ मत्यज्ञानादिमार्गणात्रये उच्यते–

अण्णाणतिगे एग छचत्तधुवबंधिणोण बंधंतो ।
नियमाऽण्णो बाऽण्णयरा उवगसंघयणसरखगई ॥७९३॥

वा मिच्छत्ताउचउगपरघाऊसासआयवदुगाणि ।
णियमा गुणवीसाऽण्णा अण्णयरा वेअणीआई ॥७९४॥
साय बंधेमाणो बधइ णियमा छचत्तधुववधी ।
वा मिच्छतिआउगपरघाऊसासायवदुगाणि ॥७९५॥
बधइ ण असायणिरयतिगाणि सघयणुवंगसरखगई ।
अण्णयरा वि व बधइ णियमाऽण्णाऽण्णयरवेआई ॥७९६॥
एवं रइहस्साण एमेव जसस्स णवरि बंधेइ ।
ण उ सुहमतिग णियमा परघाऊसासबायरतिगाणि ॥७९७॥ (गीति.)
छायालधुवपणिदियपरघाऊसासतसचउक्काणि ।
पुमवधी णियमा वा मिच्छत्ताउतिगउज्जोआ ।७९८॥
णिरयतिगदुवेआयवथावरजाइचउगाणि बंधइ णो ।
वाऽण्णयरं सघयण णियमाऽण्णयरा-ऽण्णवेअणीआई ॥७९९॥ (गीतिः)
एव उच्चस्स णवरि ण चेव बंधेइ तिरितिगुज्जोआ ।
सेसाणोघव्व णवरि तित्थाहारदुगवधो णो ॥८००॥
अट्ठारससुरजोग्गाऽण्णणामबधी उ बारसकसाया ।
तह पणणिद्दा णियमा णरतिगवइरलदुगवंधी ॥८०१॥
अणथीणद्धितिगाणि य छअसायाइगसुराउबंधी उ।
बधइ णियमा बारसकसायथीणद्धियतिगाणि ॥८०२॥

(प्रे०) **'अण्णाणतिगे'** इत्यादि, मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानरूपासु ऽज्ञानमार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयवर्जषट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतिष्वेकतमां प्रकृतिमाबध्नन् शेषपञ्चचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति। **'वा'** इत्यादि, औदारिकवैक्रियाऽङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतरदङ्गोपाङ्गमन्यतमं संहननमन्यतरत् स्वरमन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति। **'वा'** इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयायुष्कचतुष्कपराघातोच्छ्वासातपोद्योतरूपा नव प्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति। **"णियमा'** इत्यादि, उक्तव्यतिरिक्तैकोनविंशत्यन्यतरवेदनीयादिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः—अन्यतरवेदनीयमन्यतरद्धास्यादियुगल वेदत्रयेऽन्यतमो वेदोऽन्यतमा गतिरन्यतमा जातिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वय एकतरं शरीरनामाऽन्यतमं सस्थानमन्यतमाऽऽनुपूर्वी स्वरवर्जत्रसस्थावरादियुगलनवकेऽन्यतरा नव प्रकृतयोऽन्यतरद् गोत्रं चेति।

'सायं' इत्यादि, सातवेदनीयं बध्नन् मिथ्यात्वमोहनीयवर्जाः षट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति। **'वा'** इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयदेवमनुष्यतिर्यगायुष्कत्रयपराघातोच्छ्वासातपोद्योतरूपा अष्टौ प्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति। **'बंधइ'** इत्यादि, असातवेदनीयनरकत्रिकरूपं प्रकृतिचतुष्क नैव बध्नाति। **'संघयण'** इत्यादि, अन्यतमसंहननमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतरदङ्गोपाङ्गमन्यतरत्स्वरमन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति। **'णियमा'** इत्यादि, अभि-

क्तिशेषाऽन्यतमवेदादिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चानन्तरोक्ताः सातासातवेदनीयवर्जा अन्यतरा अष्टादशप्रकृतयो ज्ञातव्याः । 'एवं' इत्यादि, हास्यरत्योः प्राधान्येन सन्निकर्षः सातवेदनीयवदस्ति । 'एवमेव' इत्यादि, यशःकीर्तिनामप्रधानोऽपि सन्निकर्षः सातवेदनीयवदस्ति । 'णवरि'इत्यादिनाऽपवाद दर्शयति यशःकीर्तिनामबन्धकः सूक्ष्मत्रिकं नैव बध्नाति, पराघातोच्छ्वासबादरत्रिकरूपं च प्रकृतिपञ्चक नियमेन बध्नाति ।

'छायाल' इत्यादि, पुरुषवेदबन्धको मिथ्यात्वमोहनीयवर्जषट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृति-पञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपास्त्रिपञ्चाशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'वा' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयदेवमनुष्यतिर्यगायुष्कत्रयोद्योतरूपाः पञ्चप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । "णिरय" इत्यादि,नरकत्रिकस्त्रीनपुंसकवेदद्वयातपस्थावरचतुष्कजातिचतुष्करूपाश्चतुर्दशप्रकृतीर्नैव बध्नाति,पुरुष-वेदेन सहासां बन्धविरोधात् । 'वा' इत्यादि,अन्यतमसंहननं विकल्पेन बध्नाति,देवप्रायोग्यप्रकृति-बन्धकेन तेन तस्याऽबध्यमानत्वान्मनुष्यतिर्यक्प्रायोग्यप्रकृतिबन्धकेन तेन बध्यमानत्वाच्च । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषाऽन्यतरवेदनीयादिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चेमाः—अन्यतरद् वेदनीयमन्यत-रद् हास्यादियुगलं देवमनुष्यतिर्यग्गतित्रयेऽन्यतमा गतिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वयेऽन्यतरत्शरीरनामौ-दारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वय एकतरमङ्गोपाङ्गमन्यतमसंस्थानमन्यतरा खगतिर्देव-मनुष्य तिर्यगानुपूर्वी-त्रयेऽन्यतमाऽऽनुपूर्वी स्थिरास्थिरादियुगलषट्केऽन्यतराः षट्प्रकृतयोऽन्यतरद् गोत्र चेति षोडशेति । 'एवं' इत्यादि, उच्चैर्गोत्रप्रधानसन्निकर्षः पुरुषवेदवद् विज्ञेयः । 'णवरि' इत्यादिनाऽपवादमाह-तिर्यग्त्रिकनीचैर्गोत्रोद्योतरूपं प्रकृतिचतुष्कं नैव बध्नाति, वेदत्रयस्य च स्याद्बन्धो भवति ।'सेसाण' इत्यादि,उक्तशेषप्रकृतीनां सन्निकर्ष ओघवदस्ति, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-असातवेदनीयं मिथ्यात्व-मोहनीय शोकारती स्त्रीनपुंसकवेदद्वयमायुष्कचतुष्कं गतिचतुष्कं जातिपञ्चकमौदारिकद्विकं वैक्रियद्विकं संहननषट्कं संस्थानषट्कमानुपूर्वीचतुष्कं खगतिद्वयं त्रसनवकं स्थावरदशकंपराघातोच्छ्-वासाऽऽतपोद्योतनामानि नीचैर्गोत्रं चेति पञ्चषष्टिरिति । 'णवरि' इत्यादिनाऽपवादमुपदर्शयति-जिननामाहारकद्विकत्रयस्य सन्निकर्षोऽत्र नास्ति, आसु मार्गणासु प्रकृतित्रयस्याऽस्य बन्धविरहात् । "अट्ठारस" इत्यादि, लाघवार्थमोघवदतिदिष्टेऽपि शेषप्रकृतीनां सन्निकर्षविषये यासां मिथ्यात्व-वर्जशेषध्रुवबन्धिनीनां ओघे स्याद्बन्धः प्राप्यते, किन्तु स स्याद्बन्धोऽत्र न युक्तः, प्रस्तुतमार्गणासु आद्यगुणस्थानद्वयस्यैव सद्भावात् ,अत एव "अट्ठारस"इत्यादिगाथाद्वयेनापवादपदानि कथयन्ति, तद्यथा-'सुर'इत्यादि,देवप्रायोग्यशेषशुभध्रुवाष्टादशनामप्रकृतिबन्धक आद्यद्वादशकषायपञ्चनिद्राप्रकृती-र्नियमेन बध्नाति,देवप्रायोग्यशुभप्रकृतय इमाः-देवद्विकवैक्रियद्विकपञ्चेन्द्रियजातिप्रथमसंस्थानशुभ-खगतिपराघातोच्छ्वासत्रसनवकप्रकृतयः । 'णर'इत्यादि,मनुष्यत्रिकौदारिकद्विकप्रथमसंहननप्रकृति-बन्धकोऽनन्तानुबन्धिचतुष्कस्त्यानर्द्धित्रिकरूपाणां सप्तप्रकृतीनां नियमेन बन्धको ज्ञातव्यः । असात-

वेदनीयारतिशोकास्थिराशुभायशःकीर्तिरूपाणामसातवेदनीयादिषट्प्रकृतीनां तथा देवायुषो बन्धक आद्यद्वादशकषायस्त्यानर्द्धित्रिकरूपाः पञ्चदशप्रकृतीर्नियमेन बध्नातीति विशेषः "छअसायाइ"-इत्यादिना दर्शितः ।।७९३-८०२।।

अथ सामायिकच्छेदोपस्थापनीयमार्गणयोः स उच्यते

सामाइअछेएसुं मणणाणव्व णवरं चरमलोहं ।
विग्धुच्चावरणणवगजसबंधी बंधए णियमा ।।८०३।।
बंधेइ सायबंधी णवावरणचरमलोहउच्चाणि ।
विग्घा णियमा-ऽण्णयरं पुणो जसाजसजुगलसक्कं ।।८०४।।

(प्रे०) 'सामाइअ' इत्यादि, सामायिकच्छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणयोः स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां प्रधानभावेन सन्निकर्षो मनःपर्यवज्ञानवदवसेयः । 'णवरं' इत्यादिनाऽपवादं कथयति–अन्तरायपञ्चकोच्चैर्गोत्रज्ञानावरणपञ्चकचक्षुरादिदर्शनावरणचतुष्कयशःकीर्तिबन्धकः सञ्ज्वलनलोभं नियमेन बध्नाति, अनयोर्मार्गणयोः सञ्ज्वलनलोभस्य बन्धविच्छेदाभावात् । 'बंधेइ' इत्यादि, सातवेदनीयबन्धको ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसंज्वलनलोभाऽन्तरायपञ्चकोच्चैर्गोत्ररूपाः षोडशप्रकृतीर्यशःकीर्त्ययशःकीर्तिनाम्नोरेकतरां प्रकृतिं च नियमेन बध्नाति, मार्गणाचरमसमयं यावदासां प्रकृतीनां बध्यमानत्वात् ।।८०३-४।।

अथ परिहारविशुद्धिसंयममार्गणायां प्रकृतोऽभिधीयते

धुवपुरिससुरविउवदुगसुहागिइखगइपणिंदिउच्चाणं ।
परघाऊसाससुहगतिगतसचउगाण परिहारे ।।८०५।।
'एग बंधंतो ऽण्णा णियमाहारदुगजिणसुराऊणि ।
वा बंधइ णियमाऽण्णा छऽण्णयरा वेअणीआई ।।८०६।।
एवं जिणस्स एव हवेज्ज सायाइगाण छण्ह परं ।
ण उ बंधइ पडिवक्खं मणणाणव्वऽत्थि सेसाणं ।।८०७।।

(प्रे०) 'धुव' इत्यादि, परिहारविशुद्धिसंयममार्गणायां ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं निद्राद्विकं संज्वलनचतुष्कं भयकुत्से नव नामो ध्रुवबन्धिप्रकृतयोऽन्तरायपञ्चकं चेत्येकत्रिंशद्-ध्रुवबन्धिप्रकृतयः पुरुषवेददेवद्विकवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतिपञ्चेन्द्रियजातिनामोच्चैर्गोत्र-पराघातोच्छ्वाससुभगत्रिकत्रसचतुष्करूपा अष्टादशप्रकृतयश्चेत्येकोनपञ्चाशत्प्रकृतिष्वेकतमां प्रकृतिं बध्नन् शेषाऽष्टचत्वारिंशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'आहार' इत्यादि, आहारकद्विकजिननाम-देवायुःप्रकृतिचतुष्कं विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषाऽन्यतरवेदनीयादिषट्-प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः–अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलं स्थिरास्थिरशुभा-शुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलत्रय एकतराः तिस्रः प्रकृतयश्चेति । 'एव' इत्यादि, जिननामप्रधानः

सन्निकर्ष एवमेवाऽस्ति । 'एव' इत्यादि, सातवेदनीयहास्यरतिस्थिरशुभयशःकीर्तिरूपस्य प्रकृतिषट्कस्याऽपि प्राधान्येन सन्निकर्ष एवमेव विज्ञेयः । 'णवरं' इत्यादिनाऽपवाद उच्यते—सातवेदनीयादिप्रकृतिबन्धकस्तत्प्रतिपक्षाऽसातवेदनीयादिप्रकृतीर्नैव बध्नाति । 'मणणाणं व्व' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीनां सन्निकर्षो मनःपर्यवज्ञानमार्गणावद् वेदितव्यः, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—असातवेदनीयं शोकारती देवायुः अस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिनामानि चेति सप्तेति ॥८०५-७॥

साम्प्रतं देशविरतिमार्गणायां तमाह

धुवपुरिससुरविउव्वदुगसुहागिइखगइपणिदिउच्चाणं ।
परघाऊसाससुहगतिगतसचउणाण देसम्मि ॥८०८॥
एग बंधतोऽण्णा णियमा छऽण्णयरवेअणीआई ।
बंधइ व सुराउजिणा एमेव हवेज्ज सेसाणं ॥८०९॥
णवरं छअसायाई सुराउबंधी ण सेसबंधी णो ।
पडिवक्खं देवाउं पि ण छअसायाइबंधी उ ॥८१०॥

(प्रे०) 'धुव' इत्यादि, देशविरतिसंयममार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयादिद्वादशप्रकृतिवर्जपञ्चत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतिपुरुषवेददेवद्विकवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतिपञ्चेन्द्रियजात्युच्चैर्गोत्रपराघातोच्छ्वासमुभगत्रिकत्रसचतुष्करूपासु त्रिपञ्चाशत्प्रकृतिष्वेकतमां प्रकृतिं बध्नन् शेषद्विपञ्चाशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'छ' इत्यादि, अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलं स्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलत्रय एकतरास्तिस्रः प्रकृतयश्चेत्यन्यतराः षट्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'व'इत्यादि, देवायुर्जिननामप्रकृतिद्वयं विकल्पेन बध्नाति । 'एमेव' इत्यादि, अभिहितशेषचतुर्दशप्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्ष एवमेव विज्ञेयः, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—वेदनीयद्वयं हास्यादियुगलद्वयं स्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलत्रयं जिननाम देवायुश्चेति चतुर्दशेति।'णवरं'इत्यादिनाऽपवादं दर्शयति—देवायुष्कबन्धकोऽसातवेदनीयशोकारत्यस्थिराऽशुभायशःकीर्तिरूपं प्रकृतिषट्कं नैव बध्नाति । 'सेस' इत्यादि, हास्यादिशेषद्वादशप्रकृतिबन्धकः स्वप्रतिपक्षप्रकृतिं नैव बध्नाति । 'देवाउं' इत्यादि, असातवेदनीयादिषट्प्रकृतिबन्धकस्तत्प्रतिपक्षप्रकृतिं नैव बध्नाति,तथा देवायुरपि नैव बध्नाति ॥८०८-१०॥

अथ सूक्ष्मसम्परायसंयममार्गणायामसंयममार्गणायां कृष्णादिलेश्यात्रयमार्गणासु च परस्थानसन्निकर्षं प्रतिपादयन्नाह

सुहमम्मि एगबंधी णियमाऽण्णा अजयअसुहलेसासुं ।
परठाणसण्णियासो अण्णाणतिगव्व सव्वेसिं ॥८११॥
णवरं सुरजोग्गा विण थीणद्धितिगाणमिच्छइत्थिजिणा ।
सपरो तह णरतिसुरलदुगवइराणि खलु बंधंतो ॥८१२॥

थीणद्धितिगाणचउगजिणा व बंधेइ किण्हणीलासु ।
णरतिगउरलदुगवइरबंधी बंधइ ण चेव जिणं ॥८१३॥
कम्मव्व जिणस्स अजयकाउसु पर व सुरणराऊणि ।
दोसु उरलमीसव्व उ णवर वा बंधइ सुराउं ॥८१४॥

(प्रे०) 'सुहुमम्मि' इत्यादि, सूक्ष्मसम्परायसंयममार्गणायां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसातवेदनीययशःकीर्त्युच्चैर्गोत्रान्तरायपञ्चकप्रकृतिष्वेकतमां प्रकृतिमाबध्नन् शेषषोडशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति ।

अथ असंयमाशुभलेश्यामार्गणासु प्रकृतमाह–

'अजय' इत्यादि, असंयममार्गणायां कृष्णनीलकापोतलेश्यालक्षणासु तिसृषु मार्गणासु च सर्वासां प्रकृतीनां प्रधानभावेन परस्थानसन्निकर्षोऽज्ञानत्रिकमार्गणावदस्ति । 'णवरं' इत्यादिनाऽपवाद कथयति–स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयस्त्रीवेदजिननामवर्जदेवप्रायोग्यसप्ततिप्रकृतीस्तथा मनुष्यत्रिकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननप्रकृतिषट्कं च बध्नन् स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कजिननामप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति। ताश्चेमा देवप्रायोग्यप्रकृतयः-ज्ञानावरणपञ्चकम् , दर्शनावरणचतुष्कम् , निद्राद्विकम् , वेदनीयद्वयम् , अप्रत्याख्यानावरणादिद्वादशकषायहास्यषट्कपुरुषवेदरूपा मोहनीयस्यैकोनविंशतिप्रकृतयः, देवायुः, देवप्रायोग्याष्टाविंशतिस्तथाऽस्थिराशुभायशःकीर्तिनामानि, उच्चैर्गोत्रम् , अन्तरायपञ्चकं चेति सप्ततिः प्रकृतयः । कृष्णनीललेश्ययोरतिप्रसक्तिवारणायाह 'किण्ह' इत्यादि, प्रस्तुतमार्गणाद्वये मनुष्यत्रिकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचरूपप्रकृतिषट्कस्य बन्धको जिननाम नैव बध्नाति, अत्र केवलं मनुष्यस्य जिननामबन्धकत्वेन देवप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वात् । अथ जिननाम्नः सन्निकर्षो द्वयोर्द्वयोर्मार्गणयोः पृथक् पृथगतिदेशेन कथ्यते ।

'कम्मव्व' इत्यादि, असंयममार्गणाकापोतलेश्यामार्गणयोर्जिननामप्रधानसन्निकर्षः कार्मणमार्गणोक्तजिननामप्रधानसन्निकर्षवदस्ति परमत्र देवायुषो मनुष्यायुषश्च बन्धः प्रस्तुतबन्धकेन विकल्पेन क्रियत इति विशेषः । तथा कृष्णनीललेश्ययोर्जिननामप्रधानसन्निकर्ष औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणोक्तजिननामप्रधानसन्निकर्षवदस्ति परमत्रापि देवायुर्विकल्पेन प्रस्तुतबन्धको बध्नातीति विशेषः । शेषप्रकृतीनां सन्निकर्षः सर्वथाऽज्ञानमार्गणावदस्ति तस्माल्लाघवार्थं तत एवावधार्यः, नात्र दर्श्यते ॥८११-१४॥

अथ तेजोलेश्यामार्गणायां स उच्यते–

एगं धुवेगतीसा परघाऊसासबायरतिगाओ ।
तेऊए बंधंतो बंधइ णियमाऽण्णतीसं ॥८१५॥

वा बंधइ थीणद्धियतिगमिच्छत्तऽज्जबारसकसाया ।
आउगतिगआहारगआयवदुगतित्थणामाणि ॥८१६॥
बंधइ वा अण्णयरा अवि संघयणदुउवगसरखगई ।
णियमा बंधइ सेसा अण्णयरा वेअणोआई ॥८१७॥
बारसकसायाईण एवं णवर ण चेव पडिवक्खं ।
छअसायाइगबंधी बंधइ णाहारदुगसुराऊणि ॥८१८॥ (गीतिः)
थीणद्धितिगअणचउगबंधी मिच्छाउआयवदुगाणि ।
व उण णियमाऽण्णधुवबायरतिगपरघायऊसासा ॥८१९॥
तित्थाहारदुगाणि ण वा संघयणदुउवगसरखगई ।
अण्णयराऽण्णा णियमा एमेव हवेज्ज मिच्छस्स ॥८२०॥
एगं तइअकसाय बंधंतो मिच्छअडकसाया य ।
थीणद्धितिगतिआउगजिणायवदुगाणि बंधइ वा ॥८२१॥
णियमाऽण्णा धुवबंधी परघाऊसासबायरतिगाणि ।
बंधइ वा अण्णयरा संघयणउवगसरखगई ॥८२२॥
णाहारदुग बंधइ णियमाऽण्णयराऽण्णवेअणोआई ।
दुइअकसायाणेवं णवरं णियमा तिअकसाया ॥८२३॥
बंधेइ पुरिसबंधी वा थीणद्धितिगबारसकसाया ।
मिच्छतिरिणरसुराउगतित्थाहारदुगउज्जोआ ॥८२४॥
णियमाऽण्णधुवपणिंदियपरघाऊसासतसचउक्काणि ।
बंधइ ण उ एगिंदियआयवथावरदुपडिवक्खा ॥८२५॥
वाऽण्णयरं संघयणं णियमा अण्णयरवेअणोआई ।
एमेव आइमागिइपसत्थखगइसुहगतिगाण ॥८२६॥
छायालधुवपणिंदियपरघाऊसासतसचउक्काणि ।
चोबंधी णियमा वा मिच्छत्ततिआउउज्जोआ ॥८२७॥
ण दुवेआहारगदुगएगिंदियथावरायवजिणा उ ।
वाऽण्णयरं संघयण णियमाऽण्णाऽण्णयरवेअणोआई ॥८२८॥ (गीति)
बंधइ सुराउबंधी वा थीणद्धितिगबारसकसाया ।
मिच्छाहारदुगजिणा णियमाऽण्णयरित्थिपुमवेअ ॥८२९॥
णियमाऽण्णधुवपणिंदियपरघाऊसाससायहस्सरई ।
सुरविउवदुगसुहागिइसुखगइतसदसगउच्चाणि ॥८३०॥
बंधइ ण चेव सेसा सुरविउवदुगस्स एवमेव पर ।
वा देवाउ णियमा छऽण्णयरा वेअणोआई ॥८३१॥
बंधइ पणिदिबंधी वा थीणद्धितिगबारसकसाया ।
तह मिच्छत्ततिआउगतित्थाहारदुगउज्जोआ ॥८३२॥
णियमाऽण्णा धुवबंधी परघाऊसासतसचउक्काणि ।
एगिंदियआयवथावराणि णो चेव बंधेइ ॥८३३॥

वा बंधइ संघयणं अण्णयरं सेसवेअणीआई ।
णियमाऽण्णयरा बंधइ एमेव तसस्स विण्णेयो ॥८३४॥
आहारगदुगबंधो बंधइ णियमेगतीसधुवबंधी ।
तह सायहस्सरइपुमसुरवेउव्वियदुगपणिंदी ॥८३५॥
तह परघाऊसासंसुअगिइखगइतसदसगउच्चाणि ।
व सुराउगतित्थयरा ण उ बंधइ सेसबावण्णा ॥८३६॥
जिणबंधो मज्झिमअडकसायआहारआउदुगवइरा ।
वा बंधइ णियमा दस अण्णयरा वेअणीआई ॥८३७॥
णियमिगतीसधुवपुरिसपणिंदिसुहखगइआगिई उच्च ।
परघाऊसाससुहगतिगतसचउगाणि णऽण्णबत्तीसा ॥८३८॥ (गीतिः)
बंधइ व उच्चबंधी जिणथीणद्धितिगबारसकसाया ।
मिच्छाउगआहारगदुगाणि अण्णयरसंघयणं ॥८३९॥
णीअतिरिदुगेगिंदियथावरआयवदुगाणि णो णियमा ।
अडतीसाऽण्णधुवाई सोलस अण्णयरवेअणीआई ॥८४०॥ (गीतिः)
देवव्व सण्णियासो गुणतीसाए हवेज्ज सेसाण ।
णवरि अबंधे सुरतिगविउव्वाहारगदुगाणि अवि ॥८४१॥

(प्रे०) 'एगं' इत्यादि, तेजोलेश्यामार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कादिद्वादशकषायवर्जशेषैकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतिपराघातोच्छ्वासबादरत्रिकरूपासु षट्त्रिंशत्प्रकृतिष्वेकतमां प्रकृतिं बध्नन् नियमेनाऽन्यपञ्चत्रिंशत्प्रकृतीर्बध्नाति । 'वा' इत्यादि, स्त्यानर्द्धित्रिकमिथ्यात्वमोहनीयाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कदेवमनुष्यतिर्यगायुष्कत्रयाहारकद्विकातपद्विकजिननामरूपाश्चतुर्विंशतिप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । 'बंधइ' इत्यादि, अन्यतमसंहननमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वय एकतरमङ्गोपाङ्गमन्यतरस्वरमन्यतमां च खगतिं विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषाऽन्यतरवेदनीयादिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चेमाः—अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलमन्यतमो वेदो देवमनुष्यतिर्यग्गतित्रय एकतमा गतिरेकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजातिद्वय एकतरा जातिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वय एकतरं शरीरनामाऽन्यतमं संस्थानं देवमनुष्यतिर्यगानुपूर्वीत्रय एकतमाऽऽनुपूर्वी सूक्ष्मबादरादियुगलत्रयसुस्वरदुःस्वरवर्जत्रसस्थावरादियुगलषट्क एकतराः षट्प्रकृतयोऽन्यतरद् गोत्रं चेति षोडशेति ।

'बारस' इत्यादि, साताऽसातवेदनीयद्वयहास्यादियुगलद्वयस्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिरूपाणां द्वादशप्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्ष एवमेव वर्तते । 'णवर' इत्यादिनाऽपवादं वक्ति-सातवेदनीयादिप्रकृतिबन्धकस्तत्प्रतिपक्षप्रकृतिं नैव बध्नाति, विरुद्धत्वात् । 'छ' इत्यादि, असातवेदनीयशोकारत्यस्थिराऽशुभायशःकीर्तिबन्धकः पुनराहारकद्विकदेवायुःप्रकृतित्रयमपि नैव बध्नाति, असातवेदनीयेन महासां बन्धस्य विरोधात् । 'थीणद्धि' इत्यादि, स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कबन्धको

मिथ्यात्वमोहनीयदेवमनुष्यतिर्यगायुस्त्रयातपोद्योतरूपाः षट् प्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कमध्यादेकप्रधानीकृतप्रकृतिमिथ्यात्वमोहनीयवर्जशेषपञ्चचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतिबादरत्रिकपराघातोच्छ्वासरूपाः पञ्चाशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'तित्थ' इत्यादि, जिननामाहारकद्विकप्रकृतित्रयं नैव बध्नाति । 'वा' इत्यादि, अन्यतमसंहननमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वय एकतरमङ्गोपाङ्गमन्यतरत्स्वरमन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषाऽन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चानन्तरज्ञानावरणीयादिप्रधानसन्निकर्षे उक्ता एव षोडश ज्ञातव्याः । 'एमेव' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयप्रधानसन्निकर्षः स्त्यानर्द्धित्रिकप्रधानसन्निकर्षवद् विज्ञेयः । 'एवं' इत्यादि, प्रत्याख्यानावरणचतुष्कमध्यादेकं कषायं बध्नन् मिथ्यात्वमोहनीयाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्त्यानर्द्धित्रिकदेवमनुष्यतिर्यगायुष्कत्रयजिननामातपोद्योतरूपा अष्टादशप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, प्रधानीकृतप्रकृत्या सहोपयुक्तत्रयोदशध्रुवबन्धिप्रकृतिवर्जचतुस्त्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः पराघातोच्छ्वासबादरत्रिकरूपाः पञ्चप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति । 'वा' इत्यादि, अन्यतमसंहननमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वय एकतरमङ्गोपाङ्गमन्यतरत्स्वरमन्यतरां च खगतिं विकल्पेन बध्नाति । 'णा' इत्यादि, आहारकद्विकं नैव बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषाऽन्यतरवेदनीयादिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्च पूर्वोक्ता एव षोडशाऽत्राऽपि ग्राह्याः । 'दुइअ' इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणाख्यद्वितीयकषायचतुष्कस्य प्राधान्येन सन्निकर्षः प्रत्याख्यानावरणकषायवदवसेयः । णवरं' इत्यादिना विशेषमभिदधाति—प्रत्याख्यानावरणाख्यतृतीयकषायचतुष्कं नियमेन बध्नाति, । 'बंधेइ' इत्यादि, पुरुषवेदबन्धकः स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकषायमिथ्यात्वमोहनीयतिर्यग्मनुष्यदेवायुष्कत्रयजिननामाहारकद्विकोद्योतरूपास्त्रयोविंशतिप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकषायवर्जशेषैकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतिपञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपा अष्टात्रिंशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'ण उ' इत्यादि, एकेन्द्रियजातिनामातपस्थावरस्त्रीनपुंसकवेदद्वयरूपाः पञ्चप्रकृतीर्नैव बध्नाति । 'वा' इत्यादि अन्यतमं संहननं विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, अभिहितशेषाऽन्यतरवेदनीयादिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चेमाः-अन्यतरवेदनीयमन्यतरहास्यादियुगलं देवमनुष्यतिर्यग्गतित्रय एकतमा गतिरौदारिकवैक्रियशरीरनामद्वयेऽन्यतरच्छरीरनामौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतरदङ्गोपाङ्गमन्यतमसंस्थानमन्यतरा-खगतिः देव-मनुष्य-तिर्यगानुपूर्वीत्रयेऽन्यतमानुपूर्वी स्थिरास्थिरादियुगलषट्केऽन्यतराः षट्प्रकृतयोऽन्यतरगोत्रं चेति षोडशेति । 'एमेव' इत्यादि, समचतुरस्रसंस्थानसुखगतिसुभगत्रिकरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्य प्राधान्येन सन्निकर्षः पुरुषवेदवदस्ति, प्रतिपक्षप्रकृतीनां वर्जनादिकं तु स्वयं बोद्धव्यमिति । छायाल' इत्यादि, स्त्रीवेदबन्धको मिथ्यात्वमोहनीयवर्जशेषषट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतिपञ्चे-

न्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपास्त्रिपञ्चाशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'वा' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयदेवमनुष्यतिर्यगायुष्कत्रयोद्योतरूपं प्रकृतिपञ्चकं विकल्पेन बध्नाति । 'ण दुवेअ' इत्यादि, पुरुष-नपुंसकवेदद्वयाऽऽहारकद्विकैकेन्द्रियजातिस्थावरातपजिननामानि नैव बध्नाति । 'ऽण्णयरं' इत्यादि, अन्यतमसंहननं विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषाऽन्यतरवेदनीयादिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चेमाः—अन्यतरवेदनीयमन्यतरहास्यादियुगलं देवमनुष्यतिर्यग्गतित्रय एकतमा गतिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वय एकतरशरीरनामौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वय एकतरमङ्गोपाङ्गमन्यतमसंस्थानं देवमनुष्यतिर्यगानुपूर्वीत्रय एकतमानुपूर्वी खगतिद्वयेऽन्यतरा खगतिः स्थिरास्थिरादियुगलषट्केऽन्यतराः षट्प्रकृतयोऽन्यतरगोत्र चेति षोडशेति । 'बंधइ' इत्यादि, देवायुर्बन्धकः स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकषायमिथ्यात्वमोहनीयाहारकद्विकजिननामरूपा एकोनविंशतिप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, स्त्रीपुरुषवेदद्वयेऽन्यतरं वेदं नियमेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषैकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतिपञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासस्नातवेदनीयहास्यरतिदेवद्विकवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतित्रसदशकोच्चैर्गोत्ररूपाश्चतुःपञ्चाशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'ण' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीर्नैव बध्नाति, ताश्चेमाः—असातवेदनीयं शोकारती नपुंसकवेदस्तिर्यग्मनुष्यत्रिकद्वयमेकेन्द्रियजातिरौदारिकद्विकं संहननषट्कं द्वितीयादिसंस्थानपञ्चकमशुभखगतिः स्थावरनामाऽस्थिरषट्कमातपोद्योतनाम्नी नीचैर्गोत्रं चेति पञ्चत्रिंशदिति । 'सुर' इत्यादि, सुरद्विकवैक्रियद्विकयोः प्राधान्येन सन्निकर्षः सुरायुर्वद् भवति । "परं" इत्यादिनाऽपवादोऽभिधीयते—देवायुर्विकल्पेन बध्नाति । साताऽसातवेदनीयहास्यादियुगलद्वयस्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिरूपयुगलषट्केऽन्यतराः षट्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'बधइ' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातिनामबन्धकः स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकषायमिथ्यात्वमोहनीयदेवमनुष्यतिर्यगायुष्कत्रयजिननामाहारकद्विकोद्योतरूपास्त्रयोविंशतिप्रकृती—र्विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषैकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपाः सप्तत्रिंशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'एगिंदिय' इत्यादि, एकेन्द्रियजातिनामातपस्थावरनामानि नैव बध्नाति । 'वा' इत्यादि, अन्यतमं संहननं विकल्पेन बध्नाति । 'सेस' इत्यादि, उक्तशेषाऽन्यतरवेदनीयादिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः—अन्यतरवेदनीयमन्यतरहास्यादियुगलमन्यतमो वेदो देवमनुष्यतिर्यग्गतित्रय एकतमा गतिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वय एकतरशरीरनामौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वय एकतरमङ्गोपाङ्गमन्यतमं संस्थानं देवमनुष्यतिर्यगानुपूर्वीत्रयेऽन्यतमानुपूर्वी खगतिद्वय एकतरा खगतिः स्थिराऽस्थिरादियुगलषट्क एकतराः षट्प्रकृतयोऽन्यतरगोत्रं चेति सप्तदशेति । 'एमेव' इत्यादि, त्रसनामप्रधानः सन्निकर्षः पञ्चेन्द्रियजातिवद् वेदितव्यः ।

'आहारग' इत्यादि, आहारकद्विकबन्धको मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धि-

प्रभृतिद्वादशकषायवर्जशेषैकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतिसातवेदनीयहास्यरतिपुरुषवेददेवद्विकवैक्रियद्विकपञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वाससमचतुरस्रसंस्थानसुखगतित्रसदशकोच्चैर्गोत्ररूपाः पञ्चपञ्चाशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'वा' इत्यादि, देवायुस्तीर्थकृन्नामप्रकृतिद्वयं विकल्पेन बध्नाति । 'ण उ' इत्यादि, उक्तातिरिक्तद्विपञ्चाशत्प्रकृतीर्नैव बध्नाति, ताश्चेमाः—असातवेदनीय मिथ्यात्वमोहनीयं स्त्यानर्द्धित्रिकमनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकषायाः शोकारती स्त्रीनपुंसकवेदौ तिर्यक्त्रिकं मनुष्यत्रिकमेकेन्द्रियजातिरौदारिकद्विकं संहननषट्कं द्वितीयादिसंस्थानपञ्चकं कुखगतिः स्थावरनामाऽस्थिरषट्कमातपोद्योतनाम्नी नीचैर्गोत्रं चेति ।

'जिण' इत्यादि, जिननामबन्धकोऽप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणचतुष्कद्वयाहारकद्विकदेवमनुष्यायुर्द्वयवज्रर्षभनाराचसंहननरूपास्त्रयोदशप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, वेदनीयाद्यन्यतरदशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः—अन्यतरवेदनीयमन्यतरहास्यादियुगलं देवमनुष्यगतिद्वय एकतरा गतिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वय एकतरं शरीरनामौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतरदङ्गोपाङ्गं देवमनुष्यानुपूर्वीद्वयेऽन्यतरानुपूर्वी स्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रः प्रकृतयश्चेति । 'णियमा' इत्यादि, शेषैकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिपुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्कसुभगत्रिकोच्चैर्गोत्ररूपाः पञ्चचत्वारिंशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'ण' इत्यादि, उक्तशेषद्वात्रिंशत्प्रकृतीर्नैव बध्नाति, ताश्चेमाः—मिथ्यात्वमोहनीयं स्त्यानर्द्धित्रिकमनन्तानुबन्धिकषायचतुष्कं स्त्रीनपुंसकवेदद्वयं तिर्यक्त्रिकमेकेन्द्रियजातिर्द्वितीयादिसंहननसंस्थानपञ्चके अशुभखगतिः स्थावरनाम दुर्भगत्रिकमातपोद्योतनाम्नी नीचैर्गोत्रं चेति ।

'बंधइ' इत्यादि, उच्चैर्गोत्रबन्धको जिननामस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकषायमिथ्यात्वमोहनीयदेवमनुष्यायुर्द्वयाहारकद्विकरूपा एकविंशतिप्रकृतीरन्यतमसंहननं च विकल्पेन बध्नाति । 'णीअ' इत्यादि, नीचैर्गोत्रतिर्यक्त्रिकैकेन्द्रियजातिस्थावरातपोद्योतरूपा अष्टौ प्रकृतीर्नैव बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषाष्टात्रिंशद्ध्रुवादिप्रकृतीः षोडशाऽन्यतरवेदनीयादिप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः-मिथ्यात्वमोहनीयादिषोडशप्रकृतिवर्जशेषैकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्काणि तथाऽन्यतरवेदनीयमन्यतरहास्यादियुगलमन्यतमो वेदो देवमनुष्यगतिद्वय एकतरा गतिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वयेऽन्यतरशरीरनामौदारिकवैक्रिया-ऽऽङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतराङ्गोपाङ्गमन्यतमं संस्थानं देवमनुष्यानुपूर्वीद्वयेऽन्यतरानुपूर्वी खगतिद्वयेऽन्यतरा खगतिः स्थिरास्थिरादियुगलषट्केऽन्यतराः षट् प्रकृतयश्चेति ।

'देवव्व' इत्यादि, लाघवार्थं शेषनवविंशतिप्रकृतीनां सन्निकर्षं सापवादं दर्शयति । प्रस्तुतमार्गणायां शेषप्रकृतयः केवलं देवैर्बध्यन्ते इति कृत्वा देववत्सन्निकर्षो दर्शितस्तथाऽऽसां सर्वासां सन्नि-

कर्षेऽबन्धप्रकृतितया सुरत्रिकवैक्रियद्विकाहारकद्विकरूपाः सप्तप्रकृतयोऽधिकतया कथनीयाः, यत आसां प्रकृतीनां बन्धोऽत्र विद्यते, शेषप्रकृतयः पुनरिमाः—नपुंसकवेद-तिर्यक्त्रिक-मनुष्यत्रिकैकेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकसंहननषट्काद्यवर्जसंस्थानपञ्चककुखगत्यातपोद्योत स्थावर दुर्भगत्रिकनीचैर्गोत्ररूपा एकोनत्रिंशत्प्रकृतयः ॥८१५-४१॥

अथ पद्मलेश्यामार्गणायां सोऽभिधीयते

अत्थि धुवबंधिबारससायाईण पउमाअ तेउव्व ।
णवरि पणिंदितसाणि य णियमा-ऽण्णयरा उवंगसरखगई ॥८४२॥ (गीति)
एगिंदिथावरायवणामाणि ण पुरिससुरतिगाण तहा ।
जिणविउवाहारगदुगसुखगइआगिइपणिंदीणं ॥८४३॥
परघाऊसाससुहगतिगतसचउगुच्चगाण तेउव्व ।
परमेगिंदियआयवथावरणामाणि ण अबंधे ॥८४४॥
णिरयव्व सण्णियासो सगवीसाए हवेज्ज सेसाण ।
णवरि अबंधे सुरतिगविउवाहारगदुगाणि अवि ॥८४५॥

(प्रे०) 'अत्थि' इत्यादि, लाघवार्थमतिदेशेन सर्वप्रकृतीनां सन्निकर्षः कथ्यते, तथापि तेजोलेश्यामार्गणायामेकेन्द्रियस्थावरातपप्रकृतीनां बन्धो विद्यते अत्र तु न, तेन तेजोलेश्यामार्गणायां यासां प्रकृतीनां सन्निकर्षे एतत्प्रकृतित्रयस्य बन्धो विकल्पेन विद्यते सोऽत्र न संभवति, तस्मात् 'णवरि' इत्यादेः 'नामाणि' इत्यन्तस्य प्रथमविशेषस्य कथनम्, तथैव यासां प्रकृतीनां सन्निकर्षे तत्राबन्धे तत्प्रकृतित्रयस्य कथनं तदपि प्रस्तुते न संभवति तेन द्वितीयविशेषस्य 'परमे' इत्यादिनोपादानम्, इत्येवमाद्यगाथात्रयेण केवलं देवैर्बध्यमानाः सप्तविंशतिप्रकृतीर्वर्जयित्वा शेषबन्धार्हाणां सर्वप्रकृतीनां सन्निकर्षः सविशेषोऽतिदिष्टः, अथ चतुर्थगाथया शेषसप्तविंशतिप्रकृतीनां सन्निकर्षो नरकवत्कथ्यते, यत आसां सर्वासां बन्धकतया केवलं तृतीयादिकल्पगता देवा एव, तृतीयादिकल्पदेवमार्गणासु नरकवत्संनिकर्षो दर्शितस्तेन नरकवत् सन्निकर्षोऽतिदिष्टः । यद्यपि नरकवत्सन्निकर्षेऽतिदिष्टेऽपि प्रस्तुते नरकमार्गणातः सुरत्रिकवैक्रियद्विकाहारकद्विकरूपाणां सप्तप्रकृतीनां बन्धोऽधिकतया विद्यते, अत आसां सप्तविंशतिप्रकृतीनां सन्निकर्षेऽबन्धतयाऽऽसां सप्तप्रकृतीनां प्राप्यमाणत्वाद् 'णवरि' इत्यादिना तृतीयविशेषस्य कथनमिति। अक्षरार्थः पुनरयम्—'धुव' इत्यादि, सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिद्वादशसातवेदनीयादिप्रकृतीनां संनिकर्षस्तेजोलेश्यामार्गणायां यथा कथितस्तथैवात्र कथनीयः किन्तु पञ्चेन्द्रियजातित्रसनाम्नोस्तथौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वय एकतरस्य तथाऽन्यतरस्वरस्यान्यतरखगतिनाम्नश्च बन्धो नियमेन कथनीयः, एकेन्द्रियस्थावरातपनाम्नां बन्धो न कथनीयः प्रस्तुते तासामबन्धादिति । 'पुरिस' इत्यादि, पुरुषवेदसुरत्रिकजिननामवैक्रियद्विकाहारकद्विकशुभखगतिप्रथमसंस्थानपञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वाससुभगत्रिकत्रसचतुष्कोच्चैर्गोत्र-

रूपाणां द्वात्रिंशतिप्रकृतीनां प्रधानभावेन सन्निकर्षस्तेजोलेश्यामार्गणावज्ज्ञातव्यः परमत्रन्थप्रकृतितयैकेन्द्रियस्थावरातपप्रकृतयो न कथनीयाः, प्रस्तुतेऽबन्धादिति । 'णिरयव्व' इत्यादि, केवलं देवैर्बध्यमानानां स्त्रीवेदनपुंसकवेदतिर्यक्त्रिकमनुष्यत्रिकौदारिकद्विकसंहननषट्कप्रथमवर्जसंस्थानपञ्चककुखगतिदुर्भगत्रिकोद्योतनीचैर्गोत्ररूपाणां सप्तविंशतिप्रकृतीनां सन्निकर्षो नरकवज्ज्ञातव्यः, केवलमत्रन्धे सुरत्रिकवैक्रियद्विकाहारकद्विकप्रकृतयोऽधिकतयाऽत्र कथनीयाः ॥८४२-४५॥

अथ शुक्ललेश्यामार्गणायां स उच्यते

सुक्काए बंधंतो एगं आवरणणवगविग्धाओ ।
बंधइ णियमाऽण्णा तह अण्णयरा तिण्णि वेअणीआई ॥८४६। (गीतिः)
वाऽण्णयरा जुगलाई पणवत्ताऽण्णा व सायबधी उ ।
ण असायं वाऽण्णयरा जुगलाई व धुवआइगुणसट्ठी ॥८४७॥ (गीतिः)
संजलणकोहबंधी आवरणणवगतिसंजलणविग्धा ।
बंधइ णियमा तिण्णि य अण्णयरा वेअणीआई ॥९४८॥
वा सेसधुवदुआउगपणिंदिआहारदुगतसचउक्कं ।
जिणपरघाऊसासा तह सेसाऽण्णयरजुगलाई ॥८४ ॥
एवं पुमस्स णवरि ण पडिवक्खेमेव तिण्ह चरमाणं ।
मायाईण णवरि वा कमसो एगदुतिसंजलणा ॥८५०॥
बंधेइ हस्सबंधी णियमा आवरणणवगसंजलणा ।
रइभयकुच्छाविग्धा चउरो अण्णयरवेअणीआई ॥९५१॥ (गीति)
वा सेसा धुवबंधी सगवीसा तह दुआउगपणिंदी ।
आहारगदुगजिणपरघाऊसासतसचउगाणि ॥८५२॥
सोगारई ण बंधइ वा उण अण्णयरसेसगइआई ।
एवं रईअ एवं भयकुच्छाण परमण्णयरजुगलं ॥८५३॥ (गीतिः)
जसबंधी बंधइ वा तेत्तीसधुवाउदुगपणिंदिजिणा ।
तह आहारगदुपरघाऊसासतसचउगाणि ॥८५४॥
अजसं ण अण्णयरवेअणीअगोआणि बंधए णियमा ।
तह विग्धणवावरणाऽण्णाऽण्णयरा वेवमुच्चस्स ॥८५५॥
पम्हव्व थीरहिअपणवण्णाऽण्णसुरारिहाण परमत्थि ।
ण तिरितिगुज्जोआ धुवसुणामबंधे दुणिद्दा वा ॥८५६॥
सेसाण सण्णियासो तेवीसाएऽत्थि आणयसुरव्व ।
णवरि अबंधे सुरतिगविउवाहारगदुगाणि अवि ॥८५८॥

(प्रे०) 'सुक्काए' इत्यादि, शुक्ललेश्यामार्गणायां ज्ञानावरणपञ्चकचक्षुरादिदर्शनावरणचतुष्काऽन्तरायपञ्चकरूपासु चतुर्दशप्रकृतिष्वन्यतमां प्रकृतिं बध्नन् शेषत्रयोदशप्रकृतीरन्यतरवेदनीयं यशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगल एकतरं गोत्रद्वय एकतरं च नियमेन बध्नाति । 'वा' इत्यादि, पञ्चदशाऽन्यतरयुगलादिप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । ताश्चेमाः—एकतरं युगलमन्यतमो वेदो देवमनुष्यगति-

द्वय एकतरा गतिरौदारिकवैक्रियद्विकद्वय एकतरं द्विकमन्यतमसंहननमन्यतमसंस्थानं देवमनुष्यानुपूर्वीद्वय एकतरानुपूर्वी खगतिद्वय एकतरा खगतिः स्थिरास्थिरादियुगलपञ्चकेऽन्यतराः पञ्चप्रकृतयश्चेति । 'व' इत्यादि, उक्तशेषपञ्चचत्वारिंशत्प्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । ताश्चेमाः–निद्राद्विकं स्त्यानर्द्धित्रिक मिथ्यात्वमोहनीय षोडशकषाया भयकुत्से देवमनुष्यायुर्द्वयं पञ्चेन्द्रियजातिराहारकद्विकं त्रसचतुष्कं पराघातोच्छ्वासनाम्नी जिननाम नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयश्चेति । प्रकृतप्रकृतीनामन्यतरप्रकृतीनां च बन्धविच्छेदानन्तरमपि प्रधानीकृतप्रकृतीनां बन्धभावात् ।

'सायबंधी' इत्यादि, सातवेदनीयस्य बन्धकोऽसातवेदनीयं नैव बध्नाति । 'वा' इत्यादि, अन्यतरयुगलादिप्रकृतीरेकोनषष्टिध्रुवबन्धिप्रभृतिप्रकृतीश्च विकल्पेन बध्नाति ताश्चेमाः--सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजातिनामाहारकद्विकत्रसचतुष्कपराघातोच्छ्वासजिननामदेवमनुष्यायुष्कद्वयरूपा द्वादशप्रकृतयश्चेत्येकोनषष्टिध्रुवबन्ध्यादिप्रकृतय इति । अन्यतरयुगलादिप्रकृतयः पुनरिमाः-अन्यतरयुगलमन्यतमो वेदो देवमनुष्यद्विकद्वयेऽन्यतरद् द्विकमौदारिकवैक्रियद्विकद्वयेऽन्यतरद्द्विकमन्यतमसंहननमन्यतमसंस्थानमेकतरा खगतिः स्थिरास्थिरादियुगलषट्केऽन्यतराःषट्प्रकृतयोऽन्यतरगोत्रञ्चेति सप्तदशेति । 'संजलण' इत्यादि, सञ्ज्वलनक्रोधबन्धको ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसञ्ज्वलनमानादित्रयाऽन्तरायपञ्चकरूपाः सप्तदशप्रकृतीरन्यतरवेदनीयं यशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगल एकतरप्रकृतिं गोत्रद्वयेऽन्यतरद् गोत्रं च नियमेन बध्नाति । 'वा' इत्यादि, शेषैकोनत्रिंशद्ध्रुवबन्धिदेवमनुष्यायुर्द्वयपञ्चेन्द्रियजात्याहारकद्विकत्रसचतुष्कजिननामपराघातोच्छ्वासरूपा एकचत्वारिंशत्प्रकृतीः शेषाऽन्यतरप्रकृतीश्च विकल्पेन बध्नाति । ताश्चाऽन्यतरप्रकृतयः पूर्वोक्ता एव ज्ञातव्याः । 'एवं' इत्यादि, पुरुषवेदप्रधानसन्निकर्षः सञ्ज्वलनक्रोधवदवसेयः । 'णवरि' इत्यादिनाऽपवादं कथयति -पुरुषवेदबन्धकस्तत्प्रतिपक्षवेदद्वयं नैव बध्नाति । 'एमेव' इत्यादि,सञ्ज्वलनमानमायालोभत्रयस्य प्राधान्येन सन्निकर्षः सञ्ज्वलनक्रोधवदवसेयः । 'णवरि' इत्यादिनाऽपवादपदमुच्यते सञ्ज्वलनमानबन्धकः सञ्ज्वलनक्रोध सञ्ज्वलनमायाबन्धकः सञ्ज्वलनक्रोधमानौ सञ्ज्वलनलोभबन्धकः सञ्ज्वलनक्रोधमानमायात्रयं च विकल्पेन बध्नाति ।

'बंधेइ' इत्यादि, हास्यमोहनीयबन्धको ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसञ्ज्वलनचतुष्करतिभयकुत्साऽन्तरायपञ्चकरूपा एकविंशतिप्रकृतीरन्यतरवेदनीयमन्यतमो वेदो यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योरेकतरामन्यतरद्गोत्रं च नियमेन बध्नाति । 'वा' इत्यादि, सप्तविंशतिध्रुवबन्धिदेवमनुष्यायुर्द्वयपञ्चेन्द्रियजात्याहारकद्विकजिननामपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपा नवत्रिंशत्प्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । 'सोग' इत्यादि, शोकारती नैव बध्नाति । 'वा' इत्यादि, अन्यतरशेषगत्यादिप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, ताश्चेमाः--देवमनुष्यद्विकद्वय एकतरं द्विकमौदारिकवैक्रियद्विकद्वय एकतरं द्विकमन्यतमसंहननमन्यतमसंस्थानमन्यतरा खगतिः स्थिराऽस्थिरादियुगलपञ्चकेऽन्यतराः पञ्चप्रकृतयश्चेति

द्वादशेति । 'एवं' इत्यादि, रतिमोहनीयप्रधानसन्निकर्षो हास्यमोहनीयवद् वर्तते । 'एवं' इत्यादि, भयकुत्सामोहनीययोरपि प्राधान्येन सन्निकर्षो हास्यमोहनीयवदस्ति । 'परं' इत्यादिनाऽपवादमाह-- अन्यतरद्धास्यादियुगलं भयादिबन्धको नियमेन बध्नाति ।

'जस' इत्यादि, यशःकीर्तिनामबन्धको ज्ञानावरणीयप्रभृतिचतुर्दशप्रकृतिवर्जत्रयस्त्रिंशद्ध्रुवबन्धि-देवमनुष्यायुष्कद्वयपञ्चेन्द्रियजातिजिननामाहारकद्विकपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपाः एञ्चचत्वारिं शत्प्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । 'अजसं' इत्यादि, अयशःकीर्तिनाम नैव बध्नाति । 'अप्पायर' इत्यादि, अन्यतरवेदनीयमन्यतरच्च गोत्रं तथा ज्ञानावरणीयादिचतुर्दशप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति । 'अप्पा' इत्यादि, अभिहितेतरान्यतरप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, ताश्च मतिज्ञानावरणीयप्रधान-सन्निकर्षे कथिता एवाऽत्र ग्राह्याः । 'एवं' इत्यादि, उच्चैर्गोत्रप्रधानसन्निकर्षो यशःकीर्तिप्रधानसन्नि-कर्षवज्ज्ञातव्य इति ।

'पम्हव्व' इत्यादि, स्त्रीवेदरहितदेवप्रायोग्यशेषपञ्चपञ्चाशत्प्रकृतिप्रधानसन्निकर्षः पद्मलेश्यायां तत्तत्प्रकृतिप्रधानसंनिकर्षो यथा कथितस्तद्वदेवाऽत्रापि स वक्तव्यः किन्तु तत्र तिर्यगायुष्क-तिर्यग्द्विकोद्योतप्रकृतीनामबन्धप्रकृतितया स्याद्बन्धवत्प्रकृतितया वा यथायोग्यं ग्रहणं कृतम्, तदत्र न कर्तव्यम्, प्रस्तुते तासामबध्यमानत्वादिति । तथा 'धुव' इत्यादि, नवनाम-ध्रुवबन्धिशेषशुभ-नामप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षे निद्राद्विकस्य प्रस्तुते स्याद्बन्धः कथनीयः, निद्राद्विकबन्धविच्छेदानन्तर-मासां प्रकृतीनां बन्धविच्छेदात् । शेषपञ्चपञ्चाशद्देवगतिबन्धप्रायोग्यप्रकृतयः पुनरिमाः—निद्रापञ्च-कासातवेदनीयारतिशोकमिथ्यात्वमोहनीयाद्यद्वादशकषायदेवायुष्कदेवद्विकपञ्चेन्द्रियजातिनवनामध्रुव-बन्धिवैक्रियद्विकाहारकद्विकप्रथमसंस्थानसुखगतिजिनपराघातोच्छ्वासयशःकीर्तिवर्जत्रसनवकास्थिराशु-भायशःकीर्तिनामप्रकृतयः । यासां नवनामध्रुवबन्धि-शेषशुभनामप्रकृतीनां सन्निकर्षे निद्राद्विकस्य स्याद्बन्धस्ताः पुनरिमाः नवनामध्रुवबन्धिदेवद्विकपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विका-ऽऽहारकद्विकप्रथम-संस्थानशुभखगतिजिनपराघातोच्छ्वासत्रसनवकरूपास्त्रिंशत्प्रकृतयः ।

'सेसाण' इत्यादि, शेषत्रयोविंशतिप्रकृतीनां संनिकर्ष आनतसुरवज्ज्ञातव्यः । अत्रापि यो विशेषस्तं 'णवरि' इत्यादिना कथयति-स्त्रीनपुंसकवेदद्वयमनुष्यत्रिकौदारिकद्विकसंहननषट्कप्रथम-वर्जसंस्थानपञ्चककुखगतिदुर्भगत्रिकनीचैर्गोत्ररूपाणां प्रस्तुतमार्गणावर्तिकेवलदेवैर्बध्यमानानां त्रयो-विंशतिप्रकृतीनां सन्निकर्ष आनतदेववज्ज्ञातव्यः, किन्त्वबन्धे सुरत्रिकवैक्रियद्विकाहारकद्विकप्रकृतयो-ऽधिकतया कथनीयाः ॥८४६-८५७॥

अथाऽभव्यादिमार्गणासु सोऽभिधीयते

परठाणसण्णियासो सब्बेसि मभविमिच्छअमणेसुं ।
अप्पाणतिगव्व णवरि तिरिच्छरां बधए णियमा ॥८५८॥

(प्रे०) 'परठाण' इत्यादि, अभव्यमिथ्यात्वाऽसंज्ञिमार्गणात्रये सर्वासां प्रकृतीनां परस्थानसन्निकर्षोऽज्ञानमार्गणात्रिकवद् विज्ञातव्यः । 'णवरि' इत्यादिनाऽपवादमाह–मिथ्यात्वमोहनीयं नियमेन बध्नाति । ८५८॥

इदानीं क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां प्रकृतमभिधातुमना आह

इगतीसधुवपणिंदिसुआगिइखगइपरघायऊसासा ।
तसचउगसुहगतिगपुमउच्चाओ वेअगे एगं ॥८५९॥
बंधतो णियमाऽण्णा तह दस अण्णयरवेअणीआई ।
सेसा व जिणस्सेव छण्हं सायाइगाणं पि ॥८६०॥
णवरि ण चिअ पडिवक्खा सेसाणोहिव्व णवरि बंधेइ ।
णियमा णिद्दापयला सुरविउवाहारदुगबंधी ॥८६१॥

(प्रे०) 'इग०' इत्यादि, क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायामप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणचतुष्कवर्जशेषैकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतिपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्कसुभगत्रिकपुरुषवेदोच्चैर्गोत्ररूपासु पञ्चचत्वारिंशत्प्रकृतिष्वेकां प्रकृतिमाबध्नन् शेषचतुश्चत्वारिंशत्प्रकृतीस्तथाऽन्यतरवेदनीयादिदशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चेमा अन्यतरदशप्रकृतयः–अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलं देवमनुष्यद्विकद्वय एकतरं द्विकमौदारिकवैक्रियद्विकद्वय एकतरं द्विकं स्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलत्रय एकतरास्तिस्रः प्रकृतयश्चेति । 'सेसा' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । ताश्चैताः–अप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणचतुष्कद्वयं आहारकद्विकं वज्रर्षभनाराचसंहननं जिननाम देवमनुष्यायुष्कद्वयं चेति चतुर्दशेति ।'जिणस्स' इत्यादि, जिननाम्नः प्रधानतया सन्निकर्ष एवमेवाऽस्ति । 'छण्हं' इत्यादि, सातवेदनीयहास्यरतिस्थिरशुभयशःकीर्तिरूपस्य प्रकृतिषट्कस्याऽपि सन्निकर्ष एवमेव विज्ञेयः । 'णवरि' इत्यादिनाऽपवादं प्रदर्शयति-सातवेदनीयादिप्रकृतिबन्धकस्तत्प्रतिपक्षप्रकृतिं नैव बध्नाति, विरोधात् । 'सेसाण' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीनां प्राधान्येन परस्थानसन्निकर्षोऽवधिज्ञानमार्गणावदवसेयः, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः–असातवेदनीयमप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणचतुष्के शोकारती देवमनुष्यत्रिकद्वयमौदारिकवैक्रियद्विकद्वयमाहारकद्विकं वज्रर्षभनाराचसंहननमस्थिराऽशुभायशःकीर्तित्रयं चेति सप्तविंशतिरिति । 'णवरि' इत्यादिनाऽपवादमाह- सुरद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकबन्धको निद्राद्विकं नियमेन बध्नाति, क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणाऽप्रमत्तसंयतगुणस्थानं यावद् वर्तते तावत्पर्यन्तं च सुरद्विकादिप्रकृतिभिः सह निद्राद्विकबन्धस्य नैयत्यं वर्तत इति कृत्वेति ॥८५९ ६१॥

अथ मिश्रसम्यक्त्वमार्गणायां परस्थानसन्निकर्षं निरूपयितुमाह

मीसे एग धुवगुणचत्तपणिंदियसुहागिइपुमाण ।
परघाऊसाससुहगतिगतसचउगसुहखगइउच्चाणं ॥८६२॥ (गीतिः)

बंधंतो णियमाऽण्णा दस णियमाऽण्णयरवेअणीआई ।
वइरं वेवं बारससायाईण परं ण पडिवक्खा ॥८६३॥
बंधतो णरउरलदुगवइराणेग ण देवविउवदुगं ।
णियमा छवेअणीआई अण्णयरा तहा सेसा ॥८६४॥
सुरविउवदुगाणेगं बधंतो ण णरउरलदुगवइरा ।
णियमा छ वेअणीआई अण्णयरा तहा सेसा ॥८६५॥

(प्रे०) 'मीसे' इत्यादि, मिश्रसम्यक्त्वमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकवर्जशेषैकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानपुरुषवेदपराघातोच्छ्वासमुभगत्रिकत्रसचतुष्कसुखगतिनामोच्चैर्गोत्ररूपासु त्रिपञ्चाशत्प्रकृतिष्वेकतरां प्रकृतिं बध्नन् शेषद्वापञ्चाशत्प्रकृतीर्दशाऽन्यतरवेदनीयादिप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति । ताश्चेमा अन्यतरप्रकृतयः-अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलं देवमनुष्यद्विकद्वय एकतरं द्विकमौदारिकवैक्रियद्विकद्वय एकतरं द्विकं स्थिराऽस्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलत्रय एकतरास्तिस्रः प्रकृतयश्चेति । 'वइरं' इत्यादि, वज्रर्षभनाराचसंहननं विकल्पेन बध्नाति, देवप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले तेन तस्याऽबध्यमानत्वान्मनुष्यप्रायोग्यबन्धकाले बध्यमानत्वाच्च । 'एवं' इत्यादि, साताऽसातवेदनीयद्वयहास्यादियुगलद्वयस्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिरूपाणां द्वादशप्रकृतीनां प्रधानभावेन सन्निकर्ष एवमेव विज्ञेयः । 'परं' इत्यादिनाऽपवादमाह सातवेदनीयादिप्रकृतिबन्धकस्तत्प्रतिपक्षप्रकृतिं नैव बध्नाति । 'बधंतो' इत्यादि, मनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननप्रकृतिपञ्चकेऽन्यतमामेकां प्रकृतिं बध्नन् देवद्विकवैक्रियद्विके नैव बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, अन्यतरवेदनीयादिषट्प्रकृतीस्तथाभिहितशेषप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चेमा अन्यतराः प्रकृतयः शेषप्रकृतयश्च–अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलं स्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलत्रय एकतरास्तिस्रः प्रकृतय इति षट्प्रकृतयः, एकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतिपुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतित्रसचतुष्कसुभगत्रिकपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपास्त्रिपञ्चाशदिति । 'सुर' इत्यादि, सुरद्विकवैक्रियद्विकप्रकृतिष्वेकतरामेकां प्रकृतिं बध्नन् मनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसहननप्रकृतिपञ्चकं नैव बध्नाति, विरोधात् । 'णियमा' इत्यादि, अन्यतरवेदनीयादिषट्प्रकृतीस्तथोक्तशेषप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति । ताश्चानन्तरोक्ता एवाऽत्रोपादेयाः ।८६३-६५॥

अथ सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायां प्रकृतः प्रकाश्यते

छायालधुवपणिदियपरघाऊसासतसचउक्काण ।
सासाणे बधंतो एगं बधेइ णियमा ऽण्णा ॥८६६॥
उज्जोअ वाऽण्णयर संघयण व णियमाऽण्णयरसेसा ।
सायरइहस्सपुमथीसुखगइआगिइथिरछगाणं ॥८६७॥

एवं णवरि ण बंधइ पडिवक्खा एवमेव विण्णेयो ।
छण्ह असायाईण णवरं बंधइ ण देवाउं ॥८६८॥
तिरियाउगबंधी धुवतिरियउरलदुगवण्णिविपरघाया ।
तह ऊसासतसचउगणीआइ बंधए णियमा ॥८६९॥
उज्जोअ णरसुरतिगविउव्वदुगुच्चाणि णेव णियमाऽण्णा ।
अण्णयरेव तिरिदुगउज्जोआण णवरं य तिरियाउं ॥८७०॥ (गीतिः)
मणुयाउ बंधंतो बंधइ णियमा छचत्तधुवबंधी ।
णरउरलदुगपणिंदियपरघाऊसासतसचउक्काणि ॥८७१॥ (गीतिः)
ण तिरिसुरतिगविउव्वदुगउज्जोआऽण्णयरवेअणीआई ।
चउदस णियमेवं णरदुगस्स णवरं णराउं वा ॥८७२॥
धुवसायहस्सरइसुरविउव्वदुगसुखगइआगिइपणिंदी ।
परघाऊसासगतसदसगुच्चाणि य सुराउबंधी उ ॥८७३॥ (गीतिः)
णियमाऽण्णयरं वेअ णऽण्णेमेव सुरविउव्वजुगलाण ।
णवरि सुराउं वा खलु णियमा छऽण्णयरवेअणीआई ॥८७४॥ (गीति.)
उरलतणुं बधंतो णियमा बंधइ छचत्तधुवबंधी ।
उरलोवगपणिंदियपरघाऊसासतसचउक्काणि ॥८७५॥ (गीति.)
सुरतिगविउव्वदुगाणि ण च्चिअ बंधइ या दुआउउज्जोआ ।
णियमाऽण्णा अण्णयरा एव ओरालुवगस्स ॥८७६॥
संघयणपंचगागिइचउगदुहगीतिगकुखगइणीआणं ।
एमेव हवेज्ज णवरि ण चेव बंधेइ पडिवक्खा ॥८७७॥
छायालधुवपणिंदियपरघाऊसासतसचउक्काणि ।
बंधेइ उज्जवघी णियमा वाऽण्णयरसंघयण ॥८७८॥
णोअतिरितिगुज्जोआ ण चेव बंधइ व णरसुराऊणि ।
बधइ णियमा सेसा अण्णयरा वेअणीआई ॥८७८॥

(प्रे०) 'छायाल' इत्यादि, सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयवर्जषट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतिपञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपासु त्रिपञ्चाशत्प्रकृतिष्वेकतमां प्रकृतिं बध्नन् शेषद्विपञ्चाशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'वा' इत्यादि, देवमनुष्यतिर्यगायुरुद्योतप्रकृतिचतुष्कमन्यतमं संहननं च विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तान्यतरशेषप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चेमाः--अन्यतरद् वेदनीयमेकतरं हास्यादियुगलं स्त्रीपुरुषवेदद्वयेऽन्यतमो वेदो देवमनुष्यतिर्यग्द्विकत्रय एकतरं द्विकमौदारिकवैक्रियद्विकद्वय एकतरं द्विकं प्रथमादिसंस्थानपञ्चकेऽन्यतमं संस्थानमन्यतरा खगतिः स्थिरास्थिरादियुगलषट्क एकतराः षट्प्रकृतयोऽन्यतरद् गोत्रं चेति सप्तदशेति । 'साय' इत्यादि, सातवेदनीयरतिहास्यपुरुषवेदस्त्रीवेदसुखगतिसमचतुरस्रसंस्थानस्थिरषट्कप्रकृतीनां सन्निकर्ष एवमेव विज्ञेयः । 'णवरि' इत्यादिनाऽपवाद उच्यते—एतत्प्रकृतिबन्धकस्तत्प्रतिपक्षप्रकृतिं नैव बध्नाति । 'एवमेव' इत्यादि, असातवेदनीयशोकारत्यस्थिराऽशुभायशःकीर्तिलक्ष-

णस्य प्रकृतिषट्कस्य प्राधान्येन सन्निकर्षोऽप्येवमेव विज्ञेयः। 'णवरं' इत्यादिनाऽपवादमभिदधाति-असातवेदनीयादिप्रकृतिबन्धकस्तत्प्रतिपक्षप्रकृतिं देवायुश्च नैव बध्नाति।

'तिरियाउगबंधो' इत्यादि, तिर्यगायुर्बन्धकः षट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धितिर्यग्द्विकौदारिकद्विकपञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्कनीचैर्गोत्ररूपा अष्टपञ्चाशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति। 'वु' इत्यादि, उद्योतनाम विकल्पेन बध्नाति। 'णर' इत्यादि, मनुष्यत्रिकसुरत्रिकवैक्रियद्विकोच्चैर्गोत्ररूपा नव प्रकृतीर्नैव बध्नाति। 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषाऽन्यतरप्रकृतीर्नियमतो बध्नाति। ताश्चेमाः-एकतरं वेदनीयमेकतरं हास्यादियुगलं स्त्रीपुरुषवेदद्वय एकतरो वेदः प्रथमादिसंहननपञ्चकेऽन्यतमं संहननं प्रथमादिसंस्थानपञ्चकेऽन्यतमं संस्थानमन्यतरा खगतिः स्थिरास्थिरादियुगलषट्केऽन्यतराः षट्प्रकृतयश्चेति त्रयोदशेति। 'एवं' इत्यादि, तिर्यग्द्विकोद्योतनाम्नोः प्राधान्येन सन्निकर्षस्तिर्यगायुर्वदवसेयः। 'णवरं' इत्यादिनाऽपवादं कथयति-तिर्यग्द्विकोद्योतनामबन्धकस्तिर्यगायुर्विकल्पेन बध्नाति।

'मणुयाउं' इत्यादि, मनुष्यायुष्कं बध्नन् षट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिमनुष्यद्विकौदारिकद्विकपञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपाः सप्तपञ्चाशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति। 'ण' इत्यादि, तिर्यक्त्रिकदेवत्रिकवैक्रियद्विकोद्योतनामरूपा नवप्रकृतीर्नैव बध्नाति। 'वणयर' इत्यादि, उक्तातिरिक्तवेदनीयाद्यन्यतरचतुर्दशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चाऽनन्तरोक्ता अन्यतरगोत्रेण सहिता एवात्र ग्राह्याः। 'एवं' इत्यादि, मनुष्यद्विकस्य प्राधान्येन सन्निकर्षो मनुष्यायुर्वदवसेयः। 'णवरं' इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति- मनुष्यद्विकबन्धको मनुष्यायुर्विकल्पेन बध्नाति।

'धुव' इत्यादि, देवायुर्बन्धकः षट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिसातवेदनीयहास्यरतिसुरद्विकवैक्रियद्विकसुखगतिसमचतुरस्रसंस्थानपञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रसदशकोच्चैर्गोत्ररूपा एकोनसप्ततिप्रकृतीरेकतरं स्त्रीपुरुषवेदद्वये वेदं च नियमेन बध्नाति। 'ण' इत्यादि, उक्तातिरिक्तप्रकृतीर्नैव बध्नाति, ताश्चेमाः-असातवेदनीयं शोकारती तिर्यक्त्रिकं मनुष्यत्रिकमौदारिकद्विकं प्रथमादिसंहननपञ्चकं मध्यमसंस्थानचतुष्कं कुखगतिरस्थिरषट्कमुद्योतनाम नीचैर्गोत्रं चेत्येकोनत्रिंशदिति। 'एमेव' इत्यादि, सुरद्विकवैक्रियद्विकयोः प्राधान्येन सन्निकर्षः सुरायुर्वदस्ति। 'णवरि' इत्यादिनाऽपवादमाह-देवद्विकादिप्रकृतिबन्धको देवायुर्विकल्पेन बध्नाति। 'वा' इत्यादि, तथा स एव देवद्विकादिप्रकृतिबन्धक एकतरं वेदनीयमेकतरं हास्यादियुगलं स्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलत्रय एकतरास्तिस्रः प्रकृतयश्चेत्यन्यतरषट्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति।

'उरलतणु' इत्यादि, औदारिकशरीरनाम बध्नन् षट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृत्यौदारिकाङ्गोपाङ्गपञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपाश्चतुःपञ्चाशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति। 'सुर' इत्यादि, सुरत्रिकवैक्रियद्विकप्रकृतिपञ्चकं नैव बध्नाति। 'वा' इत्यादि, तिर्यग्मनुष्यायुर्द्वयोद्योत-

प्रकृतित्रयं विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषाऽन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः—एकतरं वेदनीयमेकतरं हास्यादियुगलं स्त्रीपुरुषवेदद्वय एकतरो वेदस्तिर्यग्मनुष्यद्विकद्वय एकतरं द्विकं प्रथमादिसंहननपञ्चकेऽन्यतमं संहननं प्रथमादिसंस्थानपञ्चकेऽन्यतमं संस्थानमन्यतरा खगतिः स्थिरास्थिरादियुगलषट्केऽन्यतराः षट्प्रकृतयोऽन्यतरद् गोत्रं चेति षोडशेति । 'एवं' इत्यादि, औदारिकाङ्गोपाङ्गनाम्नः प्रधानतया सन्निकर्ष औदारिकशरीरनामवदवसातव्यः । 'संघयणा' इत्यादि, प्रथमादिसंहननपञ्चकमध्यमसंस्थानचतुष्कदुर्भगत्रिककुखगतिनीचैर्गोत्रप्रकृतीनां प्रधानभावेन सन्निकर्ष औदारिकशरीरनामवदवसेयः । 'णवरि' इत्यादिनाऽपवादमाह—एतत्प्रकृतिबन्धकस्तत्प्रतिपक्षप्रकृतिं नैव बध्नाति ।

'छायाल' इत्यादि, उच्चैर्गोत्रबन्धकः षट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतिपञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपास्त्रिपञ्चाशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'वा' इत्यादि, प्रथमादिसंहननपञ्चकेऽन्यतम संहननं विकल्पेन बध्नाति । 'णोअ' इत्यादि, नीचैर्गोत्रतिर्यक्त्रिकोद्योतरूपाः पञ्च प्रकृतीर्नैव बध्नाति । 'व' इत्यादि, मनुष्यदेवायुषी विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषाऽन्यतरवेदनीयादिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः—अन्यतरद् वेदनीयमेकतरं हास्यादियुगलं स्त्रीपुरुषवेदद्वय एकतरो वेदो देवमनुष्यद्विकद्वय एकतरं द्विकमौदारिकवैक्रियद्विकद्वय एकतरं द्विकं प्रथमादिसंस्थानपञ्चक एकतमं संस्थानमन्यतरा खगतिः स्थिरास्थिरादियुगलषट्केऽन्यतराः षट् प्रकृतयश्चेति षोडशेति ॥८६६ ७९॥ तदेवं परस्थानसन्निकर्षः परिसमाप्तस्तत्परिसमाप्तै च सन्निकर्षद्वारमपि समाप्तमिति ।

॥ इति श्रीप्रेमप्रभाटीकासमलङ्कृते बन्धविधाने उत्तरप्रकृतिबन्धे प्रथमाधिकारे षष्ठं सन्निकर्षद्वारं समाप्तम् ॥



॥ अथ सप्तमं भङ्गविचयद्वारम् ॥

साम्प्रतं 'यथोद्देशं निर्देशः' इति न्यायात्क्रमलब्धं सप्तमं भङ्गविचयद्वारं प्ररूपयितुमना ग्रन्थकार आदौ तावद्भङ्गानां संख्यां स्वरूपं च गाथायुगलेन दर्शयितुमाह

भंगाऽट्ठ बंधगो खलु पढमो दुइओ अबंधगो तइओ ।
सव्वे वि बंधगा तह सव्वे वि अबंधगा तुरिओ ॥८८०॥
एगेण बंधगेणं एगेऽणेगे अबंधगा कमसो ।
णेगेहि बंधगेहि सह एवं पंचमाइचऊ ।८८१॥

(प्रे०) 'भङ्ग'इत्यादि,भङ्गानां एकद्वित्र्यादिसंयोगनिष्पन्नानां विकल्पानां 'विचयो' नाम समूह इति भङ्गविचयशब्दार्थः । भावार्थः पुनरेवम्–विवक्षितपदार्थानामेकद्वित्रिचतुरादिपदार्थसंयोगैरनेके भङ्गाः प्रकरणग्रन्थेषु प्ररूपिता उपलभ्यन्ते परमत्र तूत्तरप्रकृतीनां बन्धकाबन्धकपदद्वयस्यैकसंयोगिनश्चत्वारो भङ्गा द्विसंयोगिनश्चत्वारो भङ्गा इत्यष्टावेव भङ्गा लभ्यन्ते, ते चैवम्

(१) एको बन्धक एव (२) एकोऽबन्धक एव (३) सर्वे बन्धकाः (४) सर्वेऽबन्धका इति चत्वार एकसंयोगिभङ्गाः । (५) एक एव बन्धक एक एवाऽबन्धकः,(६)एक एव बन्धकोऽनेकेऽबन्धकाः, (७) अनेके बन्धका एक एवाऽबन्धकः (८) अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धका इति द्विसंयोगिनश्चत्वारो-भङ्गाः । एतदेव ग्रन्थकारोऽत्र निरूपयति– 'भंगाऽट्ठ' इति, अत्र भङ्गविचयद्वारप्ररूपणायामष्टौ भङ्गा भवन्तीति भावः । अथाऽष्टानामपि भङ्गानां क्रमशः स्वरूपं दर्शयति । 'बंधगो खलु पढमो' इति खलुशब्दोऽत्राऽवधारणार्थकः, 'बन्धक एव' इतिरूप आद्यभङ्गः संवृत्तः, स चैवमुपपादनीयः, मार्गणा हि खलु द्विविधा विद्यन्ते,सान्तराः काश्चित् ,काश्चिच्च निरन्तराः,यथा नरकौघादिमार्गणा निरन्तराः सन्ति, जीवानां नरकौघादिमार्गणासु सदैव सद्भावात् , नैतत्कदापि भूतं, भविष्यति, भवति वा यन्नारकत्वादिपर्यायापन्ना जीवा नोपलभ्येरन् । अपर्याप्तमनुष्यसूक्ष्मसंपरायाहारककाययोग-प्रभृतिमार्गणास्तु सान्तराः सन्ति, सान्तरमार्गणासु जीवसत्ताया अनैकान्तिकत्वात् , भवति ह्यपर्या-प्तमनुष्यादिमार्गणाभ्यः सर्वेषां जीवानां निर्गमने जाते तासां मार्गणानामभावः । यदा खलु विवक्षितमार्गणायामेक एव जीवो विद्यते, स एव च काश्चिद् विवक्षितोत्तरप्रकृतीर्बध्नाति, तदा 'एक एव बन्धकः' इति प्रथमभङ्गस्य चरितार्थता भवति । ननु भङ्गेऽस्मिन्नेवकारपदप्रयोगस्य किं प्रयोजनमिति चेद् , उच्यते, यद्यत्रैवकारपदप्रयोगो न कृतः स्यात् , तर्हि षष्ठभङ्गेन साकं प्रथमभङ्गस्य साङ्कर्यभावेन प्रथमभङ्गस्य व्यर्थता स्यात् , तद्यथा–विवक्षितमार्गणायामनेके जीवा वर्तन्ते, तेभ्य एक एव जीवो विवक्षितप्रकृतिबन्धविधायी, अन्ये पुनर्न तथा, तदा 'एक एव बन्धक अनेकेऽबन्धकाः' इत्येवंरूपः षष्ठो भङ्गो भवति,षष्ठे भङ्गेऽप्यस्मिन्नेकजीवस्य विवक्षितप्रकृतीनां बन्धकत्वेनैवकारानुपहितस्य 'एको बन्धक' इति प्रथमभङ्गस्य समावेशात्साङ्कर्यभावेनाद्यभङ्गस्य

वैयर्थ्यं स्यात्, अत एव प्रथमभङ्ग एवकारपदं प्रयोक्तव्यम्, तेन नोक्तदोषापत्तिः,यतो हि प्रथमभङ्गे विवक्षितमार्गणायामेकस्यैव जीवस्य सत्त्वमस्ति स एव विवक्षितप्रकृतीनां बन्धकः, षष्ठ-भङ्गे पुनर्विवक्षितमार्गणायामनेके जीवा भवन्ति, तेभ्यश्चैक एव जीवो विवक्षितप्रकृतीनां बन्धकः, न त्वन्ये, इति प्रथमषष्ठभङ्गयोर्वैलक्षण्यमस्ति । अथात्र गाथायां 'बन्धकः' इति पदप्रयोगो विहितः न तु 'एक' इति पदप्रयोगः, 'एको बन्धक एव' इति प्रथमभङ्गे 'एक' इति पदं भवद्भिर्व्याख्यातम्, तत्कुत आयातमिति चेद्, अत्रोच्यते-'बन्धकः' इत्यत्र सिविभक्तेरेकत्वार्थकत्वेन 'एक' इति पदोपादानं प्रथमभङ्गे कृतमिति । अथ द्वितीयभङ्गं 'इइओ अबंधगो' इत्यनेन दर्शयति, द्वितीयोऽबन्धकः, खलुशब्दस्याऽत्राप्यायोजनाद् 'एकोऽबन्धक एव' इति लक्षणो द्वितीयभङ्गः सम्पद्यते, तद्घटना पुनरेवम्-विवक्षितमार्गणायामेक एव जीवो विद्यते स च विवक्षितप्रकृतीर्न बध्नाति, तदाऽयं भङ्गो घटां याति, अत्राऽप्येवकारपदोपादानं सप्तमभङ्गाद् द्वितीयभङ्गस्य पार्थक्यप्रदर्शनार्थं विज्ञेयम्, अन्यथा द्वितीयसप्तमभङ्गयोरैक्यप्रसक्तेः द्वितीयभङ्गस्य विलोपापत्तिः स्यात्; तदित्थम्-विवक्षितमार्गणायामनेके जीवाः स्युः, तेभ्य एकवर्जाः सर्वे जीवा विवक्षितप्रकृतीनां बन्धं विदधते, एकस्तु न तदा सप्तमो भङ्गो भवति अत्रैको जीवो विवक्षितप्रकृतीनामबन्धकतया विद्यत एव, तस्माद् 'एकोऽबन्धकः' इत्याकारकद्वितीयभङ्गस्य सप्तमभङ्गेऽन्तर्भावाद् भवति द्वितीयभङ्गविलोपः । "तइओ" इत्यादिना तृतीयभङ्गमुपदर्शयति, 'सर्वेऽपि बन्धकाः' इति स्वरूपतृतीयो भङ्गो भवति,भावना पुनरेवम्-विवक्षितमार्गणायां वर्तमानाः सर्वे जीवा विवक्षितप्रकृतीर्बध्नीयुस्तदाऽय भङ्ग उपपत्तिं लभते । "सव्वे वि" इत्यादितस्तुर्यभङ्गमभिदधाति-'सर्वेऽबन्धकाः' इत्यात्मकस्तुर्यो भङ्गो जायते, तद्यथा-विवक्षितमार्गणायां विद्यमानाः सर्वेऽपि जीवा विवक्षितप्रकृतीनामबन्धका भवेयुः, तदा भङ्गोऽयमवाप्यते । कृतैवं प्रथमगाथया चतुर्णामेकसंयोगिनां भङ्गानां स्वरूपप्ररूपणा, साम्प्रतं सैव परेषां द्विसंयोगिनां चतुर्णां भङ्गानां द्वितीयगाथया क्रियते, एकेन बन्धकेन एकानेके अबन्धका क्रमशः' इति यथाक्रममत्र एकेन बन्धकेनेतिपदेन साकं 'एकोऽबन्धकः' इतिपदस्यायोजनात् 'एक एव बन्धक एक एवाऽबन्धक इतिस्वरूपः पञ्चमभङ्गः संजायते, एकेन बन्धकेन समं अनेकाऽबन्धका इति पदस्यायोजनाच्च 'एक एव बन्धकोऽनेकेऽबन्धकाः' इति षष्ठभङ्गो भवति तत्र पञ्चमभङ्गस्य घटना पुनरेवं भवति-विवक्षितमार्गणायां द्वौ जीवावेव स्याताम्, ताभ्यां चैको जीवो विवक्षितप्रकृतीनां बन्धं प्रकुरुते, अन्यस्तु न, तदा पञ्चमभङ्गो घटते । ननु मौल 'अबन्धकाः' इतिपदं बहुवचनान्तमस्ति भवद्भिस्तु भङ्गेऽस्मिन् 'अबन्धकः' इतिपदमेकवचनान्तमुपदर्श्यते, तत्कथं न विरोधभागिति चेन्न 'स्याद्वावसङ्ख्येयः' इति सिद्धहेमव्याकरणसूत्रेणैकशेषनामा समासो जायते, तेन अबन्धकश्चाऽबन्धकाश्चेति अबन्धकाः इतिसमासविग्रहान्मौलात् 'अबन्धकाः' इतिपदादेकवचनान्तं 'अबन्धकः' इतिपदं लब्धुं शक्यम्,

तस्माद् भङ्गेऽप्यस्मिन्नेकवचनान्तत्वेन तदुपादानं नानुपपन्नम्। 'खलु' शब्दस्य प्रथमगाथातोऽत्राऽपि संयोजनात् भङ्गेऽस्मिन् 'एव' इति पदं निविष्टम्, अन्यथा तदनिवेशे 'एको बन्धक एकोऽबन्धकः' इत्याकारकः पञ्चमभङ्गो भवति, तस्य चाष्टमभङ्गेऽन्तर्भावेन पञ्चमाष्टमभङ्गयोरैक्यात् पञ्चमभङ्गस्य व्यर्थता स्यात्, तदेवम् विवक्षितमार्गणायां दशादयो जीवा विद्येरन्, तेभ्यश्च पञ्चादयो जीवा विवक्षितप्रकृतीनां बन्धकाः पञ्चादयश्च न तथा, तदा 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इतिरूपोऽष्टमो भङ्गो लभ्यते, अनेकेष्वेकस्यापि प्रतीतेस्तत्रैको जीवो विवक्षितप्रकृतीनां बन्धकत्वेन एकश्चाऽबन्धकत्वेनोपलभ्यते, प्रतीयते हि लोकेऽप्येवंविधा प्रतीतिः, यद् यस्य पार्श्वेऽनेकानि रूप्यकाणि सन्ति, तमन्यः कश्चिदेकरूप्यकार्थी प्रश्नयति, यत्तव समीप एकं रूप्यकं वर्तते ? स तदानीमस्तीत्येवमेवोत्तरयति न तु नास्तीति, परं यदि तं कश्चिदेकमेव रूप्यकमस्तीति पृच्छेत् तर्हि स नास्तीत्येवमेव प्रतिवचो दद्याद्, नत्वस्तीति। तथैव प्रकृताष्टमभङ्गे एक एव जीवो विवक्षितप्रकृतीनां बन्धक एक एव जीवोऽबन्धकः इतिप्रतीतिरनुपपन्ना, किन्तु एकजीवो विवक्षितप्रकृतीनां बन्धक एकोऽबन्धक इति प्रतीतिमात्रे न किमपि बाधकमुपलभामहे, अत एवाऽष्टमभङ्गात्पञ्चमभङ्गस्याऽभेदभावनिवारणार्थं खलुपदोपलभ्यं 'एवकारपद' बन्धकाऽबन्धकपदाभ्यां पञ्चमभङ्गे सम्बन्धनीयम्, एवं कृते सति भिद्यतेऽष्टमभङ्गात् पञ्चमो भङ्गः, अष्टमभङ्गवेलायां पञ्चादिजीवानां विवक्षितप्रकृतीनां बन्धकतया पञ्चादिजीवनामबन्धकतया विद्यमानत्वेनैकएव जीवस्तद्बन्धक एक एव जीवस्तदबन्धक इति प्रत्ययाभावात्। अथ पञ्चमाष्टमभङ्गयोरभेदभावव्यावृत्त्यर्थं पञ्चमे भङ्गे बन्धकाबन्धकपदाभ्याममा पृथक् पृथक् एवकारपदसम्बन्धो विहितस्तदसम्यक्, यतः सा व्यावृत्तिस्तु यद्येकबन्धकपदेन सह 'एव' इति पदं सम्बध्यते, यद्वा अबन्धकपदेन सह 'एव' पदं संबध्यते तर्ह्यपि भवितुमर्हा, तस्मादुभयत्र 'एव'पदयोजनप्रयत्नस्य वैफल्यमिति चेद्, अत्र प्रतिविधानम्-यदि 'एको बन्धकः' इत्यत्र एवपदस्य योजन न विधीयते, परं 'एकोऽबन्धकः' इत्यत्र 'एव' इतिपदं विधीयते तर्हि भङ्गस्याऽस्य वैयर्थ्यं स्यात्, तद्यथा 'अनेके बन्धका एक एवाऽबन्धकः' इति सप्तमभङ्गेऽबन्धकस्त्वेक एवास्ति बन्धकाः पुनरनेके सन्ति, अनेकेष्वेकस्य सद्भाव इति न्यायेना-ऽनेकबन्धकेष्वेकबन्धकस्यापि सत्त्वेन 'एको बन्धक एक एवाऽबन्धकः' इत्याकारकस्यैकत्र 'एव' पदेनाऽसम्बद्धस्य पञ्चमभङ्गस्य सप्तमभङ्गे प्रवेशाद् वैयर्थ्यप्रसक्तिर्भवति। ननु तर्हि 'एको बन्धकः' इत्यत्रैव एवपदं प्रयुज्यताम्, कृत 'एकाबन्धकः' इत्यत्र 'एव' पदप्रयुञ्जानेनेतिचेन्न, एवं हि विधाने भङ्गस्यास्य नैरर्थक्यमापद्येत, प्रागुक्तयुक्त्या षष्ठभङ्गेन तस्य साङ्कर्यभावात्, अत उभयत्रापि 'एवपदं' भङ्गेऽस्मिन् योजयितव्यम्। षष्ठभङ्गस्य पुनर्भावनाऽनया पद्धत्या भावयितव्या—विवक्षितमार्गणायां त्र्यादिजीवा वर्तेरन्, तेभ्यश्चैक एव जीवो विवक्षितप्रकृतीर्बध्नीयात्, नान्ये तदा 'एक एव बन्धकोऽनेकेऽबन्धकाः' इति षष्ठभङ्ग उपपन्नो भवति। अत्रापि 'एव' पदप्रयोगस्य बीजं पञ्चमभङ्गेऽभिहितपद्धत्या यथासंभवं स्वयमेव भावनीयम्, उक्तप्रायत्वात्। इदानीं सप्तमाष्टमभङ्गौ 'णेगेहिं'

इत्यादिना विध्रियेते, तद्यथा-इहापि पञ्चमभङ्गवद् 'अनेकबन्धकैरमा एकाऽबन्धकपदस्य, अनेकाऽबन्धकपदस्य च यथाक्रमं योजना कार्या, एवं च कृते 'अनेके बन्धका एक एवाऽबन्धकाः' इतिरूपः सप्तमो भङ्गो भवति 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इति रूपोऽष्टमभङ्गश्च । यदा विवक्षितमार्गणायां त्र्यादिजीवास्स्युः, तेभ्यश्च द्व्यादिजीवा विवक्षितप्रकृतीनां बन्धकाः स्युः, एकश्च न तथा, तदा सप्तमभङ्गो घटते, सप्तमभङ्गेऽस्मिन् 'एव' पदप्रयोगस्य प्रयोजनं स्वयमेव स्वधिया शोधनीयम् । यदा पुनर्विवक्षितमार्गणायां चतुरादिसङ्ख्याप्रमाणा अनेके जीवा विद्येरन् , तेभ्यश्च केचन विवक्षितप्रकृतीनां बन्धका भवेयुः, अबन्धकाश्च केचन, तदाऽष्टमो भङ्गो घटते । एवमुक्तरीत्या पञ्चम आदौ येषां ते इति पञ्चमादयश्च ते चत्वार इति पञ्चमादिचत्वार इति समासविग्रहः । पञ्चमादिचत्वारो भङ्गा इत्यर्थः, 'ज्ञातव्याः' इतिसम्बन्धनीयम् । इति भङ्गानां संख्यास्वरूपयोर्निरूपणम् ॥८८०-८१॥

इदानीमुत्तरप्रकृतीनामोघत आदेशतश्च भङ्गान् निरूपयिषुरादावोघत आयुष्कत्रयप्रकृतीनां तदनन्तरं शेषसर्वप्रकृतीनां च भङ्गान्निरूपयितुमाह

णिरयणरसुराऊणं सिअ। तुरिअछट्ठअट्ठमा भंगा ।
सेसाण पयडीणं विण्णेयो अट्ठमो भगो ॥८८२॥

(प्रे०) 'णिरय' इत्यादि, नरकमनुष्यसुरायुष्काणां तुर्यषष्ठाऽष्टमास्त्रयो भङ्गा असहभावेन भवन्ति । इदमुक्तं भवति-नरकायुष्कस्य नरायुष्कस्य सुरायुष्कस्य च 'सर्वेऽबन्धकाः' इति तुर्यभङ्गो भवति, एवम् 'एक एव बन्धकोऽनेकेऽबन्धकाः' इति षष्ठो भङ्गो भवति, तथा 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इत्यष्टमो भङ्गश्च, एते त्रयोऽपि भङ्गाःपरस्परमसहभावेन भवन्ति, कदाचित्तुर्यः, कदाचित्षष्ठः, कदाचिदष्टमश्च । नरकायुर्विषये भङ्गत्रयस्याऽस्य भावना पुनरित्थं भाव्या-यदि विवक्षितायुष्कबन्धविधायिनो जीवा असंख्येयलोकाकाशप्रदेशसंख्यया न्यूनतरा भवेयुस्तदैव तेषामन्तरं प्राप्यत इत्यायुःसत्कव्याप्त्या नरकायुष्कबन्धका जीवास्तादृशसंख्यया न्यूनतराः सन्ति, अतस्तेषामन्तरं संभवति, न चाऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशसंख्याप्रमाणा नरकायुर्बन्धविधातारः कथं न भवन्तीत्यारेकणीयम् , यदि तावत्प्रमाणा नरकायुर्बन्धविधायिनो भवेयुस्तर्हि नरकगतौ नारकजीवानां तावत्प्रमाणता प्राप्येत, न हि नारकजीवास्तावत्प्रमाणाः सन्ति, प्रतरासंख्येयभागगतासंख्येयसूचीश्रेणिगतप्रदेशप्रमाणत्वेनैकलोकाकाशस्याप्यसंख्येयभागमात्रवर्तित्वात्तेषाम् । अपि च नरकायुर्बन्धप्रायोग्याः पञ्चेन्द्रियजीवा एव भवन्ति, ते चोत्कृष्टतः प्रतराऽसंख्येयभागप्रमाणाः सन्ति, अतोऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणा नरकायुर्बन्धका न भवन्ति । यदा च तेषां नरकायुर्बन्धकानां शून्यतालक्षणमन्तरं भवति, तदा जीवास्तिर्यगादिसत्कान्यायूंषि बध्नन्ति, केचन जीवाः सर्वथा-ऽऽयुषो-ऽबन्धकाश्च भवन्ति,अस्मिंश्चावसरे सर्वेऽपि नरकायुष्कस्याऽबन्धका वर्तन्ते, ततः 'सर्वेऽबन्धकाः' इति चतुर्थभङ्गोऽत्रोपपद्यते । यदि नरकायुरेक एव जीवो बध्नाति, नापरे तदा 'एक एव बन्धको ऽनेकेऽबन्धकाः' इति षष्ठो भङ्गो घटते, यदि च

कतिपया जीवा नरकायुर्बध्नन्ति, तदा 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इत्यष्टमो भङ्गोऽत्रोपपत्ति लभते । एवमेव देवमनुष्यायुर्विषयेऽप्येते त्रयोऽपि भङ्गा भावनीयाः । 'सेसाणं' इत्यादि, उक्तप्रकृतित्रयवर्जानां शेषसर्वोत्तरप्रकृतीनां 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इत्यष्टमो भङ्गो विज्ञेयः । तद्यथा–सर्वासां ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धकास्त्रयोदशमगुणस्थानकेऽनेककोटिप्रमाणा जीवा अनन्ताः सिद्धाश्च सदैव विद्यन्ते, तद्व्यतिरिक्ताश्च जीवा यथासंभवं तद्बन्धकतया विद्यन्ते, तथा शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां केचन जीवा बन्धका भवन्ति, अबन्धकाश्च केचन, परावर्तमानत्वेनाऽध्रुवबन्धेन च बध्यमानत्वात् ॥८८२॥

साम्प्रतमादेशतः सर्वासु मार्गणासु स्वप्रायोग्यायुष्ककर्मवर्जप्रकृतीनां भङ्गान्प्ररूपयितुकामो ग्रन्थकार आदौ यास्वोघवद् भङ्गाः प्राप्यन्ते तासु मनुष्यगत्यादिमार्गणासु तान् दर्शयन्नाह

तिणरदुपणिदियतसतिमणवयकायुरलसजमेसु तहा ।
सुक्कभवियसम्मखइअआहारियरेसु ओघव्व ॥८८३॥
सम्माउम्मीणाउगवज्जाण णवरि सिआ अणाहारे ।
सुरविउवदुगजिणाण चउत्थछट्ठऽट्ठमा भंगा ॥८८४॥

(प्रे०)'तिणर' इत्यादि, मनुष्यौघपर्याप्तमनुष्यमानुषीपञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौघपर्याप्तत्रसमनःसामान्यसत्यमनोऽसत्यामृषामनोयोगवचनयोगौघसत्यवचनाऽसत्यामृषावचनयोगकाययोगौघौदारिककाययोगसंयमौघशुक्ललेश्याभव्यसम्यक्त्वौघक्षायिकसम्यक्त्वाहारकाऽनाहारकरूपासु द्वात्रिंशतिमार्गणासु स्वप्रायोग्याणामायुष्ककर्मवर्जानां शेषप्रकृतीनामोघवदष्टमभङ्गो ज्ञेयः । मार्गणास्वासु केषांचिज्जीवानां प्रकृतप्रकृतीनां बन्धकत्वेन केषांचिच्चाऽबन्धकत्वेन सर्वदैव विद्यमानत्वात् ।

अथ भावनाऽवबोधसुगमार्थमत्र काश्चन व्याप्तयो व्याक्रियन्ते । तद्यथा

ध्रुवमार्गणायां ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां व्याप्तिः

(१) प्रथमा व्याप्तिः–ध्रुवमार्गणायां स्वोत्कृष्टगुणस्थानके या ध्रुवबन्धिप्रकृतयो बध्यन्ते, तासां तत्र तृतीय एव भङ्गो भवति,–यथा देवमार्गणा ध्रुवा विद्यते, तस्यां स्वोत्कृष्टं गुणस्थानकं चतुर्थमेव, चतुर्थगुणस्थानके बध्यमाना या ज्ञानावरणीयादिध्रुवबन्धिप्रकृतयो वर्तन्ते तासां देवमार्गणास्थैः सर्वैरेव बध्यमानत्वेन 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीय एव भङ्गोऽत्र प्राप्यते । याः प्रकृतयोऽध्रुवबन्धिन्यः सन्ति, परं मार्गणावशाद् ध्रुवबन्धिन्यः संजायन्ते, तथा मार्गणाप्रायोग्योत्कृष्टगुणस्थानकं यावद् बध्यन्ते तासां प्रकृतीनामपि तत्र तृतीय एव भङ्गो भवति ।

(२) ध्रुवमार्गणायां स्वोत्कृष्टगुणस्थाने बध्यमानाभ्यो ध्रुवबन्धिप्रकृतिभ्यो व्यतिरिक्तानां ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां द्वितीया व्याप्तिः

यस्यां मार्गणायां जीवाः सदैव बन्धप्रायोग्ये गुणस्थानके वर्तन्ते, तथाऽबन्धप्रायोग्येऽपि गुणस्थानके वर्तन्ते, तत्र स्वोत्कृष्टगुणस्थानके बध्यमानाभ्यो ध्रुवबन्धिप्रकृतिभ्यो व्यतिरिक्तानां ध्रुव-

बन्धिप्रकृतीनां 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इत्यष्टमो भङ्गो भवति, यथा ध्रुवरूपायां शाश्वत-मार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयस्य प्रथमगुणस्थानके बध्यमानत्वेन द्वितीयादिगुणस्थानत्रये पुनर-बध्यमानत्वेन च तद्बन्धप्रायोग्यगुणस्थाने तदबन्धप्रायोग्यगुणस्थाने च जीवाः सदा लभ्यन्ते तत्र च मिथ्यात्वमोहनीयस्य मिथ्यादृष्टिनो जीवा बन्धकतया प्राप्यन्ते, तदपरे पुनरबन्धकतया प्राप्यन्ते, तस्मादत्र मार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयस्य 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इतिलक्षणोऽष्टमो भङ्ग एव भवति ।

[३] तृतीया व्याप्तिः—यासामध्रुवबन्धिप्रकृतीनां परावर्तमानप्रकृतीनां चाष्टम एव भङ्गो भवति तद्विषये व्याप्तिरियम् ।

या मार्गणा ध्रुवा विद्यते तत्र च भवगुणयोर्निमित्ततामृते सहजत एव यासां प्रकृतीनां बन्धस्यान्तरमुत्कृष्टतोऽप्यन्तमुहूर्तादधिकं न भवति तासां प्रकृतीनां तत्र बन्धकाऽबन्धकानां सर्वदैव प्राप्यमाणत्वेनाऽष्टमो भङ्गो भवति ।

[४] ध्रुवमार्गणायां ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां ध्रुवबन्धिकल्पानां च तृतीयसप्तमाऽष्टमभङ्गविषया तुर्या व्याप्तिः—

शाश्वतमार्गणायां बन्धप्रायोग्यगुणस्थानकं नित्यमेव स्यात्, अबन्धप्रायोग्यगुणस्थानकं च कादाचित्कं स्यात्, तर्हि तत्र कस्मिँश्चित्समये कस्याप्यबन्धकस्यानुपलभ्यमानत्वेन तथा कस्मिँश्चि-त्समये एकस्याऽबन्धकस्य, कस्मिँश्चिच्च समयेऽनेकाऽबन्धकानां प्राप्यमाणत्वेन तृतीयसप्तमाष्टमभङ्गा भवन्ति, यथा ध्रुवभूतायामज्ञानमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयबन्धप्रायोग्यप्रथमगुणस्थानसत्ताया नैयत्यमस्ति, परं न तदबन्धप्रायोग्यगुणस्थानसत्तायाः, मार्गणायामस्यां कस्मिँश्चिदवसरे द्वितीय-गुणस्थानकविरहोपलब्धेः, तस्मादत्र यदाऽबन्धप्रायोग्यगुणस्थानक एकोऽपि जीवो न स्यात् तदा प्रथमगुणस्थानस्थायिनां सर्वेषां मिथ्यात्वमोहनीयबन्धविधायित्वेन 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयो भङ्गो भवति । यदा तदबन्धप्रायोग्यद्वितीयसास्वादनगुणस्थान एक एव जीवो वर्तेत तदा तस्य मिथ्यात्व-मोहनीयाबन्धकत्वेन 'अनेके बन्धका एक एवाऽबन्धकः' इतिसप्तमो भङ्गो भवति । यदा च सास्वा-दनगुणस्थानकेऽनेके जीवाः स्युः, तदा तेषां तदबन्धकत्वेन 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इति-लक्षणोऽष्टमो भङ्गो भवति, प्रथमगुणस्थानस्था जीवास्तु मिथ्यात्वमोहनीयस्य बन्धविधायकाः सन्त्येव ।

(५) पञ्चमी व्याप्तिः—अध्रुवमार्गणायां स्वोत्कृष्टगुणस्थानकप्रायोग्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां व्याप्ति-रियम्—अनित्यायां मार्गणायां स्वोत्कृष्टगुणस्थानकबन्धप्रायोग्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां प्रथमतृतीयभङ्गौ भवतः, कदाचिदेकस्य तद्बन्धकस्य कदाचिदनेकेषां तद्बन्धकानां चाऽत्रोपलभ्यमानत्वात्, तत्पुन-रेवम्—वैक्रियमिश्रमार्गणाऽध्रुवा विद्यते तस्यां च स्वोत्कृष्टप्रायोग्यगुणस्थानं चतुर्थमेव, तत्र पुनर्मिथ्या-त्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कलक्षणं प्रकृत्यष्टकं विना शेषाणामेकोनचत्वारिंशद्-

ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धो भवत्येव, यदा मार्गणायामेतस्यामेक एव जीवः स्यात्, स च प्रकृतीनामासां बन्धक एव, तदा 'एक एव बन्धकः' इति प्रथमभङ्गो भवति । यदा चाऽनेके जीवाः स्युः, ते च सर्वे प्रकृतीनामासां बन्धका, तदा 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्गः सम्पद्यते ।

[६] षष्ठी व्याप्तिः-अष्टानामपि भङ्गानां व्याप्तिः । या मार्गणाऽध्रुवा स्यात्, तस्यां च मार्गणायां विवक्षितप्रकृतीनामबन्धका अप्युपलभ्येरन्, तदा तत्र तासामष्टावपि भङ्गा भवन्ति ।

तदित्थम्:--उपशमसम्यक्त्वमार्गणाऽध्रुवाऽस्ति, तत्रोपशमश्रेणिमाश्रित्य ज्ञानावरणीयादीनां स्वप्रायोग्यप्रकृतीनामबन्धका अप्युपलभ्यन्ते, तस्मादत्र प्रकृतीनामासामष्टौ भङ्गाः संजायन्ते ।

(१) तदेवम्-यदा मार्गणायामस्यामेक एव जीवः स्यात्, स एव च ज्ञानावरणीयादिस्वप्रायोग्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धकः, तदा 'एक एव बन्धकः, इति प्रथमभङ्गो भवति ।

(२) मार्गणायामस्यामेक एव जीवः स्यात्, स एव चोक्तप्रकृतीनां बन्धं न विधत्ते, बन्धप्रायोग्यगुणस्थानत ऊर्ध्वं गमनात्, तदा 'एक एवाऽबन्धकः' इति द्वितीयभङ्गः सम्पद्यते ।

(३) यदाऽनेकेजीवाः स्युः, ते च सर्वे प्रकृतप्रकृतीनां बन्धका भवेयुः, तदा 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्गः सजायते ।

(४) यदा च ते सर्वेऽपि प्रकृतप्रकृतीनामबन्धका भवेयुः, तदा 'सर्वेऽबन्धकाः' इति चतुर्थो भङ्गो जायते ।

(५) यदा मार्गणायामस्यां द्वावेव जीवौ स्याताम्, ताभ्यां चैक एवैताः प्रकृतीर्बध्नाति, न पुनरपरः, तदा 'एक एव बन्धक एक एवाऽबन्धकः' इति पञ्चमभङ्गो भवितुमर्हति ।

(६) यदाऽनेके जीवाः स्युः, तेभ्य एक एव जीवः प्रस्तुतप्रकृतीर्बध्नाति, नेतरे, तदा 'एक एव बन्धको-ऽनेकेऽबन्धकाः' इतिरूपः षष्ठो भङ्गः संजायते ।

(७) यदाऽनेकेभ्यो जीवेभ्य **एको जीवो** प्रकृतप्रकृतीनामबन्धकः स्यात्, अपरे पुनर्बन्धकाः स्युः, तदा 'अनेके बन्धका एक एवाऽबन्धकः' इत्यात्मकः सप्तमो भङ्गो भवति ।

(८) यदा मार्गणायामस्यामनेके जीवा वर्तेरन्, तेभ्यः केचन जीवाः प्रकृतीनामासां बन्धं कुर्युः, केचन च न, तदा 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इतिरूपोऽष्टमो भङ्गः सम्पद्यते ।

अथानाहारकमार्गणायां "णवरि" इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति–अनाहारकमार्गणायां सुरद्विकवैक्रियद्विकजिननामलक्षणप्रकृतिपञ्चकस्य 'सर्वेऽबन्धकाः' इति चतुर्थभङ्गः, एक एव बन्धको-ऽनेकेऽबन्धकाः' इति षष्ठभङ्गः, 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इत्यष्टमभङ्ग इति त्रयो भङ्गा भवन्ति, भावना पुनरेवम्–अनाहारकमार्गणायां सुरपञ्चकस्य बन्धका अविरतसम्यग्दृष्टय एव ते च मार्गणाया-

मस्यां कदाचिद् विद्यमाना भवन्ति, कदाचिन्न, कदाचिच्चैक एव, यदा कोऽप्यविरतसम्यग्दृष्टिर्न-स्यात्, तदा 'सर्वेऽबन्धकाः' इति तुर्यभङ्गो भवति, मार्गणायामस्यां वर्तमानैः केवलं मिथ्यादृष्टिभिस्तु सुरपञ्चकस्याऽबध्यमानत्वात्। यदा पुनरेकस्सम्यग्दृष्टिः स्यात्, स एव च सुरपञ्चकस्य बन्धकः स्यात्, नेतरे मिथ्यादृष्टयः, तदा 'एक एव बन्धकोऽनेकेऽबन्धकाः' इति षष्ठो भङ्गो घटते। यदा पुनरनेके सम्यग्दर्शनिनो वर्तेरन्, त एव च तद्बन्धका भवेयुस्तदा 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इत्यात्मकोऽष्टमभङ्गो घटामञ्चति ॥८८३-८८४॥

अथ सकलनरकमार्गणासु कतिपयदेवमार्गणासु चोत्तरप्रकृतीनां भङ्गान् दर्शयन्नाह

सव्वणिरयभेदेसु सइआइगअट्ठमतदेवेसु ।
गुणचत्तालीसाए धुवबंधीण पयडीण तहा ॥८८५॥
ओरालदुगपणिंदियपरघाऊसासतसचउक्काणं ।
तइओ चेव विगप्पो सेसाण अट्ठमो भगो ॥८८६॥

(प्रे०) '**सव्वणिरय**' इत्यादि, नरकौघरत्नप्रभाशर्कराप्रभावालुकाप्रभापङ्कप्रभाधूमप्रभातमःप्रभातमस्तमःप्रभारूपास्वष्टसु नरकमार्गणासु सनत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलान्तकशुक्रसहस्रारलक्षणासु च षट्सु देवमार्गणासु ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्काऽप्रत्याख्यानावरणादिद्वादशकषायभयजुगुप्सा-तैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकद्विकपञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकनामकर्मलक्षणानां च नवानां प्रकृतीनां 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयो भङ्गोऽस्ति, मार्गणास्वासु वर्तमानैः सर्वैर्जीवैरनवरतं प्रकृतीनामासां बध्यमानत्वेन प्रथमव्याप्त्या भावना भाव्या। '**सेसाणं**' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीय-स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्करूपाणां शेषाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनां, वेदनीयद्विकहास्यादियुगल-द्वयवेदत्रयमनुष्यद्विकतिर्यग्द्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कविहायोगतिद्विकस्थिरषट्कास्थिरषट्कोद्योत-जिननामगोत्रद्वयरूपाणां च शेषाणामेकपञ्चाशत्प्रकृतीनां 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इतिरूपोऽष्ट-मभङ्गो वर्तते, मार्गणास्वासु मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकं मिथ्यादृष्टिभिर्बध्यते सम्यग्दृष्टिभिश्च न बध्यते, तथा शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतयः कैश्चिज्जीवैर्बध्यन्ते कैश्चिच्च न बध्यन्ते, तस्मान् मिथ्यात्व-मोहनीयादिप्रकृत्यष्टकस्य द्वितीयव्याप्त्या, शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च तृतीयव्याप्त्या भावना भावनीया। ॥८८५-८८६॥ इदानीं तिर्यगोघप्रभृतिमार्गणासूत्तरप्रकृतीनां भङ्गान् कथयितुमारभते

तिरिये तिपणिंदितिरियतिगे य धुवबंधिपंचतीसाए।
अत्थि विगप्पो तइओ सेसाणं अट्ठमो भगो ॥८८७॥

(प्रे०) '**तिरिये**' इत्यादि, तिर्यगोघतिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिमती-लक्षणासु चतसृषु मार्गणासु ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्क

भयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणान्तरायपञ्चकरूपाणां पञ्चत्रिंशत्प्रकृतीनां 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्गो विद्यते,हेतुरत्र प्रथमव्याप्त्या विभावनीयः। 'सेसाणं' इत्यादि,मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपाणां द्वादशानां शेषध्रुवबन्धिप्रकृतीना, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कानुपूर्वीचतुष्कखगतिद्विकत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातश्वासोच्छ्वासगोत्रद्विकरूपाणां षट्षष्टिशेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च सर्वसंख्यया अष्टसप्ततिप्रकृतीनां 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इतिरूपोऽष्टमो भङ्गो जायते, हेतुरत्र शेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनां द्वितीयव्याप्त्याऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च तृतीयव्याप्त्याऽवसातव्यः ॥८८७॥

अधुनाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियप्रभृतिमार्गणासु तथैकेन्द्रियादीनां सकलमार्गणासूत्तरप्रकृतीनां भङ्गान् विभणिषुराह

असमत्तेसु पणिंदियतिरियपणिंदियतसेसु सव्वेसु ।
एगिंदियविगलिंदियपुहविदगवणप्फईसु च ॥८८८॥
सगचत्तालीसाए धुवबंधीणं तहा उरालस्स ।
तइओ हवेज्ज भंगो सेसाणं अट्ठमो भंगो ॥८८९॥

(प्रे०) 'असमत्तेसु' इत्यादि, अपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्तत्रसरूपासु तिसृषु मार्गणासु तथौघसूक्ष्मौघबादरौघपर्याप्तसूक्ष्माऽपर्याप्तसूक्ष्मपर्याप्तबादराऽपर्याप्तबादरभेदेनैकेन्द्रियाणां सप्त मार्गणाः, सप्त पृथ्वीकायमार्गणाः, सप्ताप्कायमार्गणाः, ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेन द्वित्रिचतुरिन्द्रियाणां नव मार्गणाः, एकादशवनस्पतिकायमार्गणाश्चेति मीलितासु चतुश्चत्वारिंशन्मार्गणासु च सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्च 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्गो लभ्यते, प्रथमव्याप्त्या घटनेह कार्या। 'सेसाणं' इत्यादि, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानषट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासगोत्रद्विकरूपाणामेकोनषष्टिशेषाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनां 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इत्यष्टमभङ्गोऽस्ति। भावना पुनरत्र तृतीयव्याप्त्या भावनीया ॥८८८-८९॥

साम्प्रतमपर्याप्तमनुष्यमार्गणायामुत्तरप्रकृतीनां भङ्गान् चिकथयिषुराह

अत्थि अपज्जत्तणरे, सगयालीसधुवबंधिउरलाणं ।
आइमतइआ भंगा अडभंगा सेसपयडीण ॥८९०॥

(प्रे०) 'अत्थि' इत्यादि, अपर्याप्तमनुष्यमार्गणायां ज्ञानावरणादिसप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्च 'एक एव बन्धकः' इत्याद्यभङ्गः 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्गश्च भवतः। भावना पुनरत्र पञ्चमव्याप्त्या विधेया, तदेवम्—इयं मार्गणाऽध्रुवा विद्यते, तस्मादत्र कदाचि-

देक एव जीवः प्राप्यते, कदाचित्पुनरनेके, यदा पुनरेक एव जीवोऽत्र प्राप्यते, तदा प्रथमभङ्गो घटते प्रकृतप्रकृतीनां तस्यैव बन्धविधायित्वेन विद्यमानत्वात् । यदा पुनरनेके जीवा इह प्राप्यन्ते, तदा तृतीयभङ्गो भवति, अधिकृतप्रकृतीनां तत्रस्थैस्तैस्सर्वैरेव बध्यमानत्वात् । 'अड' इत्यादि, अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगादिमार्गणासूक्तानामेकोनषष्टिशेषाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनामष्टौ भङ्गा भवन्ति । योजना पुनरत्र षष्ठ्याप्त्या कर्तव्या, तदेवम्–मार्गणेयमध्रुवाऽस्ति, तस्मादत्र कदाचिदेक एव जीवो ऽवाप्यते, कदाचिच्चानेके. वेदनीयद्विकादिप्रकृतयोऽपि परावर्तमानतया बध्यमानत्वेन तत्रस्थैः कैश्चिद् बध्यन्ते, कैश्चिच्च न बध्यन्ते, तस्मादत्राऽष्टानामपि भङ्गानामुपलब्धिरस्ति ॥८९०॥

अथ सुरसामान्येशानान्तदेवादिमार्गणासूत्तरप्रकृतीनां भङ्गान्भावयन्नाह

तइओ चेव विगप्पो सुरईसाणतविउव्वजोगेसु ।
हवए धुवबंधीण इगूणचत्ताअ पयडीण ॥८९१॥
तह छण्होरालियतणुपरघाऊसासबायरतिगाण ।
भंगोऽत्थि अट्ठमो खलु सप्पाउग्गाण सेसाणं ॥८९२॥

(प्रे०) 'तइओ' इत्यादि, देवौघभवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कसौधर्मेशानवैक्रियकाययोगरूपासु सप्तसु मार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृत्यष्टकमृते शेषाणामेकोनचत्वारिंशज्ज्ञानावरणीयादिध्रुवबन्धिप्रकृतीनां तथौदारिकशरीरपराघातोच्छ्वासबादरत्रिकरूपाणां षण्णां प्रकृतीनां 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्गो भवति, उपपादनं चात्र प्रथमव्याप्त्या कार्यम् । 'भंगो' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कलक्षणस्य प्रकृत्यष्टकस्य वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयैकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानषट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्विकत्रसस्थिरषट्कस्थावराऽस्थिरषट्कातपोद्योतजिननामगोत्रद्विकरूपाणामध्रुवबन्धिप्रकृतीनां चेति सप्तपञ्चाशत्प्रकृतीनां देवौघसौधर्मेशानवैक्रियकाययोगलक्षणासु चतसृषु मार्गणासु, तथा जिननामविरहितानामासामेव षट्पञ्चाशत्प्रकृतीनां भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कमार्गणात्रये 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इत्यात्मकोऽष्टमो भङ्गो भवति, युक्तिरत्र मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकस्य द्वितीयव्याप्त्या शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च तृतीयव्याप्त्या ज्ञातव्या ॥८९१ ९२॥

इदानीमानतादित्रयोदशमार्गणासूत्तरप्रकृतीनां भङ्गान्भावयन्नाह

तेराणयाइगेसुं धुवबंधीण इगूणचत्ताए ।
पणिंदियणरदुगपरघूसासतसचउगाण ॥८९३॥
तइओ चेव विगप्पो पण्णासाअ पयडीण एएसिं ।
भंगोऽत्थि अट्ठमो खलु सप्पाउग्गाण सेसाण ॥८९४॥

(प्रे०) 'तेराणयाइ' इत्यादि, आनतप्राणताऽऽरणाऽच्युतनवग्रैवेयकलक्षणासु त्रयोदशमार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृत्यष्टकवर्जैकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजातिमनुष्य-

द्विकौदारिकद्विकपराघातश्वासोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपा एकादशप्रकृतयश्चेति सर्वसंमीलितानां पञ्चाश-त्प्रकृतीनां 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्गो भवति, भावना प्रथमव्याप्त्या विधातव्या। 'भंगो' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकस्य वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयसंस्थानषट्कसंहनन-नषट्कखगतिद्विकस्थिरषट्काऽस्थिरषट्कजिननामगोत्रद्वयरूपाणां स्वप्रायोग्याष्टात्रिंशदध्रुवबन्धिप्रकृ-तीनां च 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इतिरूपोऽष्टमो भङ्गो भवति, घटना पुनरत्र मिथ्यात्व-मोहनीयादिप्रकृत्यष्टकस्य द्वितीयव्याप्त्या कार्या, अध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च तृतीयव्याप्त्या ॥८९३-४॥

साम्प्रतं पञ्चानुत्तरमार्गणासूत्तरप्रकृतीनां भङ्गानभिधित्सुराह

पणऽणुत्तरदेवेसु, सायाईण जुगलाण छण्ह तहा ।
तित्थस्स अट्ठमो खलु भंगो तइओऽत्थि सेसाण ॥८९५॥

(प्रे०) 'पणऽणुत्तर' इत्यादि, विजयादिपञ्चानुत्तरमार्गणासु सातवेदनीयाऽसातवेदनीय-हास्यरतिशोकाऽरतिस्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिरूपस्य युगलषट्कस्य जिननामकर्मणश्च 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इतिरूपोऽष्टमो भङ्गोऽस्ति, भावना तृतीयव्याप्त्या करणीया। 'तइओ' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकवर्जशेषैकोनचत्वारिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनां पुरुष-वेदमनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननसमचतुरस्रसंस्थानमनुष्यानुपूर्वीशुभख-गतित्रसचतुष्कसुभगसुस्वरादेयोच्छ्वासपराघातोच्चैर्गोत्ररूपाणां शेषाणामेकोनविंशत्यध्रुवबन्धिप्रकृ-तीनां 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्गो भवति, घटना प्रथमव्याप्त्या कार्या ॥८९५॥

अथ तेजोवायुकायसत्कसकलमार्गणासूत्तरप्रकृतीनां भङ्गान् कथयन्नाह

धुवबंधितिरिदुगउरलणीआण सव्वतेउवाऊसु ।
तइओ चेव विगप्पो सेसाण अट्ठमो भंगो ॥८९६॥

(प्रे०) 'धुवबंधि' इत्यादि, ओघसूक्ष्मौघसूक्ष्मपर्याप्तसूक्ष्माऽपर्याप्तबादरौघबादरपर्याप्तबादरा-ऽपर्याप्तभेदभिन्नासु सप्तसु तेजस्कायमार्गणासु सप्तसु च वायुकायमार्गणासु ज्ञानावरणीयादीनां सप्त-चत्वारिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनां तिर्यग्द्विकौदारिकशरीरनीचैर्गोत्रलक्षणानां चतसृणां प्रकृतीनां च 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्गो वेदयितव्यः, योजनाऽत्राद्यव्याप्त्या विधेया। 'सेसाणं' इत्यादि, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानषट्कखगतिद्विक-त्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासरूपाणां त्रिपञ्चाशच्छेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इत्यष्टमो भङ्गो बोद्धव्यः, भावना पुनरिह तृतीयव्याप्त्याऽवसातव्या ॥८९६॥

अधुना मनोवचनयोरसत्यसत्यासत्यमार्गणासु चक्षुरादिमार्गणासु चोत्तरप्रकृतीनां भङ्गान् विचारयन्नाह-

अट्ठमसत्तमतइआ दुमणवयणवयणअचक्खुसण्णीसु ।
धुवबंधिगतीसाए सेसाणं अट्ठमो भंगो ॥८९७॥

(प्रे०) 'अट्ठमसत्तम' इत्यादि, असत्यमनः-सत्यासत्यमनोऽसत्यवचः-सत्यासत्यवचश्चक्षुरचक्षुःसंज्ञिरूपासु सप्तसु मार्गणासु ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सावर्णचतुष्कागुरुलघूपघातनिर्माणतैजसकार्मणशरीरद्वयाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इत्यष्टमो भङ्गः, 'अनेके बन्धका एक एवाऽबन्धकः' इत्यात्मकः सप्तमभङ्ग, 'सर्वे बन्धकाः' इत्यात्मकस्तृतीयभङ्ग इति त्रयो भङ्गा भवन्ति, घटना पुनरत्र चतुर्थव्याप्त्या ज्ञातव्या, तदेवम्—इमा मार्गणा द्वादशगुणस्थानकं यावद् विद्यन्ते, तथा प्रकृतीनामासां बन्धविच्छेदः श्रेणावष्टमगुणस्थानकाद् दशमगुणस्थानकं यावद् जायते, तस्माद् ये जीवाः श्रेणावेकादशगुणस्थानके द्वादशगुणस्थानके वा वर्तन्ते त इमाः प्रकृतीर्न बध्नन्ति, ततस्तत्राऽनेके तदबन्धका जीवा उपलभ्यन्ते, तथा प्रथमादिगुणस्थानस्था अनेके जीवा नैरन्तर्येण तद्बन्धकतयोपलभ्यन्ते, अतोऽत्राष्टमभङ्गः सूपपद्यते, यदा त्वेकादशे द्वादशे वा गुणस्थानके जीव एक एव वर्तते, तदा तस्यैकस्यैव जीवस्य प्रकृतीनामासामबन्धकतया प्राप्यमाणत्वेन तथा तदधस्तनगुणस्थानकेषु त्वनेकेषां जीवानां तद्बन्धकतया प्राप्यमाणत्वेन सप्तमो भङ्ग इहोपपन्नो भवति, यदा श्रेणौ कोऽपि जीवो न विद्यते, तदा मार्गणास्वासु वर्तमानानां सर्वेषामपि जीवानां प्रकृतीनामासां बन्धकत्वेन प्राप्यमाणत्वात्तृतीयभङ्गोऽत्र घटते। 'सेसाणं' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कलक्षणस्य ध्रुवबन्धिशेषप्रकृतिषोडशकस्य, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कानुपूर्वीचतुष्क-खगतिद्विकत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतोच्छ्वासपराघातजिननामगोत्रद्विकरूपाणामेकोनसप्ततिशेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इतिरूपोऽष्टमो भङ्गो ज्ञेयः। भावना पुनरिह द्वितीयव्याप्त्या प्रकृतध्रुवबन्धिप्रकृतीनां तृतीयव्याप्त्या चाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनां विधातव्या ॥८९७॥

इदानीमौदारिकमिश्रकार्मणकाययोगमार्गणयोरुत्तरप्रकृतीनां भङ्गान् कथयितुकाम आह

अट्ठमसत्तमतइआ भंगा ओरालमीसकम्मेसु ।
हविरे धुवबंधीणं सगचत्ताअ तह उरलस्स ॥८९८॥
सुरविउवदुगजिणाण सिआ तुरिअछट्ठअट्ठमा भंगा ।
भंगोऽत्थि अट्ठमो खलु सप्पाउग्गाण सेसाण ॥८९९॥

(प्रे०) 'अट्ठम' इत्यादि, औदारिकमिश्रकाययोगकार्मणकाययोगरूपे मार्गणाद्वये ज्ञानावरणीयादिसप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्च 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इति रूपोऽष्टमो भङ्गः, 'अनेके बन्धका एक एवाऽबन्धकः' इतिलक्षणः सप्तमभङ्गः, 'सर्वे बन्धकाः' इत्यात्मकस्तृतीयभङ्गश्च भवन्ति, चतुर्थव्याप्त्या योजनाऽत्राऽवसेया, तद्यथा—यदा तिर्यग्मनुष्यगतावुत्पत्तिसमय औदारिकमिश्रमार्गणायां तथा गत्यन्तराले कार्मणकाययोगमार्गणायां च वर्तमानानां

जीवानां प्रस्तुतप्रकृतिबन्धकतयोपलभ्यमानत्वेन केवलिसमुद्घातावसरेऽनयोर्मार्गणयोर्वर्तमानानां भगवतां केवलज्ञानिनां तदबन्धकतयोपलभ्यमानत्वेन च 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इत्यष्टमो भङ्ग उपपन्नो भवति । यदैक एव केवलज्ञानी समुद्घातावसरे मार्गणयोरनयोर्वर्तते तदा 'अनेके बन्धका एक एवाऽबन्धकः' इति सप्तमो भङ्गोऽत्रोपपत्तिमालभते । यदा पुनः केवलिसमुद्घाते कोऽपि न वर्तते तदा मार्गणयोरनयोर्वर्तमानानां सर्वेषामपि जीवानां प्रकृतीनामासां बध्यमानत्वेन 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्गो घटामेति । 'सुरविउव' इत्यादि, अधिकृतमार्गणाद्वये सुरद्विक-वैक्रियद्विकजिननामरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्य तुर्यषष्ठाष्टमभङ्गा भवन्ति, तदेवम्-यदा मार्गणयोर-नयोः कोऽपि जीवश्चतुर्थगुणस्थानके न स्यात् तदैतत्प्रकृतिपञ्चकस्य न कोऽपि बन्धकत्वेन प्राप्यते, तस्मादत्र 'सर्वेऽबन्धकाः' इति चतुर्थभङ्गो घटां याति । यदैक एव सम्यग्दृष्टिर्मार्गणयो-रनयोर्वर्तमानस्स्याद् , स एव च सुरपञ्चकस्य बन्धकस्स्यात्तदा 'एक एव बन्धको ऽनेकेऽबन्धकाः' इति षष्ठभङ्गोऽत्र समुपपन्नो भवति । यदा मार्गणयोरनयोरनेके मिथ्यादृशः प्रकृतिपञ्चकस्याऽस्या-ऽबन्धकाः सम्यग्दर्शनिनश्च बन्धकाः स्युस्तदा 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इति लक्षणोऽष्टमभङ्ग उपपन्नो भवति । 'सेसाणं' इत्यादि, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वय-जातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानषट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरद-शकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासगोत्रद्विकरूपाणामेकोनषष्टिशेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इत्यष्टमो भङ्गो ज्ञातव्यः, भावना पुनरत्र तृतीयव्याप्त्या विधेया ॥८९८-९॥

सम्प्रति वैक्रियमिश्रमार्गणायामुत्तरप्रकृतीनां भङ्गान् दिदर्शयिषुराह ।

गुणचत्तधुवोरालियपरघाऊसासबायरतिगाणं ।
विक्कियमीसे आइमतइआ भगाऽट्ठ सेसाण ॥९००॥

(प्रे०) 'गुणचत्ता' इत्यादि, वैक्रियमिश्रमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानु-बन्धिचतुष्कलक्षणप्रकृत्यष्टकवर्जितानामेकोनचत्वारिंशद्ज्ञानावरणीयादिध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीर-पराघातोच्छ्वासबादरपर्याप्तप्रत्येकरूपाणां प्रकृतीनां च प्रथमतृतीयभङ्गौ जायेते, भावना पुनरत्र पञ्चम व्याप्त्या भाव्या । 'सेसाणं' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकस्य वेदनीयद्विकहास्यादि-युगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयैकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजातिद्वयौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानषट्-कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रसस्थिरषट्कस्थावराऽस्थिरषट्कातपोद्योतजिननामगोत्रद्विकरूपाणा-मेकोनपञ्चाशच्छेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां चाष्टावपि भङ्गा भवन्ति, भावना पञ्चमव्याप्त्या कर्तव्या ॥९००॥

साम्प्रतमाहारकद्विककाययोगमार्गणयोरुत्तरप्रकृतीनां भङ्गान् निरूपयिषुराह

आहारदुगम्मि सिआ सायाईण जुगलाण छण्ह तहा ।
तित्थस्स अट्ठभंगा सेसाणाइमतइअभंगा ॥९०१॥

(प्रे०) 'आहारदुगम्मि' इत्यादि, आहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगाभिधयोर्मार्गणयोः सातवेदनीयाऽसातवेदनीयहास्यरतिशोकाऽरतिस्थिराऽस्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्त्ययशःकीर्तिरूपस्य प्रकृतियुगलषट्कस्य जिननामकर्मणश्चाष्टौ भङ्गा भवन्ति, षष्ठ्यव्याप्त्या भावना कार्या । 'सेसाणं' इत्यादि, ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां पुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वीसुखगतित्रसचतुष्कसुभगसुस्वरादेयपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाणामष्टादशशेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां चाद्यतृतीयभङ्गौ भवतः, युक्तिरत्र पञ्चमव्याप्त्या करणीया । ॥९०१॥ अथ वेदत्रयमार्गणासु क्रोधमार्गणायां चोत्तरप्रकृतीनां भङ्गान् चिकथयिषुराह

तइओ चेव विगप्पो थीपुरिसणपुंसवेअकोहेसुं ।
हवए णवावरणचउसंजलणपणंतरायाणं ॥९०२॥
णिद्दादुगभयकुच्छाधुवणामाणं च होइरे भंगा ।
अट्ठमसत्तमतइआ सेसाणं अट्ठमो भंगो ॥९०३॥

(प्रे०) 'तइओ' इत्यादि, स्त्रीवेदपुरुषवेदनपुंसकवेदक्रोधलक्षणासु चतसृषु मार्गणासु ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्काऽन्तरायपञ्चकलक्षणानामष्टादशप्रकृतीनां 'सर्वे बन्धकाः' इति रूपस्तृतीयभङ्गो भवति, भावना प्रथमव्याप्त्या भावनीया । 'णिद्दादुग' इत्यादि, निद्राद्विकभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणरूपाणां त्रयोदशप्रकृतीनामष्टमसप्तमतृतीयभङ्गा भवन्ति, भावना पुनरत्र चतुर्थव्याप्त्या भाव्या,तद्यथा-मार्गणास्वासु वर्तमानाः केचन जीवाः स्वबन्धविच्छेदस्थानमवाप्य प्रकृतीनामासामबन्धकाः स्युः, तद्व्यतिरिक्ताश्च बन्धकाः स्युः, तदा 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इत्यात्मकोऽष्टमो भङ्गो घटामायाति, यदा पुनः श्रेणावेक एव जीवः स्वबन्धविच्छेदस्थानं संप्राप्यैताः प्रकृतीर्न बध्नीयात् , तदन्ये जीवास्तु मार्गणास्वासु स्थितास्तद्बन्धकतया सन्त्येव, तदवसरे 'अनेके बन्धका एक एवाऽबन्धकः' इति सप्तमो भङ्ग उपपन्नो भवति, यदा कोऽपि जीवः श्रेणौ न वर्तते, तदा मार्गणास्वासु विद्यमानानां सर्वेषां जीवानां प्रकृतप्रकृतीनां बन्धकतया सद्भावेन 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्ग उपपत्तिमालभते । 'सेसाणं' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपाणां षोडशानां शेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनां वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकाऽऽहारकद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्काऽऽनुपूर्वीचतुष्कखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकाऽऽतपोद्योतपराघातोच्छ्वासजिननामगोत्रद्विकरूपाणामेकोनसप्ततिशेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां चाऽष्टमो भङ्गो विज्ञेयः, भावना पुनरिह शेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनां द्वितीयव्याप्त्याऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च तृतीयव्याप्त्या कर्तव्या ॥९०२-३॥

अधुना मानादिमार्गणात्रय उत्तरप्रकृतीनां भङ्गान् दिदर्शयिषुराह

कोहव्व माणमायालोहेसु णवरि कमेणदुचउण्ह ।
संजलणाण हविरे तिअसत्तमअट्ठमा भगा ॥१०४॥

(प्रे०) 'कोहव्व' इत्यादि, मानमायालोभलक्षणासु तिसृषु मार्गणासु स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां भङ्गाः क्रोधमार्गणावत्कथनीयाः । 'णवरि' इत्यादिना विशेषमुपदर्शयन्नाह-मानमार्गणायां संज्वलनक्रोधस्य मायामार्गणायां संज्वलनक्रोधमानयोः, लोभमार्गणायां च संज्वलनचतुष्कस्य तृतीयसप्तमाष्टमभङ्गा भवन्ति, भावना पुनरत्र चतुर्थव्याप्त्या विभावनीया ॥१०४॥

अथ गतवेदादिमार्गणास्तूत्तरप्रकृतीनां भङ्गान्निरूपयितुमाह--

सायस्सऽट्ठमभंगो अवेअअकसायकेवलदुगेसु ।
गयवेए सेसाणं चउत्थछट्ठऽट्ठमा भगा ॥१०५॥

(प्रे०) 'सायस्स' इत्यादि, अवेदाऽकषायकेवलज्ञानकेवलदर्शनरूपासु चतसृषु मार्गणासु सातवेदनीयस्य चतुर्दशगुणस्थानकगतानां सिद्धानां चाऽबन्धकत्वेन शेषजीवानां च बन्धकत्वेन 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इतिरूपोऽष्टमो भङ्गो वेदयितव्यः । 'गयवेए' इत्यादि अवेदमार्गणायां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसञ्ज्वलनचतुष्काऽन्तरायपञ्चकयशःकीर्त्युच्चैर्गोत्ररूपाणां विंशतिप्रकृतीनां चतुर्थषष्ठाऽष्टमभङ्गा भवन्ति, तद्यथा—मार्गणायामस्यां स्थिताः सर्वेऽपि जीवा दशमगुणस्थानकमतिक्रान्ता भवन्ति तदा प्रकृतीनामासां 'सर्वेऽबन्धकाः' इतिरूपस्तुर्यो भङ्गो भवति, तैस्तदा तदबन्धकत्वात् । नवमे दशमे वा गुणस्थानके यद्येक एव जीवो वर्तते, स एव च प्रकृतीनामेतासां बन्धकस्स्यात् तथा त्रयोदशगुणस्थानके सिद्धिगतौ च पुनः सर्वदा तदबन्धका जीवाः प्राप्यन्त एव तस्मादत्र 'एक एव बन्धकोऽनेकेऽबन्धकाः' इति षष्ठो भङ्गः संगच्छते । यदाऽनेके जीवा नवमे दशमे वा गुणस्थानके वर्तमाना भवेयुस्तदा 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इत्यात्मकोऽष्टमो भङ्गो घटते, तदा तैस्तासां बध्यमानत्वात् , त्रयोदशगुणस्थानस्थैश्चाऽबध्यमानत्वात् ॥१०५॥

साम्प्रतं ज्ञानत्रिकादिमार्गणास्तूत्तरप्रकृतिसत्कान् भङ्गान् दर्शयन्नाह--

णाणतिगे ओहिम्मि य बारससायाइअडकसायाण ।
तह वइरणरसुरउरलविउवाहारदुगतित्थाण ॥१०६॥
भंगोऽत्थि अट्ठमो खलु सिआ तइअसत्तमऽट्ठमा भंगा ।
हविरे अवसेसाणं पयडीण पंचचत्ताए ॥१०७॥

(प्रे०) 'णाणतिगे' इत्यादि, मतिज्ञानश्रुतज्ञानाऽवधिज्ञानाऽवधिदर्शनरूपे मार्गणाचतुष्टये सातवेदनीयाऽसातवेदनीयहास्यरतिशोकाऽरतिस्थिराऽस्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिरूपाणां द्वादशप्रकृतीनामप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपस्य प्रकृत्यष्टकस्य तथा वज्रर्षभनाराचसंहननदेवमनुष्यगतिद्वयौदारिकद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकदेवमनुष्यानुपूर्वीद्वयजिननामरूपाणां

द्वादशानां च प्रकृतीनामष्टमो भङ्गोऽस्ति, भावना पुनरत्र ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां द्वितीयव्याप्त्या-ऽध्रुवबन्धिप्रकृतीना च तृतीयव्याप्त्या कार्या । तदेवम्—सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनां परावर्तमान-तया बध्यमानत्वेन मार्गणास्वासु वर्तमानाः केचन जीवा बन्धका भवन्ति, केचन चाऽबन्धकाः, देश-विरत्यादिगुणस्थानगता जीवा अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्याऽबन्धका भवन्ति, तुर्यगुणस्थानगताश्च बन्धकाः, प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य प्रमत्तसंयतादिगुणस्थानस्था अबन्धका भवन्ति, चतुर्थपञ्चमगुण स्थानस्थाश्च बन्धकाः, मनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननप्रकृतीनां मार्गणास्वासु वर्त-माना नारकदेवा बन्धका भवन्ति, मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वात्तेषाम् , तिर्यग्मनुष्यास्त्वबन्धका भवन्ति, देवप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वात्तेषाम् , सुरद्विकवैक्रियद्विकयोश्च तिर्यग्मनुष्या बन्धका भवन्ति, देवप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वात् , देवनारकाश्चाऽबन्धकाः, मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वात् , मनुष्ये-ष्वपि श्रेणेरारोहका अपूर्वकरणगुणस्थानषष्ठभागमतिक्रम्योपरितनगुणस्थानकेषु गता जीवास्तद-बन्धकाः, तदितरे पुनर्बन्धका भवन्ति, एवं रीत्या सर्वासामासां प्रकृतीनां 'अनेके बन्धका अनेके-ऽबन्धकाः' इतिस्वरूपोऽष्टमो भङ्ग उपपादनीयः । 'सिआ' इत्यादि, ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरण-षट्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चक-रूपा एकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः पुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतित्रसचतुष्क-सुभगसुस्वरादेयपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाश्च चतुर्दशाऽध्रुवबन्धिप्रकृतय इति मीलितानां पञ्चचत्वा-रिंशद्बन्धप्रकृतीनां तृतीयसप्तमाऽष्टमभङ्गा असहभावेन भवन्ति, भावना पुनरत्र प्रकृतध्रुवबन्धिप्रकृ-तीनां चतुर्थव्याप्त्या भाव्या, तदेवम्—यदा न कोऽपि जीवः श्रेणिमुपपद्यते, तदा मार्गणास्वासु स्थितैः सर्वैर्जीवैः प्रकृतशेषप्रकृतीनां बध्यमानत्वेन 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्गः सम्पद्यते। यदैक एव जीवः श्रेणौ प्रकृतीनामासां बन्धविच्छेदं विधायाऽबन्धकः स्यात् , तथा श्रेणेर्बहिर्भूताः सर्वे जीवास्तु बन्धकाः सन्त्येव, तदा 'अनेके बन्धका एक एवाऽबन्धकः' इति सप्तमो भङ्गो घटते । यदा चानेके जीवाः श्रेणौ प्रकृतीनामासामबन्धकाः स्युः, तथा श्रेणिबाह्यास्तु सदैव तद्बन्धकत्वेन विद्यन्त एव, तदा 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इत्यष्टमभङ्गः संगच्छते ॥९०६-७॥

इदानीं मनःपर्यवज्ञानमार्गणायामुत्तरप्रकृतीनां भङ्गान् भावयन्नाह

तित्थाहारदुगाण बारससायाइगाण मणणाणे ।
अट्ठमभंगोऽण्णेसिं अत्थि तइअसत्तमऽट्ठमा भंगा ॥९०८॥ (गीति.)

(प्रे०) 'तित्था' इत्यादि, मनःपर्यवज्ञानमार्गणायां जिननामाहारकद्विकसातवेदनीयाऽ-सातवेदनीयहास्यरतिशोकाऽरतिस्थिराऽस्थिरशुभाऽशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिलक्षणानां पञ्चदश-प्रकृतीनामष्टमो भङ्गो भवति, भावना पुनरत्र तृतीयव्याप्त्या कार्या । 'अण्णेसिं' इत्यादि, ज्ञाना-वरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्कागुरुलघूपघात—

निर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां पुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वीसुखगतित्रसचतुष्कसुभगसुस्वरादेयपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाणामष्टादशानामध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च तृतीयसप्तमाऽष्टमभङ्गा असहभावेन भवन्ति, भावना पुनरिह चतुर्थव्याप्त्या भाव्या, तद्यथा–मार्गणायामस्यां वर्तमानेभ्यो जीवेभ्यो यदा न कोऽपि श्रेणिमारोहति, तदा प्रकृतीनामासां सर्वैर्बध्यमानत्वेन 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्ग उपपत्तिमाप्नोति । यदा च तेभ्यः श्रेणावेक एव जीवः प्रकृतीनामासां बन्धाभावं विधायाऽबन्धकः सञ्जायते, तदा अनेके बन्धका एक एवाऽबन्धकः' इति स्वरूपः सप्तमभङ्ग उपपद्यते । अष्टमभङ्गश्च तदैवोपपद्यते यदा तेभ्यो जीवेभ्यः श्रेणावनेके जीवाः प्रकृतीनामासां बन्धाभावमाधायाऽबन्धका जायन्ते ॥९०८॥

साम्प्रतमज्ञानत्रिकलक्षणासु तिसृषु मार्गणासूत्तरप्रकृतीनां भङ्गान् चिन्तयन्नाह

मिच्छस्स अणाणतिगे सिआ तइअसत्तमऽट्ठमा भंगा ।
सेसधुवाण तइओ भंगो खलु अट्ठमोऽण्णेसिं ॥९०९॥

(प्रे०) 'मिच्छस्स' इत्यादि, मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानरूपासु तिसृषु मार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयस्य तृतीयसप्तमाऽष्टमभङ्गाः प्रत्येकमसहभावेन भवन्ति, योजना पुनरत्र तुर्यव्याप्त्या विधातव्या, तदित्थम्–यदा मार्गणास्वासु वर्तमानाः सर्वेऽपि प्राणिनो मिथ्यादृष्टय एव स्युस्तदा तैः समस्तैस्तस्य बध्यमानत्वेन 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्ग उपपन्नो भवति । यदा पुनस्तेभ्य एक एव जीवः सास्वादनगुणस्थानके वर्तते, तदा स मिथ्यात्वमोहनीयं न बध्नाति, तदपरे पुनर्मार्गणास्वासु वर्तमाना बध्नन्ति, तस्मात् 'अनेके बन्धका एक एवाऽबन्धकः' इति सप्तमभङ्गो घटते । यदा मार्गणास्वासु स्थिताः केचिज्जीवाः सास्वादनगुणस्थानके वर्तेरन् , केचिच्च मिथ्यात्वगुणस्थाने, तदा मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽनेकेषां जीवानां बन्धकत्वेनाऽनेकेषां जीवानां चाऽबन्धकत्वेन प्राप्यमाणत्वाद् 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इतिरूपोऽष्टमो भङ्ग उपपत्तिमालभते । 'सेसधुवाणं' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयवर्जशेषषट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्गो भवति, मार्गणास्वासु वर्तमानैः सर्वैरनवरतं प्रकृतीनामासां बध्यमानत्वात् । 'खलु' इत्यादि, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्काऽऽनुपूर्वीचतुष्कखगतिद्विकत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासगोत्रद्विकरूपाणां षट्षष्टिप्रकृतीनां 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इतिरूपोऽष्टमो भङ्गो भवति, भावना पुनरत्र तृतीयव्याप्त्या भावनीया । ॥९०९॥ अथ सामायिकमार्गणायामुत्तरप्रकृतिसत्कभङ्गान् दर्शयन्नाह

भंगो आवरणणवगअतिमलोहुच्चपचविग्धाण ।
तइओ चेव समइए मणणाणव्वऽत्थि सेसाणं ॥९१०॥

(प्रे०) 'भंगो' इत्यादि, सामायिकमार्गणायां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसञ्ज्वलनलोभोच्चैर्गोत्राऽन्तरायपञ्चकरूपाणां षोडशानां प्रकृतीनां 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्गो भवति,

एतन्मार्गणास्थैः सर्वैर्जीवैः संततं बध्यमानत्वात् । 'मणणाण०व' इत्यादि, निद्राद्विकसंज्वलन-क्रोधमानमायाभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणात्मकानां षोडशध्रुव-बन्धिप्रकृतीनां वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकाऽऽहारक-द्विकसमचतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वीसुखगतित्रसदशकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासजिन-नामरूपाणां द्वात्रिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च भङ्गा मनःपर्यवज्ञानमार्गणावद् भवन्ति, तदेवम् सात-वेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनामाहारकद्विकजिननामप्रकृतीनां चेति पञ्चदशप्रकृतीनां 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इत्यष्टमभङ्गो भवति, एतद्व्यतिरिक्तप्रकृतप्रकृतीनां च तृतीयसप्तमाऽष्टमभङ्गा भवन्ति, भावना प्रागवद् भावनीया ।९१०॥

अथ छेदोपस्थापनीयसंयमपरिहारविशुद्धिसंयममार्गणयोर्भङ्गानां स्वयं ज्ञेयत्वमुपदर्शयति

छेए तह परिहारे सव्व जीवाण लहुपए णाउं ।
भंगा सयं च्चिय णेया सप्पाउग्गाण सव्वाणं ॥९११॥

(प्रे०) 'छेए' इत्यादि छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिसंयममार्गणयोः स्वप्रायोग्याणां सर्वासां प्रकृतीनां भङ्गा लघुपदे जीवानां संख्यां ज्ञात्वा स्वयमेव ज्ञेयाः । कथमिति चेदाह-मार्गणयोरनयो-र्जीवानां जघन्यसंख्यायाः सम्यक्तया परिज्ञानाभावात्, तच्चैवम् श्रीपञ्चमाङ्गे—छेदोवट्ठावणिया पुच्छा गोयमा ! पडिवज्जमाणए पडुच्च सिय अत्थि सिय नत्थि, जइ अत्थि जहन्नेण एक्को वा दो वा तिन्नि वा उक्को-सेण सयपुहुत्तं, पुव्वपडिवन्नए सिय अत्थि, सिय नत्थि जइ अत्थि जहन्नेण कोडिसयपुहुत्तं उक्कोसेण वि कोडिसयपुहुत्तं । इत्यनेन जघन्यपदे छेदोपस्थापनसंयतानां कोटिशतपृथक्त्वमभिहितम् । तट्टीकायां तु श्रुतिबलाज्जघन्यतस्तेषां विंशतिरेव सम्भाविता । तथा च टीकाक्षराणि—"दुष्षमान्ते भरतादिषु दशसु क्षेत्रेषु प्रत्येकं तद्द्वयस्य भावाद्विंशतिरेव तेषां श्रूयते" इति । एवं परिहारविशुद्धिकसंयममार्गणास्थाने, "परिहार-विशुद्धिया जहा पुलागा" इत्यनेनाऽतिदेशतः श्रीमत्यां भगवत्यां जघन्यपदे एकोऽभिहितः, पञ्चवस्तु-प्रकरणे पुनः, "उक्कोसजहण्णेण सयसो च्चिय पुव्वपडिवण्णा ॥ गाथा १५३४ ॥" इत्यनेन जघन्यतोऽपि ते शतशः प्रतिपादिताः ।

न चैवं सति तत्तन्मतेन यथासंभवं भङ्गका द्रष्टव्या भवन्तीति वाच्यम्, यत एतेषामतुल्यप्रति-पादकानां भिन्नभिन्नमतावलम्बित्वमेव न पुनरभिप्रायविशेषावलम्बित्वमिति न केनाऽपि निश्चितम् । यत उक्तमभयदेवसूरिपादैः—इहोत्कृष्टं छेदोपस्थापनीयसंयतपरिमाणमादितीर्थकरतीर्थान्याश्रित्य सम्भवति जघन्यं तु तत्सम्यग् नावगम्यते' इति । पञ्चवस्तुके च प्रक्षेपपक्षापेक्षया जघन्यपदे एक एव परिहारवि-शुद्धिको भवतीत्युक्तम् । तथा च तद्ग्रन्थः

पडिवज्जमाण भइया इक्को वि हुज्ज ऊणपक्खेवे । पुव्वपडिवन्नया वि हु भइया एगो पुहुत्तं वा ॥ ॥

केचित्पुनरेवमाहुः-'छेदोपस्थापनीयं तु प्रथमचतुर्विंशतितमजिनतीर्थे तु नियमत आदर्तव्यम्, पूर्व-गृहीतचारित्रस्य विशेषोद्यतार्थमथवा मूलगुणभङ्गे पुनर्महाव्रतारोपणम्, एतत्तु सर्वजिनतीर्थेषु प्राप्यते' इति

ग्रन्थैर्जघन्यपदे मार्गणयोरनयोर्जीवसंख्याया निर्णयो न भवति, तस्मात् स्वयमेव ग्रन्थाऽविरोधेन भङ्गा अत्र भावनीया इति ।९११॥

अधुना सूक्ष्मसंपराययथाख्यातसंयमाभिधमार्गणाद्वय उत्तरप्रकृतीनां भङ्गान्निरूपयिषुराह

सुहमे सत्तरसण्ह भंगा पढमतइआ सिआ णेया ।
सायस्स अहक्खाये तिअसत्तमअट्ठमा भंगा ॥९१२॥

(प्रे०) 'सुहमे' इत्यादि, सूक्ष्मसंपरायसंयममार्गणायां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसातवेदनीययशःकीर्त्युच्चैर्गोत्राऽन्तरायपञ्चकरूपाणां सप्तदशप्रकृतीनामसहभावेन प्रथमतृतीयभङ्गौ भवतः, भावना पुनरत्र पञ्चमव्याप्त्या भावनीया । 'सायस्स' इत्यादि, यथाख्यातसंयमाख्यमार्गणायां सातवेदनीयस्य तृतीयसप्तमाष्टमभङ्गा असहभावेन भवन्ति । तदित्थम्–मार्गणेयमुपशान्तमोहादिषु चतुर्षु गुणस्थानकेषु विद्यते, तथा सातवेदनीयस्य बन्धोऽपि मार्गणायामस्यां त्रयोदशगुणस्थानकं यावद् भवति, एतन्मार्गणावर्तिनोऽनेके जीवा उपशान्तमोहादिगुणस्थानत्रयमध्यात्त्रयोदशगुणस्थानके सर्वदा विद्यन्त एव, परं यदा न कोऽप्ययोगिगुणस्थानके, तदा तत्र सातवेदनीयस्य सर्वैरेव बध्यमानत्वेन 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्गो घटामेति । यदा पुनरयोगिगुणस्थानक एक एव जीवो वर्तेत, तदा 'अनेके बन्धका एक एवाऽबन्धकः' इति सप्तमभङ्ग उपपत्तिमेति । यदा चाऽयोगिगुणस्थानकेऽप्यनेके जीवाः स्युः, तदा 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इतिरूपोऽष्टमभङ्गः सङ्गच्छते ॥९१२॥

साम्प्रतमसंयमादिमार्गणासूत्तरप्रकृतीनां भङ्गान् दर्शयितुमना आह

अजयासुहलेसासु धुवबंधीण इगूणचत्ताए ।
तइओ हवेज्ज भंगो सेसाण अट्ठमो भंगो ॥९१३॥

(प्रे०) 'अजया' इत्यादि, असंयममार्गणायां कृष्णनीलकापोतलेश्यालक्षणासु तिसृषु च मार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कलक्षणं प्रकृत्यष्टकमृते ज्ञानावरणीयाधिकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयो भङ्गो भवति, मार्गणास्वासु वर्तमानैः सकलैर्जीवैः प्रकृतीनामासां ध्रुवबन्धित्वेन सततं बध्यमानत्वात् । 'सेसाणं' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्करूपस्य शेषध्रुवबन्धिप्रकृत्यष्टकस्याऽऽहारकद्विकायुर्वर्जशेषसप्तसप्तत्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इत्यात्मकोऽष्टमो भङ्गो भवति, भावना पुनरिह तृतीयव्याप्त्याऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनां द्वितीयव्याप्त्या च शेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनां विभावनीया ।।९१३॥

इदानीं तेजोलेश्यामार्गणायामुत्तरप्रकृतीनां भङ्गान् दर्शयितुमना आह

धुवबंधिएगतीसा परघाऊसाससबायरतिगाणं ।
तेऊअ तइअभंगो अट्ठमभंगोऽत्थि सेसाणं ।९१४।

(प्रे०) 'धुव'इत्यादि, ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सातैजस-कार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिनीनां परा-घातोच्छ्वासबादरत्रिकरूपपञ्चप्रकृतीनां च तेजोलेश्यामार्गणायां 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्गो भवति, मार्गणायामस्यां वर्तमानैः सर्वैर्जीवैः प्रकृतीनामासां बध्यमानत्वात् । 'अट्ठमभंगो' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाद्यद्वादशकषायरूपाणां शेषाणां षोडशध्रुवबन्धिप्रकृतीनां वेदनीय-द्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयदेवतिर्यग्मनुष्यगतित्रयैकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजातिद्वयौदारिकद्विकवैक्रियद्वि-काहारकद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कानुपूर्वीत्रिकखगतिद्विकत्रसस्थिरषट्कस्थावराऽस्थिरषट्कातपोद्यो-तजिननामगोत्रद्विकलक्षणानां षट्पञ्चाशच्छेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इतिरूपोऽष्टमो भङ्गो भवति, योजना पुनरत्र ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां द्वितीयव्याप्त्याऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च तृतीयव्याप्त्या विधेया ॥९१४॥

अथ पद्मलेश्यामार्गणायामुत्तरप्रकृतीनां भङ्गान्कथयितुकाम आह

इगतीसधुवपणिंदियपरघाऊसासतसचउक्काणं ।
पउमाअ तइअभंगो अट्ठमभंगोऽत्थि सेसाणं ॥९१५॥

(प्रे०) 'इगतीस'इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयादिषोडशप्रकृतिभ्यो विना ज्ञानावरणीया-दीनामेकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां पञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपाणां सप्तप्रकृतीनां च 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्गोऽस्ति, अत्रस्थैः सर्वैर्जीवैर्बध्यमानत्वात्तासाम् । 'अट्ठम' इत्यादि, तेजोलेश्यामार्गणोक्तानां मिथ्यात्वादिषोडशध्रुवप्रकृतीनां तथैकेन्द्रियस्थावरातपत्रसपञ्चेन्द्रियवर्ज-वेदनीयद्विकाद्येकपञ्चाशदध्रुवबन्धिशेषप्रकृतीनां 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इत्यष्टमो भङ्गो भवति, भावना पुनरिह पूर्ववदवसेया ॥९१५॥

अथाऽभव्यादिमार्गणासूत्तरप्रकृतीनां भङ्गान् प्रतिपादयति

अभवियमिच्छेसु तहा असणे धुवबंधिसत्तचत्ताए ।
तइओ चेव विगप्पो सेसाणं अट्ठमो भगो ॥९१६॥

(प्रे०) 'अभविय' इत्यादि, अभव्यमिथ्यात्वाऽसंज्ञिमार्गणासु ज्ञानावरणीयप्रभृतीनां सप्त-चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्गो भवति, मार्गणास्वासु स्थितैः सकलै-र्जीवैः प्रकृतीनामासां सततं बध्यमानत्वात् । 'सेसाणं' इत्यादि, आहारकद्विकजिननामायुर्वर्जषट्-षष्टिशेषाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनां 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इत्यष्टमो भङ्गो भवति; उपपत्तिरत्र तृतीयव्याप्त्यनुसारेण विधातव्या ॥९१६॥

साम्प्रतं क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायामुत्तरप्रकृतीनां भङ्गान्निरूपयन्नाह

वेअगसम्मत्ते खलु बारससायाइअडकसायाणं ।
वइरणरसुरोरालियविउवाहारदुगतित्थाणं ॥९१७॥
भंगोऽत्थि अट्ठमो खलु तइओ सेसाण पचचत्ताए ।

(प्रे०) 'वेअग' इत्यादि, क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनामप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपाणामष्टकषायाणां वज्रर्षभनाराचसंहननमनुष्यद्विकसुरद्विकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकजिननामरूपाणां द्वादशप्रकृतीनां च 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इत्यात्मकोऽष्टमो भङ्गो भवति, भावना यथासंभवं द्वितीयतृतीयव्याप्त्या कार्या। 'तइओ' इत्यादि, ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपा एकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः पुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानशुभखगतित्रसचतुष्कसुभगसुस्वराऽऽदेयपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाश्चतुर्दशप्रकृतयश्चेति शेषाणां पञ्चचत्वारिंशत्प्रकृतीनां 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्गो भवति, मार्गणायामस्यां स्थितैः सर्वैर्जीवैर्बध्यमानत्वादासाम् ॥९१७॥

अधुनोपशमसम्यक्त्वमार्गणायामुत्तरप्रकृतीनां भङ्गा अभिधीयन्ते

भंगा अट्ठ उवसमे सप्पाउग्गाण सव्वेसिं ॥९१८।

(प्रे०) 'भंगा' इत्यादि, उपशमसम्यक्त्वमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकवर्जितज्ञानावरणीयप्रभृत्येकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेददेवमनुष्यगतिद्वयपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकवैक्रियद्विकाऽऽहारकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननसमचतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वीमनुष्यानुपूर्वीशुभखगतित्रसदशकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासजिननामोच्चैर्गोत्ररूपाणामष्टात्रिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनां चाष्टौ भङ्गा भवन्ति, घटना पुनरिह पञ्चव्याप्त्यनुसारेण स्वयमेव कर्तव्या ॥९१८॥

सम्प्रति सास्वादनमार्गणायामुत्तरप्रकृतीनां भङ्गान् विचारयति

छायालधुवपणिदियपरघाऊसासतसचउक्काणं ।
सासाणम्मि सिआइमतइआ भंगाऽट्ठ सेसाण ॥९१९॥

(प्रे०) 'छायाल' इत्यादि, सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयवर्जज्ञानावरणीयादिषट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां पञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपाणां सप्तप्रकृतीनां प्रथमतृतीयभङ्गावसहभावेन भवतः, तद्यथा-मार्गणायामस्यामेक एव जीवो वर्तमानः प्रकृतीनामासां च बन्धकः, तदा 'एक एव बन्धकः' इति प्रथमो भङ्गः समुपपद्यते। यदा मार्गणायामस्यामनेके जीवा वर्तमानाः स्युस्तथा ते सर्वेऽपि प्रस्तुतप्रकृतीनां बन्धका भवेयुः, तदा 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्गः

प्राप्यते । '५८' इत्यादि, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदस्त्रीवेददेवमनुष्यतिर्यग्गतित्रयौदारिकद्विकवैक्रियद्विकसमचतुरस्रादिसंस्थानपञ्चकवज्रर्षभनाराचादिसंहननपञ्चकखगतिद्विकाऽऽनुपूर्वीत्रय-स्थिरषट्काऽस्थिरषट्कोद्योतगोत्रद्विकरूपाणां पञ्चचत्वारिंशत्शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनामष्टौ भङ्गा भवन्ति, भावना पुनरिह पञ्चव्याप्तिमनुसृत्य विधातव्या ॥९१९॥

अथ मिश्रसम्यक्त्वमार्गणायामुत्तरप्रकृतीनां भङ्गान् चिकथयिषुराह

बारससायाईण णरसुरउरलविउवजुगलवइराण ।
मीसम्मि अट्ठ भंगा सेसाणढमतइअभंगा ॥९२०॥

(प्रे०) "बारस" इत्यादि, मिश्रसम्यक्त्वमार्गणायां सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनां मनुष्यद्विकसुरद्विकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननलक्षणानां च नवानां प्रकृतीनामष्टौ भङ्गा भवन्ति, घटना तु पञ्चव्याप्त्या विज्ञेया। "सेसाण" इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकवर्जबध्यमानज्ञानावरणीयाद्येकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां पुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतित्रसचतुष्कसुभगसुस्वरादेयपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाणां चतुर्दशप्रकृतीना च प्रथमतृतीयौ भङ्गौ भवतः, उपपत्तिः पुनरेवम् मार्गणायामस्यामेक एव जीवः स्यात् ,स एव च प्रकृतीनामासां बन्धकः, तदा प्रथमभङ्गो घटां लभते, यदा चाऽनेके जीवा विद्येरन् , तथा ते सर्वेऽपि ताः प्रकृतीर्बध्नन्ति, तदा तृतीयभङ्ग उपपन्नो भवति ॥९२०॥

इति आदेशतो मार्गणास्वायुष्ककर्मवर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भङ्गप्ररूपणा कृता ।

साम्प्रतं मार्गणास्वायुष्ककर्मबन्धकानां भङ्गान् प्रतिपादयन्नादौ नरकौघादिमार्गणासु तान् दर्शयति ।

सव्वणिरयपंचिंदियतिरियसुरविगलपणिंदियतसेसुं ।
तिणरेसु पज्जबायरचउक्कपत्तेअहरिएसुं ॥९२१॥
पणमणवयणेसु तहा विउव्वथीपुरिसणाणचउगेसुं ।
विब्भंगसजमेसुं समइअदेसोहिचक्खूसुं ॥९२२॥
तीसुं सुहलेसासुं सम्मखइअवेअगेसु सण्णिम्मि ।
सप्पाउग्गाऊणं चउत्थछट्ठऽट्ठमा भंगा ॥९२३॥

(प्रे०) "सव्व" इत्यादि, नरकौघरत्नप्रभाशर्कराप्रभावालुकाप्रभापङ्कप्रभाधूमप्रभातमःप्रभातमस्तमःप्रभारूपास्वष्टसु नरकमार्गणासु पञ्चेन्द्रियतिर्यगोघपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिरश्चीरूपासु चतसृषु तिर्यक्पञ्चेन्द्रियमार्गणासु देवौघभवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कसौधर्मेशानसनत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलान्तकशुक्रसहस्राराऽऽनतप्राणताऽऽरणाऽच्युतनवग्रैवेयकपञ्चानुत्तररूपासु त्रिंशद्देवमार्गणासु ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदभिन्नासु तिसृषु द्वीन्द्रियमार्गणासु तिसृषु त्रीन्द्रियमार्गणासु तिसृषु चतुरिन्द्रियमार्गणासु तिसृषु पञ्चेन्द्रियमार्गणासु चेति द्वादशेन्द्रियमार्गणासु,

तिसृषु च त्रसकायमार्गणासु मनुष्यौघपर्याप्तमनुष्यमानुषीरूपासु तिसृषु मनुष्यमार्गणासु पर्याप्तबादर-पृथ्वीकायाऽप्कायतेजस्कायवायुकायप्रत्येकवनस्पतिकायरूपासु पञ्चसु कायमार्गणासु ओघ-सत्या-ऽसत्य-सत्यासत्या-ऽसत्याऽमृषाप्रकारेण पञ्चसु मनोमार्गणासु पञ्चसु वचनमार्गणासु वैक्रियकाययोग-मार्गणायां चेत्येकादशयोगमार्गणासु स्त्रीपुरुषवेदमार्गणाद्वये मतिश्रुताऽवधिमनःपर्यवज्ञानरूपासु चतुर्ज्ञानमार्गणासु विभङ्गज्ञानमार्गणायां संयमौघसामायिकदेशविरतिलक्षणासु तिसृषु संयममार्गणासु अवधिदर्शनचक्षुदर्शनमार्गणाद्वये तेजःपद्मशुक्ललेश्यालक्षणासु तिसृषु शुभलेश्यामार्गणासु सम्यक्त्वौघ-क्षायिकक्षयोपशमरूपासु तिसृषु सम्यक्त्वमार्गणासु संज्ञिमार्गणायां चेति सर्वसंख्यया पञ्चनवति-मार्गणासु स्वप्रायोग्यायुष्काणां चतुर्थषष्ठाष्टमभङ्गा भवन्ति, तदित्थम्—ओघे तथा मार्गणासु नरक-मनुष्यदेवायुष्कत्रयस्य बन्धान्तरं भवत्येव, आसां बन्धकानामसंख्येयलोकप्रदेशसंख्यातो हीनत्वात्, तथा यत्र मार्गणासु तिर्यगायुर्बन्धकतया जीवा असंख्येयलोकराशितो हीना भवन्ति, तत्राऽपि तिर्यगायुषोऽन्तरं भवति, इति नियमः, प्रकृते नरकमार्गणासु तिर्यग्मनुष्यायुर्द्वयं बध्यते, प्रोक्तनियमेन प्रकृतेऽपि तिर्यग्मनुष्यायुष्कद्वयबन्धस्याऽन्तरं भवति, नारकादिमार्गणागतजीवानामप्यसंख्येयलोका-काशप्रदेशसंख्यातो न्यूनतरत्वात्। यदा नरकमार्गणासु तिर्यगायुष्कबन्धसत्कमन्तरं भवति तदा तिर्यगायुष्कस्य 'सर्वेऽबन्धकाः' इति तुर्यभङ्गो भवति, तद्वेलायां तिर्यगायुर्बन्धकत्वेन कस्याऽप्य-नुपलभ्यमानत्वात्। यदा पुनरेक एव जीवस्तिर्यगायुर्बध्नाति, नान्ये तदा 'एक एव बन्धको-ऽनेकेऽबन्धकाः' इति षष्ठभङ्गः संगच्छते, यदा च नरकमार्गणासु केचन जीवास्तिर्यगायुर्बध्नीयुः, केचन च न, तदा अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः, इतिरूपोऽष्टमो भङ्ग उपपद्यते। एवमेव रीत्या त्रयोऽप्येते भङ्गा मनुष्यायुष्कविषयेऽपि योजनीयाः। तथाऽनयैव रीत्या त्रयोऽप्येते भङ्गा अत्रोक्तासु समस्तमार्गणासु स्वप्रायोग्यायुष्कविषये स्वयमेव विचारणीयाः ॥९२१-२३॥

अथाऽपर्याप्तमनुष्याहारकद्विकसास्वादनछेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिमार्गणासु शेषमार्गणासु च तमाह

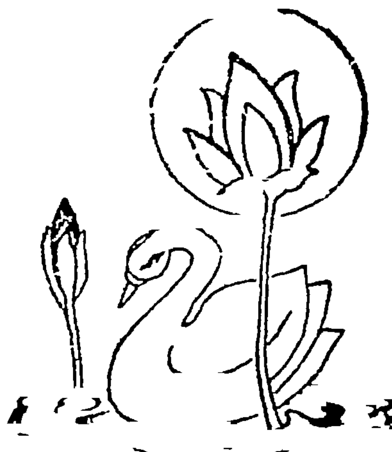
भंगा अट्ठ अपज्जमणुयाहारदुगसासणेसु सिआ ।
छेए परिहारे सयमुज्झा ओघव्व सेसासु ॥९२४॥

(प्रे०) 'भंगा' इत्यादि, अपर्याप्तमनुष्याहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगसास्वादन-सम्यक्त्वरूपासु चतसृषु मार्गणासु स्वप्रायोग्यायुष्काणामष्टौ भङ्गा भवन्ति, मार्गणानामासामध्रुवत्वात्। 'छेए' इत्यादि, छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिसंयममार्गणाद्वये स्वप्रायोग्यायुर्बन्धकानां भङ्गाः स्वय-मूह्याः। स्वयमूह्यत्वं चात्र पूर्वप्रदर्शितन्यायेन जीवानां जघन्यसंख्याया निर्णयाभावात्। 'ओघव्व' इत्यादि, अत्राभिहितव्यतिरिक्तासु शेषमार्गणासु चतुर्णामायुष्काणां यथायोग्यमोघवद् भङ्गा भवन्ति, ताश्चेमाः शेषमार्गणाः—तिर्यगोघमार्गणा सप्तैकेन्द्रियमार्गणा ओघसूक्ष्मौघसूक्ष्मपर्याप्तसूक्ष्माऽपर्याप्तभेदेन

चतस्रः पृथ्वीकायमार्गणाश्चतस्रोऽप्कायमार्गणाश्चतस्रस्तेजस्कायमार्गणाश्चतस्रो वायुकायमार्गणाश्चेति षोडश, पृथिव्यादिचतुष्कस्य बादरौघबादराऽपर्याप्तभेदेनाऽष्टौ मार्गणाः वनस्पतिकायौघप्रत्येक-वनस्पतिकायौघाऽपर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिकायरूपास्तिस्रो मार्गणाः, ओघसूक्ष्मौघबादरौघसूक्ष्मपर्याप्त सूक्ष्माऽपर्याप्तबादरपर्याप्तबादराऽपर्याप्तभेदेन सप्त साधारणवनस्पतिकायमार्गणाश्चेति चतुस्त्रिंशत्कायमा-र्गणाः, काययोगौघौदारिककाययोगौदारिकमिश्रकाययोगरूपास्त्रिकाययोगमार्गणाः नपुंसकवेदमार्गणा क्रोधमानमायालोभमार्गणाचतुष्कं मत्यज्ञानश्रुताज्ञानमार्गणाद्वयमसंयममार्गणा अचक्षुर्दर्शनमार्गणा कृष्णनीलकापोतलेश्यामार्गणात्रयं भव्याभव्यौ मिथ्यात्वमार्गणा आहारकमार्गणा असंज्ञिमार्गणा चेति द्वाषष्टिः।

वैक्रियमिश्रकार्मणकाययोगाऽवेदाऽकषायकेवलज्ञानसूक्ष्मसम्परायथाख्यातसंयमकेवलदर्शनो-पशमसम्यक्त्वमिश्रसम्यक्त्वाऽनाहारकरूपास्वेकादशमार्गणास्वायुष्काणां बन्धो न भवति तस्माद् भङ्ग-विचारणाऽपि न सम्भवति। तिर्यगोघकाययोगौघौदारिककाययोगनपुंसकवेदक्रोधमानमायालोभ मत्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽसंयमाचक्षुर्दर्शनकृष्णनीलकापोतलेश्यात्रयभव्याभव्यमिथ्यात्वाहारकाऽसंज्ञिरूपासु विंशतिमार्गणासु देवनिरयमनुष्यायुष्काणां तेजोवायुकायसत्कद्वादशमार्गणावर्जैकेन्द्रियादित्रिंशन्मा-र्गणासु केवलं मनुष्यायुषश्चतुर्थपष्ठाऽष्टमरूपास्त्रयो भङ्गा असहभावेन भवन्ति, प्रोक्तद्वाषष्टिमार्ग-णासु तिर्यगायुष्कस्य चाष्टमो भङ्गो भवति। तदेवं परिसमाप्तं मार्गणास्वायुष्कबन्धकानां भङ्ग-निरूपणम्, तत्परिसमाप्तौ च समाप्तिमगाद् भङ्गविचयद्वारम् ॥१२४॥

॥ इति श्री प्रेमप्रभाटीकासमलङ्कृते बन्धविधाने उत्तरप्रकृतिबन्धे प्रथमाधिकारे सप्तमं भङ्गविचयद्वारम् समाप्तम् ॥



॥ अथाऽष्टमं भागद्वारम् ॥

साम्प्रतं क्रमायातमष्टमं भागद्वारं कथयितुकामो ग्रन्थकारः प्रथमतयौघतस्तन्निरूपयति

धुवबंधिउरालाणमणंतसा बंधगा अणतसो ।
णिरयणरसुराउविउवछक्काहारदुगतित्थाण ॥९२५॥

(प्रे०) "धुव" इत्यादि, ओघतः सर्वेषां जीवानामादेशतश्च मार्गणासु तद्गतसर्वजीवानामपेक्षया विवक्षितप्रकृतीनां बन्धविधायिनः, उपलक्षणतया तद्बन्धाविधायिनश्च कतमेषु भागेषु विद्यन्त इत्यत्र भागद्वारे चिन्तयिष्यते । 'धुव' इत्यादि, सप्तचत्वारिंशद्ज्ञानावरणीयादिध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्च बन्धका जीवा अनन्तबहुभागप्रमाणाः सन्ति, तदेवम्-विश्वविश्वेऽनन्तानन्तजीवराशिर्विद्यते, तस्य चानन्ता भागा विधातव्याः, तेषु यः सकलसिद्धानां भवस्थकेवलिप्रभृतीनां च राशिप्रमाण एकोऽनन्ततमो भागः, तं विहायापरेऽनन्तबहुभागाः सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धकत्वेन भवन्ति, तादृशश्चैकोऽनन्ततमो भागस्तदबन्धकतयाऽस्ति । वैक्रियाहारकशरीरनामकर्मबन्धकानां तथा सिद्धानां भवस्थकेवलिप्रभृतीनां च राशिप्रमाणमेकमनन्ततमं भागं त्यक्त्वा शेषानन्तबहुभागा औदारिकशरीरनामकर्मणो बन्धका वर्तन्ते, अस्य बन्धकतया सूक्ष्मबादरनिगोदानामपि प्रवेशात् , तेषां च सिद्धादिजीवानामपेक्षयाऽनन्तगुणत्वात् , उक्तस्तादृशोऽनन्ततमो भागः प्रकृतेरस्या अबन्धक इति । "अणंतंसो" इत्यादि, नरकायुर्मनुष्यायुर्देवायुर्नरकद्विकं सुरद्विकं वैक्रियद्विकमाहारकद्विकं जिननाम चेति द्वादशप्रकृतीनां बन्धका जीवाः सर्वजीवानामनन्ततमभागे वर्तन्ते, यत आहारकद्विकवर्जशेषदशप्रकृतिबन्धका जीवा असंख्येया आहारकद्विकबन्धकाश्च संख्येयाः, अस्य सङ्ख्याद्वयस्य सर्वजीवसङ्ख्यापेक्षयाऽनन्ततमभागप्रमाणत्वात् । प्रकृतीनामासामबन्धका अनन्तेषु भागेषु वर्तन्ते ॥९२५॥

एगिंदियजोग्गअसुहतमअट्ठारपयडीण संखंसा ।
सेसाणं सखंसो सव्वत्थ अबंधगा सेसा ॥९२६॥

(प्रे०) "एगिंदिय" इत्यादि, तिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिहुण्डकसंस्थानदुःस्वरवर्जस्थावरनवकाऽसातवेदनीयनपुंसकवेदशोकाऽरतिनीचैर्गोत्ररूपाणामेकेन्द्रियप्रायोग्याणामशुभतमाष्टादशप्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयतमबहुभागप्रमाणा वर्तन्ते, भावनाप्रकारस्त्वेवम्—तिर्यग्द्विकादिप्रकृतिप्रतिपक्षभूतप्रकृतीनां बन्धकालापेक्षया तिर्यग्द्विकप्रभृतिप्रकृतीनामासां बन्धकालस्य संख्येयगुणाधिकत्वात् । अत्राऽयं नियमो ज्ञातव्यः—ओघे मार्गणासु च ये जीवा बहुभागरूपास्तदपेक्षयैव तेषां पारभविकं यन्निकृष्टस्थानं तत्प्रायोग्याऽशुभतमाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धकालः शेषाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धकालतः संख्येयगुणः तथास्वाभाव्याद् विद्यते, अतः प्रस्तुतेऽसातवेदनीयतिर्यग्द्विकादिप्रकृतीनां बन्धकाः सातवेदनीयादिप्रकृतिबन्धकापेक्षया संख्यातगुणा आगताः । "सेसाणं"इत्यादि, सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीवेदपुरुष-

वेदतिर्यगायुर्मनुष्यगत्येकेन्द्रियजातिवर्जजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानपञ्चकमनुष्यानुपूर्वीखगतिद्विकत्रसदशकदुःस्वराऽऽतपोद्योतपराघातश्वासोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाणां द्विचत्वारिंशच्छेषप्रकृतीनां बन्धकाः सर्वजीवानां संख्याततमे भागे वर्तन्ते, अशुभतमप्रकृतिबन्धकालापेक्षया प्रकृतप्रकृतिबन्धकालस्य संख्याततमभागप्रमाणत्वात्, निगोदजीवानधिकृत्य तिर्यगायुषो बन्धकालतस्तदबन्धकालस्य सङ्ख्येयगुणत्वात्। 'सव्वत्थ' इत्यादि, ओघतः सर्वोत्तरप्रकृतीनां तथाऽऽदेशतः सर्वमार्गणासु स्वप्रायोग्याणां सर्वोत्तरप्रकृतीनां मार्गणागतजीवापेक्षया सर्वत्र बन्धकेभ्यो व्यतिरिक्ताः शेषा अबन्धका ज्ञातव्याः, बन्धकसत्कभागावशिष्टभागोऽबन्धकानां भवतीति भावः। सर्वजीवापेक्षया पुनर्मार्गणासु तत्तत्प्रकृतीनामबन्धकानां भागं स्वमेव ग्रन्थकारोऽग्रे दर्शयिष्यते ॥९२६॥

साम्प्रतं मार्गणासूत्तरप्रकृतिबन्धविधायिनामायुर्वर्जानां भागमुपदर्शयन् यास्वोघवत्तासु तथैवाऽतिदिशन्नाह

ओघव्वाउगवज्जसपाउग्गाणऽत्थि बधगा काये।
उरलदुगकम्मअणयणभवियाहारइयरेसुं च ॥९२७॥

(प्रे०) "ओघव्व" इत्यादि, काययोगौघौदारिककाययोगौदारिकमिश्रकाययोगकार्मणकाययोगाचक्षुर्भव्याहारकानाहारकरूपास्वष्टमार्गणास्वायुष्ककर्मवर्जस्वप्रायोग्योत्तरप्रकृतीनां बन्धका ओघवत्सन्ति, कार्मणानाहारकयोर्नरकद्विकाहारकद्विकवर्जप्रकृतीनां शेषासु षोडशोत्तरशतप्रकृतीनां बन्धका अबन्धकाश्च सर्वथौघवज्ज्ञेयाः ॥९२७॥

इदानीं नरकदेवसत्कासु कासुचिन् मार्गणासूत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागं दर्शयितुमाह

णिरयपढमाइछणिरयतइआइगअट्ठमतदेवेसुं।
तइओ चेव विगप्पो जाण ण सिं अट्ठचत्ताए ॥९२८॥
भागा असंखिया खलु थीणद्धितिगाणचउगमिच्छाणं।
भागो असंखियतमो हवेज्ज जिणणामकम्मस्स ॥९२९॥
तिरियाउग्गअसुहतमसोलसपयडीण अत्थि संखंसा।
भागो संखेज्जइमो सप्पाउग्गाण सेसाण ॥९३०॥

(प्रे०) 'णिरय' इत्यादि, नरकौघरत्नप्रभाशर्कराप्रभावालुकाप्रभापङ्कप्रभाधूमप्रभातमःप्रभासनत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलान्तकशुक्रसहस्राररूपासु त्रयोदशमार्गणासु यासामष्टचत्वारिंशत्प्रकृतीनां 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीय एव विकल्पः, तासां प्रकृतीनां बन्धविधायिना भागो नास्ति; कथमिति चेदुच्यते, स्वोत्कृष्टगुणस्थानं यावन्निरन्तरं बध्यमानाना ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां मार्गणाप्रायोग्यध्रुवबन्धिकल्पानां भागप्ररूपणा नास्ति, निरन्तरतया सर्वैर्जीवैर्बध्यमानत्वादिति। अयमेव हेतुरन्यत्रापि विज्ञेयः। ताश्चेमाः प्रकृतयः–मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृत्यष्टकवर्जा एकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतय औदारिकद्विकपञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्कप्रकृतयश्च। "भागा" इत्यादि, प्रकृतनरकादि-

त्रयोदशमार्गणासु स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयरूपस्य प्रकृत्यष्टकस्य बन्धका असंख्येयबहुभागप्रमाणाः सन्ति, यतो मार्गणास्वासु प्रकृतीनामासां बन्धका मिथ्यादृशः, सम्यग्दृष्टिभ्यश्च मिथ्यादृशोऽसंख्येयगुणा विद्यन्ते । शेषाः पुनरेतत्प्रकृत्यष्टकस्याऽबन्धका असंख्येयतमे भागेऽवसेयाः । 'भागो' इत्यादि, जिननामकर्मणो बन्धकाः पुनरासु मार्गणास्वसंख्येयतमभागप्रमाणा वर्तन्ते, मार्गणास्वासु वर्तमानेभ्यो जीवेभ्यः सम्यग्दृष्टिजीवानामसंख्येयतमभागवर्तित्वात्, तेष्वपि जिननामकर्मबन्धयोग्यतावतामल्पतमत्वात् । तदबन्धकाः पुनरसंख्येयबहुभागेषु विज्ञेयाः । 'तिरि' इत्यादि, असातवेदनीयशोकारतिनपुंसकवेदतिर्यग्द्विकसेवार्तसंहननहुण्डकसंस्थानाऽशुभखगत्यस्थिरषट्कनीचैर्गोत्ररूपाणां षोडशानां तिर्यक्प्रायोग्याऽशुभतमप्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयेषु भागेषु सन्ति, एतत्प्रतिपक्षभूतप्रकृतीनां बन्धकापेक्षया प्रकृतीनामासां बन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । तदबन्धकाश्च संख्येयतमभागेऽवसेयाः । 'भागो' इत्यादि सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीपुरुषवेदद्वयमनुष्यगतिसंहननपञ्चकसंस्थानपञ्चकमनुष्यानुपूर्वीशुभखगतिस्थिरषट्कोद्योतोच्चैर्गोत्ररूपाणां स्वप्रायोग्यषड्विंशतिशेषप्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयतमभागप्रमाणाः सन्ति, एतत्प्रकृतिविरोधिप्रकृतिबन्धकालापेक्षयैतत्प्रकृतिबन्धकालस्य संख्येयगुणहीनत्वात् ॥१२८-३०॥

इदानीं सप्तमनरकमार्गणायामुत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागं निरूपयन्नाह

चरमणिरये विगप्पो तइओ च्चिअ जाण सिमडचत्ताए ।
भागो णत्थि असंखियभागो खलु णरदुगुच्चाण ॥१३१॥
भागाऽसंखा तिरिदुगथीणद्धितिगाणमिच्छणीआण ।
असुहतमतेरसण्ह संखंसाऽण्णाण संखंसो ॥१३२॥

(प्रे०) 'चरम' इत्यादि, तमस्तमःप्रभाख्यमार्गणायां यासामष्टचत्वारिंशत्प्रकृतीनां 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्गो विद्यते, तासां प्रकृतीनां बन्धकानां भागो नास्ति, ताश्चेमा अष्टचत्वारिंशत्प्रकृतयः— मिथ्यात्वमोहनीयाद्यष्टप्रकृतिवर्जिता एकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतय औदारिकद्विकपञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्कप्रकृतयश्चेति । 'असंखियभागो' इत्यादि, मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रप्रकृतिबन्धकानामसंख्येयतमो भागोऽस्ति, यतो हि मार्गणायामस्यामेताः प्रकृतयः सम्यग्दृष्टिभिरेव बध्यन्ते, ते च मिथ्यादृशामसंख्येयतमभाग एव वर्तन्ते, तदबन्धकाः पुनरसंख्येयबहुभागप्रमाणा विज्ञेयाः । 'भागा' इत्यादि, तिर्यग्द्विकस्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयनीचैर्गोत्रलक्षणानामेकादशानां प्रकृतीनां बन्धका असंख्येयबहुभागेषु वर्तन्ते, प्रकृतीनामासां बन्धस्य मिथ्यात्वानन्तानुबन्धिकषायोदयप्रत्ययिकत्वात्, मिथ्यादृष्टीनां च सम्यग्दृष्टिभ्यो मार्गणायामस्यामसंख्येयगुणत्वात् । शेषा अबन्धकाः पुनरसंख्येयभागेऽवसातव्याः । 'असुहतम' इत्यादि, असातवेदनीयशोकाऽरतिनपुंसकवेदसेवार्तसंहननहुण्डकसंस्थानाऽशुभखगत्यस्थिरषट्करूपाणामशुभतमत्रयो-

दशप्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयबहुभागप्रमाणा बोद्धव्याः, अबन्धकाश्च पुनः संख्येयतमे भागे । 'सायाण' इत्यादि, सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीपुरुषवेदद्वयसंस्थानपञ्चकसंहननपञ्चकशुभखगति-स्थिरषट्कोद्योतरूपाणां त्रयोविंशतिशेषप्रकृतीनां बन्धकाः संख्याततमे भागेऽवसेयाः, अबन्धकाश्च सख्येयबहुभागेषु । भावना पुनरिहौघवदधिगम्या ॥९३१-२॥

साम्प्रतं तिर्यग्मार्गणासूत्तरप्रकृतीनां बन्धकानां भागमभिदधाति

तिरिये णो चेव भवे भागो धुववधिपचतीसाए ।
ओघव्व जाणियव्वा सप्पाओग्गाण सेसाणं ॥९३३॥

(प्रे०) 'तिरिये' इत्यादि, तिर्यगोघमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपा द्वादशप्रकृतीः सत्यज्य शेषाणां ज्ञानावरणीयप्रमुखपञ्चत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धकानां भागो नास्ति, मार्गणायामस्यां स्थितैः सर्वैर्जीवैः प्रकृतीनामासामनवरतं बध्यमानत्वात् । 'ओघव्व' इत्यादि, स्वप्रायोग्यशेषप्रकृतीनां बन्धका मार्गणायामस्यामोघवद् वेदयितव्याः,तद्यथा–मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कौदारिकशरीरनामकर्मरूपाणां त्रयोदशप्रकृतीनां बन्धका अनन्तेषु भागेषु वर्तन्ते, यतो हि मार्गणायामस्यां सम्यग्दृष्टिदेशविरतजीवानामपेक्षया मिथ्यादृशो जीवा अनन्तगुणा वर्तन्ते, ते चैताः प्रकृतीर्निरन्तरं बध्नन्ति । औदारिकशरीरनाम्नोऽबन्धकाः पञ्चेन्द्रिया एव तेभ्य औदारिकशरीरस्य बन्धकानामेकेन्द्रियाणामनन्तगुणत्वात् तद्बन्धका अनन्तबहुभागप्रमाणा भवन्ति,शेषाः पुनरबन्धका अनन्ततमे भागे वर्तन्ते । सुरद्विकनरकद्विकवैक्रियद्विकरूपस्य प्रकृतिषट्कस्य बन्धका अनन्ततमभागे विद्यन्ते, मार्गणायामस्यामनन्तबहुभागप्रमाणैकेन्द्रियादिजीवानामासामबन्धकत्वात् । शेषा अनन्तबहुभागप्रमिता जीवाः प्रकृतीनामासामबन्धका इति विज्ञेयम् । असातवेदनीयशोकाऽरतिनपुंसकवेदतिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिहुण्डकसंस्थानदुःस्वरवर्जस्थावरनवकनीचैर्गोत्ररूपाणामष्टादशानामेकेन्द्रियप्रायोग्याऽशुभतमप्रकृतीनां बन्धकाः संख्यातबहुभागेषु सन्ति, संख्याततमभागप्रमाणाश्च जीवास्तदबन्धकाः सन्ति । सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीपुरुषवेदद्वयमनुष्यगतिद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानपञ्चकमनुष्यानुपूर्वीखगतिद्विकत्रसदशकदुःस्वरातपोद्योतोच्छ्वासपराघातोच्चैर्गोत्ररूपाणामेकचत्वारिंशत्प्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयतमे भागे ज्ञेयाः, अबन्धकाश्च संख्यातबहुभागेषु । उभयत्रापि भावना पुनरोघवद् विधेया ॥९३३॥

अथ पञ्चेन्द्रियतिर्यगोघमार्गणायामुत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागान् विचारयन्नाह

णत्थि पणिंदियतिरिये भागो धुवबंधिपचतीसाए ।
णेया असखमागा बारसधुववंधिउरलाण ॥९३४॥
एगिंदियजोग्गअसुहतमअट्ठारपयडीण संखसा ।
विक्कियछक्कस्स असखसो सेसाण संखसो ॥९३५॥

(प्रे०) "णत्थि" इत्यादि, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कलक्षणद्वादशप्रकृतिवर्जानां पञ्चत्रिंशज्ज्ञानावरणीयादिध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धकानां भागो नास्ति, एतन्मार्गणास्थैः सर्वैर्जीवैरनवरतं बध्यमानत्वात्तासाम् । 'णेया' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिद्वादशप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्च बन्धका असंख्येयतमबहुभागेषु विद्यन्ते, तच्चेत्थम्-मार्गणायामस्यां सम्यग्दृष्टिभ्यो मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणाः सन्ति, तैश्चैता द्वादशध्रुवबन्धिप्रकृतयो बध्यन्ते, तस्मादियत्प्रमाणतैतत्प्रकृतिबन्धविधायिनामुपलभ्यते । तथा प्रकृतमार्गणायां शेषजीवापेक्षयाऽसंख्येयबहुभागेषु वर्तमानानां लब्ध्यपर्याप्तजीवानामौदारिकशरीरस्य निरन्तरबन्धो भवतीतिकृत्वौदारिकशरीरबन्धका असंख्येयबहुभागप्रमाणा उक्ता इति । शेषाः पुनरसंख्येयतमे भागे तदबन्धका वेदयितव्याः । "एगिंदिय" इत्यादि, एकेन्द्रियप्रायोग्याऽशुभतमाऽसातवेदनीयाद्यष्टादशप्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयबहुभागेषु भवन्ति, संख्याततमभागे च तदबन्धकाः, मार्गणायामस्यामसंख्यबहुभागेषु लब्ध्यपर्याप्तजीवाः सन्ति, तेषां चाऽशुभतमोत्पत्तिस्थानं सूक्ष्माऽऽपर्याप्तसाधारणरूपमस्ति तेषु जीवेषु संख्येयबहुभागप्रमाणा जीवाः सूक्ष्माऽपर्याप्तसाधारणैकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतप्रकृतिबन्धका वर्तन्ते, संख्याततमभागे च मनुष्यादिप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाः । "विक्किअ" इत्यादि, सुरद्विकवैक्रियद्विकनरकद्विकलक्षणस्य प्रकृतिषट्कस्य बन्धका असंख्याततमे भागेऽवसातव्याः, मार्गणायामस्यां देवनरकप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकानामितरेभ्योऽसंख्येयगुणहीनत्वात् । तदबन्धकाः पुनरिहाऽसंख्येयबहुभागेषु बोद्धव्याः । "सेसाण" इत्यादि, सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीपुरुषवेदद्वयमनुष्यगतिद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानपञ्चकमनुष्यानुपूर्वीखगतिद्विकत्रसदशकदुःस्वरातपोद्योतपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाणामेकचत्वारिंशच्छेषप्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयतमे भागे सन्ति अबन्धकाश्च संख्येयबहुभागेषु । भावना पुनरत्रौघवदधिगम्या ॥१३४-५॥

इदानीं तिर्यग्योनिमतीपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियमार्गणयोरुत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागान् दर्शयन्नाह

दुपणिंदियतिरियेसुं पणतीसाअ धुवबंधिपयडीण ।
भागो णत्थि असंखियभागा बारधुवबंधीणं ॥१३६॥
चउवीसाए णारगपाउग्गाणं हवेज्ज सखसा ।
संखेज्जइमो भागो बायालीसाअ सेसाणं ॥१३७॥

(प्रे०) "दुपणिंदिय" इत्यादि, पर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिरश्चीमार्गणयोर्मिथ्यात्वमोहनीयादिद्वादशप्रकृतिवर्जानां पञ्चत्रिंशज्ज्ञानावरणीयादिध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धकानां भागो नास्ति, प्रकृतमार्गणागतैः सर्वैर्बध्यमानत्वात् । "असंखिय" इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपाणां द्वादशानां ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धका असंख्येयबहुभागेषु सन्ति,

प्रकृतमार्गणागतजीवानामसंख्येयबहुभागेषु वर्तमानैः सर्वैर्मिथ्यादृष्टिभिरनवरतं बध्यमानत्वात् । "चउवीसाए" इत्यादि, असातवेदनीयशोकाऽरतिनपुंसकवेदनरकद्विकवैक्रियद्विकपञ्चेन्द्रियजातिहुण्डकसंस्थानाऽशुभखगतित्रसचतुष्काऽस्थिरषट्कपराघातोच्छ्वासनीचैर्गोत्ररूपाणां चतुर्विंशतेर्नारकप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धकाः प्रकृतमार्गणयोः संख्यातबहुभागेषु वर्तन्ते, अबन्धकाश्च संख्येयतमे भागे वर्तन्ते । नन्वत्रैकेन्द्रियप्रायोग्यबन्धकाः सख्येयबहुभागेषु वर्तन्त इत्यनुक्त्वा नारकप्रायोग्यबन्धकाः संख्येयबहुभागेषु वर्तन्त इति कथमुक्तम्, पञ्चेन्द्रियतिर्यगोघमार्गणायामेकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धकाः सख्येयबहुभागेषु वर्तन्त इत्युक्तत्वात्, अत्रोच्यते—पञ्चेन्द्रियतिर्यगोघेऽसंख्येयबहुभागप्रमाणा लब्ध्यपर्याप्ता जीवा वर्तन्ते, अत्र तु पर्याप्ता एव जीवाः, तत्र बहुभागजीवानां निकृष्टबन्धस्थानमेकेन्द्रियरूपं वर्तते, अत्र तु सर्वेषां निकृष्टबन्धस्थानं नरकगतिरूपं वर्तते, सर्वत्र निकृष्टगतिप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धकाल उत्कृष्टतया शेषप्रकृतिबन्धकालपेक्षया संख्येयगुणोऽस्तीति नियमेनेह नरकप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकानां संख्येयगुणत्वमुक्तम् । तासां पुनरबन्धकाश्च सख्येयतमे भागे विज्ञेयाः । 'संखेज्जइमो' इत्यादि, निरुक्तप्रकृत्यतिरिक्तद्विचत्वारिंशत्प्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयतमे भागे विज्ञेयाः, तासां पुनरबन्धकाः संख्यातबहुभागेषु ज्ञेयाः । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीपुरुषवेदद्वयदेवमनुष्यतिर्यग्गतित्रयैकेन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकद्विकसंहननषट्कप्रथमादिसंस्थानपञ्चकदेवमनुष्यतिर्यगानुपूर्वीत्रयसुखगतिस्थिरषट्कस्थावरचतुष्कातपोद्योतोच्चैर्गोत्ररूपा द्विचत्वारिंशत्प्रकृतय इति । ॥९३६-७॥ अथाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगादिमार्गणास्वाह

असमत्तपणिदितिरियमणुसपणिदियतसेसु सव्वेसु ।
एगिंदियविगलिंदियपुढविदगवणेसु णो भागो ॥९३८॥
धुववधिउरालाण सेसाणोघव्व तेउवाऊसुं ।
सव्वेसु तहेव णवरि भागो ण तिरिदुगणीआण ॥९३९॥

(प्रे०) 'असमत्त' इत्यादि, अपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्तमनुष्याऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्तत्रसरूपासु चतसृषु मार्गणासु सप्तस्वेकेन्द्रियमार्गणासु सप्तसु पृथ्वीकायिकमार्गणासु सप्तस्वप्कायिकमार्गणास्वोघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदभिन्नासु तिसृषु द्वीन्द्रियमार्गणासु तिसृषु त्रीन्द्रियमार्गणासु तिसृषु चतुरिन्द्रियमार्गणासु एकादशवनस्पतिकायमार्गणासु च ज्ञानावरणीयप्रमुखाणां सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्च बन्धकानां भागो नास्ति, मार्गणास्वासु स्थितैः सर्वैर्जीवैर्बध्यमानत्वात् । 'सेसाण' इत्यादि, प्रकृतमार्गणासूक्तव्यतिरिक्तबन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धका ओघवदभिधातव्याः, तद्यथा—तिर्यग्द्विकप्रभृत्येकेन्द्रियप्रायोग्याणामष्टादशानां प्रकृतीनां बन्धकाः संख्यातबहुभागेषु सन्ति, तदबन्धकाश्च संख्याततमे भागे । सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीपुरुषवेदद्वयमनुष्यगतिद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानपञ्चकमनुष्यानुपूर्वीखगतिद्विक-

त्रसदशकदुःस्वराऽऽतपोद्योतोच्छ्वासपराघातोच्चैर्गोत्ररूपाणामेकचत्वारिंशत्प्रकृतीनां बन्धकाः संख्याततमे भागे भवन्ति, तदबन्धकाः पुनः संख्यातबहुभागेषु । भावना पुनरत्रौघवदवसेया । 'तेउवाऊसु' इत्यादि, सप्तसु तेजस्कायमार्गणासु सप्तसु वायुकायिकमार्गणासु स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां भागप्ररूपणोपरितनमार्गणावद् विधेया । 'णवरि' इत्यादि, परं तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्ररूपस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धकानां भागो मार्गणास्वासु नास्ति, मार्गणास्वासु वर्तमानैः सकलैर्जीवैर्बध्यमानत्वात्तस्य ॥९३८-९॥

साम्प्रतं मनुष्यादिमार्गणास्वितरप्रकृतिबन्धकानां भागप्ररूपणा विधीयते

मणुसपणिंदितसेसुं धुवउरलाण हविरे असंखंसा ।
तित्थाहारदुगविउव्वछक्काणंसो असंखयमो ॥९४०॥
एगिंदियजोग्गअसुहतमअट्ठारपयडीण संखंसा ।
संखेज्जइमो भागो सेसाणं एगचत्ताए ॥९४१॥

(प्रे०) 'मणुस' इत्यादि, मनुष्यौघपञ्चेन्द्रियौघत्रसौघरूपासु तिसृषु मार्गणासु ज्ञानावरणीयादीनां सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्च बन्धका असंख्यातबहुभागेषु भवन्ति, यतो हि मार्गणास्वासु केवलज्ञानिप्रमुखा जीवा एताः प्रकृतीर्न बध्नन्ति तद्व्यतिरिक्ताश्च बध्नन्ति, ते च भवस्थकेवलज्ञानिप्रमुखेभ्योऽसंख्येयगुणा विद्यन्ते । तदबन्धकाः पुनरसंख्याततमभागप्रमाणा विज्ञेयाः । 'तित्था' इत्यादि, जिननामाहारकद्विकसुरद्विकनरकद्विकवैक्रियद्विकलक्षणानां नवानां प्रकृतीनां बन्धका असंख्याततमभागे वर्तन्ते, तद्यथा—जिननामकर्म कैश्चित् सम्यग्दृष्टिप्रभृतिभिरेव बध्यते, ते च प्रकृतमार्गणावर्तिमिथ्यादृष्टिजीवानामसंख्येयतमे भागे वर्तन्ते । आहारकद्विकबन्धका अप्रमत्तसंयता एव भवन्ति, ते च संख्येयप्रमाणत्वेनेतरेषामसंख्येयभागे प्राप्यन्ते । वैक्रियषट्कस्य च बन्धविधायिनो जीवा लब्धिपर्याप्ता एव भवन्ति ते च लब्ध्यपर्याप्तापेक्षयाऽसंख्येयतमभागप्रमाणा एव लभ्यन्त इत्यर्थः । 'एगिंदिय' इत्यादि, असातवेदनीयशोकाऽरतिनपुंसकवेदतिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिहुण्डकसंस्थानदुःस्वरवर्जस्थावरनवकनीचैर्गोत्ररूपाणामेकेन्द्रियप्रायोग्याणामष्टादशप्रकृतीनां बन्धकाः संख्यातबहुभागेषु ज्ञेयाः संख्याततमभागप्रमाणाश्चाऽबन्धकाः । 'संखेज्जइमो' इत्यादि, सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीपुरुषवेदद्वयमनुष्यगतिद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कप्रथमादिसंस्थानपञ्चकमनुष्यानुपूर्वीखगतिद्विकत्रसदशकदुःस्वरातपोद्योतपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाणामेकचत्वारिंशच्छेषप्रकृतीनां बन्धकाः संख्याततमे भागे बोद्धव्याः, संख्यातबहुभागेषु चाऽबन्धकाः, उभयत्रापि भावना प्राग्वदवसातव्या ॥९४० १

एतर्हि पर्याप्तमनुष्यमानुषीमार्गणाद्वये भागान् भावयति—

दुणरेसु संखभागा णारगपाउग्गएगसयरीए ।
संखेज्जइमो भागो सेसाण पचचत्ताए ॥९४२॥

(प्रे०) 'दुणरेसु' इत्यादि, पर्याप्तमनुष्यमानुषीरूपयोर्मार्गणयोः सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्ध्यसातवेदनीयाऽरतिशोकनपुंसकवेदनरकद्विकवैक्रियद्विकपञ्चेन्द्रियजातिहुण्डकसंस्थानाऽशुभखगतित्रसचतुष्काऽस्थिरषट्कपराघातोच्छ्वासनीचैर्गोत्ररूपाणामेकसप्ततिप्रकृतीनां बन्धकाः संख्यातबहुभागेषु भवन्ति, मार्गणयोरनयोः सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृत्यबन्धकानामपेक्षया तद्बन्धकानां सख्येयगुणत्वादिति । नरकप्रायोग्यचतुर्विंशतिप्रकृतीनां भागविषये भावना पर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियमार्गणावत्कार्या । तद्बन्धकाः पुनः संख्यातत्तमे भागे वर्तन्ते । 'संखेज्जइमो' इत्यादि, सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीपुरुषवेदद्वयदेवमनुष्यतिर्यग्गतित्रयैकेन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकद्विकाहारकद्विकसंहननषट्कप्रथमादिसंस्थानपञ्चकशुभखगतिदेवमनुष्यतिर्यगानुपूर्वीत्रयस्थिरषट्कस्थावरचतुष्कातपोद्योतजिननामोच्चैर्गोत्ररूपाणां पञ्चचत्वारिंशच्छेषप्रकृतीनां बन्धकाः संख्याततमे भागे सन्ति, अस्मिन् मार्गणाद्वये नरकगतिलक्षणनिकृष्टप्रकृतिबन्धस्थानस्य बन्धकानां सख्येयगुणत्वेन प्रकृतशेषप्रकृतिबन्धकानां संख्येयतमभागवर्तित्वात् , तदबन्धकास्तु संख्येयबहुभागेषु ज्ञेयाः ॥१४२॥

इदानीं देवौघादिमार्गणास्वुत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागान् विचारयन्नाह—

सुरईसाणतविउवजुगलेसु बंधगा मुणेयव्वा ।
भागा असंखिया खलु थीणद्धितिगाणमिच्छाणं ॥१४३॥
णो भागो सेसाण धुवबंधीणं इगूणचत्ताए ।
परघाऊसासाण ओरालियबायरतिगाणं ॥१४४॥
एगिंदियजोग्गअसुहतमपचदसण्ह अत्थि सखंसा ।
तित्थस्स असखंसो हवेज्ज सेसाण सखंसो ॥१४५॥

(प्रे०) 'सुर' इत्यादि, देवौघभवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कसौधर्मेशानवैक्रियकाययोगवैक्रियमिश्रकाययोगाभिधासु मार्गणासु स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयलक्षणस्य प्रकृत्यष्टकस्य बन्धकानामसंख्येयबहुभागाः सन्ति, यतो मार्गणास्वासु प्रकृत्यष्टकस्यास्य बन्धका मिथ्यादृष्टिजीवा वर्तन्ते, ते च सम्यग्दृष्टिभ्योऽसंख्येयगुणा भवन्ति । असंख्याततमो भागः पुनस्तदबन्धकानां विज्ञेयः । 'णो' इत्यादि, स्त्यानर्द्धित्रिकादिप्रकृत्यष्टकवर्जानामेकोनचत्वारिंशन्मतिज्ञानावरणीयादिध्रुवबन्धिप्रकृतीनां पराघातोच्छ्वासौदारिकशरीरबादरत्रिकरूपाणां षण्णां प्रकृतीनां च बन्धकानां भागो नास्ति, मार्गणास्वासु वर्तमानैः सर्वैर्जीवैर्बध्यमानत्वादासाम् । 'एगिंदिय' इत्यादि, असातवेदनीयशोकाऽरतिनपुंसकवेदतिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिहुण्डकसंस्थानस्थावरनामदुःस्वरवर्जास्थिरपञ्चकनीचैर्गोत्ररूपाणामेकेन्द्रियप्रायोग्याशुभतमानां पञ्चदशप्रकृतीनां बन्धकाः संख्यातबहुभागेषु वेदयितव्याः, तदबन्धकाः पुनः संख्याततमे भागे, योजना प्राग्वद् । 'तित्थस्स' इत्यादि, जिननामकर्मणो बन्धका असंख्येयतमभागप्रमाणा अधिगन्तव्याः, यतो मार्गणास्वासु

तीर्थकृन्नामकर्मबन्धका जीवाः केचन सम्यग्दृश एव भवन्ति, ते च पुनरितरेभ्योऽसंख्याततमभागेऽवाप्यन्ते । परमत्रायं विशेषः—भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्करूपासु तीर्थकरनामकर्मबन्धाभावात् तद्भागविचारणा न विधेया। 'सेसाण' इत्यादि, सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीपुरुषवेदद्वयमनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानपञ्चकमनुष्यानुपूर्वीखगतिद्विकत्रसस्थिरषट्कदुःस्वरातपोद्योतोच्चैर्गोत्ररूपाणां त्रयस्त्रिंशच्छेषप्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयतमे भागे वर्तन्ते, शेषाश्च संख्येयतमेषु भागेषु तदबन्धका अवसेयाः, भावना प्राग्वदवसेया ।।९४३-५।।

अथाऽऽनतादिनवमग्रैवेयकान्तत्रयोदशमार्गणासूत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागान् दर्शयन्नाह

तेराणयाइगेसु ण भागो धुवबंधिऊणचत्ताए ।
णरउरलदुगपणिंदियपरघाऊसासतसचउक्काण ।।९४६।। (गीति०)
छअसायाइपुमपढमसंघयणागिइसुखगइछण्हाणं ।
सुहगतिगउच्च य संखियभागा सेसाण संखसो ।।९४७।।

(प्रे०) 'तेराणयाइगेसु' इत्यादि, आनतप्राणताऽऽरणाऽच्युतनवग्रैवेयकरूपासु त्रयोदशमार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकवर्जानामेकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां मनुष्यद्विकौदारिकद्विकपञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्कलक्षणानामेकादशप्रकृतीनां च बन्धकानां भागो नास्ति, मार्गणास्वासु सर्वैर्जीवैः सर्वदा बध्यमानत्वादासाम् ।

'छअसायाइ' इत्यादि, असातवेदनीयशोकाऽरत्यस्थिराशुभायशःकीर्तिपुरुषवेदप्रथमसंहननप्रथमसंस्थानशुभखगतिसुभगत्रिकोच्चैर्गोत्ररूपाणां चतुर्दशप्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयबहुभागेषु विद्यन्ते, भावना पुनरेवम्—असातवेदनीयादिप्रकृतिषट्कबन्धकालस्य सातवेदनीयादिप्रकृतिषट्कबन्धकालतः संख्येयगुणत्वेन सातवेदनीयादिप्रकृतिषट्कबन्धकापेक्षयाऽसातवेदनीयादिप्रकृतिषट्कबन्धकाः संख्येयगुणा वर्तन्ते । मार्गणास्वासु मिथ्यादृष्टिभ्यः सम्यग्दृष्टयो जीवाः संख्येयगुणा वर्तन्ते, ते च पुरुषवेदादिप्रकृतीरेता निरन्तरं बध्नन्ति । तदबन्धकाः पुनः संख्याततमे भागे बोध्याः । 'सेसाणं' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कलक्षणस्य प्रकृत्यष्टकस्य सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीनपुंसकवेदद्वयसंहननपञ्चकसंस्थानपञ्चकाऽशुभखगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिदुर्भगदुःस्वरानादेयजिननामनीचैर्गोत्ररूपाणां चतुर्विंशतिप्रकृतीनां च बन्धकाः संख्येयतमे भागे ज्ञातव्याः, भावना पुनरेवम्—मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकस्य दुर्भगत्रिकस्य च बन्धका मिथ्यादृष्टयो मुख्यतया भवन्ति, ते च सम्यग्दृशां संख्येयतमभागे वर्तन्ते, प्रस्तुतमार्गणासु सम्यग्दृशो मिथ्यादृष्टिभ्यः संख्यातगुणा भवन्तीति भावः । जिननामकर्मबन्धका जीवा मार्गणास्वासु जिननामसत्ताविरहितेभ्यो जीवेभ्यः संख्याततमभागप्रमिता एव विद्यन्ते, तथा शेषसातवेदनीयादिबन्धकालस्य तत्प्रतिपक्षासातवेदनीयादिप्रकृतिबन्धकालमपेक्ष्य संख्येयतमभागप्रमाणत्वेन सातवेदनीयादिप्रकृतिबन्धकाः संख्येयतमभागे प्राप्यन्ते । शेषाः संख्येयबहुभागेषु तदबन्धका बोद्धव्याः ।।९४६-७।।

साम्प्रतं पञ्चस्वनुत्तरमार्गणासूत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागान् विचारयितुमाह—

पणऽणुत्तरआहारगदुगेसु छण्हं असायपमुहाण।
सखसा सखसो जिणसायाईण णऽण्णेसिं ॥९४८॥

(प्रे०) 'पण' इत्यादि, पञ्चस्वनुत्तरमार्गणास्वाहारकद्विके च षण्णामसातवेदनीयशोकाऽरत्य-स्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिरूपाणां प्रकृतीनां बन्धकाः सङ्ख्येयेषु बहुभागेषु वर्तन्ते। शेषाः पुनरबन्धकाः सङ्ख्येयतमे भागे वेदयितव्याः। 'जिण' इत्यादि जिननामसातवेदनीयहास्यरतिस्थिरशुभयशःकीर्ति-रूपाणां सप्तानां प्रकृतीनां बन्धकाः सङ्ख्येयतमे भागेऽवसेयाः, संख्येयबहुभागेषु च तदबन्धकाः। 'णऽण्णेसिं' इत्यादि, पञ्चानुत्तरसुरेषु मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृत्यष्टकवर्जशेषैकोनचत्वारिंशद्-ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां पुरुषवेदमनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननसमचतुरस्र-संस्थानमनुष्यानुपूर्वीशुभखगतित्रसचतुष्कसुभगत्रिकपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाणामेकोनविंशतिप्रकृ-तीनां च बन्धकानां भागो नास्ति। आहारकद्विके पुनर्मनुष्यपञ्चकमध्यमकषायाष्टकवर्जा उप-युक्तप्रकृतयस्तथा देवद्विकवैक्रियद्विकप्रकृतयश्चेति नवचत्वारिंशत्प्रकृतीनां बन्धकानां भागप्ररूपणा नास्ति, अत्र सर्वत्र हेतुः प्राग्वद् भावनीयः ॥९४८॥

अथ पर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणायामुत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागान् कथयितुकाम आह——

धुवबंधीणं णेया पज्जत्तपणिंदिये असखंसा।
तित्थाहारदुगाण असंखभागो मुणेयव्वो ॥९४९॥
चउवीसाए णारयपाउग्गाण हवेज्ज सखसा।
संखेज्जइमो भागो बायालीसाअ सेसाण ॥९५०॥

(प्रे०) 'धुव'इत्यादि, पर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणायां सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धका असङ्ख्यातबहुभागेषु विद्यन्ते, मार्गणायामस्यां प्रकृतीनामासां बन्धविच्छेदं कृत्वोपरितनगुणस्थान-केषु वर्तमानानां जीवानामपेक्षया तदितरजीवानामसंख्येयगुणत्वात्। असंख्येयतमे भागे च तदबन्धका बोद्धव्याः। 'तित्थाहार' इत्यादि, जिननामाहारकद्विकलक्षणस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धका असंख्येय-तमे भागेऽवसातव्याः, मार्गणायामस्यां प्रकृतित्रयस्यास्य बन्धकत्वेन सम्यग्दृष्ट्यादयो वर्तन्ते, तेषां च मार्गणागतशेषजीवानपेक्ष्याऽसंख्येयतमभागे वर्तमानत्वात्। असङ्ख्येयेषु भागेषु पुनस्तदबन्धका भवन्ति। 'चउवीसाए'इत्यादि, असातवेदनीयशोकाऽरतिनपुंसकवेदनरकद्विकवैक्रियद्विकपञ्चेन्द्रिय-जातिहुण्डकसंस्थानाशुभखगतित्रसचतुष्काऽस्थिरषट्कपराघातोच्छ्वासनीचैर्गोत्ररूपाणां नरकप्रायो-ग्याणां चतुर्विंशतिप्रकृतीनां बन्धकाः संख्यातबहुभागेषु वर्तन्ते, सङ्ख्येयतमे भागे च तदबन्धकाः। 'संखेज्जइमो' इत्यादि, सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीपुरुषवेदद्वयतिर्यग्मनुष्यदेवगतित्रयैकेन्द्रियादिजाति-चतुष्कौदारिकद्विकसंहननषट्कसंस्थानपञ्चकतिर्यग्मनुष्यदेवानुपूर्वीत्रयशुभविहायोगतिस्थिरषट्कस्था-

वरचतुष्कातपोद्योतोच्चैर्गोत्ररूपाणां द्विचत्वारिंशत्प्रकृतीनां बन्धकाः संख्याततमभागप्रमाणा अवसातव्याः, शेषाः पुनः संख्येयबहुभागेषु तदबन्धका बोध्याः, उभयत्र भावना पूर्ववद् विधेया ॥१४९-५०॥ इदानीं पर्याप्तत्रसादिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धविधायिनां भागान् दर्शयति—

धुवबंधीण असखियभागा पज्जतसदुवयचक्खूसु ।
तित्थाहारदुगाण असंखभागो मुणेयव्वो ॥१५१॥
एगिंदियजोग्गअसुहतमअट्ठारसुरलाण संखसा ।
संखंसो सेसाणं सगचत्ताए परं णयणे ॥१५२॥
आसण्णद्धंसो तिरिणिरयविउवदुगदुजाइउरलाण ।
परघाऊसासाणं तसथावरचउगकुसरखगईण ॥१५३॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'धुवबंधीणं' इत्यादि, पर्याप्तत्रसवचनौघाऽसत्यामृषावचनचक्षुर्दर्शनरूपासु चतसृषु मार्गणासु सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धका असंख्यातबहुभागेषु विज्ञेयाः । तदबन्धकाः पुनरसंख्येयतमे भागे, हेतुस्तत्र पर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणावज्ज्ञेयः । 'तित्थाहार' इत्यादि, जिननामाहारकद्विकलक्षणस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धका असंख्येयतमे भागे वर्तन्ते असंख्येयबहुभागेषु चाऽबन्धकाः, मार्गणास्वासु जिननामबन्धकानामाहारकद्विकबन्धकाऽप्रमत्तयतीनां चेतरेभ्यो जीवेभ्योऽसंख्येयगुणहीनत्वात् । 'एगिंदिय' इत्यादि, असातवेदनीयशोकाऽरतिनपुंसकवेदतिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिहुण्डकसंस्थानदुःस्वरवर्जस्थावरनवकनीचैर्गोत्ररूपाणामष्टादशानामेकेन्द्रियप्रायोग्याऽशुभतमप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्च बन्धकाः संख्यातबहुभागेषु विज्ञेयाः, अबन्धकाः पुनः संख्याततमे भागे ज्ञेयाः । 'संखंसो' इत्यादि, सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीपुरुषवेदद्वयदेवमनुष्यनरकगतित्रयद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियद्विकसंहननपट्कसंस्थानपञ्चकदेवमनुष्यनरकानुपूर्वीत्रयखगतिद्विकत्रसदशकदुःस्वरातपोद्योतपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाणां सप्तचत्वारिंशच्छेषप्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयतमभागप्रमाणा वेदयितव्याः, संख्यातबहुभागप्रमाणाश्चाऽबन्धकाः । भावना पुनरुभयत्र प्राग्वदधिगम्या । अत्र समापतन्तीमतिप्रसक्तिमपाकर्तुं 'पर' मित्यादिना विशेषं दर्शयति—चक्षुर्दर्शनमार्गणायां तिर्यग्द्विकनरकद्विकवैक्रियद्विकैकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजातिद्वयौदारिकशरीरपराघातोच्छ्वासाऽशुभखगतिदुःस्वरत्रसचतुष्कस्थावरचतुष्कप्रकृतीनां बन्धकानामासन्नार्धभागो ज्ञेयः, अयमत्र भावः—चक्षुर्दर्शनमार्गणायां चतुरिन्द्रियाः पञ्चेन्द्रियाश्च द्विविधा जीवा वर्तन्ते, तेष्वपि प्रकृतमार्गणागतजीवानां साधिकार्धभागे पञ्चेन्द्रियजीवा वर्तन्ते, देशोनार्धभागे च चतुरिन्द्रियजीवा वर्तन्ते, अत्र संख्यातबहुभागगताश्चतुरिन्द्रियजीवास्तिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिस्थावरचतुष्करूपस्य प्रकृतिसप्तकस्य बन्धका विद्यन्ते, सूक्ष्माऽपर्याप्तसाधारणैकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धकालस्य शेषप्रकृतिबन्धकालतः संख्येयगुणत्वात्तथौदारिकशरीरनाम्नः पुनस्ते सर्वेऽपि बन्धकाः, उक्तप्रकृत्यष्टकस्य बन्धकतया पञ्चेन्द्रियजीवा अप्येकसंख्यभागताः प्राप्नुवन्ति । पञ्चेन्द्रियजीवेषु च संख्यात-

बहुभागप्रमाणा जीवा नरकद्विकपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विककुखगतिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्कदुःस्वररूपाणां त्रयोदशप्रकृतीनां बन्धका वर्तन्ते, पञ्चेन्द्रियेषु मुख्यवृत्त्या असंज्ञिपञ्चेन्द्रियजीवा विद्यन्ते तेषु बहुसंख्यातभागप्रमाणा जीवा नरकप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धका इति कृत्वा, तथोक्तत्रयोदशप्रकृतिमध्यान्नरकद्विकवैक्रियद्विकवर्जशेषनवप्रकृतीनां पुनश्चतुरिन्द्रियजीवा अपि संख्याततमभागप्रमाणा लभ्यन्ते, अतः प्रस्तुतमार्गणागतजीवानामासन्नार्धभागप्रमाणा जीवा आसां कथितप्रकृतीनां बन्धकतया प्राप्यन्ते, अत उक्तम् 'आसण्णद्धंसो' इति । अत्र देशोनार्धप्रमाणत्व माधिकाधप्रमाणत्व च स्वयं विज्ञेयम् ॥९५१-३॥

अथ मनःसामान्यादिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागान् दर्शयति

धुवबंधीण असंखियभागा पणमणतिवयणसण्णीसु ।
तित्थाहारदुगाणं असंखभागो मुणेयव्वो ॥९५४॥
णिरयतिरिविउव्वदुगुरलपरघाऊसासपचजाईण ।
तह कुखगइदुस्सरतसथावरचउगाण सयमुज्झा ॥९५५॥
सखसा सोगअरइणपुमअसायअजसाऽथिरदुगाण ।
हुंडअणादेयदुहगणीआणियराण सखंसो ॥९५६॥

(प्रे०) 'धुवबंधीण' इत्यादि, ओघादिभेदेन पञ्चसु मनोयोगमार्गणासु सत्यवचनाऽसत्यवचनसत्यासत्यवचनरूपासु तिसृषु वचनमार्गणासु संज्ञिमार्गणायां चेति नवसु मार्गणासु सप्तचत्वारिंशद् ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धका असंख्यातबहुभागेषु ज्ञातव्याः, तद्बन्धकानां मिथ्यादृष्टिजीवानां प्रस्तुतमार्गणास्वसंख्यातबहुभागेषु वर्तमानत्वादिति । 'तित्था' इत्यादि, तीर्थकृन्नामाहारकद्विकरूपस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धका असंख्याततमे भागे ज्ञेयाः, यतो जिननामबन्धकाः केचन सम्यग्दृष्टय आहारकद्विकबन्धकाश्चाऽप्रमत्तसंयता एव भवन्ति, ते च प्रत्येकं मार्गणागतजीवानामसंख्याततमभागप्रमाणा विद्यन्ते । 'णिरय' इत्यादि, नरकद्विकतिर्यग्द्विकवैक्रियद्विकौदारिकशरीरपराघातोच्छ्वासजातिपञ्चकरूपाणां चतुर्दशप्रकृतीना तथाऽशुभखगतिदुःस्वरत्रसचतुष्कस्थावरचतुष्करूपाणां दशप्रकृतीनां चेति सर्व संख्यया चतुर्विंशतिप्रकृतीनां बन्धकानां भागाः स्वयमूह्याः, आसु मार्गणासु देवराशिः प्रधानः, उत तिर्यग्राशिः प्रधान इति सम्यक्परिज्ञानाभावात् , इदमुक्तं भवति–मार्गणास्वासु देवराशेः प्राधान्यमुत तिर्यग्राशेरिति सम्यग्निश्चयो नास्ति, एकतरराशेः प्राधान्यप्रतिपादकसूत्राऽनुपलम्भात् , तस्माद् यदि प्रकृतमार्गणासु देवराशिः प्रधानः स्यात् तर्हि तत्र तिर्यग्द्विकौदारिकशरीरप्रभृतिप्रकृतीनां बन्धकाः प्रभूततया प्राप्नुयुः, यदि पुनः तिर्यग्राशिः प्रधानः स्यात् , तस्मिन्नपि देवराशितः कर्मभूमिगततिर्यग्जीवराशिः प्रधानो भवेत् , तर्हि तदपेक्षया नरकद्विकवैक्रियद्विकप्रकृतिबन्धकानामाधिक्यं लभ्येत । यदि पुनस्तिर्यग्राशि र्देवराशितोऽल्पतरः, तस्मिन्नपि यद्यकर्मभूमिजतिर्यग्राशिः प्रधानः स्यात् , तर्हि द्वीन्द्रियादिजातित्रयादिप्रकृतीनां बन्धका अल्पा अवाप्नुयुः, अकर्मभूमिजतिर्यग्जीवानां देवप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वादिति यथासंभवं स्वयं प्रकृते ग्रन्थाविरोधेन भागविचारो विधेयः ।

'संखंसा' इत्यादि, शोकारतिनपुंसकवेदाऽसातवेदनीयायशःकीर्त्यस्थिराऽशुभहुण्डसंस्थानाऽनादेयदुर्भगनीचैर्गोत्रलक्षणानामेकादशप्रकृतीनां बन्धकाः संख्यातबहुभागेषु वर्तन्ते, अप्रशस्तप्रकृतिबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । 'इयराण' इत्यादि, उक्तातिरिक्तशेषप्रकृतिबन्धकाः संख्याततमे भागेऽवमातव्याः, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः–सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीपुरुषवेददेवमनुष्यगतिद्वयौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कप्रथमादिसंस्थानपञ्चकदेवमनुष्यानुपूर्वीद्वयसुखगतिस्थिरषट्कातपोद्योतोच्चैर्गोत्ररूपा एकत्रिंशदिति । कामाश्रित् सातवेदनीयादिप्रकृतीनां बन्धकालस्य प्रतिपक्षप्रकृतीनां बन्धकालात् संख्येयगुणहीनत्वात् ॥९५४-६॥

अधुना वेदमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागान् भणितुकाम आदौ तावत्स्त्रीवेदपुरुषवेदमार्गणयोराह

थीपुरिसेसु ण भागो णवावरणचउकसायविग्धाण ।
णेया गुणतीसाए धुवबंधीण असखंसा ॥९५७॥
सखंसाऽत्थि सुहमतिगवज्जेगक्खारिहासुहतमाण ।
पंचदसण्होरालियपरघाऊसासबायरतिगाणं ॥९५८॥ (गीतिः)
तित्थाहारदुगाण विण्णेया बंधगा असखंसो ।
सखंसो बोद्धव्वो सेसाण पचचत्ताए ॥९५९॥

(प्रे०) 'थी' इत्यादि, स्त्रीवेदपुरुषवेदमार्गणाद्वये ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्काऽन्तरायपञ्चकरूपाणामष्टादशप्रकृतीनां बन्धकानां भागो नास्ति, एतन्मार्गणाद्वये वर्तमानैः सर्वैरेव ध्रुवतया बध्यमानत्वात्तासाम् । 'णेया' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयाऽनन्तानुबन्धिप्रमृतिकषायद्वादशकभयजुगुप्सास्त्यानर्द्धित्रिकनिद्राद्विकतैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणलक्षणानामेकोनत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धका असंख्येयेषु भागेषु विद्यन्ते, मार्गणयोरनयोः प्रकृतीनामासां बन्धविच्छेदस्थानमधिगतेभ्यो जीवेभ्योऽन्येषामेतत्प्रकृतिबन्धकानामसंख्येयगुणत्वात् । शेषाः पुनरबन्धकाः प्रकृतीनामासामसंख्येयतमे भागे बोद्धव्याः ।

"संखंसा" इत्यादि, असातवेदनीयशोकाऽरतिनपुंसकवेदतिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिहुण्डकसंस्थानस्थावरदुःस्वरवर्जास्थिरपञ्चकनीचैर्गोत्ररूपाणामेकेन्द्रियप्रायोग्याऽशुभतमानां पञ्चदशप्रकृतीनामौदारिकशरीरपराघातोच्छ्वासबादरत्रिकरूपाणां षण्णां प्रकृतीनां च बन्धकाः संख्यातबहुभागेषु सन्ति । अत्र सूक्ष्मत्रिकस्य वर्जनं किमर्थं कृतम् ? इति चेदुच्यते-एतन्मार्गणाद्वये ज्योतिष्कदेवराशेः प्राधान्यं वर्तते, तस्या च संख्यातबहुभागप्रमाणा देवा बादरपर्याप्तैकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतीर्बध्नन्तीति कृत्वा तद्वर्जनं ज्ञेयम् ।

'तित्था' इत्यादि, तीर्थकृन्नामाहारकद्विकरूपस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धका असंख्येयतमभागे विज्ञेयाः, अबन्धकाश्चासंख्येयतमेषु भागेषु, मार्गणागतैकाऽसंख्येयभागमात्रसम्यग्दृष्ट्यादिभिरेव तासां बध्यमानत्वात् । "संखंसो" इत्यादि, सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीपुरुषवेदद्वयदेवमनुष्यनरक-

गतित्रयद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियद्विकसंहननषट्कसंस्थानपञ्चकदेवमनुष्यनरकानुपूर्वीत्रयखगतिद्विकत्रसस्थिरषट्कसूक्ष्मत्रिकदुःस्वरातपोद्योतोच्चैर्गोत्ररूपाणां पञ्चचत्वारिंशत्प्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयतमे भागे भवन्ति, आसां प्रतिपक्षभूतबादरपर्याप्तैकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धकानां संख्येयगुणत्वात् ॥९५७९॥

सम्प्रति नपुंसकवेदमार्गणायां तत्साम्येन क्रोधमार्गणायां चायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागानाह

णत्थि णपुमकोहेसुं णवावरणचउकसायविग्घाणं ।
ओघव्व जाणियव्वा सेसाण अट्ठणवतीए ॥९६०॥

(प्रे०) 'णत्थि' इत्यादि, नपुंसकवेदक्रोधाख्ययोर्मार्गणयोर्ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्काऽन्तरायपञ्चकरूपाणामष्टादशप्रकृतीनां बन्धकानां भागो नास्ति, मार्गणयोरनयोः स्थितैः सर्वैर्जीवैरनवरतं बध्यमानत्वादासाम् । "ओघव्व" इत्यादि, शेषाणामष्टनवतिप्रकृतीनां बन्धका ओघवदभिधेयाः, तदेवम्–उपर्युक्ताष्टादशप्रकृतिवर्जशेषैकोनत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतिबन्धका औदारिकशरीरनामकर्मबन्धकाश्चाऽनन्तबहुभागेषु वर्तन्ते,तदबन्धकाश्चाऽनन्ततमे भागे । वैक्रियषट्काऽऽहारकद्विकजिननामप्रकृतीनां बन्धका अनन्ततमे भागे वर्तन्ते,अबन्धकाश्चाऽनन्तबहुभागेषु । असातवेदनीयशोकारतिनपुंसकवेदतिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिहुण्डकसंस्थानदुःस्वरवर्जस्थावरनवकनीचैर्गोत्ररूपाणामेकेन्द्रियप्रायोग्याऽशुभतमानामष्टादशप्रकृतीनां बन्धकाः संख्यातेषु भागेषु विद्यन्ते,संख्याततमे भागे चाऽबन्धकाः, । सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीपुरुषवेदद्वयमनुष्यद्विकजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गसंस्थानपञ्चकसंहननषट्कखगतिद्विकत्रसदशकदुःस्वरातपोद्योतपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाणामेकचत्वारिंशत्प्रकृतीनां बन्धकाः संख्याततमे भागे सन्ति, संख्याततमेषु च भागेषु तदबन्धकाः । भावना पुनरिहौघवद् विधेया ॥९६०॥

अथ मानादिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकसत्कभागान् कथयति

एमेव माणमायालोहेसु हवेज्ज णवरि ओघव्व ।
जहकमसो एगदुचउसंजलणाणं मुणेयव्वा ॥९६१॥

(प्रे०) "एमेव" इत्यादि, मानमायालोभलक्षणासु तिसृषु मार्गणासु स्वप्रायोग्यायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागा नपुंसकवेदमार्गणावदेव भवन्ति । परं संज्वलनचतुष्कविषये यो विशेषस्तं 'णवरि' इत्यादिना दर्शयति–मानमार्गणायां संज्वलनक्रोधबन्धकाः, मायामार्गणायां संज्वलनक्रोधमानबन्धकाः, लोभमार्गणायां च संज्वलनचतुष्कबन्धका ओघवदवसेयाः, अनन्तबहुभागप्रमाणा इत्यर्थः । एतन्मार्गणात्रये क्रमेण संज्वलनक्रोधस्य सज्वलनक्रोधमानयोः संज्वलनचतुष्कस्य चाऽबन्धकानां संख्येयप्रमाणानां प्राप्यमाणत्वात् ॥९६१॥

इदानीमवेदादिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागान् निरूपयति—

णेया अणंतभागो अवेअअकसायकेवलदुगेसुं ।
सम्मत्तखइएसु य सव्वाउआण सव्वेसिं ॥९६२॥

(प्रे०) 'णेया' इत्यादि, अवेदाऽकषायकेवलज्ञानकेवलदर्शनसम्यक्त्वौघक्षायिकसम्यक्त्वमार्गणासु स्वप्रायोग्याणां सर्वासामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतीनां बन्धका अनन्ततमे भागेऽवसेयाः । तद्यथा—अवेदमार्गणायां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्काऽन्तरायपञ्चकसातवेदनीययशःकीर्त्युच्चैर्गोत्ररूपाणामेकविंशतिप्रकृतीनां बन्धका नवमादिगुणस्थानगता भवन्ति, ते च मार्गणायामस्यां तदबन्धकेभ्यः सिद्धादिभ्योऽनन्ततमभागे वर्तन्ते । अकषायकेवलज्ञानकेवलदर्शनमार्गणासु केवलं सातवेदनीयमेव बध्यते, तद्बन्धकाश्चात्र यथासंभवमेकादशादित्रयोदशगुणस्थानस्था एव, ते च सिद्धानामनन्ततमे भागे वर्तन्ते । सम्यक्त्वौघक्षायिकसम्यक्त्वमार्गणयोर्मिथ्यात्वादिप्रकृत्यष्टकवर्जज्ञानावरणीयादीनामेकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां वेदनीयद्विकहास्यादियुगलत्रयपुरुषवेददेवमनुष्यगतिद्वयपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकसमचतुरस्रसंस्थानवज्रर्षभनाराचसंहनन-देवमनुष्यानुपूर्वीद्वयसुखगतित्रसदशकास्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासजिननामोच्चैर्गोत्ररूपाणामष्टात्रिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च बन्धका अनन्ततमे भागे बोद्धव्याः, मार्गणयोरनयोः स्थितेभ्यः सिद्धादिभ्यः प्रकृतीनामासां बन्धविधायिनामनन्ततमे भागे विद्यमानत्वादिति ।

अथ मतिज्ञानादिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागानाह

छण्हं सायाईण तिणाणऽवहिउवसमेसु सखसो ।
छण्ह असायाईणं संखियभागा मुणेयव्वा ॥९६३॥
अत्थि असंखंसो सुरविउवाहारदुगतित्थणामाणं ।
भागाऽत्थि असंखेज्जा सेसाण अद्भुवण्णाए ॥९६४॥

(प्रे०) 'छण्हं' इत्यादि, मतिज्ञानश्रुतज्ञानावधिज्ञानाऽवधिदर्शनोपशमसम्यक्त्वमार्गणासु सातवेदनीयहास्यरतिस्थिरशुभयशःकीर्तिरूपाणां षण्णां प्रकृतीनां बन्धकाः संख्याततमभागप्रमाणा ज्ञातव्याः, संख्येयबहुभागप्रमाणाश्चाऽबन्धकाः । 'छण्ह' इत्यादि, असातवेदनीयशोकाऽरत्यस्थिराऽशुभायशःकीर्तिरूपाणां षण्णां प्रकृतीनां बन्धकाः संख्यातबहुभागप्रमाणा ज्ञातव्याः, संख्याततमभागप्रमाणाश्चाऽबन्धकाः । 'अत्थि' इत्यादि, प्रकृतमार्गणासु सुरद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकजिननामकर्मरूपस्य प्रकृतिसप्तकस्य बन्धका असंख्येयतमे भागेऽवसेयाः तदित्थम्—मार्गणास्वासु सुरद्विकवैक्रियद्विकरूपस्य प्रकृतिचतुष्कस्य बन्धकास्तिर्यग्मनुष्या एव वर्तन्ते, न तु देवनारकाः, ते च सम्यग्दृष्टिदेवनारकेभ्योऽसंख्येयतमभागे वर्तन्ते, त्रिगतिगतसम्यग्दृष्टिभ्यः सम्यग्दृष्टिदेवानामसंख्येयगुणत्वात् । आहारकद्विकबन्धकाः पुनरप्रमत्तसंयता एव भवन्ति, ते च संख्येयप्रमाणत्वेन मार्गणा-

स्वासु वर्तमानेभ्योऽन्यजीवेभ्योऽसंख्येयतमे भागे वर्तन्ते, मार्गणास्वासु जिननामकर्मबन्धकास्तदितरेभ्योऽसंख्येयतमे भागे वर्तन्ते । 'भागा' इत्यादि, मतिज्ञानावरणीयप्रभृत्येकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः पुरुषवेदमनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकसमचतुरस्रसंस्थानवज्रर्षभनाराचसंहननमनुष्यानुपूर्वीसुखगतित्रसचतुष्कसुभगसुस्वरादेयपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाश्चाऽध्रुवबन्धिप्रकृतय इति संमीलितानामष्टपञ्चाशत्प्रकृतीनां बन्धका असंख्यातबहुभागप्रमिताः समधिगम्याः मार्गणास्वासु प्रकृतीनामासामबन्धकेभ्यो जीवेभ्योऽपरेषां तद्बन्धविधायिनामसंख्येयगुणत्वात् । शेषास्त्वबन्धका असंख्याततमे भागेऽधिगम्याः ।।९६३ ४।।

अधुना मनःपर्यवज्ञानसंयमौघमार्गणयोरायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागान्निरूपयितुमना आह—

मणणाणसजमेसु णेया सायाइगाण छण्ह तहा ।
तित्थाहारदुगाण संखसोऽण्णाण सव्वंसा ९६५।।

(प्रे०) 'मणणाण' इत्यादि, मनःपर्यवज्ञानसंयमौघमार्गणयोः सातवेदनीयहास्यरतिस्थिरशुभयशःकीर्तिरूपस्य प्रकृतिषट्कस्य तीर्थंकरनामाहारकद्विकलक्षणस्य प्रकृतित्रयस्य च बन्धकाः संख्याततमभागे ज्ञेयाः, यतः सातवेदनीयादिप्रकृतिषट्कबन्धकालस्यैतद्विरोधिप्रकृतिबन्धकालापेक्षया संख्येयगुणहीनत्वादाहारकद्विकजिननामबन्धार्हजीवानां मार्गणागतजीवाना संख्येयभागप्रमाणत्वाच्च । 'अण्णाण' इत्यादि, स्वबन्धार्हाणामेकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामसातवेदनीयशोकाऽरतिपुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वीसुखगतित्रसचतुष्कसुभगसुस्वरादेयाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाणां चतुर्विंशत्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च बन्धकाः संख्यातबहुभागप्रमाणा अवसेयाः, भावना पुनरिह स्वयमाधेया, सुगमप्रायत्वात्, शेषाः पुनः संख्येयतमभागप्रमाणा अबन्धका बोद्धव्याः ।।९६५।।

इदानीं मत्यज्ञानश्रुताज्ञानमार्गणयोरायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागान् प्ररूपयिषुराह—

णत्थि दुअण्णाणेसु छायालीसधुवबंधिपयडीण ।
ओघव्व जाणियव्वो सेसाण सत्तसट्ठीए ।।९६६।।

(प्रे०) 'णत्थि' इत्यादि, मत्यज्ञानश्रुताज्ञानाभिधयोर्मार्गणयोर्मिथ्यात्वमोहनीयवर्जशेषषट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतिबन्धकानां भागो नास्ति । 'ओघव्व' इत्यादि शेषाणां सप्तषष्टिप्रकृतीनां बन्धका ओघवदवसातव्याः ।।९६६।।

साम्प्रतं विभङ्गज्ञानमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागान् दिदर्शयिषुराह—

धुवबंधिछचत्ताए विभंगणाणम्मि णो असंखंसा ।
णेया मिच्छोरालियनरघाऊसासवायरतिगाण ।।९६७।। (गीति·)
हविरे असंखभागो विगलसुहुमतिगविउव्वछक्काणं ।
देवव्व जाणियव्वा सेसाण अट्ठचत्ताए ।।९६८।।

(प्रे०) 'धुव' इत्यादि, विभङ्गज्ञानमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयवर्जपट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धकानां भागो नास्ति, मार्गणागतैः सर्वैर्निरन्तरं बध्यमानत्वात्तासाम् । 'असंखंसा' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयौदारिकशरीरपराघातोच्छ्वासबादरत्रिकरूपस्य प्रकृतिसप्तकस्य बन्धका असंख्यातबहुभागेषु ज्ञेयाः,यतो मिथ्यात्वमोहनीयं मिथ्यादृष्टयो बध्नन्ति, न तु सास्वादनिनः,मिथ्यादृष्टयश्चात्र सास्वादनिनामपेक्षयाऽसंख्येयगुणा वर्तन्ते, तथा मार्गणायामस्यां सुरमनुष्यादिभ्योऽसंख्येयगुणा वर्तन्ते ते चौदारिकशरीरनामपराघातादिप्रकृतीनां बन्धकाः सदैव सन्ति । "इयिरे" इत्यादि, विभङ्गज्ञानमार्गणायां द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियजातिसूक्ष्मत्रिकसुरद्विकवैक्रियद्विकनरकद्विकरूपाणां द्वादशप्रकृतीनां बन्धका असंख्येयतमभागप्रमाणा भवन्ति, प्रकृतीनामासामेतन्मार्गणावर्तिभिस्तिर्यग्मनुष्यैरेव बध्यमानत्वात् तेषां चैतन्मार्गणागतानां जीवानामसंख्येयतमभागप्रमाणत्वाच्च । "देव०व" इत्यादि, शेषाणामष्टचत्वारिंशत्प्रकृतीनां बन्धका देवमार्गणावदभिधेयाः, तदेवम्–असातवेदनीयशोकारतिनपुंसकवेदतिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिहुण्डकसंस्थानस्थावरदुःस्वरवर्जास्थिरपञ्चकनीचैर्गोत्रलक्षणानामेकेन्द्रियप्रायोग्याशुभतमानां पञ्चदशप्रकृतीनां बन्धकाः संख्यातेषु भागेषु वर्तन्ते, संख्याततमे भागे चाऽबन्धकाः । सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीपुरुषवेदद्वयमनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानपञ्चकमनुष्यानुपूर्वीखगतिद्विकत्रसस्थिरषट्कदुःस्वरातपोद्योतोच्चैर्गोत्ररूपाणां त्रयस्त्रिंशत्प्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयतमे भागे विद्यन्ते, संख्यातबहुभागेषु च तदबन्धकाः ॥९६७-८॥

इदानीं सामायिकच्छेदोपस्थापनीयमार्गणयोरायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागान् विचारयन्नाह–

समइअछेएसुं णो चिअ भागो सोलसण्ह ताण भवे ।
जाणऽत्थि तइअभंगो मणणाणव्व अवसेसाण ॥९६९॥

(प्रे०) "समइअ"इत्यादि, सामायिकच्छेदोपस्थापनीयाभिधयोर्मार्गणयोर्यासां षोडशप्रकृतीनां 'सर्वे बन्धकाः'इति तृतीयभङ्गो भवति तासामत्र बन्धकानां भागो नास्ति, मार्गणागतसर्वजीवैरनवरतं बध्यमानत्वादिति । ताश्चेमाः-ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसंज्वलनलोभोच्चैर्गोत्राऽन्तरायपञ्चकलक्षणाः षोडशप्रकृतयः, ।"मणणाण०व"इत्यादि, एतद्व्यतिरिक्तायुर्वर्जानां प्रकृतीना बन्धका मनःपर्यवज्ञानमार्गणावदवसातव्याः, तद्यथा-सातवेदनीयहास्यरतिस्थिरशुभयशःकीर्तिजिननामाहारकद्विकरूपाणां नवानां प्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयतमे भागेऽवसेयाः, संख्यातबहुभागेषु चाऽबन्धकाः । निद्राद्विकसंज्वलनक्रोधमानमायाभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणरूपाणां षोडशप्रकृतीनामसातवेदनीयशोकाऽरतिपुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वीसुखगतित्रसचतुष्कसुभगसुस्वरादेयाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासरूपाणां त्रयोविंशतिप्रकृतीनां च बन्धकाः संख्येयेषु भागेषु बोद्धव्याः, अबन्धकाः पुनः संख्येयतमे भागे ।

अथ परिहारविशुद्धिसंयममार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागानाह-

परिहारे सखंसा छअसायाईण अत्थि सखंसो।
तित्थयराहारदुगछसायाईण ण सेसाण ॥९७०॥

(प्रे०) "परिहारे" इत्यादि, परिहारविशुद्धिसंयममार्गणायामसातवेदनीयशोकारत्यस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिरूपाणां षण्णां प्रकृतीनां बन्धकाः संख्यातेषु भागेषु ज्ञातव्याः, संख्याततमे भागे चाऽबन्धकाः। "अत्थि" इत्यादि, जिननामाहारकद्विकसातवेदनीयहास्यरतिस्थिरशुभयशःकीर्तिरूपाणां नवानां प्रकृतीना बन्धकाः संख्याततमे भागे वर्तन्ते, अबन्धकाश्च संख्यातबहुभागेषु, उभयत्र हेतुः प्राग्रीत्याऽनुसन्धेयः। "ण" इत्यादि, ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्यतरायपञ्चकरूपाणामेकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां पुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वीसुखगतित्रसचतुष्कसुभगसुस्वरादेयपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाणामष्टादशाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च बन्धकानां भागो नास्ति, अधिकृतमार्गणास्थैः सर्वजीवैरनवरतं बध्यमानत्वात् ॥९७०॥

इदानीं देशविरतिसंयममार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतीनां बन्धकानां भागानाह

देसम्मि असखंसो जिणस्स सायाइगाण छण्हऽत्थि।
सखंसो सखंसा छअसायाईण णत्थि सेसाणं ॥९७१॥ (गीति)

(प्रे०) "देसम्मि" इत्यादि, देशविरतिमार्गणायां तीर्थकृन्नामकर्मणो बन्धका असंख्येयतमे भागे वर्तन्ते, कुतः? इति चेद्, उच्यते-अत्रैतत्प्रकृतिबन्धार्हा मनुष्या एव, ते च मार्गणायामस्यामसंख्येयतमे भागे वर्तन्त इति कृत्वा। "सायाइगाण" इत्यादि, सातवेदनीयहास्यरतिस्थिरशुभयशःकीर्तिरूपस्य प्रकृतिषट्कस्य बन्धकाः संख्याततमभागप्रमाणा वर्तन्ते। "सखंसा" इत्यादि, असातवेदनीयशोकाऽरत्यस्थिराऽशुभायशःकीर्तिलक्षणस्य प्रकृतिषट्कस्य बन्धकानां संख्यातबहुभागा विद्यन्ते,। शेषभाग उक्तत्रयोदशानामबन्धकानां ज्ञेयः। 'णत्थि' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानद्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपा द्वादशप्रकृतीर्विहाय शेषाणां पञ्चत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां पुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वीसुखगतित्रसचतुष्कसुभगसुस्वरादेयपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाणामष्टादशाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धकानां भागो नास्ति, एतन्मार्गणावर्तिभिः सकलजीवैः प्रकृतीनामासां सततं बध्यमानत्वात् ॥९७१॥

अथ सूक्ष्मसम्पराययथाख्यातसंयमाऽविरतमार्गणासु कृष्णादिलेश्यामार्गणासु चायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकाना भागानाह

सुहमे ण अहक्खाये सखंसाऽत्थि धुवकेणचउराए।
अजयासुहलेसासु ण ओघव्वऽण्णपणसयरीए ॥९७२॥

(प्रे०) 'सुहमे' इत्यादि, सूक्ष्मसंपरायमार्गणायां भागप्ररूपणा नास्ति । 'अहक्खाये' इत्यादि, यथाख्यातमार्गणायां सातवेदनीयबन्धकाः संख्यातबहुभागे वर्तन्ते, सयोगिकेवलिनां मार्गणायामस्यां संख्यातबहुभागेषु वर्तमानात्वात्, तेषां च सातवेदनीयस्य बन्धकत्वात् । अबन्धकाः संख्यातैकभागे वर्तन्ते, अयोगिकेवलिनामबन्धकत्वात् । 'अजया' इत्यादि, असंयमकृष्णलेश्यानीललेश्याकापोतलेश्यालक्षणासु चतसृषु मार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृत्यष्टकं वर्जयित्वा शेषाणामेकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धकानां भागो नास्ति । 'ओघव्व' इत्यादि, शेषाणां पञ्चसप्ततिप्रकृतीनां बन्धका ओघवदभिधेयाः, तदित्थम्–मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कौदारिकशरीरनामलक्षणस्य प्रकृतिनवकस्य बन्धकानामनन्तबहुभागा वर्तन्ते, अनन्ततमभागश्च तदबन्धकानाम् । वैक्रियषट्कजिननामबन्धका अनन्ततमभागप्रमाणाः, तदबन्धकाश्चाऽनन्तबहुभागप्रमाणाः, तिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिहुण्डकसंस्थानदुःस्वरवर्जस्थावरनवकाऽसातवेदनीयनपुंसकवेदशोकाऽरतिनीचैर्गोत्ररूपाणामेकेन्द्रियप्रायोग्याणामष्टादशप्रकृतीनां बन्धकाः संख्यातबहुभागेषु ज्ञेयाः, संख्याततमभागे च तदबन्धकाः । सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीवेदपुरुषवेदमनुष्यगतिद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानपञ्चकमनुष्यानुपूर्वीखगतिद्विकत्रसदशकदुःस्वरातपोद्योतपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाणामेकचत्वारिंशत्प्रकृतीनां बन्धकाः संख्याततमे भागे वर्तन्ते, संख्यातबहुभागेषु च तदबन्धकाः, भावना पुनरत्रौघानुसारेण कार्या ॥१७२॥

अधुना तेजोलेश्यामार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागानाह—

तेऊअ एगतीसाधुवपरघूसासबायरतिगाणं ।
णत्थि असंखा भागा हवेज्ज सोलधुवबधीणं ॥१७३॥
एगिंदियजोग्गअसुहतमपचदसउरलाण सखंसा ।
तित्थाहारदुगाण असंखंसोऽण्णाण सखंसो ॥१७४॥

(प्रे०) 'तेऊअ' इत्यादि, तेजोलेश्यामार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपाः षोडशप्रकृतीर्विहाय शेषाणामेकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां पराघातोच्छ्वासबादरत्रिकरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्य च बन्धकानां भागो नास्ति । 'असंख' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयादिषोडशप्रकृतीनां बन्धका असंख्यातेषु भागेषु सन्ति, यतो मार्गणायामस्यां मिथ्यादृष्टिजीवा इतरेषामपेक्षयाऽसंख्येयगुणा वर्तन्ते, ते च सर्वे ध्रुवबन्धिप्रकृतीरेता बध्नन्ति । 'एगिंदिय' इत्यादि, तिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिहुण्डकसंस्थानस्थावरदुःस्वरवर्जास्थिरपञ्चकाऽसातवेदनीयनपुंसकवेदशोकाऽरतिनीचैर्गोत्ररूपाणामेकेन्द्रियप्रायोग्याऽशुभतमपञ्चदशप्रकृतीनामौदारिकशरीरनाम्नश्च बन्धकाः संख्येयेषु भागेषु ज्ञातव्याः, संख्याततमे च भागे तदबन्धकाः, भावना त्वित्थम्–प्रस्तुतमार्गणायां देवराशिः प्रधानः, मार्गणागतजीवेषु देवानां संख्यातबहुभागवर्तित्वात्, ते चौदारिकदेहं निरन्तरं बध्नन्ति, तथा तेषां चाशुभतमस्थानमेकेन्द्रियप्रायोग्यम्, अतः तत्प्रायोग्य-

बन्धकालस्तदितरबन्धकालापेक्षया संख्यातगुणः, तस्मादौदारिकशरीरस्यैकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतीनां च बन्धकाः संख्यातबहुभागेषु वर्तन्ते । 'तित्थ' इत्यादि, तीर्थकृन्नामाहारकद्विकलक्षणस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धका असंख्येयतमभागप्रमाणा ज्ञेयाः, अत्रैतत्प्रकृतित्रयबन्धयोग्यतावतां तदितरस्योऽसंख्येयगुणहीनत्वात् । 'ऽण्णाण' इत्यादि, सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीपुरुषवेदद्वयदेवगतिमनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियद्विकसंहननषट्कसंस्थानपञ्चकदेवमनुष्यानुपूर्वीखगतिद्विकत्रसस्थिरषट्कदुःस्वरातपोद्योतोच्चैर्गोत्ररूपाणां सप्तत्रिंशच्छेषप्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयतमभागप्रमिता विद्यन्ते, संख्यातबहुभागप्रमाणाश्चाऽबन्धकाः, घटना प्राग्वत्कार्या ॥९७३-४॥

सम्प्रति पद्मलेश्यामार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागान् निरूपयन्नाह—

पउमाए लेसाए भागो ण हवेज्ज एगतीसाए ।
धुवबंधीण पणिंदियपरघूसासतसचउगाणं ॥९७५॥
संखेज्जइमो भागो छण्ह सायाइगाण बोद्धव्वो ।
छण्ह असायाईण णायव्वा संखिया भागा ॥९७६॥
सोलधुवपुमसुरविउवदुगपढमागिइसुखगइउच्चाणं ।
सुहगतिगस्स असंखियभागाऽण्णेसि असंखंसो ॥९७७॥

(प्रे०) 'पउमाए' इत्यादि, पद्मलेश्यामार्गणाया मिथ्यात्वमोहनीयादिषोडशप्रकृतिवर्जशेषैकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां पञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपाणां सप्तानां प्रकृतीनां बन्धकानां भागो नास्ति, एतन्मार्गणास्थैः सर्वैर्जीवैः सततं बध्यमानत्वात्तासाम् ।

'संखेज्जइमो' इत्यादि, सातवेदनीयहास्यरतिस्थिरशुभयशःकीर्तिरूपाणां षण्णां प्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयतमे भागेऽधिगम्याः, अबन्धकाश्च संख्यातबहुभागेषु, हेतुस्तु पूर्ववज्ज्ञातव्यः । 'छण्ह' इत्यादि, असातवेदनीयशोकाऽरत्यस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिरूपाणां षण्णां प्रकृतीनां बन्धकाः संख्यातेषु भागेषु ज्ञातव्याः, संख्याततमे च भागे तदबन्धकाः । 'सोल' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपाणां षोडशप्रकृतीनां पुरुषवेदसुरद्विकवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानसुखगत्युच्चैर्गोत्रसुभगसुस्वरादेयरूपाणामेकादशप्रकृतीनां च बन्धका असंख्येयतमबहुभागप्रमाणा वेदयितव्याः, षोडशध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धका मिथ्यादृष्टयो मार्गणागतजीवेष्वसंख्येयबहुभागेषु वर्तन्ते, तथैकादशाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धकतया मार्गणागतजीवानामसंख्येयबहुभागेषु वर्तमानास्तिर्यञ्चः सन्तीति कृत्वोक्तप्रमाणाः कथिताः। तदबन्धकाश्चाऽसंख्याततमभागेऽवसेयाः । 'ऽण्णेसि' इत्यादि, नपुंसकस्त्रीवेदद्वयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयौदारिकद्विकाऽऽहारकद्विकसंहननषट्कप्रथमसंस्थानवर्जसंस्थानपञ्चकतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयाऽशुभविहायोगतिदुर्भगदुःस्वरानादेयोद्योतजिननामनीचैर्गोत्ररूपाणामष्टाविंशतिप्रकृतीनां बन्धका असंख्येयतमे भागे वर्तन्ते, यतो हि प्रकृतमार्गणागताऽसंख्येयबहुभागप्रमाणतिर्यग्भिरेताः प्रकृतयो न बध्यन्ते ।

प्रस्तुतमार्गणागतानां तेषां देवगतिप्रायोग्यबन्धकत्वात् , तदबन्धकाः पुनरसंख्यातबहुभागप्रमाणा अवसातव्याः ॥९७५-७॥

साम्प्रतं शुक्ललेश्यामार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागान् विभणिषुराह

धुवबंधिपुमुच्चाणं सोलसणामाण सुरदुगाईणं ।
पयडीण य सुक्काए असंखभागा मुणेयव्वा ॥९७८॥
संखेज्जइमो भागो छण्हं सायाइगाण संखसा ।
छण्ह असायाईण असंखभागोऽत्थि सेसाण ॥९७९॥

(प्रे०) 'धुवबंधि'इत्यादि, शुक्ललेश्यामार्गणायां सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां पुरुषवेदोच्चैर्गोत्रप्रकृतिद्वयस्य सुरद्विकपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानशुभखगतिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्कसुभगत्रिकरूपाणां षोडशदेवप्रायोग्यनामप्रकृतीनां च बन्धका असंख्यातबहुभागेषु ज्ञातव्याः, भावनाविधिस्त्वेवम्–प्रस्तुतमार्गणायां तिर्यग्राशिः प्रधानो वर्तते, तस्मिन्नपि मिथ्यादृग्राशेः प्राधान्यमस्ति. शुक्ललेश्यागतजीवानामसंख्यातबहुभागप्रमाणैस्तैर्जीवैरेताः प्रकृतयो निरन्तरं बध्यन्ते, अतोऽत्र निरुक्तप्रकृतिबन्धकानामसंख्यातबहुभागा उक्ता इति। 'संखेज्जइमो' सातवेदनीयहास्यरतिस्थिरशुभयशःकीर्तिरूपाणां षण्णां प्रकृतीनां बन्धकाः संख्याततमे भागे वर्तन्ते, एतत्प्रतिपक्षभूतप्रकृतिबन्धकालापेक्षया प्रकृतीनामासां बन्धकालस्य संख्यातभागमात्रत्वात् । 'संखंसा' इत्यादि, असातवेदनीयशोकाऽरत्यस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिलक्षणानां षण्णां प्रकृतीनां बन्धकाः संख्यातबहुभागेषु वर्तन्ते, एतत्प्रतिपक्षप्रकृतिबन्धकालापेक्षया प्रकृतप्रकृतिबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । 'असंखभागो' इत्यादि, उक्तव्यतिरिक्तशेषप्रकृतीनां बन्धका असंख्याततमे भागे विद्यन्ते, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः–स्त्रीनपुंसकवेदद्वयं मनुष्यद्विकमौदारिकद्विकमाहारकद्विकं संहननषट्कं द्वितीयादिसंस्थानपञ्चकमशुभखगतिदुर्भगत्रिकं जिननाम नीचैर्गोत्रं चेति पञ्चविंशतिः, भावना पुनरिहेत्थं विज्ञेया–प्रस्तुतमार्गणायां जीवा असंख्यातसूचिश्रेणिगतप्रदेशप्रमाणाः सन्ति, यतस्तेष्वसंख्यबहुभागप्रमाणास्तिर्यग्जीवा वर्तन्ते, अत्र जिननामबन्धका अद्धापल्योपमस्याऽसंख्याततमभागगतसमयप्रमितदेवाः संख्यातप्रमाणमनुष्याश्च विद्यन्ते,अद्धापल्योपमाऽसंख्याततमभागगतसमयास्त्वसंख्यातसूचिश्रेणिगतप्रदेशापेक्षयाऽसंख्यातभागप्रमाणा एव,अतोऽसंख्याततमभागे जिननामबन्धकाः प्राप्यन्ते । आहारकद्विकस्य बन्धका अप्रमत्तसंयता वर्तन्ते,ते च मार्गणागतजीवापेक्षयाऽसंख्यतमे भागे वर्तन्ते । मनुष्यद्विकादिशेषप्रकृतीस्तु देवा एव बध्नन्ति, ते चाऽत्र शेषमार्गणागतजीवाऽपेक्षयाऽसंख्याततमे भागे सन्ति, प्रस्तुतमार्गणायां तिर्यग्भिन्नजीवानामसंख्याततमभाग एव सत्त्वात् , अतो निरुक्तभागे तद्बन्धका उक्ता इति । अत्र शेषभागाः पुनरबन्धकानां ज्ञेयाः ॥९७८-९॥

साम्प्रतं शुक्ललेश्यामार्गणायां मतान्तरं दर्शयति

अण्णे असंखभागा गुणयालीसधुवबंधिणोण तहा ।
णरदुरलदुगपणिदियपरघाऊसासतसचउक्काण ॥९८०॥ (गीति.)

छअसायाइसुआगिइखगइसुहगतिगपुमुच्चवइराण ।
सखसा सुरविउव्वाहारदुगाण असंखसो ॥९८१॥
सेसाण संखभागो ····· ·· · ··· ········· ··· ।

(प्रे०) 'अण्णे' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकं विहाय शेषाणामेकोनचत्वारिंशद्-ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां मनुष्यद्विकौदारिकद्विकपञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपाणामेकादश प्रकृतीनां च बन्धका असंख्यातबहुभागेषु परे वदन्ति, तत्र परेषामिदमाकूतम्–शुक्ललेश्यामार्गणायां प्रधानतया देवराशिः, शेषजीवापेक्षया हि सर्वे देवाः प्रकृतमार्गणायामसंख्यातगुणा वर्तन्ते, ते चाधिकृतप्रकृतीरनवरतं बध्नन्ति, तस्मादत्राऽसंख्यातबहुभागेषु निरुक्तप्रकृतिबन्धकाः प्राप्यन्ते । 'छअसायाइ' इत्यादि, असातवेदनीयाऽऽदिप्रकृतिषट्कस्य समचतुरस्रसंस्थानशुभखगतिसुभगत्रिकपुरुषवेदोच्चैर्गोत्रवज्रर्षभनाराचसंहननरूपस्य प्रकृत्यष्टकस्य च बन्धकाः संख्येयबहुभागेषु सन्ति, असातवेदनीयादिप्रकृतिषट्कस्य भावना परमतेऽप्यनन्तरोक्तवद् विधेया । समचतुरस्रसंस्थानादिप्रकृत्यष्टकस्य तु भावना पुनरेवम्–प्रकृतमार्गणायां देवराशिः प्रधानोऽस्ति, तत्राऽपि सम्यग्दृष्टिदेवराशेः प्राधान्यमस्ति, ते हि संख्यातबहुभागेषु वर्तन्ते,तथा ते सम्यग्दृष्टिदेवा एतत्प्रकृत्यष्टकमनवरतं बध्नन्ति, अतः संख्यातबहुभागेषु प्रकृतप्रकृत्यष्टकबन्धका अभिहिताः । 'सुर' इत्यादि, सुरद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकरूपाणां षण्णां प्रकृतीनां बन्धका असंख्येयतमे भागेऽवसातव्याः, तद्यथा–अत्र सुरद्विकवैक्रियद्विकयोर्बन्धकास्तिर्यङ्मनुष्या वर्तन्ते, आहारकद्विकस्य च केचनाऽप्रमत्तसंयता बन्धका भवन्ति, प्रत्येकं च तेऽत्र देवराशिप्रधानत्वादसंख्येयतमे भागे प्राप्यन्ते, तस्मात्प्रकृतप्रकृतिबन्धका निरुक्तभागेऽभिहिताः । 'सेसाण' इत्यादि, उक्तव्यतिरिक्तानां शेषप्रकृतीनां बन्धकाः संख्याततमे भागेऽधिगन्तव्याः, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः–मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्करूपा अष्टौ ध्रुवबन्धिप्रकृतयः सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीनपुंसकवेदद्वयद्वितीयादिसंहननपञ्चकद्वितीयादिसंस्थानपञ्चकाऽशुभखगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिदुर्भगत्रिकजिननामनीचैर्गोत्ररूपाश्चतुर्विंशतिरध्रुवबन्धिप्रकृतयश्चेति । अत्र सातवेदनीयादिप्रकृतिषट्कस्य भावना प्राग्वत्कार्या । जिननामविषये भावना पुनरेवम्-मार्गणायामस्यां परमतेन देवराशिः प्रधानतया स्वीकृतो वर्तते, देवराशौ हि सम्यग्दृष्टिदेवाःसंख्यातबहुभागेषु वर्तन्ते,तेषु च जिननामबन्धकाः संख्याततमभागप्रमाणा एव सन्ति, अतो जिननामबन्धकानां संख्याततमो भागोऽभिहितः । शेषप्रकृतीनां भावनाविधिस्त्वेवम् शुक्ललेश्यामार्गणायां परे देवराशिं प्रधानतया स्वीकुर्वन्ति, तत्राऽपि सम्यग्दृष्टिदेवाः संख्यातबहुभागेषु वर्तन्ते संख्याततमे भागे च मिथ्यादृष्टिदेवाः, ते च मिथ्यादृष्टिदेवाः शेषप्रकृतीर्बध्नन्ति, अतो निरुक्तप्रकृतिव्यतिरिक्तशेषप्रकृतिबन्धकाः संख्याततमे भागे भणिता इति विज्ञेयम् । अत्रापि शेषभागाः पुनरबन्धकानां ज्ञेयाः ॥९८०-१॥ साम्प्रतमभव्यादिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकसत्कभागानभिधित्सुकाम आह

············ ··· अभवे मिच्छअमणेसु भागो णो ।
धुवबंधीणियरेसिं सप्पाउग्गाण ओघव्व ॥९८२॥

(प्रे० 'अभवे' इत्यादि, अभव्यमिथ्यात्वाऽसंज्ञिलक्षणासु तिसृषु मार्गणासु ज्ञानावरणीयप्रभृतिसप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धकानां भागो नास्ति । 'सेसाणं' इत्यादि, उक्तव्यतिरिक्तशेषस्वप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धका ओघवद् बोद्धव्याः । ते च ओघत एव द्रष्टव्याः ॥९८२॥

अथ क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागानाह–

ओहिव्व वेअगे खलु बारससायाइअडकसायाणं ।
वइरणरसुरुरलविउवआहारगदुगजिणाण णऽण्णेसिं ॥९८३॥ (गीतिः)

(प्रे० 'ओहिव्व' इत्यादि, क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां सातवेदनीयाऽसातवेदनीयहास्यरतिशोकारतिस्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्त्यप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कवज्रर्षभनाराचसंहननमनुष्यद्विकसुरद्विकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकजिननामरूपाणां द्वात्रिंशत्प्रकृतीनां बन्धका अवधिज्ञानमार्गणावद् वक्तव्याः । तदेवम्–सातवेदनीयादिषट्प्रकृतिबन्धकाः संख्याततमे भागे वर्तन्ते, अबन्धकाश्च संख्यातेषु भागेषु । असातवेदनीयादिप्रकृतिषट्कबन्धकाः संख्यातबहुभागेषु वर्तन्ते, संख्याततमे भागे च तदबन्धकाः । देवद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकजिननामप्रकृतिबन्धका असंख्येयतमभागप्रमाणा वर्तन्ते, असंख्यातबहुभागप्रमाणाश्चाऽबन्धकाः । अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कमनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननप्रकृतिबन्धका असंख्येयबहुभागप्रमाणा वेदयितव्याः, असंख्याततमे भागे च तदबन्धकाः । भावना पुनरिहाऽवधिदर्शनमार्गणावदाधेया । 'ण' इत्यादि, ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां पुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतित्रसचतुष्कसुभगसुस्वरादेयपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाणां चतुर्दशप्रकृतीनां च बन्धकानां भागो नास्ति, मार्गणायामस्यां वर्तमानैः सर्वैर्जीवैर्बध्यमानत्वात् ॥९८३॥

अथ मिश्रसम्यक्त्वमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागान् निरूपयितुमाह–

मीसे सखेज्जइमो भागो सायाइगाण छण्हऽत्थि ।
छण्ह असायाईण संखियभागा मुणेयव्वा ॥९८४॥
देवविउव्वदुगाण असखभागो असखभागाऽत्थि ।
णरुरलदुगवइराणं भागो ण हवेज्ज सेसाण ॥९८५॥

(प्रे०) 'मीसे' इत्यादि, मिश्रसम्यक्त्वमार्गणायां सातवेदनीयहास्यरतिस्थिरशुभयशःकीर्तिरूपाणां षण्णां प्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयतमे भागे ज्ञातव्याः, संख्यातबहुभागेषु च तदबन्धकाः । 'छण्ह' इत्यादि, असातवेदनीयशोकाऽरत्यस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिरूपाणां षण्णां प्रकृतीनां बन्धकाः संख्यातबहुभागप्रमिता वर्तन्ते, संख्याततमे भागे च तदबन्धकाः, भावना पुनरिह पूर्ववदवसातव्या । 'देव' इत्यादि, देवद्विकवैक्रियद्विकरूपाणां चतसृणां प्रकृतीनां बन्धका असंख्येयतमे भागे सन्ति, यतो [illegible] देवराशिः, ते चेतरेषामपेक्षया-

ऽसङ्ख्येयगुणाः, तांश्च देवानृते येऽपरे तिर्यग्मनुष्याः मार्गणायामस्यां वर्तन्ते, त एव प्रकृतिचतुष्टय-मेतद् बध्नन्ति, तद्बन्धकाश्चाऽसङ्ख्येयबहुभागप्रमाणा बोद्धव्याः। 'असंखभागा' इत्यादि, मनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्य बन्धकानामसंख्येयबहुभागा वर्तन्ते, मार्गणागताऽसंख्यबहुभागेषु वर्तमानैर्देवैरेताः प्रकृतयो निरन्तरं बध्यन्त इति कृत्वा। 'ण' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृत्यष्टकवर्जानामेकोनचत्वारिंशज्ज्ञानावरणीयादिध्रुवबन्धि-प्रकृतीनां पुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानशुभविहायोगतित्रसचतुष्कसुभगसुस्वरादेयपरा-घातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाणां चतुर्दशप्रकृतीनां च बन्धकानां भागो नास्ति, सर्वैरत्र सतत बध्यमान-त्वात् ॥९८४-५॥

साम्प्रत सास्वादनमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागान् दर्शयति—

सासाणे णो भागो छायालीसधुववंधिपयडीण ।
तह पंचिदियपरघाऊसासाणतसचउरस्स ॥९८६॥
तिरिपाउग्गअसुहतमसोलसपयडीण अत्थि सखसो ।
देवविउव्वदुगाणं हवन्ति भागो असखयमो ॥९८७॥
होअन्ति बधगा खलु असखभागा उरालियदुगस्स ।
सखसो सेसाण तेवीसाए मुणेयव्वा ॥९८८॥

(प्रे०) 'सासाणे' इत्यादि, सास्वादनमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयवर्जानां षट्चत्वारिंशद्-ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां तथा पञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपाणां सप्तानां प्रकृतीनां बन्ध-कानां भागो नास्ति, मार्गणायामस्यां स्थितैः सकलैर्जीवैरनवरतं बध्यमानत्वात्। 'तिरि' इत्यादि, तिर्यग्द्विकपञ्चमसंस्थानपञ्चमसंहननाऽशुभखगत्यस्थिरषट्कस्त्रीवेदाऽसातवेदनीयशोकाऽरतिनीचैर्गोत्र-रूपाणां तिर्यक्प्रायोग्याऽशुभतमानां षोडशप्रकृतीना बन्धकाः संख्यातेषु भागेषु सन्ति, प्रकृती-नामासां बन्धकालस्य तद्विरोधिप्रकृतिबन्धकालात्सङ्ख्यातगुणाऽधिकत्वेन तद्विरोधिप्रकृतिबन्ध-कानामपेक्षयैतत्प्रकृतिबन्धकानां संख्येयगुणतया प्राप्यमाणत्वात्। 'देवविउव्व' इत्यादि, सुर-द्विकवैक्रियद्विकलक्षणस्य प्रकृतिचतुष्कस्य बन्धका असंख्येयतमे भागे भवन्ति, यतो हि मार्गणाया-मस्या प्रकृतीनामासां बन्धविधायिनस्तिर्यग्मनुष्या एव भवन्ति, ते च देवादिभ्योऽसंख्यातमभा गप्रमाणा एव विद्यन्ते। "होअन्ति" इत्यादि, औदारिकद्विकस्य बन्धका असंख्यातेषु भागेषु भवन्ति, यतो मार्गणायामस्यामौदारिकद्विकबन्धका मुख्यतया देवा एव वर्तन्ते; ते च गतित्रयवर्ति-सास्वादनजीवापेक्षयाऽसङ्ख्यातगुणा वर्तन्ते। सखंसो' इत्यादि, सातवेदनीयहास्यरतिपुरुषवेदमनुष्य-गतिसमचतुरस्रादिसंस्थानचतुष्कवज्रर्षभनाराचादिसंहननचतुष्कमनुष्यानुपूर्वीशुभविहायोगतिस्थिर-षट्कोद्योतोच्चैर्गोत्ररूपाणां त्रयोविंशतिप्रकृतीना बन्धकाः सङ्ख्याततमे भागे वर्तन्ते। शेषाः पुनरबन्धका ज्ञेयाः ॥९८६-७-८॥ तदेव मार्गणागतजीवापेक्षया-ऽऽयुर्वर्जोत्तरप्रकृतीना भागप्ररूपणा निरूपिता।

साम्प्रतं सकलजीवानाश्रित्य मार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागानभिधातुकामो ग्रन्थकारस्तिर्यगोघप्रमुखासु कतिपयासु मार्गणासु तान्निरूपयति

तिरिये तह एगिंदियणिगोअवणकायजोगणपुमेसु ।
दुअणाणाजयअणयणभविमिच्छेसुं असण्णिम्मि ॥९९॥
अहिकिच्च सव्वजीवा सप्पाउग्गाण आउवज्जाण ।
सव्वेसिं पयडीण विण्णेया बंधगोघव्व ॥६९०॥

(प्रे०) "तिरिये" इत्यादि, तिर्यगोघैकेन्द्रियौघसाधारणवनस्पतिकायौघवनस्पतिकायौघकाययोगौघनपुंसकवेदमत्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽसंयमाचक्षुर्दर्शनभव्यमिथ्यात्वाऽसंज्ञिरूपासु त्रयोदशसु मार्गणासु सर्वान् जीवानधिकृत्याऽऽयुष्कचतुष्कवर्जानां स्वप्रायोग्याणां सर्वासां प्रकृतीनां बन्धका ओघवद् विज्ञेयाः, तद्यथा–सप्तचत्वारिंशज्ज्ञानावरणीयादिध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्च बन्धका जीवा अनन्तभागेषु विद्यन्ते, यथायोगं नरकद्विकसुरद्विकवैक्रियद्विकाऽऽहारकद्विकजिननामप्रकृतिबन्धका अनन्ततमे भागे भवन्ति, तिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिहुण्डकसंस्थानदुःस्वरवर्जस्थावरनवकाऽसातवेदनीयनपुंसकवेदशोकाऽरतिनीचैर्गोत्ररूपाणामेकेन्द्रियप्रायोग्याणामष्टादशप्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयबहुभागप्रमाणा ज्ञेयाः, सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीवेदमनुष्यगतिद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसमचतुरस्रादिसंस्थानपञ्चकमनुष्यानुपूर्वीखगतिद्विकत्रसदशकदुःस्वरातपोद्योतश्वासोच्छ्वासपराघातोच्चैर्गोत्ररूपाणां द्विचत्वारिंशत्प्रकृतीनां बन्धकाः सर्वजीवानां संख्याततमे भागे वर्तन्ते, भावना पुनरिहौघवद् वेदयितव्याः ।

अत्र हेत्ववगतिसुगमार्थं काश्चित् व्याप्तयो निरूप्यन्ते ।

प्रथमव्याप्तिः–यस्यां मार्गणायां वर्तमाना जीवा यदि सकलजीवेभ्योऽनन्ततमभागप्रमाणाः स्युस्तर्हि तत्र बन्धप्रायोग्याणां सर्वासां प्रकृतीनां बन्धका अनन्ततमे भाग एव भवन्ति ।

द्वितीयव्याप्तिः–यदि समस्तजीवापेक्षयाऽसंख्येयतमभागप्रमाणा जीवा यस्यां मार्गणायामुपलभ्येरन्, तर्हि तत्रैकेन्द्रियैर्बध्यमानप्रकृतीनां बन्धका असंख्येयतमभागप्रमाणा एव भवन्ति, अत्रापि यासां प्रकृतीनां बन्धकाः संज्ञ्यसंज्ञिभेदभिन्नाः पञ्चेन्द्रिया एव ते तु तद्बन्धकत्वेन सर्वजीवापेक्षातोऽनन्ततमभागप्रमाणा एव भवन्ति ।

तृतीया व्याप्तिः–यस्यां मार्गणायां वर्तमाना जीवाः सर्वेषां जीवानां संख्येयतमे भागे विद्यन्ते, तत्रैकेन्द्रियैर्बध्यमानप्रकृतिबन्धकाः संख्येयतमभागे प्राप्यन्ते, एकेन्द्रियैरबध्यमानप्रकृतीनां बन्धकानां संज्ञ्यसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां सर्वजीवानपेक्ष्यानन्ततमभागप्रमाणत्वमवसातव्यम् ।

चतुर्थी व्याप्तिः–यस्यां मार्गणायां सर्वजीवानां संख्येयेष्वसंख्येयेषु वा भागेषु प्राणिनो विद्येरन् तर्हि तस्यां मार्गणायामेकेन्द्रियप्रायोग्याणामशुभतमानामष्टादशप्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयेषु

भागेषु, शेषैकेन्द्रियैर्वध्यमानप्रकृतिबन्धकाः संख्येयतमे भागे, यासां प्रकृतीनां बन्धकाः संज्ञिनोऽसंज्ञिनश्च पञ्चेन्द्रिया एव तासां बन्धकाः अनन्ततमे भागेऽवाप्यन्ते, तथा ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्च बन्धका जीवा मार्गणागतजीवसंख्यावदभिधेयाः । इदमुक्तं भवति—मार्गणा यदि संख्येयतमबहुभागप्रमितप्राणिमती, तदा संख्येयबहुभागप्रमाणा असंख्येयबहुभागप्रमितप्राणिमती तदाऽसंख्येयतमबहुभागप्रमाणा इत्यादिरूपेण ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्च बन्धविधायिनो बोद्धव्याः ॥९८९ ९०॥

अथ बादरैकेन्द्रियमार्गणासु बन्धकानां भागानाह

बायरसपज्जेगिंदियणिगोअभेएसु खलु असखंसो ।
सखंसो असमत्तगसुहुमेगिंदियणिगोएसु ॥९९१॥

(प्रे०) "बायर" इत्यादि, ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेन तिसृषु बादरैकेन्द्रियमार्गणासु तिसृषु च बादरसाधारणवनस्पतिकायमार्गणासु स्वबन्धप्रायोग्यसप्ताधिकशतप्रकृतीनां बन्धका जीवाः सर्वजीवानामसंख्याततमे भागे वर्तन्ते मार्गणास्वासु वर्तमानानां जीवानां सकलजीवानामपेक्षयाऽसंख्येयतमभागप्रमाणत्वात् । अपर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियाऽपर्याप्तसूक्ष्मसाधारणवनस्पतिकायमार्गणाद्वय आयुर्वर्जस्वप्रायोग्यसप्तोत्तरशतप्रकृतीनां बन्धकाः सर्वेषां जीवानां संख्याततमे भागे वर्तन्ते, सर्वजीवापेक्षातः संख्येयतमभागे वर्तमानत्वान्मार्गणयोरनयोर्विद्यमानानां जीवानाम् ।.९९१॥

अथ सूक्ष्मनिगोदादिमार्गणासु बन्धकानां भागान् भणति

सुहुमणिगोएगिंदियआहारेसु धुवबंधिउरलाणं ।
होअन्ति असखंसा सेसाणोघव्व णायव्वा ॥९९२॥

(प्रे०) "सुहुम" इत्यादि, सूक्ष्मसाधारणवनस्पतिकायौघसूक्ष्मैकेन्द्रियौघाहारकलक्षणासु तिसृषु मार्गणासु सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्च बन्धकाः सर्वजीवानामसंख्यातबहुभागेषु ज्ञातव्याः, मार्गणास्वासु हि वर्तमाना जीवाः सर्वेषां जीवानामपेक्षयाऽसंख्यातबहुभागेषु वर्तन्ते । 'सेसाण'' इत्यादि, अभिहितातिरिक्तशेषप्रकृतीनामासु मार्गणासु बन्धका ओघवद् बोद्धव्याः । तदेवम्—आहारकमार्गणायां वैक्रियषट्काहारकद्विकजिननामप्रकृतीनां बन्धकाः समस्तजीवापेक्षयाऽनन्ततमे भागे भवन्ति, तथेह प्रोक्तासु तिसृष्वपि मार्गणास्वेकेन्द्रियप्रायोग्याऽष्टादशाशुभतमप्रकृतीनां बन्धकाः सर्वजीवेभ्यः संख्येयबहुभागेषु ज्ञातव्याः । सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीवेदपुरुषवेदमनुष्यगत्येकेन्द्रियजातिवर्जजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कप्रथमादिसंस्थानपञ्चकमनुष्यानुपूर्वीखगतिद्विकत्रसदशकदुःस्वरातपोद्योतश्वासोच्छ्वासपराघातोच्चैर्गोत्रप्रकृतीनां च बन्धका जीवाः संख्येयतमे भागे विज्ञेयाः । अत्र भावना पुनरोघतोऽनुसंधेया ॥९९२॥

अथ पर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियादिमार्गणासु बन्धकानां भागान् कथयति

पज्जसुहुमएगिंदियणिगोअउरलेसु अत्थि सखंसा ।
धुवबंधिउरालाणं ओघव्व हवेज्ज सेसाणं ॥९९३॥

(प्रे०) 'पज्ज' इत्यादि, पर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्तसूक्ष्मसाधारणवनस्पतिकायौदारिककाययोगरूपासु तिसृषु मार्गणासु सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्च बन्धकाः सर्वेभ्यो जीवेभ्यः संख्यातबहुभागेषु वर्तन्ते, मार्गणास्वासु स्थिता जीवाः सर्वजीवापेक्षया संख्यातबहुभागप्रमाणा इति कृत्वा । "ओघव्व" इत्यादि, अत्रोक्तप्रकृत्यतिरिक्तप्रकृतीनां बन्धका ओघवद् विभावनीयाः, तद्यथा–एकेन्द्रियप्रायोग्याऽशुभतमाऽष्टादशप्रकृतिबन्धका मार्गणास्वासु सर्वजीवानां संख्यातबहुभागेषु वर्तन्ते, सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीपुरुषवेदद्वयमनुष्यगतिद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कप्रथमादिसंस्थानपञ्चकमनुष्यानुपूर्वीखगतिद्विकत्रसदशकदुःस्वरातपोद्योतश्वासोच्छ्वासपराघातोच्चैर्गोत्ररूपाणामेकचत्वारिंशत्प्रकृतीनां बन्धकाश्च सङ्ख्याततमे भागे वर्तन्ते । औदारिककाययोगमार्गणायां पुनर्नरकद्विकसुरद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकजिननामरूपाणां नवानां प्रकृतीनां बन्धकाः सर्वजीवानामनन्ततमे भागेऽवसेयाः, भावना पुनरत्रौघानुसारेण भाव्या ॥९९३॥

अथौदारिकमिश्रमार्गणायामाधुत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागान् दर्शयन्नाह

ओरालमीसजोगे देवविउवदुगजिणाणणंतंसो ।
संखेज्जइमो भागो सप्पाउग्गाण सेसाण ॥९९४॥

(प्रे०) "ओराल" इत्यादि; औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां देवद्विकवैक्रियद्विकजिननामरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्य बन्धका अनन्ततमभागप्रमाणा बोद्धव्याः, यतो हि मार्गणायामस्यां सम्यग्दृष्टय एवैताः प्रकृतीर्बध्नन्ति, ते च संख्येयप्रमाणत्वेन सर्वजीवानामनन्ततमभागप्रमाणा एव सन्ति । "संखेज्जइमो" इत्यादि, एतद्व्यतिरिक्तस्वप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धकाः सकलजीवानां संख्येयतमभागप्रमिता वेदयितव्याः, मार्गणाया अस्याः समस्तजीवानां संख्याततमभागप्रमाणत्वात् । ताश्चेमाः शेषस्वप्रायोग्यप्रकृतयः–सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयो वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयजातिपञ्चकौदारिकद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कतिर्यङ्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतोच्छ्वासपराघातगोत्रद्वयरूपाः षष्टिरध्रुवबन्धिप्रकृतयश्चेति ॥९९४॥

अथ कार्मणकाययोगानाहारकमार्गणयोराधुत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागान् कथयति

कम्माणाहारेसुं देवविउवदुगजिणाणऽणंतंसो ।
णेया असंखभागो सप्पाउग्गाण सेसाणं ॥९९५॥

(प्रे०) "कम्मा" इत्यादि, कार्मणकाययोगाऽनाहारकमार्गणयोर्देवद्विकवैक्रियद्विकजिननामकर्मणां बन्धकाः सकलजीवानामनन्ततमे भागे वर्तन्ते, यतो देवद्विकवैक्रियद्विकप्रकृतिचतुष्टयं सम्यग्दृष्टितिर्यङ्मनुष्या बध्नन्ति । जिननामकर्म च देवभवाच्च्युत्वा मनुष्येषूत्पद्यमानाः सम्यग्दृष्टयो मनुष्यभवाच्च्युत्वा देवभवे नरकभवे वा जायमानाः सम्यग्दृष्टयोऽन्तरालगतौ बध्नन्ति, ते च पुनः

समस्तजीवानामनन्ततमभागप्रमाणा एव । 'णेया' इत्यादि, एतत्प्रकृतिपञ्चकातिरिक्तस्वप्रायोग्य-शेषप्रकृतिबन्धकाः सर्वजीवानामसंख्येयतमभागे विज्ञेयाः, मार्गणयोरनयोर्वर्तमानानां जीवाना सर्वे-षामपेक्षयाऽसंख्येयभागे संभवात् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः–सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः, वेदनीय-द्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयजातिपञ्चकौदारिकद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कतिर्य-ग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासगोत्रद्विकरूपाः षष्टिप्रकृतय श्चेति ॥९९५॥

साम्प्रतं कषायमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागान् प्रतिपादयितुमाह

> चउसुं पि कसायेसुं तित्थाहारदुगविउवछक्काणं ।
> णेया अणतभागो सेसाण हवन्ति सखंसो ॥९९६॥

(प्रे०) "चउसु" मित्यादि, क्रोधमानमायालोभलक्षणासु चतसृषु कषायमार्गणासु तीर्थकृन्ना-माहारकद्विकसुरद्विकनरकद्विकवैक्रियद्विकरूपस्य प्रकृतिनवकस्य बन्धकानां सकलजीवापेक्षयाऽनन्ततमो भागो ज्ञेयः,कथमिति चेदुच्यते–जिननामाहारकद्विकरूपं प्रकृतित्रय संज्ञिपञ्चेन्द्रियजीवैरेवात्र बध्यते, वैक्रियषट्कं पुनः संज्यसंज्ञिपञ्चेन्द्रियजीवैरेव बध्यते, ते च सर्वजीवापेक्षयाऽनन्ततमे भागे वर्तन्ते । "सेसाण" इत्यादि, उक्तेतरसप्तोत्तरशतप्रकृतीना बन्धकाः संख्येयतमे भागे वर्तन्ते, मार्गणास्वासु वर्तमानानां जीवानां सकलजीवापेक्षया संख्येयतमे भागे सद्भावात् , ताश्चेमाः–सप्तचत्वारिंशद्ध्रुव-बन्धिप्रकृतयः, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यङ्मनुष्यगतिद्वयजातिपञ्चकौदारिकद्विकसंह-ननषट्कसस्थानषट्कतिर्यङ्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वा-सगोत्रद्वयरूपाः षष्टिरध्रुवबन्धिप्रकृतयश्चे ति सप्ताधिकशतशेषप्रकृतयः ॥९९६॥

इदानीमशुभलेश्यासु प्रस्तुतमाह––

> तित्थविउवछक्काण अणंतभागोऽत्थि असुहलेसासुं ।
> सेसाण सखभागो अण्णह सव्वाणऽणतसो ॥९९७॥

(प्रे०) 'तित्थ' इत्यादि, कृष्णलेश्यानीललेश्याकापोतलेश्यालक्षणासु तिसृषु मार्गणासु तीर्थकृन्नामकर्मसुरद्विकनरकद्विकवैक्रियद्विकरूपाणां सप्तानां प्रकृतीनां बन्धकाः सकलजीवानामन-न्ततमे भागे वर्तन्ते, हेतुस्तु पूर्ववज्ज्ञातव्यः । 'सेसाण'इत्यादि, उदितशेषप्रकृतीनां बन्धकाः सर्व-जीवापेक्षया संख्येयतमभागे ज्ञेयाः, मार्गणास्वासु वर्तमानाना जीवानां सकलजीवापेक्षया संख्यात-तमभागप्रमाणत्वात् । 'अण्णह' इत्यादि, भाषितेतरमार्गणासु स्वप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाः सर्वजीवा-पेक्षातोऽनन्ततमभागप्रमाणाः, सर्वजीवापेक्षयाऽनन्ततमभागप्रमाणत्वाच्छेषमार्गणागतजीवानाम् । ताश्चेमाः शेषमार्गणाः–अष्टौ नरकमार्गणाः, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्ततिर्य-क्पञ्चेन्द्रियतिरश्चीरूपा चतस्रो मार्गणाः, मनुष्यौघपर्याप्तमनुष्याऽपर्याप्तमनुष्यमानुषीरूपाश्चतस्रो मनु-

ष्यमार्गणाः, त्रिंशद् देवमार्गणाः, ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेन विकलेन्द्रियाणां नवमार्गणाः, पञ्चेन्द्रियाणां तिस्रो मार्गणाः, प्रत्येकवनस्पतिकायिकानां तिस्रो मार्गणाः, त्रसकायानां च तिस्रो मार्गणाः, ओघसूक्ष्मौघसूक्ष्माऽपर्याप्तसूक्ष्मपर्याप्तबादरौघबादराऽपर्याप्तबादरपर्याप्तभेदेन सप्त पृथ्वीकायमार्गणाः, सप्ताऽप्कायमार्गणाः, सप्ततेजस्कायमार्गणाः, सप्त वायुकायमार्गणाः, ओघसत्याऽसत्यसत्यासत्याऽसत्यामृषाभेदेन पञ्चमनोयोगमार्गणाः, पञ्चवचनयोगमार्गणाः, वैक्रियकाययोगवैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणाद्वयम्, आहारककाययोगाऽऽहारकमिश्रकाययोगमार्गणाद्वयम्, स्त्रीवेदपुरुषवेदाऽपगतवेदमार्गणात्रयम्, अकषायमार्गणा, मतिश्रुतावधिमनःपर्यवकेवलज्ञानमार्गणापञ्चकम्, विभङ्गज्ञानमार्गणा, संयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसंपराययथाख्यातदेशविरतिसंयमरूपं मार्गणासप्तकम्, चक्षुर्दर्शनावधिदर्शनकेवलदर्शनमार्गणात्रयम्, तेजःपद्मशुक्ललेश्यामार्गणात्रयम्, अभव्यमार्गणा, सम्यक्त्वौघक्षयोपशमक्षायिकौपशममिश्रसास्वादनसम्यक्त्वरूपाः षड्मार्गणाः, संज्ञिमार्गणा चेति सप्तत्रिंशदभ्यधिकशतमार्गणाः ॥९९७॥

इत्येवमुक्ता सकलजीवापेक्षया मार्गणास्वायुष्कवर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागप्ररूपणा ।

साम्प्रतमायुष्ककर्मविरहितशेषस्वप्रायोग्यप्रकृत्यबन्धकानां सकलजीवापेक्षया भागान्भावयन्नाह—

तिरिगइवणएगिंदियणिगोअतस्सुहमपज्जसुहमेसु ।
कायणपुमइअणाणअजयअणयणभवियमिच्छअमणेसुं ॥९९८॥ (गीतिः)
जाणाउगवज्जाणं अबन्धगा हुन्ति तेसिमोघव्व ।
एमेव जाणियव्वा उरलाहारेसु सव्वेसिं ॥९९९॥
णवरं आहारजुगलवेउव्वियछक्कतित्थणामाणं ।
उरले संखा भागा असंखभागाऽत्थि आहारे ॥१०००॥

(प्रे०) 'तिरि' इत्यादि, तिर्यगोघवनस्पतिकायौघैकेन्द्रियौघसाधारणवनस्पतिकायौघसूक्ष्मैकेन्द्रियौघसूक्ष्मसाधारणवनस्पतिकायौघपर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्तसूक्ष्मसाधारणवनस्पतिकायरूपासु काययोगौघनपुंसकवेदमत्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽसंयमाऽचक्षुर्भव्यमिथ्यात्वासंज्ञिलक्षणासु च सप्तदशसु मार्गणासु यासामायुष्ककर्मवर्जानां प्रकृतीनामबन्धका वर्तन्ते, तासां ते पुनरोघवदभिधातव्याः, तदित्थम्—मत्यज्ञानश्रुताज्ञानमार्गणयोर्मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽबन्धकाः समस्तजीवानामनन्ततमे भागे प्राप्यन्ते, असंख्येयानां सास्वादनगुणस्थानकवतां तत्र प्राप्यमाणत्वात्, तैश्च बन्धविधायित्वाभावात्तस्य, शेषषट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धका न प्राप्यन्ते, सर्वैरेव तत्रस्थैर्बध्यमानत्वात्तासाम्। तिर्यगोघमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कलक्षणानां द्वादशप्रकृतीनामसंयममार्गणायां च मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकस्याऽबन्धका अनन्ततमे भागे लभ्यन्ते, यतोऽसंख्येया जीवाः सास्वादनादिदेशविरतान्तगुणस्थानस्थास्तिर्यगोघमार्गणायामसंख्येयाश्च सम्यग्दृशोऽसंयममार्गणायां तदबन्धकत्वेनाऽवाप्यन्ते, ते च समस्तजीवापेक्षयाऽनन्ततमे भाग एव ।

शेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धका उभयत्र नैव प्राप्यन्ते, सर्वैरेव बध्यमानत्वात् । नपुंसकवेदे ज्ञानावरणादिचतुर्दशसंज्वलनचतुष्कवर्जशेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनां भव्याचक्षुःकाययोगमार्गणासु सर्वध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धका अनन्ततमे भागे ज्ञेयाः, आसामबन्धकतया सम्यग्दृष्ट्यादिजीवानामेव प्राप्यमाणत्वात्तेषां च सर्वजीवानामनन्ततमे भागे एव सत्त्वादिति, वैक्रियषट्कजिननामाहारकद्विकप्रकृतीनामबन्धका उक्तमार्गणाभ्यो यासु मार्गणासु सन्ति, तासु तेऽनन्तबहुभागप्रमाणा बोद्धव्याः, तथा सर्वास्वप्युक्तासु मार्गणास्वेकेन्द्रियप्रायोग्याशुभतमाऽष्टादशप्रकृतीनामबन्धकाः संख्येयतमभागे, औदारिकशरीरनाम्नोऽबन्धका अनन्ततमभागप्रमाणा एव विज्ञेयाः, एकचत्वारिंशच्छेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां चाबन्धकाः संख्येयबहुभागेषु बोद्धव्याः, ताश्चेमाः—सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीपुरुषवेदद्वयमनुष्यगतिद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कप्रथमादिसंस्थानपञ्चकमनुष्यानुपूर्वीखगतिद्विकत्रसदशकदुःस्वरातपोद्योतपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपा एकचत्वारिंशच्छेषाऽध्रुवबन्धिप्रकृतय इति । 'एमेव' इत्यादि, औदारिककाययोगाहारकमार्गणाद्वये सर्वासां स्वप्रायोग्यप्रकृतीनामबन्धका ओघवदभिधेयाः, तदेवम्-सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकनाम्नश्चाबन्धका अनन्ततमे भागे वर्तन्ते, एकेन्द्रियप्रायोग्याशुभतमाष्टादशप्रकृतीनां संख्याततमे, आहारकद्विकादिवर्जशेषैकचत्वारिंशत्प्रकृतीनां च संख्याततमबहुभागेषु । अथाहारकद्विकवैक्रियषट्कजिननामप्रकृतीनामबन्धका अतिदेशानुसारेणाऽनन्तबहुभागप्रमाणा आयान्ति, तच्च निरुक्तमार्गणाद्वये न घटामञ्चति, यतो मार्गणागतजीवाः सर्वजीवापेक्षयौदारिकमार्गणायां संख्यातबहुभागप्रमाणा आहारकमार्गणाया त्वसंख्यातबहुभागप्रमाणास्तस्मात् 'णवर' मित्यादिनाऽपवादमुपदर्शयति—औदारिककाययोमार्गणायां प्रकृतिनवकस्याऽबन्धकाः संख्यातबहुभागप्रमाणाः, आहारकमार्गणायां तु तेऽसंख्यातबहुभागप्रमाणा वर्तन्त इति॥९९८-१०००॥

साम्प्रतं बादरैकेन्द्रियादिमार्गणास्वबन्धकानां भागानाह

सव्वेसु बायरेगिंदिणिओएसु हविरे असखंसो ।
सव्वपयडीण संखियभागो तदपज्जसुहमेसु ॥१००१॥

(प्रे०) 'सव्वेसु' इत्यादि, सर्वबादरनिगोदेषु सर्वबादरकेन्द्रियेषु चेति सर्वसंख्यया षड्मार्गणासु यासां वेदनीयद्विकादिप्रकृतीनामबन्धकाः सन्ति, तासां सर्वासां प्रकृतीनामबन्धकाः सर्वजीवापेक्षया-ऽसंख्याततमे भागे वर्तन्ते, मार्गणागतसर्वजीवाः सर्वजीवानामसंख्याततमे भाग इतिकृत्वा । 'तदपज्ज' इत्यादि, एकेन्द्रियनिगोदयोरपर्याप्तसूक्ष्ममार्गणयोरबन्धकाः पुनः सर्वजीवानां संख्याततमे भागे वर्तन्ते, मार्गणागतजीवाः सर्वजीवानां संख्याततमे भागे वर्तन्त इति कृत्वा । इमाश्च ता वेदनीयद्विकादिप्रकृतयः—वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयमनुष्यद्विकतिर्यग्द्विकजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानषट्कखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासगोत्रद्वयरूपा नवपञ्चाशद् प्रकृतय इति ॥१००१॥

अथौदारिकमिश्रमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां सकलजीवापेक्षया भागानाह

धुवबन्धिउरालाण उरालमीसे अणंतभागोऽत्थि ।
संखेज्जइमो भागो सप्पाउग्गाण सेसाण ॥१००२॥

(प्रे०) 'धुव' इत्यादि, औदारिकमिश्रमार्गणायां सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्चाऽबन्धका अनन्ततमे भागे वर्तन्ते, यतो मार्गणायामस्यामेतासां प्रकृतीनां समुद्घातवर्तिकेवलज्ञानिनः संख्येयप्रमाणतयाऽबन्धकत्वेन, अपर्याप्तावस्थायां च मिथ्यात्वस्यासंख्याताः सास्वादनादयोऽबन्धकत्वेन तथाऽनन्तानुबन्धिचतुष्करत्यानर्द्धित्रिकरूपप्रकृतिसप्तकस्यौदारिकशरीरनामनश्च सम्यग्दृष्टितिर्यग्मनुष्या एव संख्येयतयाऽबन्धकत्वेन प्राप्यन्ते, ते च सर्वे सर्वजीवानामनन्ततमे भाग एव । 'संखेज्जइमो' इत्यादि, स्वप्रायोग्यशेषप्रकृतीनामत्राऽबन्धकाः संख्याततमे भागे ज्ञातव्याः, एतन्मार्गणागतजीवानां सर्वेषामपेक्षया संख्येयतमभागप्रमाणत्वात् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयदेवमनुष्यतिर्यग्गतित्रयौदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियद्विकजातिपञ्चकसहननषट्कसंस्थानषट्कदेवमनुष्यतिर्यगानुपूर्वीत्रयखगतिद्विकत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासजिननामगोत्रद्वयरूपाश्चतुष्षष्टिः प्रकृतयः ॥१००२॥

अथ कार्मणकाययोगाऽनाहारकमार्गणयोरायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां समस्तजीवापेक्षातो भागान् भणितुमाह

कम्माणाहारेसुं धुवबंधिउरालियाणऽणंतंसो ।
भागो असंखिययमो सप्पाउग्गाण सेसाणं ॥१००३॥

(प्रे०) 'कम्मा' इत्यादि, कार्मणकाययोगाऽनाहारकाभिधयोर्मार्गणयोः सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्चाऽबन्धका अनन्ततमे भागे वर्तन्ते, मार्गणयोरनयोरासां प्रकृतीनामबन्धकतया समुद्घातावस्थायां वर्तमानानां केवलज्ञानिनां सम्यग्दृशां च क्रमेण संख्यातत्वेनाऽसंख्यातत्वेन सर्वजीवानामनन्ततमे भागे सत्त्वादिति। 'भागो' इत्यादि, एतत्प्रकृत्यतिरिक्तानां स्वप्रायोग्यप्रकृतीनामबन्धका असंख्येयतमे भागे वर्तन्ते, यतो मार्गणयोरनयोर्वर्तमाना जीवाः समस्तजीवानामसंख्याततमे भागे विद्यन्ते । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयदेवमनुष्यतिर्यग्गतित्रयजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कदेवमनुष्यतिर्यगानुपूर्वीत्रयखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासजिननामगोत्रद्वयरूपाश्चतुःषष्टिरिति ॥१००३॥

अथ कषायमार्गणासु प्रथमत्रयलेश्यामार्गणासु चायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां सकलजीवापेक्षया भागान् भणितुमाह

चउसुं कोहाईसु तिअसुहलेसासु अत्थि जेसिं तु ।
धुवबंधीण तेसिं तहा उरालस्सऽणंतंसो ॥१००४॥

मखेज्जइमो भागो सप्पाउग्गाण सेसपयडीण ।
सेसासु अणतंसो आउगवज्जाण सव्वेसिं ॥१०८५॥

(प्रे०) 'चउसु' मित्यादि, क्रोधमानमायालोभलक्षणासु चतसृषु मार्गणासु कृष्णनीलकापोतलेश्यालक्षणासु च तिसृषु मार्गणासु यासां ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धकाः सन्ति तासां ते, औदारिकशरीरनाम्नोऽबन्धकाश्च अनन्ततमे भागे वर्तन्ते, तत्पुनरित्थम्–मार्गणास्वासु मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकस्य सम्यग्दृष्टयः, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य देशविरतादयः, प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य सयताः क्रोधादिमार्गणाचतुष्टये शेषध्रुवबन्धिप्रकृतीना च यथायोगं श्रेणिगता जीवा अबन्धकत्वेन प्राप्यन्ते, तथा मार्गणास्वास्वौदारिकशरीरनाम्नोऽबन्धकतया वैक्रियशरीरनामबन्धकाः चतसृषु च क्रोधादिमार्गणासु यथायोग श्रेणिगतजीवा अपि प्राप्यन्ते, ते च प्रत्येकं सर्वेषां जीवानामनन्ततमे भागे भवन्ति । 'संखेज्जइमो' इत्यादि, अभिहितेतरस्वप्रायोग्यशेषप्रकृतीनामबन्धकाः संख्याततमभागप्रमाणा बोद्धव्याः । तास्चेमाः शेषप्रकृतयः–कषायमार्गणासु वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं गतिचतुष्कं जातिपञ्चकं वैक्रियद्विकमौदारिकाङ्गोपाङ्गमाहारकद्विकं संहननषट्कं संस्थानषट्कमानुपूर्वीचतुष्कं खगतिद्विकं त्रसदशकं स्थावरदशकमातपोद्योतपराघातोच्छ्वासजिननामानि गोत्रद्वयं चेत्यष्टषष्टिः । अशुभत्रयलेश्यामार्गणासु चाहारकद्विकं विना षट्षष्टिरिति । 'सेसासु' इत्यादि, अत्राऽभिहितशेषमार्गणासु स्वप्रायोग्यप्रकृतीनामायुष्ककर्मवर्जानामबन्धकानामनन्ततमो भागो वर्तते, मार्गणागतसर्वजीवानां सर्वजीवापेक्षयानन्ततमे भागे वर्तनादिति । ताश्चेमाः शेषमार्गणाः–तिर्यगोघ विना षट्चत्वारिंशद्गतिमार्गणाः, विकलेन्द्रियाणां नव मार्गणाः, तिस्रः पञ्चेन्द्रियमार्गणाः, ओघसूक्ष्मौघसूक्ष्माऽपर्याप्तसूक्ष्मपर्याप्तबादरौघतत्पर्याप्ताऽपर्याप्तलक्षणसप्तभेदेन सप्त पृथ्वीकायमार्गणाः, सप्ताऽप्कायमार्गणाः, सप्ततेजस्कायमार्गणाः, सप्तवायुकायिकमार्गणाः, तिस्रः प्रत्येकवनस्पतिकायमार्गणाः, तिस्रस्त्रसकायमार्गणाः, पञ्चमनोयोगमार्गणाः, पञ्चवचनयोगमार्गणाः, वैक्रियकाययोगवैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणाद्वयम्, आहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगमार्गणाद्वयम् स्त्रीवेदपुरुषवेदाऽपगतवेदमार्गणात्रयम्, अकषायमार्गणा मतिश्रुतावधिमनःपर्यवकेवलज्ञानमार्गणापञ्चकम्, विभङ्गज्ञानमार्गणा, सयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धियथाख्यातदेशविरतिसंयमरूपं मार्गणाषट्कम्, चक्षुरवधिकेवलदर्शनमार्गणात्रयम्, तेजःपद्मशुक्ललेश्यामार्गणात्रयम्, अभव्यमार्गणा, सम्यक्त्वौघक्षयोपशमक्षायिकौपशमिकमिश्रसास्वादनसम्यक्त्वरूपाः षण्मार्गणाः, संज्ञिमार्गणा चेति षट्त्रिंशदधिकशतमार्गणाः । सूक्ष्मसम्परायमार्गणायां कस्या अपि प्रकृतेरबन्धकाभावात्सा शेषमार्गणातया न गृहीता । इत्येव मार्गणासु स्वायुष्कवर्जोत्तरप्रकृतीनामबन्धकानां सकलजीवापेक्षया भागप्ररूपणा कृता ॥१००४-५॥

इदानीं मार्गणासु स्वप्रायोग्यायुश्चतुष्कबन्धकाना मार्गणागतजीवानाश्रित्य भागान् प्रतिपादयितुमाह-

सप्पाउग्गाण खलु आऊण बधगाऽत्थि ओघव्व ।
तिरिगइसव्वेगिंदियणिगोअवणकायुरालियदुगेसु ॥१००६॥ (गीति)
णपुमचउकसायेसु दुअणाणेसु अजए अचक्खुम्मि ।
तिअसुहलेसाभवियरमिच्छासण्णीसु आहारे ॥१००७॥

(प्रे०) 'सप्पाउग्गाण' मित्यादि, तिर्यगोघमार्गणयामोघसूक्ष्मौघबादरौघसूक्ष्मपर्याप्तबादरपर्याप्तसूक्ष्माऽपर्याप्तबादराऽपर्याप्तभेदभिन्नासु सप्तस्वेकेन्द्रियमार्गणासु सप्तसु च साधारणवनस्पतिकायमार्गणासु वनस्पतिकायौघमार्गणायां काययोगौघादारिककाययोगौदारिकमिश्रकाययोगरूपासु तिसृषु मार्गणासु नपुंसकवेदे क्रोधमानामायालोभलक्षणमार्गणाचतुष्के मत्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽसयमाऽचक्षुर्दर्शनकृष्णलेश्यानीललेश्याकापोतलेश्याभव्याऽभव्यमिथ्यात्वाऽसंज्ञ्याहारकमार्गणासु च समुदितासु षट्त्रिंशन्मार्गणासु स्वप्रायोग्यायुष्कर्मबन्धकानां भागा ओघवदवसेयाः । तदेवम्—तिर्यगोघकाययोगौघौदारिककाययोगनपुंसकवेदकषायचतुष्काऽज्ञानद्वयाऽसंयमाऽचक्षुर्दर्शनाऽशुभलेश्यात्रयभव्याभव्यमिथ्यात्वाऽसंज्ञ्याहारकमार्गणासु देवनरकमनुष्यायुष्कत्रयस्य बन्धका एतन्मार्गणागतजीवानामपेक्षयाऽनन्ततमभागप्रमिता ज्ञातव्याः, यत आयुष्कत्रयस्याऽस्य देवमनुष्यनरकगतिषु जीवानामसंख्येयप्रमाणत्वेन कस्मिँश्चित् समये उत्कृष्टतोऽसंख्येया एव जीवा बन्धकत्वेन प्राप्यन्ते, ते चैतन्मार्गणागतजीवानामपेक्षयाऽनन्ततमे भागे वर्तन्ते, तिर्यगायुष्कस्य च संख्येयतमभागेऽत्र बन्धका बोद्धव्याः, औदारिकमिश्रमार्गणायां सकलैकेन्द्रियमार्गणासु सकलनिगोदमार्गणासु वनस्पतिकायौघमार्गणायां च तिर्यगायुष्कस्य बन्धकाः संख्येयतमभागे मनुष्यायुष्कस्य चाऽनन्ततमे भागे बोद्धव्याः । अत्र भावना पुनरोघतोऽवसातव्या ॥१००६-७॥

इदानीं द्वितीयादिनरकप्रभृतिमार्गणासु प्रस्तुतमाह

दुइआइणिरयछव्वीससुरजोइसाइगतिणाणदेसेसु ॥
ओहिपउमदुगवेअगसासाणेसु य असखंसो ॥१००८॥

(प्रे०) 'दुइआइ' इत्यादि, शर्कराप्रभावालुकाप्रभापङ्कप्रभाधूमप्रभातमःप्रभातमस्तमःप्रभारूपासु षट्सु नरकमार्गणासु ज्योतिष्कसौधर्मेशानसनत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलान्तकशुक्रसहस्रारानतप्राणताऽऽरणाऽच्युतनवग्रैवेयकसर्वार्थसिद्धवर्जानुत्तरचतुष्करूपासु षड्विंशतिसुरमार्गणासु मतिज्ञानश्रुतज्ञानाऽवधिज्ञानदेशविरताऽवधिदर्शनपद्मलेश्याशुक्ललेश्याक्षयोपशमसम्यक्त्वसास्वादनसम्यक्त्वमार्गणासु च स्वप्रायोग्यायुष्काणां बन्धका असंख्येयतमभागे वर्तन्ते, भावनाप्रकारस्त्वेवम्—द्वितीयादिषण्नरकमार्गणासु तथोक्तदेवमार्गणासु जीवानामायुःस्थितिर्जघन्यतोऽप्यसंख्यातवर्षप्रमाणाऽस्ति, तेषां चाऽयुर्बन्धकालोऽसंख्याततमे भागे विद्यते, अतः प्रकृतायुर्बन्धका असंख्याततमे भागे ज्ञेयाः । त्रिज्ञानावधिदर्शनवेदकसम्यक्त्वमार्गणास्वसंख्यातबहुभागप्रमाणा देवा विद्यन्ते, तेष्वायुर्बन्धकाः संख्याता एव, यतो हि तैर्मनुष्यायुरेव बध्यते, अतो मार्गणास्वासु मनुष्यायुर्बन्धका असंख्याततमे भागेऽवसेयाः ।

अपरञ्च देवायुर्बन्धका इहाऽसंख्याताः, तथाऽपि तदायुर्बन्धप्रायोग्यजीवा एतन्मार्गणागतजीवाना ममख्याततमे भागे वर्तन्ते, अतस्तस्य बन्धका अप्यसंख्याततमे भागे विज्ञेयाः पद्मशुक्ललेश्यामार्गणयोर्मुख्यराशितया तिर्यञ्चः, तेषां परभवोत्पत्तिस्थानं देवरूपमस्ति, देवाश्च तेषामसंख्याततमे भागे वर्तन्ते, अतो देवायुर्बन्धका अत्राऽसंख्याततमे भाग एवाऽवाप्यन्ते; शेषो देवराशिर्मनुष्यराशिर्वा मार्गणागतजीवानामसंख्याततमे भागे वर्तते, शेषायुर्बन्धकास्तु देवा एव, अतः शेषायुर्बन्धका अप्यसंख्याततमे भाग एवाऽवसातव्याः। शुक्ललेश्यायां मार्गणागतजीवानामसंख्यातबहुभागेषु वर्तमानः देवराशिरेव प्रधान इति मतेनाऽपि स्वप्रायोग्यायुर्बन्धका असंख्याततमे भागे एव, यत देवा अपि सख्यातप्रमाणा एवायुर्बन्धकतया प्राप्यन्ते, यतस्ते केवलं मनुष्यायुरेव बध्नन्ति। देशविरतसास्वादनयोस्तथास्वाभाव्येन मार्गणागतजीवानामसंख्याततमभागमात्रा एव जीवा आयुर्बन्धकाः सन्ति ॥१००८॥

अथ द्विपञ्चेन्द्रियतिर्यगादिमार्गणास्वायुर्बन्धकानां भागान् तत्तन्मार्गणागतसर्वजीवापेक्षया प्ररूपयति

दुपणिंदियतिरियेसु पज्जपणिंदितसदुवयपुमथीसु ।
चक्खुम्मि असखसो णिरयणराऊण बोद्धव्वा ॥१००९॥
संखेज्जइमो भागो तिरियसुराऊण बंधगा णेया।

(प्रे०) 'दुपणिंदिय' इत्यादि, पर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिमतीपर्याप्तपञ्चेन्द्रियपर्याप्तत्रसवचनयोगौघाऽसत्याऽमृषावचनपुरुषवेदस्त्रीवेदचक्षुर्दर्शनरूपासु नवसु मार्गणासु नरकमनुष्यायुष्कयोर्बन्धका असख्येयतमे भागे ज्ञातव्याः, यतः प्रकृतमार्गणागतजीवापेक्षया सकलनरकमनुष्या असंख्येयतमे भागे वर्तन्ते, अतस्तदायुर्बन्धकास्तु सुतरामसंख्येयभागे भवन्ति । 'सखेज्जइमो' इत्यादि, तिर्यक्सुरायुष्कद्वयस्य बन्धकानां संख्याततमो भागो ज्ञेयः, कुत इति चेद्, उच्यते, अधिकृतमार्गणागतजीवेषु संख्यातवर्षायुष्का बहुभागप्रमाणाः सन्ति, तेषां चाऽऽयुर्बन्धकालः स्वजीवितापेक्षया संख्याततमे भागेऽस्ति, अतः प्रकृतमार्गणागतसख्यातभागप्रमाणा जीवा आयुर्बन्धका वर्तन्ते, आयुर्बन्धकेषु च संख्याततमे भागे देवायुर्बन्धका भवन्ति, संख्यातबहुभागप्रमाणाश्च तिर्यगायुर्बन्धकाः, तस्मात्तिर्यग्देवायुर्बन्धकाः प्रस्तुतमार्गणागतजीवानां सख्याततमे भाग एवाऽवाप्यन्त इति ॥१००९॥

अथ द्विमनुष्यादिमार्गणास्वायुर्बन्धकानां भागानुपदर्शयति

दुमणुससव्वसुरेसु सव्वेसु तेउवाऊसु ॥१०१०॥
आहारदुगम्मि तहा मणपज्जवसजमेसु सामइए ।
छेए तह परिहारे सप्पाउगाण सखसो ॥१०११॥

(प्रे०) '**दुमणुस**' इत्यादि, पर्याप्तमनुष्यमानुषीसर्वार्थसिद्धमार्गणात्रये ओघसूक्ष्मौघबादरौघपर्याप्तसूक्ष्मपर्याप्तबादराऽपर्याप्तसूक्ष्माऽपर्याप्तबादरभेदभिन्नासु सप्तसु तेजस्कायमार्गणासु सप्तसु च वायुकायिकमार्गणास्वाहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगमनःपर्यवसंयमौघसामायिकसंयमछेदोपस्थापनीयसंयमपरिहारविशुद्धिसंयमरूपासु च सप्तसु मार्गणासु स्वप्रायोग्यायुषां बन्धकाः संख्याततमभागप्रमाणा वेदयितव्याः, भावना त्वेवम्–तेजस्कायवायुकायिकमार्गणासु स्वोत्कृष्टजीवितकालापेक्षयाऽऽयुर्बन्धकालस्य संख्येयगुणहीनत्वेन स्वप्रायोग्यतिर्यगायुर्बन्धकाः संख्याततमे भागे प्राप्यन्ते, शेषप्रकृतमार्गणासु तु जीवानां संख्येयत्वेन संख्याततमभागप्रमाणा एवायुर्बन्धका विज्ञेयाः ॥१०१०-११॥

एतर्हि मनोयोगसामान्यादिमार्गणासु भागानाह

तिरियाउगस्स संखियभागो, पणमणतिवयणसण्णीसुं ।
आउदुगस्स असंखियभागो देवाउगस्स सयमुज्झो ॥१०१२॥ (गीतिः)

(प्रे०) '**तिरियाउगस्स**' इत्यादि, ओघादिभेदेन पञ्चमनोयोगमार्गणासु सत्यवचनाऽसत्यवचनसत्यासत्यवचनरूपासु तिसृषु वचनयोगमार्गणासु संज्ञिमार्गणायां च तिर्यगायुष्कस्य बन्धकानां संख्याततमो भागोऽस्ति । '**आउदुगस्स**' इत्यादि, नरकमनुष्यायुष्कयोर्बन्धकानामसंख्याततमो भागः, भावना पुनरेवम्–मार्गणागतजीवेषु यदि संख्यातवर्षायुष्का जीवाः संख्याततमे भागे संख्यातादिबहुभागेषु वा वर्तन्ते, तर्हि आयुष्कबन्धका मार्गणागतजीवानां संख्याततमे भागे वर्तन्ते तत्राऽपि तिर्यगायुर्बन्धकास्तु चतुर्गतिप्रायोग्याः, अतः तिर्यगायुर्बन्धका मार्गणागतजीवानां संख्याततमे भाग एव ज्ञेयाः, अस्ति चैवमत्र मार्गणासु, तस्मात्तिर्यगायुर्बन्धकाः संख्याततमे भागे ज्ञेयाः । मनुष्यनरकायुर्बन्धका असंख्याततमे भागे वर्तन्ते, यतो मार्गणागतजीवेभ्यो मनुष्या नारकाश्च प्रत्येकं समुदिता वा असंख्येयगुणहीनास्तस्मात्तदायुर्बन्धका अप्यसंख्येयभागमात्राः । '**देवाउगस्स**' इत्यादि, देवायुर्बन्धकानां भागो यथागमं स्वयमेवः ज्ञातव्यः, भावार्थः पुनरेवम्–यदि मार्गणागतजीवानां संख्यातवर्षायुष्कपर्याप्तसंज्ञितिर्यञ्चः संख्याततमे भागे वर्तन्ते, तर्हि देवायुर्बन्धकाः संख्याततमे भागेऽवसातव्याः, यदि च तेऽसंख्याततमे भागे वर्तन्ते, तर्हि निरुक्तायुर्बन्धका असंख्याततमे भागे ज्ञातव्याः । एवं संख्यातवर्षायुष्कपर्याप्तसंज्ञितिरश्चां भागप्रमाणं सम्यगवधार्य देवायुर्बन्धकानां भागप्ररूपणा स्वयं ज्ञेया ॥१०१२॥

अथ सम्यक्त्वौघक्षायिकसम्यक्त्वमार्गणाद्वये शेषमार्गणासु चायुर्बन्धकानां भागान् भणितुकाम आह

आऊण अणंतंसो णेया सम्मखइएसु सेसासुं ।
तिरियाउगस्स संखियभागो इयराण खलु असंखंसो ॥१०१३॥ (गीतिः)

(प्रे०) "**आऊण**" इत्यादि, सम्यक्त्वौघक्षायिकसम्यक्त्वमार्गणयोर्देवमनुष्यायुर्बन्धकानां भागोऽनन्ततमोऽस्ति, मार्गणागतानन्तबहुभागप्रमाणानां सिद्धानां कर्मबन्धानर्हत्वात् । '**सेसासु**'

इत्यादि, अभिहितभिन्नासु शेषमार्गणासु तिर्यगायुषो बन्धकानां संख्याततमो भागोऽस्ति, शेषा-युष्कत्रयस्य यथायोगं बन्धका असंख्येयतमे भागेऽवसेयाः । भावना त्वेवम्—शेषमार्गणागतजीवेषु संख्येयवर्षाऽऽयुष्का जीवा बहुभागे वर्तन्ते,तेषां च मुख्यवृत्त्या परभवोत्पत्तिस्थानं तिर्यग्रूपम्, अत-स्तिर्यगायुर्बन्धकाः संख्याततमे भाग एव । स्वप्रायोग्यशेषाऽऽयुर्बन्धका असंख्याततमे भागेऽवसेयाः ।

ताश्चेमाःशेषमार्गणाः—नरकौघरत्नप्रभामार्गणाद्वयमोघाऽपर्याप्तप्रकारेण तिर्यक्पञ्चेन्द्रियमार्गणा-द्वयं मनुष्यमार्गणाद्वयं देवौघभवनपतिव्यन्तरमार्गणात्रयमोघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेन विकलेन्द्रियाणां नव-मार्गणाः पञ्चेन्द्रियौघाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणाद्वयमोघसूक्ष्मौघपर्याप्ताऽपर्याप्तसूक्ष्मबादरौघपर्याप्ता-ऽपर्याप्तबादरभेदेन सप्तपृथ्वीकायमार्गणाः, सप्ताऽप्कायमार्गणाश्च प्रत्येकवनस्पतिकायमार्गणात्रयं त्रस-कायौघाऽपर्याप्तत्रसकायमार्गणाद्वयं विभङ्गज्ञानमार्गणा तेजोलेश्यामार्गणा सास्वादनमार्गणा चेति द्विचत्वारिंशन्मार्गणाः । वैक्रियमिश्रकार्मणकाययोगाऽपगतवेदाऽकषायकेवलज्ञानसूक्ष्मसम्पराययथा-ख्यातसंयमकेवलदर्शनोपशममिश्रसम्यक्त्वानाहारकरूपास्वेकादशसु मार्गणास्वायुष्कर्मबन्धाभावेन तद्बन्धकानां भागचिन्ता नैव कार्या । अत्र मार्गणागतजीवेषु बन्धकानां भागाः कथिताः, शेष-भागा अबन्धकानां ज्ञेयाः ॥१०१३॥

अथ मार्गणासु समस्तजीवापेक्षयाऽऽयुष्कचतुष्कबन्धकानां भागान्भणितुकाम आदौ तिर्यगोघा-दिमार्गणासु भाषते

अहकिच्च सव्वजीवा, तिरियेगिंदियणिगोअहरिएसु ।
सव्वसुहमएगिंदियणिगोअकायउरलदुगेसु ॥१०१४॥
णपुमचउकसायेसुं दुअणाणेसु अजए अचक्खुम्मि ।
अपसत्थतिलेसाभवि मिच्छासण्णीसु आहारे ॥१०१५॥
तिरियाउगस्स संखियभागो अत्थि इयराणऽणंतंसो ।

(प्रे०) "अहिकिच्च" इत्यादि, तिर्यगोघैकेन्द्रियौघवनस्पतिकायौघसाधारणवनस्पतिकायौघ-मार्गणास्त्रोघसूक्ष्मपर्याप्तसूक्ष्माऽपर्याप्तसूक्ष्मभेदभिन्नासु तिसृषु सूक्ष्मैकेन्द्रियमार्गणासु तिसृषु सूक्ष्मसाधारणवनस्पतिकायमार्गणासु काययोगौघौदारिककाययोगौदारिकमिश्रकाययोगनपुंसक-वेदक्रोधमानमायालोभमत्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽसंयमाऽचक्षुर्दर्शनकृष्णलेश्यानीललेश्याकापोतलेश्याभव्य-मिथ्यात्वाऽसंज्ञ्याहारकमार्गणासु चेति सर्वसंख्ययैकोनत्रिंशन्मार्गणासु तिर्यगायुष्कस्य बन्धकाः सर्वजीवानां संख्याततमे भागे वर्तन्ते । 'इयराण' इत्यादि, यथायोगं तिर्यगायुष्कवर्जेतरायुष्कत्रयस्य बन्धका अनन्ततमभागप्रमिता वर्तन्ते, प्रथमव्याप्त्या भावनाऽत्र भावनीया ।

ताश्चेमा व्याप्तयः—मार्गणागतजीवाः सर्वेषां जीवानामपेक्षया यद्यनन्तबहुभागेष्वसंख्यबहुभा-गेषु संख्येयबहुभागेषु सख्याततमभागे वा वर्तमाना भवेयुः, तर्हि तत्र तिर्यगायुष्कबन्धकाः समस्त-जीवापेक्षया संख्याततमे भागे समुपलभ्येरन्, शेषायुर्बन्धकाश्चाऽनन्ततमे भागे । इति प्रथमव्याप्तिः ।

यस्यां मार्गणायां वर्तमाना जीवा यदि सकलजीवानामसंख्याततमे भागे स्युः, तर्हि तस्यां मार्गणायां तिर्यगायुष्कबन्धका असंख्याततमे भागे शेषायुष्कत्रयबन्धकाश्चानन्ततमे भागे प्राप्ता भवेयुरिति द्वितीयव्याप्तिः ॥१०१४-१५॥

समस्तजीवानामपेक्षया यदि यस्यां मार्गणायां विद्यमाना जीवा अनन्ततमे भागे स्युः, तर्हि तत्र स्वप्रायोग्यायुष्कानां बन्धका अनन्ततमे भागेऽवाप्यन्ते । इति तृतीयव्याप्तिः ।

अथौघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदभिन्नबादरैकेन्द्रियनिगोदमार्गणासु शेषमार्गणासु च प्रकृतमाह

सव्वेसुं एगिंदियणिगोअबायरविगप्पेसु ॥१०१६॥
तिरियाउस्स असखियभागो मणुसाउगस्सऽणतसो ।
सप्पाउग्गाऊणं अणतभागोऽत्थि सेसासुं ॥१०१७॥

(प्रे०) "सव्वेसुं" इत्यादि, ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तप्रकारेण तिसृषु बादरैकेन्द्रियमार्गणासु तिसृषु च बादरसाधारणवनस्पतिकायमार्गणासु तिर्यगायुष्कस्य बन्धका असंख्याततमे भागे वेद्याः, मनुष्यायुष्कस्य बन्धकाश्चाऽनन्ततमे भागे, घटना पुनरिह द्वितीयव्याप्त्या कार्या, प्रकृतमार्गणागतजीवानां सर्वेषामपेक्षयाऽसंख्याततमभागप्रमाणत्वात् । "सप्पाउग्गाऊणं" इत्यादि, उदितान्यासु मार्गणासु स्वप्रायोग्यायुष्कबन्धकाः सकलजीवानपेक्ष्याऽनन्ततमे भागे ज्ञेयाः, तृतीयव्याप्त्या भावना कथनीया, ताश्चेमाः शेषमार्गणाः—तिर्यगोघवर्जषट्चत्वारिंशद्गतिमार्गणाः नव विकलेन्द्रियाणां मार्गणास्तिस्रः पञ्चेन्द्रियमार्गणाः सप्तपृथ्वीकायमार्गणाः सप्ताऽप्कायमार्गणाः सप्ततेजस्कायमार्गणाः सप्तवायुकायमार्गणास्तिस्रः प्रत्येकवनस्पतिकायमार्गणास्तिस्रस्त्रसकायमार्गणाः मनोयोगमार्गणापञ्चकं वचनयोगमार्गणापञ्चकं वैक्रियकाययोगाऽऽहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगमार्गणात्रयं स्त्रीपुरुषवेदमार्गणाद्वयं मतिश्रुतावधिमनःपर्यवज्ञानचतुष्कं विभङ्गज्ञानमार्गणा संयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिदेशविरतिरूपाः पञ्चसंयममार्गणाः, चक्षुरवधिदर्शनमार्गणाद्वयं तेजःपद्मशुक्ललेश्यामार्गणात्रयमभव्यमार्गणा सम्यक्त्वौघक्षायिकक्षयोपशमसास्वादनसम्यक्त्वरूपाश्चतुर्मार्गणाः संज्ञिमार्गणा चेत्यष्टाविंशत्यधिकशतमार्गणाः । वैक्रियमिश्रकार्मणकाययोगाऽपगतवेदाऽकषायकेवलज्ञानसूक्ष्मसंपराययथाख्यातसंयमकेवलदर्शनोपशममिश्रसम्यक्त्वाऽनाहारकरूपास्वेकादशमार्गणास्वायुष्कर्मबन्धविरहेण तद्बन्धकानां भागचिन्ता नैव विधीयते ॥१०१६ १७॥

इदानीं मार्गणासु निखिलजीवानाश्रित्यायुष्ककर्माऽबन्धकानां भागान् भणितुमना आह—

तिरिये तह एगिंदियणिगोअवणकायजोगणपुमेसु ।
अण्णाणदुगे अजए अचक्खुभविमिच्छअमणेसुं ॥१०१८॥
सप्पाउग्गाऊण ओघव्व अवधगा मुणेयव्वा ।

(प्रे०) "तिरिये" इत्यादि, तिर्यगोघैकेन्द्रियौघसाधारणवनस्पतिकायौघवनस्पतिकायौघकाययोगौघनपुंसकवेदमत्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽसंयमाऽचक्षुर्दर्शनभव्यमिथ्यात्वाऽसंज्ञिरूपासु त्रयोदशमा-

र्गणासु स्वप्रायोग्यायुष्काणामबन्धकानां भागा ओघवदवसातव्याः, तदेवम्—देवनरकमनुष्यायुष्काऽबन्धका यथासंभवमनन्तबहुभागेषु तिर्यगायुष्कस्य चाऽबन्धकाः संख्येयबहुभागेषु विज्ञेयाः । ॥१०१८॥ साम्प्रतमपर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियादिमार्गणासु तथौदारिकमिश्रकाययोगकषायचतुष्काऽशुभलेश्यात्रयमार्गणासु प्रस्तुतमाह

अत्थि अपज्जत्तेसुं सुहमेगिंदियणिगोएसुं ॥१०१९॥
तह ओरालियमीसे कसायचउगे तिअसुहलेसासुं ।
संखेज्जइमो भागो सप्पाउग्गाण आऊण ॥१०२०॥

(प्रे०) "अत्थि" इत्यादि, अपर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियाऽपर्याप्तसूक्ष्मसाधारणवनस्पतिमार्गणयोरौदारिकमिश्रक्रोधमानमायालोभकृष्णलेश्यानीललेश्याकापोतलेश्यालक्षणास्वष्टसु मार्गणासु चेति मार्गणादशके स्वप्रायोग्यायुष्काऽबन्धकानां संख्येयतमो भागोऽवसातव्यः, मार्गणागतजीवानां सर्वजीवापेक्षया संख्याततमभागप्रमाणत्वात् । ॥१०१९-२०॥

यास्वायुरबन्धका सर्वजीवानामसंख्याततमे भागे वर्तन्ते तास्वाह—

भागो असंखियमो तिरियमणुस्साउगाण विण्णेया ।
सव्वेसुं एगिंदियणिगोअबायरविगप्पेसुं ॥१०२१॥

(प्रे०) "भागो" इत्यादि, ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेन तिसृषु बादरैकेन्द्रियमार्गणासु तिसृषु च बादरसाधारणवनस्पतिकायमार्गणासु तिर्यग्मनुष्यायुषोरबन्धका असंख्याततमभागे विज्ञेयाः, मार्गणागतसंख्यातबहुभागादिप्रमाणा जीवास्तदबन्धकाः, ते च सर्वजीवानामसंख्याततमे भागे वर्तन्त इति कृत्वा । ॥१०२१॥ अथ सूक्ष्मैकेन्द्रियादिमार्गणास्वायुष्काऽबन्धकानां भागान् कथयति—

णेया सुहमेगिंदियणिगोअआहारगेसु संखसा ।
तिरियाउगस्स भागा असंखियाऊण सेसाणं ॥१०२२॥

(प्रे०) 'णेया' इत्यादि, सूक्ष्मैकेन्द्रियौघसूक्ष्मसाधारणवनस्पतिकायौघाहारकमार्गणात्रये तिर्यगायुष्कस्याबन्धकाः संख्येयबहुभागेषु वर्तन्ते, तद्यथा-यद्यपि मार्गणागतजीवाः सर्वजीवापेक्षयाऽसंख्यातबहुभागप्रमाणा वर्तन्ते, तथाऽपि तेष्वेकसंख्याततमभागप्रमाणजीवास्तिर्यगायुर्बध्नन्ति, अतः संख्यातबहुभागेषु तदबन्धका लभ्यन्ते । 'असंखिया' इत्यादि, तिर्यगायुर्वर्जानां शेषाणामायुषामबन्धका असंख्यातबहुषु भागेषु वर्तन्ते, ते चाहारकमार्गणायां देवनरकमनुष्यायुष्काणां सूक्ष्मैकेन्द्रियौघसाधारणवनस्पतिकायौघमार्गणयोश्च मनुष्यायुष्कस्य वर्तन्ते, यतः शेषायुष्कस्याऽबन्धकाः प्रकृतमार्गणागतजीवानामनन्तबहुभागप्रमाणाः सन्तिः, तथा प्रकृतमार्गणागतजीवाः सर्वजीवानामसंख्यातबहुभागप्रमाणाः सन्ति ॥१०२२॥ । अथ पर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियादिमार्गणासु प्रकृतमुच्यते—

संखंसा पज्जत्तगसुहमेगिंदियणिगोअउरलेसुं ।
सप्पाउग्गाऊणं सेसासु हवेज्जऽणंतसो ॥१०२३॥

(प्रे०) **'संखंसा'** इत्यादि, पर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्तसूक्ष्मसाधारणवनस्पतिकायौदारिककाययोगमार्गणात्रये स्वप्रायोग्यायुष्काणामबन्धकाः संख्यातबहुभागप्रमाणा वेदयितव्याः, मार्गणागतजीवानां सर्वजीवापेक्षया संख्यातबहुभागप्रमाणत्वात् । **'सेसासु'** इत्यादि, उक्तातिरिक्तमार्गणासु स्वप्रायोग्यायुषामबन्धका अनन्तमे भागे विज्ञेयाः, यतो मार्गणास्वासु वर्तमाना जीवाः सर्वजीवानामनन्ततमे भागे वर्तन्ते । तारचेमाः शेषमार्गणा अनन्तरोक्ता अष्टाविंशत्यधिकशतमाना एवात्र ग्राह्याः । वैक्रियमिश्रकार्मणकाययोगापगतवेदाकषायकेवलज्ञानकेवलदर्शनसूक्ष्मसंपराययथाख्यातसंयमोपशममिश्रसम्यक्त्वानाहारकरूपास्वेकादशमार्गणास्वायुष्ककर्मबन्धाभावेन तदबन्धकानामपि भागप्ररूपणा नास्ति । इत्येवं समाप्ता सकलजीवापेक्षया मार्गणास्वायुष्काऽबन्धकानां भागप्ररूपणा, तत्समाप्तौ च समाप्तं भागप्ररूपणाद्वारम् ॥१०२३॥

इति श्री प्रमप्रभाटीकाविभूषिते बन्धविधाने उत्तरप्रकृतिबन्धे
प्रथमाधिकारेऽष्टमं भागद्वारं समाप्तम् ॥



॥ अथ नवमं परिमाणद्वारम् ॥

साम्प्रतं क्रमायात नवमं परिमाणाख्यद्वारं निरूपयितुमना ग्रन्थकार आदावोघतस्तन्निरूपयन्नाह-

विउवट्ठगमणुसाउगतित्थाण बंधगा असंखेज्जा ।
संखाहारदुगस्स अणंताऽण्णाण इयरा य सव्वेसिं ॥१०२४। (गीति)

(प्रे०) 'विउवट्ठग' इत्यादि, परिमाणद्वारेऽस्मिन्नोघत आदेशतश्च विवक्षितोत्तरप्रकृतीनां बन्धका अबन्धकाश्च कतिप्रमाणा इति निरूप्यते । तत्रादावोघतो निरूपयति-देवायुर्देवगतिदेवानुपूर्वीनरकायुर्नरकगतिनरकानुपूर्वीवैक्रियशरीरवैक्रियाङ्गोपाङ्गात्मकं वैक्रियाष्टकं मनुष्यायुर्जिननाम चेति दशानां प्रकृतीनां बन्धका जीवा असंख्येयप्रमाणाः सन्ति, भावना पुनरेवम् सुरद्विकवैक्रियद्विकनरकद्विकसुरायुष्करूपाणां सप्तानां प्रकृतीनां मुख्यवृत्त्या बन्धकाः सञ्ज्ञिसंज्ञितिर्यक्पञ्चेन्द्रियजीवा भवन्ति, ते च प्रतराऽसंख्येयभागगताकाशप्रदेशप्रमाणाः, अतः प्रकृतीनामासां बन्धकानामसंख्येयप्रमाणत्वमुक्तम्, यद्यपि प्रकृतीनामासां बन्धविधायिनः संज्ञिमनुष्या अपि सन्ति, परं ते तु संख्याता एव तस्मादत्र ते मुख्यवृत्त्या न विवक्षिताः । नरकायुष्कबन्धकाः पुनरसंख्येयसूचिश्रेणिगताऽऽकाशप्रदेशप्रमाणा जीवा भवन्ति, ते च मुख्यतया तिर्यक्पञ्चेन्द्रिया विज्ञेयाः । मनुष्यायुषो बन्धकाः सूचिश्रेण्यसंख्येयतमभागगताकाशप्रदेशप्रमाणा ज्ञातव्याः, चतसृभ्यो गतिभ्य इयत्प्रमाणतयैव जीवानां मनुष्यायुष्कबन्धकत्वेन प्राप्यमाणत्वात् । ननु तिर्यग्गतौ मनुष्यायुष्कबन्धकार्हा असुमन्तोऽनन्ता विद्यन्ते, तर्हि तावत्प्रमाणा मनुष्यायुष्कबन्धका अत्र कथं न प्रतिपादिता इति चेन्न, अभिप्रायाऽपरिज्ञानात्, नियमोऽयमत्र "यस्यां गतौ यावत्संख्याका जीवाः, तावतीं संख्यामतिक्रम्याऽधिकतया तद्गतिप्रायोग्यायुष्ककर्मबन्धविधायिनो न भवन्ति" तदनुसारेण मनुष्यायुष्कबन्धकानां विषयेऽप्येवमेव ज्ञातव्यम्, तद्यथा-मनुष्यगतौ हि सर्वेऽपि मनुष्याः सूचिश्रेण्यसख्येयतमभागगताकाशप्रदेशप्रमाणा एव संभवन्ति, नातोऽधिकतराः, तस्माद् मनुष्यायुष्कबन्धार्हाणामितरेषामनन्तानां विद्यमानत्वेऽपि मनुष्यायुर्बन्धकाः सूचिश्रेण्यसंख्याततमभागगताकाशप्रदेशप्रमिता एव प्राप्यन्ते, नाधिकाः । जिननामबन्धकाः केचन सम्यग्दृष्टयः, सर्वेऽपि सम्यग्दृष्टयोऽसख्याताः तत्रापि तदसंख्येयभागकल्पा अद्धापल्योपमासंख्यभागप्रमिता असंख्येया जिननामकर्मबन्धका ज्ञातव्याः । 'संखा' इत्यादि, आहारकद्विकस्य बन्धकाः सख्येयाः सन्ति, अप्रमत्तसंयतैरेव बध्यमानत्वात्तस्य, तेषां च सख्येयमात्रप्रमाणत्वात् । 'अणता' इत्यादि, अत्रोक्ता वैक्रियाष्टकप्रभृतीर्द्वादशप्रकृतीर्वर्जयित्वा मतिज्ञानावरणीयादीनामष्टाधिकशतशेषप्रकृतीनां बन्धका अनन्ता जीवा वर्तन्ते, निगोदैरपि बध्यमानत्वात्, तेषां चाऽनन्तत्वात् । 'इयरा' इत्यादि, सर्वासां विंशत्यधिकशतप्रकृतीनामबन्धका अनन्तजीवाः सन्ति, यतः सिद्धा अनन्ताः, ते च सर्वासामेतासां प्रकृतीनां बन्धं न कुर्वन्ति, अध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धकतया निगोदा जीवा अपि सन्ति, तेऽप्यनन्ताः ॥१०२४॥

अथौघत उत्तरप्रकृतिबन्धकानामुत्तरप्रकृतीनामबन्धकानां च परिमाणमुपदर्श्य साम्प्रतमादेशतो मार्गणासु निरूपयितुकामस्तिर्यगोघप्रभृतिमार्गणासु तदुपदर्शयन्नाह–

ओघव्व वघगा खलु सव्वाउमाण आउवज्जाणं ।
तिरिकायुरलणपुंसगकसायदुअणाणअजएसु ॥१०२५॥
अणयणतिअसुहलेसाभवियरमिच्छअमणेसु आहारे ।
णवर जिणस्स सखा अत्थि उरलकिण्हणीलासु ॥१०२६॥

(प्रे०) 'ओघव्व' इत्यादि, तिर्यगोघकाययोगौघौदारिककाययोगनपुंसकवेदक्रोधमानमायालोभमत्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽसंयमाऽचक्षुर्दर्शनकृष्णलेश्यानीललेश्याकापोतलेश्याभव्याऽभव्यमिथ्यात्वाऽसंज्ञ्याहारकरूपासु विंशतिमार्गणास्वायुष्ककर्मवर्जानां स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धका ओघवदवसातव्याः, तद्यथा–आसु सर्वासु वैक्रियषट्कस्य बन्धका असंख्येयाः, भावनौघवदवसेया । तिर्यगोघमत्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽभव्यमिथ्यात्वाऽसंज्ञिरूपाः षण्मार्गणा विहाय काययोगौदारिककाययोगनपुंसकवेदक्रोधमानमायालोभाऽसंयमाचक्षुर्दर्शनकृष्णलेश्यानीललेश्याकापोतलेश्याभव्याहारकरूपासु चतुर्दशमार्गणासु तीर्थकृन्नामकर्मणो बन्धो भवति, एताभ्यश्चतुर्दशमार्गणाभ्योऽप्यौदारिककाययोगकृष्णलेश्यानीललेश्यारूपाः तिस्रो मार्गणा विनैकादशसु प्रकृतकाययोगादिमार्गणासु जिननामकर्मणो बन्धका असंख्याता विद्यन्ते, नपुंसकवेदमार्गणायां कापोतलेश्यामार्गणायां च तीर्थकृन्नामकर्मबन्धकानामियत्प्रमाणत्व नारकजीवानाश्रित्य ज्ञातव्यम् , शेषकाययोगादिरूपासु नवसु मार्गणासु जिननामबन्धकपरिमाणं देवनारकजीवानाश्रित्यावसातव्यम् । आहारकद्विकस्य बन्धकाः काययोगौघौदारिककाययोगनपुंसकवेदक्रोधमानमायालोभाऽचक्षुर्दर्शनभव्याहारकरूपासु दशमार्गणासु प्राप्यन्ते, ते च संख्येयप्रमाणा एव, एतन्मार्गणागतैरप्रमत्तसंयतैरेव तस्य बध्यमानत्वात् , तेषां च संख्येयप्रमाणत्वात् , शेषासु प्रकृतदशमार्गणास्वाहारकद्विकस्य बन्धका नैव सन्ति, अप्रमत्तसंयमिनामभावात्तासु । प्रस्तुतविंशतिमार्गणासु वैक्रियषट्कजिननामाहारकद्विकायुष्कचतुष्करूपास्त्रयोदशप्रकृतीर्विना शेषाणां सप्ताधिकशतप्रकृतीनां बन्धका अनन्ता जीवाः सन्ति, मार्गणास्वास्वनन्तानां निगोदजीवानामासां बन्धकत्वेनोपलभ्यमानत्वात् । औदारिककाययोगकृष्णलेश्यानीललेश्यालक्षणासु तिसृषु मार्गणासु जिननामबन्धकपरिमाणविषये ओघवदतिदेशानुसारेण प्राप्तातिप्रसक्तिवारणाय 'णवर' मित्यादिनाऽपवादपदमुपदर्शयति, तदेवम्–तीर्थकृन्नामकर्मणो बन्धका औदारिककाययोगकृष्णलेश्यानीललेश्याभिधासु तिसृषु मार्गणासु संख्येया विद्यन्ते, केषाञ्चिद्गर्भजमनुष्याणामेवात्र तद्बन्धविधायित्वात् ॥१०२५-२६॥

अथ मनुष्यौघमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकाना परिमाणं चिकथयिषुराह–

अत्थि णरे संखेज्जा तित्थाहारदुगविउवछक्काण ।
सेसाण पयडीणं असंखिया बंधगा णेया ॥१०२७॥

(प्रे०) 'अत्थि' इत्यादि, मनुष्यौघमार्गणायां जिननामाहारकद्विकवैक्रियषट्करूपाणां नवानां प्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयाः सन्ति, मार्गणायामस्यां पर्याप्तमनुष्यैस्तीर्थकरनामादिप्रकृतिनवकस्य बध्यमानत्वात्, तेषां च संख्यातत्वात्। 'सेसाण' मित्यादि, प्रकृतिनवकं विहाय शेषाणां सप्तोत्तरशतप्रकृतीनां बन्धका असंख्येया बोद्धव्याः, मार्गणायामस्यामसंख्येयैरपर्याप्तमनुष्यैरपि शेषप्रकृतीनां बध्यमानत्वात् ॥१०२७॥

इदानीं पर्याप्तमनुष्यादिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां परिमाणं प्रतिपादयन्नाह

संखा सव्वाण दुणरसव्वत्थाहारदुगअवेएसुं ।
अकसायकेवलजुगलमणणाणछसंजमाईसुं ॥१०२८॥

(प्रे०) 'संखा' इत्यादि, पर्याप्तमनुष्यमानुषीसर्वार्थसिद्धाहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगाऽवेदाऽकषायकेवलज्ञानकेवलदर्शनमनःपर्यवज्ञानसंयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसंपराययथाख्यातसंयमरूपासु षोडशमार्गणासु स्वबन्धप्रायोग्यसकलप्रकृतीनां बन्धकाः सख्येयाः सन्ति, मार्गणास्वासु वर्तमानानां जीवानां संख्येयप्रमाणत्वात्। अपगतवेदाऽकषायकेवलज्ञानकेवलदर्शनमार्गणासु सिद्धानामपेक्षयाऽनन्तानां जीवानां विद्यमानत्वेऽपि संख्याता एव जीवाः सातवेदनीयप्रकृतिबन्धकत्वेन प्राप्यन्त इति विशेषः ॥१०२८॥

अथैकेन्द्रियादिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां परिमाणं कथयति—

विण्णेया सव्वेसिं सप्पाउग्गाण बंधगाऽणंता ।
सव्वेसुं एगिंदियणिगोअभेएसु वणकाये ॥१०२९॥

(प्रे०) 'विण्णेया' इत्यादि, ओघसूक्ष्मौघसूक्ष्मपर्याप्तसूक्ष्माऽपर्याप्तबादरौघबादरपर्याप्तबादरापर्याप्तभेदभिन्नासु समस्वेकेन्द्रियमार्गणासु सप्तसु च साधारणवनस्पतिकायमार्गणासु वनस्पतिकायौघमार्गणायां चेति पञ्चदशमार्गणासु वैक्रियषट्काहारकद्विकजिननामायुष्कचतुष्कवर्जशेषसर्वसप्ताभ्यधिकशतप्रकृतीनां बन्धका जीवा अनन्ता विज्ञेयाः, मार्गणास्वासु जीवानामानन्त्यात् ॥१०२९॥

अथ द्विपञ्चेन्द्रियादिमार्गणासु प्रकृतमाह—

दुपणिंदियतसपणमणवयपुरिसतिणाणओहिचक्खूसु ।
सुहलेसासम्मेसुं वेअगखइएसु सण्णिम्मि ॥१०३०॥
संखेज्जा विण्णेया आहारदुगस्स बंधगा जीवा ।
होअन्ति असंखेज्जा, सप्पाउग्गाण सेसाण ॥१०३१॥

(प्रे०) ''दुपणिंदिय'' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौघपर्याप्तत्रसमनःसामान्य-सत्यमनः-असत्यमनः-सत्यासत्यमनः-असत्यामृषामनः-वचनौघसत्यवचनाऽसत्यवचनसत्यासत्यवचनाऽसत्यामृषावचनपुरुषवेदमतिज्ञानश्रुतज्ञानाऽवधिज्ञानाऽवधिदर्शनचक्षुर्दर्शनतेजोलेश्यापद्मलेश्या-

शुक्ललेश्यासम्यक्त्वौघक्षयोपशमसम्यक्त्वक्षायिकसम्यक्त्वसंज्ञिरूपासु सप्तविंशतिमार्गणास्वाहारकद्विकस्य बन्धका जीवाः संख्येयाः, ओघवदप्रमत्तसंयतैरेव मार्गणास्वासु तस्य बध्यमानत्वात्, तेषां च संख्येयप्रमितत्वात्। "होअन्ति" इत्यादि, मार्गणास्वास्वाहारकद्विकवर्जशेषस्वप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धका असंख्येया जीवा भवन्ति, मार्गणास्वासु जीवानामसङ्ख्येयत्वात्। सम्यक्त्वौघक्षायिकसम्यक्त्वयोर्जीवानामानन्त्येऽपि सिद्धानामबन्धकत्वेन बन्धकजीवानामसंख्येयत्वात् ॥१०३०-३१॥

अथौदारिकमिश्रादिमार्गणासु परिमाणमुच्यते

सखाऽत्थि उरलमीसे कम्मणजोगे तहा अणाहारे।
सुरविउवदुगजिणाण सेसाण बधगाऽणता ॥१०३२॥

(प्रे०) 'संखाऽत्थि' इत्यादि, औदारिकमिश्रकाययोगकार्मणकाययोगाऽनाहारकलक्षणासु तिसृषु मार्गणासु देवगतिदेवानुपूर्वीवैक्रियशरीरवैक्रियाङ्गोपाङ्गजिननामरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्य बन्धकाः संख्येया विद्यन्ते, पर्याप्तमनुष्येषूत्पद्यमानाः पर्याप्तमनुष्येभ्यश्च्युत्वाऽन्यत्रोत्पद्यमानाः सम्यग्दृष्टय एव तासां बन्धकत्वात्तथा पर्याप्तमनुष्याणामपि संख्यातत्वादिति। 'सेसाणं' इत्यादि, निरुक्तप्रकृतिपञ्चकमायुष्कचतुष्कं च वर्जयित्वा शेषाणां स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां प्रकृतमार्गणासु बन्धका अनन्ता वेदयितव्याः, मार्गणास्वासु जीवानामानन्त्यात् ॥१०३२॥

अथ वैक्रियमिश्रादिमार्गणाद्वये तदुच्यते

वेउव्वमीसजोगे देसे संखाऽत्थि तित्थणामस्स।
होअन्ति असखेज्जा सप्पाउग्गाण सेसाणं ॥१०३३॥

(प्रे०) 'वेउव्व' इत्यादि, वैक्रियमिश्रमार्गणायां देशविरतिमार्गणायां च जिननामकर्मणो बन्धकाः संख्येयाः सन्ति, तदेवम्–निकाचितजिननामसत्कर्माणो मनुष्या एव मृत्वा देवभवे नरकभवे वा जायमाना वैक्रियमिश्राऽवस्थायां जिननामकर्म बध्नन्ति, ते च संख्यातप्रमाणा एव, निकाचितजिननामसत्कर्मणां मनुष्याणां तावत्प्रमाणत्वात्। देशविरतिमार्गणायां मनुष्या एव जिननामकर्मणो बन्धकाः, ते च संख्येया एव। "होअन्ति" इत्यादि, मार्गणयोरनयोर्जिननामवर्जानां स्वप्रायोग्याणां शेषप्रकृतीनां बन्धका असंख्येया भवन्ति, मार्गणाद्वयेऽप्यस्मिन्नसंख्येयजीवानां सद्भावात्। ॥१०३३॥ अथ स्त्रीवेदोपशमसम्यक्त्वमार्गणयोः शेषमार्गणासु चोत्तरप्रकृतिबन्धकानां परिमाणमाह–

तित्थाहारदुगाण णेया थीउवसमेसु सखेज्जा।
सेसाण असंखेज्जा सेसासु हुन्ति सव्वेसिं ॥१०३४॥

(प्रे०) 'तित्था' इत्यादि, स्त्रीवेदोपशमसम्यक्त्वमार्गणयोस्तीर्थकृन्नामकर्माहारकद्विकलक्षणस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धकाः संख्येया ज्ञेयाः। भावना पुनरेवम्–स्त्रीवेदमार्गणायां जिननामबन्धका मनुष्या एव भवन्ति, ते च संख्येयाः। उपशमे जिननामबन्धका मनुष्या वर्तन्ते, ते च संख्येयाः, तथा देवगतौ श्रेणौ कालं कृत्वा भवाद्यान्तर्मुहूर्ते वर्तमाना देवा अपि वर्तन्ते, तेऽपि च संख्येया एव,

उपशमश्रेणौ कालं कृत्वा संख्येयानां मनुष्यणामेवोपपद्यमानत्वात् । निरुक्तमार्गणाद्वये आहारकद्विकस्य बन्धकत्वेन संयताः सन्ति, अतस्तद्वन्धकाः संख्याता अभिहिताः, तेषां सख्येयत्वात् । 'सेसाण' इत्यादि, शेषप्रकृतीनां बन्धका असख्याताः, प्रकृतमार्गणागतजीवानामसंख्येयप्रमाणत्वात् शेषप्रकृतीनां बन्धप्रायोग्यत्वाच्च । एतावता षडशीतिमार्गणास्वायुष्कर्मवर्जस्वप्रायोग्योत्तरप्रकृतिबन्धकानां परिमाणं प्रोक्तम् । साम्प्रतं 'सेसासु' इत्यादिना शेषमार्गणासु स्वप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाना परिमाणमुपदर्शयति, तदेवम्-अष्टौ नरकमार्गणाः, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघाऽपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिमतीरूपाश्चतस्रो मार्गणाः, अपर्याप्तमनुष्यमार्गणा, सर्वार्थसिद्धमार्गणावर्जिताः शेषैकोनत्रिंशद्देवमार्गणाः, नव विकलेन्द्रियमार्गणाः, अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणा, पृथ्वीकायिकानां सप्तमार्गणाः, अप्कायिकानां सप्तमार्गणाः, तैजस्कायिकानां सप्तमार्गणाः, वायुकायिकाना सप्तमार्गणाः, प्रत्येकशरीरवनस्पतिकायिकानां तिस्रो मार्गणाः, अपर्याप्तत्रसकायमार्गणा, वैक्रियकाययोगमार्गणा, विभङ्गज्ञानमार्गणा, मिश्रसास्वादनसम्यक्त्वमार्गणाद्वयं चेत्यष्टाशीतिमार्गणासु स्वप्रायोग्याणामायुष्ककर्मवर्जानामुत्तरप्रकृतीनामसंख्येया बन्धका बोद्धव्याः, मार्गणास्वासु जीवानामसंख्येयप्रमाणत्वात् ॥१०३४॥ इति मार्गणास्वायुष्कर्मवर्जस्वप्रायोग्योत्तरप्रकृतिबन्धकाना परिमाणम् ।

साम्प्रतमायुष्ककर्मवर्जस्वप्रायोग्योत्तरप्रकृतीनामबन्धकानां परिमाण दिदक्षुस्तिर्यगोधमार्गणायामाह—

तिरिये अबंधगाऽत्थि असंखा वारधुवबंधिउरलाणं ।
जाणाऽणबज्जाणं सेसाण हवेज्ज सिमणता ॥१०३५॥

(प्रे०) 'तिरिये' इत्यादि, सर्वस्मिन् काले विवक्षितप्रकृतेः केचन जीवा बन्धकत्वेनोपलभ्यन्ते, केचन चाऽबन्धकत्वेन, ये तु बन्धकत्वेनोपलभ्यन्ते, तेषां परिमाणं प्रागेव प्रदर्शितम् ,अधुनाऽबन्धकत्वेनोपलभ्यमानानां परिमाणं कियत् ?तद् दर्शयति—तिर्यक्सामान्यमार्गणाया मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कलक्षणानां द्वादशध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्चाऽसंख्येया जीवा अबन्धकाः सन्ति, भावना पुनरेवम्—मिथ्यात्ववर्जशेषगुणस्थानस्थिता उक्तध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धकतया यथासंभव प्राप्यन्ते, तेषां चासंख्येयत्वात् , औदारिकशरीरस्याबन्धकतया पर्याप्तसंज्ञ्यसंज्ञिजीवा भवन्ति, तेषामप्यसख्येयत्वादुक्तत्रयोदशप्रकृतीनामबन्धका असख्याता उक्ता इति । 'जाण' इत्यादि, उपर्युक्तमिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतित्रयोदशप्रकृतिभ्यतिरिक्तासु शेषप्रकृतिषु यासामसातवेदनीयाद्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धका जीवा उपलभ्या भवन्ति, तासां प्रकृतीनामबन्धका जीवास्तिर्यगोधमार्गणायामनन्ताः, जीवानामत्राऽऽनन्त्यात् । ताश्चेमा अध्रुवबन्धिप्रकृतयः-औदारिकशरीराहारकद्विकजिननामायुष्कचतुष्कवर्जपञ्चषष्टिप्रकृतय इति ॥१०३५॥

अथ मनुष्यौघमार्गणायां प्रस्तुतमुच्यते—

धुवबंधिउरालाणं णरम्मि सखा असंखियाऽण्णेसिं ।

(प्रे०) 'धुव' इत्यादि, मनुष्यौघमार्गणायां सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरस्य चाबन्धकाः सङ्ख्याता एव, आसामबन्धकतया कतिपयानां पर्याप्तमनुष्याणामेव सद्भावात्तेषां च संख्यातत्वादिति । 'असखिया' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीनामबन्धका असंख्याता ज्ञातव्याः, मार्गणावर्तिनामसंख्यातापर्याप्तमनुष्याणामप्यासामबन्धकतया प्राप्यमाणत्वादिति ।

अथ द्विमनुष्यादिमार्गणासु परिमाणमबन्धकानामाह

दुमणुससव्वत्थेसुं आहारदुगम्मि मणणाणे ॥१०३६॥
संजमसामइएसुं छेओवट्ठावणम्मि परिहारे ।
अहखाये संखा सि सप्पाउग्गाण जाणऽत्थि ॥१०३७॥

(प्रे०) 'दुमणुस' इत्यादि, पर्याप्तमनुष्यमानुषीसर्वार्थसिद्धाहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगमनःपर्यवज्ञानसंयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धियथाख्यातसंयमरूपासु मार्गणासु यासां प्रकृतीनामबन्धका विद्यन्ते तासां स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां संख्येया अबन्धका ज्ञातव्याः, मार्गणास्वासु संख्येयानामेव जीवानां भावात् ।१०३६-३७॥

साम्प्रतमेकेन्द्रियादिमार्गणासु प्रकृतमुच्यते

जाणऽत्थि अणंता सि सव्वेगिंदियणिगोअहरिएसु ।
गयवेए अकसाये केवलदुगसम्मखइअणाहारे ॥१०३८॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'जाण' इत्यादि, ओघसूक्ष्मौघपर्याप्तसूक्ष्माऽपर्याप्तसूक्ष्मबादरौघपर्याप्तबादराऽपर्याप्तबादरभेदभिन्नासु सप्तैकेन्द्रियमार्गणासु सप्तसु च साधारणवनस्पतिकायमार्गणासु वनस्पतिकायौघमार्गणायां गतवेदाऽकषायकेवलज्ञानकेवलदर्शनसम्यक्त्वौघक्षायिकसम्यक्त्वानाहारकलक्षणासु च सप्तसु मार्गणासु यासां प्रकृतीनामबन्धका विद्यन्ते, तासां प्रकृतीनां तेऽबन्धका अनन्ता अवसेयाः, तद्यथा—सर्वैकेन्द्रियनिगोदभेदेषु वनस्पतिकायौघे चौदारिकशरीरवर्जशेषस्वबन्धयोग्याध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धका अनन्ता जीवा वर्तन्ते । तथा गतवेदादिसप्तमार्गणासु स्वबन्धप्रायोग्याणां सर्वासां प्रकृतीनामबन्धका अनन्ताः सन्ति, अनन्तप्रमाणानां सिद्धानामत्राऽबन्धकतया सद्भावात् ॥१०३८॥

इदानीं पञ्चेन्द्रियौघादिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां परिमाणमाह—

संखा दुपणिंदियतसपणमणवयचक्खुसुक्कसण्णीसुं ।
धुववंधीण खलु पणतीसाअ असंखियाऽण्णेसिं ॥१०३९॥
णवर पणिंदियपरघाऊसासतसचउगणामाणं ।
सुक्काए लेसाए संखेज्जा खलु मुणेयव्वा ॥१०४०॥

(प्रे०) 'संखा' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौघपर्याप्तत्रसलक्षणासु चतसृषु मार्गणासु पञ्चसु मनोयोगमार्गणासु पञ्चसु वचनयोगमार्गणासु चक्षुर्दर्शनशुक्ललेश्यासंज्ञिरूपासु च तिसृषु मार्गणासु ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सा-

तैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणां पञ्चत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां संख्येया अबन्धका बोद्धव्याः, संयतमनुष्याणामेवासामबन्धकतया प्राप्यमाणत्वात्तेषां च संख्येयत्वादिति । 'असंखिया' इत्यादि, मार्गणास्वासूक्तपञ्चत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतिव्यतिरिक्तानां शेषाणां स्वप्रायोग्यप्रकृतीनामबन्धका असंख्येया जीवा वर्तन्ते, मार्गणास्वासु जीवानामसंख्येयप्रमाणत्वात् तेष्वसंख्येयप्रमाणैः कैश्चिज्जीवैर्बध्यमानत्वात्कैश्चिज्जीवैश्चाऽबध्यमानत्वात् । अथ शुक्ललेश्यामार्गणायामतिप्रसक्तामतिव्याप्तिमपाकर्तुकाम आह–"णवरं" इत्यादि, शुक्ललेश्यामार्गणायां पञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपसप्तनामप्रकृतीनामबन्धकाः संख्यातप्रमाणा एव सन्ति, यतः प्रस्तुतमार्गणायां प्रोक्तप्रकृतिसप्तकस्याबन्धकतया केवलश्रेणिगताः सयोगिकेवलिनो जीवा एव प्राप्यन्ते, ते च संख्याता एव सन्ति ॥१०३९-४०॥

अथ काययोगौघादिमार्गणासु तदाह–

काय‍उरलजोगेसु तहा अचक्खुभवियेसु आहारे ।
विण्णेया संखेज्जा धुवबंधीण पणतीसाए ॥१०४१॥
होअन्ति असंखेज्जा बारसधुवबंधिउरलणामाणं ।
सेसाणं पयडीण अडसट्ठीअ हविरेऽणंता ॥१०४२॥

(प्रे०) 'काय' इत्यादि, काययोगौघौदारिककाययोगमार्गणयोरचक्षुर्दर्शनभव्याहारकमार्गणासु च मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूप द्वादशप्रकृतिवर्जं विहाय शेषाणां पञ्चत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धकाः संख्येया वेदयितव्याः, केवलं संयतानामेवासामबन्धकतया प्राप्यमाणत्वादिति । 'होअन्ति' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपाणां द्वादशप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्चाऽबन्धका जीवा असंख्येया अवसातव्याः, केषाञ्चित् पञ्चेन्द्रियाणां तदबन्धकत्वेन प्राप्यमाणत्वात् । 'सेसाणं' इत्यादि, आयुष्कचतुष्कौदारिकशरीरनामकर्मवर्जशेषसर्वाष्टषष्ट्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धका अनन्ता जीवा विद्यन्ते, प्रकृतीनामासामध्रुवबन्धित्वेन सर्वदैव कैश्चिज्जीवैर्बध्यमानत्वेऽपि कैश्चिदनन्तैर्जीवैरबध्यमानत्वात् ॥१०४१-२॥

अधुनौदारिकमिश्रमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां परिमाणमाह––

संखाऽत्थि उरलमीसे छायालीसधुवबंधिउरलाणं ।
मिच्छस्स असंखेज्जा अबसेसाणं अणंताऽत्थि ॥१०४३॥

(प्रे०) 'संखा' इत्यादि, औदारिकमिश्रमार्गणायां मिथ्यात्ववर्जषट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धकाः संख्याता एव ज्ञातव्याः, अनन्तानुबन्धिचतुष्कस्त्यानर्द्धित्रिकौदारिकशरीराणां शेषध्रुवबन्धिनीनां चाबन्धकतया क्रमेण अविरतसम्यग्दृक्सयोगिकेवलिनां केवलं सयोगिकेवलिनां

च प्राप्यमाणत्वाच्छेषां च संख्येयत्वात् । मिथ्यात्वस्याबन्धका असंख्याताः, असंख्येयसास्वादनानां तदबन्धकतया प्राप्यमाणत्वात् । शेषमार्गणाप्रायोग्याध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धका अनन्ताः सन्ति, अनन्तानन्तनिगोदानां तदबन्धकतया प्राप्यमाणत्वादिति ॥१०४३॥

अथ कार्मणकाययोगादिमार्गणासु तदाह–

> कम्मे कायव्व णवरि दुइअकसायउरलाण सखेज्जा।
> जाणऽत्थि पणिदिव्व उ पुमथीतेउदुगवेअगेसु सि ॥१०४४॥(गीतिः)

(प्रे०) 'कम्मे' इत्यादि, कार्मणकाययोगमार्गणायामप्रत्याख्यानावरणचतुष्कौदारिकशरीरनामकर्मरूपं प्रकृतिपञ्चकं वर्जयित्वा शेषाणां स्वप्रायोग्यप्रकृतीनामबन्धकाः काययोगौघमार्गणावदवसेयाः तदेवम्–मिथ्यात्वमोहनीयप्रमृतिप्रकृतिद्वादशकं वर्जयित्वा शेषाणां ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धकाः संख्येयाः, मिथ्यात्वमोहनीयप्रमृतिप्रकृत्यष्टकस्याबन्धका असंख्येयाः, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयनरकगतितिर्यग्गतित्रयजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कनरकानुपूर्वीवर्जानुपूर्वीत्रयखगतिद्विकत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासनामजिननामगोत्रद्वयरूपाणां चतुःपट्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धका अनन्ताः,भावनाऽप्यत्र काययोगौघमार्गणावद् भावनीया । अथाऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कौदारिकशरीररूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्याऽबन्धकाः प्रस्तुतमार्गणायामतिदेशानुसारेणाऽसंख्याताः प्राप्नुयुः, तच्च न संभवति, अतो विशेषद्योतनार्थं 'णवरि' इत्यादिनाह–द्वितीयकषायात्मकाऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्याऽबन्धकाः संख्याताः सन्ति, भावना पुनरेवम्–प्रकृतमार्गणायां द्वितीयकषायचतुष्कस्याऽबन्धकाः सयोगिकेवलिन एव विद्यन्ते, ते च संख्याताः सन्ति, तथौदारिकशरीरस्याऽबन्धकाश्चतुर्थगुणस्थानवर्तितिर्यङ्मनुष्या सयोगिकेवलिनश्च वर्तन्ते, ते च संख्याता एव, तस्मात्प्रकृतिपञ्चकस्याऽबन्धकाः संख्याता एवाऽभिहिताः, न तु काययोगौघमार्गणावदसंख्याताः, तत्र त्वसंख्यातैर्देशविरततिर्यग्भिर्निरुक्तप्रकृतिपञ्चकस्याऽबध्यमानत्वात् ।

'पुम' इत्यादि, पुरुषवेदस्त्रीवेदतेजोलेश्यापद्मलेश्यावेदकसम्यक्त्वमार्गणासु यासां प्रकृतीनामबन्धका उपलभ्यन्ते तासां ते पञ्चेन्द्रियौघमार्गणावद् वक्तव्याः । 'जाणऽत्थि' इत्यनेन विशेषं सूचयति–तद्यथा–पञ्चेन्द्रियमार्गणायां सर्वासां प्रकृतीनामबन्धकाः प्राप्यन्ते, अत्र तु न सर्वासां प्रकृतीनामबन्धकाः प्राप्यन्ते, परं यासां प्रकृतीनामबन्धकाः प्राप्यन्ते,तान् वय दर्शयामः–स्त्रीपुरुषवेदमार्गणाद्वये ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्कान्तरायपञ्चकरूपाणामष्टादशानां प्रकृतीनामबन्धका नैव प्राप्यन्ते तद्वर्जशेषप्रकृतीनामबन्धकाः सर्वथा पञ्चेन्द्रियौघवज्ज्ञातव्याः । तेजोलेश्यामार्गणायां त्वनन्तरोक्ताष्टादशप्रकृतीनां निद्राद्विकभयजुगुप्सावर्णचतुष्कतैजसकार्मणाऽगुरुलघूपघातनिर्माणरूपाणां ध्रुवबन्धित्रयोदशप्रकृतीनां बादरत्रिकपराघातोच्छ्वासरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्य चेति सर्वसंख्यया षट्त्रिंशत्प्रकृतीनामबन्धका नैव प्राप्यन्ते,एवमेव पद्मलेश्यामार्गणायां नवरं पञ्चे-

न्द्रियत्रसनाम्नोरप्यबन्धका नैव प्राप्यन्ते, मार्गणाद्वयेऽस्मिन्नुक्तप्रकृतिवर्जशेषबन्धप्रायोग्यप्रकृतीनामबन्धकाः पञ्चेन्द्रियौघवज्ज्ञातव्या इति । वेदकसम्यक्त्वमार्गणायामबन्धकानां परिमाणं त्वेवम्–प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्याबन्धकाः संख्याताः, सातवेदनीयादिद्वादशाहारकद्विकजिननाममनुष्यपञ्चकदेवद्विकवैक्रियद्विकाऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपाणामष्टाविंशतिप्रकृतीनामबन्धका असंख्याता वर्तन्ते, शेषप्रकृतीनामबन्धका नैव प्राप्यन्ते ॥१०४४॥

अथ नपुंसकवेदादिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतीनामबन्धकानां परिमाणमाह–

णपुमचउकसायेसुं दुअणाणअजयतिअसुहलेसासुं ।
अभवे मिच्छे अमणे तेसिं कायव्व जाणऽत्थि ॥१०४५॥

(प्रे०) 'णपुम' इत्यादि, नपुंसकवेदक्रोधमानमायालोभमत्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽसंयमकृष्णलेश्यानीललेश्याकापोतलेश्याऽभव्यमिथ्यात्वाऽसंज्ञिरूपासु चतुर्दशमार्गणासु यासां प्रकृतीनामबन्धका वर्तन्ते, तासां प्रकृतीनां तेऽबन्धकाः काययोगौघमार्गणावद् बोद्धव्याः, तद्यथा–यासां मिथ्यात्वाद्यप्रकाऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कौदारिकशरीरप्रकृतीनामबन्धका यायुक्तमार्गणासु सन्ति, तासु तासां तेऽसंख्याताः प्राप्यन्ते, यत्र शेषपञ्चत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतिषु यासां प्रत्याख्यानावरणकषायादीनामबन्धकाः सन्ति, तत्र तासां ते संख्यातप्रमाणा एव ज्ञेयाः, संयतमनुष्याणामेव तासामबन्धकतया प्राप्यमाणत्वादिति, शेषाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धका यासु यासां प्रकृतीनां सन्ति, तासु तासां प्रकृतीनां तेऽनन्ता ज्ञातव्याः ॥१०४५॥ इदानीं ज्ञानत्रिकादिषु प्रकृतमाह–

णाणतिगोहीसु उवसमे य धुवबधिपंचतीसाए ।
पुरिसपणिदिसुहागिइपरघूसाससुहखगईण ॥१०४६॥
तह तसचउगसुहगतिगउच्चाणं संखिया असंखेज्जा ।
सेसाण सेसासु य सव्वाउग्गाण जाणऽत्थि ॥१०४७॥

(प्रे०) 'णाणतिगोहीसु' इत्यादि, मतिज्ञानश्रुतज्ञानाऽवधिज्ञानावधिदर्शनोपशमसम्यक्त्वलक्षणासु पञ्चसु मार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कवर्जानां ज्ञानावरणीयादीनां पञ्चत्रिंशच्छेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनां पुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानपराघातोच्छ्वासशुभखगतित्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकसुभगसुस्वराऽऽदेयोच्चैर्गोत्ररूपाणां प्रकृतीनां चाऽबन्धकाः संख्येया वेदयितव्याः, संख्यातानामेव संयतमनुष्याणां तासामबन्धकतया प्राप्यमाणत्वादिति ! 'असखेज्जा' इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कवेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयदेवमनुष्यगतिद्वयौदारिकद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकप्रथमसंहननदेवमनुष्यानुपूर्वीद्वयस्थिरशुभयशःकीर्त्यस्थिराऽशुभायशःकीर्तिजिननामरूपाणामष्टाविंशतिशेषप्रकृतीनामबन्धका असंख्येयाः, मार्गणास्वासु वर्तमानाना जीवानामसंख्येयप्रमाणत्वात् । कैश्चित्प्रकृतीनामासां बध्यमानत्वात् कैश्चिचाऽबध्यमानत्वात् । 'सेसासु' इत्यादि, अत्राभिहितान्यासु मार्गणासु यासां प्रकृतीनामबन्धका जीवा

उपलभ्यन्ते, तेऽसंख्येया एव, शेषमार्गणासु जीवानामसंख्येयतया सद्भावात् । ताश्चेमाः शेषमार्गणाः-अष्टनरकमार्गणाचतुःपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणाऽपर्याप्तमनुष्यमार्गणासर्वार्थसिद्धवर्जशेषैकोनत्रिंशद्देवमार्गणारूपद्विचत्वारिंशद्गतिमार्गणाः, नवविकलेन्द्रियाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियरूपदशेन्द्रियमार्गणाः, ओघसूक्ष्मौघसूक्ष्मपर्याप्तसूक्ष्माऽपर्याप्तबादरौघबादरपर्याप्तबादराऽपर्याप्तभेदभिन्नाः सप्त पृथ्वीकायमार्गणाः सप्ताप्कायमार्गणाः सप्ततेजस्कायमार्गणाः सप्तवायुकायिकमार्गणाः ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदभिन्नास्तिस्रः प्रत्येकवनस्पतिकायमार्गणाः, अपर्याप्तत्रसकायमार्गणा वैक्रियकाययोगवैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणाद्वयम्, विभङ्गज्ञानमार्गणा, देशविरतिसंयममार्गणा मिश्रसास्वादनसम्यक्त्वमार्गणात्रयं चेति नवतिः शेषमार्गणाः । सूक्ष्मसंपराये तु सर्वेऽपि प्राणिनः स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धका एव तस्मादत्र तासामबन्धकानामभावः ॥१०४६-७॥ इति आयुष्कर्मवर्जशेषप्रकृतीनामबन्धकानां परिमाणम् ।

साम्प्रतं मार्गणास्वायुष्ककर्मबन्धकानां परिमाणमोघवदतिदिशन्नाह

तिरिये सव्वेगिंदियणिगोअवणकायुरालियदुगेसु ।
णपुमचउकसायेसु दुअणाणाजयअचक्खूसुं ॥१०४८॥
तिअसुहलेसाभवियरमिच्छत्तासण्णिगेसु आहारे ।
ओघव्व बंधगा खलु सप्पाउग्गाण आऊण ॥१०४९॥

(प्रे०) 'तिरिये' इत्यादि, तिर्यगोघमार्गणायामोघसूक्ष्मौघसूक्ष्मपर्याप्तसूक्ष्मापर्याप्तबादरौघबादरपर्याप्तबादराऽपर्याप्तभेदेन सप्तस्वेकेन्द्रियमार्गणासु सप्तसु च निगोदमार्गणासु वनस्पतिसामान्यमार्गणायां काययोगौघौदारिककाययोगौदारिकमिश्रकाययोगनपुंसकवेदक्रोधमानमायालोभमत्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽसंयमाऽचक्षुर्दर्शनकृष्णलेश्यानीललेश्याकापोतलेश्याभव्याऽभव्यमिथ्यात्वाऽसंज्ञ्याहारकमार्गणासु स्वप्रायोग्याणामायुष्काणां बन्धका ओघवदवसातव्याः, तदेवम् सप्तैकेन्द्रियमार्गणासु सप्तसु निगोदेषु वनस्पतिकाये औदारिकमिश्रकाययोगे च तिर्यगायुष्कस्य बन्धका अनन्ता मनुष्यायुष्कस्य बन्धकास्त्वसंख्याता वर्तन्ते, तथैतदतिरिक्तास्त्वत्रोक्तासु शेषमार्गणासु तिर्यगायुषो बन्धका अनन्ता शेषायुष्कत्रयस्य बन्धका असंख्याता अवसेयाः ॥१०४८-९॥ अथ गत्यादिक्रमेण प्रकृतमाह

णिरयपढमाइछणिरयदेवसहस्सारअतविउवेसु ।
तेउपउमसासायणतिणाणऽवहिसम्मवेअगेसु च ॥१०५०॥ (गीति)
मणुआउगस्स सखा इयराण असखिया णरे संखा ।
णारगदेवाऊण असखिया तिरिणराऊणं ॥१०५१॥

(प्रे०) 'णिरय' इत्यादि, नरकौघरत्नप्रभाशर्कराप्रभावालुकाप्रभापङ्कप्रभाधूमप्रभातमःप्रभानरकमार्गणासु देवौघभवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कसौधर्मेशानसनत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलोकलान्तकशुक्रसहस्राररूपासु द्वादशसु देवमार्गणासु वैक्रियकाययोगमार्गणायां तेजोलेश्यापद्मलेश्यासास्वादनसम्यक्त्वमतिज्ञानश्रुतज्ञानावधिज्ञानाऽवधिदर्शनसम्यक्त्वौघक्षयोपशमसम्यक्त्वरूपासु नवसु च मार्गणासु मनुष्या-

युष्कस्य बन्धकाः संख्येयाः सन्ति, यतो ह्यासु मार्गणासु वर्तमाना जीवा स्वभवाच्च्युत्वा यदि मनुष्यभवे जायन्ते, तर्हि पर्याप्तगर्भजमनुष्यत्वेनैव,मनुष्यगतौ च पर्याप्तगर्भजमनुष्यास्संख्येया एव वर्तन्ते। 'इयराण' इत्यादि, तेजोलेश्यापद्मलेश्यामार्गणयोः सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायां च ये देवतिर्यगायुष्कबन्धकाः, अत्रोक्तासु देवमार्गणासु नरकमार्गणासु च ये तिर्यगायुष्कबन्धकाः, तथा तिसृषु मतिज्ञानादिमार्गणासु सम्यक्त्वौघक्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणाद्वयेऽवधिदर्शनमार्गणायां च ये देवायुष्कबन्धकाः, ते प्रत्येकमसंख्येया ज्ञातव्याः, तद्यथा—मार्गणास्वासु वर्तमाना जीवा असंख्येया वर्तन्ते, स्वभवाच्च्युत्वा यत्र ते जायन्ते तत्राप्यसंख्या जीवा वर्तन्ते, तस्मान्मार्गणास्वासूक्तायुष्कबन्धका असंख्येयप्रमाणत्वेनोपलभ्यन्ते। 'संखा' इत्यादि; मनुष्यौघे नरकदेवायुष्कयोर्बन्धकाः संख्येयाः, अत्रैतदायुष्कद्वयस्य पर्याप्तगर्भजमनुष्यैरेव बध्यमानत्वात्। 'असंखिया' इत्यादि, तिर्यग्मनुष्यायुष्कयोर्बन्धका असंख्येयाः, मार्गणायामस्यामेतत्प्रकृतिबन्धस्य पर्याप्ताऽपर्याप्तमनुष्यसाधारणत्वात् ॥१०५०-५१॥ अथ पर्याप्तमनुष्यादिरूपासु कतिपयमार्गणासु शेषमार्गणासु च तदाह

दुणराणयाइगेसुं, आहारदुगमणपज्जवेसु तहा।
संजमसामइएसुं छेए परिहारसुक्कलेसेसुं ॥१०५२॥ (गीति)
संखेज्जा आऊण सप्पाउग्गाण बंधगा णेया।
सेसासु मग्गणासु अडसट्ठीए असंखेज्जा ॥१०५३॥

(प्रे०) 'दुणरा' इत्यादि, पर्याप्तमनुष्यमानुषीमार्गणयोरानतप्राणताऽऽरणाऽच्युतनवग्रैवेयकपञ्चानुत्तररूपास्वष्टादशदेवमार्गणासु, आहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगमनःपर्यवज्ञानसंयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिशुक्ललेश्याक्षायिकसम्यक्त्वरूपासु नवसु च मार्गणासु स्वप्रायोग्यायुष्कस्य बन्धकाः संख्येया ज्ञेयाः, तदित्थम्—पर्याप्तमनुष्यमानुषीमार्गणयोर्वर्तमाना जीवाश्चतुर्णामप्यायुष्काणां बन्धकाः, ते च संख्येयाः, मार्गणयोरनयोर्वर्तमानानामसुमतामेतावत्प्रमाणत्वात्। आनताद्यष्टादशदेवमार्गणासु वर्तमाना जीवाः केवलं मनुष्यायुष्कस्यैव बन्धकाः, ततश्च च्युत्वा तेषां मनुष्यभवे पर्याप्तगर्भजमनुष्यत्वेनैवोत्पद्यमानत्वात्, गर्भजमनुष्यास्तु संख्येया एव तस्मादासु देवमार्गणासु संख्येयप्रमाणत्वमायुष्कबन्धकानामुपदर्शितम्। आहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगमनःपर्यवज्ञानसंयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिरूपासु मार्गणासु वर्तमाना जीवा देवायुष्कस्यैव बन्धका भवन्ति, ते च संख्येयाः, यतो मार्गणास्वासु संख्येया एव जीवाः सन्ति। शुक्ललेश्याया मनुष्यायुष्कस्य बन्धका देवाः, देवायुष्कस्य च मनुष्या भवन्ति, ते च संख्येयाः, गर्भजमनुष्याणां संख्येयप्रमाणत्वात्। क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायामायुष्कस्य मूलप्रकृतीना बन्धकाः संख्याता वर्तन्ते, अतस्तदुत्तरप्रकृतीना बन्धकाः प्रत्येकमपि संख्याता एव प्राप्यन्ते। अत्रायुर्बन्धकाः कुतः संख्याता इति जिज्ञासायमस्यैव बन्धविधानग्रन्थस्य मूलप्रकृतिबन्धस्य प्रेमप्रभाटीकाऽवलोकनीया। 'सेसासु' इत्यादि, उक्तशेषास्वष्टषष्टिमार्गणासु स्वप्रायोग्यायुष्काणां बन्धका असंख्येया-

ज्ञातव्याः, ताश्चेमाः शेषमार्गणाः–सप्तमनरकमार्गणाः, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रिया-ऽपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रिययोनिमतीरूपाश्चतस्रो मार्गणाः, अपर्याप्तमनुष्यमार्गणा, नव विकलेन्द्रियमार्गणाः, पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणात्रयम्, सप्त पृथ्वीकायमार्गणाः, सप्ताऽप्कायमार्गणाः, सप्त तैजस्कायिकमार्गणाः, सप्तवायुकायिकमार्गणाः, ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेन तिस्रः प्रत्येकवनस्पतिकायमार्गणास्तिस्रस्त्रसकायमार्गणाः, पञ्चमनोयोगमार्गणाः, पञ्च वचनयोगमार्गणाः, स्त्रीवेदपुरुषवेदमार्गणाद्वयम्, विभङ्गज्ञानमार्गणा, देशविरतिसंयममार्गणा, चक्षुदर्शनमार्गणा, संज्ञिमार्गणा चेति ॥१०५२-३॥ साम्प्रतं मार्गणासु स्वप्रायोग्यायुष्काऽबन्धकानां परिमाणमुपदर्शयन्नाह–

तिरिये सव्वेगिंदियणिगोअवणकायुरालियदुगेसु ।
णपुमचउकसायेसु दुअणाणाजयअचक्खूसु ॥१०५४॥
तिअसुहलेसाभवियरसम्मेसु खइअमिच्छअमणेसु ।
आहारे आऊणं होअन्ति अबंधगाऽणंता ॥१०५५॥

(प्रे०) '**तिरिये**' इत्यादि, तिर्यगोघमार्गणायामोघसूक्ष्मौघपर्याप्तसूक्ष्माऽपर्याप्तसूक्ष्मबादरौघ-पर्याप्तबादराऽपर्याप्तबादरभेदभिन्नासु सप्तस्वेकेन्द्रियमार्गणासु,सप्तसु निगोदमार्गणासु वनस्पतिकायौघ-मार्गणायां काययोगौदारिककाययोगौदारिकमिश्रकाययोगनपुंसकवेदक्रोधमानमायालोभमत्यज्ञान-श्रुताज्ञानाऽसंयमाऽचक्षुर्दर्शनकृष्णलेश्यानीललेश्याकापोतलेश्याभव्याऽभव्यसम्यक्त्वौघक्षायिकसम्य-क्त्वमिथ्यात्वाऽसंज्ञ्याहारकमार्गणास्विति सर्वसंख्ययाऽष्टात्रिंशन्मार्गणासु स्वबन्धार्हायुष्काणामबन्धका अनन्ता विद्यन्ते, मार्गणास्वासु जीवानामनन्तानां विद्यमानत्वात् ॥१०५४-५५॥

दुमणुससव्वत्थेसु आहारदुगमणपज्जवेसु तहा ।
चउसंजमाइगेसुं संखाऽत्थि असंखियाऽण्णासु ॥१०५६॥

(प्रे०) '**दुमणुस**' इत्यादि, पर्याप्तमनुष्यमानुषीसर्वार्थसिद्धाहारककाययोगाहारकमिश्रकाय-योगमनःपर्यवज्ञानसंयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिरूपासु दशमार्गणासु स्वप्रायोग्या-युष्कस्याऽबन्धकाः संख्येया बोद्धव्याः, मार्गणास्वासु जीवानां संख्येयप्रमाणत्वात् । '**असंखिया**' इत्यादि, अत्राभिहितशेषमार्गणासु यथायोगं स्वप्रायोग्यायुष्काऽबन्धका असंख्येयाः, शेषमार्ग-णासु जीवानामसंख्येयप्रमाणतया वर्तमानत्वात् । ताश्चेमाः शेषमार्गणाः-तिर्यगोघपर्याप्तमनुष्य-मानुषीसर्वार्थसिद्धवर्जत्रिचत्वारिंशद्गतिमार्गणाः,नवविकलाक्षमार्गणास्त्रिपञ्चेन्द्रियमार्गणाश्चेति द्वाद-शेन्द्रियमार्गणाः, सर्वपृथ्व्यप्तेजोवायुकायप्रत्येकवनस्पतिकायत्रसकायमार्गणा इति चतुस्त्रिंशत् काय-मार्गणाः, पञ्चमनोयोगपञ्चवचनयोगवैक्रियकाययोगरूपा एकादशयोगमार्गणाः, स्त्रीपुरुषवेदमार्गणे, त्रिज्ञानविभङ्गज्ञानमार्गणाचतुष्कम्, देशविरतमार्गणा, चक्षुरवधिदर्शनमार्गणे, त्रिप्रशस्तलेश्यामार्गणाः, वेदकसास्वादनसम्यक्त्वमार्गणे, संज्ञिमार्गणा चेति सर्वसंख्यया पञ्चदशाधिकशतमार्गणा इति ॥१०५६॥

इति श्री प्रेमप्रभाटिकाविभूपिते बन्धविधाने उत्तरप्रकृतिबन्धे प्रथमाधिकारे नवमं परिमाणद्वारं समाप्तम् ॥

अथ दशमं क्षेत्रद्वारम्

अधुना क्रमलब्धं दशममुत्तरप्रकृतिबन्धकाऽबन्धकानां क्षेत्रद्वारं विविवक्षिषुरादावोघतो बन्धकानां क्षेत्रमुपदर्शयन्नाह

णिरयणरसुराउविउवछक्काहारदुगतित्थणामाण ।
लोगासंखियभागे सेसाणं बंधगाऽत्थि सव्वजगे ॥१०५७॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'णिरय' इत्यादि, नरकनरदेवायुष्कत्रयस्य देवद्विकनरकद्विकवैक्रियद्विकलक्षणस्य वैक्रियषट्कस्याऽऽहारकद्विकस्य जिननामकर्मणश्च बन्धका वैशाखसंस्थानवत्स्थितपदकटिसंस्थकरयुग्मनराकृतिलोकक्षेत्रस्याऽसंख्येयतमे भागे वर्तन्ते, **भावनाप्रकारस्त्वेवम्**–अत्र पुनरयं नियमः, मार्गणासु वर्तमाना विवक्षितप्रकृतिबन्धका वा प्राणिनोऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशसंख्यापेक्षया न्यूना भवेयुः, तर्हि वायुकायिकवर्जानां तेषां क्षेत्रं लोकस्याऽसंख्येयतमभागप्रमितमेव प्राप्नुयात्, यदि चाऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशसंख्याका भवेयुस्तर्हि तेषां क्षेत्रं लोकप्रमितं स्यात् । नरकदेवायुषो वैक्रियषट्कस्य च बन्धकाः पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चो मनुष्याश्च भवन्ति, तेषां चाऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशानां संख्यापेक्षया न्यूनत्वेन स्वस्थानस्य च तिर्यग्लोक एव सत्त्वेन क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणमेव प्राप्यते । मनुष्यायुष्कस्याऽऽहारकद्विकजिननाम्नश्च बन्धका असंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणा न विद्यन्ते, तस्मात् तेषां क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमितमेव प्राप्यते । **'सेसाण'**मित्यादि, अत्राऽभिहितप्रकृतिव्यतिरिक्तानां शेषप्रकृतीनां बन्धका जीवाः सर्वस्मिन् जगति वर्तन्ते, यतः सूक्ष्मैकेन्द्रियजीवा अपि शेषाः प्रकृतीर्बध्नन्ति, ते च विश्वविश्वं व्याप्य वर्तन्ते । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः–सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः, वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयं जातिपञ्चकमौदारिकद्विकं संहननषट्कं संस्थानषट्कं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयं खगतिद्वयं त्रसदशकं स्थावरदशकमातपोद्योतपराघातोच्छ्वासनामानि गोत्रद्वयं तिर्यगायुश्चेत्येकषष्टिश्चाध्रुवबन्धिप्रकृतय इति॥१०५७॥

इत्येवमोघत उत्तरप्रकृतिबन्धकाना क्षेत्रप्ररूपणा कृता ।

इदानीमुत्तरप्रकृत्यबन्धकानां क्षेत्रमोघतो दिदर्शयिषुराह

धुवबंधिउरालाणं केवलिखेत्ते अबंधगा णेया ।
सेसाणं पयडीण विण्णेया सव्वलोगम्मि ॥१०५८॥

(प्रे०) 'धुवबंधि' इत्यादि, सप्तचत्वारिंशज्ज्ञानावरणीयप्रभृतिध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्चाऽबन्धकानां क्षेत्र केवलज्ञानिनां यावत् क्षेत्रं लभ्यते तावत्प्रमाणमवसेयम् । **'सेसाण'**मित्यादि, उक्तप्रकृतिविभिन्नानां द्विसप्ततिसंख्याकाना शेषाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धकाः सर्वस्मिन् लोके विज्ञेयाः, यतः सूक्ष्मैकेन्द्रियजीवाः शेषाभ्यः प्रकृतिभ्यः कासांचिज्जिननामप्रभृतिप्रकृतीनां बन्धं सदैव भवस्वभावेनैव न विदधते कासांचित्प्रकृतीनां परावर्तमानतया बध्यमानत्वेन बन्धका अबन्ध-

काश्च तासां सदैवोपलभ्यन्ते इत्येवं रीत्या शेषप्रकृतीनामबन्धकत्वेनोपलभ्यमानाः सूक्ष्मैकेन्द्रिय-जीवाः समग्रलोके वर्तन्ते ॥१०५८॥

ननु ध्रुवबन्धिप्रभृतिप्रकृत्यबन्धकानां क्षेत्रं केवलिक्षेत्रप्रमाणमुपदर्शितम्, तत्र केवलिक्षेत्रमिति शब्दस्य कोऽर्थः कियत्प्रमाणं वा तदित्याशङ्कामपाकर्तुमाह—

केवलिखेत्तं भागो असंखिययमो हवेज्ज लोगस्स ।
लोगस्स असंखेज्जा बहुभागा सव्वलोगो वा ॥१०५९॥

(प्रे०) 'केवलिखेत्तं' इत्यादि, यस्मिन् क्षेत्रे केवलज्ञानिनामुपलब्धिर्भवति तत्क्षेत्रं केवलिक्षेत्रमित्युच्यते । तच्च लोकस्याऽसंख्येयतमभागप्रमाणमसंख्यातबहुभागप्रमाणं सर्वलोक-प्रमाणं वा भवति, इदमुक्तं भवति—भवस्थकेवलज्ञानिनः स्वस्थाने समुद्घातावस्थायां चेति द्विधा-प्राप्यन्ते, तत्र स्वस्थानस्य क्षेत्रं लोकस्याऽसंख्याततमभागप्रमाणमेव, समुद्घातक्षेत्रं च त्रिविधम्, समुद्घातस्वरूपं च षडशीतिनामचतुर्थकर्मग्रन्थवृत्त्यक्षरैरेव दर्श्यते तद्यथा- समुद्घातं च कुर्वन् केवली प्रथमसमये बाहुल्यतः स्वशरीरप्रमाणमूर्ध्वमधश्च लोकान्तपर्यन्तमात्मप्रदेशानां संघातदण्डं दण्डस्थानीयं ज्ञानाभोगतः करोति, द्वितीयसमये तु तमेव दण्डं पूर्वापरदिग्द्वयप्रसारणात् पार्श्वतो लोकान्तगामिकपाट-मिव कपाटं करोति, तृतीयसमये तमेव कपाटं दक्षिणोत्तरदिग्द्वयप्रसारणाद् मन्थसदृशं मन्थानं करोति,लोका-न्तप्रापिणमेव । एवं च लोकस्य प्रायो बहुपूरितं, मन्थान्तराण्यपूरितानि भवन्ति, अनुश्रेणिगमनात् । चतुर्थे तु समये तान्यपि मन्थान्तराणि सह लोकनिष्कुटैः पूरयति, ततश्च सकलो लोकः पूरितो भवतीति । तदन-न्तरमेव पञ्चमे समये यथोक्तक्रमात् प्रतिलोमं मन्थान्तराणि संहरति, जीवप्रदेशान् सकर्मकान् सङ्कोचयति, षष्ठे समये मन्थानमुपसंहरति घनतरसङ्कोचनात्, सप्तमे समये कपाटमुपसंहरति दण्डात्मनि सङ्कोचनात्, अष्टमे समये दण्डं समुपहृत्य शरीरस्थ एव भवति । तस्यां च समुद्घातावस्थायां यदा केवलज्ञानिनः प्रथमद्वितीयषष्ठसप्तमाऽष्टमसमयेषु वर्तन्ते, तदा तेषां लोकस्याऽसंख्येयतमभागप्रमाणं क्षेत्रमुपलभ्यते । यदा च ते समुद्घाते तृतीयपञ्चमसमययोर्वर्तन्ते, तदा लोकाऽसंख्येयबहुभागप्रमाणं क्षेत्रं समुप-लभ्यते, चतुर्थसमये च सम्पूर्णलोकप्रमाणं क्षेत्रं तेषां प्राप्तं भवति, आत्मप्रदेशैरखिललोकस्य तदा तैर्व्याप्तत्वात् ॥१०५९॥

साम्प्रतमादेशतो मार्गणास्वुत्तरप्रकृतीनामायुष्ककर्मवर्जानां बन्धकानां क्षेत्रमाह—

तिरिये एगिंदियपणकायणिगोएसु सव्वसुहुमेसुं ।
कायोरालदुगेसुं कम्मणपुंचउकसायेसु ॥१०६०॥
अण्णाणदुगे अजए अचक्खुदंसणतिअसुहलेसासुं ।
भवियेयरमिच्छेसुं असण्णिआहारगियरेसुं ॥१०६१॥
ओघव्व बंधगा खलु सप्पाउग्गाण आउवज्जाण ।

(प्रे०) 'तिरिये' इत्यादि, प्रथमं मार्गणास्वायुर्वर्जतत्तत्प्रकृतिबन्धकानां क्षेत्राण्यागमायेमे नियमा ज्ञेया भवन्ति ।

तद्यथा–(१) यासु मार्गणासु यासां प्रकृतीनां बन्धकजीवाः सूक्ष्मा अपि सन्ति, तासां बन्धकानां क्षेत्रं सर्वलोकप्रमाणमवसातव्यमिति ।

(२) अत्र यासां प्रकृतीनां बन्धकाः सूक्ष्मा न सन्ति, तासां बन्धकानां क्षेत्रं लोकासंख्येयभागमात्रमवसेयम् ।

(३) (i) यासु मार्गणासु सूक्ष्मजीवानां प्रवेशो नास्ति किन्तु मार्गणागतजीवा असंख्येयलोकाकाशप्रमाणास्ततोऽधिका अनन्ता वा स्युस्तत्र सूक्ष्मैकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकानां क्षेत्रं सर्वलोकप्रमाणं बादरनाम्नो बन्धकानां क्षेत्रं देशोनलोकप्रमाणं च ज्ञेयम् , यतो हि तैर्जीवैर्मरणसमुद्घातावस्थायां स्वात्मप्रदेशैः प्रतिसमयं सर्वलोको देशोनलोकोश्च क्रमेण व्याप्तो भवति ।

(ii) शेषप्रकृतिबन्धकतया यदि तृतीयनियमोक्तमार्गणासु बादरवायुकायिका अपि सन्ति, तर्हि तासां प्रकृतीनां बन्धकाना क्षेत्रं देशोनलोकप्रमाणं ज्ञातव्यम् , यतो बादरवायुकायिकानां स्वस्थानक्षेत्रमपि देशोनलोकप्रमाणमस्ति ।

(iii) यदि तासु शेषप्रकृतिबन्धकतया बादरवायुकायिका अपि न सन्ति, तर्हि तासां प्रकृतीनां बन्धकानां क्षेत्रं लोकासंख्येयभागमात्रं ज्ञेयम् ।

(४) यत्र मार्गणासु सूक्ष्मजीवानां बादरवायुकायिकानां वा प्रवेशो नास्ति, तथा मार्गणागतजीवा असंख्यलोकाकाशप्रदेशप्रमाणतोऽतीवन्यूनाः स्युः, तत्र सर्वप्रकृतीनां बन्धकानां क्षेत्रं लोकासंख्येयभागमात्रमवसेयमिति, नवरं सातवेदनीयबन्धकत्वेन यदि सयोगिकेवलिनोऽपि वर्तन्ते, तर्हि सातवेदनीयबन्धकक्षेत्रं केवलिक्षेत्रं वक्तव्यम् । अत्रोक्तनियमानुसारेण मार्गणासु बन्धकानां क्षेत्रं उपपादनीयम् । अथ प्रस्तुतं प्रस्तूयते

तिर्यगोघैकेन्द्रियौघपृथ्वीकायौघाऽप्कायौघतेजस्कायौघवायुकायिकौघवनस्पतिकायौघनिगोदौघरूपा अष्टौ मार्गणाः सूक्ष्मौघसूक्ष्मपर्याप्तसूक्ष्माऽपर्याप्तभेदभिन्नास्तिस्र एकेन्द्रियमार्गणाः तिस्रः पृथ्वीकायमार्गणाः तिस्रोऽप्कायमार्गणाः तिस्रस्तेजस्कायमार्गणाः तिस्रो वायुकायिकमार्गणास्तिस्रः साधारणवनस्पतिकायमार्गणाः काययोगौघौदारिकतन्मिश्रकाययोगमार्गणात्रयं कार्मणकाययोगमार्गणा नपुंसकवेदमार्गणा क्रोधमानमायालोभलक्षणाश्चतस्रः कषायमार्गणा मत्यज्ञानश्रुताज्ञानमार्गणाद्वयमसंयमाऽचक्षुर्दर्शनमार्गणे कृष्णनीलकापोतलेश्यालक्षणमार्गणात्रयं भव्याभव्यमिथ्यात्वाऽसंज्ञ्याहारकानाहारकमार्गणाषट्कं चेत्यष्टचत्वारिंशन्मार्गणास्वायुष्कर्मवर्जानां स्वप्रायोग्योत्तरप्रकृतीनां बन्धकानां क्षेत्रमोघवद् विज्ञातव्यम् । तदेवम्–काययोगौघौदारिककाययोगाऽचक्षुर्दर्शननपुंसकवेदकषायचतुष्कभव्याहारकमार्गणासु वैक्रियषट्काहारकद्विकजिननामप्रकृतिबन्धकानाम् , असंयमकृष्णनीलकापोतलेश्यामार्गणासु वैक्रियषट्कजिननामप्रकृतिबन्धकानाम् , तिर्यगोघमत्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽभव्यमिथ्यात्वाऽसञ्ज्ञिमार्गणासु वैक्रियषट्कबन्धकानाम् , औदारिकमिश्रानाहारककार्मणकाययोगमार्गणासु सुरद्विकवैक्रिय-

द्विकजिननामप्रकृतिबन्धकानां च लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणं क्षेत्रमस्ति, अत्रोक्तप्रकृतिव्यतिरिक्ताना स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धकानां च क्षेत्रं सकललोकप्रमाणमस्ति । एतद्व्यतिरिक्तप्रकृताभिहितैकेन्द्रियादिमार्गणासु वैक्रियषट्काहारकद्विकजिननामवर्जानां शेषप्रकृतीनां बन्धकानां क्षेत्र निखिललोकप्रमाणमस्ति । भावनाप्रकारस्तत्रत्रोघतोऽवसेयः ॥१०६०१॥

अथ पर्याप्तबादरवायुकायमार्गणायां तदाह -

देसेणूणे　　लोगे　　बायरपज्जत्तवाउम्मि　　॥१०६२॥

(प्रे०) 'देसेणूणे' इत्यादि, बादरपर्याप्तवायुकायिकमार्गणायामायुष्कर्मवर्जस्वप्रायोग्यप्रकृतिबन्धका देशोनलोके वर्तन्ते, तेषां देशोनलोकप्रमाणं क्षेत्रमस्तीति यावत्, यतो बादरवायुकायिका जीवाः पर्वतादीनां घनप्रदेशं विहाय स्वस्थानापेक्षया शेषसर्वलोके वर्तन्ते । उक्तं च प्रज्ञापनायाम्— कहि ण भते बादरवायुकाइयाण ठाणा पणत्ता ? गोयमा सट्ठाणेण सत्तसु घणवाएसु सत्तसु घणवायवलएसु सत्तसु तणुवाएसु सत्तसु तणुवायवलयेसु अधोलोए पायालेसु भवणेसु भवणपत्थडेसु भवणछिद्देसु भवणनिक्खुडेसु निरएसु निरयावलियासु निरयपत्थडेसु निरयछिद्देसु निरयनिक्खुडेसु उड्ढलोए कप्पेसु विमाणेसु विमाणावलियासु विमाणपत्थडेसु विमाणछिद्देसु विमाणनिक्खुडेसु तिरियलोए पाईण पईण दाहिणा उदीण सव्वेसु चेव लोगागासछिद्देसु लोगनिक्खुडेसु य एत्थ बादरवाउकाइआण पज्जत्तगाण ठाणा पण्णत्ता .... सट्ठाणेण लोयस्स असखेज्जेसु भागेसु ॥१०६२॥

अथ सर्वबादरैकेन्द्रियादिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां क्षेत्रं निरूपयितुमाह

सव्वेसु　एगिंदियबायरभेएसु　णरदुगुच्चाण　।
लोगासखसे इह तह बायरवाउतदसमत्तेसु　॥१०६३॥　(गीति·)
णेया　सुहुमेगिंदियजोग्गाण　पचसयरिपयडीण　।
सव्वजगे　सेसाण　हवन्ति　देसूणलोगम्मि　॥१०६४॥

(प्रे०) 'सव्वेसु' इत्यादि बादरैकेन्द्रियौघपर्याप्तबादरैकेन्द्रियाऽपर्याप्तबादरैकेन्द्रियरूपासु तिसृषु मार्गणासु मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रलक्षणप्रकृतित्रयबन्धकानां क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणमवसातव्यम्, यतो हि मार्गणात्रयेऽस्मिन् भवस्वभावेनैव तेजस्कायवायुकायिकजीवाः प्रकृतित्रयमेतन्नैव बध्नन्ति, तदितरे पुनर्बध्नन्ति, तेषां क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमितमेव विद्यते, तेषां स्वस्थानस्य तावन्मितत्वात् । विशेषभावना तृतीयनियमतृतीयांशेन कार्या । 'इह' इत्यादि, आसु बादरैकेन्द्रियमार्गणासु तथा बादरवायुकायिकौघाऽपर्याप्तबादरवायुकायिकलक्षणयोर्मार्गणयोः सूक्ष्मैकेन्द्रियप्रायोग्याणां पञ्चसप्ततिप्रकृतीनां बन्धकाः सकललोके वर्तन्ते, भावना तृतीयनियमप्रथमांशेन कार्या, ताश्चेमाः सूक्ष्मैकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतयः—ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणनवक मोहनीयचतुर्विंशतिकमन्तरायपञ्चकं वेदनीयद्विकं तिर्यग्द्विकमेकेन्द्रियजातिर्हुण्डकसंस्थानमौदारिकतैजसकार्मणशरीरत्रय वर्णचतुष्कमगुरुलघूपघातनिर्माणपराघातोच्छ्वासनामानि दुःस्वरवर्जस्थावरनवक स्थिरशुभपर्याप्तप्रत्येकनामानि नीचैर्गोत्र चेति पञ्चसप्ततिः । 'सेसाण'मित्यादि, स्त्रीपुरुषवेदद्वय द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कमौदारिकाङ्गोपाङ्ग संहननषट्कं प्रथमादिसंस्थानपञ्चक खगतिद्विक त्रसबादरसुभगत्रिकयशःकीर्तिदुः-

स्वरनामान्यातपोद्योतनाम्नी चेत्येकोनत्रिंशच्छेषप्रकृतीनां बन्धका देशोनलोके भवन्ति, मार्गणास्वासु वायुकायिकानामपि तासां बन्धकत्वात्, तेषां स्वस्थानक्षेत्रस्य देशोनलोकप्रमाणत्वाच्च। ॥१०६३-६४॥ अथ बादरपृथ्वीकायिकादिमार्गणासु प्रकृतमाह

> बायरपुहविदगागणिणिगोअपत्तेअतदसमत्तेसु ।
> बायरपज्जणिगोए ऊणजगे बायरस्साऽत्थि ॥१०६५॥
> णेया सुहमेगिंदियपाउग्गापणसयरीअ सव्वजगे ।
> लोगासंखियभागे सप्पाउग्गाण सेसाण ॥१०६६॥

(प्रे०) 'बायर' इत्यादि, बादरपृथिवीकायौघबादराऽप्कायौघबादरतेजस्कायौघबादरसाधारणवनस्पतिकायौघबादरप्रत्येकवनस्पतिकायौघरूपासु पञ्चसु मार्गणासु, अपर्याप्तबादरपृथ्वीकायाऽपर्याप्तबादराऽप्कायाऽपर्याप्तबादरतेजस्कायाऽपर्याप्तबादरसाधारणवनस्पतिकायाऽपर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिकायरूपासु पञ्चमार्गणासु, बादरपर्याप्तसाधारणवनस्पतिकायमार्गणायां च बादरनामकर्मबन्धकैर्देशोनजगद् व्याप्तम्, अपर्याप्तबादरवायुकायिकतयोत्पित्सुभिस्तत्तन्मार्गणावर्तिजीवैः प्रतिसमयं देशोनलोकक्षेत्रस्य पूर्यमाणत्वात्। तास्वेव मार्गणासु सूक्ष्मैकेन्द्रियप्रायोग्याणां प्रागुक्तानां पञ्चसप्ततिप्रकृतीनां बन्धकाः सर्वस्मिन् जगति वर्तन्ते, सूक्ष्मैकेन्द्रियतया जायमानानां मार्गणास्वासु विद्यमानानां सूक्ष्मैकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकानां जीवानां स्वात्मप्रदेशैः समुद्घातकाले सर्वलोकस्य व्याप्तत्वात्। '**लोगासंखियभागे**' इत्यादि, सूक्ष्मैकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिवर्जानां शेषप्रकृतीनां बन्धका लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणक्षेत्रे वर्तन्ते, प्रकृतमार्गणासु वर्तमानानां शेषप्रकृतिबन्धकानां जीवानां स्वस्थानापेक्षया समुद्घातापेक्षया वा लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणक्षेत्रे सद्भावात्। ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—स्त्रीपुरुषवेदद्वयं मनुष्यगतिरेकेन्द्रियजातिवर्जजातिचतुष्कमौदारिकाङ्गोपाङ्गं संहननषट्कं प्रथमादिसंस्थानपञ्चकं मनुष्यानुपूर्वी खगतिद्वयं त्रससुभगत्रिकयशःकीर्तिनामदुःस्वरातपोद्योतनामान्युच्चैर्गोत्रं चेत्येकत्रिंशच्छेषप्रकृतयः ॥१०६५-६॥

इदानीं मनुष्यादिमार्गणासु प्रस्तुतमाह—

> तिणरदुपणिंदितसगयवेअविरइसुक्कसम्मखइएसुं ।
> केवलिखेत्ते सायस्सियरेसिं जगअसखसे ॥१०६७॥

(प्रे०) '**तिणर**' इत्यादि, मनुष्यौघपर्याप्तमनुष्यमानुषीपञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौघपर्याप्तत्रसगतवेदसंयमौघशुक्ललेश्यासम्यक्त्वौघक्षायिकसम्यक्त्वलक्षणासु द्वादशसु मार्गणासु सातवेदनीयबन्धकानां क्षेत्रं केवलिक्षेत्रप्रमितमवसेयम्, मार्गणास्वासु केवलज्ञानिनां समावेशात्। "**इयरेसिं**" इत्यादि, मार्गणास्वासु सातवेदनीयवर्जस्वप्रायोग्यशेषप्रकृतिबन्धकानां क्षेत्रं जगतोऽसंख्येयतमभागप्रमाणमस्ति, यतोऽधिकृतमार्गणागतजीवानामसंख्येयलोकतोऽतीवस्तोकत्वात् ॥१०६७॥

साम्प्रतमकषायादिमार्गणासु तथा शेषमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां क्षेत्रमाह

सायस्स बंधकाऽत्थि अकसायकेवलदुगाहखायेसु
केवलिखेत्ते अण्णह सव्वेसिं जगअसखस ॥१०६८॥

(प्रे०) "सायस्स" इत्यादि, अकषायकेवलज्ञानकेवलदर्शनयथाख्यातसंयमलक्षणासु चतसृषु मार्गणासु सातवेदनीयस्य बन्धकाः केवलिक्षेत्रे वर्तन्ते, केवलिना मार्गणास्वासु प्रवेशात् ।

"अण्णह" इत्यादि, कथितशेषमार्गणासु स्वप्रायोग्याणां सर्वासां प्रकृतीनां बन्धका लोकस्याऽसंख्येयतमभागे वर्तन्ते. शेषमार्गणागतजीवानां क्षेत्रस्य स्वस्थानापेक्षया समुद्घातापेक्षया वा जगतोऽसंख्याततमभागप्रमाणत्वात् , ताश्चेमाः शेषमार्गणाः–अष्टौ नरकमार्गणाः, चतस्रस्तिर्यक्पञ्चेन्द्रियमार्गणाः, अपर्याप्तमनुष्यमार्गणास्त्रिशद्देवमार्गणाः, सर्वद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियमार्गणाः, अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणा, बादरपर्याप्तपृथ्व्यप्तेजस्कायपर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिकायमार्गणाः, अपर्याप्तत्रसकायमार्गणा पञ्चमनोयोगमार्गणाः, पञ्चवचनयोगमार्गणाः, वैक्रियकाययोगवैक्रियमिश्रकाययोगाऽऽहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगमार्गणाः स्त्रीवेदपुरुषवेदमार्गणाद्वयम् , मतिज्ञानश्रुतज्ञानाऽवधिज्ञानमनःपर्यवज्ञानविभङ्गज्ञानरूपाः पञ्चमार्गणाः, सामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसंपरायदेशविरतिरूपाः पञ्च संयममार्गणाः, चक्षुर्दर्शनावधिदर्शनमार्गणाद्वयम् , तेजःपद्मलेश्याद्वयम् ,क्षयोपशमोपशमसास्वादनमिश्रसम्यक्त्वमार्गणाचतुष्कम्, सज्ञिमार्गणा चेति त्रिनवतिमार्गणाः॥१०६८॥

साम्प्रतमादेशतो मार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकाना क्षेत्रमुपदर्शयन्नाह

ओघव्व जाणियव्वा काये भविये तहा अणाहारे ।
सव्वेसिं पयडीण अबंधगा आउवज्जाण ॥१०६९॥

(प्रे०) "ओघव्व" इत्यादि, काययोगौघभव्याऽनाहारकाख्यासु तिसृषु मार्गणासु स्वप्रायोग्याणामायुष्कमवर्जानां सर्वासां प्रकृतीनामबन्धकानां क्षेत्रमोघवदवमातव्यम् ,तदेवम् ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनाम्नश्चाऽबन्धकाः केवलिक्षेत्रे ज्ञातव्याः, तत्र लोकासंख्यभागक्षेत्रमनाहारके अयोगिकेवलिसिद्धजीवानाश्रित्य प्राप्यत इति । वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं गतिचतुष्कं जातिपञ्चकमौदारिकाङ्गोपाङ्गं वैक्रियद्विकमाहारकद्विकं संहननषट्कं संस्थानषट्कमानुपूर्वीचतुष्कं खगतिद्वयं त्रसदशकं स्थावरदशकमातपोद्योतपराघातोच्छ्वासजिननामानि गोत्रद्वयं चेति प्रकृतीनामष्टषष्टेरबन्धकाना क्षेत्रं काययोगौघभव्यमार्गणयोः सर्वलोकप्रमाणमवसातव्यम् ,अनाहारकमार्गणायां च नरकद्विकाहारकद्विकप्रकृतिचतुष्कवर्जानामासामेव प्रकृतीना सर्वलोकव्यापिनां सूक्ष्मजीवानामपि आसां प्रकृतीनामबन्धकत्वात् ॥१०६९॥ अथ तिर्यगोघमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां क्षेत्रमुपदर्शयति–

तिरिये असंखभागे जगस्स वारधुवबंधिउरलाण ।
णेया सव्वजगे सिं सप्पाउग्गाण जाणऽत्थि ॥१०७०॥

((प्रे०) 'तिरिये' इत्यादि, तिर्यगोघमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कमौदारिकशरीरनामकर्मरूपाणां त्रयोदशप्रकृतीनामबन्धकानां

क्षेत्रं लोकासंख्येयतमभागमात्रमवसेयम् , लोकासंख्येयभागमात्रव्यापिनां केषाञ्चित्तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाणामासामबन्धकतया भावात् । "सव्वजगे" इत्यादि, मार्गणायामस्यां शेषासु प्रकृतिषु यासां प्रकृतीनामबन्धका सन्ति, तासां ते सर्वलोके भवन्ति, मार्गणायामस्यां सूक्ष्मजीवानामपि तदबन्धकत्वात् । ताश्चेमाः—वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कानुपूर्वीचतुष्कखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वास--गोत्रद्वयरूपाः पञ्चषष्टिः प्रकृतय इति ॥१०७०॥

साम्प्रतं मनुष्यौघादिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां क्षेत्रं प्रदर्शयन्नाह

तिणरदुपणिंदितसगयवेअविरइसुक्कसम्मखइएसुं ।
सायस्स असखंसे जगस्स सेसाण केवलियखेत्ते ॥१०७१॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'तिणर' इत्यादि, मनुष्यौघपर्याप्तमनुष्यमानुषीपञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौघपर्याप्तत्रसगतवेदसंयमौघशुक्ललेश्यासम्यक्त्वौघक्षायिकसम्यक्त्वलक्षणासु द्वादशसु मार्गणासु सातवेदनीयास्याऽबन्धका जगतोऽसंख्येयतमभागप्रमाणे क्षेत्रे भवन्ति, भावनाविधिस्त्वेवम्—मार्गणास्वासु त्रयोदशगुणस्थानगता जीवाः सातवेदनीयस्याऽबन्धकतया न प्राप्यन्ते, अतः केवलिसमुद्घातगतक्षेत्रस्याऽप्राप्तिस्तेन तेषां सर्वेषां क्षेत्रं लोकाऽसंख्याततमभागप्रमाणमेवाऽस्ति । 'सेसाण' इत्यादि, सातवेदनीयवर्जशेषस्वप्रायोग्यप्रकृतीनामबन्धकाः केवलिक्षेत्रे वेदयितव्याः, मार्गणास्वासु समुद्घातगतकेवलिनामबन्धकतया प्राप्यमाणत्वात् ॥१०७१॥ अथैकेन्द्रियौघादिमार्गणास्वाह

तेसिं एगिंदियपणकायणिगोएसु सव्वसुहमेसुं ।
होअन्ति सव्वलोगे सप्पाउग्गाण जाणऽत्थि ॥१०७२॥

(प्रे०) 'तेसिं' इत्यादि, एकेन्द्रियौघपृथ्वीकायौघाप्कायौघतेजस्कायौघवायुकायौघवनस्पतिकायौघनिगोदौघरूपासु सप्तसु मार्गणासु ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेन तिसृषु सूक्ष्मैकेन्द्रियमार्गणासु तिसृषु सूक्ष्मपृथ्वीकायमार्गणासु तिसृषु सूक्ष्माप्कायमार्गणासु तिसृषु सूक्ष्मतेजस्कायमार्गणासु तिसृषु सूक्ष्मवायुकायिकमार्गणासु तिसृषु सूक्ष्मनिगोदमार्गणासु चेत्यष्टादशसूक्ष्ममार्गणासु यासां प्रकृतीनामबन्धका वर्तन्ते, तासां ते सकललोके वर्तमाना अवसातव्याः, आसु मार्गणासु सूक्ष्मजीवानां प्रवेशात् , ताश्चेमा अबन्धप्रायोग्याः प्रकृतयः-वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयजातिपञ्चकौदारिकाऽङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानषट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयविहायोगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासगोत्रद्वयरूपा एकोनषष्टिः प्रकृतयः । तेजस्कायवायुकायसत्कमार्गणासु तिर्यग्द्विकमनुष्यद्विकगोत्रद्विकविरहितास्त्रिपञ्चाशत्प्रकृतयो विज्ञेयाः ॥१०७२॥

एतर्हि बादरैकेन्द्रियादिमार्गणास्वाह

हुंडणपुमिगिंदियथावरदुगऽणादेयदुहगअजसाण ।
सव्वेसुं एगिंदियवायरभेएसु ऊणजगे ॥१०७३॥
लोगस्स असंखयमे भागे तिरियदुगणीअगोआण ।
होअन्ति सव्वलोगे अडयालीसाअ सेसाणं ॥१०७४॥

(प्रे०) 'हुंड' इत्यादि, बादरैकेन्द्रियौघपर्याप्तबादरैकेन्द्रियाऽपर्याप्तबादरैकेन्द्रियलक्षणासु तिसृषु मार्गणासु हुण्डकसंस्थाननपुंसकवेदैकेन्द्रियजातिस्थावरसूक्ष्माऽनादेयदुर्भगाऽयशःकीर्तिरूपस्य प्रकृत्यष्टकस्याऽबन्धकानां क्षेत्र देशोनलोकमानमस्ति. भावनाप्रकारस्त्वेवम् मार्गणास्वासु वर्तमाना जीवा यदा प्रकृतप्रकृत्यष्टकेप्रकृतिप्रतिपक्षभूतप्रकृतिबन्धका भवन्ति, तदा ते प्रकृतप्रकृत्यष्टकस्याऽबन्धका भवन्ति । सूक्ष्मेषूत्पद्यमानानां मरणसमुद्घातावस्थायां प्रकृतीनामासामबन्धकतयाऽप्राप्यमाणत्वेन स्वस्थानक्षेत्रस्य प्राधान्यम् । तच्च बादरवायुकायिकानाश्रित्य देशोनलोकप्रमाणमस्ति । "लोगस्स" इत्यादि, तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतीनामबन्धका लोकस्याऽसख्यातमभागप्रमाणे क्षेत्रे विद्यन्ते, भावना पुनरेवम् मार्गणास्वासु ये मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रप्रकृतिबन्धकाः सन्ति ते तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतित्रयस्याऽबन्धका ज्ञातव्याः, मनुष्कद्विकोच्चैर्गोत्रप्रकृतिबन्धकतया मार्गणास्वासु वर्तमानेषु बादरपृथ्वीकायाऽप्कायवनस्पतिकायिकेष्वेव प्राप्यन्ते, तेष्वपि न सर्वे, परं केचन एव । बादरपृथ्वीकायाऽप्कायवनस्पतिकायिकाना स्वस्थानक्षेत्रं लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमितमेवाऽस्ति, अतस्तावत्प्रमाणमेवाऽत्र तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृत्यबन्धकानां क्षेत्रं प्राप्यते । ननु तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृत्यबन्धकानामत्र समुद्घातापेक्षया क्षेत्र कथं लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणमेव, 'समुग्घाएण सव्वलोए' इत्यादि, प्रज्ञापनावचनात् मार्गणास्वासु वर्तमानाना पृथ्वीकायिकादीनां समुद्घातसमये सर्वलोकव्यापितयोपलभ्यमानत्वाद् इति चेन्न, अत्र तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृत्यबन्धका मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्ररूपाः प्रकृतीर्बध्नन्ति, समुद्घातावसरे प्रकृतित्रयमेतद् बध्नन्तस्ते मनुष्येष्वेव समुत्पद्यन्ते,तेषां चात्यल्पत्वेन मनुष्यक्षेत्रं यावत् कृतात्मप्रदेशदण्डानामपि लोकस्याऽसंख्येयतमभागप्रमाणमेव क्षेत्रं प्राप्यते । 'होअन्ति' इत्यादि, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्त्रीपुरुषवेदद्वयमनुष्यगतिद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कप्रथमादिसंस्थानपञ्चकमनुष्यानुपूर्वीखगतिद्वयत्रसदशकाऽ – पर्याप्तसाधारणाऽस्थिराऽशुभदुःस्वराऽऽतपोद्योतपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाणामष्टचत्वारिंशत्शेषाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धकाः सकललोके वर्तन्ते, मार्गणास्वासु सूक्ष्मैकेन्द्रियत्वेनोत्पद्यमानानां प्रकृतशेषप्रकृत्यबन्धकतया प्राप्यमाणत्वेन समुद्घातावसरे सर्वलोके व्याप्तत्वात् । प्रकृतशेषप्रकृत्यबन्धकानामियत्प्रमाणं क्षेत्रं समुद्घातापेक्षयैव प्राप्यते, न स्वस्थानापेक्षया, स्वस्थानापेक्षया हि बादरैकेन्द्रियजीवा देशोनलोके एव वर्तन्ते ।१०७३-४॥

साम्प्रतं बादरवायुकायिकमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां क्षेत्रमाह-

हुंडणपुमिगिंदियथावरदुगऽणादेयदुहगअजसाण ।
बायरवाउगि तहा तदपज्जत्तगि ऊणजगे ॥१०७५॥
सेसाण सव्वलोगे णेया बायरसमत्तवाउम्मि ।
देसूणे लोए सिं सप्पाउग्गाण जाणऽत्थि ॥१०७६॥

(प्रे०) 'हुंड' इत्यादि, बादरवायुकायौघाऽपर्याप्तबादरवायुकायमार्गणयोर्हुण्डकसंस्थाननपुंसकवेदैकेन्द्रियजातिस्थावरसूक्ष्माऽनादेयदुर्भगाऽयशःकीर्तिलक्षणानामष्टप्रकृतीनामबन्धका देशोनलोके प्राप्यन्ते । भावना पुनरिह बादरैकेन्द्रियौघादिमार्गणावत्कर्तव्या । 'सेसाण' इत्यादि, एतत्प्रकृत्यष्टकवर्जासु शेषप्रकृतिषु यासां प्रकृतीनां येऽबन्धका उपलभ्यन्ते, तेषां क्षेत्रं सर्वलोकप्रमितं ज्ञेयम् , मार्गणयोरनयोर्वर्तमानैः समुद्घातगतजीवैः स्वात्मप्रदेशदण्डैः सम्पूर्णलोकं व्याप्तं भवतीतिकृत्वा । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्त्रीपुरुषवेदद्वयद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कप्रथमादिसंस्थानपञ्चकखगतिद्वयत्रसदशकाऽपर्याप्तसाधारणाऽस्थिराऽशुभदुःस्वरातपोद्योतपराघातोच्छ्वासरूपाः पञ्चचत्वारिंशत् प्रकृतय इति ।

'बायरसमत्तवाउम्मि' इत्यादि, पर्याप्तबादरवायुकायिकमार्गणायां यासां प्रकृतीनामबन्धका विद्यन्ते तेषां क्षेत्रं देशोनलोकप्रमाणं वेदयितव्यम् , उपपातसमुद्घातस्वस्थानापेक्षया बादरपर्याप्तवायुकायिकानां क्षेत्रस्य तावत्प्रमाणत्वात् । उक्तं च प्रज्ञापनायाम्—एत्थ णं बादरवाउकाइआणं पज्जत्तगाणं ठाणा प० उववाएणं लोयस्स असंखेज्जेसु भागेसु, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जेसु भागेसु सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जेसु भागेसु । ताश्चेमा अबन्धप्रायोग्यप्रकृतयः—वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानषट्कखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासरूपास्त्रिपञ्चाशत्प्रकृतयः ॥१०७५-६॥

साम्प्रतं बादरनिगोदादिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां क्षेत्रं प्रतिपाद्यते

बायरणिगोअभूदगपत्तेअवणेसु सिं अपज्जेसुं ।
बायरपज्जणिगोए तिरियदुगेगक्खणपुमणीआण ॥१०७७॥ (गीति)
दुहगाणादेयअजसथावरहुंडाण जगअसंखंसे ।
सुहुमस्स ऊणलोए हवेज्ज सेसाण सव्वजगे ॥१०७८॥

(प्रे०) 'बायर' इत्यादि, बादरसाधारणवनस्पतिकायौघबादरपृथ्वीकायौघबादराऽप्कायौघप्रत्येकवनस्पतिकायौघाऽपर्याप्तबादरसाधारणवनस्पतिकायाऽपर्याप्तबादरपृथ्वीकायाऽपर्याप्तबादराऽप्कायाऽपर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिकायरूपास्वष्टसु मार्गणासु पर्याप्तबादरसाधारणवनस्पतिकायमार्गणायां च लोकस्याऽसंख्येयतमे भागे तिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्व्यैकेन्द्रियजातिनपुंसकवेदनीचैर्गोत्रदुर्भगाऽनादेयाऽयशःकीर्तिस्थावरहुण्डकसंस्थानरूपाणां दशप्रकृतीनामबन्धका वर्तन्ते, मार्गणास्वासु जीवानां स्वस्थानापेक्षया लोकाऽसंख्येयतमे भागे वर्तमानत्वात् तथा प्रकृतप्रकृत्यबन्धकानां यथायोगं

सूक्ष्मतया वायुकायतया वाऽनुत्पद्यमानत्वेन समुद्घातापेक्षयाऽपि तावत्प्रमाणे क्षेत्र एव वर्तमानत्वाच्च। **'सुहुमस्स'** इत्यादि, सूक्ष्मनामकर्माबन्धकानां देशोनजगत्प्रमाणं क्षेत्रमस्ति, भावना बादरनामकर्मबन्धकवत् कार्या। **'सेसाण'** इत्यादि, यासां प्रकृतीनामबन्धकाः सन्ति तासां प्रकृताभिहितप्रकृत्यतिरिक्तप्रकृतीनामबन्धकाः सर्वस्मिन् लोके वर्तन्ते, अत्र कस्याञ्चिन्मार्गणायामबन्धकानामसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणत्वेन कस्याञ्चिन्मार्गणायामनन्तप्रमाणत्वेन तथा सूक्ष्मतयोत्पद्यमानत्वेन समुद्घातापेक्षया सर्वलोके व्याप्तत्वात्। ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः–वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदस्त्रीवेदमनुष्यगतिद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कप्रथमादिसंस्थानपञ्चकमनुष्यानुपूर्वीखगतिद्वयत्रसदशकाऽपर्याप्तसाधारणाऽस्थिराऽशुभदुःस्वराऽऽतपोद्योतपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपा अष्टचत्वारिंशदिति ॥१०७७-८॥

अधुना बादरतेजस्कायतदपर्याप्तमार्गणयोः प्रकृतमाह

सप्पाउग्गाण खलु बायरतेउम्मि से अपज्जत्ते ।
जेसिं हवेज्ज तेसिं बायरपुहविव्व णायव्वा ॥१०७९॥

(प्रे०) **'सप्पाउग्गाण'** मित्यादि, बादरतेजस्कायौघाऽपर्याप्तबादरतेजस्कायलक्षणमार्गणाद्वये स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां यासामबन्धकास्सन्ति, तेषां क्षेत्र बादरपृथ्वीकायक्षेत्रवज्ज्ञातव्यम्, तदेवम्-नपुंसकवेदैकेन्द्रियजातिस्थावरहुण्डकसंस्थानदुर्भगानादेयाऽयशःकीर्तिरूपस्य प्रकृतिसप्तकस्याबन्धकानां क्षेत्र लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणं सूक्ष्मानामबन्धकानां क्षेत्रं देशोनलोकप्रमाण शेषप्रकृत्यबन्धकानां च सकललोकप्रमाणमस्ति, भावना प्राग्वद् विधेया ॥१०७९॥

अथौदारिककाययोगादिमार्गणासु प्रस्तुतमाह

धुवबंधिउरालाण उरालदुगअणयणेसु आहारे।
लोगासंखियभागे सेसाणं सव्वलोगम्मि ॥१०८०॥

(प्रे०) **'धुव'** इत्यादि, औदारिककाययोगौदारिकमिश्रकाययोगाऽचक्षुर्दर्शनाहारकलक्षणासु चतसृषु मार्गणासु सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनाम्नश्चाऽबन्धका लोकाऽसंख्येयतमभागे वर्तन्ते, तदेवम् मार्गणास्वासु मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽबन्धकाः सास्वादनप्रमुखाः स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्करूपस्य प्रकृतिसप्तकस्य सम्यग्दृष्टिप्रमुखा अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य देशविरतिप्रमुखाः, प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य संयतप्रमुखाः शेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च यथायोगं श्रेणिगतजीवा भवस्थकेवलिनश्च वर्तन्ते, तेषां सर्वेषां संख्येयप्रमाणत्वेनाऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशन्यूनाऽसंख्येयसंख्याकत्वेन वा क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणमेवाऽस्ति। नचौदारिककाययोगौदारिकमिश्रकाययोगाहारकमार्गणासु प्रकृतीनामासामबन्धकाः सर्वलोके वक्तव्याः, केवलिनां क्षेत्रस्य समुद्घातापेक्षया सर्वलोकव्याप्तत्वादिति वाच्यम्, मार्गणात्रयेऽस्मिन् समुद्घातकालेऽपि तृतीयचतुर्थपञ्चमसमयानामलाभेन प्रस्तु-

तमार्गणागतकेवलिनां लोकाऽसंख्येयभागवर्तित्वात् । 'सेसाणं' इत्यादि, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियद्विकाहारकद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कानुपूर्वीचतुष्कखगतिद्विकत्रसदशकस्थावरदशकाऽऽतपोद्योतोच्छ्वासपराघातजिननामगोत्रद्विकरूपाणामध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकमिश्रमार्गणायां च नरकद्विकाहारकद्विकवर्जानामासामेव प्रकृतीनामबन्धकाः सर्वस्मिन् लोके वर्तन्ते, मार्गणास्वासु सूक्ष्मैकेन्द्रियजीवानामपि तासामबन्धकतया प्राप्यमाणत्वात् । ।।१०८०।। अथ कार्मणकाययोगमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां क्षेत्रमुच्यते

कम्मे णेया लोगासंखयभागेसु सव्वलोगे वा ।
धुवबंधिउरालाण सेसाण सव्वलोगम्मि ।।१०८१।।

(प्रे०) 'कम्मे' इत्यादि, कार्मणकाययोगमार्गणायां सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनाम्नश्चाऽबन्धका लोकाऽसंख्येयभागेषु सर्वस्मिन् लोके वा ज्ञेयाः, कथमिति चेद् , उच्यते, कार्मणकाययोगमार्गणायां केवलज्ञानिनः प्रकृतीनामासामबन्धकाः सन्ति, कार्मणकाययोगमार्गणा पुनस्तेषां समुद्घातावसरे तृतीयतुर्यपञ्चमसमयेषु संपद्यते तृतीयपञ्चमसमययोः केवलिनो लोकाऽसंख्येयेषु भागेषु व्याप्ता भवन्ति, तुर्यसमये च सर्वलोके, अतस्तृतीयपञ्चमसमयापेक्षया प्रकृतीनामासामबन्धकानां लोकाऽसंख्येयबहुभागप्रमाणं क्षेत्रं वर्तते, चतुर्थसमयापेक्षया च सर्वलोकप्रमाणम् । व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिरिति न्यायेन मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृत्यष्टकौदारिकशरीरप्रकृतीनामबन्धका लोकाऽसंख्येयभागेऽपि प्राप्यन्ते, मार्गणायामस्यां केवलज्ञानिनो विरहकाले यदा सम्यग्दृष्टितिर्यङ्मनुष्याणां लाभस्तदा तेषां प्रकृतीनामासामबन्धकतया प्राप्यमाणत्वात् , तैर्व्याप्तक्षेत्रस्य तावत्प्रमाणत्वाच्च । 'सेसाणं' इत्यादि, उक्तातिरिक्तप्रकृतीनामबन्धकाः सर्वस्मिन् लोके वर्तन्ते, मार्गणायामस्यां सूक्ष्मैकेन्द्रियजीवानां प्रवेशात् , ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं नरकगतिवर्जगतित्रयं जातिपञ्चकमौदारिकाङ्गोपाङ्गं वैक्रियद्विकं संहननषट्कं संस्थानषट्कं नरकानुपूर्वीवर्जाऽऽनुपूर्वीत्रयं विहायोगतिद्विकं त्रसदशकं स्थावरदशकमातपोद्योतपराघातोच्छ्वासजिननामरूपं प्रत्येकप्रकृतिपञ्चकं गोत्रद्वयं चेति चतुःषष्टिरिति ।।१०८१।।

इदानीं नपुंसकवेदादिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां क्षेत्रं प्ररूपयति

णपुमचउकसायेसु दुअणाणाजयतिअसुहलेसासुं ।
अभवे मिच्छे अमणे तेसिं उरलव्व जाणत्थि ।।१०८२।।

(प्रे०) 'णपुम' इत्यादि, नपुंसकवेदक्रोधमानमायालोभमत्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽसंयमकृष्णलेश्यानीललेश्याकापोतलेश्याऽभव्यमिथ्यात्वाऽसंज्ञिरूपासु चतुर्दशमार्गणासु यासां प्रकृतीनामबन्धका उपलभ्यन्ते, तेषां क्षेत्रमौदारिककाययोगमार्गणावदवसेयम् , तद्यथा-नपुंसकवेदमार्गणायां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्काऽन्तरायपञ्चकसंज्वलनचतुष्कवर्जानां शेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीर-

नाम्नश्चाऽबन्धकानां क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणम् , शेषाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धकानां च क्षेत्रं सर्वलोकप्रमाणमस्ति । लोभमार्गणायां ज्ञानावरणीयादिचतुर्दशप्रकृतिवर्जशेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनाम्नश्चाऽबन्धकानां क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाण शेषाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च सर्वलोकप्रमितमवगन्तव्यम् । मायामार्गणायां संज्वलनमायालोभौ वर्जयित्वा मानमार्गणायां संज्वलनमानमायालोभान् वर्जयित्वा क्रोधमार्गणायां च संज्वलनचतुष्कं त्यक्त्वा लोभमार्गणावदेवाऽबन्धकक्षेत्रं स्वाऽबन्धप्रायोग्यप्रकृतीनामभिधेयम् । मतिश्रुताज्ञानमार्गणाद्वये मिथ्यात्वमोहनीयौदारिकशरीरनामप्रकृत्योरबन्धकानां क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणमवसेयम् , आहारकद्विकजिननामायुष्ककर्मवर्जशेषाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च सर्वलोकप्रमितम् । असंयमकृष्णलेश्यानीललेश्याकापोतलेश्यामार्गणाचतुष्के मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्करूपाणामष्टप्रकृतीनामौदारिकशरीरनाम्नश्च लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमितमबन्धकानां क्षेत्रमस्ति.आहारकद्विकायुष्कचतुष्कवर्जशेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च सकललोकप्रमितम् । अभव्यमिथ्यात्वाऽसंज्ञिमार्गणासु लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणमौदारिकशरीरनामाऽबन्धकानां क्षेत्रं वर्तते,सर्वलोकप्रमाणं चाहारकद्विकजिननामायुर्वर्जशेषाऽध्रुवबन्धिप्रकृत्यबन्धकानाम्।।१०८२।।साम्प्रतं शेषमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतीनामबन्धकानां क्षेत्रमुपदर्शयन्नाह-

सेसासु मग्गणासुं सप्पाओग्गाण आउवज्जाण ।
जेसिं अबंधगा सिं लोगस्स असंखभागम्मि ॥१०८३॥

(प्रे०) 'सेसासु' इत्यादि, इहाभिहितातिरिक्तासु मार्गणासु स्वप्रायोग्याणामायुष्ककर्मवर्जानां यासां प्रकृतीनामबन्धका वर्तन्ते, तासां तेऽबन्धका लोकस्याऽसंख्याततमे भागेऽवाप्यन्ते । ताश्चेमाः शेषमार्गणाः–अष्टौ नरकमार्गणाः, चतस्रःतिर्यक्पञ्चेन्द्रियमार्गणाः, अपर्याप्तमनुष्यमार्गणा, त्रिंशद्देवमार्गणाः, नवविकलेन्द्रियमार्गणाः, अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणा, बादरपर्याप्तपृथ्व्यप्तेजस्कायपर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिकायमार्गणाः, अपर्याप्तत्रसकायमार्गणा, पञ्चमनोयोगमार्गणाः, पञ्चवचनयोगमार्गणाः, वैक्रियकाययोगवैक्रियमिश्रकाययोगाऽऽहारकतन्मिश्रकाययोगमार्गणाः, स्त्रीपुरुषवेदमार्गणाद्वयम् , अकषायमार्गणा, मतिश्रुतावधिमनःपर्यवकेवलज्ञानविभङ्गज्ञानरूपाः षण्मार्गणाः, सामायिकच्छेदोपस्थानपनीयपरिहारविशुद्धियथाख्यातदेशविरतरूपाः पञ्चसंयममार्गणाः, चक्षुर्दर्शनाऽवधिदर्शनकेवलदर्शनमार्गणात्रयम् , तेजःपद्मलेश्याद्वयम , उपशमक्षयोपशममिश्रसास्वादनसम्यक्त्वमार्गणाचतुष्कम् , संज्ञिमार्गणा चेति षण्णवतिरिति । भावना पुनरिहैवम्–अकषाययथाख्यातकेवलज्ञानकेवलदर्शनरूपासु चतसृषु मार्गणासु सातवेदनीयस्याऽबन्धका यथायोगमयोगिनः सिद्धाश्च वर्तन्ते, तेषां क्षेत्रं लोकस्याऽसंख्येयतमभागरूपमेवाऽस्ति, तथैतद्व्यतिरिक्तशेषमार्गणानां त्रिविधमपि क्षेत्र लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमितमस्ति, तस्मात्तत्र स्वप्रायोग्यप्रकृत्यबन्धकानामपि क्षेत्रं तावत्प्रमाणमेव प्राप्यत इति । इदं त्ववधेयम्–सूक्ष्मसम्परायमार्गणायां सर्वासां प्रकृतीना सर्वे बन्धका इति कृत्वा सा शेषमार्गणासु नोक्ता ॥१०८३॥

ऽपर्याप्तबादरपृथ्वीकायाऽपर्याप्तबादराऽप्कायाऽपर्याप्तबादरतेजस्कायाऽपर्याप्तबादरवायुकायरूपासु द्वादश-मार्गणासु प्रत्येकवनस्पतिकायौघाऽपर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिकायमार्गणाद्वये काययोगौघौदारिककाययोगौ-दारिकमिश्रकाययोगलक्षणे मार्गणात्रये नपुंसकवेदमार्गणायां क्रोधमानमायालोभलक्षणमार्गणा चतुष्के मत्यज्ञानश्रुताज्ञानमार्गणयोरसंयममार्गणायामचक्षुर्दर्शनकृष्णलेश्यानीललेश्याकापोतलेश्या-भव्याभव्यमिथ्यात्वाऽसंज्ञ्याहारकरूपासु च नवसु मार्गणासु सर्वसंख्यया द्वाषष्टिमार्गणासु स्वप्रायोग्या-युष्काणामबन्धकाः सर्वस्मिन् लोके वर्तन्ते । तदेवम्—इह यासु मार्गणासु सूक्ष्मैकेन्द्रियजीवा वर्तन्ते, तासु स्वस्थानसमुद्घातोभयापेक्षयाऽभिहितप्रमाणक्षेत्रं प्राप्यते, इतरमार्गणासु च समुद्घातापेक्षया प्राप्यते न तु स्वस्थानापेक्षया । 'देसेणूणे' इत्यादि बादरपर्याप्तवायुकायमार्गणायां तिर्यगायुष्कस्या ऽबन्धका देशोनलोके वर्तन्ते । तद्यथा—मार्गणायामस्यां तिर्यगायुष्कस्य बन्धका यथा देशोनलोके वर्तन्ते, तथा तदबन्धका अपि, बादरवायुकायिकजीवानां क्षेत्रस्यैव तावत्प्रमाणत्वात् ॥१०८८-९१॥

अथ मनुष्यादिमार्गणासु शेषमार्गणासु चायुरबन्धकानां क्षेत्रमाह

अत्थि तिणरदुपणिंदियतससजमसुक्कसम्मखइएसुं ।
केवलिखेत्तो अण्णह लोगस्स असंखभागम्मि ॥१०९२॥

(प्रे०) 'अत्थि' इत्यादि, मनुष्यौघमानुषीपर्याप्तमनुष्यपञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौघ-पर्याप्तत्रससंयमौघशुक्ललेश्यासम्यक्त्वौघक्षायिकसम्यक्त्वमार्गणासु स्वप्रायोग्यायुषोऽबन्धकानां क्षेत्रं केवलिक्षेत्रप्रमितमवसेयम् । तच्च भावितमेव प्राग् । 'अण्णह' इत्यादि, उक्तव्यतिरिक्तासु शेष-मार्गणासु स्वप्रायोग्यायुषोऽबन्धकानां क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाण विज्ञातव्यम् । इमाश्च ताः शेषमार्गणाः—अष्टौ नरकमार्गणाः, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तापर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनि-मतीरूपाश्चतस्रो मार्गणाः, अपर्याप्तमनुष्यमार्गणाः, त्रिंशद्देवमार्गणाः, नवविकलेन्द्रियमार्गणाः, अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणा, पर्याप्तबादरपृथ्वीकायाऽप्कायतेजस्कायरूपास्तिस्रो मार्गणाः, पर्याप्तप्रत्येक-वनस्पतिकायमार्गणा, अपर्याप्तत्रसकायमार्गणा पञ्चमनोयोगमार्गणाः, पञ्चवचनयोगमार्गणाः, वैक्रियका-ययोगाऽऽहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगलक्षणं मार्गणात्रयम्, स्त्रीपुरुषवेदमार्गणाद्वयम्, मतिश्रुता-वधिमनःपर्यवज्ञानरूपाश्चतस्रो मार्गणाः, विभङ्गज्ञानमार्गणा, सामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धि-देशविरतिसंयमरूपाश्चतस्रो मार्गणाः, चक्षुर्दर्शनाऽवधिदर्शनमार्गणाद्वयम्, तेजःपद्मलेश्यामार्गणाद्वयम्, क्षयोपशमसास्वादनसम्यक्त्वमार्गणाद्वयम्, सञ्ज्ञिमार्गणा चेति नवाशीतिः, भावना पुनरेवम्-मार्गणा-नामासां स्वस्थानापेक्षया समुद्घातापेक्षया च क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणमेवाऽस्ति, अत इयत्प्रमाणं क्षेत्र स्वप्रायोग्यायुष्काबन्धकानामुक्तम् ॥१०९२॥

इत्येवमभिहित मार्गणास्वायुष्काऽबन्धकाना क्षेत्रम्, अभिहिते च तस्मिन् समाप्तं क्षेत्रद्वारम् ।

॥ इति श्री प्रेमप्रभाटीकाविभूषित बन्धविधाने उत्तरप्रकृतिबन्धे प्रथमाधिकारे दशमं क्षेत्रद्वारं समाप्तम् ॥

अथैकादशं स्पर्शनाद्वारम्

साम्प्रतं क्रमप्राप्तमुत्तरप्रकृतिबन्धकाऽबन्धका जीवास्त्रिकालं प्रतीत्याऽतीतकालं वा प्रतीत्योत्कृष्टतो लोकस्य कियतो भागान् स्पृष्टवन्त इति निरूपकमेकादशं स्पर्शनाऽऽख्यद्वारं चिन्तयन्नादौ लाघवार्थं प्रकृतिसंग्राहिका गाथा उपदर्शयितुकाम आह

सुरदुगउच्चपुमसुहगतिगसुखगइआगिई छ संघयणा ।
मज्झिमसंठाणित्थी उरलोवंगं तसपणिंदी ॥१०९३॥
दुस्सरकुखगइणारगविउवदुगणपुमअसायअरइदुगं ।
पणअथिराई हुंड णीअं परघायऊसासा ॥१०९४॥
धुववंधी पज्जत्त परोअं बायरं जसुज्जोआ ।
तिरियदुगउरलथावरएगिंदी थिरसुहा सायं ॥१०९५॥
हस्सरई सुहमतिगं इह ज आइम्मि किरिअ एआओ ।
जावइआ जा वोच्छं तावइआ ता कमा गेज्झा ॥१०९६॥

(प्रे०) 'सुरदुग'इत्यादि, कः प्रतिविशेषः क्षेत्रस्पर्शनयोरिति चेत् , कालकृत इति गृहाण, वर्तमानाकालविषयं क्षेत्रम् , भूतभवद्भविष्यल्लक्षणत्रिकालविषया अतीतकालविषया वा स्पर्शनेति ।

उक्तं चाऽत्रैव बन्धविधानग्रन्थे मूलप्रकृतिबन्धे क्षेत्रद्वारे

'कालं तु वट्टमाणं पडुच्च खेत्ते परूवणा णेया । आसिज्ज अईअद्ध परूवणा उण फरिसणाए ॥१६८॥'इति

अथ प्रस्तुतम् ,सुरद्विकोच्चैर्गोत्रपुरुषवेदसुभगत्रिकशुभविहायोगतिसमचतुरस्रसंस्थानसंहननषट्कप्रथमचरमसंस्थानवर्जमध्यमसंस्थानचतुष्कस्त्रीवेदौदारिकाङ्गोपाङ्गत्रसपञ्चेन्द्रियजातयः ।'दुस्सर'इत्यादि, दुःस्वराशुभखगतिनरकद्विकवैक्रियद्विकनपुंसकवेदाऽसातवेदनीयारतिशोकाऽस्थिराऽशुभदुर्भगाऽनादेयाऽयशःकीर्तिहुण्डकसंस्थाननीचैर्गोत्रपराघातोच्छ्वासनामानि ।'धुव'इत्यादि ज्ञानावरणीयप्रभृतिसप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः, पर्याप्तप्रत्येकबादरयशःकीर्त्युद्योततिर्यग्द्विकौदारिकशरीरस्थावरैकेन्द्रियजातिस्थिरशुभसातवेदनीयानि । 'हस्स' इत्यादि, हास्यरतिसूक्ष्माऽपर्याप्तसाधारणनामकर्माणीति समुदिताश्चैताः सप्तोत्तरशतप्रकृतयः । 'इह' इत्यादि, अत्रैता याः प्रकृतयोऽभिहिताः, ताभ्यो यां प्रकृतिमादौ कृत्वा यावत्यः प्रकृतयो वक्ष्यन्ते तावत्यस्ताः क्रमतो ग्राह्याः ॥१०९३-६॥

अथ त्रसनाड्या भागानां स्वरूपमुपदर्शयति

फुसणाअ वुच्चिरे इह जे भागा भाजिआअ चउदसहिं ।
तसणाडीअ लहे जं णेया ते तावइअमाणा ॥१०९७॥

(प्रे०) 'फुसणाअ'इत्यादि,इह स्पर्शनाद्वार उत्तरप्रकृतीनां बन्धकाबन्धकानां स्पर्शनाया निरूपणावसरे ये षड्डादिभागा वक्ष्यन्ते, ते सर्वेऽपि चतुर्दशसंख्यया विभाजितायां त्रसनाड्यां यावत्प्रमाणं भागफलं प्राप्येत, तावत्प्रमाणा ज्ञेयाः, आयामविष्कम्भबाहल्यत एकरज्जुप्रमाण एकभागो भवतीति

इदानीमायुष्ककर्मबन्धकानां क्षेत्रमुपदिदर्शयिषुरादौ तिर्यगोघादिमार्गणासु तदाह

तिरिये एगिंदियपणकायणिगोएसु सव्वसुहमेसु ।
कायोरालदुगेसु णपुमगे चउकसायेसुं ॥१०८४॥
अण्णाणदुगे अजए अचक्खुदंसणतिअसुहलेसासुं ।
भवियेयरमिच्छेसु असण्णिआहारगेसुं च ॥१०८५॥
होअन्ति बंधगा खलु सप्पाउग्गाण ओघव्व ।

(प्रे०) 'तिरिये' इत्यादि, तिर्यगोघैकेन्द्रियौघपृथ्वीकायौघाऽप्कायौघतेजस्कायौघवायुकायौघवनस्पतिकायौघसाधारणवनस्पतिकायौघरूपास्वष्टसु मार्गणासु सूक्ष्मौघसूक्ष्मपर्याप्तसूक्ष्माऽपर्याप्तप्रकारेण तिसृष्वेकेन्द्रियमार्गणासु तिसृषु पृथ्वीकायमार्गणासु तिसृष्वप्कायमार्गणासु तिसृषु तेजस्कायमार्गणासु तिसृषु वायुकायिकमार्गणासु तिसृषु साधारणवनस्पतिकायमार्गणासु काययोगौघौदारिककाययोगौदारिकमिश्रकाययोगरूपासु तिसृषु मार्गणासु नपुंसकवेदमार्गणायां क्रोधमानमायालोभमार्गणासु मत्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽसंयमाऽचक्षुर्दर्शनकृष्णलेश्यानीललेश्याकापोतलेश्याभव्याभव्यमिथ्यात्वाऽसंज्याहारकरूपासु च द्वादशमार्गणासु चेति सर्वसंख्यया षट्चत्वारिंशन्मार्गणासु स्वप्रायोग्यायुष्काणां बन्धकानां क्षेत्रमोघवद् बोद्धव्यम् । तद्यथा—इह एकेन्द्रिय-कायपञ्चकसत्कमार्गणाभेदेषु पञ्चविंशतौ औदारिकमिश्रे च यथायोगं मनुष्यायुष्कस्य बन्धकानां क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणं तिर्यगायुष्कस्य च बन्धकानां सर्वलोकप्रमाणमवसातव्यम् । प्रकृतशेषमार्गणासु देवनरकमनुष्यायुष्कबन्धकानां क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयतमभागं विज्ञेयम्, सर्वलोकप्रमाणं च तिर्यगायुष्कबन्धकानाम्, भावना पुनरिहौघतोऽवसेया ॥१०८४-५॥

अथ बादरैकेन्द्रियप्रभृतिमार्गणासु शेषमार्गणासु च तदाह—

सव्वेसु खलु बायरएगिंदियवाउभेएसुं ।१०८६॥ (उद्गीतिः)
तिरियाउस्सूणजगे असंखभागे जगस्स णायव्वा ।
मणुसाउगस्स अण्णहि सप्पाउग्गाण आऊण ॥१०८७॥

(प्रे०) 'सव्वेसु'मित्यादि, ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेन तिसृषु बादरैकेन्द्रियमार्गणासु तिसृषु च बादरवायुकायमार्गणासु तिर्यगायुष्कस्य बन्धका देशोनलोकक्षेत्रे वर्तन्ते, मार्गणास्वासु वर्तमानानां बादरवायुकायिकजीवानां देशोनलोके विद्यमानत्वात् । 'असंखभागे' इत्यादि, वायुकायिकभेदत्रये मनुष्यायुषो बन्धाभावाद् बादरैकेन्द्रियभेदत्रय एव मनुष्यायुषो बन्धका जगतोऽसंख्याततमे भागे वर्तन्ते, तद्यथा—अत्र मनुष्यायुर्बन्धका मनुष्यत्वेनोत्पित्सव एव वर्तन्ते, ते च नाऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणाः, अतः स्वस्थानापेक्षया तेषां क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणमस्ति, समुद्घातापेक्षया त्वायुर्बन्धकक्षेत्रमेव नास्ति, आयुर्बन्धानन्तरमेव मरणसमुद्घातस्य सद्भावेन समुद्घातवेलायामायुर्बन्धाऽभावात् । 'अण्णहि' इत्यादि, उक्तेतरमार्गणासु स्वप्रायोग्यायुष्काणां बन्धका लोकाऽसंख्याततमभागे वर्तन्ते । ताश्चेमाः—तिर्यगोघवर्जशेषषट्चत्वारिंशद्गतिमार्गणाः, ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेद—

भिन्नाः तिस्रो द्वीन्द्रियमार्गणाः, तिस्रस्त्रीन्द्रियमार्गणाः, तिस्रश्चतुरिन्द्रियमार्गणाः, तिस्रः पञ्चेन्द्रियमार्गणाः, तिस्रो बादरपृथ्वीकायमार्गणाः, तिस्रो बादरजलकायमार्गणाः, तिस्रो बादरतेजस्कायमार्गणाः, तिस्रो बादरसाधारणवनस्पतिकायमार्गणाः, तिस्रः प्रत्येकवनस्पतिकायमार्गणाः, तिस्रस्त्रसकायमार्गणाः, ओघमत्याऽसत्यमत्यामत्याऽसत्यामृषाभेदेन पञ्चमनोयोगमार्गणाः, पञ्चवचनयोगमार्गणाः, वैक्रियकाययोगाऽऽहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगमार्गणात्रयम्, स्त्रीवेदपुरुषवेदमार्गणे, मतिज्ञानश्रुतज्ञानावधिज्ञानमनःपर्यवज्ञानरूपं ज्ञानमार्गणाचतुष्कम्, विभङ्गज्ञानमार्गणा, संयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिदेशविरतिरूपं संयममार्गणापञ्चकम्, चक्षुर्दर्शनाऽवधिदर्शनमार्गणाद्वयम्, तेजःपद्मशुक्ललेश्यालक्षणं मार्गणात्रयम्, सम्यक्त्वौघक्षयोपशमक्षायिकसास्वादनरूपाः चतुःसम्यक्त्वमार्गणाः, संज्ञिमार्गणा चेति एकादशाभ्यधिकशतमार्गणाः। भावना पुनरेवम्—मार्गणास्वासु वर्तमानानां जीवानां स्वस्थानेन क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणमेव विद्यते, अतः स्वप्रायोग्यायुष्कबन्धकानामपि क्षेत्रं तावत्प्रमाणमेवाऽऽयाति। वैक्रियमिश्रकार्मणकाययोगावेदाऽकषायकेवलज्ञानसूक्ष्मसम्परायसंयमयथाख्यातसंयमकेवलदर्शनोपशममिश्रसम्यक्त्वाऽनाहारकरूपास्वेकादशसु मार्गणासु नास्त्यायुर्बन्धः, अतस्तद्बन्धकानां क्षेत्रविचारणाऽप्यप्रस्तुतेति विज्ञेयम् ॥१०८६-७॥

अथ मार्गणासु स्वप्रायोग्यायुष्काऽबन्धकानां क्षेत्रमुपदर्शयितुमना आदौ तिर्यगोघादिमार्गणासु तदाह

तिरिये सव्वेगिंदियणिगोअवणसेससुहुमभेएसुं ।
पुहवाइचउसु तेसिं बायरबायरअपज्जेसुं ॥१०८८॥
पत्तेअवणम्मि तहा तदपज्जत्तम्मि कायजोगम्मि ।
ओरालदुगेसु तह णपुंसगे चउकसायेसुं ॥१०८९॥
अण्णाणदुगे अजए अचक्खुदंसणतिअसुहलेसासुं ।
भवियेयरमिच्छेसुं असण्णिआहारगेसुं च ॥१०९०॥
सप्पाउगाऊण अबंधगा अत्थि सव्वलोगम्मि ।
देसेणूणे लोगे बायरपज्जत्तवाउम्मि ॥१०९१।

(प्रे०) 'तिरिये' इत्यादि, तिर्यगोघमार्गणायामेकेन्द्रियौघमार्गणायामोघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेन तिसृषु सूक्ष्मैकेन्द्रियमार्गणासु तिसृषु च बादरैकेन्द्रियमार्गणासु साधारणवनस्पतिकायौघमार्गणायां तिसृषु सूक्ष्मसाधारणवनस्पतिमार्गणासु तिसृषु बादरसाधारणवनस्पतिकायमार्गणासु वनस्पतिकायौघमार्गणायामोघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेन तिसृषु सूक्ष्मपृथ्वीकायमार्गणासु तिसृषु सूक्ष्मजलकायमार्गणासु तिसृषु सूक्ष्मतेजस्कायमार्गणासु तिसृषु सूक्ष्मवायुकायमार्गणासु पृथ्वीकायौघाऽप्कायौघतेजस्कायौघवायुकायौघबादरपृथ्वीकायौघबादराऽप्कायौघबादरतेजस्कायौघबादरवायुकायौघा-

निष्कर्षः,तस्माद् यावद्भागा स्पर्शना निरूप्यते तावद्घनरज्जवः स्पर्शनायां भवन्तीति समापतितम् । इह कश्चिदाह नन्वत्रैकभाग एकरज्जुप्रमाणो भवति; अतोऽत्र निरूपयिष्यमाणानां भागानां ज्ञानार्थं चतुर्दशरज्जुप्रमाणत्रसनाडिकाया कस्मिन् स्थाने कति रज्जवो भवन्तीति ज्ञातव्यं भवति, तच्च कथं ज्ञायते ? अत्रोच्यते, शास्त्रवचनात् , तच्चैवम्

'ईसाणम्मि दिवड्ढा अड्ढाइज्जा य रज्जु माहिंदे । पंचेव सहस्सारे छ अच्चुए सत्तलोगंते ॥

इति जीवसमासवचनेन ऊर्ध्वलोकसत्कसप्तभागाः प्रदर्शिताः । अधुनाऽधोलोकसत्कभागा लोकप्रकाशग्रन्थेन प्रदर्श्यन्ते । तच्चैवम्

'अस्य सर्वस्य लोकस्य कल्प्या भागाश्चतुर्दश । एकैकश्च विभागोऽयमेकैकरज्जुसम्मित ॥१॥
सर्वाधस्तना लोकान्तादारभ्योपरिग तलं । यावत्सप्तमभूमेर्दिन्या एका रज्जुरियं भवेत् ॥२॥
प्रत्येकमेव समाना भुवामुपरिवर्तिषु । तलेषु रज्जुरेकैका स्युरेव सप्तरज्जवः ॥३॥'इति

विस्तरतस्त्वस्यैव बन्धविधानग्रन्थस्य मूलप्रकृतिबन्धग्रन्थे प्रदर्शितमिति ततोऽवधार्यम् ॥१०९७॥

इदानीमुत्तरप्रकृतिबन्धकानामोघतः स्पर्शनां प्ररूपयितुमाह-

लोगासंखियभागो आहारदुगणिरयामराऊणं ।
छुहिओऽत्थि बधगेहिं भागाऽत्थि छ णिरयजुगलस्स ॥१०९८॥
देवदुगस्स फरिसिआ पणभागेगार विउवजुगलस्स ।
अट्ठ जिणस्सियरेसिं सव्वजगमबधगेहि सव्वेसिं ॥१०९९॥ (गीतिः)

(प्रे०) **'लोगा'** इत्यादि, आहारकद्विकस्य तथा नरकामरायुषोर्बन्धकैर्लोकासख्यातभागः स्पृष्टः, नरकद्विकस्य बन्धकैः षड्भागाः, देवद्विकस्य बन्धकैः पञ्चभागाः, वैक्रियद्विकस्य बन्धकैरेकादशभागाः, तथा जिननामो बन्धकैरष्टौ भागाः स्पृष्टाः । **'इयरेसिं'** इत्यादि, शेषसर्वप्रकृतीनां बन्धकैः सर्वं जगत्स्पृष्टम् । **'अबंधगेहि'** इत्यादि, सर्वासां प्रकृतीनामबन्धकैः सर्वं जगत्स्पृष्टम् "सव्वजगं" इतिपदस्यात्रापि डमरुकमणिन्यायेन सम्बन्धनात् ।

भावना पुनरेवम् -आहारकद्विकस्य बन्धकाः संयताः, तेषां स्वस्थानक्षेत्रं मनुष्यलोकमात्रम् , तेषां पारभविकोत्पत्तिक्षेत्रस्य क्षेत्रफलं तिर्यक्प्रतरस्यासंख्यभागमात्रम् , अतः स्पर्शनाऽपि लोकासंख्यातभागमात्रा । अस्ति च नियमः--यत्प्रकृतेर्बन्धकानां स्वस्थानक्षेत्रं पारभविकोत्पत्तिक्षेत्रं च तिर्यक्प्रतरस्यासंख्यभागमात्रम्, तेषां स्पर्शना लोकासंख्यभागमात्रैव, भवतु नाम तेषां स्वस्थानक्षेत्रपारभविकक्षेत्रयोरन्तरालमेकद्व्यादिरज्जुप्रमाणम् ।

नरकदेवायुषोर्बन्धकानां स्पर्शना लोकासंख्यभागमात्रा, अत आयुर्बन्धकाले मरणाभावेन मरणसमुद्घाताभावात्तत्प्रयुक्तस्पर्शनाया अभावस्तेन स्वस्थानक्षेत्रं गमनागमनक्षेत्रं वाश्रित्य स्पर्शना ऽऽयाति । गमनागमनक्षेत्रं विशिष्टं तु देवानामेव भवति । प्रस्तुते प्रकृतायुर्बन्धकाः पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्याः । तेषां स्वस्थानक्षेत्रं लोकासंख्यातभागमात्रं तेन स्पर्शनाऽपि तावत्प्रमाणा समायाता ।

षड्भागादिस्पर्शनाविषयकभावना—यथा यासां प्रकृतीनां बन्धकानां स्वस्थानक्षेत्रपारभविकोत्पत्तिक्षेत्रयोरेकमपि क्षेत्रं तिर्यक्प्रतररज्जुप्रमाणं स्यात्, तथा तयोरन्तरालमेकादिरज्जुप्रमाणं स्यात्, तदा तासां प्रकृतीनां बन्धकानां स्पर्शना एकादिभागप्रमाणा प्राप्यते।

प्रस्तुते नरकद्विकस्य देवद्विकस्य वैक्रियद्विकस्य च बन्धकाः प्राधान्येन तिर्यञ्चः सन्ति, तेषां च स्वस्थानक्षेत्रं तिर्यग्लोकव्याप्तमस्ति, स्वस्थानपारभविकक्षेत्रयोरन्तरालं नरकद्विकस्य बन्धकानां सप्तमनरकतयोत्पित्सूनां षड्रज्जुप्रमाणं सहस्रारं यावदुत्पित्सूनां देवद्विकबन्धकानां पञ्चरज्जुप्रमाणं वैक्रियद्विकस्य बन्धकानामधोलोकसत्कषड्रज्जुप्रमाणं ऊर्ध्वलोकसत्कपञ्चरज्जुप्रमाणमित्थमेकादशरज्जुप्रमाणं तेन स्पर्शना षड्भागप्रमाणा, पञ्चभागप्रमाणा तथैकादशभागप्रमाणा क्रमेण तत्तद्बन्धकानामुक्ता।

जिननामबन्धकानां स्पर्शना मुख्यवृत्त्या देवानाश्रित्य विज्ञेया, तेषां गमनागमनक्षेत्रस्याष्टरज्जुप्रमाणत्वात् स्पर्शनाऽष्टरज्जुप्रमाणा उक्ता। सम्यग्दृष्टिदेवानां स्पर्शना जीवसमासे अष्टभागप्रमाणा दर्शिता। तथा च तद्ग्रन्थः 'मिस्स अविरया अट्ठ'। '**इयरेसिं**' इत्यादि, उदितशेषप्रकृतीनां बन्धकैः सर्वं जगत् स्पृष्टम्, यतः शेषप्रकृतीनां बन्धकाः सूक्ष्मैकेन्द्रिया अपि वर्तन्ते, ते च सर्वं जगद् व्याप्य वर्तन्ते। ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—सप्तचत्वारिंशन्मतिज्ञानावरणीयप्रभृतिध्रुवबन्धिप्रकृतयः वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यङ्मनुष्यगतिद्वयजातिपञ्चकौदारिकद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासगोत्रद्वयतिर्यग्मनुष्यायुष्कद्वयरूपा द्वाषष्टिरध्रुवबन्धिप्रकृतयश्चेति नवोत्तरशतम्। अथ अबन्धकानां स्पर्शनामाह----

'**सव्वबंधगेहिं**' इत्यादिना, '**सव्वजगं**' इति पदमत्रापि सम्बन्धनीयम्, ततश्चायमर्थः-सर्वासां प्रकृतीनामबन्धकैः सर्वजगत्स्पृष्टमिति। भावना पुनरेवम्—औदारिकशरीरवर्जशेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धकतया सूक्ष्मजीवा अपि प्राप्यन्ते, अतस्तानाश्रित्य सर्वलोकप्रमाणा स्पर्शना प्राप्यते। ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनाम्नश्चाबन्धकतया समुद्घातगतकेवलिनः प्राप्यन्ते, अतस्तानाश्रित्य सर्वलोकप्रमाणा स्पर्शनोक्ता। एवं सर्वासामपि प्रकृतीनामबन्धकानां स्पर्शना सर्वलोकप्रमाणाऽवाप्यते।

॥१०९८-९॥ साम्प्रतं मार्गणास्वायुष्ककर्मवर्जशेषोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनामभिधातुमाह

आउगवज्जाणोधव्व अत्थि तिरिकायचउकसायेसु।
दुअणाणाजयअणयणभवियरमिच्छेसु आहारे ॥११००॥

(प्रे०) '**आउग**' इत्यादि, तिर्यगोघकाययोगौघक्रोधमानमायालोभमत्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽसंयमाऽचक्षुर्भव्याभव्यमिथ्यात्वाहारकमार्गणास्वायुर्वर्जानां शेषोत्तरप्रकृतीनां बन्धकानां स्पर्शनौघवद् विज्ञेया। तदेवम् -काययोगौघक्रोधमानमायालोभाऽसंयमाऽचक्षुर्दर्शनभव्याहारकमार्गणासु जिननामबन्धकानां स्पर्शनाऽष्टभागमाना विद्यते, काययोगौघक्रोधमानमायालोभाचक्षुर्दर्शनभव्याहारकमार्गणा-

स्वाहारकद्विकबन्धकानां लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणा स्पर्शना वर्तते । तथा प्रकृतसकलमार्गणासु नरकद्विकेबन्धकानां षड्भागप्रमाणा, देवद्विकस्य बन्धकानां पञ्चरज्जुप्रमाणा, वैक्रियद्विकबन्धकाना-मेकादशभागप्रमाणा शेषस्वप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकानां च सकललोकप्रमाणा स्पर्शनाऽस्ति । भावना पुनरिह सर्वत्रौघत एव बोद्धव्या ।

इह मार्गणासु हेत्ववगत्यर्थं स्पर्शनाविषयिकाः कतिपया व्याप्तयः प्रतिपाद्यन्ते । तद्यथा—

(१) सर्वलोकविषया व्याप्तिः--ओघे मार्गणायां वा विवक्षितप्रकृतीनां बन्धकाः सूक्ष्मजीवा भवेयुर्यत्र सूक्ष्मतयोत्पित्सवो मरणसमुद्घातकाले विवक्षितप्रकृतिबन्धका भवेयुस्तर्हि तेषां स्पर्शना सर्वलोकप्रमाणा प्राप्यते ।

(२) देशोनलोकविषयकव्याप्तिः—यासु मार्गणासु सूक्ष्मजीवानामप्रवेशस्तथा बादरवायुकायिक-जीवानां प्रवेशः, ते च यदि सूक्ष्मानर्हाः प्रकृतीर्बध्नन्ति, तदा तासु मार्गणासु तत्प्रकृतिबन्धकानां स्पर्शना देशोनलोकप्रमाणा समागच्छति ।

बादरवायुकायिकरहितास्वपि मार्गणासु यदा बादरनाम बध्नन्तो जीवा बादरवायुकायिकत-योत्पद्यन्ते, तदा बादरनामबन्धकानां स्पर्शना देशोनलोकप्रमाणाऽवाप्यते ।

(३) एकद्व्यादिभागविषया व्याप्तिः--इयं व्याप्तिः स्वस्थानादिक्षेत्राऽपेक्षया निष्पद्यते,तत्र क्षेत्रं त्रिविधं विद्यते, स्वस्थानक्षेत्रम् पारभविकोत्पत्तिक्षेत्रम् अन्तरालक्षेत्रं च । स्वस्थानक्षेत्रं नाम यत्स्व-कीयाऽवस्थानक्षेत्रं तदिति । पारभविकोत्पत्तिक्षेत्रं नाम यद्यत्प्रकृतिबन्धकैः कालं कृत्वा यस्मिन् क्षेत्र उत्पद्यन्ते तत्क्षेत्रम् । एतत्क्षेत्रं यावद्दूरं यावद्विस्तृतं प्राप्तुमर्हति तावद्दूरं तावद्विस्तृतं ग्राह्य-मिति । अन्तरालक्षेत्रम्--उत्पत्तिक्षेत्रस्वस्थानक्षेत्रयोर्मध्यगतं दूरत्वरूपं क्षेत्रमत्राऽन्तरालक्षेत्र-मुच्यते । विवक्षितप्रकृतिबन्धकानां स्वस्थानक्षेत्रं पारभविकक्षेत्रमित्युभयमुभयोरेकतरं वा प्रतररज्जु-प्रमाणं स्यात् तथा द्वयोरन्तरमेकद्व्यादिरज्जुप्रमाणं स्यात्तर्ह्येकद्व्यादिभागरूपा स्पर्शना प्राप्यते । तद्यथा--वैक्रियद्विकबन्धकानां स्पर्शनैकादशभागमाना , तच्चैवमुपपत्तिमालभते-वैक्रियद्विकबन्ध-कानां तिर्यग्लोक एव सत्त्वेन स्वस्थानक्षेत्रं प्रतररज्जुप्रमितमस्ति तथा वैक्रियद्विकस्य बन्धकालेऽ-धोलोके सप्तमनरक उत्पित्सूनां मरणसमुद्घाते स्वस्थानक्षेत्रादुत्पत्तिक्षेत्रस्याऽन्तरं षड्रज्जुमित-मस्ति,ऊर्ध्वं च सहस्रारदेवकल्पे समुत्पित्सूनां मरणसमुद्घातेऽन्तरं पञ्चरज्जुप्रमाणमस्ति,अतो वैक्रिय-द्विकबन्धकानामेकादशभागमाना स्पर्शना समुपपत्तिमालभते । एवमेव देवद्विकबन्धकानां पञ्च-रज्जुप्रमाणा स्पर्शनोर्ध्वक्षेत्रमाश्रित्य वेदितव्या । यदा विवक्षितप्रकृतिबन्धकानामधिकतया स्पर्शना देवगमनागमनापेक्षया प्राप्यते, तदा सहस्रारान्तदेवानाश्रित्याष्टरज्जुप्रमाणा स्पर्शना प्राप्यते, आनतादिदेवानाश्रित्य सा षड्रज्जुप्रमाणाऽवाप्यते, यथा मनुष्यद्विकादीनामष्टरज्जुप्रमाणा स्पर्शना पञ्चेन्द्रियादिमार्गणासु।

(४) लोकस्याऽसंख्याततमभागप्रमाणस्पर्शनाविषयिका व्याप्तिः--यस्याः प्रकृतेर्बन्धकाः सूक्ष्मजीवा वायुकायिकजीवा वा न भवेयुः, ते च सूक्ष्मेषु वायुकायिकेषु च समुत्पत्तिमप्यप्राप्यमाणा भवेयुः, तादृशानां जीवानां यदि स्वस्थानक्षेत्रमुत्पत्तिक्षेत्रं च प्रतररज्जुप्रमितं न भवेत्, अथवा स्वस्थानक्षेत्र-पारभविकोत्पत्तिक्षेत्रयोः प्रतररज्जुप्रमितत्वेऽपि द्वयोरन्तरालक्षेत्रं रज्जोरसंख्याततमभागमेव स्यात् तर्हि तत्प्रकृतिबन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणा प्राप्ता भवति ।

तद्यथा--ओघे मार्गणायां चाहारकद्विकबन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणा प्रतिपाद-यिष्यते, तस्या उपपत्तिरेव विधेया, आहारकद्विकबन्धकानां वैमानिकेषूत्पत्तिसम्भवेनाऽन्तरालक्षेत्रस्य सप्तरज्जुप्रमितत्वेऽपि स्वस्थानक्षेत्रमुत्पत्तिक्षेत्रं च प्रतररज्जोरसंख्याततमभागमेवाऽस्ति, तस्मात्तेषां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयभागमात्रा एव प्राप्यते, तथा प्रथमनरकमार्गणायां सर्वासां प्रकृतीनां बन्धकानां द्वित्रिचतुरिन्द्रियमार्गणासु पञ्चेन्द्रियजातित्रसनामप्रभृतिप्रकृतीनां बन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्येय-भागमात्रा निरूपयिष्यते, तदपि तेषां स्वस्थानक्षेत्रस्य पारभविकोत्पत्तिक्षेत्रस्य वा प्रतररज्जु-प्रमाणत्वेऽपि तदन्तरालक्षेत्रस्य च रज्जोरसंख्यातभागमात्रत्वेन सूपपद्यते ॥११००॥

अथ नरकौघसप्तमनरकलक्षणमार्गणाद्वये स्वप्रायोग्यायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनामाह

णिरयचरमणिरयेसुं फुसिओऽत्थि णरदुगतित्थउच्चाण ।
लोगासंखियभागो छुहिआ भागा छ सेसाण ॥११०१॥

(प्रे०) 'णिरय' इत्यादि, नरकौघसप्तमनरकमार्गणयोर्मनुष्यद्विकजिननामोच्चैर्गोत्रलक्षणस्य प्रकृतिचतुष्कस्य बन्धकैर्लोकाऽसंख्येयतमभागः स्पृष्टः । भावना त्वेवं कर्तव्या—सप्तमनरकमार्ग-णायां मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रलक्षणस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धकानां स्वस्थानक्षेत्रस्य नरकौघमार्गणायां च मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रजिननामलक्षणस्य प्रकृतिचतुष्कस्य बन्धकानां पारभविकोत्पत्तिक्षेत्रस्य स्वस्था-नक्षेत्रस्य च लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणत्वात् स्पर्शनाऽपि तेषां तावत्प्रमाणैवाऽवाप्यते । 'छुहिओ' इत्यादि, एतन्मनुष्यद्विकादिप्रकृतिचतुष्कं विहाय शेषप्रकृतीनां बन्धकैः षड्भागाः स्पृष्टाः, तद्यथा- मार्गणयोरनयोर्वर्तमानाः शेषप्रकृतिबन्धका जीवास्तिर्यग्मनुष्येषु समुत्पद्यन्ते, समु-त्पद्यमानाश्च ते मरणसमुद्घातावस्थायां कृतात्मप्रदेशदण्डैः त्रसनाडिकायाः अधस्तनीयान् षड्रज्ज्वा-त्मकान् भागान् स्पृशन्ति स्म । सप्तमनरकादारभ्य तिर्यग्लोकं यावत् षड्रज्जुमानं क्षेत्रं वर्तते, एषा षड्रज्जुप्रमाणा स्पर्शना तिर्यक्षूत्पद्यमानापेक्षया एव विज्ञेया । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—मतिज्ञानावर-णीयादिसप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्गतिपञ्चेन्द्रिय-जात्यौदारिकद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कतिर्यगानुपूर्वीखगतिद्वयत्रसदशकाऽस्थिरषट्कोद्योतपराघा-तोच्छ्वासनीचैर्गोत्ररूपा अष्टचत्वारिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतयश्चेति पञ्चनवतिरिति ॥११०१॥

अधुना प्रथमनरकमार्गणायां ग्रैवेयकादिमार्गणासु तथाऽपरासु कतिपयासु मार्गणासु चायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रमुपदर्शयन्नाह

लोगासंखियभागो सप्पाऊणाण सव्वपयडीण ।
परिपुट्ठो पढमणिरयगेविज्जाइसुरमेएसु ॥११०२॥
वेउव्वमीसजोगे आहारदुगमणपज्जवेसु तहा ।
सामाइअछेएसु परिहारविसुद्धिसुहुमेसु ॥११०३॥

(प्रे०) 'लोगा' इत्यादि, रत्नप्रभानरकनवग्रैवेयकपञ्चानुत्तरवैक्रियमिश्रकाययोगाहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगमनःपर्यवज्ञानसामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसंपरायसंयमरूपासु त्रयोविंशतिमार्गणासु स्वप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकैर्लोकाऽसंख्येयतमभागः परिस्पृष्टः, एताभ्यो मार्गणाभ्यः कासुचिन्मार्गणासु वर्तमानानां जीवानां पारभविकोत्पत्तिक्षेत्रस्य स्वस्थानक्षेत्रस्य च, कासुचिन्मार्गणासु च वर्तमानानां जीवानां स्वस्थानक्षेत्रस्य लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणत्वात् कासुचित्पुनरन्तरालक्षेत्रस्य रज्ज्वसंख्येयभागमात्रत्वात् । एतदुक्तं भवति–अत्र पूर्वोक्तश्चतुर्थो नियमोऽनुसरणीयः अथ प्रस्तुते घटना क्रियते–प्रथमनरकेऽन्तरालक्षेत्रस्य रज्ज्वसंख्यातभागमात्रत्वात्, वैक्रियमिश्रे केवलं स्वस्थानक्षेत्रस्यैव लाभेन तस्य च लोकासंख्यभागमात्रत्वात्, तथा शेषमार्गणासु स्वस्थानक्षेत्रपारभविकोत्पत्तिक्षेत्रयोः प्रतररज्ज्वसंख्येयभागमात्रत्वादत्रोक्तासु सर्वासु मार्गणासु सर्वासां स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धकैर्लोकाऽसंख्यातभागप्रमाणं क्षेत्रं स्पृष्टमुपलभ्यत इति ॥११०२-३॥

साम्प्रतं द्वितीयादिनरकपञ्चकमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रं दर्शयन्नाह

बीआइणिरयपणगे णिरयव्वऽत्थि जिणणरदुगुच्चाण ।
कमसो इगदुतिचउपणभागा छुहिआऽत्थि सेसाण ॥११०४॥

(प्रे०) 'बीआ' इत्यादि, शर्कराप्रभावालुकाप्रभापङ्कप्रभाधूमप्रभातमःप्रभारूपासु पञ्चसु मार्गणासु जिननाममनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रलक्षणस्य प्रकृतिचतुष्कस्य बन्धकानां स्पर्शना नरकौघमार्गणावदभिधातव्या, सा च लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणा वर्तते, भावना नरकौघवद् विधेया । "**कमसो**" इत्यादि, मार्गणास्वासु शेषप्रकृतिबन्धकैः क्रमश एकद्वित्रिचतुःपञ्चभागाः स्पृष्टाः सन्ति । इदमुक्तं भवति-शर्कराप्रभानरकमार्गणायां शेषप्रकृतिबन्धका एकरज्ज्वात्मकैकभागम्, वालुकाप्रभानरकमार्गणाया द्वौ भागौ, पङ्कप्रभानरकमार्गणाया त्रीन् भागान्, धूमप्रभानरकमार्गणायां भागचतुष्कं, तमःप्रभानरकमार्गणाया पञ्चभागान् स्पृशन्ति स्म । इयं स्पर्शनाऽप्येषां तिर्यक्षु जायमानानां समुद्घातावसरे विहितात्मप्रदेशदण्डैः प्राप्यते, एकादिभागस्पर्शनाविषयकः पूर्वोक्तनियमोऽत्रानुसरणीयः- यासु मार्गणासु यासां प्रकृतीनां बन्धकानां स्वस्थानक्षेत्रपारभविकोत्पत्तिक्षेत्रयोरन्यतरक्षेत्रमायामविष्कम्भाभ्यां प्रतररज्जुप्रमाणं तयोरन्तरालमेकादिरज्जुप्रमाणं च तदा तासु तासां प्रकृतीनां बन्धकानां स्पर्शनैकादि-

भागप्रमाणा अवगन्तव्या, अयं भावः यद्यन्तरालमेकरज्जुप्रमाणं तदा स्पर्शनैकभागप्रमाणा. द्विरज्जुप्रमाणामन्तरालं तदा स्पर्शना त्रसनाड्या उक्तद्विभागप्रमाणा, एवं त्रिरज्ज्वाद्यन्तरालेऽप्यपि ज्ञेयम् । अथ भावना क्रियते–उक्तपञ्चनरकाणां स्वस्थानक्षेत्रस्य प्रतररज्ज्वसंख्यातभागमात्रत्वेऽपि पारभविकोत्पत्तिस्थानरूपतिर्यग्लोकस्य प्रतररज्जुप्रमाणत्वात् , द्वितीयादिनरकतस्तिर्यग्लोकरूपोत्पत्तिक्षेत्रं यावद्न्तरस्यैकादिरज्जुमितत्वाच्च स्पर्शनैकादिभागप्रमाणा प्राप्ता। नरकौघमार्गणोक्ता एव पञ्चनवतिप्रकृतयोऽत्रापि शेषप्रकृतितया ग्राह्याः ॥११०४॥

इदानीं तिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघादिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनां प्ररूपयितुमाह

दुपणिंदियतिरियेसु विण्णेयो फरिसिओ सयललोओ ।
णपुमाइदुसट्ठीए तेरसतिरियाइगाण च ॥११०५॥
अत्थि णवसुराईण पण भागा छ चउदुस्सराईण ।
थोअ दिवड्ढे गारह पणिंदिविक्कियदुगतसाण ॥११०६॥
अत्थि जसुज्जोआण सग भागा बायरस्सा ऊणजगं ।
लोगासखियभागो सप्पाउग्गाण सेसाण ॥११०७॥
एमेव जोणिणीअ वि फुसणा णवरि चउदुस्सराईणं ।
पण भागा छुहिआ दस पणिंदिविउवजुगलतसाण ॥११०८॥

(प्रे०) "दुपणिंदिय" इत्यादि, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियमार्गणाद्वये 'णपुम असाय अरइदुगं । पणअथिराई हुड णीअ परघाउऊसासा ॥ धुवबंधी पज्जत्त पत्तेय' मितिसंग्रहगाथात्रयवेधुदितानां नपुंसकवेदाऽसातवेदनीयाऽरतिद्विकाऽस्थिराऽशुभदुर्भगाऽनादेयायशःकीर्तिहुण्डकसंस्थाननीचैर्गोत्रपराघातोच्छ्वासमप्तचत्वारिंशन्मतिज्ञानावरणीयप्रभृतिध्रुवबन्धिप्रकृतिपर्याप्तप्रत्येकनामरूपाणां द्वाषष्टिप्रकृतीनां, 'तेरस'इत्यादि,'तिरियदुगउरलथावरएगिंदी थिरसुहा साय ॥ हस्सरई सुहुमतिग' मिति संग्रहगाथोक्तानां तिर्यग्द्विकौदारिकशरीरनामस्थावरनामैकेन्द्रियजातिस्थिरशुभनामसातवेदनीयहास्यरतिसूक्ष्मत्रिकरूपाणां त्रयोदशप्रकृतीनां चेति सर्वसंख्यया पञ्चसप्ततिप्रकृतीनां बन्धकैः सकललोकः स्पृष्टः, तद्यथा–मार्गणयोरनयोर्वर्तमाना एतत्प्रकृतिबन्धका जन्तवः सूक्ष्मैकेन्द्रियेषूत्पद्यन्ते, सूक्ष्मैकेन्द्रियाश्च सकललोकं व्याप्य वर्तन्ते, अतस्ते तत्र समुत्पद्यमानाः समुद्घातावस्थायां विहितात्मप्रदेशदण्डैः सकलं लोकमतीतकाले स्पृष्टवन्तः । "अत्थि णवसुराइ"इत्यादि, सुरद्विकोच्चैर्गोत्रपुरुषवेदसुभगत्रिकसुखगतिसमचतुरस्रसंस्थानरूपाणां नवानां प्रकृतीनां बन्धकैः पञ्च भागाः स्पृष्टाः । घटना पुनरेवम् एतासां प्रकृतीनां बन्धका मार्गणाद्वयेऽस्मिन् सहस्रारदेवलोकं यावदुत्पद्यन्ते,तच्च क्षेत्रं जीवसमासग्रन्थाभिप्रायेण स्वक्षेत्रात्पञ्चरज्जुमितं दूरे वर्तते,ते च तत्रोत्पद्यमाना मरणसमुद्घातवेलायां कृतात्मप्रदेशदण्डैः पूर्वोक्तनियमानुसारेण त्रसनाड्याः पञ्चभागान् स्पृशन्ति २॥ ।"छ चउदुस्सराईणं"इत्यादि, दुःस्वराऽशुभखगतिनरकद्विकलक्षणानां चतसृणां प्रकृतीनां बन्धकैः षड्भागाः स्पृष्टाः,

यतः प्रकृतिचतुष्कस्याऽस्य बन्धका एतद्मार्गणागता जीवा आसप्तमनरकं समुत्पद्यन्ते, स्वस्थानक्षेत्र-पारभविकोत्पत्तिस्थानयोरन्तरालस्य षड्रज्जुमितत्वात् पूर्वोक्तनियमानुसारेण स्पर्शना षड्रज्जुप्रमाणाऽस्ति । 'थीअ' इत्यादि, स्त्रीवेदस्य बन्धकैरर्धाधिकैकभागः परिस्पृष्टः, यत इह स्त्रीवेद-बन्धका द्वितीयदेवलोकपर्यन्तमेव जायन्ते, देवीनामुत्पत्तेस्तावति क्षेत्र एव भावात् , स्वक्षेत्राद्द्वितीयदेवलोकपर्यन्तक्षेत्रमर्धाधिकैकरज्जुप्रमाणमस्ति, प्रतिपादितं च जीवसमासवृत्तौ-"पूर्वोक्ताल्लोकमध्यात सौधर्मेशानदेवलोकौ यावत सार्धरज्जु'-सार्धरज्जुप्रमाण स्पर्शनीय क्षेत्रमित्यर्थ" । ते च तत्रोत्पद्यमाना मरणसमुद्घातवेलायां विहितात्मप्रदेशदण्डैरुक्तप्रमाणक्षेत्रं स्पृशन्ति । अत्रेदं ध्येयम्—पञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणाद्वयमाश्रित्य स्त्रीवेदप्रकृतौ सास्वादनगुणस्थानवर्तिनः पञ्चेन्द्रियतिरश्चः सिद्धशिलायामुत्पद्यन्ते, तत्रोत्पद्यमानानां तेषां मरणसमुद्घातमाश्रित्य सप्तरज्जुप्रमाणस्पर्शना भवति । अत एवाग्रे मिथ्यात्वाबन्धकजीवानां स्पर्शना मरणसमुद्घातेनैकेन्द्रियभव उत्पद्यमानान् सास्वादनगुणस्थानवर्तिजीवानाश्रित्य सप्तरज्जुप्रमाणा स्पर्शना प्रतिपादयिष्यते । प्रस्तुते सास्वादनगुणस्थानवर्तिनां जीवानां मरणसमुद्घातेन सिद्धशिलायामुत्पद्यमानानां नपुंसकवेदाबन्धकत्वेन स्त्रीवेदबन्धकत्वात् सप्तरज्जुप्रमाणा स्पर्शनोपपद्यते । तथाप्यत्र सौधर्मेशानदेवलोकस्थाने स्त्रीत्वेन उत्पद्यमानान् पञ्चेन्द्रियतिरश्च आश्रित्य सार्धरज्जुप्रमाणैव स्पर्शना निरूपिता । कथम् ? इति चेद् उच्यते, विवक्षावशाद् । इयमत्र विवक्षा-बाहुल्येन ये जीवा यस्मिन् भवे उत्पद्यन्ते तेषां जीवानां मरणसमुद्घाते तद्भवप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धो भवति मरणसमुद्घातस्य भवचरमान्तर्मुहूर्त एव सत्त्वात्तदानीं परभवप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धस्य कथितत्वाच्च । तदुक्तं कर्मप्रकृतिग्रन्थगतोदीरणाकरणप्रकरणे त्रयस्त्रिंशत्तमगाथायाश्चूर्णौ-'जो जत्थ उववज्जइ सो तप्पाउग्गपगतिं अंतोमुहुत्तं बंधिऊण उववज्जइ'त्ति । प्रकृते पञ्चेन्द्रियतिरश्चः सौधर्मेशानदेवलोकस्थाने देवतया उत्पद्यमाना मरणसमुद्घाते स्त्रीवेदबन्धं कुर्वन्तीति तानाश्रित्य सार्धरज्जुप्रमाणा स्पर्शना निरूपिता । एवमेव प्रकृतमार्गणाद्विके त्रसपञ्चेन्द्रियजातिपञ्चमसंहननाशुभखगतिदुःस्वरनामादिप्रकृतीराश्रित्य, देवौघादीशानान्तदेवमार्गणासु त्रसपञ्चेन्द्रियजातिपञ्चमसंहननसंस्थानकुखगति-दुःस्वरस्त्रीवेदादिप्रकृतीराश्रित्य, पञ्चेन्द्रियद्विकत्रसद्विकपञ्चमनःपञ्चवचनयोगादिमार्गणासु च त्रसादिनामप्रकृतीराश्रित्य तत्तत्प्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनायां तथाऽग्रे तत्तत्प्रकृत्यबन्धकस्पर्शनायामपि यथासम्भवमियमेव विवक्षाऽवगन्तव्या ।

"एगारह" इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकत्रसनामरूपस्य प्रकृतिचतुष्कस्य बन्धका एकादशभागान् स्पृष्टवन्तः, भावना पुनरित्थं भावनीया—प्रकृतमार्गणाद्वये प्रकृतिचतुष्कस्याऽस्य बन्धका अधः सप्तमनरकं यावदूर्ध्वं पुनरासहस्रारलोकं समुत्पद्यन्ते, एतदुभयमपि क्षेत्रमेकादशरज्जुप्रमाणमस्ति, तत्सर्वमपि क्षेत्रं मरणसमुद्घातावसरे कृतात्मप्रदेशदण्डैस्ते तत्र समुत्पद्यमानाः स्पृष्टवन्तः । "अत्थि जसु" इत्यादि, यशःकीर्तिनामोद्योतनामलक्षणप्रकृतिद्वयस्य बन्धकानां स्पर्शना सप्तभागमाना वर्तते,

तदेवम्–एतत्प्रकृतिद्वयबन्धका अधिकृतमार्गणाद्वयगता जीवा ईषत्प्राग्भारपृथ्वीं यावत्पृथ्वीकायतयोत्पद्यन्ते, तच्च क्षेत्रं सप्तरज्जुप्रमाणं विद्यते, उत्पद्यमानाश्च ते तत्र मरणसमुद्घातसमये कृतैः स्वात्मप्रदेशदण्डैस्तत्क्षेत्रं स्पृशन्ति, अधो लोके सप्तनरकपृथ्वीपूत्पद्यमाना उक्तप्रकृतिद्वयं नैव बध्नन्ति, अत ऊर्ध्वलोकगतस्पर्शना एव गृहीताः । 'बायरस्स' इत्यादि, बादरनामकर्मणो बन्धका देशोनलोकं परिस्पृष्टवन्तः, बादरवायुकायिकतयोत्पत्सुभिस्तैर्मरणसमुद्घातावसरे तावत्क्षेत्रस्य स्पृष्टत्वात् , बादरवायुकायिकानां क्षेत्रस्य देशोनलोकप्रमाणत्वाच्च, उक्तं च पञ्चसंग्रहवृत्तौ श्रीमदाचार्यमलयगिरिसूरिपादैः 'बायरपवणा असंखेसु त्ति-बादरपवना बादरवायुकायिकाः पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च प्रत्येकं लोकस्याऽसंख्येयेषु भागेषु वर्तन्ते । लोकस्य हि यत्किमपि सुषिरं तत्र सर्वत्रापि वायवो प्रसर्पन्ति, यत्पुनरतिनिबिडनिचितावयवतया सुषिरहीनकनकगिरिमध्यभागादि तत्र न । तच्च सकलमपि लोकस्यासंख्येयभागमात्रम् । तत एकमसंख्येयभागं मुक्त्वा शेषेषु सर्वेष्वप्यसंख्येयेषु भागेषु वायवो वर्तन्ते' इति । बादरवायुकायिकेषु जायमानाः प्रकृतमार्गणाद्वयवर्तिबादरनामकर्मबन्धका मारणिकसमुद्घातकृतात्मप्रदेशदण्डैरेतावदशमुक्तप्रमाणं क्षेत्रं स्पृशन्ति । ननु सुषिरहीनकनकगिरिमध्यभागादिषु बादरवायुकायिकानामभावाद् देशोनलोकप्रमाणं स्वस्थानक्षेत्रं युक्तियुक्तं भवति, परन्त्वत्रातीतकाले समुद्घातगतैरनन्तैर्जीवैः सुषिरहीनकनकगिरिमध्यभागादीनां स्पृष्टत्वाद् बादरनामकर्मबन्धकैः सर्वलोकः स्पृष्टव्यं स्यात् , इति चेन्न सुषिरहीनकनकगिरिमध्यभागादीनां स्पृष्टत्वेऽपि लोकस्य निष्कुटानामस्पृष्टत्वाद् देशोनलोकप्रमाणैव-स्पर्शना प्राप्यत इति । 'लोग' इत्यादि, उक्तेतरस्वप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धकैर्लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणं क्षेत्रं स्पृष्टम् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः–मनुष्यद्विकविकलेन्द्रियत्रिकसंहननषट्कमध्यमसंस्थानचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गातपनामरूपाः सप्तदशप्रकृतयः । एतत्प्रकृतिबन्धकानां स्वस्थानक्षेत्रस्य पारभविकोत्पत्तिक्षेत्रस्य च साधिकतिर्यग्लोकरूपत्वेन लोकस्यैकासंख्येयभागमात्रत्वात् ।

'एमेव' इत्यादि, तिर्यग्योनिमतीमार्गणायामेवमेवोक्तप्रकृतीनां बन्धकानां स्पर्शना वक्तव्या । 'णवर' इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति, "चउदुस्सराइ" इत्यादि, दुःस्वराऽशुभखगतिनरकद्विकरूपाणां चतसृणां प्रकृतीनां बन्धकैस्तिर्यग्योनिमतीमार्गणायां पञ्च भागाः स्पृष्टाः । तदेवम्–मार्गणायामस्यां वर्तमाना जीवाः षष्ठनरकं यावदेवोत्पद्यन्ते, स्त्रीणां सप्तमनरके उत्पादस्य निषेधात् , स्वक्षेत्राद् षष्ठनरकपर्यन्तक्षेत्रं पञ्चरज्जुप्रमाणमस्ति, तच्चैतत्प्रकृतिबन्धका मरणसमुद्घातवेलायामाहितदण्डैः स्पृष्टवन्तः । अथ द्वितीयविशेषं दर्शयति–'दस' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकत्रसनामकर्मरूपस्य प्रकृतिचतुष्कस्य बन्धका दश भागान् स्पृष्टवन्तः, तद्यथा एतन्मार्गणस्थाः एतत्प्रकृतिबन्धकाः प्राणिन ऊर्ध्वमासहस्रारमधश्चाऽऽषष्ठनरकं समुत्पद्यन्ते, उभयमपि क्षेत्रं दशरज्जुप्रमाणं भवति, पञ्चरज्जुप्रमाणमुपरि पञ्चरज्जुप्रमाणं चाऽधः ॥११०५८॥

साम्प्रतमपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रभृतिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनामाह

असमत्तपणिदितिरियपणिदियतसेसु सव्वविगलेसु ।
सव्वजगं णपुमाइगदुसट्ठितेरतिरियाईणं ॥११०९॥
अत्थि जसुज्जोआणं सगभागा बायरस्स ऊणजगं ।
लोगासंखियभागो सप्पाउग्गाण सेसाणं ॥१११०॥

(प्रे०) 'असमत्त' इत्यादि, अपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियापर्याप्तपञ्चेन्द्रियापर्याप्तत्रसकायरूपासु तिसृषु मार्गणासु, ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेन तिसृषु द्वीन्द्रियमार्गणासु तिसृषु त्रीन्द्रियमार्गणासु तिसृषु चतुरिन्द्रियमार्गणासु चेति द्वादशमार्गणासु 'णपुमअसायअरइदुग । पणअथिराई हुंडं णीअ परधाय-ऊसासा ॥ धुवबंधी पज्जत्तं पत्तेअ'इति संग्रहगाथात्रयवेषु भाषितानां नपुंसकवेदप्रभृतीनां द्वाषष्टिप्रकृतीनां 'तिरियदुगउरलथावरएगिंदी थिरसुहा साय ॥ हस्सरई सुहमतिग' इति संग्रहगाथावयवेषु भाषितानां च तिर्यग्द्विकप्रभृतित्रयोदशप्रकृतीनां बन्धकैः सर्वो लोकः परिस्पृष्टः,एतत्प्रकृतिबन्धकैस्सूक्ष्मतयोत्पद्यमानत्वात् । 'अत्थि' इत्यादि, यशःकीर्त्युद्योतनाम्नोर्बन्धकाः सप्तभागान् स्पृष्टवन्तः । 'बायर' इत्यादि, बादरनाम्नो बन्धका देशोनलोकं स्पृष्टवन्तः, भावना पुनरुभयत्र तिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघमार्गणावदाधेया । 'लोगा' इत्यादि, इहोक्तशेषप्रकृतीनां बन्धकैर्लोकाऽसंख्येयतमभागः स्पृष्टः, ताश्चैताः शेषप्रकृतयः-पुरुषवेदस्त्रीवेदमनुष्यगतिद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कप्रथमादिसंस्थानपञ्चक-मनुष्यानुपूर्वीखगतिद्विकत्रसशुभगसुस्वरादेयदुःस्वराऽऽतपोच्चैर्गोत्ररूपा एकोनत्रिंशत्प्रकृतय इति । भावनिका पुनरिहाऽनया रीत्या कार्या—आतपनामकर्मोदयो भानुमण्डलस्थितानां पृथ्वीकायिकजीवानां वर्तते, अन्यासां कासांचित्प्रकृतीनामुदयो यथायोगं मनुष्येषु वर्तते, कासाञ्चित्प्रकृतीनां विकलेन्द्रियेषु, कासाञ्चिच्च तिर्यक्पञ्चेन्द्रियेषु, अतो मार्गणास्वासु वर्तमानाः शेषप्रकृतिबन्धका मनुष्यत्वेन पञ्चेन्द्रियतिर्यक्त्वेन विकलेन्द्रियत्वेनाऽऽतपनामकर्मोदयवदेकेन्द्रियत्वेन वोत्पित्सवो मरणसमुद्घातकाले निक्षिप्तात्मप्रदेशदण्डैस्तादृशं क्षेत्रं स्पृशन्ति, तिर्यग्लोके तदासन्ने वा तेषां स्थानभावात् ॥११०९-१०॥

इदानीमपर्याप्तमनुष्यमार्गणायां सकलबादराग्निकायमार्गणासु चाऽऽयुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शना निरूप्यते ।

जसउज्जोआण सय अपज्जणरसव्वबायरग्गीसु ।
उज्जादुसट्ठिणपुमाइतेरतिरियाइगाण सव्वजगं ॥११११॥ (गीतिः)
देसूणजगं बायरणामस्सियराण जगअसंखंसो ।

(प्रे०) "जसउज्जोआण" इत्यादि, अपर्याप्तमनुष्यमार्गणायामोघ-पर्याप्ता-ऽपर्याप्तभेदभिन्नासु तिसृषु बादराग्निकायमार्गणासु च प्रत्येकं 'जस उज्जोआण सयमुज्झा' त्ति यशःकीर्तिनाम्न उद्योतनाम्नश्च बन्धकानां प्रस्तुता नानाजीवकृता स्पर्शना स्वयमभ्यूह्या, कथम् ? सर्वलोकवर्तिसूक्ष्मपृथिव्यादिराशिषु तेषां गतेः सम्भवेऽपि सूक्ष्मपृथिव्यादितयोत्पित्सूनां मारणान्तिकसमुद्-

घातगतानां तेषां यशःकीर्त्युद्योतनामप्रकृतिद्वयबन्धस्यैवाप्रवर्तनात्, स्वस्थानतस्तु तेषां मनुष्यलोकवर्तित्वेन चोत्पादकृतस्पर्शनापर्यन्तधावनस्यानावश्यकत्वात्, तेषामुत्पादकृतस्पर्शनायास्तु 'दोसु उड्ढकवाडेसु' इत्यादिना नयविशेषेण नानात्वात्। एतदुक्तं भवति-सामान्यतस्तत्तत्प्रकृतिबन्धकानामुत्कृष्टस्पर्शना समुद्घातकृतस्पर्शनाप्राधान्येन लभ्यते, समुद्घातकृता महती स्पर्शना तु तेजःकायमार्गणासु सूक्ष्मपृथिव्यादितयोत्पित्सूनां सर्वलोके निक्षिप्तस्वात्मप्रदेशानां तेजःकायिकजीवानां स्पर्शना प्रधाना, न च ते तदानीं प्रस्तुतं प्रकृतिद्वयं बध्नन्ति, तथा च तेजःकायमार्गणासु समुद्घातकृतस्पर्शनायाः सामान्यतः सर्वलोकप्रमाणत्वेन सा प्रकृतप्रकृतिद्वयस्वामिनां समुद्घातकृतस्पर्शनात्वेन नैव युज्यते, स्वस्थानगतानां तेजःकायिकानां यद्यपि प्रस्तुतप्रकृतिद्वयस्य बन्धः सम्भवति, तथा च प्रस्तुतस्पर्शनात्वेन स्वस्थानस्पर्शना लभ्यते, परं तस्या मनुष्यक्षेत्रमात्रत्वेन न सा सर्वमहती, उत्पादावस्थागतानामपि प्रस्तुतप्रकृतिबन्धसम्भवेन स्वस्थानस्पर्शनापेक्षयोत्पादकृतस्पर्शनाया विपुलत्वेन तस्या एव प्रस्तुतोत्कृष्टस्पर्शनातया युज्यमानत्वात्। न चैव तर्हि यावती तेषां बादरतेजःकायिकानामुत्पादकृता स्पर्शना स्यात्, तावती सा उच्यतामिति वाच्यम्, तस्या अभिप्रायविशेषेणानेकविधत्वस्य दर्शनात्। तद्यथा-उदिततेजःकायायुष्काणां सर्वलोके सम्भवेऽपि तेजःकायिकाः स्वस्थानतो मनुष्यलोके एव तिष्ठन्ति, तत्राऽपि ये सूक्ष्मपृथिवीकायिकादिजीवास्ततश्च्युत्वैकद्वयादिवक्रेषु वर्तमानाः स्वस्थानप्राप्त्यभिमुखीभूतास्ते बहिस्त्रसनाडेः स्थिताश्च प्रथमतो ये परिपूर्णमनुष्यलोकावगाढेऽत एवार्धतृतीयद्वीपसमुद्रप्रमाणबाहल्ये पूर्वापरदक्षिणोत्तरस्वयम्भूरमणसमुद्रपर्यन्ते केवलिसमुद्घातकपाटवदूर्ध्वमधश्च लोकान्त स्पृष्टे तयोः, परिपूर्णतिर्यग्लोकक्षेत्रं चेत्येतावति क्षेत्रे प्रविश्य पश्चात्तदन्तो यथासम्भवमेकादिवक्रं कृत्वा ऋज्व्या वा मनुष्यलोके स्वोत्पत्तिस्थानेषूत्पद्यन्ते, तत्र ये यथोक्तकपाटद्वयं तिर्यग्लोकं वाऽद्याप्यप्राप्ता उदिततेजस्कायाऽऽयुष्कास्ते यद्यपि ऋजुसूत्रनयेन तेजःकायिकव्यपदेशभाजस्तथाऽपि व्यवहारनयेन तु ये यथोक्तकपाटद्वयं तिर्यग्लोकं वा प्राप्तास्त एव यदा तेजःकायिकतयाऽधिक्रियन्ते, तदा तयोः कपाटयोस्तिर्यग्लोकस्य च लोकाऽसंख्येयभागमात्रगतत्वेन प्रस्तुतप्रकृतिद्वयस्य बन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयभागमात्रा भवति, अधिकृतश्चैवमेव व्यवहारोऽन्यत्र, यदुक्तम् श्रीमत्यां प्रज्ञापनायाम्–

कहि णं भंते ! बायरतेउकाइयाणं अपज्जत्तगाणं ठाणा प० गोयमा ! जत्थेव बायरतेउकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा तत्थेव बायरतेउकाइयाणं अपज्जत्तगाणं ठाणा प० उववाएणं लोयस्स दोसुउड्ढकवाडेसु तिरियलोयतट्टे य समुग्घाएणं सव्वलोए, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे। तद्वृत्तौ-अपर्याप्तबादरतेजःकायिकस्थानानि पृच्छति-कहि णं भंते। इत्यादि, प्रश्नसूत्रं गतार्थं, भगवानाह–गोयमा इत्यादि गौतम ! यत्रैव बादरतेजःकायिकानां पर्याप्तानां स्थानानि तत्रैव बादरतेजःकायिकानामपर्याप्तानामपि स्थानानि प्रज्ञप्तानि, पर्याप्तनिश्रयैवापर्याप्तानामवस्थानात्, 'उववाएणं लोगस्स दोसु उड्ढकवाडेसु तिरियलोयतट्टे य' इति इहार्धतृतीयद्वीपसमुद्रनि.सृते अर्धतृतीयद्वीपसमुद्रप्रमाणबाहल्ये पूर्वापरदक्षिणोत्तरस्वयम्भूरमणपर्यन्ते ये कपाटे केवलि-

समुद्घातकपाटवद् ऊर्ध्वमपि लोकान्त स्पृष्टे ते अधोऽपि च लोकान्त स्पृष्टे ते ऊर्ध्वकपाटे, तयो ऊर्ध्वकपाटयो, तथा 'तिरियलोयतट्टे' य इति तट्ट स्थानं तिर्यग्लोके तट्टमिव तिर्यग्लोकतट्ट तस्मिंश्च स्वयम्भूरमणसमुद्रवेदिका-पर्यन्ते अष्टादशयोजनशतबाहल्ये, समस्ततिर्यग्लोके चेत्यर्थ., उपपातेन बादरतेजःकायिकानामपर्याप्ताना स्थानानि प्रज्ञप्तानि। केचित् तिरियलोयतट्टे य'इत्येव व्याचक्षते-तयोःकपाटयो स्थितः तत्स्थ तिर्यग्लोकश्चासौतत्स्थः, तयोरूर्ध्वकपाटयोरन्तर्वर्तितिर्यग्लोक इत्यर्थ तस्मिंश्च, किमुक्त भवति-द्वयोरूर्ध्व कपाटयोर्यथोक्तस्वरूपयोस्तिर्यग्लोकेऽपि च तयोरेव कपाटयोरन्तर्गते नान्यत्र, शेपतिर्यग्लोकव्यवच्छेदपरमेतद् वाक्यम्, न विधानपरम्, विधानस्य कपाटग्रहणेनैव सिद्धत्वात्, तत्त्व पुन केवलिना विशिष्टश्रुतविदा वा गम्यम्, इयमत्र भावना-इह त्रिविधा बादरापर्याप्ततेज कायिका, तद्यथा एकभविका बद्धायुपोऽभिमुखनामगोत्राश्च, तत्र ये एकस्माद् विवक्षिताद् भवादनन्तर बादरापर्याप्ततेजःकायिकत्वेनोत्पत्स्यन्ते, ते एकभविकाः, ये तु पूर्वभवत्रिभागादिसमयैर्बद्धबादरापर्याप्ततेजःकायिकायुपस्ते बद्धायुप, ये पुन बादरापर्याप्ततेज कायिकायुर्नामगोत्राणि पूर्वभवमोचनानन्तर साक्षाद् वेदयन्ते, तेऽभिमुखनामगोत्रा., तत्रैकभविका बद्धायुपश्च द्रव्यतो बादरापर्याप्ततेजःकायिका न भावत, तदाऽऽयुर्नामगोत्रवेदनाभावात् ततो न तैरिहाधिकारः किन्तु अभिमुखनामगोत्रैं, तेषामेवोपपातस्य स्वस्थानप्राप्त्याभिमुख्यलक्षणस्य लभ्यमानत्वात्। तत्र यद्यपि ऋजुसूत्रनयदर्शनेन बादराऽपर्याप्ततेज कायिकायुर्नामगोत्रवेदनाद् यथोक्तकपाटद्वयतिर्यग्लोकबाह्यव्यवस्थिता अपि बादरापर्याप्ततेज कायिकव्यपदेश लभन्ते, तथाप्यत्र व्यवहारनयदर्शनाभ्युपगमाद् ये स्वस्थानसमश्रेणिकपाटद्वयव्यवस्थिता. ये च स्वस्थानानुगते तिर्यग्लोके प्रविष्टास्ते एव बादरापर्याप्ततेज.कायिका व्यपदिश्यन्ते, न शेपा. कपाटापान्तरालव्यवस्थिता विषमस्थानवर्तित्व त्; तेन येऽद्यापि कपाटद्वय न प्रविशन्ति, नापि तिर्यग्लोकम्, ते किल पूर्वभवावस्था एवेति न गण्यन्ते, उक्त च-पणयाललक्खपिहुला दुन्नि कवाडा य छद्दिसिं पुट्ठा। लोगन्ते तेसिंऽतो जे तेऊ ते उ घिप्पन्ति ।१। तत उक्त -उववाएणं दोसु उड्ढकवाडेसु तिरियलोयतट्टे य 'इति तदेवमिद सूत्र व्यवहारनयप्रदर्शनेन व्याख्यातं तथासम्प्रदायात्, युक्त चैतत् "विचित्रा सूत्राणा गति" इति ।

अथाऽयमेषामभिप्रायो नाधिक्रियतेऽपि तु ऋजुसूत्रनय एवाधिक्रियते, तदा प्रस्तुतस्पर्शना सर्वलोकमात्रा एव स्याद्, तन्नये यथोक्तकपाटद्वयतिर्यग्लोकबहिर्वर्तिनामप्युदिततेजःकायाऽऽयुष्काणां तेजःकायिकतया व्यवहरणस्याविरुद्धत्वादित्येवं नानाभिप्रायभेदभिन्नस्पर्शनासंग्रहार्थकतया 'सयमुज्झ।' इत्यस्य सार्थक्यम्, एवमेवाऽपर्याप्तमनुष्यमार्गणास्थानेऽपि सूक्ष्मपृथिव्यादितयोत्पित्सूनां समुद्घातगतानां प्रस्तुतप्रकृतिद्वयस्याऽबन्धादन्यथा प्रस्तुतस्पर्शनाऽभ्यूहनार्थमेव तस्याऽर्थवत्त्वं व्याख्येयमिति । 'दुसहि' इत्यादि, पूर्वोक्तनपुंसकवेदादिद्वापष्टिप्रकृतीनां तिर्यग्द्विकप्रभृतित्रयोदशप्रकृतीनां च बन्धकैः सर्वजगत्स्पृष्टम् । 'देसूण' इत्यादि, बादरनाम्नो बन्धकैर्देशोनं जगत्स्पृष्टम् । 'इयराण' इत्यादि, अत्रोक्तशेषप्रकृतीनां बन्धकैर्जगतोऽसंख्येयतमभागः स्पृष्टः । ताश्चेमाः शेपप्रकृतयः—स्त्रीपुरुषवेदद्वयं मनुष्यगतिर्द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कमौदारिकाङ्गोपाङ्गं संहननपट्कं प्रथमादिसंस्थानपञ्चकं मनुष्यानुपूर्वी खगतिद्विकं त्रसनाम सुभगसुस्वरादेयनामानि दुःस्वरनामातपनामोच्चैर्गोत्रमिति नवविंशतिरपर्याप्तमनुष्यमार्गणायाम्, मनुष्यद्विकमुच्चैर्गोत्रं च विनैता एव पड्विंशतिर्बादरतेजःकायभेदेषु चेति । भावना पुनरत्रापर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्वदाधेया ॥१११॥

अथ बादरपृथ्वीकायादिमार्गणासु स्पर्शनामाह——

बायरसयलपुहविदगणिगोअपत्तेअहरिएसु ॥१११२॥
णपुमाइदुसट्ठीए तेरसतिरियाइगाण सव्वजग ।
देसूणजगं बायरणामस्सियराण सयमुज्झा ॥१११३॥

(प्रे०) 'बायरसयल' इत्यादि, बादरौघबादरपर्याप्तबादरापर्याप्तरूपासु त्रिपृथ्वीकायमार्गणासु, त्रिजलकायमार्गणासु त्रिबादरवनस्पतिकायमार्गणासु त्रिप्रत्येकवनस्पतिकायमार्गणासु चेति सर्वसंख्यया द्वादशमार्गणासु 'णपुमाइ' इत्यादि, नपुंसकवेदादिद्वाषष्टिप्रकृतीनां तथा 'तेरस' इत्यादि, त्रयोदशतिर्यग्गत्यादिप्रकृतीनां बन्धकैः सर्वं जगत् स्पृष्टम् , आसां पञ्चसप्ततिप्रकृतीनां बन्धकानां सूक्ष्मेषूत्पादात् । 'देसूणजगं' इत्यादि, बादरनामबन्धकैर्निरुक्तमार्गणावर्तिजीवैर्देशोनलोकः स्पृष्टः । कुतः इति चेदुच्यते, बादरवायुकायिकेषूत्पादाद् बादरवायुकायिकानां च देशोनलोकवर्तित्वाच्च । 'इयराण सयमुज्झा' उक्तव्यतिरिक्तानां प्रकृतीनां बन्धकानां स्पर्शना स्वयमूह्या तज्ज्ञातृसकाशादिति ॥१११२ १३॥

अथ मनुष्यत्रयमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनां कथयितुमाह

तिणरेसु जाणियव्व परिपुट्ठं बधगेहि सव्वजगं ।
णपुमाइदुसट्ठीए तेरसतिरियाइगाणं च ॥१११४॥
अत्थि जसुज्जोआण सयमुज्जा बायरस्स ऊणजगं ।
लोगाऽसंखियभागो सेसाण अडुत्तीसाए ॥१११५॥

(प्रे०) 'तिणरेसु' इत्यादि, मनुष्यौघपर्याप्तमनुष्यमानुषीरूपासु तिसृषु मार्गणासु नपुंसकवेदादिद्वाषष्टिप्रकृतीनां तिर्यग्द्विकप्रभृतित्रयोदशप्रकृतीनां च बन्धकैः सर्वलोकः स्पृष्टः । 'अत्थि' इत्यादि, यशःकीर्त्युद्योतनाम्नोर्बन्धकस्पर्शना अपर्याप्तमनुष्यमार्गणावत् स्वयमभ्यूह्या । 'बायरस्स' इत्यादि, बादरनाम्नो बन्धकैर्देशोनलोकः स्पृष्टः, भावना पुनरिह अपर्याप्तमनुष्यमार्गणावद्भाव्या । 'लोगा' इत्यादि, अत्राऽभिहितशेषप्रकृतीनां बन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणा बोद्धव्या । शेषप्रकृतिबन्धकेषु कासाञ्चित्प्रकृतिबन्धकानां पारभविकोत्पत्तिक्षेत्रस्य कासाञ्चित्प्रकृतिबन्धकानां स्वस्थानपारभविकोत्पत्तिक्षेत्रान्तरालस्य रज्ज्वसंख्यातभागमात्रत्वात् स्वस्थानक्षेत्रस्यापि मनुष्यक्षेत्रमात्रत्वाच्च स्पर्शना लोकाऽसंख्यातभागमात्राऽवसेया । शेषप्रकृतयश्चेमाः— अपर्याप्तमनुष्यमार्गणोक्तैकोनत्रिंशत्प्रकृतयस्तथा वैक्रियषट्काहारकद्विकजिननामप्रकृतयश्चेति सर्वसंख्ययाऽष्टात्रिंशत्प्रकृतयः ॥१११४-५॥

इदानीं देवमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनां दर्शयति—

देवीसाणतेसु णेया णपुमाइपंचसयरीए ।
णव भागा परिपुट्ठा अड भागा अत्थि सेसाणं ॥१११६॥

(प्रे०) 'देवी' इत्यादि, देवौघभवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कसौधर्मेशानलक्षणासु षट्सु देवमार्गणासु 'णपुमअसायअरइदुग । पणअथिराई हुड णीअ परघायऊसासा ॥ धुवबंधी पज्जत्त पत्तेअं बायर जसु-

उज्जोआ। तिरिअदुगउरल थावरएगिंदी थिरसुहा साय॥ इत्तरई' इति संग्रहगाथासूदितानां नपुंसकवेदादिपञ्चसप्ततिप्रकृतीनां बन्धका नव भागान् स्पृशन्ति । कथमिति चेद् उच्यते–मार्गणास्वासु वर्तमाना देवा अधस्तात्तृतीयनरकं यावद्गमन कारणोपस्थितौ कुर्वन्ति, तथोपरि तु सिद्धशिलायां पृथ्वीकायिकेषूत्पत्तिमालभन्ते अतस्तेषां स्पर्शना नवरज्जुप्रमाणा प्राप्यते । आह जीवसमासवृत्तौ श्रीमदाचार्यहेमचन्द्रसूरिपादाः भवनपत्यादय ईशानन्ता देवा··· ··· नवरज्जू स्पृशन्ति, तथाहि भवनपतिव्यन्तरा ज्योतिष्कास्तावत् पूर्वोक्तकारणादधस्तृतीयनरकपृथ्वीं यावद्गच्छन्तो रज्जुद्वयं स्पृशन्ति, उपरि चेषत्प्राग्भारादिपृथिवीकायिकेषूत्पद्यमानाः सप्तरज्जू स्पृशन्तीति सर्वा अपि नव, सौधर्मेशानदेवा अपि मिथ्यादृष्टिसास्वादनास्तृतीयपृथवीं यावद् गच्छन्त सार्धं रज्जूत्रयं स्पृशन्ति, उपरिचेषत्प्राग्भारादिपृथ्वीकायिकेषु उत्पद्यमानाः सार्धं पञ्चरज्जुकं स्पृशन्तीति सर्वा अपि नवरज्जव इति। तस्मात् प्रकृतप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शना नवरज्जुप्रमाणाऽवाप्यते स्पर्शनाया अतीतकालविषयत्वादुक्तनवरज्जुप्रमाणस्पर्शना त्रसनाड्या नवभागकल्पा ज्ञेयाः । 'अट्ठ' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीनां बन्धका अष्टौ भागान् स्पृशन्ति । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः–देवौघसौधर्मेशानमार्गणासु स्त्रीपुरुषवेदद्वय मनुष्यगतिः पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिकाङ्गोपाङ्गं संहननषट्कं प्रथमादिसंस्थानपञ्चकं मनुष्यानुपूर्वी खगतिद्वयं त्रससुभगसुस्वरादेयनामानि दुःस्वरनामातपनामजिननामोच्चैर्गोत्रमिति सप्तविंशतिः । भवनपत्यादिदेवमार्गणात्रये जिननाम विनैता एव । अत्र मार्गणासु शेषप्रकृतिबन्धकानामष्टभागप्रमाणा स्पर्शना गमनागमनेनैव प्राप्यते, एतत्प्रकृतिबन्धकानामेकेन्द्रियेष्वनुत्पादेनोर्ध्वलोकमस्तकसप्तमरज्जोः स्पर्शनाया अविषयत्वात् । अस्ति च तेषां गमनागमनमधस्तृतीयनरकं यावदूर्ध्वं चाऽच्युतदेवलोकं यावत् , उक्तं च जीवसमासीयहैमवृत्तौ-एत एव भवनपत्यादय ईशानान्ता देवा . चाष्टरज्जू स्पृशन्ति, इयं चाष्टरज्जुस्पर्शनाऽमीषामधस्तात् तृतीयनरकपृथ्वीं यावद्गच्छतामुपरि च पूर्वसाङ्गतिकदेवेनाऽच्युतदेवलोकं यावन्नीयमानानां भावनीया,तृतीयपृथिव्यच्युतदेवलोकयोरन्तरेऽष्टरज्जुसद्भावादिति ॥१११६॥

अथ तृतीयादिद्वादशान्तदेवमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रमाह––

सव्वाण　अट्ठ भागा' तइआइगअट्ठमंतदेवेसु ।
पुट्ठा अत्थि　छ　भागा सुरेसु चउआणयाईसुं ॥१११७॥

(प्रे०) "सव्वाण" इत्यादि, सनत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलोकलान्तकशुक्रसहस्रारूपासु षट्सु मार्गणासु स्वप्रायोग्याणां सर्वासां प्रकृतीनां बन्धकैरष्टौ भागाः स्पृष्टाः,मार्गणास्वासु गमनागमनक्षेत्रस्याऽष्टरज्जुप्रमाणत्वात् , उक्तं च जीवसमासीयहैमवृत्तौ–'अट्ठसहस्सारतिय त्ति सामान्येन मिथ्यादृष्ट्यादिस्वरूपा सनत्कुमारादिसहस्रारान्तिका अपि देवा अष्टरज्जू स्पृशन्ति, इयमष्टरज्जुस्पर्शना एतेषामधस्तात तृतीयपृथ्वीं यावद्गच्छतामुपरि चाच्युतदेवलोके पूर्वसाङ्गतिकदेवेन नीयमानानां तथैव परिभावनीया।

पुट्ठा' इत्यादि, आनतप्राणतारणाच्युतलक्षणासु चतसृषु मार्गणासु स्वप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शना षड्भागप्रमाणा बोद्धव्या, मार्गणासु वर्तमानानां देवानां गमनागमनक्षेत्रस्य षट्रज्जुप्रमाण-

स्वात् । आह—छअच्चुए त्ति अच्युतदेवलोकान् त्रिदशाः श्रीमज्जिनचन्द्रनाचार्यमिहागच्छन्त षड्रज्जूः स्पृशन्ति ॥१११७॥

साम्प्रतमेकेन्द्रियादिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शना निरूपयन्नाह

हवए एगिंदियपणकायणिगोएसु सव्वसुहुमेसु ।
सव्वजगं परिपुट्ठं सप्पाउग्गाण सव्वेसिं ॥१११८॥

(प्रे०) 'हवए' इत्यादि, एकेन्द्रियौघपृथ्वीकायौघवारिकायौघतेजःकायौघवायुकायौघवनस्पतिकायौघसाधारणवनस्पतिकायौघरूपासु सप्तसु मार्गणासु ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदभिन्नासु तिसृषु सूक्ष्मैकेन्द्रियमार्गणासु तिसृषु सूक्ष्मपृथ्वीकायमार्गणासु तिसृषु सूक्ष्माप्कायमार्गणासु तिसृषु सूक्ष्मतेजःकायिकमार्गणासु तिसृषु सूक्ष्मवायुकायिकमार्गणासु तिसृषु च सूक्ष्मसाधारणवनस्पतिकायिकमार्गणासु स्वप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रं सर्वजगत् समधिगम्यम्, मार्गणास्वासु वर्तमानानां सूक्ष्मजीवाना विश्वविश्वे व्याप्तत्वात् ॥१११८॥

अथ बादरौघैकेन्द्रियादिमार्गणासु प्रकृतस्पर्शनामाह

बायरएगिंदियतिगबायरवाउतदपज्जभेएसुं
खेत्तव्व अत्थि फुसणा सप्पाउग्गाण पयडीणं ॥१११९॥

(प्रे०) 'बायर' इत्यादि, ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेन बादरैकेन्द्रियमार्गणात्रये बादरवायुकायौघाऽपर्याप्तबादरवायुकायमार्गणयोश्च स्वप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शना क्षेत्रवदस्ति । तदेवम्—उक्तमार्गणापञ्चके नपुंसकवेदादिद्वापष्टिप्रकृतीनां तिर्यग्गत्यादित्रयोदशप्रकृतीनां च स्पर्शना सर्वलोकप्रमाणा, मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रप्रकृतीनां बन्धकानां स्पर्शना तु लोकासंख्येयभागमात्रा निबादरैकेन्द्रियमार्गणास्वेव, तथा शेषप्रकृतीनां बन्धकानां स्पर्शना देशोनलोकप्रमाणा मार्गणापञ्चके ज्ञातव्या ॥१११९॥ साम्प्रतं पञ्चेन्द्रियौघादिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनामाह

सव्वजगं दुपणिंदियतसपणमणवयणचक्खुसण्णीसुं ।
णपुमाइदुसट्ठीए तेरसतिरियाइगाणं च ॥११२०॥
बावीसपुमाईण बारह णिरयसुरविउवजुगलाण ।
भागा छपणेगारस कमाउ णरदुगजिणायवुच्चाणं ॥११२१॥ (गीति)
लोगासंखियभागो विगलाहारगदुगाण भागाऽत्थि ।
तेर जसुज्जोआणं ऊणजगं बायरस्से भवे ॥११२२॥

(प्रे०) 'सव्व' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौघपर्याप्तत्रसपञ्चमनोयोगमार्गणापञ्चवचनयोगमार्गणाचक्षुर्दर्शनसंज्ञिलक्षणासु षोडशमार्गणासु नपुंसकवेदादिद्वाषष्टिप्रकृतीनां तिर्यग्द्विकप्रभृतित्रयोदशप्रकृतीनां च बन्धकैः सर्वो लोकः स्पृष्टः, हेतुस्तु पूर्ववत् । 'बावीसा' इत्यादि, "पुमसुहगतिगसुखगइमागिई छसंघयणा । मज्झिमसंठाणित्थी उरलोवंगं तसपणिंदी ॥ दुस्सरकुखगइ" इति

संग्रहगाथासु कथितानां द्वाविंशतिपुरुषवेदादिप्रकृतीनां बन्धका द्वादश भागान् स्पृष्टवन्तः, घटना पुनरेवम्–मार्गणास्वासु वर्तमानेषु जीवेषु सप्तमनरकस्थजीवानाश्रित्याधोलोकसत्काः षड्भागाः, देवानाश्रित्योर्ध्वलोकसत्काः षड्भागाश्चेति सर्वसंख्यया द्वादशभागप्रमाणा स्पर्शना प्रकृतप्रकृतिबन्धकानां सूपपद्यते । 'णिरय' इत्यादि, नरकद्विकस्य षट् सुरद्विकस्य पञ्च वैक्रियद्विकस्य एकादश भागा स्पृष्टाः । भावनौघवत्कार्या, उभयत्र स्पर्शना मुख्यवृत्त्या तिर्यक्पञ्चेन्द्रियानाश्रित्यावाप्यत इति कृत्वा ।

'ऽट्ठ' इत्यादि, मनुष्यद्विकजिननामातपनामोच्चैर्गोत्ररूपाणां पञ्चानां प्रकृतीनां बन्धकैरष्टौ भागाः स्पृष्टाः, मार्गणास्वासु वर्तमानानामेतत्प्रकृतिबन्धकानां देवानां गमनागमनक्षेत्रस्याऽष्टरज्जुप्रमाणत्वात् देवान् विहाय मार्गणागतान्यनिरुक्तप्रकृतिबन्धकानां ततो हीनस्पर्शनाया लाभाच्च । 'लोगासंखियभागो' इत्यादि, द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियजात्याहारकद्विकरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्य बन्धकैर्लोकाऽसंख्येयतमभागः स्पृष्टः, तदेवम्–मार्गणास्वासु आहारकद्विकबन्धका ओघवदप्रमत्तसंयता एव वर्तन्ते, अतः स्पर्शनाऽप्योघवद् लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणैव तथा प्रकृतमार्गणासु वर्तमानास्तिर्यक्पञ्चेन्द्रियजीवा मुख्यवृत्त्या द्वीन्द्रियादिजातीना बन्धकाः, अतस्तानाश्रित्य तिर्यक्पञ्चेन्द्रियमार्गणावत् प्रकृतप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शना लोकासंख्यभागप्रमाणाऽस्ति । 'तेर जसु' इत्यादि, यशःकीर्तिनामोद्योतनाम्नोर्बन्धकैस्त्रयोदशभागाः स्पृष्टा भवन्ति, तिर्यग्लोक उत्पित्सुभिः सप्तमनरकपृथ्वीनारकैरधोलोकसत्काः षड्भागास्तथोर्ध्वलोकसत्काः सप्तभागाः सिद्धशिलायामुत्पित्सुभिर्देवैस्तिर्यग्भिर्वेति संमीलिता त्रयोदशभागप्रमाणा स्पर्शना भवति । 'ऊणजगं' इत्यादि, बादरनामबन्धकैर्देशोनजगत् स्पृष्टं भवति, तद्बन्धकानां देशोनलोके स्थितेषु बादरवायुकायिकेषूत्पत्तिसंभवेन मारणान्तिकसमुद्घातेन यथोक्तक्षेत्रस्य स्पर्शनादिति ॥११२०-२२॥

अथ बादरपर्याप्तवायुकायमार्गणायां स्पर्शनामाह

णपुमाइदुसट्ठीए   तेरसतिरियाइणाण सव्वजगं
बायरवाउसमत्ते   पुट्ठं   सेसाण   ऊणजगं ॥११२३॥

(प्रे०) "णपुमाइ" इत्यादि, पर्याप्तबादरवायुकायिकमार्गणायां नपुंसकवेदादिद्वाषष्टिप्रकृतीनां त्रयोदशतिर्यग्द्विकप्रभृतिप्रकृतीनां च बन्धकैः सर्वं जगत् स्पृष्टम्, आसां बन्धकैः सर्वलोकव्यापिसूक्ष्मेषूत्पद्यमानत्वादत्र । 'सेसाण' इत्यादि, शेषप्रकृतिबन्धकैर्देशोनलोकः स्पृष्टः, तेषां स्वस्थानक्षेत्रस्यापि तावन्मितत्वात् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः–स्त्रीपुरुषवेदद्वयं द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कमौदारिकाङ्गोपाङ्गं संहननषट्कं प्रथमादिमसंस्थानपञ्चकं विहायोगतिद्विकं त्रसबादरसुभगसुस्वरादेययशःकीर्तिनामानि दुःस्वरनामाऽऽतपोद्योतनाम्नी इत्येकोनत्रिंशत्प्रकृतयः ॥११२३॥

इदानीमौदारिककाययोगमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रमुपदर्शयितुमाह–

तित्थाहारदुगाणं णेयो ओरालियम्मि परिपुट्ठो ।
लोगासंखियभागो फुसणा ओघव्व सेसाणं ॥११२४॥

(प्रे०) 'तित्था' इत्यादि, औदारिककाययोगमार्गणायां तीर्थकृन्नामाहारकद्विकप्रकृतीनां बन्धका लोकाऽसङ्ख्येयतमभागप्रमितं क्षेत्रं स्पृष्टवन्तः, भावना मनुष्यमार्गणावत्कार्या । 'फुसणा' इत्यादि, एतत्प्रकृतित्रयवर्जानां शेषप्रकृतीनां बन्धकानां स्पर्शनैवमवगन्तव्या । तद्यथा—नरकद्विकबन्धकाः षड्भागान्, देवद्विकबन्धकाः पञ्च भागान् वैक्रियद्विकबन्धका एकादशभागान्, सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यङ्मनुष्यगतिद्वयजातिपञ्चकौदारिकद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कतिर्यङ्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासगोत्रद्वयरूपाणां च षष्ट्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धकाः सर्वलोकं स्पृशन्ति स्म ॥११२४॥

साम्प्रतमौदारिकमिश्रप्रभृतिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शना कथयितुकाम आह—

सुरविउवदुगजिणाण उरलमीसे कम्मणे अणाहारे ।
लोगासखियभागो छुहिओऽण्णेसिं अखिललोगो ॥११२५॥

(प्रे०) 'सुर' इत्यादि, औदारिकमिश्रकार्मणकाययोगानाहारकमार्गणासु सुरद्विकवैक्रियद्विकजिननामरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्य बन्धकैर्लोकाऽसंख्येयतमभागः स्पृष्टः, भावना पुनरेवम्—मार्गणास्वासु मनुष्येभ्य उद्वृत्ता मनुष्यत्वेन वोत्पद्यमानाः केचन सम्यग्दृष्टयः प्रकृतिपञ्चकमेतद् बध्नन्ति, तेषां च क्षेत्र लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणमस्ति, अत एतत्प्रकृतिपञ्चकबन्धकानां स्पर्शनाऽप्येतावत्प्रमाणैव प्राप्यते । 'ऽण्णेसिं' इत्यादि, एतत्प्रकृतिपञ्चकातिरिक्तप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शना निखिललोकप्रमाणा वेदयितव्या, मार्गणास्वासु वर्तमानानां जीवानां सकललोके व्याप्तत्वात्, तैश्च शेषप्रकृतीनां बध्यमानत्वात् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः- सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयमनुष्यतिर्यग्गतिद्वयजातिपञ्चकौदारिकद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतोच्छ्वासपराघातगोत्रद्वयरूपाः षष्टिरध्रुवबन्धिप्रकृतयश्चेति ॥११२५॥

अथ वैक्रियकाययोगमार्गणायां स्पर्शनामाह

विउवे णपुमाईण अडसट्ठीअ तह पणथिराईण ।
तेरस भागा बारस वावीसाए पुमाईण ॥११२६॥
अड भागा परिपुट्ठा हवन्ति णरदुगजिणायवुज्जोण ।
विण्णेया णव भागा एगिंदियथावराण तु ॥११२७॥

(प्रे०) 'विउवे' इत्यादि, वैक्रियकाययोगे नपुंसकवेदाद्यष्टषष्टिप्रकृतीनां तथा स्थिरशुभहास्यरतिसातवेदनीयरूपपञ्चस्थिरादिप्रकृतीना च स्पर्शना त्रयोदशभागप्रमाणा अवसातव्या । अष्टषष्टिप्रकृतयः संग्रहगाथातो 'णपुम' प्रभृति 'उरल' पर्यन्तगाथात्रयवैर्ग्राह्याः । अधोलोकसत्कषड्भागा नारकानाश्रित्य ऊर्ध्वलोकसत्काश्च सप्तभागा ईशानान्तदेवानाश्रित्य बोध्याः । 'बारस' इत्यादि,

पुमसुहगतिगसुखगइआगिई छसंघयणा । मज्झिमसठाणित्थी उरलोवंगं तसपणिदी ॥ दुस्सरकुखगइ' इत्येनन कथितानां द्वाविंशतिपुरुषवेदादिप्रकृतीना स्पर्शना द्वादशभागप्रमाणा ज्ञेया, ऊर्ध्वलोकसत्क-षड्भागा देवगमनागमनक्षेत्रमाश्रित्याधोलोकसत्काः षड्भागा· नारकानाश्रित्यानेतव्याः । 'अड' इत्यादि, मनुष्यद्विकजिनातपोच्चैर्गोत्ररूपाणां पञ्चप्रकृतीनां स्पर्शनाऽष्टरज्जुप्रमाणा मुख्य-वृत्त्या देवगमनागमनक्षेत्रमाश्रित्य ज्ञेया । एकेन्द्रियस्थावरनाम्नोर्बन्धकानां स्पर्शना नवभाग-प्रमाणा ईशानान्तदेवानेवाश्रित्यावगन्तव्या । विशेषभावना स्वयं कर्तव्या । ११२६-७॥

अधुना स्त्रीवेदमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रं संचिन्तयन्नाह

इत्थीए विण्णेय परिपुट्ठ बंधगेहि सव्वजग ।
णपुमाइदुसट्ठीए तेरसतिरियाइगाण च ॥११२८॥
अट्ठारपुमाईण णरदुगउच्चायवाण अड भागा ।
पण णिरयसुरदुगाण एगारस चउतसाईण ॥११२९॥
लोगासंखियभागो विगलाहारदुगतित्थणामाणं ।
दस भागा परिपुट्ठा वेउव्वदुगस्स णायव्वा ॥११३०॥
देसेणूणो लोगो बायरणामस्स फोसिओ हवए ।
णव भागा परिपुट्ठा उज्जोअजसाण विण्णेया ॥११३१॥

(प्रे०) 'इत्थीए' इत्यादि, स्त्रीवेदमार्गणायां नपुंसकवेदादिद्वाषष्टिप्रकृतीनां त्रयो-दशानां तिर्यग्द्विकप्रभृतिप्रकृतीनां च बन्धकाः सकललोकं स्पृशन्ति स्म, मार्गणावर्तितिरश्चीमा-नुषीनां सकललोकव्यापिसूक्ष्मेषूत्पादात् । 'अट्ठारस' इत्यादि, 'पुमसुहगतिगसुखगइआगिई छसंघयणा । मज्झिमसठाणित्थी उरलोवंग' इत्यनेनोक्ताना पुरुषवेदादीनामष्टादशप्रकृतीनां, 'णर' इत्यादि, मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रातपनामकर्मणां च बन्धकैरष्टौ भागाः स्पृष्टाः, मार्गणायामस्यां वर्तमानानामेतत्प्रकृतिबन्धकानां देवीजीवानां गमनागमनक्षेत्रस्याष्टरज्जुप्रमाणत्वात् ता एवाश्रि-त्यास्यां मार्गणायामधिकृतस्पर्शनाया लाभाच्च । देवीनामप्यूर्ध्वं गमनागमनमच्युतकल्पदेव-सहायेनाच्युतकल्पं यावद् विद्यते । उक्तं च योगशास्त्रस्य स्वोपज्ञवृत्तौ "उत्पत्तिर्देवीनामाई-शानात् गमनं च आअच्युतात" इति । 'पण' इत्यादि, नरकद्विकसुरद्विकरूपस्य प्रकृतिचतुष्कस्य बन्धकाः पञ्चभागान् स्पृष्टवन्तः, मार्गणायामस्यां नरकद्विकबन्धकतया मुख्यतया तिरश्च्यः सन्ति, ताश्चाधस्तात् षष्ठनरकं यावदुत्पद्यन्ते, सुरद्विकबन्धिकाश्च तिरश्च्य ऊर्ध्वमासहस्रार-देवलोकं समुत्पद्यन्ते, अधस्तनीयं षष्ठनरकपर्यन्तं क्षेत्रं पञ्चरज्जुप्रमाणं वर्तते, ऊर्ध्वमपि सहस्रारपर्य-न्तं क्षेत्रं पञ्चरज्जुप्रमाणं वर्तते ,उत्पद्यमानाश्च तत्र ताः स्वप्रायोग्यं क्षेत्र मरणसमुद्घातकाले आत्म-प्रदेशानां दण्डकरणेन स्पृशन्ति स्म । 'एगारस' इत्यादि,'तसपणिदी दुस्सरकुखगइ' इति संग्रहगाथा-यामुक्तानां चतसृणां त्रसनामादिप्रकृतीनां बन्धका एकादशभागान् स्पृष्टवन्तः, भावनाप्रकारस्त्वेवम्—

मार्गणायामस्यां वर्तमाना एतत्प्रकृतिबन्धका जीवाः षष्ठनरकं यावदधस्तादुत्पद्यन्ते, अतस्तेषां मरणसमुद्घातकाले आत्मप्रदेशानां दण्डविधानेन पञ्चरज्जुप्रमाणक्षेत्रस्य स्पर्शना सम्पद्यते, तथोर्ध्वं पुनरेतन्मार्गणास्था देवाऽच्युतपर्यन्तं गमनागमनं कुर्वन्ति, तस्मात्ताभिः षड्रज्जवः स्पृश्यन्ते । एवं रीत्या त्रसादिप्रकृतिचतुष्कबन्धकानामेकादशभागमाना स्पर्शना भवति । 'लोगा' इत्यादि, विकलत्रिकाहारकद्विकजिननामरूपस्य प्रकृतिषट्कस्य बन्धकैर्लोकाऽसंख्येयतमभागः स्पृष्टः, तदेवम्–विकलेन्द्रियजीवानां तिर्यग्लोक एव भवेन लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणमेव क्षेत्रमस्ति, लोकाऽपेक्षया तिर्यग्लोकस्य लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणत्वात् तथा प्रकृतप्रकृतिबन्धकानां स्वस्थानक्षेत्रमपि साधिकतिर्यग्लोकरूपम् , तस्मान्मार्गणायामस्यां विकलत्रिकबन्धका जीवा विकलेन्द्रियेषु समुत्पित्सवो मरणसमुद्घातावसरे कृतैरात्मप्रदेशदण्डैस्तादृशं क्षेत्रं स्पृशन्ति । जिननाम्न आहारकद्विकस्य च बन्धका मार्गणायामस्यां केचन सम्यग्दृष्टिमनुष्या एव वर्तन्ते, अतो मनुष्यमार्गणावत्तद्बन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्याततमभागप्रमितैव विद्यते । 'दस' इत्यादि, वैक्रियद्विकस्य बन्धकैर्दश भागाः स्पृष्टाः, तदेवम्–मार्गणायामस्यां वैक्रियद्विकबन्धकतया मुख्यवृत्त्या तिरश्चोऽधः षष्ठनरकमूर्ध्वं च सहस्रारदेवलोकं यावदुत्पद्यन्ते, तच्च क्षेत्रं समुदितं दशरज्जुप्रमितं वर्तते, ताश्च मरणसमुद्घातवेलायामाहितात्मप्रदेशदण्डैस्तादृशं क्षेत्रं परिस्पृशन्ति । 'देसूणो' इत्यादि, बादरनाम्नो बन्धका देशोनलोकं स्पृशन्ति स्म, भावना पञ्चेन्द्रियमार्गणावत्कार्या । 'णव' इत्यादि, उद्योतयशःकीर्तिनाम्नोर्बन्धका नवभागान् स्पृष्टवन्तः, इमा स्पर्शना देवीराश्रित्य ज्ञेया, भावना देवौघमार्गणावत्कार्या ॥११२८ ३१॥

साम्प्रतं पुरुषवेदमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रमावेदयितुमाह

अट्ठारपुमाईण पुरिसे भागाऽट्ठ फोसिआ णेया।
णव जसउज्जोआण छण्णवईए पणिंदिव्व ॥११३२॥

(प्रे०) 'अट्ठार' इत्यादि, पुरुषवेदमार्गणायां 'पुमसुहगतिगसुखगइआगिई छसघयणा॥ मज्झिमसंठाणित्थी उच्चोवगं' इति संग्रहगाथासूदितानां पुरुषवेदादीनामष्टादशप्रकृतीनां बन्धका अष्टौ भागान् स्पृष्टवन्तः, मार्गणायामस्यां वर्तमानानां देवानां गमनागमनक्षेत्रस्याऽष्टरज्जुप्रमाणत्वात् । "णव जसउज्जोआण" इति, यशःकीर्तिनामोद्योतनाम्नोर्बन्धकानां स्पर्शना नवभागप्रमाणाऽस्ति, सा चेशानान्तदेवानाश्रित्य ज्ञेया, भावना देवौघवत्कार्या । "छण्णवईए पणिंदिव्व" इत्यनेन एतत्प्रकृतिव्यतिरिक्तानां षण्णवतिप्रकृतीनां बन्धकानां स्पर्शना पञ्चेन्द्रियौघमार्गणावद् विज्ञेया । सा पुनरेवम्-नपुंसकवेदाऽसातवेदनीयाऽरतिद्विकाऽस्थिरादिपञ्चकहुण्डकसंस्थाननीचैर्गोत्रपराघातोच्छ्वासमप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतिपर्याप्तप्रत्येकतिर्यग्द्विकौदारिकशरीरस्थावरैकेन्द्रियस्थिरशुभसात वेदनीयहास्यरतिसूक्ष्मत्रिकरूपाणां पञ्चसप्ततिप्रकृतीनां बन्धकाः सर्वलोकं स्पृशन्ति स्म, बादरनाम्नो

देशोनलोकप्रमाणा स्पर्शना ज्ञेया, नरकद्विकस्य षड्भागाः, त्रसपञ्चेन्द्रियजातिदुःस्वरकुखगतिरूपाणां चतसृणां प्रकृतीनां द्वादशभागाः, सुरद्विकस्य पञ्च भागाः, मनुष्यद्विकजिननामातपोच्चैर्गोत्ररूपाणां पञ्चानां प्रकृतीनामष्टौ भागाः, विकलेन्द्रियत्रिकाहारकद्विकरूपप्रकृतिपञ्चकस्य लोकाऽसंख्येयतमो भागः, वैक्रियद्विकस्यैकादशभागाः स्पृष्टाः । इह भावनाऽपि पञ्चेन्द्रियोघमार्गणेव ज्ञेया ॥११३२॥

अथ नपुंसकवेदमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनां दर्शयितुमाह

णपुंसे ओघव्व भवे फुसणा सव्वाण णवरि बोद्धव्वो ।
लोगासंखियभागो परिपुट्ठो तित्थणामस्स ॥११३३॥

(प्रे०) 'णपुंसे' इत्यादि, नपुंसकवेदमार्गणायां सर्वासां प्रकृतीनां बन्धकानां स्पर्शनौघवद् विज्ञातव्या, सा पुनरेवम्–आहारकद्विकस्य लोकाऽसंख्येयतमभागः, नरकद्विकस्य षड् भागाः, देवद्विकस्य पञ्चभागाः, वैक्रियद्विकस्यैकादश भागाः, एतद्व्यतिरिक्तप्रकृतीनां च सर्वलोकः स्पृष्टः, भावनौघानुसारेण विधेया । 'णवरि' इत्यादिना विशेषमुपदर्शयितुमाह–तीर्थकृन्नामकर्मणो बन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणा वेदयितव्या, कुत ? इति चेदुच्यते–ओघे तु जिननाम्नो बन्धकत्वेन देवा अपि प्राप्यन्ते, इह तु तेषामसत्त्वात् तानाश्रित्य स्पर्शनाया अप्यलाभः, अतः प्रकृतप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शना लोकासंख्येयतमभागमात्रा वेदयितव्या ॥११३३॥

सम्प्रति गतवेदादिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनां प्रतिपादयितुमाह

गयवेए अकसाये केवलदुगसंजमाहखायेसु ।
सायस्स सव्वलोगो दोसु य सेसाण जगअसंखंसो ॥११३४॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'गयवेए' इत्यादि, अपगतवेदाऽकषायकेवलज्ञानकेवलदर्शनसंयमौघयथाख्यातसंयमलक्षणासु षट्सु मार्गणासु सातवेदनीयस्य बन्धकैः समस्तलोकस्य स्पर्शना कृता, मार्गणास्वासु वर्तमानैः केवलज्ञानिभिः केवलिसमुद्धातवेलायां सकललोकस्य स्पृष्टत्वात् । 'दोसु' इत्यादि, गतवेदसंयमौघमार्गणाद्वये सातवेदनीयव्यतिरिक्तप्रकृतिबन्धकैर्लोकाऽसंख्येयतमभागः स्पृश्यते, मार्गणयोरनयोर्वर्तमानानां जीवानां स्वस्थानक्षेत्रस्य पारभविकोत्पत्तिक्षेत्रस्य च लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणत्वेन स्पर्शनाऽपि तावन्मात्रैव । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः–अपगतवेदमार्गणायां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्कयशःकीर्त्युच्चैर्गोत्राऽन्तरायपञ्चकरूपा विंशतिप्रकृतयः । संयमौघमार्गणायां च ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपा एकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः, असातवेदनीयहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकाहारकद्विकसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतिदेवानुपूर्वीत्रसदशकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासजिननामोच्चैर्गोत्ररूपास्त्रयस्त्रिंशदध्रुवबन्धिन्यः प्रकृतयश्चेति । अन्यासु मार्गणास्वत्र केवलं सातवेदनीयबन्धकानामेवोपलभ्यमानत्वेन 'दोसु' इति पदेन गतवेदसंयमौघमार्गणाद्वयमेवोपात्तमिति ॥११३४॥

अथ ज्ञानादिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनामभिधित्सुराह

णाणतिगे ओहिम्मि य उवसमए वेअगम्मि परिपुट्ठो ।
लोगाऽसंखियभागो आहारदुगस्स णायव्वो ॥११३४॥
देवविउव्वदुगाण पण भागा फोसिआऽट्ठ सेसाणं ।

(प्रे०) 'णाण' इत्यादि, मतिज्ञानश्रुतज्ञानावधिज्ञानावधिदर्शनपद्मलेश्याक्षयोपशमसम्यक्त्व-रूपासु पट्सु मार्गणास्वाहारकद्विकबन्धकैर्लोकाऽसंख्येयभागः परिस्पृष्टः, भावना पुनरोघवत् कार्या। 'देव' इत्यादि, देवद्विकवैक्रियद्विकरूपस्य प्रकृतिचतुष्कस्य बन्धकैः पञ्च भागाः स्पृष्टाः, तिर्यग्लोकगतपञ्चेन्द्रियतिरश्चामासहस्रारमुत्पादात् । भावनैवबत्कार्या । 'अट्ठ' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीनां बन्धकैरष्टौ भागाः स्पृष्टाः । मार्गणास्वासु वर्तमानानां देवानां गमनागमनक्षेत्रस्याऽष्टरज्जुप्रमाणत्वात् । ताश्चेमा. शेषप्रकृतयः-पद्मलेश्यामार्गणाया सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः,वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यङ्मनुष्यगतिद्वयपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रसदशकाऽस्थिरषट्कपराघातोच्छ्वासोद्योतजिननामगोत्रद्वयरूपा द्विपञ्चाशदध्रुवबन्धिप्रकृतयश्चेति मतिज्ञानश्रुतज्ञानाऽवधिज्ञानाऽवधिदर्शनक्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणासु च मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कलक्षण प्रकृत्यष्टकं वर्जयित्वा शेषा एकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदमनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकसमचतुरस्रसंस्थानप्रथमसंहननमनुष्यानुपूर्वीसुखगतित्रसदशकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासजिननामोच्चैर्गोत्ररूपा द्वात्रिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतयश्चेत्येकसप्ततिः प्रकृतयः ॥११३५॥

इदानीं विभङ्गज्ञानमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनामुपदर्शयितुमाह

पंचिंदियव्व फुसणा सप्पाउग्गाण विब्भंगे ॥११३६॥

(प्रे०) "पंचिंदियव्व" इत्यादि, विभङ्गज्ञानमार्गणाया स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धकानां स्पर्शना पञ्चेन्द्रियौघमार्गणावदवसेया:, तदेवम्-नपुंसकवेदाऽसातवेदनीयाऽरतिद्विकपञ्चास्थिरादिहुण्डकसंस्थाननीचैर्गोत्रपराघातोच्छ्वाससप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतिपर्याप्तप्रत्येकतिर्यग्द्विकौदारिकशरीरस्थावरनामैकेन्द्रियजातिस्थिरशुभसातवेदनीयहास्यरतिसूक्ष्मत्रिकरूपाणां पञ्चसप्ततिप्रकृतीनां बन्धकैः सर्वलोकः, पुरुषवेदसुभगत्रिकसुखगतिसमचतुरस्रसंस्थानसंहननषट्कमध्यमसंस्थानचतुष्कस्त्रीवेदौदारिकाङ्गोपाङ्गत्रसपञ्चेन्द्रियजातिदुःस्वराऽशुभखगतिरूपाणा द्वाविंशतिप्रकृतीनां बन्धकैर्द्वादशभागाः, नरकद्विकस्य बन्धकैः पड्भागाः, सुरद्विकस्य बन्धकैः पञ्चभागाः, मनुष्यद्विकातपनामोच्चैर्गोत्ररूपस्य प्रकृतिचतुष्कस्य बन्धकैरष्टौ भागाः, द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियजातिरूपस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धकैर्लोकाऽसंख्येयतमभागः, वैक्रियद्विकस्यैकादश भागाः स्पृष्टास्तथा यशःकीर्त्यु-

द्योतयोर्बादरस्य च बन्धकानां स्पर्शना क्रमेण त्रयोदशभागा देशोनलोकप्रमाणा च ज्ञेया । भावनाऽप्यत्र पञ्चेन्द्रियमार्गणावत्कार्या ॥११३६॥

साम्प्रतं देशविरतिसंयममार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रमभिधातुकाम आह

लोगासखियभागो छुहिओ देसम्मि तित्थणामस्स ।
पुट्ठाऽत्थि पच भागा सेसाण पचसट्ठीए ॥११३७॥

(प्रे०) 'लोगा' इत्यादि, देशविरतिसंयममार्गणायां जिननामकर्मणो बन्धकैर्लोकाऽसंख्येयतमो भागः स्पृष्टः, कथम् ? मार्गणायामस्यां मनुष्या एवैतत्प्रकृतिं बध्नन्ति, अतो मनुष्यमार्गणावदेतत्प्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनाऽपि समागच्छति । 'पुट्ठा' इत्यादि, जिननामव्यतिरिक्तानां पञ्चषष्टिप्रकृतीनां बन्धकाः पञ्चभागान् स्पृष्टवन्तः, भावना त्वेवम्—मार्गणायामस्यां वर्तमानाः शेषप्रकृतिबन्धका मुख्यतया तिर्यञ्च आसहस्रारकल्पं समुत्पद्यन्ते, ते च मरणसमुद्घातावसरे आत्मप्रदेशानां दण्डविधानेनाऽऽसहस्रारकल्पं क्षेत्रं स्पृशन्ति, तच्च पञ्चरज्ज्वात्मकपञ्चभागप्रमाणमस्ति । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सावर्णादिचतुष्कागुरुलघूपघातनिर्माणतैजसकार्मणशरीरद्वयाऽन्तरायपञ्चकरूपाः पञ्चत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वीसुखगतित्रसदशकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाः त्रिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतयश्चेति ॥११३७॥

अथ कृष्णलेश्यामार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शना दर्शयितुमना आह

किण्हाअ असखसो जगस्स छुहिओऽत्थि सुरदुगजिणाणं ।
णिरयविउव्वदुगाण छ भागा सेसाण सव्वजगं ॥११३८॥

(प्रे०) "किण्हाअ" इत्यादि, कृष्णलेश्यामार्गणाया सुरद्विकजिननामरूपस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धका जगतोऽसंख्येयतमभागं स्पृष्टवन्तः, तद्यथा-मार्गणायामस्यां सुरद्विकस्य बन्धका जीवा भवनपतिव्यन्तरदेवेष्वेवोत्पद्यन्ते, भवनपतिव्यन्तरदेवलोकरूपपरभवोत्पत्तिक्षेत्रतिर्यग्लोकरूपस्वस्थानक्षेत्रयोरन्तरालस्य रज्ज्वसंख्येयतमभागप्रमितत्वात् स्पर्शनाऽपि लोकाऽसंख्यातभागरूपा प्राप्यते । जिननाम्नो बन्धका मार्गणायामस्या मनुष्या एव विद्यन्ते, तेषा च स्वस्थानक्षेत्रं लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणमेवाऽस्ति, अतः स्पर्शनाप्यत्र तावत्प्रमाणैव प्राप्यते । अत्रेदमवधेयम्—यद्यपि मनुष्यमार्गणायां जिननाम्नो बन्धकैः समुद्घातेनाऽपि लोकाऽसंख्येयभागः स्पृष्टः, अत्र तु स्वस्थानगतैरेव प्रकृतप्रकृतिबन्धकैर्मनुष्यक्षेत्रं स्पृष्टम् , अतस्तत्रत्यस्पर्शनातोऽत्रत्यस्पर्शनाऽसंख्येयगुणहीना ज्ञातव्याः । 'णिरय' इत्यादि, नरकद्विकवैक्रियद्विकलक्षणस्य प्रकृतिचतुष्कस्य बन्धकैः षड्भागाः स्पृष्टाः, सा पुनरेवम् मार्गणायामस्यां प्रकृतिचतुष्कमेतत् प्रधानतया तिर्यञ्चो बध्नन्ति, ते चाऽऽसप्तमनरकं समुत्पद्यन्ते, तत्क्षेत्रं षड्रज्जुप्रमितं वर्तते, समुत्पद्यमानाश्च तत्र ते मरणसमुद्घातवेलाया कृतात्मप्रदेशदण्डैस्तादृशं क्षेत्रं स्पृशन्ति ।

ननु वैक्रियद्विकस्य षड्भागेभ्योऽधिकं स्पर्शनाक्षेत्रं कथं नाभिहितम् , मार्गणायामस्यां वर्तमानानां प्राणिनां देवलोकेष्वपि जायमानत्वात् , इति चेन्न कृष्णलेश्यावतां केवल देवलोकेषु भवनपति-व्यन्तरदेवत्वेनैव समुत्पद्यमानत्वात् । 'सेसाण' इत्यादि, इहोक्तप्रकृतिव्यतिरिक्तानां प्रकृतीनां बन्धकाः सर्वं लोकं स्पृशन्ति स्म, शेषप्रकृतिबन्धकत्वेन सूक्ष्मजीवानामपि लाभात् , तेषां स्वस्थानक्षेत्र-स्य सर्वलोकप्रमाणत्वाच्च । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः–सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयो वेदनीयद्विकहास्या-दियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयजातिपञ्चकौदारिकद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कतिर्यग्मनुष्यानु-पूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासगोत्रद्वयरूपाः परिभ्रुवबन्धिप्रकृतय-श्चेति सप्ताधिकं शतम् ॥११३८।

साम्प्रतं नीलकापोतलेश्यामार्गणयोरायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनां विचारयन्नाह

णीलाए काऊअ य फुसणा किण्हव्व सव्वपयडीण ।
णवरि कमा अत्थि चउदुभागा णिरयविउवदुगाण ॥११३९॥

(प्रे०) 'णीलाए' इत्यादि, नीललेश्याकापोतलेश्यालक्षणयोर्मार्गणयोः सर्वासां स्वप्रायो-ग्याणां प्रकृतीनां बन्धकानां स्पर्शना कृष्णलेश्यामार्गणावदवगम्या । 'णवरि' इत्यादिना विशेष-मुपदर्शयति–नरकद्विकवैक्रियद्विकबन्धकानां मार्गणाद्वयेऽस्मिन् यथाक्रमं स्पर्शना चतुर्द्विभागप्रमाणा भवति, इदमुक्तं भवति–नीललेश्यामार्गणायां नरकद्विकवैक्रियद्विकरूपस्य प्रकृतिचतुष्कस्य बन्धकै-श्चत्वारो भागाः स्पृष्टाः, कापोतलेश्यामार्गणायां च द्वौ भागौ स्पृष्टौ, तद्यथा–नीललेश्यावन्तः पञ्चम-नरकं यावदेव समुत्पद्यन्ते, आपञ्चमनरकक्षेत्रं चतूरज्जुप्रमाणमस्ति, कापोतलेश्यावन्तस्तृतीयनरकं याव-देवोत्पद्यन्ते, तत्क्षेत्रं पुनर्द्विरज्जुप्रमाणमस्ति, ते च तत्रोत्पित्सवो मरणसमुद्धाते विहितात्मप्रदेश-दण्डैस्तत्क्षेत्रं स्पृशन्ति ॥११३९॥

साम्प्रतं तेजोलेश्यामार्गणायां प्रकृतस्पर्शनामाह–

तेऊअ णरदुगायववावीसपुमाइतित्थउच्चाण ।
अड भागाऽत्थि दिवड्ढा छविआ सुरविउवजुगलाण ॥११४०॥
लोगासंखियभागो आहारदुगस्स फोसिओ णेयो ।
णव भागा परिपुट्ठा सप्पाउग्गाण सेसाण ॥११४१॥

(प्रे०) 'तेऊअ' इत्यादि, तेजोलेश्यामार्गणायां मनुष्यद्विकातपनामरूपस्य प्रकृतित्रयस्य 'पुम-सुहगतिसुसुखगइआगिई छसंघयणा । मज्झिमसंठाणित्थी उरलोवंगं नमपणिंदी ॥ दुस्सरकुखगइ' इति सङ्ग्रहगाथासु भणितानां पुरुषवेदादिद्वाविंशतिप्रकृतीनां जिननामोच्चैर्गोत्रलक्षणस्य च प्रकृतिद्वयस्य-बन्धकैरष्टौ भागाः स्पृष्टाः, मार्गणायामस्यां वर्तमानानामेतत्प्रकृतिबन्धकानां देवानां गमनागमनक्षेत्र स्याऽष्टरज्जुप्रमाणत्वात्तैरूर्ध्वलोकसत्कसप्तरज्जोरस्पृष्टत्वाच्च । 'दिवड्ढ' इत्यादि, सुरद्विकवैक्रियद्वि-

रूपाणां चतसृणां प्रकृतीनां बन्धकैर्द्वितीयार्धभागः स्पृष्टः, । भावनिका पुनरेवं विधेया-एतत्प्रकृतिचतुष्कबन्धकास्तेजोलेश्यावन्तः सौधर्मेशानदेवलोकौ यावदेवोत्पद्यन्ते, तत्क्षेत्रं पुनरर्धाधिकैकरज्जुप्रमाणमस्ति, उत्पित्सवश्च ते तत्र मरणसमुद्घातकृतैरात्मप्रदेशदण्डैस्तावद्दशक्षेत्रं स्पृशन्ति । 'लोगा' इत्यादि, आहारकद्विकस्य बन्धकैर्लोकाऽसंख्येयतमभागः स्पृष्टः, भावना पुनरिह प्रागुवदवसातव्या । 'णव' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीनां बन्धकाना स्पर्शना नवभागप्रमाणा समधिगम्या, भावना पुनरिहैवम्-मार्गणायामस्यां वर्तमानाः शेषप्रकृतिबन्धका ईशानान्तदेवा गमनागमनेनाऽष्टरज्जुप्रमाणं क्षेत्रं स्पृशन्ति, तथा त एवैकेन्द्रियत्वेनोत्पित्सव ऊर्ध्वलोकसत्कमप्तमरज्जुमपि स्पृशन्ति । ताश्चेमाः-शेषाः प्रकृतयः-सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयनपुंसकवेदतिर्यग्गत्येकेन्द्रियजात्यौदारिकशरीरहुण्डकसंस्थानतिर्यगानुपूर्वीबादरपर्याप्तप्रत्येकस्थिरशुभयशःकीर्तिस्थावराऽस्थिराऽशुभदुर्भगानादेयाऽयशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासोद्योतनीचैर्गोत्ररूपा अष्टाविंशतिरध्रुवबन्धिप्रकृतयश्चेति पञ्चसप्ततिः ॥११४०-४१॥

अथ शुक्ललेश्यामार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रं दिदृक्षुराह

सायाहारदुगाणं ओघव्वऽत्थि सुइलाअ सयमुज्झा ।
सुरविउवदुगाण भवे फुसिआ भागा छ सेसाण ॥११४२॥

(प्रे०) 'साया' इत्यादि, शुक्ललेश्यामार्गणायां सातवेदनीयाहारकद्विकप्रकृतित्रयस्य बन्धकानामोघवत्स्पर्शनाऽस्ति, तदेवम्-सातवेदनीयबन्धकानां केवलिसमुद्घातकाले सकललोकस्य स्पर्शना भवति, आहारकद्विकबन्धकानां लोकासंख्येयतमभागप्रमाणा स्पर्शना भवति । 'सयमुज्झा' इत्यादि, सुरद्विकवैक्रियद्विकरूपाणां चतसृणां प्रकृतीनां बन्धकाना स्पर्शना स्वयमेवोह्या । तदेवम्-यदि शुक्ललेश्याकदेवेषु तिरश्चामुत्पत्तिर्न भवति, मनुष्याणामेव तत्रोत्पत्तिर्जायते, तर्हि मनुष्याणामपेक्षया प्रकृतप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणैव प्राप्यते, यदि पुनः शुक्ललेश्याकदेवेषु तिरश्चामुत्पत्तिसम्भवस्तर्हि तेषामपेक्षया प्रकृतप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शना पञ्चरज्जुप्रमाणा यथागमं स्वयं परिभावनीया । 'भवे' इत्यादि, अभिहितेतरशेषप्रकृतीनां बन्धकैः षड्भागाः परिस्पृष्टाः, यतो मार्गणायामस्यां वर्तमानाः शेषप्रकृतिबन्धका अच्युतदेवलोकस्था देवा गमनागमनं षड्रज्जुपर्यन्तं कुर्वन्ति । उक्तं च जीवसमासे 'छच्चुच्चए' इत्यादि, ननु शेषप्रकृतीना स्पर्शनाक्षेत्रं षड्रज्जुप्रमाणं कुतोऽभिहितम् , सहस्रारादीन् देवानाश्रित्याधिकस्पर्शनाया लाभादिति चेन्न अस्यैवग्रन्थस्य मूलप्रकृतिबन्धमूलप्रकृतिस्थितिबन्धप्रमप्रभावृत्तौ समाहितत्वात् । शेषप्रकृतयस्त्वेताः-सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिन्यः, असातवेदनीयहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयमनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कमनुष्यानुपूर्वीखगतिद्वयत्रसदशकाऽस्थिरषट्कपराघातोच्छ्वासजिननामगोत्रद्वयरूपा अष्टचत्वारिंशदध्रुवबन्धिन्यश्चेति पञ्चनवतिप्रकृतयः ॥११४२॥

अधुना सम्यक्त्वौघमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनामाह

सम्मत्ते परिपुट्ठं सव्वजगं सायवेअणीयस्स ।
देवविउव्वदुगाणं पण भागा फरिसिआ णेया ॥११४३॥
लोगासंखियभागो आहारदुगस्स फोसिओ हवए ।
छुहिआऽत्थि अट्ठ भागा सप्पाउग्गाण सेसाणं ॥११४४॥

(प्रे०) "सम्मत्ते" इत्यादि, सम्यक्त्वौघमार्गणायां सातवेदनीयस्य बन्धकैः सर्वं जगत् स्पृष्टं, केवलिसमुद्घातापेक्षया भावना प्राग्वद् भावनीया । 'देवविउव्व' इत्यादि, देवद्विकवैक्रियद्विकलक्षणस्य प्रकृतिचतुष्कस्य बन्धकैः पञ्चभागाः स्पृष्टाः, भावनादिकमोघवत्कार्यम् । 'लोगा' इत्यादि, आहारकद्विकस्य बन्धकैर्लोकाऽसंख्येयतमो भागः स्पृष्टः, भावना पुनरिह भणितप्राया । 'छुहिआ' इत्यादि, इहोक्तेतरासां स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धका अष्टौ भागान् स्पृशन्ति स्म, मार्गणायामस्यां वर्तमानानां प्रकृतशेषप्रकृतिबन्धकानां देवानां गमनागमनक्षेत्रस्याऽष्टरज्जूप्रमाणत्वात्, शेषप्रकृतयोऽनन्तरवक्ष्यमाणक्षायिकसम्यक्त्वमार्गणावदतिदिश्यन्ते ॥११४३-४४॥

अथ क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनामत्र दिदर्शयिषुराह

खइए सायस्स सयलजगं सुरविउव्वदुगाण परिपुट्ठो ।
लोगासंखियभागो अहवा य जगस्स संखसो ॥११४५॥
लोगासंखियभागो आहारदुगस्स फोसिओ णेयो ।
भागा अट्ठ फरिसिआ सप्पाउग्गाण सेसाण ॥११४६॥

(प्रे०) 'खइए' इत्यादि, क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायां सातवेदनीयस्य बन्धकैः सकलं जगत् स्पृष्टम्, मार्गणायामस्यां वर्तमानानां केवलिनां केवलिसमुद्घाते निखिललोकस्य स्पृष्टत्वात् । 'सुर' इत्यादि, सुरद्विकवैक्रियद्विकलक्षणस्य प्रकृतिचतुष्कस्य बन्धकैर्लोकाऽसंख्येयतमभागः स्पृष्टः । ततः पूर्वोक्तैकभागस्यापि संख्यातमभागप्रमाणां सार्धभागप्रमाणां वा स्पर्शनां संग्रहीतुं 'अहवा य जगस्स' इत्यादिनाह–अथवा लोकस्य संख्यातमो भागः स्पृष्टः । इदमुक्तं भवति– अत्र सुरद्विकवैक्रियद्विकयोर्बन्धकानां स्पर्शनाविषये विकल्पत्रयं ग्रन्थकारः कथयति–एकेन विकल्पेन लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणा स्पर्शना, द्वितीयेन तु एकभागस्य संख्यातभागप्रमाणा स्पर्शना, तृतीयेन पुनः सार्धभागप्रमाणा स्पर्शना । भावनात्वित्थमेवम्–क्षायिकसम्यग्दृष्टयस्तिर्यञ्चः कषायप्राभृतादिग्रन्थानुसारेणाऽसंख्याताः स्वीक्रियेत, तदपि सौधर्मादिविमानव्यवस्थाविधायकसूत्राणां तथा 'युगलिकतिरश्चां प्रथमादिप्रस्तटे एवोत्पादः' इति विधायकसूत्राणामनेकविधत्वात्स्पर्शनाविषये विकल्पत्रयं ग्रन्थकारेणोक्तम् । 'मज्झस्स जहन्नओ पलिय' इति बृहत्संग्रहणीवचनात् त्रयोदशेऽपि प्रस्तटे देवानां जघन्यस्थितेः संभवेन युगलिनामपि तत्रोत्पादात् स्पर्शना सार्धरज्जुप्रमाणा समागता, त्रयोदशप्रस्तटस्यैतः सार्धरज्जुपरतः स्थितत्वात् । 'जघन्याऽस्त्वधस्तनात्तूत्तरप्रस्तटप्रतोत्कृष्टा स्थितिः' इति देवेन्द्र

प्रकरणवृत्तिवचनेनार्थापत्त्या युगलिनां प्रथमप्रस्तटे एवोत्पादात् स्पर्शना रज्जुसंख्यातभागप्रमाणाऽवसेया, कुतः ? ऊर्ध्वलोकसत्कानां सप्तरज्जूनामेकोनविंशत्या भागे हृते यल्लब्धं तावत्प्रमाणं तिर्यग्लोकसौधर्मप्रथमप्रस्तटयोरन्तरालमितिकृत्वा, यदुक्तं देवेन्द्रप्रकरणवृत्तौ 'ऊर्ध्वलोक एकोनविंशतिखण्डीकृतस्ततस्तस्य सम्बन्धिन्येकोनविंशभागे समधिके उडुविमानं वर्तते तिर्यग्लोकादिति' उडुविमानं च प्रथमप्रस्तटगतमिन्द्रकविमानमिति । केचित्तु मेरुचूलायाः प्रत्यासन्नमेव सौधर्मप्रथमप्रस्तटं मन्वते तदभिप्रायेण लोकाऽसंख्येयभाग एव स्पर्शना, तन्मते स्वस्थानपारभविकोत्पत्तिस्थानाऽन्तरालस्य संख्येययोजनमात्रत्वात्, यदि युगलिकतिरश्चां मनुष्यलोक एव सद्भावेन संख्यातमात्रत्वम्, तर्हि केनाऽप्यभिप्रायेण स्पर्शना लोकाऽसंख्येयभागमात्रैव, स्वस्थानपारभविकोत्पत्तिस्थानयोः प्रत्येकं लोकाऽसंख्येयभागमात्रत्वात् ।

'लोगा' इत्यादि, आहारकद्विकस्य बन्धकैर्लोकाऽसंख्येयतमो भाग ओघवत्स्पृष्टः । **'भागा'** इत्यादि, एतत्प्रकृतिव्यतिरिक्तानां स्वप्रायोग्यशेषप्रकृतीनां बन्धका अष्टौ भागान् स्पृशन्ति स्म । मार्गणायामस्यां वर्तमानानां देवानां गमनागमनक्षेत्रस्याऽष्टरज्जुप्रमाणत्वात् । शेषप्रकृतयश्चैताः-मिथ्यात्वमोहनीयाद्यष्टप्रकृतिवर्जा एकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः, असातवेदनीयहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदमनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकसमचतुरस्रसंस्थानप्रथमसंहननमनुष्यानुपूर्वीशुभखगतित्रसदशकाऽस्थिराऽशुभायशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासजिननामोच्चैर्गोत्ररूपा एकत्रिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतयश्चेति सप्ततिः ॥११४४-४६॥

साम्प्रतमुपशमसम्यक्त्वमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनां प्रदर्शयितुमना आह

छुहिओ अत्थि उवसमे सुरविउवाहारजुगलतित्थाणं ।
लोगासंखियभागो छिविआ भागाऽट्ठ सेसाणं ॥११४७।

(प्रे०) **'छुहिओ'** इत्यादि, उपशमसम्यक्त्वमार्गणायां सुरद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकजिननामरूपस्य प्रकृतिसप्तकस्य बन्धकैर्लोकाऽसंख्येयतमभागः स्पृष्टः, भावना पुनरेवम्-सुरद्विकवैक्रियद्विकयोर्बन्धकानां लोकासंख्येयभागप्रमाणा स्पर्शना मनुष्यगतिमार्गणावद् भाव्या, प्रकृतमार्गणायां समुद्घातगततिरश्चामलाभेन तत्प्रयुक्तविशेषस्पर्शनाया अप्यलाभात् । एतदपि कुतः? तिरश्चां प्रथमोपशमसम्यक्त्वस्य सद्भावेन तत्र च मरणाभावेन मरणसमुद्घातस्याऽप्यभावात् । आहारकद्विकस्य भावनौघवत्कार्या । जिननामसत्कर्मणः प्रकृतमार्गणायां देवा भवाद्यान्तर्मुहूर्ते एव प्राप्यन्ते, अतस्तेषां गमनागमनक्षेत्रस्याऽलाभः, तेन मनुष्यगतिमार्गणायां जिननामबन्धकानां यावती स्पर्शना प्राप्यते, ततोऽधिकतरा प्रकृतमार्गणायां स्पर्शना नैव प्राप्यते ।

'छिविआ' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीनां बन्धका अष्टौ भागान् स्पृशन्ति, मार्गणायामस्यां विद्यमानानां शेषप्रकृतिबन्धकानां देवानां गमनागमनक्षेत्रस्याऽष्टरज्जुप्रमाणत्वात्, ताश्च शेष-

प्रकृतयः सप्तति: क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणावज्जिननामरहिताः सातावेदनीयसहिताश्च विज्ञेयाः ॥११४७॥

इदानीं मिश्रसम्यक्त्वमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रं विवेचयन्नाह

मीसम्मि असखयमो भागो लोगस्स फोसिओ जेयो ।
देवविउव्वदुगाण फुसिआ भागाऽट्ठ सेसाणं ॥११४८॥

(प्रे०) 'मीसम्मि' इत्यादि, मिश्रसम्यक्त्वमार्गणायां देवद्विकवैक्रियद्विकलक्षणस्य प्रकृतिचतुष्कस्य बन्धका लोकाऽसंख्येयतमं भाग स्पृशन्ति स्म । मार्गणायामस्यां स्थिता मनुष्याः तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाश्चैताः प्रकृतीर्बध्नन्ति, मिश्रावस्थायां च न कोऽपि मृत्युमवैति, उक्तं च "न सम्ममीसो कुणइ कालं" अतः समुद्घातमपि न कुर्वन्तीत्यतस्तेषां स्पर्शना स्वस्थानक्षेत्रसम्बन्धिन्येव ग्राह्या, सा च लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणाऽस्ति, तिर्यग्लोक एव सत्त्वात्तेषाम् । 'फुसिआ' इत्यादि, एतत्प्रकृतिचतुष्कवर्जशेषप्रकृतीनां बन्धकैरष्टौ भागाः स्पृष्टाः, मार्गणायामस्यां शेषप्रकृतिबन्धकानां देवानां गमनागमनक्षेत्रस्याऽष्टरज्जुप्रमाणत्वात् । शेषप्रकृतयः—अनन्तरोक्तमार्गणावज्ज्ञेयाः ॥११४८॥

अधुना सास्वादनसम्यक्त्वेमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनामाह

सासायणम्मि छिहिआ पण भागा सुरविउव्वियदुगाणं ।
अट्ठ णरदुगुच्चाणं बारह सेसाण विण्णेया ॥११४९॥

(प्रे०) 'सासायणम्मि' इत्यादि, सास्वादनसम्यक्त्वे सुरद्विकवैक्रियद्विकप्रकृतीनां बन्धकैः पञ्चभागाः स्पृष्टाः, भावनौघदेवद्विकबन्धकोक्तस्पर्शनावत्कार्या । 'अट्ठ' इत्यादि, मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रलक्षणस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धका अष्टौ भागान् स्पृष्टवन्तः, एतन्मार्गणास्थानामेतत्प्रकृतिबन्धकानां सुराणां गमनागमनक्षेत्रस्याऽष्टरज्जुप्रमितत्वात् । 'बारह' इत्यादि, उदितशेषप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शना द्वादशरज्जुप्रमाणा भवति, घटना पुनरेवं कार्या—मार्गणायामस्यां वर्तमाना जीवाः षष्ठनरकात् सास्वादनसम्यक्त्वमादाय तिर्यक्पञ्चेन्द्रियेषु समुत्पद्यमाना मरणसमुद्घातेन कृतात्मप्रदेशदण्डैः पञ्चरज्जूः स्पृशन्ति, तथा सास्वादनास्तिर्यग्मनुष्यदेवा ईषत्प्राग्भारपृथिव्यामेकेन्द्रियत्वेन समुत्पित्सवः कृतमारणान्तिकसमुद्घाताः सप्तरज्जूः स्पृशन्तिः, अतः शेषप्रकृतिबन्धकानामत्र द्वादशरज्जुप्रमाणा स्पर्शना समुपलब्धा भवति । उक्तं च जीवसमासीयहैमवृत्तौ—'अतः सामान्येन सास्वादनसम्यग्दृष्टिर्द्वादशरज्जू स्पृशतीत्यर्थः, लोकस्य द्वादशरज्जुप्रमाण क्षेत्रं स्पृशतीति यावदिति ॥११४९॥

साम्प्रतमसंज्ञिमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रमाह

लोगासखियभागो छुहिओ अमणे विउव्वछक्कस्स ।
फुसिओऽत्थि सव्वलोगो सप्पाउग्गाण सेसाण ॥११५०॥

(प्रे०) 'लोगा' इत्यादि, असंज्ञिमार्गणायां देवद्विकनरकद्विकवैक्रियद्विकलक्षणस्य वैक्रियषट्कस्य बन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणा भवति, तद्यथा—असंज्ञिनो जीवा देवेषू-

ऽत्पद्यन्ते तर्हि भवनपति-व्यन्तरयोरेव, यदि नरकेषूत्पद्यन्ते, तर्हि प्रथमनरक एव, एतदुभयमपि क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणमेव वर्तते, अतो मरणसमुद्घातापेक्षयाऽपि वैक्रियषट्कबन्धकानां स्पर्शनाऽभिहितप्रमाणैव प्राप्यते। 'फुसिओ' इत्यादि, वैक्रियषट्केतरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रं सर्वो लोकोऽवसेयः, यतो मार्गणायामस्यां शेषप्रकृतिबन्धकतया सूक्ष्मैकेन्द्रिया जीवा अपि वर्तन्ते, ते च सकलं लोकं व्याप्य वर्तन्ते। ताश्चेमाः शेषाः प्रकृतयः—सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः वेदनीयद्विक-हास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयजातिपञ्चकौदारिकद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कखगति-द्वयतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासगोत्रद्वयरूपाः परावर्तमानप्रकृतयश्चेति सप्ताधिकशतप्रकृतयः॥ तदेवमायुर्वर्जस्वप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शना मार्गणासूक्ता। ॥११५०॥ अथ मार्गणासु स्वप्रायोग्यायुष्कर्मवर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रमुपदर्शयन्नादौ सामान्यप्ररूपणतायां निरूपयितुमाह

सव्वासु मग्गणासुं अबंधगा अत्थि जाण पयडीणं।
ताण पयडीण फुसणा अबंधगाणं मुणेयव्वा ॥११५१॥

(प्रे०) 'सव्वासु' इत्यादि, सर्वासु मार्गणासु यासां प्रकृतीनामबन्धका भवन्ति, तासां प्रकृतीनामबन्धकानां स्पर्शना ज्ञातव्या, अर्थाद् यत्र मार्गणासु शेषप्रकृतयः कथ्यन्ते, तत्र शेषप्रकृतयस्ता ग्राह्याः यासामबन्धकाः प्राप्यन्ते, न तु मार्गणागता उक्तव्यतिरिक्तशेषसकलप्रकृतयो ग्राह्याः। ॥११५१॥ साम्प्रतं मनुष्यौघादिषु कतिपयासु मार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनां प्ररूपयति

तिणरपणिंदितसदुगे काये कम्मे भवे अणाहारे।
सप्पाउग्गाणाउवज्जाण अबंधगेहि सव्वजगं ॥११५२॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'तिणर' इत्यादि, मनुष्यौघपर्याप्तमनुष्यमानुषीपञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौघपर्याप्तत्रसकायकाययोगौघकार्मणकाययोगभव्यानाहारकरूपास्वेकादशमार्गणास्वायुष्कर्मवर्जानां स्वप्रायोग्यप्रकृतीनामबन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रं सर्वजगत् वर्तते, यतो हि मार्गणास्वासु सातवेदनीयवर्जस्वप्रायोग्यप्रकृतीनामबन्धकाः केवलज्ञानिनः केवलिसमुद्घातसमये, सातवेदनीयस्याबन्धकाः यथायोगं सूक्ष्माः सूक्ष्मेषूत्पद्यमाना वा क्रमेण स्वस्थानेन मरणसमुद्घातेन वा सकलं लोकं स्वात्मप्रदेशैर्व्याप्नुवन्ति। भावनिका—अत्रायुर्वर्जानां सर्वासां बध्यमानप्रकृतीनामबन्धकाः प्राप्यन्ते, सातवेदनीयस्याऽबन्धकास्तथैव औदारिकशरीरवर्जशेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धकाः सूक्ष्मेषूत्पित्सवः सूक्ष्मा वा सातवेदनीयवर्जाध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धकाः समुद्घातगताः केवलज्ञानिनोऽपि प्राप्यन्ते, अतः स्पर्शना सर्वलोकप्रमाणा, ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धकतया तु केवलं केवलिसमुद्घातगताः प्राप्यन्ते, अतस्तानाश्रित्य सर्वलोकप्रमाणा स्पर्शना ज्ञेया ॥११५२॥

अथ नरकौघमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनां निरूपयति—

णिरये छुहिओ तिरिदुगयीणद्धितिगाणचउणीआणं ।
लोगाऽसखसो पण भागा मिच्छस्स छऽण्णेसिं ॥११५३॥

(प्रे०) 'णिरये' इत्यादि, नरकौघमार्गणायां तिर्यग्द्विकस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्क-नीचैर्गोत्ररूपाणां दशानां प्रकृतीनामबन्धकैर्लोकाऽसंख्येयतमो भागः स्पृष्टः । तदेवम्—मार्गणायामस्यां प्रकृतीनामासामबन्धकास्तिर्यक्ष्वनुत्पित्सवो नारका विद्यन्ते, अतः प्रकृतमार्गणागतमनुष्यद्विक-बन्धकानां स्पर्शनावद् लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणा स्पर्शनाऽस्ति । 'पण' इत्यादि, मिथ्यात्व-मोहनीयस्याऽबन्धकैः पञ्चभागाः स्पृष्टाः, तद्यथा—मार्गणायामस्यां सास्वादना जीवा मिथ्यात्वमोह-नीयस्याऽबन्धका वर्तन्ते, ते च षष्ठनरकादुद्वृत्य तिर्यक्पञ्चेन्द्रियेषूत्पित्सवो मरणसमुद्घातेन कृतात्म-प्रदेशदण्डैः पञ्चरज्जुक्षेत्रं स्पृशन्ति, सप्तमनरकतः सास्वादनसम्यक्त्वेन सहोद्वर्तनाभावात् न षड्-भागप्रमाणा स्पर्शना प्राप्यते । 'छ' इत्यादि, एतदतिरिक्तप्रकृतीनामबन्धकाः षड्भागान् स्पृशन्ति स्म । तद्यथा-मार्गणायामस्यां वर्तमानाः सप्तमनारकगता यथासम्भव शेषप्रकृत्यबन्धकाः तिर्यक्पञ्चेन्द्रियेषु समुत्पित्सवो मरणसमुद्घातेनाऽऽहितात्मप्रदेशदण्डैः षड्रज्जूः स्पृशन्ति । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयमनुष्यगतिसंहननषट्कसंस्थानषट्क-मनुष्यानुपूर्वीविहायोगतिद्विकस्थिरषट्काऽस्थिरषट्कोद्योतजिननामोच्चैर्गोत्ररूपाश्चत्वारिंशदध्रुवबन्धि-प्रकृतयः ॥११५३॥

अथ प्रथमनरकनवग्रैवेयकादिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रं शंसति

लोगासंखियभागो सप्पाउग्गाण पढमणिरयम्मि ।
गेविज्जाइविउव्वियमीसाहारदुगजोगेसुं ॥११५४॥
अकसाये मणणाणे केवलजुगलम्मि समइए छेए ।
परिहारे अहखाये जाणऽत्थि हवेज्ज छुहिओ सि ॥११५५॥

(प्रे०) 'लोगा' इत्यादि, रत्नप्रभानरकनवग्रैवेयकपञ्चानुत्तरसुरवैक्रियमिश्रकाययोगाहारककाय-योगाहारकमिश्रकाययोगाऽकषायमनःपर्यवकेवलज्ञानकेवलदर्शनसामायिकसंयमच्छेदोपस्थापनीयसंयम-परिहारविशुद्धिसंयमयथाख्यातसंयमरूपासु षड्विंशतिमार्गणासु यासां प्रकृतीनामबन्धकाः समुप-लभ्यन्ते, ते लोकाऽसंख्येयतमभागं स्पृष्टवन्तः, तदेवम्—प्रथमनरके मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रि-काऽनन्तानुबन्धिचतुष्कवेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यङ्मनुष्यगतिद्वयसंस्थानषट्कसंहनन-षट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयविहायोगतिद्वयस्थिरषट्काऽस्थिरषट्कोद्योतजिननामगोत्रद्वयरूपा एकपञ्चा-शत् प्रकृतयः। नवग्रैवेयकेषु मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कवेदनीयद्विकहास्या-दियुगलद्वयवेदत्रयसंहननषट्कसंस्थानषट्कखगतिद्वयस्थिरषट्काऽस्थिरषट्कजिननामगोत्रद्वयलक्षणाः षट्चत्वारिंशत्प्रकृतयः । वैक्रियमिश्रमार्गणायां—मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकं वेदनीयद्वयं हास्या-दियुगलद्वयं वेदत्रयं तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयमेकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजातिद्वयमौदारिकाङ्गोपाङ्गं संस्थानषट्कं

संहननपट्कं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयं खगतिद्वयं त्रसस्थिरपट्कलक्षणं प्रकृतिसप्तकं स्थावराऽस्थिरपट्करूपं प्रकृतिसप्तकमातपोद्योतजिननामगोत्रद्वयरूप प्रकृतिपञ्चकं चेति सप्तपञ्चाशत् प्रकृतयः। पञ्चानुत्तराहारकद्विकमार्गणासु वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्थिरशुभयशःकीर्त्यस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिजिननामरूपास्त्रयोदशप्रकृतयः। परिहारविशुद्धिमार्गणायामुक्तत्रयोदशाहारकद्विकरूपाः पञ्चदशप्रकृतयः। मनःपर्यवज्ञानमार्गणायां स्वप्रायोग्याः सर्वाः प्रकृतयः। सामायिकच्छेदोपस्थापनीययोर्मतिज्ञानावरणादिचतुर्दशप्रकृतिसंज्वलनलोभोच्चैर्गोत्रवर्जशेषाष्टचत्वारिंशत्प्रकृतयः। अकषायकेवलद्विकयथाख्यातसंयममार्गणासु सातवेदनीयम्। अकषायादिमार्गणाचतुष्के सातवेदनीयस्याऽबन्धकानां केवलिसमुद्घातगतस्पर्शनाक्षेत्रस्याऽलाभात्स्पर्शना लोकासंख्यभागप्रमाणा तथाऽत्रोक्तशेषमार्गणासु स्वस्थानक्षेत्रस्य मरणसमुद्घातस्पर्शनायाश्च लोकाऽसंख्यभागमात्रत्वात् स्वाऽबन्धकप्रायोग्यप्रकृतीनामबन्धकानां स्पर्शनाऽपि तावन्मिता ।११५४-५५॥

इदानीं द्वितीयादिनरकमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनां चिकथयिषुराह

बीआइणिरयपणगे जेसि णिरयेऽत्थि जगअसखंसो।
सिमिह वि सेसाण कमा छुहिआ इगदुतिचउपणंसा ॥११५६॥

(प्रे०) 'बीआइ' इत्यादि, शर्कराप्रभावालुकाप्रभापङ्कप्रभाधूमप्रभातमःप्रभालक्षणासु पञ्चसु नरकमार्गणासु यासां प्रकृतीनामबन्धकानां नरकौघमार्गणायां जगतोऽसंख्येयतमभागप्रमाणा स्पर्शना प्रोक्ता, तासां प्रकृतीनामबन्धकाना तावत्येव स्पर्शना ज्ञातव्या, ताश्चेमाः—तिर्यग्द्विकस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कनीचैर्गोत्ररूपा दशप्रकृतयः। 'सेसाण' इत्यादि, एतद्दशसंख्याकप्रकृतिव्यतिरिक्तप्रकृतीनामबन्धका एकद्वित्रिचतुःपञ्चभागान् यथाक्रमं स्पृशन्ति स्म। तदेवम्—द्वितीयनरकस्था एकं भाग तृतीयनरकस्था द्वौ भागौ तुर्यनरकस्थास्त्रीन् भागान् पञ्चमनरकस्था भागचतुष्टयं, षष्ठनरकस्थाः पञ्च भागान् इति। ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—द्वितीयतृतीयनरकमार्गणयोर्मिथ्यात्वमोहनीयवेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयमनुष्यगतिसंस्थानपट्कसंहननपट्कमनुष्यानुपूर्वीखगतिद्वयस्थिरपट्काऽस्थिरपट्कोद्योतजिननामोच्चैर्गोत्ररूपा एकचत्वारिंशत्प्रकृतयः, चतुर्थादिनरकमार्गणात्रये जिननाम विनैता एव शेषाः प्रकृतयो बोद्धव्याः ॥११५६॥

साम्प्रतं सप्तमनरकमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनां चिकथयिषुराह

णिरयव्व चरमणिरये सप्पाउग्गाण होइ सव्वेसिं।
णवर मिच्छस्स भवे लोगस्स असंखभागो उ ॥११५७॥

(प्रे०) "णिरयव्व" इत्यादि, तमस्तमःप्रभानरकमार्गणायां स्वप्रायोग्याणां सर्वासां प्रकृतीनामबन्धकानां स्पर्शना नरकौघवद् भवति। तद्यथा—तिर्यग्द्विकस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कनीचैर्गोत्ररूपाणां दशप्रकृतीनामबन्धकाना स्पर्शना लोकाऽसंख्येयभागमिता, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वय-

वेदत्रयमनुष्यगतिसंहननपट्कसंस्थानपट्कमनुष्यानुपूर्वीविहायोगतिद्विकस्थिरपट्काऽस्थिरपट्कोद्योतोच्चैर्गोत्ररूपाणामेकोनचत्वारिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धकानां च षड्भागप्रमिता स्पर्शनाऽस्ति, भावना पुनरिह नरकौघमार्गणावद् विधेया । ननु मार्गणायामस्यां स्वप्रायोग्याणां सर्वासां प्रकृतीनामबन्धकानां स्पर्शना नरकौघमार्गणावदतिदिष्टा, तदनुसारेण स्वप्रायोग्यसर्वप्रकृत्यन्तर्गतमिथ्यात्वमोहनीयस्याऽबन्धकानां स्पर्शना पञ्चभागप्रमाणा प्राप्यते, सा त्वत्रोपपत्तिं न लभते, सप्तमनरकगतानां सास्वादनप्रभृतिगुणस्थानस्थनारकजीवानां सास्वादनावस्थायां मरणाभावेन मरणसमुद्घातापेक्षया स्पर्शनाया अप्राप्यमाणत्वेन स्वस्थानापेक्षया लोकासंख्येयभागप्रमाणस्पर्शनाया एव लाभादिति शङ्कामपाकर्तुम् 'णवर' मित्यादिना विशेषमुपदर्शयति–मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽबन्धकानां स्पर्शना लोकासंख्येयभागरूपा विज्ञेया ॥११५६॥

अथ तिर्यगोघमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनामाह

तिरिये छुहिआ भागा पण थीणद्धितिगअडकसायाण ।
मिच्छस्स सत्तिगारस उरलस्सियराण सव्वजग ॥११५८॥

(प्रे०) 'तिरिये' इत्यादि, तिर्यगोघमार्गणायां स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कलक्षणानामेकादशप्रकृतीनामबन्धकैः पञ्चभागाः स्पृष्टाः, तदेवम्–मार्गणायामस्यां वर्तमानाः सम्यग्दृष्टिदेशविरतयः सहस्रारदेवलोकं यावदुत्पद्यन्ते, ते च प्रकृतप्रकृतीनामबन्धका वर्तन्ते, आसहस्रारक्षेत्रं पुनः पञ्चरज्जुप्रमाणमस्ति, उत्पित्सवश्च ते तत्र मरणसमुद्घातेनैतादृशं क्षेत्रं स्पृशन्ति । 'मिच्छस्स' इत्यादि मिथ्यात्वमोहनीयस्याबन्धकैः सप्तभागाः स्पृष्टाः, तत्पुनरित्थम्–मिथ्यात्वाऽबन्धकाः सास्वादनास्तिर्यञ्च ईषत्प्राग्भाराभिधपृथिव्यां पृथ्वीकायत्वेनोत्पित्सव ऊर्ध्वलोकसत्कसप्तभागान् स्पृशन्ति । अधोलोकसत्काधिकभागानामत्राऽसंभवः, यतस्ते शर्कराप्रभादिपृथ्व्यां तथास्वभावेन नोत्पद्यन्ते । 'उरलस्स' इत्यादि, औदारिकशरीरनाम्नोऽबन्धका एकादशभागान् स्पृशन्ति;भावनाप्रकारस्त्वेवम्–मार्गणायामस्यां वैक्रियशरीरनामबन्धका एतत्प्रकृतेरबन्धका वर्तन्ते,ते यदाऽधः सप्तमनरकमूर्ध्वं च सहस्रारकल्पं यावदुत्पत्तिमवाप्नुवन्ति,तदा मरणसमुद्घातेनोभयमपि क्षेत्रं स्पृशन्ति, तच्चैकादशरज्जुप्रमाणम् । 'इयराण' इत्यादि, उक्तेतरासां प्रकृतीनामबन्धकैः सर्वलोकः परिस्पृष्टः, तारश्चेमाः शेषप्रकृतयः- वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियद्विकसंहननपट्कसंस्थानपट्काऽऽनुपूर्वीचतुष्कखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासगोत्रद्वयरूपाः पञ्चषष्टिः प्रकृतयः । तद्यथा–मार्गणायामस्यां वर्तमानानां सूक्ष्मजीवानामेतत्प्रकृत्यबन्धकत्वेन प्राप्यमाणत्वात्, तेषां स्वस्थानक्षेत्रस्यापि सर्वलोकप्रमाणत्वाच्च स्पर्शना सर्वलोकप्रमाणा प्राप्यते ॥११५८॥

इदानीं तिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघादिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनामभिधातुमाह–

तिपणिंदियतिरियेसु थीणद्धितिगऽडकसायणपुंसाणं।
हुंडाणाएज्जदुहगणीआण अस्थि पण भागा ॥११५९॥
भागेगारस तिरिदुगएगिंदियउरलथावराणऽत्थि।
णवरि तिरिजोणिणीए दस भागा फोसिआ णेया ॥११६०॥
सत्त फरिसिआ भागा हवेज्ज मिच्छअजसाण ऽणज्जगं।
सुहुमस्स सव्वलोगो सप्पाउग्गाण सेसाणं ॥११६१॥

(प्रे०) 'तिपणिंदिय' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियतिर्यगोघतिर्यग्योनिमतीपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियरूपासु तिसृषु मार्गणासु स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कनपुंसकवेदहुण्डकसंस्थानानादेयदुर्भगनामनीचैर्गोत्ररूपाणां षोडशप्रकृतीनामबन्धकैः पञ्चभागाः स्पृष्टाः, भावनाविधिस्त्वेवम्–मार्गणास्वासु प्रकृतीनामासामबन्धकानां स्पर्शना देवद्विकस्य बन्धकानाश्रित्य प्राप्यते, ते च सहस्राराख्याऽष्टमदेवलोकं यावत् समुत्पद्यन्ते समुत्पित्सवश्च तत्र ते मरणसमुद्घातवेलायामाहितात्मप्रदेशदण्डैरितस्तावत्पर्यन्तक्षेत्रं स्पृशन्ति, तच्च पञ्चरज्जुप्रमाणमस्ति। 'भागेगारस' इत्यादि, तिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजात्यौदारिकशरीरस्थावरनामरूपाणां पञ्चानां प्रकृतीनामबन्धका एकादश भागान् स्पृशन्ति, तद्यथा–मार्गणास्वासु प्रकृतप्रकृतीनामबन्धका अधः सप्तमनरके यदिदुत्पद्यन्ते ऊर्ध्वं पुनरासहस्रारदेवलोकम्, उभयमपि क्षेत्रमेकादशरज्जुप्रमाणं भवति, उत्पित्सवश्च तत्र ते तावत्क्षेत्रं मरणसमुद्घातेन स्पृशन्ति। ननु तिर्यग्योनिमतीमार्गणायां प्रकृतप्रकृत्यबन्धकानां कथमेकादशभागप्रमाणा स्पर्शना सम्भाव्यते, यतस्तिरश्चीनां सप्तमनरके उत्पादाभावोऽस्तीत्याकांक्षानिवृत्त्यर्थम् 'णवरि' इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति–तिर्यग्योनिमतीमार्गणायां तिर्यग्द्विकादिपञ्चप्रकृतीनामबन्धकैर्दशभागाः स्पृष्टाः, यतो मार्गणायामस्यां वर्तमानाः प्रकृतप्रकृत्यबन्धका अधः षष्ठनरकं यावदूर्ध्वं पुनरष्टमदेवलोकं यावदुत्पत्तिमालभन्ते। 'सत्त' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयायशःकीर्तिलक्षणस्य प्रकृतिद्वयस्याऽबन्धकाः सप्तभागान् स्पृष्टवन्तः, भावनाप्रकारस्त्वेवम्–मार्गणास्वासु प्रकृतिद्वयस्याऽस्याबन्धकाः सास्वादना जीवा ऊर्ध्वं सिद्धशिलायां बादरैकेन्द्रियत्वेन जायन्ते, तच्च क्षेत्रमितः सप्तरज्जुप्रमितम्, तथोत्पित्सवस्तत्र ते मरणसमुद्घातेन तादृशं क्षेत्रं स्पृशन्ति। ननु प्रकृतमार्गणासु यथा मिथ्यात्वायशःप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शना प्रोक्तभावनातः सप्तरज्जुप्रमाणा भवति, तथैव हुण्डकाबन्धकानां स्पर्शनयाऽपि तावत्प्रमाणया भवितव्यम्, यतः सास्वादनगुणस्थाने यथा मिथ्यात्वाबन्धो भवति, तथैव हुण्डकस्याप्यबन्धो भवतीति सास्वादनगुणस्थानवर्तिजीवानाश्रित्य प्रोक्तभावनातः सप्तरज्जुप्रमाणा स्पर्शनोपपद्यत इति चेत्, सत्यम्, परं त्वया प्राक् पञ्चेन्द्रियतिर्यग्द्विके स्त्रीवेदबन्धकानां स्पर्शनानिरूपणप्रसङ्गे प्रतिपादिता विवक्षा विस्मृता, अन्यथायं प्रश्नो नैवोत्पद्येत। अत्र प्रागुक्तविवक्षावशाद् मिथ्यात्वप्रकृत्यबन्धकातिरिक्तजीवानां स्पर्शना सास्वादनगुणस्थानवर्तिजीवानाश्रित्य न कृता यदि प्रागुक्तविवक्षा नाश्रीयेत तदा तु हुण्डका-

बन्धकानामपि स्पर्शना सप्तरज्जुप्रमाणा भवेत् । एवमेव प्रकृतमार्गणासु एकेन्द्रियस्थावरप्रकृत्य-बन्धकानां स्पर्शनाऽपि पूर्वोक्तविवक्षावशादेकादशरज्जुप्रमाणा निरूपिता, परं यदि पूर्वोक्तविवक्षा नाङ्गी-क्रियते,तदा तु त्रयोदशरज्जुप्रमाणा स्पर्शना घटां यायात् । एवमेवाग्रेऽपि यासु मार्गणासु यत्प्रकृत्य-बन्धकानां स्पर्शना सास्वादनगुणस्थानवर्तिजीवानाश्रित्य यावत्प्रमाणोपपद्येत तावत्प्रमाणमनिरूप्य न्यूना निरूपिता तत्र पूर्वोक्तविवक्षा प्रतिपत्तव्या बीजतया । 'ऊणजगं' इत्यादि, सूक्ष्मकर्मणो-ऽबन्धका देशोनलोकं स्पृष्टवन्तः, तद्यथा–मार्गणास्वासु सूक्ष्मनामकर्मणोऽबन्धका बादरनामकर्मणो बन्धका भवन्ति, ते च बादरवायुकायिकेषु समुत्पद्यन्ते, बादरवायुकायिकानां क्षेत्रं देशोनलोकं वर्तते, तत्र समुत्पित्सवस्ते तादृशं क्षेत्रं मरणसमुद्धातेन कृतात्मप्रदेशदण्डैः स्पृशन्ति । 'सव्व' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीनामबन्धकैः सर्वो लोकः स्पृष्टः, यतः प्रस्तुतमार्गणासु शेष-प्रकृत्यबन्धकाः सूक्ष्मैकेन्द्रियेषूत्पद्यन्ते, सूक्ष्मैकेन्द्रियाणां च क्षेत्र सकललोकप्रमाणमस्ति । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः -वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदद्वयदेवनरकमनुष्यगतित्रयद्वीन्द्रियादिजाति-चतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियद्विकसंहननषट्कसंस्थानपञ्चकदेवनारकमनुष्यानुपूर्वीत्रयखगतिद्वयत्रसद-शकाऽपर्याप्तसाधारणाऽस्थिराशुभदुःस्वरातपोद्योतपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाश्चतुःपञ्चाशत्प्रकृतयः ॥११५९-६१॥

अथाऽपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रभृतिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनामभिदधाति–

असमत्तपणिंदितिरियमणुसपणिंदितससव्वविगलेसु ।
बायरसव्वपुहविदगणिगोअपत्तेअहरिएसुं ॥११६२॥
णपुमेगिंदियथावरदुहगाणादेयहुंडणीआण ।
तह तिरिदुगस्स छुहिओ असंखभागो जगस्स भवे ॥११६३॥
सुहुमस्स ऊणलोगो भागा सत्त अजसस्स परिपुट्ठा ।
सव्वजगं सेसाण सप्पाउग्गाण जाणऽत्थि ॥११६४॥

(प्रे०) 'असमत्त' इत्यादि, अपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्तमनुष्याऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्तत्रसकायरूपासु चतसृषु मार्गणास्वोघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेन तिसृषु द्वीन्द्रियमार्गणासु तिसृषु त्रीन्द्रियमार्गणासु तिसृषु चतुरिन्द्रियमार्गणासु तिसृषु बादरपृथिवीकायमार्गणासु तिसृषु बादराप्का-यमार्गणासु तिसृषु बादरसाधारणवनस्पतिकायमार्गणासु तिसृषु च प्रत्येकवनस्पतिकायमार्गणासु नपुंसकवेदैकेन्द्रियस्थावरदुर्भगानादेयहुण्डकसंस्थाननीचैर्गोत्रतिर्यग्द्विकरूपाणां नवानां प्रकृतीनाम-बन्धकैर्लोकाऽसंख्येयतमभागः स्पृष्टः, तद्यथा–मार्गणास्वासु यथासंभवं प्रकृतप्रकृतीनामबन्धकाः स्वस्थानापेक्षया लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणं क्षेत्रं स्पृशन्ति, समुद्घातापेक्षयाऽपि ते तावत्प्रमाण-मेव क्षेत्रं स्पृशन्ति, त्रसत्वेनैवोत्पद्यमानत्वाचेषाम् ।

'सुहुमस्स' इत्यादि, सूक्ष्मनाम्नोऽबन्धका देशोनलोकं स्पृशन्ति स्म, बादरवायुकायिकेषु तेषामुत्पत्तेः सद्भावात् । 'सत्त' इत्यादि, अयशःकीर्तिनाम्नोऽबन्धकाः सप्तभागान् स्पृशन्ति स्म, तद्यथा-प्रकृतमार्गणासु यशःकीर्तिनाम्नो बन्धका अयशःकीर्तिनाम्नोऽबन्धका भवन्ति, ते चोर्ध्वमेव सिद्धशिलां यावद् बादरैकेन्द्रियत्वेन समुत्पद्यन्ते, समुत्पित्सवश्च तत्र ते मरणसमुद्घातावस्थायां सिद्धशिलाक्षेत्रं यावत्स्पृशन्ति, तच्च सप्तरज्जुपरिमाणकं वर्तते । 'सव्वजग' मित्यादि, उदितशेष-प्रकृतिषु यासां प्रकृतीनामबन्धका वर्तन्ते, तेषां स्पर्शनाक्षेत्रं सर्वो लोकः, सूक्ष्मैकेन्द्रियत्वेन जाय-मानत्वात्तेषाम् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्त्रीपुरुषवेदद्वयमनुष्यगति द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानपञ्चकमनुष्यानुपूर्वीखगतिद्वयत्रसदशकाऽ पर्याप्तसाधारणाऽस्थिराऽशुभदुःस्वरातपोद्योतपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपा अष्टचत्वारिंशत्प्रकृतय-इति ॥११६२-४॥ अथ देवौघादिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनामाह

सुरईसाणतेसु थीणद्धितिगऽणणपु तिरिदुगाण ।
हुंडेगिंदियथावरदुहगाणादेयणीआणं ॥११६५॥
अड भागा छुहिआ णव सेसाण छसु तइआइकप्पेसु ।
जाणऽत्थि सिमऽभागा अत्थि छ चउआणयाईसु ॥११६६॥

(प्रे०) 'सुर' इत्यादि, देवौघभवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कसौधर्मैशानरूपासु षट्सु मार्गणासु स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कनपुंसकवेदतिर्यग्द्विकहुण्डकसंस्थानैकेन्द्रियजातिस्थावरदुर्भगा-नादेयनीचैर्गोत्ररूपाणां षोडशप्रकृतीनामबन्धकैरष्टौ भागाः स्पृष्टाः, मार्गणास्वासु वर्तमानानां प्रकृत-प्रकृत्यबन्धकानां सम्यग्दृष्टिदेवानां त्वप्रायोग्यबन्धकानां वा गमनागमनक्षेत्रस्याऽष्टरज्जुप्रमा-णत्वात् । 'णव' इत्यादि, अत्राऽभिहितानिरिक्तानां यासां प्रकृतीनामबन्धकाः समुपलभ्यन्ते, तेषां स्पर्शना नवभागप्रमाणा वेदयितव्या । तदेवम्-प्रकृतमार्गणासु वर्तमानाः शेषप्रकृत्यबन्धका देवा-स्तृतीयनरके यावद् गच्छन्तो द्वौ रज्जू स्पृशन्ति, ऊर्ध्वं पुनरीषत्प्राग्भारादिपृथ्वीकायेषु जायमानाः सप्त रज्जूः स्पृशन्तीति सर्वाऽपि नव । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-सुरौघसौधर्मैशानमार्गणात्रये मिथ्यात्व-मोहनीयवेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्त्रीपुरुषवेदद्वयमनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकाङ्गोपाङ्गसंह-ननषट्कसंस्थानपञ्चकमनुष्यानुपूर्वीखगतिद्वयत्रसस्थिरशुभसुभगसुस्वरादेययशःकीर्त्यस्थिराऽशुभदुः-स्वरायशःकीर्त्यातपोद्योतजिननामोच्चैर्गोत्ररूपा एकचत्वारिंशत्प्रकृतयः, जिननाम विनैता एव प्रकृतयः भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कमार्गणात्रये बोद्धव्याः ।

'छसु' इत्यादि, सनत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलान्तकशुक्रसहस्रारदेवलोकरूपासु षट्सु मार्गणासु यासां प्रकृतीनामबन्धका वर्तन्ते, तेऽष्टौ भागान् स्पृशन्ति, तेषां गमनागमनक्षेत्रस्य तावत्प्रमाण-त्वात् । ताश्चेमाः प्रकृतयः-मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कवेदनीयद्विकहास्या

द्वियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयसंहननषट्कसंस्थानषट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयस्थिरषट्काऽस्थिरषट्कोद्योतजिननामगोत्रद्वयरूपा एकपञ्चाशत्प्रकृतयः ।

'छ' इत्यादि, आनतप्राणतारणाऽच्युतरूपासु चतसृषु मार्गणास्वबन्धप्रायोग्यप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शना षड्भागप्रमिता ज्ञातव्या, तेषां गमनागमनक्षेत्रस्य षड्रज्जुप्रमाणत्वात् , ताश्चेमाः-प्रकृतयः–मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कवेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयसंहननषट्कसंस्थानषट्कखगतिद्वयस्थिरषट्काऽस्थिरषट्कजिननामगोत्रद्वयरूपाःषट्चत्वारिंशत्प्रकृतयः ॥११६५-६॥ अथ सूक्ष्मप्रायोग्यमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनाऽभिधीयते

तेसिं एगिंदियपुढविकायणिगोएसु सव्वसुहमेसु ।
छुहिओऽत्थि सव्वलोगो सप्पाउग्गाण जाणऽत्थि ॥११६७॥

(प्रे०) 'तेसिं' इत्यादि, एकेन्द्रियौघपृथ्व्यप्तेजोवायुवनस्पत्योघनिगोदौघमार्गणासु तथौघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेन तिसृषु सूक्ष्मैकेन्द्रियमार्गणासु तिसृषु सूक्ष्मपृथिवीकायमार्गणासु तिसृषु सूक्ष्माऽप्कायमार्गणासु तिसृषु सूक्ष्मतेजःकायमार्गणासु तिसृषु सूक्ष्मवायुकायिकमार्गणासु तिसृषु च सूक्ष्मसाधारणवनस्पतिकायमार्गणास्वित्यष्टादशसूक्ष्ममार्गणासु चेति सर्वसंख्यया पञ्चत्रिंशतिमार्गणासु यासां प्रकृतीनामबन्धका विद्यन्ते, तेषां सर्वलोकप्रमाणा स्पर्शना समधिगम्या, मार्गणास्वासु वर्तमानानां जीवानां सर्वलोके व्याप्तत्वात् । इमाश्च ताः प्रकृतयः-वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानषट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासगोत्रद्वयरूपा एकोनषष्टिप्रकृतयः,नवरं तेजोवायुकाययोस्तत्सूक्ष्मभेदेषु च गतिद्वयानुपूर्वीद्वयगोत्रद्वयवर्जास्त्रिपञ्चाशत्प्रकृतयो वेदितव्याः ॥११६७॥

अधुना बादरैकेन्द्रियवायुकायिकमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रमुपदर्शयन्नाह

तिरियजुगलणीआण बायरएगिंदिसव्वभेएसु ।
लोगासंखंसो इह तह बायरसव्ववाऊसु ॥११६८॥
णपुमेगिंदियथावरदुहगाणादेयसुहमअजसाण ।
तह हुडस्सूणजगं छुहिअ सेसाण सव्वजगं ॥११६९॥

(प्रे०) 'तिरिय' इत्यादि, ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तप्रकारेण तिसृषु बादरैकेन्द्रियमार्गणासु तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्ररूपस्य प्रकृतित्रयस्याऽबन्धकैर्लोकाऽसंख्येयतमो भागः स्पृष्टः । तद्यथा–मार्गणास्वासु प्रकृतित्रयस्याऽस्याऽबन्धका मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रलक्षणस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धका भवन्ति, अतस्तासां बन्धकानां स्पर्शनावद् भावना कार्या । 'इह तह'इत्यादि,ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेन बादरैकेन्द्रियाणां तिसृषु मार्गणासु तिसृषु बादरवायुकायिकमार्गणासु च नपुंसकवेदैकेन्द्रियजातिस्थावरदुर्भगानादेयसूक्ष्माऽयशःकीर्तिहुण्डकसंस्थानरूपस्य प्रकृत्यष्टकस्याऽबन्धका देशोनलोकं स्पृशन्ति,यतो वायुकायिका

यदा तिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतीर्बध्नन्ति, तदा ते नपुंसकवेदादिप्रकृतीनामबन्धका भवन्ति, ते च स्वस्थानमाश्रित्य देशोनलोके वर्तन्ते, अतः स्पर्शनाऽपि तावत्प्रमाणैव प्राप्यते.तथा मरणसमुद्घातमाश्रित्याऽपि तावत्प्रमाणैव प्राप्यते । 'सेसाण' इत्यादि, प्रकृतमार्गणासु प्रकृतीरेता विहाय शेषप्रकृतीनामबन्धकाः सर्वलोकं स्पृशन्ति, तत्पुनरेवम्–मार्गणास्वासु वर्तमानाः शेषप्रकृत्यबन्धका जीवाः सूक्ष्मैकेन्द्रियेष्वप्युत्पत्तिं लभन्ते,अतो मरणसमुद्घातेन कृतात्मप्रदेशदण्डैः सकललोकं स्पृशन्ति। ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः--वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्त्रीपुरुषवेदद्वयमनुष्यगतिद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसमचतुरस्रादिसंस्थानपञ्चकमनुष्यानुपूर्वीखगतिद्वयत्रसदशकाऽपर्याप्तसाधारणाऽस्थिराऽशुभदुःस्वरातपोद्योतपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपा अष्टचत्वारिंशत्प्रकृतयः प्रोक्तषट्स्वपि मार्गणासु वेदितव्याः ॥११६८-६९॥

अथ बादराग्निकायसकलभेदेष्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनामाह

लोगासंखियभागो　सव्वेसुं　बायरग्गिभेएसुं ।
णपुमेगिंदियथावरदुहगाणादेयहुंडाण　　　　॥११७०॥
सुहमस्स ऊणलोगो छुहिओ अत्थि अजसस्स सयमुज्झा ।
छुहिओऽत्थि　सव्वलोगो　सेसाणं　पंचचत्ताए ॥११७१॥

(प्रे०) 'लोगा' इत्यादि, ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेन तिसृषु बादराऽग्निकायमार्गणासु नपुंसकवेदैकेन्द्रियस्थावरदुर्भगानादेयहुण्डकसंस्थानरूपाणां षण्णां प्रकृतीनामबन्धकैर्लोकाऽसंख्येयतमभागः स्पृष्टः, पर्याप्ततिर्यक्त्रसप्रायोग्यबन्धका आसामबन्धकत्वेन प्राप्यन्ते,अतः कथितबन्धकस्पर्शनावद्भावना तत्रतोऽवसेया । 'सुहमस्स' इत्यादि, सूक्ष्मनाम्नोऽबन्धका देशोनलोकं स्पृशन्ति, यतो मार्गणास्वासु वर्तमानास्तेजःकायिका जीवाः सूक्ष्मनाम्नोऽबन्धका बादरवायुकायिकेषूत्पद्यन्ते, बादरवायुकायिकानां क्षेत्रं देशोनलोकं वर्तते, उत्पित्सवस्ते तत्र मरणसमुद्घातेन तादृशं क्षेत्रं स्पृशन्ति । "अजसस्स" इत्यादि, अयशःकीर्तिनाम्नोऽबन्धकाना स्पर्शना स्वयमूह्या,यशःकीर्तिनाम्नः बन्धकस्पर्शनाया अनिर्णयात् । 'छुहिओ' इत्यादि, अत्रोक्तप्रकृतिभिन्नानां पञ्चचत्वारिंशत्प्रकृतीनामबन्धकाः सकलं लोकं स्पृष्टवन्तः, अत्रस्थमार्गणासु वर्तमानानां शेषप्रकृत्यबन्धकानां सूक्ष्मैकेन्द्रियेषूत्पद्यमानत्वात् । इमाश्च ताः शेषप्रकृतयः–वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्त्रीपुरुषवेदद्वयजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानपञ्चकखगतिद्वयत्रसदशकाऽपर्याप्तसाधारणाऽस्थिराऽशुभदुःस्वराऽतपोद्योतपराघातोच्छ्वासरूपाः पञ्चचत्वारिंशत्प्रकृतय इति ॥११७०-१॥

अथ मनोवचनप्रभृतिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनामाह

लोगासंखियभागो　पणमणवयजोगचक्खुसण्णीसुं ।
परिपुट्ठो　विण्णेयो　धुववधीण　पणतीसाए ॥११७२॥

मिच्छणपुमएगिंदियथावरऽणादेयदुहगहुडाण ।
तह तिरिदुगस्स बारस भागेगारस य उरलस्स ॥११७३॥
दुइअकसायाण पण थीणद्धितिगाणचउणीआण ।
अड सुहमस्सूणजगं छुहिअ सेसाण सव्वजगं ॥११७३॥

(प्रे०) 'लोगा' इत्यादि, पञ्चमनोयोगपञ्चवचनयोगचक्षुर्दर्शनसंज्ञिरूपासु द्वादशमार्गणासु ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणां पञ्चत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धकैर्लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाण क्षेत्र स्पृष्टम् , केवलिसमुद्घातगतभिन्नसमयमिनामबन्धकतया प्राप्यमाणत्वात्तेषां च स्वस्थानसमुद्घातस्पर्शनायास्तावन्मितत्वात् । 'मिच्छ' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयनपुंसकवेदैकेन्द्रियजातिस्थावराऽनादेयदुर्भगहुण्डकसंस्थानतिर्यग्द्विकलक्षणानां नवानां प्रकृतीनामबन्धका द्वादशभागान् स्पृष्टवन्तः । भावनाविधिस्त्वेवम्—मार्गणास्वासु मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽबन्धकास्सास्वादना जीवा ऊर्ध्वं सिद्धशिलापृथिव्यां बादरैकेन्द्रियत्वेन जायमानास्सप्तरज्जूर्मरणसमुद्घातेन स्पृशन्ति, अधश्च षष्ठनरकतस्तिर्यक्त्वेनोत्पद्यमानाः पञ्चभागान् स्पृशन्ति, तथा नपुंसकवेदादिप्रकृत्यष्टकस्याऽबन्धका जीवाः सप्तमनरकात् तिर्यक्पञ्चेन्द्रियेषूत्पद्यमानाः षड्भागान् स्पृशन्ति. तथैवोर्ध्वलोकगतकषड्भागान् यावत्प्रकृतीनामासामबन्धकाना प्रकृतमार्गणागतदेवाना गमनागमनमस्ति । 'एगारस' इत्यादि, औदारिकशरीरनाम्नोऽबन्धका एकादशभागान् स्पृशन्ति स्म, तद्यथा—मार्गणास्वासु प्रकृतेरस्या अबन्धका वैक्रियशरीरनाम्नो बन्धका अतो वैक्रियशरीरबन्धकस्पर्शनावद् भावना कार्या । 'दुइअ' इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्याऽबन्धकाः पञ्चभागान् स्पृष्टवन्तः, तद्यथा—मार्गणास्वासु प्रकृतिचतुष्कस्याऽबन्धका मुख्यतया देशविरतयस्तिर्यक्पञ्चेन्द्रिया वर्तन्ते, ते सहस्रारदेवलोकं यावदुत्पत्तिमालभन्ते, तत्रोत्पित्सवश्च ते समुद्घातेनाऽऽसहस्रारक्षेत्र स्पृशन्ति, तत्पुनः पञ्चरज्जुप्रमाणमस्ति । 'थीणद्धि' इत्यादि, स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कनीचैर्गोत्ररूपस्य प्रकृत्यष्टकस्याऽबन्धका अष्टौ भागान् स्पृशन्ति, मार्गणास्वासु वर्तमानानामेतत्प्रकृत्यष्टकाबन्धकानां सम्यग्दृष्टिदेवानां गमनागमनक्षेत्रस्याऽष्टरज्जुप्रमाणत्वात् । 'सुहमस्स' इत्यादि, सूक्ष्मनामकर्मणोऽबन्धका देशोनं जगत् स्पृष्टवन्तः,बादरवायुकायिकेषूत्पद्यमानत्वात् । 'सेसाण' इत्यादि, उक्तप्रकृतिव्यतिरिक्तप्रकृत्यबन्धकाना स्पर्शना सकललोकप्रमाणा वर्तते, सूक्ष्मैकेन्द्रियेषूत्पद्यमानत्वात् । इमाश्च ताः शेषप्रकृतयः-वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्त्रीपुरुषवेदद्वयदेवनारकमनुष्यगतित्रयद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियद्विकाहारकद्विकसंहननषट्कसमचतुरस्रादिसंस्थानपञ्चकदेवनरकमनुष्यानुपूर्वीत्रयखगतिद्वयत्रसदशकाऽपर्याप्तसाधारणाऽस्थिराऽशुभदुःस्वराऽयशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासाऽऽतपोद्योतजिननामोच्चैर्गोत्ररूपा अष्टपञ्चाशत्प्रकृतयः ॥११७२-४॥

इदानीमौदारिककाययोगमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनां दिदर्शयिषुराह

ओरालियम्मि णेयो छिविओ धुवबंधिपचतीसाए ।
लोगासंखियभागो फुसणा तिरियव्व सेसाण ॥११७५॥

(प्रे०) 'ओरालियम्मि' इत्यादि, औदारिककाययोगमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कवर्जानां पञ्चत्रिंशच्छेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धकैर्लोकस्याऽसंख्येयतमो भागः परिस्पृष्टः, तद्यथा–एतस्यां मार्गणायां प्रकृतप्रकृतीनामबन्धकत्वेन केवलज्ञानिनां प्राप्यमाणत्वेऽपि समुद्घातगततृतीयचतुर्थपञ्चमसमयगतस्पर्शनाक्षेत्रस्यालाभेन शेषसमुद्घातगतक्षेत्रस्य लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणत्वेन प्रस्तुतस्पर्शनाऽपि तावत्येव प्राप्यते । किमुक्तं भवति–केवलिसमुद्घातगतस्पर्शना सविशेषा तदा भवति, यदा समुद्घातगततृतीयचतुर्थपञ्चमसमयानां स्पर्शनाया लाभः स्यात् ,तदानीं क्रमेण लोकासंख्यबहुभागप्रमाणा सर्वलोकप्रमाणा, लोकासंख्यबहुभागप्रमाणा स्पर्शना भवतीतिकृत्वा, प्रस्तुते तु न तथा, प्रस्तुतमार्गणायाः प्रथमाष्टमसमययोरेव लाभेन तृतीयादिसमयत्रये च मार्गणाया एवाभावात् ,शेषसमयस्थानां तु केवलिसमुद्घातगतानां स्पर्शना लोकाऽसंख्यभागप्रमाणत्वात् प्रस्तुते लोकासंख्यभागप्रमाणैव स्पर्शना कथिता । 'फुसणा' इत्यादि, अभिहितशेषप्रकृतीनामबन्धकानां स्पर्शना तिर्यगोधमार्गणेव ज्ञातव्या । तदेवम्–स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपाणामेकादशप्रकृतीनामबन्धकानां स्पर्शना पञ्चभागप्रमाणा, मिथ्यात्वमोहनीयस्य सप्तभागप्रमाणा, औदारिकशरीरनाम्न एकादशभागप्रमाणा, शेषप्रकृतीनां च सर्वलोकप्रमाणा वेदयितव्या, अत्र जिननामाहारकद्विकप्रकृतीनां बन्धसत्त्वात् शेषप्रकृतित्वेन ता अपि ग्राह्याः । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः–वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियद्विकाऽऽहारकद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कानुपूर्वीचतुष्कखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासजिननामगोत्रद्वयरूपा अष्टषष्टिः प्रकृतय इति । भावना पुनरत्र तिर्यगोघमार्गणावद् विधेया ॥११७५॥

अथौदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनाऽभिधीयते–

ओरालमीसजोगे छुहिओ अत्थि धुवबंधिउरलाण ।
लोगासंखियभागो पुट्ठ सव्वजगमण्णेसिं ॥११७६॥

(प्रे०) 'ओरालमीसजोगे' इत्यादि, औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्चाऽबन्धका लोकाऽसंख्येयभागं स्पृष्टवन्तः, मार्गणायामस्यामासां प्रकृतीनामबन्धकानां केवलज्ञानिना समुद्घातगतक्षेत्रस्याऽपि लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणत्वात् । 'पुट्ठ' इत्यादि, एतत्प्रकृतिव्यतिरिक्तानां प्रकृतीनामबन्धकाना स्पर्शना समस्तलोकप्रमाणा बोद्धव्या, मार्गणायामस्यां सूक्ष्मैकेन्द्रियाः शेषप्रकृतीनामबन्धकतया वर्तन्ते, तान्प्रतीत्य स्वस्थानापेक्षया भावना भाव्या । ताश्चानन्तरोक्ता नरकद्विकाहारकद्विकवर्जचतुःषष्टिर्विज्ञेया इति ।

॥११७६॥ अधुना वैक्रियकाययोगमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनामुपदर्शयन्नाह

विउवे छुहिआ तिरिदुगथीणद्धितिगाणचउणीआण ।
णेया अड भागा णव छिविआ पंचिंदियतसाण ॥११७७॥
मिच्छणपुमएगिंदियथावरऽणादेयदुहगहुंडाण ।
बारस भागा छुहिआ तेरस भागाऽत्थि सेसाण ॥११७८॥

(प्रे०) 'विउवे' इत्यादि, वैक्रियकाययोगमार्गणायां तिर्यग्द्विकस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कनीचैर्गोत्रलक्षणानां दशानां प्रकृतीनामबन्धकैरष्टौ भागाः परिस्पृष्टाः, यतोऽत्र सम्यग्दृष्टिदेवाः प्रकृतीनामासामबन्धकास्सन्ति, तेषां च गमनागमनक्षेत्रमष्टरज्जुप्रमाणमस्ति । 'णव' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातित्रसनाम्नोरबन्धका नव भागान् स्पृशन्ति । इयमत्र भावना- मार्गणायामेतस्यां प्रकृतिद्वयस्याऽस्याबन्धका देवा बादरैकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतीर्बध्नन्ति, ते चोर्ध्वं बादरैकेन्द्रियत्वेन सिद्धशिलापृथिव्यामुत्पद्यमाना मरणसमुद्घातेन विहितैरात्मप्रदेशदण्डैः सप्तरज्जुक्षेत्रं स्पृशन्ति, तथाऽधस्तात्तृतीयनरकं यावद् गमनागमनविधानेन रज्जुद्वयं स्पृशन्ति । 'मिच्छ' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयनपुंसकवेदैकेन्द्रियजातिस्थावरानादेयदुर्भगहुण्डकसंस्थाननामरूपस्य प्रकृतिसप्तकस्याऽबन्धकैर्द्वादश भागाः परिस्पृष्टाः, भावना त्वेवम् -मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽबन्धकाः षष्ठनरकस्थाः सास्वादना नारकास्तिर्यग्लोके जायमाना मरणसमुद्घातविधानेन पञ्चरज्जूः स्पृशन्ति, तथा मिथ्यात्वमोहनीयाऽबन्धकास्सास्वादनिनो देवा ऊर्ध्वं बादरैकेन्द्रियत्वेनेषत्प्राग्भारपृथिव्यां जायमानाः सप्तरज्जूः स्पृशन्ति । प्रकृतमार्गणायां नपुंसकवेदादिप्रकृतीनामबन्धकाः सप्तमनरकस्था नारकास्तिर्यग्लोके समुत्पित्सवो मरणसमुद्घाते षड्रज्जूः स्पृशन्ति, तथा नपुंसकवेदादिप्रकृतीनामबन्धका देवा गमनागमनेनोर्ध्वलोकसत्कषड्रज्जूः स्पृशन्ति । 'तेरस' इत्यादि, अत्राऽभिहितशेषप्रकृतीनामबन्धकास्त्रयोदशभागान् स्पृशन्ति स्म, घटना पुनरिहेत्थमाधेया मार्गणायामस्यां शेषप्रकृत्यबन्धकाः सप्तमनरकस्थाः प्राणिनस्तिर्यग्लोके समुत्पित्सवो मरणसमुद्घातकाले षड्रज्जुक्षेत्रं स्पृशन्ति, तथा शेषप्रकृत्यबन्धका भवनपतिप्रभृतिदेवा ऊर्ध्वं बादरैकेन्द्रियत्वेनोत्पित्सवः सप्तरज्जूः स्पृशन्ति । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः- वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्त्रीपुरुषवेदद्वयमनुष्यगत्यौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कप्रथमादिसंस्थानपञ्चकमनुष्यानुपूर्वीखगतिद्वयस्थिरषट्कास्थिराऽशुभदुःस्वराऽयशःकीर्त्याऽऽतपोद्योतजिननामोच्चैर्गोत्ररूपा अष्टात्रिंशत्प्रकृतयः ॥११७७-८॥

साम्प्रतं स्त्रीवेदमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनामाह

थीणद्धितिगाणणपुमदुहगाणादेयहुंडणीआण ।
इत्थीअ अट्ठ भागा फुसिआ मिच्छस्स णव भागा ॥११७९॥
दुइअकसायाण पण भागा धुवबंधिणीण जाणऽत्थि ।
सत्तरसेसाणं सिं परिपुट्ठो जगअसंखंसो ॥११८०॥

एगार तिरिदुगेगिंदियथावराण उरलस्स दस भागा ।
णव अजसस्सूणजगं सुहुमस्सियराण सव्वजगं ॥११८१॥

(प्रे०) 'थीणद्धि' इत्यादि, स्त्रीवेदमार्गणायां स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कनपुंसकवेद-दुर्भगानादेयहुण्डकसंस्थाननीचैर्गोत्रलक्षणानां द्वादशप्रकृतीनामबन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रमष्टभाग-प्रमाणमस्ति, मार्गणायामस्यामेतत्प्रकृत्यबन्धकानां सम्यग्दृष्टिदेवीनां गमनागमनक्षेत्रस्याऽष्टरज्जु-प्रमाणत्वात् । 'मिच्छस्स' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽबन्धका नव भागान् स्पृशन्ति स्म । भावना पुनरियमत्र–मार्गणायामस्यां मिथ्यात्वमोहनीयाऽबन्धिकाः सास्वादनादेव्यो गमनागमनेना-ऽष्टरज्जुक्षेत्रं स्पृशन्ति, तथोर्ध्वं बादरैकेन्द्रियत्वेनेषत्प्राग्भारपृथिव्यामुत्पद्यमाना मरणसमुद्घातेनोर्ध्व-लोकसत्कं सप्तमरज्जुमपि स्पृशन्ति । 'दुइअ' इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्याऽबन्धकैः पञ्चभागाः परिस्पृष्टाः, तद्यथा–एतत्प्रकृतिचतुष्काऽबन्धका देशविरततिरश्च्य आसहस्रारकल्पं समुत्पद्यन्ते, ताश्च मरणसमुद्घातसमये पञ्चरज्जुप्रमाणमासहस्रारकल्पक्षेत्रं परिस्पृशन्ति । 'धुवबंधिणीण' इत्यादि, यासां शेषाणां सप्तदशध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धका विद्यन्ते, ते जगतोऽसंख्येयतमभागं स्पृशन्ति, ताश्चेमाः–निद्राद्विकप्रत्याख्यानावरणचतुष्कभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघात-निर्माणरूपाः सप्तदशप्रकृतयः, भावनाऽनया रीत्या कार्या–मार्गणायामस्यां प्रत्याख्यानावरणचतुष्क-स्याऽबन्धकतया संयमिन्यो वर्तन्ते, शेषत्रयोदशप्रकृतीनामबन्धकजीवाश्च श्रेणौ प्राप्यन्ते, तेषां सर्वेषां स्वस्थानक्षेत्रस्य पारभविकोत्पत्तिक्षेत्रस्य च लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणत्वेन स्पर्शनाक्षेत्रमपि तावत्प्रमाणमेवाऽवाप्यते । 'एगार' इत्यादि, तिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिस्थावरनामरूपाणां चतसृणां प्रकृ-तीनामबन्धकैरेकादशभागाः स्पृष्टाः, तदेवम् मार्गणायामेतस्यामेतत्प्रकृत्यबन्धकानां देवीजीवानामूर्ध्वं गमनागमनक्षेत्रस्य षड्रज्जुप्रमाणत्वेन षड्रज्जुप्रमाणा स्पर्शना समुपलभ्यते तथा प्रकृतमार्गणा-स्था एतत्प्रकृत्यबन्धकतया मुख्यतस्तिरश्च्योऽधः षष्ठनरकं यावदुत्पद्यन्ते, अतस्तासां मरणसमुद्घात-गतस्पर्शना पञ्चरज्जुप्रमाणा प्राप्यते, षष्ठनरकपर्यन्तक्षेत्रस्य पञ्चरज्जुप्रमाणत्वात् । 'उरलस्स' इत्यादि, औदारिकशरीरनाम्नोऽबन्धका दशभागान् स्पृष्टवन्तः, इयमत्र भावना–मार्गणायामस्यामौदा-रिकशरीरनाम्नोऽबन्धका मुख्यवृत्त्या तिरश्च्य ऊर्ध्वमासहस्रारदेवलोकमधस्ताच्च षष्ठनरकं याव-दुत्पद्यन्ते, उभयमपि समुदितं क्षेत्रं दशरज्जुप्रमाणमस्ति, उत्पित्सवस्तत्र ता मरणसमुद्घात-समये विहितात्मप्रदेशदण्डैस्तावत्प्रमाण क्षेत्रं स्पृशन्ति । 'णव' इत्यादि, अयशःकीर्तिनामप्रकृतेर-बन्धका नव भागान् स्पृशन्ति, तद्यथा–मार्गणायामस्यामेतत्प्रकृत्यबन्धका देव्योऽष्टरज्जुक्षेत्रं गमना-गमनेन स्पृशन्ति, तथोपरि सप्तमरज्जुं सिद्धशिलापृथिव्यां बादरैकेन्द्रियेषु जायमाना मरणसमुद्-घातेन स्पृशन्तीति नवरज्जुमितस्पर्शना भवति । 'ऊणजगं' इत्यादि, सूक्ष्मनामकर्मणोऽबन्धका देशोनलोकं स्पृशन्ति स्म, यतः प्रकृतमार्गणस्था एतत्प्रकृत्यबन्धका जीवा बादरवायुकायि-

केष्वपि समुत्पद्यन्ते, बादरवायुकायिकाश्च देशोनलोके वर्तन्ते । 'इयराण' इत्यादि, उक्त-शेषप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शना सर्वलोकप्रमाणा वेदयितव्या, तेषामुत्पत्तेः सूक्ष्मैकेन्द्रियेषु भावात् , ताश्चेमाः शेषाः प्रकृतयः–वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्त्रीपुरुषवेदद्वयनरकमनुष्यदेवगतित्रयद्वीन्द्रि-यादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियद्विकाहारकद्विकसंहननपट्कसमचतुरस्रादिसंस्थानपञ्चकनरक-देवमनुष्यानुपूर्वीत्रयखगतिद्वयत्रसदशकाऽपर्याप्तसाधारणास्थिराऽशुभदुःस्वरातपोद्योतपराघातोच्छ्वास--जिननामोच्चैर्गोत्ररूपाः सप्तपञ्चाशत्प्रकृतय इति ॥११८१॥

अथ पुरुषवेदमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनां चिन्तयन्नाह

इत्थिव्व पुमे फुसणा सव्वाण परमुरलस्स एगार ।
भागा बारह तिरिदुगएगिंदियथावराणऽत्थि ॥११८२॥

(प्रे०) 'इत्थिव्व' इत्यादि पुरुषवेदमार्गणायां सर्वासां प्रकृतीनां स्पर्शना स्त्रीवेदमार्गणा-वदस्ति । 'परं' इत्यादिना विशेषं दर्शयति 'उरलस्स' इत्यादि, औदारिकशरीरनाम्नोऽबन्धकैरे-कादशभागान् स्पृशन्ति स्म, तत्पुनरेवम् मार्गणायामस्यां वैक्रियशरीरनाम्नो बन्धका एतत्प्रकृत्य-बन्धका वर्तन्ते, तेऽप्यत्र बहुलतया तिर्यक्पञ्चेन्द्रिया वर्तन्ते,एते तिर्यक्पञ्चेन्द्रिया अधस्तात्सप्तम-नरकमूर्ध्वं पुनः सहस्रारकल्पं यावदुत्पित्सव एतद्द्वयमपि क्षेत्रं मरणसमुद्घातसमये कृतात्मप्रदेशदण्डैः स्पृशन्ति, तच्च क्षेत्रमेकादशरज्जुप्रमाणमस्ति । 'भागा बारह' इत्यादि, तिर्यग्द्विकस्थावरैकेन्द्रिय-प्रकृतीनामबन्धकानां स्पर्शना द्वादशभागप्रमाणा अवसेया । सा पुनरित्थमवसेया मार्गणायामस्यां वर्त-माना एतत्प्रकृतिचतुष्कस्याऽबन्धका देवा गमनागमनेनोर्ध्वलोकमत्कषड्रज्जूः स्पृशन्ति, तथा मार्ग-णायामस्यां वर्तमाना एतत्प्रकृतिचतुष्कस्याऽबन्धका मुख्यवृत्त्या तिर्यक्पञ्चेन्द्रियास्सप्तमनरकं याव-दुत्पित्सवः षड्रज्जूः स्पृशन्तीत्येवं द्वादशरज्जुप्रमाणा स्पर्शना संजाता ॥११८२॥

साम्प्रत नपुंसकवेदकपायचतुष्कमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनाऽभिधीयते

णपुमचउकसायेसुं भागा बार छुहिआऽत्थि मिच्छस्स ।
छिविआ थीणद्धितिगअट्ठकसायाण पण भागा ॥११८३॥
णवरि कसायेसुं अड भागा थीणद्धितिगऽणचउगाणं ।
सेसधुवाण जेसिं हवेज्ज सिं जगअसखसो ॥११८४॥
ओरालियस्स भागा एगारस फोसिआ मुणेयव्वा ।
सव्वजगं परिपुट्ठं सेसाण अट्ठसट्ठीए ॥११८५॥

(प्रे०) 'णपुम' इत्यादि, नपुंसकवेदक्रोधमानमायालोभलक्षणासु पञ्चसु मार्गणासु मिथ्या-त्वमोहनीयस्याऽबन्धकैर्द्वादश भागाः स्पृष्टाः, तदेवम् मार्गणास्वासु वर्तमाना मिथ्यात्वमोहनीयस्या-ऽबन्धकाः सास्वादना जीवा उपरि सिद्धशिलापृथिव्यां बादरैकेन्द्रियत्वेन समुत्पित्सवः सप्तरज्जु-क्षेत्रमधश्च षष्ठनरकात्तिर्यग्लोके समुत्पित्सवः पञ्चरज्जुक्षेत्रं मरणसमुद्घातसमये स्पृशन्ति । 'थीण-

ढिय' इत्यादि; स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपाणामेकादशप्रकृतीनामबन्धकाः पञ्चभागान् परिस्पृष्टवन्तः, तद्यथा—मार्गणास्वासु स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्करूपस्य प्रकृतिसप्तकस्याऽबन्धका मुख्यवृत्त्या सम्यग्दृष्टयस्तिर्यञ्चः अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य च देशविरतयस्तिर्यञ्चो वर्तन्ते, ते चाऽष्टमदेवलोकमुत्पद्यमानाः पञ्चरज्जुप्रमाणक्षेत्रं मरणसमुद्घातावसरे स्पृशन्ति । ननु क्रोधादिकषायमार्गणासु स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कप्रकृतीनामबन्धकतया देवा उपलभ्यन्ते, तेषां च गमनागमनक्षेत्रमष्टरज्जुप्रमाणमस्ति, अतः स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽबन्धकानामिह स्पर्शनाऽष्टरज्जुप्रमाणा वक्तव्याऽऽसीत् कथं भवद्भिः पञ्चरज्जुप्रमाणैव प्रोक्तेत्यारेकामपाकर्तुमपवादमाह 'णवरि' इत्यादिना, क्रोधमानमायालोभलक्षणासु चतसृषु मार्गणासु स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कलक्षणस्य प्रकृतिसप्तकस्याऽबन्धकैरष्टौ भागाः परिस्पृष्टाः । 'सेस' इत्यादि, उक्तशेषध्रुवबन्धिप्रकृतिषु यासां ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धका विद्यन्ते, तेषां स्पर्शनाक्षेत्रं जगतोऽसंख्येयतमभागप्रमाणं समधिगन्तव्यम्, नपुंसकवेदक्रोधकषायमार्गणयोस्ताश्चेमाः शेषध्रुवबन्धिप्रकृतयः-निद्राद्विकप्रत्याख्यानावरणचतुष्कभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणरूपाः सप्तदशेति । मानमार्गणायामुक्तसप्तदशप्रकृतयः संज्वलनक्रोधश्च, मायामार्गणायामुक्तसप्तदशप्रकृतयः संज्वलनक्रोधमानौ, लोभमार्गणायां चोक्तसप्तदशप्रकृतयः संज्वलनचतुष्कं चेति । भावनाप्रकारस्त्वेवम्—प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्याऽबन्धकाः प्रमत्तादिसयता वर्तन्ते, शेषप्रकृत्यबन्धकाश्च श्रेणौ प्राप्यन्ते, तेषां सर्वेषां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणा स्त्रीवेदमार्गणावदुपपादनीया । 'ओरालियस्स' इत्यादि, औदारिकशरीरनाम्नोऽबन्धका एकादशभागान् स्पृष्टवन्तः, भावना पुनरिह पुरुषवेदमार्गणायां दर्शितप्रकारेण विधेया । 'सव्व' इत्यादि, अत्रोक्तातिरिक्तानामष्टषष्टिशेषप्रकृतीनामबन्धकानां स्पर्शना सर्वलोकप्रमाणा बोद्धव्या, सूक्ष्मैकेन्द्रियाणां तदबन्धकतया प्राप्यमाणत्वात्तेषां च स्वस्थानक्षेत्रस्याऽपि सर्वलोकप्रमाणत्वात् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकवैक्रियाऽऽहारकशरीराङ्गोपाङ्गत्रयसंहननषट्कसंस्थानषट्काऽऽनुपूर्वीचतुष्कखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासजिननामगोत्रद्वयरूपा अष्टषष्टिरिति ॥११८३-८५॥

सम्प्रति गतवेदसंयमौघमार्गणयोरायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रमभिधीयते

गयवेअसंजमेसुं असंखभागो जगस्स परिपुट्ठो ।
सायस्स सव्वलोगो सप्पाउग्गाण सेसाण ॥११८६॥

(प्रे०) 'गयवेअ' इत्यादि, अपगतवेदमार्गणायां संयमौघमार्गणायां च सातवेदनीयस्याबन्धकैर्जगतोऽसंख्याततमो भागः स्पृष्टः, तथा मार्गणयोरनयोश्चतुर्दशगुणस्थानस्था जीवा अपगतवेदे सिद्धा अपि सातवेदनीयस्याऽबन्धका भवन्ति, तेषां क्षेत्रं स्वस्थानापेक्षया लोकाऽसंख्येयतमभागमेवाऽस्ति,

यद्यपि संयमौघे प्रमत्तजीवानां सातवेदनीयस्याबन्धकत्वेन प्राप्यमाणत्वेऽपि तेषां स्पर्शनाया लोकासंख्यभागमात्रत्वाद् न विशेषः, अतः स्पर्शनाऽपि तेषां तावत्येव वेदितव्याः । 'सव्व' इत्यादि, सातवेदनीयप्रकृत्यतिरिक्तानां शेषाणां स्वप्रायोग्यप्रकृतीनामबन्धकैः सकलो लोकः स्पृष्टः । इयमत्र भावनाविधिः-मार्गणयोरनयोः शेषप्रकृत्यबन्धकास्त्रयोदशगुणस्थानस्थाः केवलज्ञानिनोऽपि वर्तन्ते, ते च केवलिसमुद्घातवेलायां सकलं लोकं स्पृशन्ति । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-अपगतवेदमार्गणायां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्कयशःकीर्त्युच्चैर्गोत्रान्तरायपञ्चकरूपा विंशतिः प्रकृतयः। संयमौघमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कवर्जा एकत्रिंशच्छेषध्रुवबन्धिप्रकृतयः, असातवेदनीयहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकाहारकद्विकसमचतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वीसुखगतित्रसदशकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासजिननामोच्चैर्गोत्ररूपा द्वात्रिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतय इति ॥११८६॥

इदानीं मत्यादिज्ञानाऽवधिदर्शनमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनोच्यते

णाणतिगे ओहिम्मि य पण भागा फोसिआ मुणेयव्वा ।
दुइअकसायाण तह णरउरलदुगवइररिसहाणं ॥११८७॥
बारससायाईण सुरविउवाहारजुगलतित्थाणं ।
छहिआऽस्थि अट्ठ भागा सेसाण जगअसखंसो ॥११८८॥

(प्रे०) 'णाणतिगे' इत्यादि, मतिज्ञानश्रुतज्ञानाऽवधिज्ञानाऽवधिदर्शनरूपासु चतसृषु मार्गणास्वप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य तथा मनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननरूपाणां पञ्चानां प्रकृतीनामबन्धकैः पञ्चभागाः स्पृष्टाः, यत एतत्प्रकृत्यबन्धका मुख्यतया देशविरतास्तिर्यञ्च आसहस्रारकल्पमुत्पद्यन्ते, तच्च क्षेत्रं पञ्चरज्जुप्रमाणमस्ति । 'बारस' इत्यादि, सातवेदनीयाऽसातवेदनीयहास्यरतिशोकाऽरतिस्थिरास्थिरशुभाऽशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिरूपाणां द्वादशप्रकृतीनां सुरद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकजिननामरूपाणां च सप्तानां प्रकृतीनामबन्धकैरष्टौ भागाः स्पृष्टाः,एतत्प्रकृत्यबन्धकानामत्र देवानां गमनागमनक्षेत्रस्याऽष्टरज्जुप्रमाणत्वात् । 'सेसाणं' इत्यादि, इहाऽभिहितशेषप्रकृतीनामबन्धकैर्लोकस्याऽसंख्याततमो भागः स्पृष्टः । इमाश्च ताः शेषप्रकृतयः—ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणान्तरायपञ्चकरूपाः पञ्चत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः पुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिवर्जत्रससप्तकपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाश्चतुर्दशाऽध्रुवबन्धिप्रकृतयश्च । भावना पुनरेवं कार्या—मार्गणास्वासु शेषप्रकृत्यबन्धकाश्छद्मस्थसंयताः प्राप्यन्ते, तेषां पारभविकक्षेत्रं स्वस्थानक्षेत्रं च लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणमस्ति, अतः स्पर्शनाऽपीयत्प्रमाणव भवति ॥११८७-८८॥

साम्प्रतं मतिश्रुताज्ञानमार्गणयोरायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकैः स्पृष्टक्षेत्रमुपदर्शयन्नाह

मिच्छस्स अणाणदुगे भागा बार छिविआऽत्थि उरलस्स ।
एगारस सव्वजगं सेसाणं पंचसट्ठीए ॥११८९॥

(प्रे०) 'मिच्छस्स' इत्यादि, मत्यज्ञानश्रुताज्ञानाख्यमार्गणाद्वये मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽबन्धकैर्द्वादश भागाः स्पृष्टाः, भावना नपुंसकवेदमार्गणावत्कार्या। 'उरलस्स' इत्यादि, औदारिकशरीरनाम्नोऽबन्धका एकादशभागान् स्पृष्टवन्तः । भावना वैक्रियशरीराबन्धकवदनुसंधेया । 'सव्व' इत्यादि, एतद्व्यतिरिक्तपञ्चषष्टिप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शना सकललोकप्रमाणा वर्तते, सूक्ष्मैकेन्द्रियाणामपीह प्रवेशात् तेषाञ्च सर्वलोकव्यापित्वे सति प्रोक्तप्रकृतीनामबन्धस्यापि सम्भवात् ,ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकाऽङ्गोपाङ्गवैक्रियद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कानुपूर्वीचतुष्कखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासगोत्रद्वय -रूपा पञ्चषष्टिरध्रुवबन्धिप्रकृतय इति ॥११८९॥

अथ विभङ्गज्ञानमार्गणायामायुर्वर्ज्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनामाह

मिच्छत्तणपुमतिरिदुगएगिंदियहुंडथावराण तहा ।
दुहगाणादेयाण विब्भंगे बार भागाऽत्थि ॥११९०॥
भागेगारुरलस्स अजसस्स तेर सुहमस्स ऊणजगं ।
णीअस्स अडियरेसिं चउपण्णासाअ सव्वजगं ॥११९१॥

(प्रे०) 'मिच्छत्त' इत्यादि, विभङ्गज्ञानमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयनपुंसकवेदतिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिहुण्डकसंस्थानस्थावरनामदुर्भगानादेयरूपाणां नवानां प्रकृतीनामबन्धका द्वादश भागान् स्पृष्टवन्तः, मार्गणायामस्यां मिथ्यात्वस्याबन्धकानां भावना नपुंसकवेदमार्गणावत्कार्या शेषैतत्प्रकृत्यबन्धकानामूर्ध्वं द्वादशदेवलोकं यावद् गमनागमनेनाधस्तु सप्तमनरकात्तिर्यग्लोकं यावत्तिर्यक्पञ्चेन्द्रियेषु जायमानेन स्पृष्टत्वात् । औदारिकशरीराबन्धकैरेकादशभागाः स्पृष्टाः । अयशःकीर्तिनाम्नोऽबन्धकास्त्रयोदशभागान् स्पृशन्ति स्म । एतन्मार्गणास्थानामेतत्प्रकृत्यबन्धकानामीषत्प्राग्भारपृथिव्यां बादरैकेन्द्रियत्वेन सप्तमनरकात्तिर्यग्लोके तिर्यक्पञ्चेन्द्रियत्वेन समुत्पित्सूनां मरणसमुद्घातेन स्पर्शनात् ,भवति हि द्वयमपि क्षेत्रं समुदितं त्रयोदशरज्जुप्रमाणम् । 'सुहमस्स' इत्यादि, सूक्ष्मनाम्नोऽबन्धका देशोनलोकं स्पृष्टवन्तः, तेषां बादरवायुकायेषूत्पादात् । 'णीअस्स' इत्यादि, नीचैर्गोत्रस्याऽबन्धकैरष्टौ भागाः स्पृष्टा भवन्ति, मार्गणायामस्यां नीचैर्गोत्रप्रकृत्यबन्धकानां देवानां गमनागमनक्षेत्रस्याऽष्टरज्जुप्रमाणत्वात् । 'सव्वजग' मित्यादि, शेषचतुःपञ्चाशत्प्रकृतीनामबन्धकैस्सर्वो लोकः स्पृष्टः, सूक्ष्मतयोत्पित्सुभिर्मरणसमुद्घातेन स्पृष्टत्वात् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्त्रीपुरुषवेदद्वयदेवनरकमनुष्यगतित्रयद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियद्विकसंहननषट्कप्रथमादिसंस्थानपञ्चकदेवनरकमनुष्यानुपूर्वीत्रयखगतिद्वयत्रसदशकाऽपर्याप्तसाधारणाऽस्थिराऽशुभदुःस्वरातपोद्योतपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाश्चतुःपञ्चाशत् ॥११९०-९१॥

अथ देशविरतमार्गणायामसंयममार्गणायां चायुर्वर्जोत्तरप्रकृतीनामबन्धकानां स्पर्शनामाह

देसम्मि पंच भागा सायाइछजुगलतित्थणामाण ।
अजयम्मि अट्ठ भागा थीणद्धितिगाणचउगाण ॥११९२॥
मिच्छस्स अत्थि छुहिआ भागा बारस उरालियतणुस्स ।
एगारस परिपुट्ठं सेसछसट्ठीअ सव्वजगं ॥११९३॥

(प्रे०) 'देसम्मि' इत्यादि, देशविरतिसंयममार्गणायां सातवेदनीयाऽसातवेदनीयहास्यरति-शोकाऽरतिस्थिराऽस्थिरशुभाऽशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तितीर्थकृन्नामरूपाणां त्रयोदशप्रकृतीनामबन्धकाः पञ्चभागान् परिस्पृष्टवन्तः, मार्गणायामस्यां मुख्यवृत्त्या प्रकृतीनामासामबन्धकानां तिरश्चामामह-स्रारकल्पमुत्पद्यमानत्वात् । अत्रैतद्व्यतिरिक्तप्रकृतीनामबन्धका एव न विद्यन्ते, अतस्तत्स्पर्शनाया अप्यसम्भवो विज्ञेयः ।

'अजयम्मि' इत्यादि, असंयममार्गणायां स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कलक्षणस्य प्रकृति-सप्तकस्याऽबन्धकैरष्टौ भागाः स्पृष्टाः, एतत्प्रकृत्यबन्धकानां सम्यग्दृशां देवानां गमनागमनक्षेत्र-स्याऽष्टरज्जुप्रमाणत्वात् । 'मिच्छस्स' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽबन्धकैर्द्वादशभागाः स्पृश्य-न्ते स्म । 'उरालियतणुस्स' इत्यादि, औदारिकशरीरनाम्नोऽबन्धका एकादशभागान् स्पृशन्ति स्म । उभयत्र भावना प्रागनुसारेण विधेया । 'परिपुट्ठं' इत्यादि, अभिहितशेषषट्षष्टिप्रकृत्य-बन्धकानां स्पर्शना सर्वलोकप्रमाणाऽस्ति । शेषप्रकृतयः पुनरज्ञानमार्गणोक्ता एव जिननामसहिता ज्ञेयाः ॥११९२ ९३॥

अथाऽचक्षुर्दर्शनाहारकमार्गणयोरायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनां दर्शयन्नाह

अणयणआहारेसुं छुहिओ धुवबंधिपंचतीसाए ।
लोगासंखियभागो बारह भागाऽत्थि मिच्छस्स ॥११९४॥
थीणद्धितिगाणाणं अड भागा पंच बिअकसायाणं ।
उरलस्सेगार भवे सेसाणं पुट्ठमखिलजगं ॥११९५॥

(प्रे०) 'अणयण' इत्यादि, अचक्षुर्दर्शनानाहारकमार्गणाद्वये मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिका-ऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कवर्जानां पञ्चत्रिंशच्छेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धकैर्लोक-स्याऽसंख्याततमो भागः स्पृष्टः, घटना पुनरौदारिकमार्गणायां दर्शितप्रकारेण विधेया । 'बारह' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽबन्धकैर्द्वादश भागाः स्पृष्टाः, प्राग्वद् भावनेह विज्ञातव्या । 'थीणद्धि' इत्यादि, स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कलक्षणस्य प्रकृतिसप्तकस्याऽबन्धका अष्टौ भागान् स्पृशन्ति स्म, एतत्प्रकृत्यबन्धकानां देवानां गमनागमनक्षेत्रस्याष्टरज्जुप्रमाणत्वात् । 'पञ्च' इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्याऽबन्धकाः पञ्च भागान् स्पृशन्ति स्म, यत एतत्प्रकृतिचतुष्क-स्याऽबन्धका मुख्यवृत्त्या देशविरतितिर्यञ्च आमहस्रारकल्पमुत्पद्यन्ते । 'उरलस्स' इत्यादि, औदा-

रिकशरीरनाम्नोऽबन्धकैरेकादश भागाः स्पृष्टाः, पूर्ववद् भावना भाव्या । 'सेसाणं' इत्यादि, उक्त-शेषाष्टषष्टिप्रकृतीनामबन्धकैरखिलं जगत्स्पृष्टम् , शेषप्रकृत्यबन्धकानां सूक्ष्मैकेन्द्रियाणां स्वस्थान क्षेत्रस्यापि सर्वलोकप्रमाणत्वात् ॥११९४-५॥ अथ त्रिकुलेश्यामार्गणासु स्पर्शनामाह

मिच्छस्स कुलेसासु बारस एगार णव कमा भागा ।
उरलस्स छ चउरो दो छुहिआ सेसाण अजयव्व ॥११९६॥

(प्रे०) 'मिच्छस्स' इत्यादि, कृष्णनीलकापोतरूपासु त्रिकुलेश्यामार्गणासु मिथ्यात्वस्याबन्धकैः क्रमेण द्वादश भागा एकादश भागा नव भागाः स्पृष्टाः । तिसृष्वपि मार्गणासूर्ध्वलोकसत्कसप्तभागस्पर्शना सास्वादनान् तिरश्चो देवान् वाऽऽश्रित्य ज्ञेया, अधोलोकसत्कपञ्चचतुर्द्विभागप्रमाणास्पर्शना च क्रमेण षष्ठपञ्चमतृतीयपृथ्वीनारकानाश्रित्य ज्ञेया । एवं कृष्णलेश्यायां द्वादशभागप्रमाणा, नीलायां एकादशभागप्रमाणा, कापोतलेश्यायां तु नवभागप्रमाणा स्पर्शना मिथ्यात्वस्याबन्धकानां समागता ।

'उरलस्स' इत्यादि, औदारिकशरीरनाम्नोऽबन्धकाः कृष्णलेश्यामार्गणायां षड्भागान् नीललेश्यामार्गणायां चतुर्भागान् कापोतलेश्यामार्गणायां च भागद्वयं स्पृष्टवन्तः, तद्यथा–अस्याबन्धकाः कृष्णलेश्यावन्तः सप्तमनरके नीललेश्यावन्तः पञ्चमनरके कापोतलेश्यावन्तश्च तृतीयनरके प्रकृष्टत-उत्पद्यन्ते; उत्पित्सवश्च ते सप्तमनरकं यावत् षड्रज्जुप्रमाणं पञ्चमनरकं यावच्चतूरज्जुप्रमाणं तृतीयनरकं यावच्च द्विरज्जुप्रमाण क्षेत्रं मरणसमुद्घातावसरे निक्षिप्तात्मप्रदेशदण्डैः स्पृशन्ति । 'सेसाणं'इत्यादि,आसु मार्गणासु यथायोगं शेषस्वप्रायोग्यप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनाऽसंयतमार्गणावद् विज्ञेया। सा पुनरेवम्–स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्करूपस्य प्रकृतिसप्तकस्याऽबन्धकैरष्टौ भागाः शेषप्रकृत्यबन्धकैश्च सर्वजगत् स्पृष्टम् ॥११९६॥

साम्प्रतमास्वेवाशुभलेश्यामार्गणासु कतिपयप्रकृतप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनाविषयं परमतं प्रदर्शयितुमाह

केइ उण बिंति छुहिओ थीणद्धितिगाणचउगपयडीणं ।
लोगासंखियभागो मिच्छस्स कमाऽत्थि पणचउदुभागा ॥११९७॥(गीतिः)

(प्रे०) 'केइ' इत्यादि, कृष्णलेश्यानीललेश्याकापोतलेश्यालक्षणासु तिसृषु मार्गणासु स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्करूपस्य प्रकृतिसप्तकस्याऽबन्धकैर्लोकस्याऽसंख्येयतमो भागः स्पृष्टः, भावना पुनरिह नरकमार्गणावत् कार्या,परमते ऽप्यशुभलेश्यामार्गणायां पर्याप्तदेवानामभावात् , तानाश्रित्याष्टरज्जुप्रमाणा स्पर्शना न प्राप्यत इति कृत्वा लोकासंख्येयभागप्रमाणा स्पर्शना प्रोक्ता ।

'मिच्छस्स'इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽबन्धकैः कृष्णलेश्यामार्गणायां पञ्चभागाः, नीललेश्यामार्गणायां चत्वारो भागाः,कापोतलेश्यामार्गणायां च द्वौ भागौ स्पृष्टौ, भावना त्वेवम्–कृष्ण-

लेश्यादिमार्गणासु क्रमेण नरकौघपञ्चमनरकतृतीयनरकमार्गणावत्कार्या । अत्राऽपि पर्याप्तदेवानाम भावात् तानाश्रित्याधिकस्पर्शनाया अलाभोऽस्मिन् मते विशेषः । ननु अस्मिन्मतेऽपि सास्वादन-तिरश्च आश्रित्योर्ध्वलोकमस्तकसप्तभागानामपि लाभात् कृष्णादिलेश्यामार्गणासु द्वादशादिभागप्रमाणा-स्पर्शना कथं नोक्ता इति चेत्, सत्यम्, परमुपदेशान्तरसंग्रहार्थैव तैरेवमुक्तम्, यत्सास्वादनानां तिर्यग्मनुष्याणामशुभलेश्याया असद्भावः, अतस्तानाश्रित्योर्ध्वलोकमस्तकसप्तभागप्रमाणा स्पर्शना नोक्ताः ॥११९७॥

अथ तेजोलेश्यामार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनां दिदर्शयिषुराह

तइअकसायाण भवे छुहिओ तेऊअ जगअसंखंसो ।
दुइअकसायुरलाणं दिवड्ढभागाऽत्थि परिपुट्ठा ॥११९८॥
जाणऽत्थि सोलसण्हं सुरभि भागाऽट्ठ सिमडभागाऽत्थि ।
परिपुट्ठा णव भागा सेसाण सत्तचत्ताए ॥११९९॥

(प्रे०) 'तइअ' इत्यादि, तेजोलेश्यामार्गणाया प्रत्याख्यानावरणचतुष्कलक्षणस्य तृतीय-कषायस्याऽबन्धकैर्जगतोऽसंख्येयतमो भागः स्पृष्टः, तद्यथा मार्गणायामस्यामेतत्प्रकृतिचतुष्कस्या-ऽबन्धकाः संयता वर्तन्ते, तेषां स्वस्थानक्षेत्रं पारभविकोत्पत्तिक्षेत्रं च लोकाऽसंख्याततमभाग-प्रमाणमस्ति, अतः स्पर्शनाऽपि तेषां तावत्येव प्राप्यते । 'दुइअ' इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरण-चतुष्कौदारिकशरीरनामप्रकृतीनामबन्धकैः सार्धैकभागः स्पृष्टः, भावना पुनरिहैवम्—अप्रत्याख्या-नावरणचतुष्कस्याऽबन्धका देशविरतप्रमुखा वर्तन्ते, औदारिकशरीरनाम्नश्चाऽबन्धका वैक्रिय-शरीरबन्धका वर्तन्ते, ते चेतो मृत्वा उत्कृष्टतोऽपि सौधर्मेशानकल्पयोरेव समुत्पद्यन्ते, तदुभयस्य क्षेत्रमर्धाधिकैकरज्जुप्रमाणमस्ति, ते च तत्र समुत्पित्सवस्तादृशं क्षेत्रं मरणसमुद्घातसमये कृता त्मप्रदेशदण्डैः स्पृशन्ति । 'जाण' इत्यादि, यासां षोडशप्रकृतीनामबन्धकानां स्पर्शना सुरौघ-मार्गणायामष्टभागप्रमाणा दर्शिता, सैव स्पर्शनाऽत्राऽपि तासां षोडशप्रकृतीनामबन्धकानामधिगन्त-व्या । ताश्चेमाः षोडशप्रकृतयः—स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कनपुंसकवेदतिर्यग्द्विकहुण्डक-संस्थानैकेन्द्रियजातिस्थावरदुर्भगानादेयनीचैर्गोत्राणीति । 'णव' इत्यादि, अभिहितेतरसप्तचत्वा-रिंशत्प्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शना नवभागप्रमाणा ज्ञातव्या, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—मिथ्यात्वमोहनी-यवेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्त्रीपुंवेदद्वयदेवमनुष्यगतिद्वयपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रि-यद्विकाहारकद्विकसंहननषट्कसमचतुरस्रादिसंस्थानपञ्चकदेवमनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रसस्थिरषट्का-ऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिदुःस्वरातपोद्योतजिननामोच्चैर्गोत्ररूपाः सप्तचत्वारिंशदिति । भावना पुनरि-हैवं कार्या मार्गणायामस्यां शेषप्रकृत्यबन्धकानामष्टभागप्रमाणा स्पर्शना देवानां गमनागमनेन प्राप्यते, नवमभागा पुनस्तैरेव सिद्धशिलायां बादरपृथ्वीत्वेन समुत्पित्सुभिः समुद्घातावसरे स्पृश्यते ॥११९८-९९॥

अथ पद्मलेश्यामार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकैः स्पृष्टक्षेत्रं प्रतिपाद्यते

तइअकसायाण सवे छुहिओ पउमाअ जगअसंखसो ।
पण दुइअकसायउरलदुगाण भागाऽट्ठ सेसाण ॥१२००॥

(प्रे०) 'तइअ' इत्यादि, पद्मलेश्यामार्गणायां प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्याऽबन्धकैर्जगतोऽसंख्येयतमो भागः स्पृष्टः, एतत्प्रकृतिचतुष्काऽबन्धकानां संयतानां स्वस्थानक्षेत्रस्य पारभविकोत्पत्तिक्षेत्रस्य च जगतोऽसख्येयतमभागप्रमाणत्वात् । 'पण' इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कौदारिकशरीरौदारिकाङ्गोपाङ्गनामरूपस्य प्रकृतिषट्कस्याऽबन्धकैः पञ्चभागाः स्पृष्टाः, मार्गणायामस्यां वर्तमानानामेतत्प्रकृत्यबन्धकानां मुख्यवृत्त्या तिरश्चामासहस्रारकल्पमुत्पद्यमानत्वात् । 'अट्ठ' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृत्यबन्धकाना स्पर्शनाऽष्टभागप्रमाणाऽवसातव्या, मार्गणायामस्यां शेषप्रकृत्यबन्धकानां देवानां गमनागमनक्षेत्रस्याऽष्टरज्जुप्रमाणत्वात् , इमाश्च ताः-मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कवेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयदेवमनुष्यतिर्यग्गतित्रयवैक्रियद्विकाहारकद्विकेमहननषट्कसंस्थानषट्कदेवमनुष्यतिर्यगानुपूर्वीत्रयखगतिद्वयस्थिरषट्काऽस्थिरषट्कोद्योतजिननामगोत्रद्वयरूपाः सप्तपञ्चाशदिति ॥१२००॥

साम्प्रतं शुक्ललेश्यामार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनां कथयितुकाम आह-

सुक्काए परिपुट्ठा भागाऽत्थि छ सायवेअणीयस्स।
छिविओऽत्थि सव्वलोगो सप्पाउग्गाण सेसाण ॥१२०१॥

(प्रे०) 'सुक्काए' इत्यादि, शुक्ललेश्यामार्गणायां सातवेदनीयस्याऽबन्धकैः षड्भागाः स्पृष्टाः तदेवम्-मार्गणायामस्यां वर्तमाना आनतादिकल्पवासिनो देवास्तिर्यग्लोकपर्यन्तमेव गमनागमनं कुर्वन्ति, न ततः परम् , तस्मात्तेषां गमनागमनक्षेत्रं षड्रज्जुप्रमाणमेव प्राप्यते, ते च यदाऽसातवेदनीयं बध्नन्ति, तदा ते सातवेदनीयस्याऽबन्धका भवन्ति, अतस्तेऽसातवेदनीयबन्धकाले गमनागमनविधानेन षड्रज्जुक्षेत्रं स्पृशन्ति । 'सव्व' इत्यादि, सातवेदनीयव्यतिरिक्तप्रकृत्यबन्धकैः सर्वो लोकः स्पृष्टः, यतो हि मार्गणायामस्यां शेषप्रकृत्यबन्धकाः केवलज्ञानिनः समुद्घाताऽवसरे विश्वविश्वमात्मप्रदेशैर्व्याप्नुवन्ति । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः, असातवेदनीयहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयदेवमनुष्यगतिद्वयपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कदेवमनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रसदशकाऽस्थिरषट्कपराघातोच्छ्वासजिननामगोत्रद्वयरूपाश्चतुःपञ्चाशदध्रुवबन्धिप्रकृतयश्चेत्येकोत्तरशतप्रकृतयश्चेति ॥१२०१॥

इदानीमभव्यमिथ्यात्वमार्गणयोरायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनामाह-

अभवियमिच्छत्तेसुं भागेगार छुहिआऽत्थि उरलस्स ।
छिविओऽत्थि सव्वलोगो पणसट्ठीअ अवसेसाणं ॥१२०२॥

(प्रे०) 'अभविय' इत्यादि, अभव्यमिथ्यात्वलक्षणमार्गणाद्वय औदारिकशरीरनाम्नोऽबन्धका एकादशभागान् स्पृशन्ति, भावनाप्रकारस्त्वेवम्—मार्गणयोरनयोरौदारिकशरीरनाम्नोऽबन्धका वैक्रियशरीरनाम्नो बन्धका भवन्ति मुख्यवृत्त्या तिर्यक्पञ्चेन्द्रिया जीवास्तादृशा वर्तन्ते, ते चाऽधः सप्तमं नरकं यावदूर्ध्वं चाऽष्टमकल्पं यावत्समुत्पद्यन्ते, एतदुभयमपि क्षेत्रमेकादशरज्जुप्रमाणमस्ति, समुत्पित्सवश्च ते तत्र मरणसमुद्घातावसरे कृतात्मप्रदेशदण्डैस्तादृशमेकादशरज्जुप्रमाणं क्षेत्रं स्पृशन्ति । 'छिविओ' इत्यादि, एतदतिरिक्तानां प्रकृतीनामबन्धकैः सर्वलोकः परिस्पृष्टः, सूक्ष्मैकेन्द्रियाणामबन्धकतया प्राप्यमाणत्वात् तेषां स्वस्थानक्षेत्रस्यापि तावत्प्रमाणत्वाच्च, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कानुपूर्वीचतुष्कखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासगोत्रद्वयरूपाः पञ्चषष्टिरिति ॥१२०२॥

साम्प्रतं सम्यक्त्वौघक्षायिकक्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शना प्रतिपाद्यते

सम्मखइएसु भागा अड सायस्स छुहिआऽत्थि सव्वजगं ।
सेसाण वेअगे सिं हवेज्ज ओहिव्व जाणऽत्थि ॥१२०३॥

(प्रे०) 'सम्म' इत्यादि, सम्यक्त्वौघक्षायिकसम्यक्त्वमार्गणयोः सातवेदनीयस्याऽबन्धकैरष्टौ भागाः स्पृष्टाः, मार्गणाद्वयेऽस्मिन्नेतत्प्रकृत्यबन्धकानां देवानां गमनागमनक्षेत्रस्याऽष्टरज्जुप्रमाणत्वात् । 'सव्व' इत्यादि, सातवेदनीयव्यतिरिक्तानां प्रकृतीनामबन्धकानां स्पर्शना सकललोकप्रमाणा विज्ञेया, यतः शेषप्रकृत्यबन्धकाः केवलज्ञानिनो निखिलं जगत् केवलिसमुद्घातावस्थायां व्याप्नुवन्ति । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्काऽप्रत्याख्यानावरणादिद्वादशकषायभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपा एकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः, असातवेदनीयहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेददेवमनुष्यगतिद्वयपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकसमचतुरस्रसंस्थानवज्रर्षभनाराचसंहननदेवमनुष्यानुपूर्वीद्वयसुखगतित्रसदशकाऽस्थिराऽशुभायशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासजिननामोच्चैर्गोत्ररूपाः सप्तत्रिंशदिति षट्सप्ततिरिति । 'वेअगे' इत्यादि, क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां यासां प्रकृतीनामबन्धका भवन्ति, तेषां स्पर्शनाऽवधिदर्शनमार्गणावद् विज्ञातव्या । तद्यथा—अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कमनुष्यद्विकौदारिकद्विकप्रथमसंहननलक्षणस्य प्रकृतिनवकस्याबन्धकैः पञ्चभागाः स्पृष्टाः, सातवेदनीयाऽसातवेदनीयहास्यादियुगलद्वयस्थिराऽस्थिरशुभाऽशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिसुरद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकजिन-नामरूपाणामेकोनविंशतिप्रकृतीनामबन्धकैरष्टौ भागाः स्पृष्टाः, प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्याऽबन्धका लोकाऽसंख्येयतमभागं स्पृशन्ति स्म, भावना पुनरिह सर्वत्राऽवधिदर्शनमार्गणावत्कार्या ॥१२०३॥

सम्प्रति मिश्रसम्यक्त्वमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनामुपदिदर्शयिषुराह—

णरुरलदुगवइराणं मीसे फुसिओऽत्थि जगअसखंसो ।
सायाइछजुगलाण सुरविउवदुगाण अड भागा ॥१२०४॥

(प्रे०) 'णरुरल' इत्यादि, मिश्रसम्यक्त्वमार्गणायां मनुष्यद्विकौदारिकद्विकप्रथमसंहनन-लक्षणस्य प्रकृतिपञ्चकस्याऽबन्धकैर्लोकाऽसंख्येयतमभागः स्पृष्टः, तद्यथा मार्गणायामस्यां तिर्यग्मनुष्या एव मनुष्यद्विकादिप्रकृतिपञ्चकस्याऽबन्धका वर्तन्ते, तेषां स्वस्थानक्षेत्रं लोकस्याऽसंख्येयतमभाग-प्रमाणमस्ति, अतः स्पर्शनाऽपि तेषां तावत्प्रमाणैव ज्ञातव्या । मार्गणायामस्यां मरणाभावेन मरण-समुद्घातविधानाभावात्समुद्घातापेक्षया स्पर्शना नैव प्राप्यते । 'सायाइ' इत्यादि, सातवेदनीया-ऽसातवेदनीयहास्यरतिशोकाऽरतिस्थिराऽस्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिसुरद्विकवैक्रियद्विकरूपाणां षोडशप्रकृतीनामबन्धकैरष्टौ भागाः स्पृष्टाः, मार्गणायामस्यामेतत्प्रकृत्यबन्धकानां सुराणां गमना-गमनक्षेत्रस्याऽष्टरज्जुप्रमाणत्वात् । शेषप्रकृतीनामबन्धका एव न वर्तन्ते, अतो नाऽत्र स्पर्शनाविचा-रोऽस्ति ।१२०४॥

इदानीमुपशमसम्यक्त्वमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनां कथयितुकाम आह–

सायाइछजुगलाण सुरविउवाहारजुगलतित्थाणं ।
छुहिउवसमेऽट्ठ भागा सेसाण जगअसंखसो ॥१२०५॥

(प्रे०)'सायाइ' इत्यादि,उपशमसम्यक्त्वाख्यमार्गणायां सातवेदनीयाऽसातवेदनीयहास्यरतिशो-काऽरतिस्थिराऽस्थिरशुभाऽशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिरूपाणां द्वादशप्रकृतीनां सुरद्विकवैक्रियद्विकाऽऽहार-कद्विकजिननामलक्षणस्य प्रकृतिसप्तकस्य चाऽबन्धकैरष्टौ भागाः स्पृष्टाः प्रकृतीनामासामबन्धकानां देवानां गमनागमनक्षेत्रस्याष्टरज्जुप्रमाणत्वात् । सेसाण' इत्यादि, एतत्प्रकृतिविभिन्नानां शेषप्रकृ-तीनामबन्धकानां स्पर्शना जगतोऽसंख्येयतमभागप्रमाणाऽस्ति, भावना पुनरेवम्–अप्रत्याख्यानावरण-चतुष्कमनुष्यद्विकौदारिकद्विकप्रथमसंहननरूपाणां नवप्रकृतीनामबन्धकाः तिर्यञ्चोऽपि वर्तन्ते, तथापि मार्गणायामस्यां वर्तमानानां तिरश्चां मरणाभावेन स्वस्थानक्षेत्रस्यैव लाभात् तासामबन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणाऽवसेया, तथा शेषप्रकृतीनामबन्धकत्वेन छद्मस्थसंयता एव वर्तन्ते,तेषां चोभ-यक्षेत्रस्य लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणत्वेन स्पर्शनाऽपि तावत्प्रमाणाऽवसातव्या । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कवर्जा एकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः, पुरु-षवेदमनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकप्रथमसंहननसमचतुरस्रसंस्थानमनुष्यानुपूर्वीसुखगतित्रस-चतुष्कसुभगसुस्वरादेयपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपा एकोनविंशतिरध्रुवबन्धिप्रकृतयश्चेति ॥१२०५॥

अधुना सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनां प्रतिपादयितुमाह–

सासाणे अडभागा तिरिदुगणीआणुरालियदुगस्स ।
पणभागा परिपुट्ठा बारस चालीससेसाण ॥१२०६॥

(प्रे०) 'सासाणे' इत्यादि, सास्वादनमार्गणायां तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रलक्षणस्य प्रकृतित्रयस्याऽवन्धकैरष्टौ भागाः स्पृष्टाः, मार्गणायामस्यामेतत्प्रकृत्यवन्धकानां देवानां गमनागमनक्षेत्रस्याऽष्टरज्जुप्रमाणत्वात् । 'उरालिय' इत्यादि, औदारिकद्विकस्याऽवन्धकैः पञ्चभागाः स्पृष्टाः, यतो मार्गणायामस्यामेतत्प्रकृतिद्वयावन्धकानां देवप्रायोग्यप्रकृतिवन्धकानां मुख्यतया तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाणां सहस्रारकल्पं यावदुत्पत्तिसंभवात् , तच्च क्षेत्रं पञ्चरज्जुप्रमाणमस्ति । 'बारस' इत्यादि, उक्तशेषचत्वारिंशत्प्रकृतीनामवन्धकैर्द्वादश भागाः परिस्पृष्टाः, तदेवम्—एतस्यां मार्गणायां शेषप्रकृतीनामवन्धका जीवाः षष्ठनरकात्तिर्यग्लोकं यावदुत्पद्यन्ते, तिर्यग्लोकत ऊर्ध्वं पुनर्बादरैकेन्द्रियत्वेनेषत्प्राग्भारपृथिव्यामुत्पद्यन्ते, उभयमपि समुदितं क्षेत्रं द्वादशरज्जुप्रमाणमस्ति। ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं स्त्रीपुरुषवेदद्वयं देवमनुष्यगतिद्वयं वैक्रियद्विकं प्रथमादिसंहननपञ्चकं प्रथमादिसंस्थानपञ्चकं देवमनुष्यानुपूर्वीद्वयं खगतिद्वयं स्थिरषट्कमस्थिरषट्कमुद्योतमुच्चैर्गोत्रं चेति चत्वारिंशच्छेषप्रकृतयः ॥१२०६॥

साम्प्रतमसञ्ज्ञिमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यवन्धकानां स्पर्शनां संचिन्तयन्नाह

अमणे असखभागो जगस्स पुट्ठो उरालियस्स भवे ।
फुसिओऽत्थि सव्वलोगो सेसाण पचसट्ठीए ॥१२०७॥

(प्रे०) 'अमणे' इत्यादि, असंज्ञिमार्गणायामौदारिकशरीरनाम्नोऽवन्धका जगतोऽसंख्येयतमभागं स्पृष्टवन्तः,तद्यथा—मार्गणायामस्यामेतत्प्रकृत्यवन्धका वैक्रियशरीरनाम्नो वन्धका वर्तन्ते, ते पुनरिह तिर्यक्पञ्चेन्द्रिया विज्ञातव्याः, ते यदि नरके जायन्ते तर्हि प्रथमनरक एव, यदि च देवलोके जायन्ते, तर्हि भवनपतिव्यन्तरयोरेव, उभयमपि क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणमेव विद्यते तादृशं क्षेत्रं ते तत्रोत्पित्सवो मरणसमुद्घातावसरे कृतात्मप्रदेशदण्डैः परिस्पृशन्ति । 'फुसिओ' इत्यादि, एतत्प्रकृत्यतिरिक्तानां पञ्चषष्टिप्रकृतीनामवन्धकैः सर्वो लोकः स्पृष्टः, सूक्ष्माणामपि तदवन्धकत्वात् । इमाश्च ताः शेषप्रकृतयः-वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कानुपूर्वीचतुष्कखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासगोत्रद्वयरूपाः पञ्चषष्टिरिति । इदन्त्ववधेयम्-अत्र सूक्ष्मसम्परायसंयममार्गणायामवन्धकानां स्पर्शना नोक्ता, कासाञ्चिदपि प्रकृतीनामवन्धकानामभावादिति ॥१२०७॥ तदेवमायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यवन्धकानां स्पर्शनाऽभिहिता ।

साम्प्रतमायुष्ककर्मवन्धकानां स्पर्शनां मार्गणासु प्रदर्शयन्नाह

तिरिये एगिंदियपणकायणिगोएसु सव्वसुहमेसुं ।
कायोरालदुगेसुं णपुंसगे चउकसायेसुं ॥१२०८॥
अण्णाणदुगे अजए अचक्खुदसणतिअसुहलेसासुं ।
भवियेयरमिच्छेसुं असण्णिआहारगेसुं च ॥१२०९॥

सप्पाउग्गाऊणं फुसणा ओघव्व बंधगाण भवे ।
अड भागा परिपुट्ठा देवसहस्सारअंतविउव्वेसु ॥१२१०॥

(प्रे०) 'तिरिये' इत्यादि, तिर्यगोघैकेन्द्रियौघपृथ्वीकायौघाऽप्कायौघतेजःकायौघवायुकायौघवनस्पतिकायौघसाधारणवनस्पतिकायौघरूपास्वष्टसु मार्गणासु ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेन तिसृषु सूक्ष्मैकेन्द्रियमार्गणासु तिसृषु सूक्ष्मपृथ्वीकायमार्गणासु तिसृषु सूक्ष्माप्कायमार्गणासु तिसृषु सूक्ष्मतेजःकायमार्गणासु तिसृषु सूक्ष्मवायुकायमार्गणासु तिसृषु च सूक्ष्मसाधारणवनस्पतिकायमार्गणासु काययोगौघौदारिककाययोगौदारिकमिश्रकाययोगनपुंसकवेदक्रोधमानमायालोभमत्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽसंयमाऽचक्षुर्दर्शनकृष्णनीलकापोतलेश्याभव्याऽभव्यमिथ्यात्वाऽसंज्ञ्याहारकरूपासु विंशतिमार्गणासु च स्वप्रायोग्यायुष्कबन्धकानां स्पर्शनौघवद् वेदयितव्या । तद्यथा–तिर्यगोघकाययोगौघौदारिककाययोगनपुंसकवेदक्रोधमानमायालोभमत्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽसंयमाचक्षुर्दर्शनकृष्णनीलकापोतलेश्याभव्याभव्यमिथ्यात्वासंज्ञ्याहारकरूपासु विंशतिमार्गणासु चतुर्णामप्यायुषां बन्धका वर्तन्ते, तेषु ये नरकदेवायुषोर्बन्धका वर्तन्ते तेषां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणा वर्तते, तिर्यग्मनुष्यायुषोर्बन्धका ये वर्तन्ते, तेषां पुनः स्पर्शना सकललोकप्रमाणा वर्तते, तेजःकायौघवायुकायिकौघमार्गणयोः तिसृषु सूक्ष्मतेजःकायमार्गणासु तिसृषु च सूक्ष्मवायुकायिकमार्गणासु तिर्यगायुषोर्ये बन्धकाः शेषप्रकृतमार्गणासु च तिर्यग्मनुष्यायुष्कयोर्बन्धका वर्तन्ते, तेषां स्पर्शना सकललोकप्रमाणाऽस्ति । भावना पुनरिहौघतोऽवसेया । 'अड' इत्यादि, देवौघभवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कसौधर्मैशानसनत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलोकलान्तकशुक्रसहस्रारवैक्रियकाययोगरूपासु त्रयोदशमार्गणासु तिर्यग्मनुष्यायुष्कयोर्बन्धकैरष्टौ भागाः स्पृष्टाः, तेषां गमनागमनक्षेत्रस्याऽष्टरज्जुप्रमाणत्वात् । इदमत्र हृदयम्–आयुर्बन्धकानां स्पर्शनाविचारे देववर्जगतित्रयस्य स्वस्थानक्षेत्रमेव मृग्यम्, आयुर्बन्धकाले मरणाभावेन मरणसमुद्घातक्षेत्रस्याप्राप्यमाणत्वात् देवमार्गणासु तथा यासु मार्गणासु देवैरधिकस्पर्शना प्राप्यते, तत्र देवानां गमनागमनक्षेत्रस्य प्राधान्यमवगन्तव्यमिति ॥१२०८-१०॥

साम्प्रतमानतादिमार्गणाचतुष्के शुक्ललेश्यायां चायुर्बन्धकानां स्पर्शनामाह

फुसिआ णराउगस्स छ भागा चउआणयाइसुक्कासु ।
सुक्काअ असंखंसो जगस्स छुहिओ सुराउस्स ॥१२११॥

(प्रे०) 'फुसिआ' इत्यादि, आनतप्राणतारणाच्युतशुक्ललेश्यालक्षणासु पञ्चसु मार्गणासु मनुष्यायुष्कस्य बन्धकैः षड् भागाः स्पृष्टाः, यस्मान्मार्गणास्वासु वर्तमानानां देवानां गमनागमनक्षेत्रस्य षड्रज्जुप्रमाणत्वात् । 'सुक्काअ' इत्यादि, शुक्ललेश्यामार्गणायां देवायुषो बन्धकैर्जगतोऽसंख्येयतमभागः स्पृष्टः, यस्मादत्र देवायुष्कस्य बन्धका मनुष्या एव वर्तन्ते, तेषां च स्वस्थानक्षेत्रं लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणमस्ति ॥१२११॥

अथ द्विपञ्चेन्द्रियादिमार्गणासु प्रकृतमाह--

दुपणिदियतसपणमणवयइत्थिपुरिसविभंगचक्खूसु ।
सासायणसण्णीसु दोण्होधव्व अमरव्व दोण्ह भवे ॥१२१२॥ (गीति)

(प्रे०) 'दुपणिदि' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौघपर्याप्तत्रसमनःसामान्य-सत्यमनोऽसत्यमनः सत्यासत्यमनोऽसत्याऽमृषामनो-वचनसामान्यसत्यवचनाऽसत्यवचनसत्या-सत्यवचनाऽसत्यामृषावचनस्त्रीवेदपुरुषवेदविभङ्गज्ञानचक्षुर्दर्शनसास्वादनसम्यक्त्वसंज्ञिरूपासु विंशति मार्गणासु नरकदेवायुषोर्बन्धकाना स्पर्शनौघवत्, तिर्यग्मनुष्यायुष्कयोश्च बन्धकाना स्पर्शना देवौघमार्गणावज्ज्ञातव्या, तदेवम्–नरकदेवायुष्कबन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणा वर्तते, यतो नरकदेवायुषी तिर्यक्पञ्चेन्द्रिया मनुष्याश्च बध्नन्ति, तेषां च क्षेत्र स्वस्थानापेक्षया लोका-ऽसंख्येयतमभागप्रमाणमस्ति, न तु मरणसमुद्घातापेक्षया, आयुर्बन्धानन्तरमेव मरणसमुद्घातस्य भावात् । तिर्यग्मनुष्यायुष्कबन्धकानां स्पर्शनाऽष्टभागप्रमाणा विद्यते, तद्यथा–एतदायुष्कद्वयस्य बन्धका देवनारका विद्यन्ते, इहोक्तप्रमाणा स्पर्शना देवानपेक्ष्यैव समुपलभ्यते, तेषां गमनागमन-क्षेत्रस्याऽष्टरज्जुप्रमाणत्वात् नारकानपेक्ष्य तु नैवंविधा स्पर्शना प्राप्यते, देववत्तेषां गमनागमनस्या-ऽसंभवात् ॥१२१२॥

अथ त्रिज्ञानादिमार्गणास्वायुर्बन्धकानां स्पर्शनामाह

भागाऽट्ठ तिणाणावहिसम्मखइअवेअगेसु परिफुसिओ ।
मणुसाउस्सियरस्स य असखभागो जगस्स भवे ॥१२१३॥

(प्रे०)'भागा' इत्यादि, मतिज्ञानश्रुतज्ञानाऽवधिज्ञानावधिदर्शनसम्यक्त्वौघक्षायिकसम्यक्त्व-क्षयोपशमसम्यक्त्वरूपासु सप्तसु मार्गणासु मनुष्यायुष्कस्य बन्धका अष्टौ भागान् स्पृशन्ति स्म, मार्ग-णास्वासु मनुष्यायुष्कबन्धकानां देवानां गमनागमनक्षेत्रस्याऽष्टरज्जुप्रमाणत्वात् । 'इयरस्स' इत्यादि, मार्गणास्वासु देवायुष्कस्य बन्धकैः संख्येयतमभागो जगतः संस्पृष्टः, भावनौघवत्कार्या ॥१२१३॥

अथ तेजोलेश्यापद्मलेश्यामार्गणयोः प्रकृत कथयति

तेउपउमासु भागा अट्ठ तिरिणराउगाण ओधव्व ।
देवाउगस्स अण्णहि सव्वाउगाउगाण खेत्तव्व ॥१२१४॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'तेउ' इत्यादि, तेजोलेश्यापद्मलेश्यामार्गणयोस्तिर्यग्मनुष्यायुषोर्बन्धकैरष्टौ भागाः स्पृष्टाः, एतदायुष्कद्वयबन्धकानामेतन्मार्गणास्थानां देवानां गमनागमनक्षेत्रस्याऽष्टरज्जुप्रमितत्वात् । 'ओधव्व' इत्यादि, देवायुष्कस्य बन्धकानां स्पर्शनौघवद्वेद्या । सा च लोकासंख्यभागप्रमाणा वर्तते, भावना पुनरिहौघवत्कार्या । 'अण्णहि' इत्यादि, इहाभिहितशेषमार्गणासु स्वप्रायोग्यायुषां बन्धकानां स्पर्शना क्षेत्रवदस्ति । ताश्चेमाः शेषमार्गणाः–अष्टौ नरकमार्गणाः, चतस्रस्तिर्यक्पञ्चे-न्द्रियमार्गणाः, चतस्रो मनुष्यमार्गणाः, नवग्रैवेयकपञ्चानुत्तररूपाश्चतुर्दशदेवमार्गणाः, ओघपर्याप्ताऽपर्या-

प्रभेदेन तिस्रो बादरैकेन्द्रियमार्गणाः, विकलमार्गणानवकम्, अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणा चेति त्रयोदशे न्द्रियमार्गणाः। ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेन तिस्रो बादरपृथ्वीकायमार्गणाः, तिस्रो बादराप्कायमार्गणाः, तिस्रो बादरतेजःकायमार्गणाः, तिस्रो बादरवायुकायमार्गणाः, तिस्रः प्रत्येकवनस्पतिकायमार्गणाः, तिस्रो बादरसाधारणवनस्पतिकायमार्गणाः, अपर्याप्तत्रसकायमार्गणा चेत्येकोनत्रिंशतिः कायमार्गणाः, आहारकाहारकमिश्रकाययोगमार्गणाद्वयम्, मनःपर्यवज्ञानमार्गणा, संयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिदेशविरतिरूपाः पञ्च संयममार्गणा चेति सप्ततिरिति। तद्यथा—बादरैकेन्द्रियाणां त्रिषु भेदेषु तिर्यगायुर्बन्धकानां स्पर्शना देशोनलोकमात्रा विज्ञेया, मनुष्यायुर्बन्धकानां च लोकाऽसंख्येयभागमात्रा। बादरवायुकायिकानां त्रिषु भेदेषु तिर्यगायुष्कबन्धकानां देशोनलोकप्रमाणा तथा शेषमार्गणासु स्वप्रायोग्यायुर्बन्धकानां लोकासंख्येयभागप्रमाणाऽवसातव्या। वैक्रियमिश्रकाययोगकार्मणकाययोगाऽपगतवेदाऽकषायकेवलज्ञानसूक्ष्मसम्पराययथाख्यातसंयमकेवलदर्शनोपशमसम्यक्त्वमिश्रसम्यक्त्वानाहारकरूपास्वेकादशमार्गणास्वायुष्ककर्मणां बन्धाऽसंभवेन तद्बन्धकानां स्पर्शनाया विचारो न कृत इति ॥१२१४॥

साम्प्रतं मार्गणास्वायुषामबन्धकानां स्पर्शनामाह

सव्वासु बंधगेहि पुट्ठं सायस्स जत्तिअं खेत्तं।
छुहिअं अबन्धगेहि आऊणं तत्तिअं खेत्तं ॥१२१५॥

(प्रे०) '**सव्वासु**' इत्यादि, सर्वासु मार्गणासु सातवेदनीयस्य बन्धकैर्यावत्प्रमाणं क्षेत्रं स्पृष्टं तावत्प्रमाणं क्षेत्रं स्वप्रायोग्यायुष्काबन्धकैः स्पृष्टम्। तच्च स्वधियैव प्रागुक्तवदनुसन्धेयम्। ननु सातवेदनीयस्य बन्धकानां यावत्क्षेत्रं तदेवायुरबन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रमिति कथने को हेतुरिति चेदुच्यते-आयुरबन्धका मरणसमुद्घातगताः स्वस्थानगताः केवलिसमुद्घातगता गमनागमनेन व्याप्तक्षेत्रगताश्च प्राप्यन्ते, तथैव सातवेदनीयस्याऽपि बन्धकाः प्राप्यन्ते इति कृत्वा ॥१२१५॥

॥ इति श्रीप्रेमप्रभाटीकाविभूषिते बन्धविधाने उत्तरप्रकृतिबन्धे प्रथमाधिकारे एकादशं स्पर्शनाद्वारं समाप्तम् ॥



॥ अथ द्वादशमनेकजीवाश्रितं कालद्वारम् ॥

गतं स्पर्शनाद्वारं साम्प्रतमनेकजीवानाश्रित्य द्वादशस्य कालद्वारस्याऽवसरः, तत्रौघत आदेशतश्च मार्गणास्वुत्तरप्रकृतिबन्धकाऽबन्धकानां कालं निरूपयन्नादावोघतो जघन्योत्कृष्टभेदाभ्यां तमुपदर्शयति

कालोऽत्थि बंधगाणं जहण्णगो णिरयणरसुराऊण ।
भिन्नमुहुत्त जेट्ठो पल्लस्स भवे असंखंसो ॥१२१६॥

(प्रे०) 'कालो' इत्यादि, नरकमनुष्यदेवायुष्कत्रयस्य बन्धकानां कालो जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तमुत्कृष्टतश्च पल्योपमस्याऽसंख्येयतमभागप्रमाणोऽस्ति, भावना पुनरेवम्—अत्राऽयं नियमः—यद् विवक्षितायुष्कबन्धका असङ्ख्येया अप्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशसंख्यातो न्यूना भवेयुस्तर्हि तेषां जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तमुत्कृष्टतश्च पल्योपमाऽसंख्येयतमभागप्रमाणकालपर्यन्तमनवरत प्राप्तिर्भवति, तदनन्तरमेव तेषामन्तर भवतीति तस्मादत्राऽपि प्रकृतायुष्कत्रयस्य बन्धकानामसंख्येयलोकाकाशप्रदेशसंख्यातो न्यूनत्वेन कालोऽभिहितप्रमाण एव । ननु प्रकृतायुष्कत्रयस्य बन्धकानामसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणतो न्यूनत्वं कथमितिचेदाह—यासु गतिषु यावत्संख्याका जीवा वर्तन्ते,तावत्प्रमाणादधिका उत्कृष्टपदेऽपि तद्गतिप्रायोग्यायुष्कबन्धका अपरगतिषु नोपलभ्यन्ते, परमल्पा एव, देवनरकमनुष्यगतिषु जीवानां संख्या नाऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणा, किन्तु ततोऽल्पैव, प्रतिपादिता च देवनरकमनुष्यजीवानां संख्या प्रज्ञापनावृत्तौ—मनुष्या हि उत्कृष्टपदेऽपि श्रेण्यसंख्येयभागगतप्रदेशराशिप्रमाणा लभन्ते । तेभ्यो नैरयिका असङ्ख्येयगुणा, अङ्गुलमात्रक्षेत्रप्रदेशराशेः सम्बन्धिनि प्रथमवर्गमूले द्वितीवर्गमूलेन गुणिते यावान् प्रदेशराशिर्भवति, तावत्प्रमाणासु घनीकृतस्य लोकस्यैकप्रादेशिकिषु श्रेणिषु यावन्तो नभ प्रदेशास्तावत्प्रमाणत्वात्, तेभ्यो देवा असंख्येयगुणा व्यंतराणा ज्योतिष्काणां च प्रत्येक प्रतराऽसङ्ख्येयभागवर्तिश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात् । तस्मादुक्तायुष्कत्रयबन्धकानां कालो द्वैविध्येनेयत्प्रमाणोऽभिहित इति । ननु प्रागपि भवद्भिः कालद्वारं निरूपितमत्राऽपि तदेव निरूप्यते,तर्हि कः प्रतिविशेषोऽनयोर्मध्य इति चेद्, उच्यते, पूर्वं कालद्वारनिरूपणावसरे विवक्षितप्रकृतीनां बन्धकस्याऽबन्धकस्य चैकं जीवमाश्रित्य कालोऽभिहितः, इह पुनः सकलजीवान् प्रतीत्य सोऽभिधीयत इति ॥१२१६॥

अथ शेषप्रकृतीना बन्धकानां सर्वप्रकृतीनामबन्धकानां च तमाह

सेसाणं पयडीणं विण्णेयो बंधगाण सव्वद्धा ।
हवए अबंधगाण सव्वद्धा सव्वपयडीणं ॥१२१७॥

(प्रे०) 'सेसाणं' इत्यादि, उपर्युक्तायुष्कत्रयवर्जानां शेषाणां सप्तदशाधिकशतमतिज्ञानावरणीयप्रमुखप्रकृतीनां बन्धकानां सर्वाद्धा कालो विज्ञेयः, अनेकेषां जीवानां तद्बन्धविधायित्वेन सर्वदा सद्भावात् । 'हवए' इत्यादि, विंशत्युत्तरशतप्रकृत्यबन्धकानां सर्वाद्धा कालोऽस्ति, सिद्धादिजीवाना सदैव तदबन्धकत्वेन विद्यमानत्वात् ॥१२१७॥

अधुनायुष्ककर्मवर्जशेषोत्तरप्रकृतिबन्धकानां जघन्योत्कृष्टाभ्यां कालमादेशतो मार्गणासु कथयितुकाम आह

धुवबंधिउरालाण अपज्जमणुसम्मि बन्धगाण लहू ।
खुड्डागभवोऽत्थि समयो सेसाणं आउवज्जाण ॥१२१८॥
पल्लासंखियभागो सव्वाण गुरू ।

(प्रे०) 'धुव' इत्यादि, अपर्याप्तमनुष्यमार्गणायां सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनाम्नश्च बन्धकानां जघन्यकालः क्षुल्लकभवप्रमितोऽस्ति, तदेवम्–एक एवाऽपर्याप्तमनुष्योऽथवाऽनेकेऽप्यपर्याप्तमनुष्या जघन्यतयः क्षुल्लकभवप्रमितायुष्का युगपदुत्पद्य स्वजघन्यायुष्कं परिपाल्य मृता भवन्ति, तदनन्तरं चैतन्मार्गणायां न कोऽपि जीवोऽवतिष्ठते, तदेतत्प्रकृतिबन्धकानामेतावान् जघन्यकालो लभ्यते ।

'समयो' इत्यादि, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानषट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासगोत्रद्विकरूपाणामेकोनषष्टिशेषप्रकृतीनां बन्धकानां जघन्यकालः समयप्रमाणः, घटना पुनरेवं कर्तव्या–प्रस्तुतमार्गणायामेकादिसंख्याका परिमितजीवाः स्युः, ते चासां समयमेकं बन्धं कृत्वा प्रतिपक्षप्रकृतीनां बन्धं कुर्वन्ति, तदा समयप्रमाणकालः सूपपद्यते ।

'पल्ला' इत्यादि, अपर्याप्तमनुष्यमार्गणायामायुष्ककर्मविरहितानां सप्तोत्तरशतप्रकृतीनां बन्धकानामुत्कृष्टकालः पल्योपमाऽसंख्येयतमभागप्रमाणो बोद्धव्यः, यतो मार्गणाया अस्या नानाजीवाश्रितोत्कृष्टकायस्थितिरपि पल्योपमाऽसंख्येयतमभागप्रमितकालप्रमाणा वर्तते, तदनन्तरमवश्यमेव मार्गणाविरहो भवति ।

मार्गणासु नानाजीवाश्रितबन्धकालविषये भावनासौकर्यार्थं लाघवार्थं च काश्चिद् व्याप्तयो दर्श्यन्ते तद्यथा

[१] (i) या मार्गणा कादाचित्की तथा यस्यामेकादिजीवानामपि प्राप्तिर्भवति, तदा तस्यां मार्गणाया ध्रुवबन्धिप्रकृतीना मार्गणाप्रायोग्यध्रुवकल्पानां च जघन्यकालो मार्गणाजघन्यकायस्थितिप्रमाणस्तथा तासामेव प्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालो मार्गणोत्कृष्टकायस्थितिप्रमाणोऽवाप्यते । किन्तूपशमसम्यक्त्वमार्गणायामन्तर्मुहूर्तप्रमाणः प्राप्यत इति विशेषः ।

(ii) तत्रैवाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जघन्यकालः समयस्तथोत्कृष्टबन्धकालो मार्गणोत्कृष्टकायस्थितिप्रमाणः प्राप्यते, तत्रापि जिननाम्नो बन्धप्रायोग्यगुणस्थानकजघन्योत्कृष्टकालप्रमाणो बन्धकालः प्राप्यते ।

[२] (i) यासां मार्गणानामध्रुवत्वेऽपि यदा तत्र जीवपरिमाणं जघन्यतोऽपि शतशः प्रमाणं मह

स्यादिप्रमाणं वा विद्यते, तदा तत्र बध्यमानानां ध्रुवाध्रुवप्रकृतीनां बन्धकालो जघन्यतो जघन्यकायस्थितिप्रमाणः, उत्कृष्टतस्तूत्कृष्टकायस्थितिप्रमाणोऽवाप्यते ।

(ii) परं तत्र यदि जघन्यपदे जीवसंख्याया निर्णयो न भवेत्, तदा तत्र बध्यमानाध्रुवप्रकृतीनां कालमानं जघन्यतो निर्णयपूर्वकं वक्तुं न पार्यते, तस्माद् ग्रन्थकारस्तत्र स्वयमूह्यमित्यादिना कथयिष्यते ।

[३] यत्र ध्रुवमार्गणायां यदि कासाञ्चित्प्रकृतीनां गुणप्रत्ययेन कादाचित्कबन्धस्तत्र तासां प्रकृतीनां जघन्यबन्धकालो मार्गणागततद्गुणस्थानकजघन्यकालप्रमाणः प्राप्यते, उत्कृष्टतस्तु तद्गुणस्थानकस्यानेकजीवाश्रितनिरन्तरज्येष्ठकालप्रमाणः प्राप्यते, शेषप्रकृतीनामनेकजीवाश्रितकालः सर्वाद्धा प्राप्यते ॥१२१८॥

साम्प्रतमौदारिकमिश्रमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां द्विविधमपि कालमुपदर्शयन्नाह

. . .. दुहा उरलमीसे ।
सुरविउव्वदुगजिणाण भिन्नमुहुत्तमियराण सव्वद्धा ॥१२१९॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'दुहा' इत्यादि, औदारिकमिश्रमार्गणायां देवद्विकवैक्रियद्विकजिननामलक्षणस्य प्रकृतिपञ्चकस्य बन्धकानां जघन्योत्कृष्टाभ्यामन्तर्मुहूर्तप्रमाणः कालो बोद्धव्यः, तद्यथा—मार्गणायामस्यां देवनारकभवाभ्यां च्युत्वा ये सम्यग्दृष्टयो देवनारका मनुष्यगतावुत्पद्यमानाः सन्तः प्रकृतिपञ्चकमेतद् बध्नन्ति, तथा मनुष्यभवात्कालं कृत्वा क्षायिकसम्यग्दृशः कृतकरणा वा जीवा युगलिकतिर्यग्भवे मनुष्यभवे चोत्पद्यमानाः सन्तोऽबध्नन्ति, ते तु जघन्यत उत्कृष्टतश्चान्तर्मुहूर्तं यावदेवास्यां मार्गणायां विद्यन्ते, अतः प्रकृतिपञ्चकस्याऽस्य द्विधा बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाण एवोक्तः । 'इयराण' इत्यादि; उक्तप्रकृतिपञ्चकमृते शेषप्रकृतीनां बन्धकाः सर्वाद्धायां प्राप्यन्ते, मार्गणाया ध्रुवत्वे सति शेषसर्वप्रकृतीनामनेकजीवानां सर्वदा बन्धकत्वादिति । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिन्यस्तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयजातिपञ्चकौदारिकद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयविहायोगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासगोत्रद्वयरूपा अध्रुवबन्धिन्यः षष्टिरिति सर्वसङ्ख्यया सप्तोत्तरशतप्रकृतयः ॥१२१९॥

इदानीं वैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां द्विविधतया कालं कथयितुकाम आह

धुवबंधिउरालियजिणपरघाऊसासबायरतिगाण ।
वेउव्वमीसजोगे भिन्नमुहुत्तं लहू जेयो ॥१२२०॥
सेसाण होइ समयो जिणस्स जेट्ठो भवे मुहुत्तंतो ।
पल्लासंखियभागो विण्णेयो सेसपयडीण ॥१२२१॥

(प्रे०) 'धुव' इत्यादि, वैक्रियमिश्रमार्गणायां मतिज्ञानावरणीयादिसप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृ-

तीनामौदारिकशरीरतीर्थकृन्नामपराघातोच्छ्वासबादरत्रिकरूपस्य च प्रकृतिसप्तकस्य बन्धकानां जघन्यकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो ज्ञेयः, मार्गणाया अस्या जघन्यतयाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणकायस्थितिमत्त्वात् । आसां बन्धस्यापरावर्तमानत्वाच्च । **'सेसाण'** इत्यादि, अभिहितशेषप्रकृतिबन्धकानां जघन्यतया समयप्रमाणः कालः,तदित्थम्–शेषप्रकृतिषु काश्चित् प्रकृतयः परावर्तमानाः सन्ति, काश्चिच्चाध्रुवबन्धिन्यः, अतः प्रकृतमार्गणागतजीवाः समयमेकं जघन्यतया शेषप्रकृतीर्बद्ध्वा युगपद् मार्गणाविच्छेदं विदधति, तदा भणितकालः प्राप्तो भवति । अथवा मार्गणाया आद्यसमय एकोऽनेके वा युगपदुत्पन्नाः सन्तः शेषप्रकृतिभ्यो विवक्षितप्रकृतीर्बद्ध्वा द्वितीयसमये तद्विरोधिप्रकृतीर्बध्नन्ति, तदा तथा मध्येऽपि विवक्षितप्रकृतीनां समयमेकं बन्धं कृत्वा तद्विरोधिप्रकृतीर्बध्नन्ति, तदाऽपि तासां बन्धकानां प्रोक्तप्रमाणकालः प्राप्यते । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः–वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयैकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजातिद्वयौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानषट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रसस्थिरपट्कस्थावराऽस्थिरषट्कातपोद्योतगोत्रद्वयरूपा अष्टचत्वारिंशदिति । **'जिणस्स'** इत्यादि, वैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणायां जिननाम्नो बन्धकानां कालः प्रकृष्टतयाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो वेदितव्यः,तद्यथा जिननाम्नो बन्धकतया सम्यग्दृष्टिमनुष्येभ्य आगताः केचिदेव सम्यग्दृष्टिदेवनारकाः, तेषां च संख्यातत्वेन प्रस्तुतमार्गणायां तेषां निरन्तरप्राप्तिरन्तर्मुहूर्तादधिका नैव विद्यतेऽतो जिननामबन्धकालस्य उत्कृष्टतोऽप्यन्तर्मुहूर्तमात्रत्वमिति । 'पल्ला' इत्यादि, जिननामकर्मवर्जानामेकोत्तरशतप्रकृतिबन्धकानामुत्कृष्टकालः पल्योपमस्यासङ्ख्येयतमभागप्रमाणोऽस्ति, मार्गणाया अस्या उत्कृष्टकायस्थितेस्तावत्प्रमाणत्वात् ॥१२२०-२१॥

साम्प्रतमाहारककाययोगसूक्ष्मसम्परायसंयममार्गणयोरायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां जघन्योत्कृष्टाभ्यां कालं निर्देष्टुमाह

आहारगसुहमेसुं सप्पाउग्गाण सव्वपयडीणं ।
समयो अत्थि जहण्णो भिन्नमुहुत्तं भवे जेट्ठो ॥१२२२॥

(प्रे०) 'आहारग' इत्यादि, आहारककाययोगसूक्ष्मसम्परायसंयममार्गणयोः स्वप्रायोग्याणां सर्वासां प्रकृतीनां बन्धकानां जघन्यकालः समयप्रमाणः, उत्कृष्टश्च कालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणः, यतो मार्गणे इमे जघन्यतः समयप्रमाणकायस्थितिके, उत्कृष्टतश्चाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणकायस्थितिके । आहारकमार्गणायां स्वप्रायोग्यप्रकृतयश्चेमाः--मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कलक्षणं प्रकृतिषोडशकं विहाय मतिज्ञानावरणीयाद्येकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वीशुभखगतित्रसदशकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासजिननामोच्चैर्गोत्ररूपा एकत्रिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतयः । सूक्ष्मसम्परायसंयममार्गणायां चेमाः–ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्काऽन्त-

रायपञ्चकसातवेदनीययशःकीर्त्युच्चैर्गोत्ररूपाः सप्तदशप्रकृतय इति ॥१२२२॥

इदानीमाहारकमिश्रमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां कालमुभयथा संचिन्तयन्नाह

आहारमीसजोगे समयो सायाइतेरसण्ह लहू ।
जेट्ठो भिन्नमुहुत्तं दुविहो वि हवेज्ज सेसाण ॥१२२३॥

(प्रे०) '**आहारमीस**' इत्यादि, आहारकमिश्रमार्गणायां सातवेदनीयाऽसातवेदनीयहास्यरतिशोकाऽरतिस्थिराऽस्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिरूपाणां द्वादशानां प्रकृतीनां जिननाम्नश्च बन्धकानां जघन्यकालः समयप्रमितः, सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनां परावर्तमानत्वात्, जिननाम्नश्च प्रकृतमार्गणाचरमसमयेऽपि नूतनबन्धसम्भवात् । उत्कृष्टतश्च प्रकृतत्रयोदशप्रकृतिबन्धकानां कालोऽन्तमुहूर्तप्रमाणः, मार्गणाया अस्या उत्कृष्टतोऽन्तमुहूर्तप्रमाणकायस्थितिमत्त्वात् । '**दुविहोवि**' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतिबन्धकानां जघन्योत्कृष्टाभ्यां कालोऽन्तमुहूर्तप्रमाणोऽस्ति । प्रकृतमार्गणाजघन्योत्कृष्टकायस्थित्योस्तावत्प्रमाणत्वात् शेषप्रकृतीनां बन्धस्य ध्रुवतया प्राप्यमाणत्वाच्च । ताश्चेमाः शेषाः प्रकृतयः—मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृतिषोडशकं विहाय शेषा एकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः पुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वीसुखगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिवर्जत्रससप्तकपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपा अष्टादशप्रकृतयश्चेति ॥१२२३॥

साम्प्रतं कार्मणकाययोगाऽनाहारकमार्गणाद्वय आयुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां द्विविधकालं चिकथयिषुराह

कम्माणाहारेसु देवविउवदुगजिणाण होइ लहू ।
समयो संखियसमया जेट्ठो सेसाण सव्वद्धा ॥१२२४॥

(प्रे०) '**कम्मा**' इत्यादि, कार्मणकाययोगानाहारकमार्गणयोर्देवद्विकवैक्रियद्विकजिननामलक्षणस्य प्रकृतिपञ्चकस्य बन्धकानां जघन्यकालः समयप्रमितोऽस्ति । मार्गणयोरनयोः प्रकृतिपञ्चकस्याऽस्य बन्धकाः सम्यग्दृष्टय एव वर्तन्ते । अत्र चैकः सम्यग्दृष्टिरनेके वा सम्यग्दृष्टयो जीवा स्युः, ते च समकमेव समयमेकं प्रकृतिपञ्चकमेतद् बद्ध्वा मार्गणां परावर्तयन्ति, तदा समयप्रमाणकालस्तेषां समुपलब्धो भवति । '**संखिया**' इत्यादि, मार्गणयोरनयोरेतत्प्रकृतिपञ्चकबन्धकानामुत्कृष्टकालः संख्यातसमयप्रमाणः, देवद्विकवैक्रियद्विकजिननामबन्धकतया प्रस्तुतमार्गणयोः सम्यग्दृष्टिमनुष्येभ्य आगताः सम्यग्दृष्टिमनुष्येभ्योऽन्यत्रोत्पद्यमाना वा केचित्सम्यग्दृष्टयः, तेषां च संख्यातत्वेनात्र निरन्तरप्राप्तावस्थानं संख्यातसमयान् यावद्विद्यते, अतः प्रकृतिपञ्चकस्य बन्धकालः प्रकृष्टतोऽपि संख्यातसमयप्रमाण एवोक्तः । '**सेसाण**' इत्यादि, एतत्प्रकृतिपञ्चकभिन्नशेषप्रकृतिबन्धकाना कालः सर्वाद्धा वर्तते, मार्गणयोरनयोर्ध्रुवत्वेन जीवानां सर्वदैव तद्बन्धकत्वेनोपलभ्यमानत्वात्, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयजातिपञ्चकौदारिकद्विकसं-

स्थानषट्कसंहननषट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकपराघातोच्छ्वासातपोद्योतगोत्रद्वयरूपाः षष्टिप्रकृतयश्चेति ॥१२२४॥

सम्प्रत्यपगतवेदमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानामुभयथा कालं विचारयन्नाह

गयवेए सव्वद्धा हवेज्ज सायस्स सेसपयडीण ।
समयो अत्थि जहण्णो जेट्ठो हवए मुहुत्तंतो ॥१२२५॥

(प्रे०) 'गयवेए' इत्यादि, अपगतवेदमार्गणायां सातवेदनीयस्य बन्धकाः सदैव भवन्ति, मार्गणायामस्यां सातवेदनीयबन्धविधायिनां भवस्थकेवलिनामनवरतं प्राप्यमाणत्वात् । 'सेस' इत्यादि, सातवेदनीयव्यतिरिक्तप्रकृतिबन्धकानां जघन्यकालः समयप्रमाणोऽस्ति, तद्यथा-मार्गणायामस्यामेकोऽनेके वा जीवाः समकमेव समयमेकं शेषप्रकृतीर्बद्ध्वा तदूर्ध्वं कालं कुर्वन्ति, तदा शेषप्रकृतिबन्धकानां समयप्रमाणः कालोऽवाप्यते । उत्कृष्टतश्चाऽन्तमुहूर्तप्रमाणकालोऽवसेयः । तद्यथा–मार्गणायामस्यामेकोऽनेके वा जीवा आगत्याऽन्तमुहूर्तादनु युगपदेव कालं कुर्वन्ति, मार्गणान्तरं वा व्रजन्ति, बन्धविच्छेदं वाऽवाप्नुवन्ति, तदेयत्कालोऽवाप्यते । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः–ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्काऽन्तरायपञ्चकसंज्वलनचतुष्कयशःकीर्त्युच्चैर्गोत्ररूपा विंशतिरिति ॥१२२५॥

अथ छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां जघन्योत्कृष्टलक्षणं कालं संदर्शयन्नाह

छेए सयं लहू पणरससायाईण सड्ढदुसयद्दा ।
सेसाण गुरू अयरा-ऽड्ढकोडिकोडी उ सव्वेसिं ॥१२२६॥

(प्रे०) 'छेए' इत्यादि, छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणायां सातवेदनीयाऽसातवेदनीयहास्यरतिशोकारतिस्थिराऽस्थिरशुभाऽशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिजिननामाहारकद्विकलक्षणानां पञ्चदशप्रकृतीनां बन्धकानां जघन्यकालः स्वयमूह्यः । छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणायां जघन्यपदे यदि जीवा बहवः स्युस्तदा नानाजीवापेक्षया यावती तेषां कायस्थितिस्तावत्प्रमाणो जघन्यकालः सातवेदनीयादिप्रकृतिबन्धकानां भवति, यदि पुनरेकादिविंशतिप्रमाणाः स्युस्तदा तु सर्वे युगपत् सातवेदनीयमसातवेदनीयं वा बद्ध्वेतरद् बध्नन्ति, तदा तासां प्रकृतीनां बन्धकानां जघन्यकालः समयादिप्रमाणो भवितुमर्हति, किन्तु तद्विषयकविशेषपरिमाणनिर्णयाभावादुक्तं 'सय' ति स तु स्वयमेवागमानुसारेण भावनीय इति । 'सड्ढदु०' इत्यादि, उक्तशेषस्वप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकानां जघन्यकालः 'सार्धद्विशताब्दः' पञ्चाशदधिकद्विशतवर्षप्रमाणोऽवसातव्यः, मार्गणाया अस्या जघन्यत इयत्प्रमाणकायस्थितिमत्त्वात् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः--ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयागुरुलघूपघातनिर्माणवर्णचतुष्काऽन्तरायपञ्चकरूपा एकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिन्यः, पुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वीसुखगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिवर्जत्रससप्तकपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाश्चाष्टादशाध्रुवबन्धिन्य इति । 'गुरू' इत्यादि, स्वप्रायोग्याणां सर्वासां

प्रकृतीनां बन्धकानामुत्कृष्टकालोऽर्धकोटिकोटिसागरोपमाणि, उत्कृष्टत इयत्प्रमाणकायस्थितिमत्त्वादस्या मार्गणायाः ॥१२२६॥

साम्प्रतं परिहारविशुद्धिसंयममार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां कालमुभयविधया कथयन्नाह

सयमुज्झो परिहारे पणरससायाइगाण सेसाणं ।
वीसद्दपुहुत्तमणू सव्वाण गुरू दुपुव्वकोडतो ।१२२७। (गीति.)

(प्रे०) 'सयमुज्झो' इत्यादि, परिहारविशुद्धिसंयममार्गणायां सातवेदनीयाऽसातवेदनीयहास्यरतिशोकाऽरतिस्थिराऽस्थिरशुभाऽशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिजिननामाहारकद्विकरूपाणां पञ्चदशप्रकृतीनां बन्धकानां जघन्यकालः स्वयमूह्यः, अत्र भावना छेदोपस्थापनीयमार्गणानुसारेण स्वयं समधिगम्या । शेषप्रकृतीनां जघन्यकालो विंशतिवर्षपृथक्त्वप्रमाणः, प्रकृतमार्गणाजघन्यकायस्थितेस्तावत्प्रमाणत्वात्, शेषप्रकृतीनां बन्धस्य ध्रुवत्वाच्च । सर्वप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालो देशोनपूर्वकोटिद्वयप्रमाणः, मार्गणाया अस्या उत्कृष्टकायस्थितेस्तावत्प्रमाणत्वात् ॥१२२७॥

इदानीमुपशमसम्यक्त्वमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानामुभयथा कालं विचारयन्नाह--

बारससायाईणं सुरविउवाहारजुगलपयडीण ।
समयो लहू उवसमे सेसाण भवे मुहुत्तंतो ॥१२२८॥
तित्थाहारदुगाणं भिन्नमुहुत्तं गुरू मुणेयव्वो ।
पल्लासंखियभागो बोद्धव्वो सेसपयडीण ॥१२२९॥

(प्रे०) 'बारस' इत्यादि, उपशमसम्यक्त्वमार्गणायां सातवेदनीयाऽसातवेदनीयहास्यरतिशोकाऽरतिस्थिराऽस्थिरशुभाऽशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिरूपाणां द्वादशप्रकृतीनां देवद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकरूपाणां षण्णां प्रकृतीनां च बन्धकानां जघन्यकालः समयप्रमाणः, तद्यथा—मार्गणायामस्यामेक एव जीवः स्यात्, स चासु प्रकृतिषु सातवेदनीयप्रभृतिप्रकृतिषट्कमथवाऽसातवेदनीयादिप्रकृतिषट्कं बद्ध्वा परावर्तमानतया बध्यमानत्वेन समयानन्तरं तद्विरोधिप्रकृतीर्बध्नाति, तदा समयप्रमाणः कालः प्राप्यते । देवद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकप्रकृतीनां तु समयप्रमाणो जघन्यबन्धकाल उपशमश्रेणेरवरोहकस्य बन्धद्वितीये समये कालं कृत्वा देवतयोत्पन्नस्यापेक्षया बोध्यः । 'सेसाणं' इत्यादि, उक्तप्रकृतिभ्यतिरिक्तानां प्रकृतीनां बन्धकाना जघन्यकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽस्ति, प्रकृतमार्गणाजघन्यकायस्थितेस्तावत्प्रमाणत्वात्प्रकृतीनामासां बन्धस्य ध्रुवत्वाच्च । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कवर्जशेषैकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः, पुरुषवेदमनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननसमचतुरस्रसंस्थानमनुष्यानुपूर्वीसुखगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिवर्जत्रसत्रसकपराघातोच्छ्वासजिननामोच्चैर्गोत्ररूपा विंशतिरध्रुवबन्धिप्रकृतयश्चेति ।

अथ ज्येष्ठकालमानमाह—'तित्थाहार' इत्यादि, जिननामाहारकद्विकात्मकस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धकानां काल उत्कृष्टतयाऽन्तमुहूर्तप्रमाणः, आसां प्रकृतीनां बन्धका मनुष्या वर्तन्ते, जिननाम..: पुनरुपशमश्रेणिगताः कालं कृत्वोत्पद्यमाना देवा अपि, तेषामुपशमसम्यक्त्वस्य समुदितनिरन्तरकालोऽन्तमुहूर्तप्रमाणोऽस्ति, अतः प्रकृतप्रकृतित्रयस्योत्कृष्टबन्धकालो यथोक्तप्रमाण एव । 'पल्ला' इत्यादि, एतदुक्तप्रकृतित्रयं त्यक्त्वा शेषप्रकृतिबन्धकानां प्रकृष्टकालः पल्योपमस्याऽसंख्येयतमभागप्रमाणो वेदयितव्यः,एतन्मार्गणाकायस्थितेरुत्कृष्टतस्तावत्प्रमाणत्वात् ॥१२२८-२९॥

अधुना मिश्रसम्यक्त्वमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां जधन्योत्कृष्टकालं दिदर्शयिषुराह—

बारससायाईण मीसे समयो लहू मुहुत्तंतो ।
सेसाण सव्वेसिं जेट्ठो य पलियअसखसो ॥१२३०॥

(प्रे०) 'बारस' इत्यादि, मिश्रसम्यक्त्वमार्गणायां सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतिबन्धकानां जघन्यकालः समयप्रमाणोऽधिगम्यः, मार्गणायामस्यामेकोऽनेके वा प्राणिनो युगपदेव समायाताः सन्तः सातवेदनीयादिप्रकृतिषट्कमसातवेदनीयादिप्रकृतिषट्कं वा बद्ध्वा समयानन्तरं तद्विरोधिप्रकृतीर्बध्नन्ति, तदा समयप्रमाणकालोऽवाप्यते । 'मुहुत्तंतो'इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकं परिहृत्य शेषाणामेकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां पुरुषवेददेवमनुष्यगतिद्वयपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकवैक्रियद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननसमचतुरस्रसंस्थानदेवमनुष्यानुपूर्वीद्वयसुखगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिवर्जत्रससप्तकपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाणां त्रयोविंशतिप्रकृतीनां च बन्धका अनवरतं जघन्यतयाऽन्तमुहूर्तकालं प्राप्यन्ते, यतो हि मार्गणेयं जघन्यतोऽन्तमुहूर्तप्रमाणकायस्थितिमती वर्तते, तथा प्रकृतमार्गणायामेताः प्रकृतयो न परावर्तन्ते । 'सव्वेसिं' इत्यादि, स्वप्रायोग्यसकलप्रकृतिबन्धकानामुत्कृष्टकालोऽत्र पल्योपमाऽसंख्येयतमभागप्रमाणोऽस्ति, यतो मार्गणाया अस्या उत्कृष्टकायस्थितिः पल्योपमाऽसंख्येयतमभागप्रमिता विद्यते, तदनन्तरमवश्यमेव मार्गणाया विच्छेदो भवति ॥१२३०॥

इदानीं सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां जघन्यत उत्कृष्टतश्च कालं तथा शेषमार्गणासु सर्वाद्धारूपकालमुपदर्शयति

सासाणम्मि जहण्णो समयो सव्वाण होइ उक्कोसो ।
पल्लासंखियभागो सेसासु अत्थि सव्वद्धा ॥१२३१॥

(प्रे०)'सासाणम्मि'इत्यादि, सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायामायुष्ककर्मवर्जशेषस्वप्रायोग्याणां सर्वासां प्रकृतीनां बन्धकानां जघन्यकालः समयप्रमित उत्कृष्टकालश्च पल्योपमाऽसंख्येयतमभागप्रमाणो वर्तते यतो मार्गणेयं जघन्यतः समयप्रमाणकायस्थितिका वर्तते, उत्कृष्टतश्च पल्योपमाऽसंख्येयतमभाग-

प्रमाणकायस्थितिका वर्तते । 'सेसासु' इत्यादि, उक्तशेषमार्गणासु स्वप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाः सर्वाद्धायां भवन्ति, शेषमार्गणानां ध्रुवत्वात् । ताश्चेमाः शेषमार्गणाः—अपर्याप्तमनुष्यवर्जषट्चत्वारिंशद्गतिमार्गणाः, एकोनविंशतिसंख्याकेन्द्रियमार्गणाः, द्विचत्वारिंशत्कायमार्गणाः, पञ्चमनोयोगपञ्चवचनयोगकाययोगौ-घौदारिककाययोगवैक्रियकाययोगरूपास्त्रयोदशयोगमार्गणाः, स्त्रीपुरुषनपुंसकवेदरूपास्तिस्रो मार्गणाः, क्रोधमानमायालोभाऽकषायलक्षणाः पञ्चमार्गणाः, मतिज्ञानश्रुतज्ञानाऽवधिज्ञानमनःपर्यवज्ञानकेवलज्ञान-मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानलक्षणा अष्टौ मार्गणाः, संयमौघसामायिकदेशविरतियथाख्याताऽसंयमा-भिधाः पञ्चमार्गणाः, चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनरूपाश्चतस्रो मार्गणाः, कृष्णादिषड्लेश्यामार्गणाः, भव्याभव्यमार्गणाद्वयम्, सम्यक्त्वौघक्षयोपशमक्षायिकमिथ्यात्वरूपाश्चतस्रः सम्यक्त्वमार्गणाः, संज्ञ्यसंज्ञिमार्गणाद्वयम्, आहारकमार्गणा चेति षट्युत्तरशतमार्गणाः ॥१२३१॥

अथ मार्गणासूत्तरप्रकृतीनामायुष्कर्मवर्जानामबन्धकानां जघन्योत्कृष्टकालं कथयितुकाम आह—

सिमबंधगाण कालो अपज्जणरसासणेसु जाणऽत्थि ।
हस्सो समयो जेट्ठो पल्लस्स असखभागोऽत्थि ॥१२३२॥

(प्रे०) 'सिम' इत्यादि, अपर्याप्तमनुष्यसास्वादनसम्यक्त्वमार्गणयोर्यासां प्रकृतीनामब-न्धकाः प्राप्यन्ते, तेषां जघन्यकालः समयप्रमाणोऽधिगम्यः; तदेवम्—मार्गणयोरनयोरध्रुवबन्धिप्रकृ-तीनां परावर्तमानप्रकृतीनामबन्धका उपलभ्यन्ते, यतः प्रतिपक्षप्रकृतीनां बन्धका विवक्षितप्रकृतीना-मबन्धकतया प्राप्यन्ते, प्रतिपक्षप्रकृतीनां च बन्धकाल एकजीवमाश्रित्याऽनेकजीवानाश्रित्य वा जघ-न्यतया समयप्रमाणोऽस्ति, अतो विवक्षितप्रकृतीनां समयप्रमितोऽबन्धकालः सूपपद्यते । उत्कृष्टतश्च पुनः पल्योपमाऽसंख्येयतमभागप्रमाणकालो ज्ञातव्यः, मार्गणाद्वयस्यैतस्योत्कृष्टकायस्थितेस्तावत्प्रमा-णत्वात् ॥१२३२॥

अधुना मनोमार्गणाद्वये वचनमार्गणाद्वये चक्षुरचक्षुर्दर्शनमार्गणाद्वये संज्ञिमार्गणायामबन्ध-कानां द्वैविध्येन कालं कथयति ।

इगतीसधुवाण लहू दुमणवयणणयणअणयणसण्णीसु ।
समयो भिन्नमुहुत्तं जेट्ठो सेसाण सव्वद्धा ॥१२३३॥

(प्रे०) 'इगतीसा' इत्यादि, सत्यासत्यमनोऽसत्यमनःसत्यासत्यवचनाऽसत्यवचनचक्षुर्दर्शनाऽ-चक्षुर्दर्शनसंज्ञिलक्षणासु सप्तसु मार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काप्रत्या-ख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणचतुष्कलक्षणं प्रकृतिषोडशकं विहाय शेषाणामेकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनाम-बन्धकानां जघन्यकालः समयमानोऽवसातव्यः । भावना पुनरेवम्—मार्गणास्वासु वर्तमाना जीवा उपशमश्रेणिमारुह्य प्रकृतीनामासां बन्धविच्छेदं विधाय समयमेकं च तत्र तथैव स्थित्वा मृत्युमवाप्नु-वन्ति, तदोपशमश्रेणिसत्क एव समयप्रमाणो जघन्यकालस्तदबन्धकतया प्राप्यते । क्षीणमोहान्तानामे-वात्र भावात् श्रेणिं विना त्वत्रत्यासु मार्गणासु प्रकृतीनामासामबन्धका एव न विद्यन्ते । उत्कृष्टतश्च तासां प्रकृतीनामबन्धकानां कालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो ज्ञातव्यः । कुतोऽन्तर्मुहूर्तमेव ? इति चेत् श्रेणिगता-

नामेवैतत्प्रकृत्यबन्धकतया लाभात्, नानाजीवाश्रयश्रेण्युत्कृष्टकालस्याऽप्यन्तर्मुहूर्तमात्रत्वाच, तदुक्तं जीवसमासे–

एएसिं च जहण्ण खवगाण अजोगिखीणमोहाण । णाणाजीवे एगं परापरठिई मुहुत्ततो ॥२२४॥

'सेसाण' इत्यादि, उदितप्रकृतिभिन्नप्रकृतीनामबन्धकाः सर्वाद्धायां भवन्ति, मार्गणानामासां ध्रुवत्वेन शेषप्रकृतिष्वध्रुवबन्धिप्रकृतीनामत्र बन्धकाऽबन्धकानां सर्वदैव लभ्यमानत्वात्, तथा शेष-षोडशध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धकतया संयमिनां सर्वदैव प्राप्यमाणत्वात् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः– मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणच-तुष्करूपाः षोडशध्रुवबन्धिप्रकृतयः, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौ-दारिकद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कानुपूर्वीचतुष्कखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरद-शकातपोद्योतोच्छ्वासपराघातजिननामगोत्रद्वयरूपा एकोनसप्ततिरध्रुवबन्धिप्रकृतयश्चेति ॥१२३३॥

साम्प्रतमौदारिकमिश्रमार्गणायां प्रकृतमाह

धुवबंधिउरालाण उरालमीसे लहू भवे समयो ।
जेट्ठो संखियसमया धुवबंधीण गुणचत्ताए ॥१२३४॥
णेयो भिन्नमुहुत्त थीणद्धितिगाणचउगउरलाण ।
मिच्छस्स असखंसो पल्लस्सियराण सव्वद्धा ॥१२३५॥

(प्रे०) 'धुवबंधि' इत्यादि, औदारिकमिश्रमार्गणायां सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौ-दारिकशरीरनाम्नश्चाऽबन्धकानां जघन्यकालः समयप्रमाणोऽस्ति, द्वितीयसमयस्थानां केवलिसमुद्धा-तगतानां समयमेकमासामबन्धकतया प्राप्यमाणत्वात् ।

'जेट्ठो' इत्यादि, मार्गणायामस्यां मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्क लक्षण प्रकृत्यष्टकं त्यक्त्वा शेषैकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृत्यबन्धकानामुत्कृष्टकालः संख्यातसमय-प्रमाणः केवलिसमुद्घातावस्थाया निरन्तरकालस्य संख्यातसमयप्रमाणत्वात् । 'णेयो' इत्यादि, स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कलक्षणस्य प्रकृतिसप्तकस्यौदारिकशरीरनाम्नश्चाऽबन्धकानामुत्कृ-ष्टकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणः, आसां प्रकृतीनामबन्धकत्वेन प्राप्यमाणानां सम्यग्दृशां निरन्तरं प्राप्तेस्तन्नि-मित्तत्वात् । 'मिच्छस्स' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽबन्धकानामुत्कृष्टकालः पल्योपमाऽसं-ख्येयतमभागप्रमाणोऽस्ति, मार्गणायामस्यां मुख्यवृत्त्या सास्वादनसम्यग्दृष्टिजीवा मिथ्यात्वमोहनीय-प्रकृत्यबन्धकत्वेन पल्योपमाऽसंख्येयतमभागप्रमाणकालपर्यन्तं सततं तिर्यक्षु लभ्यन्ते, तदनु तु सास्वादन-सम्यग्दृष्टिजीवानामवश्यमेवौदारिकमिश्रमार्गणायामभावो भवति । 'इयराण' इत्यादि, भणितशेष-प्रकृत्यबन्धकाः सर्वस्मिन् काले वर्तन्ते, शेषप्रकृतीनामबन्धकतया सूक्ष्मादिजीवानां सर्वाद्धायां प्राप्तेः । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः–वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यदेवगतित्रयजातिपञ्चकौदा-रिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कदेवमनुष्यतिर्यगानुपूर्वीत्रयखगतिद्विकत्रसदशकस्थावर-दशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासजिननामगोत्रद्वयरूपाश्चतुःषष्टिरिति ॥१२३४-३५॥

सम्प्रति वैक्रियमिश्रमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतीनामबन्धकानामुभयविधया कालं भावयन्नाह—

हस्सो विउव्वमीसे थीणद्धितिगाणचउगतित्थाणं ।
भिन्नमुहुत्तं णेयो समयो सेसाण जाणऽत्थि ॥१२३६॥
पल्लासंखियभागो सव्वाण गुरू हवेज्ज जाणऽत्थि ।

(प्रे०) 'हस्सो' इत्यादि, वैक्रियमिश्रमार्गणायां स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कजिननामप्रकृतीनामबन्धकानां जघन्यकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽस्ति, मार्गणाया अस्या जघन्यतोऽप्यन्तर्मुहूर्तप्रमितकायस्थितिमत्त्वात् । 'समयो' इत्यादि, एतत्प्रकृत्यष्टकवर्जासु शेषप्रकृतिषु यासां प्रकृतीनामबन्धका वर्तन्ते, तेषां जघन्यकालः समयप्रमाणो भवति, भावना पुनरेवम्—वैक्रियमिश्रमार्गणायामेकोऽनेके वा जीवा युगपदेव सास्वादनसम्यक्त्वमादाय देवत्वेन जाताः सन्तो जघन्यतः समयमेकं मिथ्यात्वमोहनीयं नैव बध्नन्ति, तदनु मिथ्यात्वमवाप्य बध्नन्ति, तदपेक्षया मिथ्यात्वमोहनीयाऽबन्धकानां समयप्रमाणकालः प्राप्तुमर्हः । शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धकालोऽध्रुवबन्धित्वेन परावर्तमानतो बध्यमानत्वेन समयप्रमाणः समधिगम्यः । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—मिथ्यात्वमोहनीयवेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयैकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजातिद्वयौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानषट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रसस्थिरषट्कस्थावराऽस्थिरषट्कातपोद्योतगोत्रद्विकरूपा एकोनपञ्चाशदिति । 'पल्ला' इत्यादि, अत्र यासां प्रकृतीनामबन्धकाः प्राप्यन्ते, तेषामुत्कृष्टकालः पल्योपमाऽसंख्येयतमभागप्रमाणो बोद्धव्यः, वैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणाया उत्कृष्टकायस्थितेरियत्प्रमाणत्वात्, ताश्चेमाः—स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कजिननामसहिता उपर्युक्तैकोनपञ्चाशदिति ॥१२३६॥

इदानीमाहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगमार्गणयोरायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां कालं द्वैविध्येनाह—

सव्वाणाहारदुगे लहू खणोऽण्णो मुहुत्तंतो ॥१२३७।

(प्रे०) 'सव्वाण' इत्यादि, आहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगमार्गणाद्वये 'सव्वाण' त्ति, अबन्धप्रायोग्यसकलप्रकृतीनां वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्थिरादियुगलत्रयजिननामरूपाणां त्रयोदशप्रकृतीनामबन्धकाना जघन्यकालः समयप्रमाणः, उत्कृष्टतश्च कालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणः, भावना त्वित्थं भावनीया-जिननाम्नो नूतनबन्धः प्रकृतमार्गणाद्वितीयसमये यदा प्रारभ्यते, तदा तस्याऽबन्धकाल एकसमयप्रमाणोऽवाप्यते । परावर्तमानशेषप्रकृतिषु विपक्षप्रकृतीनामेकसमयबन्धकालेन विवक्षितप्रकृतीनामबन्धकालो भावनीयः । आहारककाययोगमार्गणायां समयप्रमाणोऽबन्धकालः प्रकृतमार्गणाजघन्यकायस्थित्याऽपि समायाति । उत्कृष्टाऽबन्धकालः पुनर्जिननाम्नोऽधिकृतमार्गणोत्कृष्टकायस्थितिं यावदनेकजीवानां तदबन्धात्प्राप्यते, शेषप्रकृतिषु तु प्रकृतमार्गणाकायस्थितिं यावद-

न्याऽन्यजीवानां प्रतिपक्षप्रकृतिबन्धकत्वेन विवक्षितप्रकृतीनामबन्धकतया च प्रकृतमार्गणोत्कृष्टकालं यावत्प्राप्यमाणत्वात् ॥१२३७॥

अथ कार्मणकाययोगमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां द्विविधोऽपि काल उपदर्श्यते—

कम्मे समयोऽत्थि लहू अडधुवबंधिउरलाण समयतिगं ।
सेसधुवबंधिणीण थीणद्धितिगाणमिच्छाणं ॥१२३८॥
आवलिअसंखसो जेट्ठो सेसधुवबंधिउरलाणं ।
संखा समया णेयो सव्वद्धा होइ सेसाण ॥१२३९॥

(प्रे०) 'कम्मे' इत्यादि, कार्मणकाययोगमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कौदारिकशरीरनामरूपस्य प्रकृतिनवकस्याऽबन्धकानां जघन्यकालः समयप्रमाणोऽस्ति, भावना त्वेवं कार्या—मार्गणेयं विग्रहगतौ केवलिसमुद्घातावस्थायां तृतीयतुर्यपञ्चमसमयेषु प्राप्यते, विग्रहगतिरेकसामयिका जघन्यतो वर्तते, कदाचिदेकसामयिकविग्रहगतौ वर्तमानाः सम्यग्दृशो मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृतप्रकृत्यबन्धकत्वेन प्राप्यमाणाः समयानन्तरं मार्गणां परावर्तयन्ति, तदा समयप्रमाणकालः प्राप्यते । 'समयतिगं' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयप्रमुखप्रकृत्यष्टकमृते शेषाणामेकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धकानां जघन्यकालः त्रयः समया बोद्धव्याः, केवलिसमुद्घाताऽवसरे कार्मणकाययोगमार्गणायां जघन्यतोऽपि तृतीयचतुर्थपञ्चमसमयात्मके समयत्रये तदबन्धकत्वेन केवलिनां वर्तमानत्वात् । 'थीण' इत्यादि, स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयलक्षणस्य प्रकृत्यष्टकस्याऽबन्धकानामुत्कृष्टतया काल आवलिकाया असंख्याततमभागप्रमाणोऽस्ति, तद्यथा—देवभवे सम्यग्दृष्टयस्तिर्यञ्चो यदा निरन्तरमावलिकाया असङ्ख्याततमभागप्रमाणकालपर्यन्तमुत्पद्यन्ते, तदा विग्रहगतावपि ते तावत्कालं प्राप्यन्ते, ते च प्रकृतप्रकृत्यष्टकस्याऽबन्धका एव वर्तन्ते । 'सेस' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयप्रमुखप्रकृत्यष्टकं विना शेषैकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृत्यबन्धकानामौदारिकशरीरनाम्नश्चाऽबन्धकानामुत्कृष्टकालः संख्याताः समया वर्तन्ते, तत्पुनरित्थम्—शेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धकाः केवलिसमुद्घातावसरेऽत्र तृतीयतुर्यपञ्चमसमयेष्वेव समुपलभ्यन्ते, न पुनर्विग्रहगतौ तस्माद् यदा सङ्ख्यातकेवलिनः क्रमेण समुद्घातस्य तृतीयादिसमयेषु प्रविशन्ति, तदा सङ्ख्यातसमयप्रमाणोऽबन्धकालः प्राप्यते, नत्वधिकः । औदारिकशरीरनाम्नोऽबन्धकानामुत्कृष्टकालः संख्यातसमयप्रमाणोऽस्ति, स च केवलिसमुद्घातापेक्षया शेषध्रुवबन्धिप्रकृत्यबन्धकवद् भाव्यः, विग्रहगत्यपेक्षया त्वेवम्—विग्रहगत्या मनुष्येभ्यः सम्यग्दृष्टिनृतिर्यक्तयोत्पद्यमाना अथवा देवनारकेभ्यः सम्यग्दृष्टिमनुष्यतयोत्पद्यमाना जीवा एवौदारिकशरीरस्याऽबन्धकतयाऽत्र प्राप्यन्ते, ते च सङ्ख्यातास्ततः क्रमेणोत्पद्यमानैस्तैरपि सङ्ख्यातसमयेभ्योऽधिककालोऽबन्धकतया नैवाऽवाप्यत इति । 'सव्वद्धा' इत्यादि, कथिततरप्रकृत्यबन्धकाः सर्वाद्धाया वर्तन्ते, यतो हि मार्गणेयं ध्रुवा वर्तते,तथा शेषप्रकृतिषु काश्चित्परावर्तमाना वर्तन्ते, काश्चिच्चाऽध्रुवबन्धिन्यः,

तस्मात् केचन जीवाः शेषप्रकृतीनां बन्धकत्वेन विद्यन्ते, केचन चाऽबन्धकत्वेनेति सर्वदा बन्धका अबन्धकाश्च प्राप्यन्ते। एताश्च ताः शेषप्रकृतयः-वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यदेवगतित्रयजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कतिर्यग्मनुष्यदेवानुपूर्वीत्रयखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकाऽऽतपोद्योतपराघातोच्छ्वासजिननामगोत्रद्वयरूपाश्चतुःषष्टिरिति ॥१२३८-९॥

साम्प्रतं वेदत्रयमार्गणासु क्रोधमार्गणायां च विनायुरुत्तरप्रकृत्यबन्धकानां द्विधा कालं विचारयन्नाह

भयकुच्छणिद्दुगधुवणामाण लहू तिवेअकोहेसुं।
समयो भिन्नमुहुत्त जेट्ठो सेसाण सव्वद्धा ॥१२४०॥

(प्रे०) 'भय'इत्यादि, स्त्रीपुरुषनपुंसकवेदत्रयमार्गणासु क्रोधमार्गणायां च भयजुगुप्सानिद्राप्रचलावर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणतैजसकार्मणशरीरद्वयरूपाणां त्रयोदशप्रकृतीनामबन्धकानां जघन्यकालः समयप्रमाणोऽस्ति, उत्कृष्टतश्च कालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणः,स पुनरेवम्-वेदमार्गणा नवमगुणस्थानकप्रथमभागं यावद् वर्तते, नवमगुणस्थानद्वितीयभागं यावत् क्रोधकषायमार्गणा च वर्णचतुष्कादिप्रकृतिनवकमष्टमगुणस्थानकषष्ठभागं यावद् बध्यते, भयकुत्से पुनरष्टमगुणस्थानकस्य सप्तमभागपर्यन्तं बध्येते, निद्राद्विकं च तस्यैव प्रथमसप्तमभागपर्यन्तं बध्यते, उपशमश्रेणौ वर्तमाना एकोऽनेके वा जीवा युगपदेव यथायोगं प्रकृतीनामासां बन्धविच्छेदं विधाय समयमेकं तत्र तथैव स्थित्वा सर्वे पञ्चत्वं प्राप्नुवन्ति तदा, यद्वा श्रेणितोऽवरोहन्तः प्रस्तुतमार्गणाः प्रविश्य समयान्तरे कालं कुर्वन्ति, तदापि समयप्रमाणकालस्तेषां प्राप्तो भवति, अन्तर्मुहूर्तप्रमाणोत्कृष्टबन्धकालस्य भावना मनोयोगमार्गणावद्विधेया। 'सेसाण'इत्यादि,उक्तेतरप्रकृत्यबन्धकानां कालः सर्वाद्धा वर्तते,शेषप्रकृतयश्चेमाः-मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपाः षोडशध्रुवबन्धिप्रकृतयः, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्काऽऽनुपूर्वीचतुष्कविहायोगतिद्विकत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासजिननामगोत्रद्वयरूपा एकोनसप्ततिरध्रुवबन्धिप्रकृतय इति। भावना पुनरेवमिह विधेया—मार्गणास्वासु मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृत्यष्टकस्याबन्धकत्वेन सम्यग्दृष्टिप्रभृतयः, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्याऽबन्धकत्वेन देशविरतप्रमुखाः, प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य चाऽबन्धकत्वेन प्रमत्तसंयतादयः सर्वदैव प्राप्यन्ते, शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनामपि केचन जीवा अबन्धकत्वेन सदैव प्राप्यन्ते, अध्रुवबन्धित्वात्परावर्तमानतया बध्यमानत्वाच्च तासाम् ॥१२४०॥

साम्प्रतं मानमायालोभलक्षणमार्गणात्रयेऽबन्धकानां जघन्योत्कृष्टाभ्यां कालं कथयति।

कोहव्व माणमायालोहेसु णवरि कमेणदुचउण्हं।
संजलणाण जहण्णो समयो जेट्ठो मुहुत्ततो ॥१२४१॥

(प्रे०) 'कोहव्व' इत्यादि, मानमायालोभाख्यमार्गणासु स्वप्रायोग्यप्रकृत्यबन्धकानां जघन्योत्कृष्टकालः क्रोधमार्गणावद् विज्ञेयः। 'णवरि' इत्यादिनाऽत्र संज्वलनक्रोधादिचतुष्कविषयेऽपवादपदमुपदर्शयति-तदेवम्-मानमार्गणायां संज्वलनक्रोधस्य, मायामार्गणायां संज्वलनक्रोधमानयोः, लोभमार्गणायां संज्वलनचतुष्कस्याऽबन्धकानां जघन्यकालः समयप्रमाणः, उत्कृष्टकालश्चाऽन्तमुहूर्तप्रमाणोऽवसेयः, भावना पुनरत्र पूर्ववत्कार्या ॥१२४१॥

इदानीं ज्ञानत्रयावधिदर्शनमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानामुभयथा कालं दर्शयन्नाह

णाणतिगे ओहिम्मि य बारससायाइअडकसायाण।
वइरणरसुरउरलविउव्वआहारजुगलजिणाण सव्वद्धा ॥१२४२॥　　(गीति')
सेसाण पयडीण पणयालीसाअ होअइ जहण्णो।
समयो भिन्नमुहुत्त जेट्ठो कालो मुणेयव्वो ॥१२४३॥

(प्रे०) 'णाणतिगे' इत्यादि, मतिज्ञानश्रुतज्ञानाऽवधिज्ञानाऽवधिदर्शनरूपासु चतसृषु मार्गणासु सातवेदनीयाऽसातवेदनीयहास्यरतिशोकाऽरतिस्थिराऽस्थिरशुभाऽशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिरूपाणां द्वादशप्रकृतीनामप्रत्याख्यानावरणक्रोधादिचतुष्कप्रत्याख्यानावरणक्रोधादिचतुष्कलक्षणस्य कषायाष्टकस्य वज्रर्षभनाराचसंहनननरद्विकसुरद्विकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकजिननामरूपाणां द्वादशप्रकृतीनां चाबन्धकानां कालः सर्वाद्धा वर्तते, मार्गणास्वासु स्थितैः प्रकृतीनामासां कैश्चिज्जीवैर्बध्यमानत्वात् कैश्चिच्चाऽबध्यमानत्वात्। 'सेसाणं' इत्यादि, भणितशेषपञ्चचत्वारिंशत्प्रकृत्यबन्धकानां जघन्यकालः समयप्रमाणोऽस्ति, अन्तमुहूर्तप्रमाणश्चोत्कृष्टकालः। ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः- ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सावर्णचतुष्कतैजसकार्मणशरीरद्वयाऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपा एकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः पुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतित्रसचतुष्कसुभगत्रिकपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाश्चतुर्दशप्रकृतयश्चेति पञ्चचत्वारिंशदिति। मनोयोगमार्गणायामेकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धकालस्य भावना यथा कृता तथैवेहापि प्रकृतपञ्चचत्वारिंशत्प्रकृतीनामबन्धकालस्य भावना कार्या ॥१२४२-३॥

अथ मनःपर्यवज्ञानमार्गणायां द्विधाऽपि प्रस्तुतकालं चिकथयिषुराह

पणरससायाईण हवेज्ज मणपज्जवम्मि सव्वद्धा।
समयो गुणवण्णाए सेसाण लहू गुरू मुहुत्तंतो ॥१२४४॥　　(गीति.)

(प्रे०) 'पणरस' इत्यादि, मनःपर्यवज्ञानमार्गणायां सातवेदनीयाऽसातवेदनीयहास्यरतिशोकाऽरतिस्थिराऽस्थिरशुभाऽशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिजिननामाहारकद्विकरूपाणां पञ्चदशप्रकृतीनामबन्धकाः सर्वाद्धायां वर्तन्ते, तद्यथा-सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतयः परावर्तमानत्वेन बध्यमाना विद्यन्ते, अतः प्रकृतीनामासां बन्ध एतन्मार्गणागतैः कतिपयैर्जीवैः क्रियते कतिपयैश्च न क्रियते, आहारकद्विकं

न्वप्रमत्तसंयतैरेव बध्यते, न प्रमत्तसंयतैः, तथा जिननाम तद्योग्यजीवा एव बध्नन्ति, नान्ये, अतः सर्वदैव प्रकृतीनामासामबन्धकाऽबन्धका लभ्यन्ते । 'समयो' इत्यादि, भाषितशेषैकोनपञ्चाशत्प्रकृतीनामबन्धकानां जघन्यकालः समयप्रमाणोऽस्ति, उत्कृष्टतश्चाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो विद्यते । भावना मतिज्ञानमार्गणावत्कार्या । ताश्चेमाः शेषा एकोनपञ्चाशत्प्रकृतयः-मिथ्यात्वमोहनीयादिषोडशप्रकृतीरुते शेषा एकत्रिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतयः पुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वीसुखगतिस्थिरशुभयशःकीर्तित्रयवर्जत्रसप्तकपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपा अष्टादशप्रकृतयश्चेत्येकोनपञ्चाशदिति ॥१२४४॥

साम्प्रतमज्ञानमार्गणात्रये प्राह

समयो अण्णाणतिगे मिच्छस्स लहू गुरू मुणेयव्वो ।
पल्लासंखियभागो सेसाणं अत्थि सव्वद्धा ॥१२४५॥

(प्रे०) 'समयो' इत्यादि, मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानरूपमार्गणात्रये मिथ्यात्वमोहनीयस्याबन्धकाना लघुः कालः समयप्रमाणो ज्ञातव्यः, गुरुकालश्च पल्योपमस्याऽसंख्येयतमभागो विज्ञेयः, प्रकृतमार्गणात्रये सास्वादनजीवापेक्षयैव मिथ्यात्वमोहनीयाबन्धकानां प्राप्यमाणत्वात्, सास्वादनानां च जघन्योत्कृष्टकालस्य यथोक्तप्रमाणत्वात् । "सेसाणं" इत्यादि, उक्तशेषाणामबन्धप्रायोग्याणामायुश्चतुष्काऽऽहारकद्विकजिननामरहितानां पट्षष्टेरध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धकानां कालः सर्वाद्धा भवति, अध्रुवबन्धित्वेन सदैव तासामबन्धस्याऽपि लभ्यमानत्वादिति ॥१२४५॥

इदानीं सामायिकसंयममार्गणायां प्रस्तुतकालमुभयथोपदर्शयितुमाह

सायाइपणरसण्हं सव्वद्धा समइअम्मि होइ लहू ।
समयो चउतीसाए सेसाण गुरू मुहुत्तंतो ॥१२४६॥

(प्रे०) 'साथाइ' इत्यादि, सामायिकसंयममार्गणायां सातवेदनीयाऽसातवेदनीयहास्यरतिशोकारतिस्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिजिननामाहारकद्विकरूपाणां पञ्चदशप्रकृतीनामबन्धकाः सर्वस्मिन् काले भवन्ति । 'लहू' इत्यादि, एतद्व्यतिरिक्तबन्धप्रायोग्यप्रकृत्यबन्धकानां जघन्यकालः समयप्रमितोऽस्ति, अन्तर्मुहूर्तप्रमितश्चोत्कृष्टकालः, भावना त्वत्र सविशेषं मनःपर्यवज्ञानमार्गणावत्कार्या । तास्चेमाः शेषप्रकृतयः-निद्राद्विकलोभवर्जसंज्वलनत्रिकभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणरूपाः षोडशध्रुवबन्धिन्यः पुरुषवेददेवद्विकपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिलक्षणप्रकृतित्रयवर्जत्रससप्तकपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपा अष्टादशाऽध्रुवबन्धिन्यश्चेति चतुस्त्रिंशत्प्रकृतय इति । ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्काऽन्तरायपञ्चकसंज्वलनलोभरूपाणां पञ्चदशप्रकृतीनामबन्धका एव न विद्यन्ते, सर्वेषामत्र तद्बन्धकत्वात् ॥१२४६॥

साम्प्रतं परिहारविशुद्धि-छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणयोरायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां द्विविधमपि कालं कथयितुकाम आह

सयमुज्झो परिहारे छेए सायाइपणरसण्ह लहू ।
परिहारे देसूणा दुपुव्वकोडी भवे जेट्ठो ॥१२४७॥
पण्णासलक्खकोडी छेए समयो लहू इहऽण्णेसिं ।
जेट्ठो भिन्नमुहुत्तं सायस्स दुहा अहक्खाए ॥१२४८॥

(प्रे०) 'सयमुज्झो' इत्यादि, छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणायां परिहारविशुद्धिसंयममार्गणायां च सातवेदनीयाऽसातवेदनीयहास्यरतिशोकाऽरतिस्थिराऽस्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिजिननामाहारकद्विकरूपाणां पञ्चदशप्रकृतीनामबन्धकानां जघन्यकालः स्वयमूह्यः, जघन्यपदे कथितप्रकृतीनां बन्धकाऽबन्धकपरिमाणविषये निर्णयाभावात् । 'परिहारे' इत्यादि, परिहारविशुद्धिसंयममार्गणायां सातवेदनीयादिपञ्चदशप्रकृतीनामबन्धकानामुत्कृष्टकालो देशोनपूर्वकोटिद्वयप्रमाणः,तावत्कालपर्यन्तं प्रकृष्टतया सततं परिहारविशुद्धिसंयमवतां समुपलभ्यमानत्वात् । 'जेट्ठो'इत्यादि,आसामेव प्रकृतीनामबन्धकानामुत्कृष्टकालः छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणायां पञ्चाशत्कोटिलक्षसागरोपमप्रमितो विज्ञेयः, यतः छेदोपस्थापनीयचारित्रवन्त उत्कृष्टतस्तावत्कालं यावत् संततं लभ्यन्ते । 'समयो' इत्यादि, छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणायां सातवेदनीयादिपञ्चदशप्रकृत्यतिरिक्तस्वप्रायोग्यप्रकृत्यबन्धकानां जघन्यकालः समयप्रमाणोऽस्ति, उत्कृष्टतश्चाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणः, श्रेणावेव तदबन्धस्य प्राप्यमाणत्वात् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—निद्राद्विकसञ्ज्वलनत्रिकभयजुगुप्सावर्णचतुष्कतैजसकार्मणशरीरद्वयाऽगुरुलघूपघातनिर्माणरूपाः षोडशध्रुवबन्धिन्यः पुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वीसुखगतित्रसचतुष्कसुभगत्रिकपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपा अष्टादशप्रकृतयश्चेति चतुस्त्रिंशदिति, परिहारविशुद्धिमार्गणायां तु सातवेदनीयादिपञ्चदशप्रकृतिवर्जशेषप्रकृतीनामबन्धका एव न प्राप्यन्ते ।

'सायस्स' इत्यादि,यथाख्यातसंयममार्गणायां सातवेदनीयाबन्धकानां कालो जघन्योत्कृष्टाभ्यामन्तर्मुहूर्तमात्रो विज्ञेयः, अयोगिकेवलिनोऽस्याबन्धकतया प्राप्यन्ते, तेषां च जघन्योत्कृष्टस्थितिरन्तर्मुहूर्तमात्रेति कृत्वा ॥१२४७-४८॥

इदानीमुपशमसम्यक्त्वमार्गणायां प्रकृतमाह—

होइ वइरणरसुरउरलविउवाहारदुगबडकसायाण ।
भिन्नमुहुत्तमुवसमे हस्सो समयो ऽत्थि सेसाण ॥१२४९॥

(प्रे०) 'होइ' इत्यादि, उपशमसम्यक्त्वमार्गणायां प्रथमसंहननमनुष्यद्विकदेवद्विकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकाऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपाणामेकोनविंशतिप्रकृतीनामबन्धकानां जघन्यकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमितोऽस्ति, तदेवम्—मार्गणायामस्यां मनुष्यप्रायोग्यमनुष्यद्विकादिप्रकृतिपञ्चकं तिर्यग्मनुष्या नैव बध्नन्ति, देवप्रायोग्यसुरद्विकवैक्रियद्विकरूपं प्रकृतिचतुष्कं देवनारका नैव बध्नन्ति, मार्गणायामस्यामाहारकद्विकं चतुर्थादिषष्ठगुणस्थानगता

जन्तवो नैव बध्नन्ति, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कं देशविरतादयः प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं च प्रमत्तसंयतादयो नैव बध्नन्ति, मार्गणाया अस्या जघन्यकायस्थितिरन्तर्मुहूर्तप्रमाणा वर्तते, तदूर्ध्वं त्वन्तरं भवति, अतः प्रकृतप्रकृत्यबन्धकानां जघन्यकालोऽप्यन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽवाप्यते। यदा कश्चिदप्रमत्तयतिरुपशमसम्यक्त्वमवाप्य द्वितीयसमय आहारकद्विकस्य नूतनबन्ध कर्तुं शक्नोति, तदा समयप्रमाणोऽपि जघन्याबन्धकालः प्राप्यते, किन्तूक्तकालस्य निर्णयाभावादस्मिन् ग्रन्थेऽसंग्रहः। 'हस्सो' इत्यादि प्रकृतव्यतिरिक्तप्रकृत्यबन्धकानां जघन्यकालः समयप्रमाणोऽस्ति, सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनामबन्धकालः समयप्रमाणः प्रतिपक्षप्रकृतीनां समयप्रमाणबन्धकालेनाऽऽयाति। तथा शेषप्रकृतीनां तूपशमश्रेणौ वर्तमानाः सर्वे जीवा बन्धं यथासम्भवं व्यवच्छिद्य जघन्यतः समयं यावत् तथैव स्थित्वा म्रियन्ते, तदा समयप्रमाणोऽबन्धकालस्तेषामवाप्यते ॥१२४९॥

अथ प्रकृतोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां सातवेदनीयादिशेषप्रकृतीनामबन्धकानामुत्कृष्टकालं प्रतिपादयति—

पल्लासंखियभागो विण्णेयो दोण्ह वेअणीआण।
दुइअकसायजुगलदुणरसुरउरलविउवदुगाण ॥१२५०॥
आहारदुगस्स तहा वइरजिणाण तिथिराइजुगलाण।
जेट्ठो भिन्नमुहुत्तं हवेज्ज सेसाण पयडीण ॥१२५१॥

(प्रे०) 'पल्ला' इत्यादि, सातवेदनीयाऽसातवेदनीयाऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कहास्यादियुगलद्वयमनुष्यद्विकदेवद्विकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननजिननामस्थिराऽस्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिरूपाणामष्टाविंशतिप्रकृतीनामबन्धकानामुत्कृष्टकालः पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणो विज्ञेयः, भावना पुनरित्थैवम्—उपशमसम्यक्त्वमार्गणायां सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनां परावर्तमानभावेन बध्यमानत्वाद् बन्धकाऽबन्धकाः प्राप्यन्ते, देवद्विकवैक्रियद्विकप्रकृतिचतुष्कस्याऽबन्धका देवनारका वर्तन्ते, मनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननरूपाणां पञ्चप्रकृतीनामप्रत्याख्यानवरणचतुष्कस्य चाबन्धकाः क्रमेण प्रधानवृत्त्या तिर्यक्पञ्चेन्द्रियजीवा देशविरततिर्यक्पञ्चेन्द्रियजीवा विद्यन्ते, आहारकद्विकजिननामप्रकृतीनां कैश्चिज्जीवैरेव बध्यमानत्वाद् बहुभागजीवा अबन्धकतया प्राप्यन्ते, ते चोत्कृष्टतयाऽत्र निरन्तरं पल्योपमाऽसंख्येयभागं यावदुपलभ्यन्त इति। 'जेट्ठो' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीनामबन्धकानामुत्कृष्टकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽस्ति, शेषप्रकृतीनामबन्धकानामत्र संयतानामेव प्राप्यमाणत्वात्। ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणषट्कं प्रत्याख्यानावरणसञ्ज्वलनचतुष्के भयकुत्से नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयोऽन्तरायपञ्चकं चेति पञ्चत्रिंशद् ध्रुवबन्धिप्रकृतयस्तथा पुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतित्रसचतुष्कसुभगत्रिकपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाश्चतुर्दशमार्गणाप्रायोग्य-ध्रुवबन्धिप्रकृतय इति सम्मीलिता एकोनपञ्चाशच्छेषप्रकृतय इति।

अथ मिश्रसम्यक्त्वमार्गणायां शेषमार्गणासु चोक्तप्रकृत्यबन्धकानां द्वैविध्येन कालमाह

सायाइवारसण्ह मीसे समयो लहू मुणेयव्वो ।
णरसुरउरलविउव्वदुगवइराण भवे मुहुत्तंतो ॥१२५३॥
पल्लासंखियभागो जेट्ठो पयडीण एगवीसाए ।
सेसासु सव्वद्धा सप्पाउग्गाण जाणऽत्थि ॥१२५४॥

(प्रे०) '**सायाइ**' इत्यादि, मिश्रसम्यक्त्वमार्गणायां सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृत्यबन्धकानां जघन्यकालः समयप्रमाणो ज्ञातव्यः, मार्गणाया अध्रुवत्वे सति प्रकृतीनामासां बन्धतोऽध्रुवत्वादिति । '**णरसुर**' इत्यादि, मनुष्यद्विकदेवद्विकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननरूपाणां नवानां प्रकृतीनामबन्धकानां जघन्यकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽस्ति,यतो हि ये जीवा आसामबन्धकतया प्राप्यन्ते, तेषामवस्थितिरस्यां मार्गणाया जघन्यतोऽप्यन्तर्मुहूर्तप्रमाणैव । '**पल्ला**' इत्यादि, सातवेदनीया-दिद्वादशप्रकृतयो मनुष्यद्विकादिनवप्रकृतयश्चेत्येकविंशतिप्रकृतीनामबन्धकानामुत्कृष्टकालः पल्यो-पमाऽसङ्ख्येयतमभागप्रमाणो वेदयितव्यः, मार्गणाया अस्या कायस्थितेस्तावत्प्रमाणत्वात् । शेष-प्रकृतीनामबन्धका अत्र न वर्तन्ते, अत्रत्यैः सर्वैर्जीवैर्बध्यमानत्वात् ।

'**सेसासु**' इत्यादि, उक्तेतरमार्गणासु यासां प्रकृतीनामबन्धका वर्तन्ते, ते सर्वाद्धायां भवन्ति । ताश्चेमाः शेषमार्गणाः–अपर्याप्तमनुष्यवर्जपट्चत्वारिंशद्गतिमार्गणाः, एकोनविंशतिरिन्द्रिय-मार्गणाः, द्विचत्वारिंशत्कायमार्गणाः, ओघसत्याऽसत्यामृषाभेदेन मनोयोगमार्गणात्रयं वचनयोगमा र्गणात्रयं च, काययोगौघौदारिककाययोगवैक्रियककाययोगाभिधास्तिस्रो मार्गणाः, अपगतवेदमा-र्गणा, अकषायमार्गणा, केवलज्ञानमार्गणा, सयमौघदेशविरत्यसंयमरूपास्तिस्रमार्गणाः, केवलदर्शन-मार्गणा, कृष्णलेश्यादिलक्षणाः षड् मार्गणाः, भव्याभव्यमार्गणाद्वयम्, सम्यक्त्वौघक्षयोपशमक्षायिक-मिथ्यात्वलक्षणं सम्यक्त्वमार्गणाचतुष्कम्, सञ्ज्यसंज्ञिमार्गणाद्वयम्, आहारकमार्गणा चेति नवत्रिं-शदधिकशतमार्गणा इति । सूक्ष्मसम्पराये कासाञ्चिदपि प्रकृतीनामबन्धकानामप्राप्तेः सा शेषमार्गणातया न गृहीता । भावना त्वेव कार्या–यासु मार्गणासु यासां प्रकृतीनां बन्धोऽध्रुवोऽस्ति तासु तासां प्रकृ-तीनामबन्धकालः सर्वाद्धा प्राप्यते, तत्प्रतिपक्षप्रकृतीनां बन्धकानां सर्वदैव प्राप्यमाणत्वात् । तथा यासु मार्गणासु ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामप्यबन्धः प्राप्यते, तत्र तासामबन्धका उपरितनगुणस्थाने सर्वदा विद्यन्त इति कृत्वाऽबन्धकालः सर्वाद्धा प्राप्यते ॥१२५३-५४॥ इत्येवमादेशतो मार्गणास्वायुर्वर्जोत्तर-प्रकृत्यबन्धकानां कालोऽभिहित ।

साम्प्रतं मार्गणास्वायुष्ककर्मबन्धकानां कालं जघन्योत्कृष्टाभ्यां दर्शयन्नाह

तिरियाउस्सऽडसमया जहि ण दुसट्ठीअ तत्थ सव्वद्धा ।
से बंधगाण समयो हस्सो कायुरलचउकसायेसुं ॥१२५५॥ (गीति.)
सेसाण मुहुत्तंतो अण्णह समयोऽत्थि सेसजोगेसु ।
सप्पाउग्गाऊण सेसासु भवे मुहुत्तंतो ॥१२५६॥

(प्रे०) 'तिरिया' इत्यादि, यासु द्वाषष्टिमार्गणासु तिर्यगायुष्कस्याऽष्टौ भङ्गा न भवन्ति, तासु तस्य बन्धकानां कालः सर्वाद्धा बोद्धव्यः । ताश्चेमा द्वाषष्टिमार्गणाः—तिर्यगोघमार्गणा, ओघसूक्ष्मौघबादरौघसूक्ष्माऽपर्याप्तबादराऽपर्याप्तसूक्ष्मपर्याप्तबादरपर्याप्तभेदेन सप्तैकेन्द्रियमार्गणाः, बादरपर्याप्तवर्जषट्पृथ्वीकायमार्गणा एवं षडप्कायमार्गणाः षट् तेजःकायमार्गणाः षड्वायुकायमार्गणाः सप्तसाधारणवनस्पतिकायमार्गणा वनस्पतिकायौघमार्गणा प्रत्येकवनस्पतिकायौघमार्गणा अपर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिकायमार्गणा चेति चतुस्त्रिंशत्कायमार्गणाः, काययोगौघमार्गणौदारिककाययोगमार्गणौदारिकमिश्रकाययोगमार्गणाः, नपुंसकवेदमार्गणा, क्रोधमानमायालोभलक्षणमार्गणाचतुष्कम्, मत्यज्ञानश्रुताज्ञानमार्गणाद्वयम्, असंयममार्गणा, अचक्षुर्दर्शनमार्गणा, कृष्णलेश्यानीललेश्याकापोतलेश्यामार्गणात्रयम्, भव्याभव्यमिथ्यात्वाऽसंज्ञ्याहारकमार्गणाश्चेति । 'समयो' इत्यादि, काययोगौघौदारिककाययोगकषायचतुष्करूपासु षट्सु मार्गणासु तिर्यगायुष्कवर्जशेषायुष्काणां बन्धकानां जघन्यकालः समयप्रमाणोऽस्ति, प्रकृतमार्गणाचरमसमये बन्धप्रारम्भणात्, आयुर्बन्धचरमसमये प्रकृतमार्गणासु प्रवेशभावाद्वा । 'मुहुत्तंतो' इत्यादि, काययोगादिषण्मार्गणावर्जशेषप्रागुक्तषट्पञ्चाशन्मार्गणासु यथासंभवं तिर्यगितरायुषो बन्धे सति तिर्यगायुर्वर्जशेषायुष्कबन्धकानां जघन्यकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽस्ति । तद्यथा—अत्र शेषायुषां बन्धकाः कदाचिदेकादयोऽपि भवन्ति, ते च यदा युगपदायुर्बन्धं प्रारभन्ते, युगपच्चायुर्बन्धाद् विरमन्ते, तदाऽऽयुर्जघन्यबन्धकालस्याऽन्तर्मुहूर्तत्वाज्जघन्यकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽवाप्यते । 'समयो' इत्यादि, उक्तातिरिक्तासु पञ्चमनोयोगपञ्चवचनयोगवैक्रियकाययोगाहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगरूपासु शेषयोगमार्गणासु स्वप्रायोग्यायुष्कबन्धकानां समयप्रमितो जघन्यबन्धकालः प्राप्यते, प्रकृतमार्गणाचरमसमये बन्धारम्भणाद्, आयुर्बन्धान्तिमसमये प्रकृतमार्गणासु प्रवेशाद्वा । 'सेसासु' इत्यादि, उक्तातिरिक्तमार्गणासु स्वप्रायोग्यायुषां बन्धकानां जघन्यबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो विज्ञेयः, शेषमार्गणानामायुर्बन्धकालेऽपरावर्तमानत्वात् । शेषमार्गणाश्चोत्कृष्टपदे दर्शयिष्यन्ते ॥१२५६॥ अथोत्कृष्टबन्धकालमाह—

जाणऽत्थि बन्धगा खलु संखा तेसिं गुरू मुहुत्तंतो ।
पल्लासंखियभागो इयराऊण मुणेयव्वो ॥१२५७॥

(प्रे०) 'जाण' इत्यादि, यासु मार्गणासु येषामायुषां बन्धकाः संख्येया भवन्ति, तेषां प्रकृष्टबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तं वेदयितव्यः, यत्र संख्येयायुष्कबन्धकास्तत्रायुष्कबन्धकालः प्रभूततयाप्यन्तर्मुहूर्तमात्र इति नियमात् । 'पल्ला' इत्यादि, तद्व्यतिरिक्तायुष्कबन्धकानामुत्कृष्टकालः पल्योपमाऽसंख्येयभागो ज्ञातव्यः, इहापि भावनौघवत् कार्या । ताश्चेमाः शेषमार्गणाः—तिर्यगोघवर्जषट्चत्वारिंशद्गतिमार्गणाः, ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेन तिस्रस्तिस्रो द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियत्रसकायमार्गणाः, पर्याप्तबादरपृथ्व्यप्तेजोवायुपर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिकायमार्गणाः, ओघसत्या-ऽसत्य-सत्यासत्याऽ-

सत्यामृषाभेदेन पञ्चमनोयोगमार्गणाः पञ्च च वचनयोगमार्गणाः, वैक्रियकाययोगाऽऽहारककाययोगा-हारकमिश्रकाययोगमार्गणात्रिकम्, स्त्रीपुरुषवेदमार्गणाद्वयम्, मतिश्रुतावधिमनःपर्यवविभङ्गज्ञानमार्गणापञ्चकम्, संयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारदेशविरतिसंयमलक्षणं मार्गणापञ्चकम्, चक्षुरवधिदर्शनमार्गणाद्वयम्, तेजःपद्मशुक्ललेश्यामार्गणात्रयम्, सम्यक्त्वौघक्षयोपशमक्षायिकसास्वादनसम्यक्त्वरूपं मार्गणाचतुष्कम्, संज्ञिमार्गणा चेत्येकोत्तरशतमार्गणा इति। वैक्रियमिश्रकाययोगाऽपगतवेदकार्मणकाययोगाऽकषायकेवलज्ञानयथाख्यातसूक्ष्मसम्परायसंयमकेवलदर्शनोपशमसम्यक्त्वमिश्रसम्यक्त्वाऽनाहारकरूपास्वेकादशमार्गणास्वायुष्कबन्धकानामभावाच्छेषमार्गणात्वेन ता न गण्यन्त इत्यपि सुधिया विभावनीयम्। यासु मार्गणासु येषामायुष्काणां बन्धकाः सङ्ख्याता लभ्यन्ते, ता मार्गणा इमा वर्तन्ते, नरकौघरत्नप्रभाशर्कराप्रभावालुकाप्रभापङ्कप्रभाधूमप्रभातमःप्रभारूपासु सप्तसु मार्गणासु त्रिंशद्देवमार्गणासु वैक्रियकाययोगमार्गणायां मतिश्रुतावधिज्ञानमार्गणासु अवधिदर्शनमार्गणायां तेजःपद्मशुक्ललेश्यामार्गणासु सम्यक्त्वौघक्षयोपशमक्षायिकसास्वादनसम्यक्त्वमार्गणासु च मनुष्यायुष्कस्य बन्धकाः संख्येया एव प्राप्यन्ते, तथा शुक्ललेश्याक्षायिकसम्यक्त्वमार्गणयोर्देवायुर्बन्धका अपि संख्याता एव प्राप्यन्ते। मनुष्यौघे देवनरकायुषोर्बन्धकाः, पर्याप्तमनुष्यमानुषीमार्गणयोरायुश्चतुष्कस्य बन्धकाः, आहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगमनःपर्यवज्ञानसंयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिदेशविरतिसंयमरूपासु च मार्गणासु देवायुषो बन्धकाः सङ्ख्याता विद्यन्ते, यथासंभवमेतद्व्यतिरिक्तायुष्कबन्धका असङ्ख्येया आसु मार्गणासु वर्तन्ते, एतद्व्यतिरिक्तमार्गणासु स्वप्रायोग्यसर्वायुष्कबन्धका असंख्येया एव जीवा वर्तन्त इति ॥१२५७॥ इत्येव गदितो मार्गणास्वायुष्कबन्धकानां कालः।

साम्प्रतं मार्गणास्वायुष्ककर्माऽबन्धकानां जघन्योत्कृष्टाभ्यां कालमुपदर्शयन्नादौ तमपर्याप्तमनुष्यमार्गणायामुपदर्शयति।

सप्पाउग्गाऊण अबंधगाणं लहू अपज्जणरे।
भिन्नमुहुत्तं जेट्ठो पल्लस्स असंखभागोऽत्थि ॥१२५८॥

(प्रे०) 'सप्पाउग्गा' इत्यादि, अपर्याप्तमनुष्यमार्गणायां स्वप्रायोग्यतिर्यग्मनुष्यायुष्काऽबन्धकानां कालो जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽस्ति, तद्यथा–मार्गणा पुनरियं जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणकायस्थितिमती वर्तते, तस्यां च कदाचिदेकोऽनेके वा जीवा वर्तेरन्, ते च स्वप्रायोग्यायुर्बद्ध्वा जघन्याबाधारूपाऽन्तर्मुहूर्तादनु सर्वेऽपि युगपदेव मृत्युं यान्ति, तदाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणकालः समुपलभ्यते। 'जेट्ठो' इत्यादि, उत्कृष्टतश्च पल्योपमस्याऽसंख्येयतमभागप्रमाणः कालोऽस्ति, मार्गणाया अस्या उत्कृष्टकायस्थितेरियत्प्रमाणत्वात् तावत्कालं मार्गणागतान्यान्यजीवापेक्षयाऽबन्धकानां लाभाच्च ॥१२५८॥

साम्प्रतमाहारककाययोगाहारकमिश्रमार्गणयोरायुष्ककर्माऽबन्धकानां कालं जघन्योत्कृष्टाभ्यामाह

आहारदुगे समयो अत्थि जहण्णो गुरू मुहुत्तंतो।

(प्रे०) **'आहार'** इत्यादि, आहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगमार्गणाद्वये स्वप्रायोग्यायुष्कप्रकृत्यबन्धकानां जघन्यकालः समयप्रमाणः, मार्गणाद्वितीयसमय आयुर्बन्धप्रारम्भात् आहारककाययोगे तु जघन्यकायस्थितेस्तावन्मात्रत्वादपि। उत्कृष्टतश्चाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणः कालोऽस्ति, नानाजीवापेक्षया मार्गणायाः प्रकृष्टकायस्थितेस्तावन्मात्रत्वात्।

इदानीं छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिमार्गणाद्वय आयुष्काऽबन्धकानां द्विविधं कालं दर्शयितुमाह

णाऊणं सयमुज्झो हस्सो छेअपरिहारेसुं ॥१२५९॥
छेए हवेज्ज जेट्ठो अयरा पण्णासलक्खकोडीओ ।
परिहारे होइ दुवे कोडी पुव्वाण देसूणा ॥१२६०॥

(प्रे०) **'णाऊणं'** इत्यादि, छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणायां परिहारविशुद्धिसंयममार्गणायां च स्वप्रायोग्यायुःप्रकृत्यबन्धकानां जघन्यकालः स्वयमेव ज्ञात्वा समूह्यः, जघन्यपदे यद्येकादिजीवाः स्युः, तदाऽबन्धकालो जघन्याऽबाधाप्रमाणाऽन्तर्मुहूर्तात्मकः प्राप्यते,यदि च जघन्यपदे शतसहस्रादिपृथक्त्वप्रमाणाः स्युस्तदा तदबन्धकालः प्रकृतमार्गणाजघन्यकायस्थितिप्रमाणो मन्तव्यः, किन्तु जघन्यपदेऽत्र जीवप्रमाणस्य निर्णयाभावादुक्तं **'सयमुज्झो'** इत्यादि। **'छेए'** इत्यादि, छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणायां स्वप्रायोग्यदेवायुरबन्धकानां प्रकृष्टकालः पञ्चाशत्कोटिलक्षसागरोपमप्रमाणोऽवसेयः, छेदोपस्थापनीयचारित्रस्योत्कृष्टतयैतावत्कालं निरवच्छिन्नं प्राप्यमाणत्वात् , उक्तं च व्याख्याप्रज्ञप्तौ 'छेओवट्ठावणियसंजये णं भंते कालओ केच्चिरं हुंति गोयामा.. . 'उक्कोसेणं पण्णासं सागरोवमकोडिसयसहस्साइं' ति। **'परिहारे'** इत्यादि, परिहारविशुद्धिमार्गणायां स्वप्रायोग्यदेवायुष्काऽबन्धकानामुत्कृष्टकालो देशोनपूर्वकोटिद्वयप्रमाणोऽस्ति, परिहारविशुद्धिचारित्रवतां तावत्कालं प्रकृष्टतोऽनवरतं प्राप्यमाणत्वात् । उक्तं च भगवत्याम्–परिहारविशुद्धिसंजया णं भंते कालओ केच्चिरं हुंति ? गोयमा। . . . उक्कोसेणं देसूणाओ दो पुव्वकोडीउ त्ति ॥१२५९-६०॥

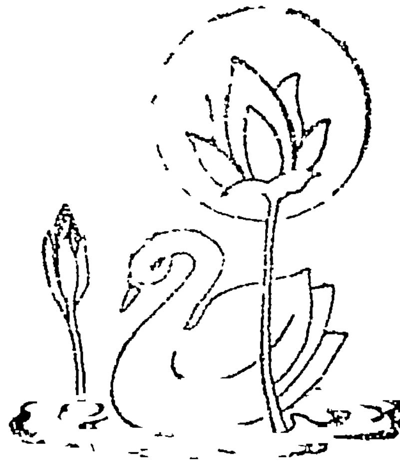
अथ सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायां प्रकृतं कथयति

सासायणे जहण्णो समयो जेट्ठो भवे असंखयमो।
पलिओवमस्स भागो सेसासुं अत्थि सव्वद्धा ॥१२६१॥

(प्रे०) **'सासायणे'** इत्यादि, सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायां स्वप्रायोग्यायुष्काऽबन्धकानां जघन्यकालः समयप्रमाणोऽस्ति। **'जेट्ठो'** इत्यादि, उत्कृष्टतश्च पल्योपमाऽसंख्येयतमभागप्रमाणः कालोऽस्ति, मार्गणाया अस्याः कायस्थितेर्जघन्यतः समयप्रमाणत्वादुत्कृष्टतश्च पल्योपमाऽसंख्येयतमभागप्रमाणत्वात्। **'सेसासु'** इत्यादि, अत्रोक्तशेषमार्गणासु स्वप्रायोग्याऽऽयुष्काऽबन्धकानां

कालः सर्वाद्धा वर्तते, ताश्चेमाः शेषमार्गणाः-अपर्याप्तमनुष्यवर्जपट्चत्वारिंशद्गतिमार्गणाः,एकोनत्रिंश- तिरिन्द्रियमार्गणाः, द्विचत्वारिंशत्कायमार्गणाः, मनोयोगमार्गणापञ्चकम् , वचनयोगमार्गणापञ्चकम् , काययोगौदारिककाययोगौदारिकमिश्रकाययोगवैक्रियकाययोगमार्गणाचतुष्कम् , वेदमार्गणात्रयम् ,क्रोधा- दिकषायमार्गणाचतुष्कम् , मतिश्रुताऽवधिमनःपर्यवज्ञानमार्गणाचतुष्कम् , मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभ- ङ्गज्ञानमार्गणात्रयम् , संयमौघसामायिकदेशविरत्यसंयमलक्षणं मार्गणाचतुष्कम् , चक्षुरचक्षुरवधि- दर्शनमार्गणात्रयम् , कृष्णादिलेश्यामार्गणाषट्कम् , भव्याऽभव्यमार्गणे, सम्यक्त्वौघक्षयोपशमक्षायि- कमिथ्यात्वरूपं सम्यक्त्वमार्गणाचतुष्कम् ,संज्ञ्यसंज्ञिमार्गणाद्वयम् ,आहारकमार्गणा चेति सप्तपञ्चाशद- धिकशतमार्गणाः । एवमभिहतोऽनेकजीवाश्रितो मार्गणास्वायुर्बन्धकानां कालः,अभिहिते च तस्मिन् समाप्तं कालद्वारम् ॥१२६१॥

॥ इति श्री प्रेमप्रभाटीकाविभूषिते बन्धविधाने प्रथमाधिकारे द्वादशमनेक-
जीवाश्रित कालद्वार समाप्तम् ॥



॥ अथानेकजीवाश्रितं त्रयोदशमन्तरद्वारम् ॥

अथ क्रमायातमनेकजीवाश्रितं त्रयोदशमन्तरद्वारमोघत आदेशतश्च निरूपयन्नादावोघतस्तन्निरूपयति ।

लहुमंतर खणो सुरणरणिरयाऊण बंधगाण गुरुं ।
सयमुब्भ सेसाण ण अबंधगाण च सव्वेसिं ॥१२६२॥

(प्रे०) 'लहु' इत्यादि, देवमनुष्यनरकायुष्कत्रयबन्धविधायिनां जघन्यं बन्धकानामभावलक्षणमन्तरं समयप्रमाणम्, अस्तीत्यायोज्यम्। ननु प्रागुनिरूपितादन्तरद्वारादस्मिन्नन्तरद्वारे कः प्रतिविशेष इति चेद्, उच्यते, प्राक्प्रतिपादितेऽन्तरद्वारे एकजीवमाश्रित्य प्रकृतीनां बन्धकस्याऽबन्धकस्य चाऽन्तरमुक्तमत्र तु नानाजीवान् प्रतीत्य तदुच्यते इति । 'गुरु'' ति, उत्कृष्टमन्तरं सप्तमूह्यम्, तिर्यग्गतिभिन्नगतित्रये उत्पद्यमानानां च्यवमानानां वा जीवानामन्तरप्रतिपादकसूत्रस्यानेकविधत्वात् ।'सेसाण' इत्यादि, उदितायुष्कत्रयवर्जाना सप्तःशाधिकशतप्रकृतीनां बन्धकानामन्तर नास्ति, सदैव प्राप्यमाणत्वात्तेषाम् । 'अबंधगाणं' इत्यादि, विंशत्यधिकशतप्रकृतीनामबन्धकानामन्तरं नास्ति, सर्वदैवाऽऽसामबन्धकतया सिद्धादिजीवानां प्राप्यमाणत्वात् ॥१२६२॥

इदानीमादेशतो मार्गणास्वायुष्ककर्मवर्जस्वप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकानामन्तरं जघन्योत्कृष्टास्यां निरूपयितुमाह

जहि सव्वद्धा कालो सप्पाउग्गाण आउवज्जाण ।
सव्वाण बंधगाण तहि तेसिं अंतर णत्थि ॥१२६३॥

(प्रे०) 'जहि' इत्यादि, यासु मार्गणासु स्वप्रायोग्याणामायुष्ककर्मवर्जानां प्रकृतीनां बन्धकानां सर्वाद्धा कालो वर्तते, तासु मार्गणासु तेषामन्तरं नास्ति, ता मार्गणाः पुनरिमाः—वक्ष्यमाणौदारिकमिश्रकार्मणानाहारकाऽवेदादिचतुर्दशमार्गणावर्जाः षष्ट्यधिकशतप्रमार्गणा इति ॥१२६३॥

साम्प्रतमौदारिकमिश्रकाययोगादिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां जघन्योत्कृष्टमन्तर निरूप्यते—

ओरालमीसजोगे कम्मणजोगे तहा अणाहारे ।
सुरविउव्वदुगजिणाणं हस्सं समयो मुणेयव्वो ॥१२६४॥
देवविउव्वदुगाणं मासपुहुत्तं गुरुं जिणस्स भवे ।
वासपुहुत्तं ण भवे सप्पाउग्गाण सेसाण ॥१२६५॥

(प्रे०) 'ओराल' इत्यादि, औदारिकमिश्रकार्मणकाययोगाऽनाहारकरूपासु तिसृषु मार्गणासु देवद्विकवैक्रियद्विकजिननामरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्य बन्धकानां जघन्यमन्तरं समयप्रमाणं ज्ञातव्यम् । तदेवम्—मार्गणास्वासु प्रकृतप्रकृतिपञ्चकस्य बन्धकतयाऽविरतसम्यग्दृष्टयो भवन्ति, ते च मार्गणाकालं यावद् बन्धं कृत्वा यदा मार्गणान्तरं व्रजन्ति, तदा बन्धकानामभावलक्षणस्यान्तरस्यारम्भो भवति, समयान्तरे यदा केचिदविरतसम्यग्दृष्टिजीवाः प्रकृतमार्गणाः प्रविशन्ति तदा प्रस्तुतप्रकृतिपञ्चकस्य बन्धकाः

प्राप्यन्ते, इत्थं समयप्रमाणमन्तरं सूपपद्यते । आसामेव पञ्चप्रकृतीनां प्रकृष्टमन्तरं दर्शयति-'देव' इत्यादिना देवद्विकवैक्रियद्विकयोः प्रकृष्टमन्तरं मासपृथक्त्वप्रमाणं तथा जिननाम्नो बन्धकान्तरं वर्षपृथक्त्वप्रमाणं ज्ञातव्यम्, क्रमेणासां बन्धकानां प्रकृष्टोत्पादविरहकालस्य तावन्मितत्वात् । इद-मुक्तं भवति-मार्गणात्रये देवद्विकवैक्रियद्विकबन्धकतया देवनरकेभ्योऽविरतसम्यग्दृष्टिमनुष्यतयोत्पद्य-मानास्तथा मनुष्येभ्यस्तिर्यक्षूत्पद्यमानाः कृतकरणाः क्षायिकसम्यग्दृष्टयो वा भवन्ति, तेषामुत्पादविर-हकालस्य प्रकृष्टतया मासपृथक्त्वादन्तरमपि देवद्विकवैक्रियद्विकप्रकृतीनां बन्धकानां तावन्मितं प्राप्यते । जिननाम्नो बन्धकतया मनुष्येभ्य उत्पद्यमाना जिननामसत्कर्माणो देवनारकास्तथा देवनारकेभ्य उत्पद्यमाना जिननामसत्कर्माणो मनुष्या भवन्ति, तेषां समुदितप्रकृष्टविरहकालस्य वर्षपृथक्त्वप्रमाणत्वाद् जिननामबन्धकानामन्तरमपि तावन्मितं सूपपद्यते, अत्र पृथक्त्वशब्दो बहुत्व-वाची द्रष्टव्यः ।

अस्मिन् द्वारे यत्र यासां प्रकृतीनां बन्धकानामबन्धकानां च जघन्यमुत्कृष्टं चाऽन्तरं कथयि-ष्यते, तत्र तासां बन्धकानामबन्धकानां च जघन्योत्कृष्टविरहकालस्तावन्मितोऽस्तीति ज्ञातव्यम् । 'ण भवे' इत्यादि, उक्तप्रकृतिपञ्चकातिरिक्तस्वप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकानामन्तरं नास्ति, सदा कालं तेषां सद्भावात् । ताश्चेमाः सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवे-दत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयजातिपञ्चकौदारिकद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखग--तिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासगोत्रद्वयरूपाः षष्टिः प्रकृतयश्चेति ।।१२६४-५।।

अधुनाऽपगतवेदमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां जघन्योत्कृष्टात्मकमन्तरं दिदर्शयिषु राह

णो अंतर अवेए हवेज्ज सायस्स सेसपयडीणं ।
समयो अत्थि जहण्ण उक्कोसं होइ छम्मासा ॥१२६६॥

(प्रे०) 'णो' इत्यादि, अपगतवेदमार्गणायां सातवेदनीयस्य बन्धकानामन्तरं नास्ति, तेषा-मत्र सदैव सद्भावात् । 'सेस' इत्यादि, सातवेदनीयातिरिक्तप्रकृतिबन्धकानां जघन्यमन्तरं समयप्रमितमस्ति, तदेवम्-मार्गणायामस्यामेतत्प्रकृतिबन्धकाः श्रेणौ केचन जीवाः समायाताः सन्तः सर्वेऽपि सहैव यथायोग शेषप्रकृतीनां बन्धविच्छेदं कुर्वन्ति, तदा न कोऽपि तासां बन्धकतया प्राप्यते, अनन्तरसमये मार्गणायामस्यामन्ये जीवाः शेषप्रकृतिबन्धकतयाऽऽयान्ति, तदा समयप्रमाण-मन्तरमत्र समुपलभ्यते । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्क-यशःकीर्त्युच्चैर्गोत्राऽन्तरायपञ्चकरूपा विंशतिरिति ।'उक्कोसं' इत्यादि, प्रकृतशेषविंशतिप्रकृतिबन्ध-कानामुत्कृष्टमन्तरं षण्मासप्रमाणं भवति, श्रेणिविरहकालस्य प्रकृष्टतया तावन्मितत्वात् ।।१२६६।।

साम्प्रतं छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धि-संयममार्गणयोरायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां जघन्योत्कृ-

इतोऽन्तरं प्ररूपयितुमाह

छेए तह परिहारे सयमुज्झ लहु दुवेअणीआणं।
दुजुगलथिराइतिजुगलतित्थाहारदुगणामाण ॥१२६७॥
सेसाण कमा णेय सहस्सवासा तिवट्ठिचुलसीई।
सव्वाण गुरुं अयरा अट्ठारस कोडिकोडीओ ॥१२६८॥

(प्रे०) 'छेए' इत्यादि, छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिसंयममार्गणयोः साताऽसातवेदनीयद्वयहास्यादियुगलद्वयस्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलत्रयजिननामाहारकद्विकनामरूपाणां पञ्चदशप्रकृतीनां बन्धकानां जघन्यमन्तरं स्वयमूह्यम् । मार्गणयोरनयोर्जघन्यपदे जीवानां सङ्ख्याया निर्णयाभावात् कालवद् भावना भाव्या। 'सेसाण' इत्यादि, सातवेदनीयादिपञ्चदशप्रकृतिवर्जस्वप्रायोग्यसकलप्रकृतीनां बन्धकानां क्रमेण त्रिषष्टिसहस्रवर्षाणि चतुरशीतिसहस्रवर्षाणि च जघन्यतोऽन्तरं द्रष्टव्यम् , उत्कृष्टतश्चाऽन्तरं सर्वासामपि प्रकृतीनामष्टादशकोटिकोटिसागरोपमप्रमाणम्। मार्गणयोरनयोर्जघन्योत्कृष्टाभ्यामन्तरस्यैवविधत्वात् , उक्तं च-जीवसमासे तद्वृत्तौ च "तेवट्ठी चुलसीई वाससहस्साइ छेयपरिहारे । अवर परमुदहीण अट्ठारस कोडिकोडीओ॥ छेदोपस्थापनीयसयतानां त्रिषष्टिर्वर्षसहस्राण्यन्तरं जघन्यमपरं भवति, 'परिहारे' त्ति परिहारविशुद्धिकसयताना–चतुरशीतिर्वर्षसहस्राण्यपरं जघन्यमन्तरं सम्पद्यते, परम्–उत्कृष्टं त्वन्तरमुभयेषामपि प्रत्येकमष्टादशसागरोपमकोटीकोट्यः" । ॥१२६७-८॥

अथ शेषास्वष्टसान्तरमार्गणासु स्वप्रायोग्यायुर्वर्जसमस्तप्रकृतिबन्धकानां जघन्यमन्तरं कतिपयासु मार्गणासु चोत्कृष्टमप्यन्तरमुपदिदर्शयिषुराह

सेसासु लहुं समयो सप्पाउगाण सव्वपयडीणं।
पल्लासखियभागो अपज्जणरमीससासणेसु गुरुं ॥१२६९॥　(गीतिः)

(प्रे०) 'सेसासु' इत्यादि, कथितव्यतिरिक्ताऽध्रुवमार्गणास्वेव स्वप्रायोग्यसकलप्रकृतिबन्धकानां समयप्रमाणं जघन्यमन्तरमवसेयम् , प्रकृतमार्गणासत्कजघन्यान्तरस्य तावत्प्रमाणत्वात् । शेषमार्गणाः पुनरिमाः-अपर्याप्तमनुष्यवैक्रियमिश्राहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगसूक्ष्मसम्परायोपशमसम्यक्त्वमिश्रसम्यक्त्वसास्वादनसम्यक्त्वरूपा अष्टौ मार्गणा इति ।

'पल्लासंखिय' इत्यादि, अपर्याप्तमनुष्यमिश्रसम्यक्त्वसास्वादनसम्यक्त्वरूपासु तिसृषु मार्गणासु स्वप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकानां प्रकृष्टतोऽन्तरं पल्योपमाऽसंख्येयतमभागप्रमाणमधिगन्तव्यम् , मार्गणानामासामुत्कृष्टान्तरस्य तावत्प्रमाणत्वात् । उक्तं च जीवसमासे–पल्लाऽसखियभागं सासणमिस्सासमत्तमणुएसु ॥१२६९॥

अथ वैक्रियमिश्रमार्गणायामाहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगमार्गणयोश्चाऽऽयुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानामुत्कृष्टमन्तरमाह

वेउव्वमीसजोगे एगिंदियथावरायवाण भवे।
चउवीसा व मुहुत्ता जिणस्स होइ वरिसपुहुत्तं ॥१२७०॥

अत्थि मुहुत्ता बारह सव्वाउवज्जाण सेसपयडीण ।
आहारदुगे णेय सव्वेसिं हायणपुहुत्तं ॥१२७१॥

(प्रे०) वेउव्वे' इत्यादि, वैक्रियमिश्रमार्गणायामेकेन्द्रियस्थावरातपनामकर्मलक्षणस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धकानामुत्कृष्टमन्तरं चतुर्विंशतिमुहूर्तमानमस्ति । 'वा' शब्दः पक्षान्तरसूचकः, ततो द्वादशमुहूर्तप्रमाणं वाऽन्तरं ज्ञेयम् । भावना पुनरेवम्–प्रकृतप्रकृतित्रयस्य बन्धका भवनपतिप्रभृतीशानान्तदेवा वर्तन्ते, तेषामुत्पत्त्यन्तरस्य प्रत्येकं चतुर्विंशतिमुहूर्तप्रमाणमुत्कृष्टतया सत्त्वेन वैक्रियमिश्रमार्गणायां तावत्कालं न कोऽपि तद्बन्धकत्वेनोपलभ्यते, अतस्तदवसरे तेषां चतुर्विंशतिमुहूर्तप्रमाण प्रकृष्टमन्तरं समुपलब्धं भवति । यद्वा समुदितानामीशानान्तदेवपर्यन्तानामन्तरं द्वादशमुहूर्तप्रमाणं सम्भाव्यते, तदा प्रकृतप्रकृतित्रयस्योत्कृष्टमन्तरं द्वादशमुहूर्तप्रमाणमवसेयम् । 'जिणस्स' इत्यादि, जिननामकर्मबन्धकाना प्रकृष्टमन्तरं वर्षपृथक्त्वप्रमाणमवसेयम् , यतो बद्धनिकाचितजिननामा मनुष्यः स्वकीयभवाद् देवलोक उत्कृष्टतो वर्षपृथक्त्वानन्तरमुत्पद्यते । वर्षपृथक्त्वशब्दोऽत्र वर्षबहुत्वार्थको विज्ञेयः, अन्यथाऽनुपपत्तिरत्र स्यात् । 'अत्थि' शेषाणामुत्तरप्रकृतीनां बन्धकानामुत्कृष्टमन्तरं द्वादशमुहूर्तप्रमितमस्ति, एतन्मार्गणामत्काऽन्तरस्य द्वादशमुहूर्तप्रमाणत्वात् । उक्तं च जीवसमासे विउव्विमिस्सेसु बारस हु ति मुहुत्ता । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः–सप्तचत्वारिंशद् ध्रुवबन्धिप्रकृतयो वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रय तिर्यग्नरगतिद्वयं पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिकद्विकं संहननषट्कं संस्थानषट्कं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयं खगतिद्विकं त्रसदशकमस्थिरषट्कमुद्योतपराघातोच्छ्वासनामत्रयं गोत्रद्वयं चेत्येकपञ्चाशदध्रुवबन्धिप्रकृतयश्चेत्यष्टनवतिरिति । 'आहारदुगे' इत्यादि, आहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगमार्गणयोः स्वप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकानामुत्कृष्टमन्तरं वर्षपृथक्त्वप्रमाणं वेदयितव्यम् , मार्गणयोरनयोरुत्कृष्टान्तरस्य तावत्प्रमाणत्वात् । उक्तं च जीवसमासे, आहारमिस्सजोगे वासपुहुत्त । अत्र आहारगाइ लोए छम्मास जा न होंति उ कयाई' इत्यादि, प्रज्ञापनावचनाद् आहारककाययोगाऽऽहारकमिश्रकाययोगयोरन्तरं षण्मासप्रमाणं भवति, तेनाऽत्रानेनाभिप्रायेण षण्मासप्रमाणं सर्वासां प्रकृतीनां बन्धकानामन्तरं वक्तव्यम् । तत्त्वं त्वत्र सर्ववेदिनो विदन्ति ।१२७०-७१॥

सम्प्रति सूक्ष्मसम्परायमार्गणायामुपशमसम्यक्त्वमार्गणायां चायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानामुत्कृष्टमन्तरमुपदर्शयन्नाह

सुहुमे होइ छमासा अत्थि उवसमम्मि हायणपुहुत्तं ।
तित्थाहारदुगाण सत्त दिणा हवइ सेसाण ॥१२७२॥

(प्रे०) 'सुहुमे' इत्यादि, सूक्ष्मसम्परायसंयममार्गणायां स्वप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकानामुत्कृष्टमन्तरं षण्मासप्रमाणमस्ति श्रेणेरुत्कृष्टतः षण्मासिकाऽन्तरभावेन मार्गणाया अस्या अन्तरस्य तावत्प्रमाण-

त्वात् । उक्तं च--"सूक्ष्मसम्परायचारित्रिणां तु जघन्यत समय उत्कृष्टस्तु षड्मासा विरहकालः" इति । "उवसमम्मि" इत्यादि, उपशमसम्यक्त्वमार्गणायां जिननामाहारकद्विकरूपस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धकानामुत्कृष्टमन्तरं वर्षपृथक्त्वप्रमित वेदयितव्यम् , प्रथमोपशमसम्यक्त्वे प्रकृतप्रकृतित्रयस्य बन्धाभावेन श्रेणिसत्कोपशमसम्यक्त्व एव तद्बन्धसम्भवेन चोपशमश्रेणिविरहकालतोऽधिकविरहकालस्य प्रकृष्टतया सम्भवान्न्यूनविरहकालस्याऽसम्भवाच्च ।'सत्त' इत्यादि, जिननामाहारकद्विकेतरप्रकृतिबन्धकानामुत्कृष्टमन्तरं सप्त दिनानि वर्तते, उपशमसम्यक्त्वप्राप्तेरन्तरस्योत्कृष्टतः सप्तदिनप्रमाणत्वेन तावत्कालं शेषप्रकृतिबन्धकत्वेन कस्याप्यत्र जीवस्य प्राप्यमाणत्वाभावात् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकमृते एकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेददेवमनुष्यगतिद्वयपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसहननसमचतुरस्रसंस्थानदेवमनुष्यानुपूर्वीद्वयसुखगतित्रसदशकाऽस्थिराऽशुभायशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाः पञ्चत्रिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतयश्चेति ॥१२७२॥ इत्येवमभिहित मार्गणास्वायुष्कवर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानामन्तरम् ।

इदानीं मार्गणास्वायुष्ककर्मवर्जशेषोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां जघन्योत्कृष्टाभ्यामन्तरमुपदर्शयन्नादौ सास्वादनसम्यक्त्वमिश्रसम्यक्त्वाऽपर्याप्तमनुष्यमार्गणासु तद् दर्शयति–

अंतरमबंधगाण अपज्जणरमीससासणेसु लहुं ।
समयो सव्वाण गुरुं पल्लस्स भवे असखंसो ॥१२७३॥

(प्रे०) 'अंतर' इत्यादि, अपर्याप्तमनुष्यसास्वादनसम्यक्त्वमिश्रसम्यक्त्वरूपासु तिसृषु मार्गणास्वायुर्वर्जस्वप्रायोग्यासु प्रकृतिषु यासामबन्धः प्राप्यते, तासां सर्वासां प्रकृतीनामबन्धकानां जघन्यमन्तरं समयप्रमाणमुत्कृष्टतश्च पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणमस्ति, मार्गणानामासां जघन्यतः समयप्रमाणस्योत्कृष्टतश्च पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणस्याऽन्तरस्य सत्त्वात् ॥१२७३॥

अधुना मनोद्वयादिमार्गणास्वबन्धकानां कथयति

इगतीसधुवाण लहुं दुमणवयणवणअणयणसण्णीसु ।
समयो गुरुं छमासा सेसाण अंतर णत्थि ॥१२७४॥

(प्रे०) 'इगतीस' इत्यादि, असत्यमनःसत्यासत्यमनोऽसत्यवचनसत्यासत्यवचनचक्षुर्दर्शनाऽचक्षुर्दर्शनसंज्ञिरूपासु सप्तसु मार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपाः षोडशः प्रकृतीर्विहाय शेषाणामेकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धकानां जघन्यमन्तरं समयरूपमुत्कृष्टं च षण्मासप्रमाणमस्ति । भावना पुनरेवम्– प्रकृतीनामासां श्रेणावेव बन्धविच्छेदसम्भवेन तासामबन्धकाः श्रेणावेव समुपलभ्यन्ते, श्रेणेरन्तरस्य जघन्यतयोत्कृष्टतया च तावन्मितत्वात् । 'सेसाणं' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयादिषोडशप्रकृतयः, आयुर्वर्जसर्वाध्रुवबन्धिप्रकृतयश्चेति पञ्चाशीतिप्रकृतीनामबन्धकानामन्तरं नास्ति, अनवरतं तेषां बन्धकानामुपलभ्यमानत्वात् ॥१२७४॥

अथौदारिकमिश्रकार्मणकाययोगमार्गणयोः प्रकृतान्तरमाह

धुववधिउरालाण समयो लहुँमुरलमीसकम्मेसुं ।
जेट्ठं वासपुहुत्तं धुववधीण गुणतीसाए ॥१२७५॥
मासपुहुत्तं णेय थीणद्धितिगाणमिच्छउरलाण ।
णो अत्थि अंतरं खलु सप्पाउग्गाण सेसाण ॥१२७६॥

(प्रे०) 'धुव' इत्यादि, औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां कार्मणकाययोगमार्गणायां च सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनाम्नश्चाऽबन्धकानां जघन्यमन्तरं समयप्रमितमस्ति, भावना त्वेवं विधेया–औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणा तिर्यग्मनुष्यगत्योरुत्पत्तिसमये, मनुष्यगतौ केवलिसमुद्घातावसरे द्वितीयसमये षष्ठमसप्तमसमययोश्चाऽवाप्यते, कार्मणकाययोगमार्गणा त्वन्तरालगतौ केवलिसमुद्घातवेलायां च तृतीयतुर्यपञ्चमसमयेषु प्राप्यते, औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां कार्मणकाययोगमार्गणायां च मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकस्यौदारिकशरीरनाम्नश्चाऽबन्धकाः सम्यग्दृष्टयो वर्तन्ते, शेषैकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां तु ते बन्धका एव, केवलिसमुद्घातावसरे पुनरत्र प्रकृतसकलप्रकृतीनामबन्धकाः प्राप्यन्ते, सम्यग्दृष्टीनां केवलज्ञानिनां च मार्गणयोरनयोरागमने जघन्यतः समयप्रमाणमन्तरं भवति, तदा प्रकृतप्रकृत्यबन्धकानां समयप्रमाणमन्तरमुपलभ्यं भवति । 'जेट्ठं' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकं विहाय शेषाणामेकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धकानां प्रकृष्टमन्तरं वर्षपृथक्त्वं भवति, तदेवम्–मार्गणयोरनयोरेतासां प्रकृतीनामबन्धकाः समुद्घातावसरे केवलज्ञानिनो वर्तन्ते, केवलिसमुद्घातस्य यदोत्कृष्टतो वर्षपृथक्त्वप्रमाणमन्तरं भवति, तदा मार्गणयोरनयोः कस्याऽपि जीवस्य प्रकृतप्रकृत्यबन्धकतयाऽविद्यमानत्वेनाऽभिहितप्रमाणमन्तरमवाप्तुं योग्यम् । 'मास' इत्यादि, स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयौदारिकशरीरनामलक्षणस्य प्रकृतिनवकस्याबन्धकानामुत्कृष्टमन्तरं मासपृथक्त्वमवगन्तव्यम् । यतो मार्गणयोरनयोः सम्यग्दृष्टिजीवानामागमने प्रकृष्टतो मासपृथक्त्वात्मकमन्तरं भवति, ते च तदबन्धकाः सन्ति । 'णो' इत्यादि, उदितेतरशेषप्रकृत्यबन्धकानामन्तरं नास्ति, सततं तेषां प्राप्यमाणत्वात् । ताश्चेमाः-शेषप्रकृतयः-वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयदेवमनुष्यतिर्यग्गतित्रयजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कदेवमनुष्यतिर्यगानुपूर्वीत्रयखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासजिननामगोत्रद्वयरूपाश्चतुःपञ्चाशदध्रुवबन्धिप्रकृतय इति ॥१२७५-६॥

इदानीं वैक्रियमिश्रमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां द्विविधमप्यन्तरं प्रदर्शयन्नाह

वेउव्वमीसजोगे सप्पाउग्गाण सव्वपयडीण ।
समयो भवे जहण्णं उक्कोसं बारस मुहुत्ता ॥१२७७॥

(प्रे०) 'वेउव्व' इत्यादि, वैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणायां स्वाऽबन्धप्रायोग्याणां सकलप्रकृतीनामबन्धकानां जघन्यमन्तरं समयप्रमितमस्ति । 'उक्कोसं' इत्यादि, उत्कृष्टमन्तरं सर्वासां प्रकृतीनां

द्वादशमुहूर्तप्रमाणम्, मार्गणाया अस्या जघन्यत उत्कृष्टतश्चान्तरस्य तावन्मितत्वात् ॥१२७७॥

इदानीमाहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगमार्गणाद्वय आयुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानामुभयविधमन्तरं निरूपयितुमाह

आहारदुगे हविरे सप्पाउग्गाण जाण पयडीणं।
ताण जहण्ण समयो उक्कोसं हायणपुहुत्तं ॥१२७८॥

(प्रे०) 'आहार' इत्यादि, आहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगमार्गणयोः स्वप्रायोग्याणां यासां प्रकृतीनामबन्धका वर्तन्ते, तेषां जघन्यमन्तरं समयप्रमाणमुत्कृष्टं च वर्षपृथक्त्वप्रमाणमस्ति, मार्गणयोरनयोर्जघन्यतः समयप्रमाणस्योत्कृष्टतश्च वर्षपृथक्त्वप्रमाणस्याऽन्तरस्य भावात् ॥१२७८॥

सम्प्रति स्त्रीनपुंसकवेदलक्षणमार्गणाद्वय आयुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानामन्तरं द्वैविध्येनाह

थीणपुमेसुं जेसिं सव्वद्धा ताण अंतरं णत्थि।
सेसाण लहुं समयो वासपुहुत्तं भवे जेट्ठं ॥१२७९॥

(प्रे०) 'थी' इत्यादि, स्त्रीवेदनपुंसकवेदाख्ययोर्मार्गणयोर्यासां प्रकृतीनामबन्धकाः सर्वाद्धायां प्राप्यन्ते, तेषामत्र नास्त्यन्तरम्। ताश्चेमाः प्रकृतयः–मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिप्रभृतिकषायद्वादशरूपषोडशप्रकृतय एकोनसप्तत्यध्रुवबन्धिप्रकृतयश्चेति। ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्काऽन्तरायपञ्चकरूपाणामष्टादशप्रकृतीनामबन्धका एव न भवन्ति, अत्रस्थैः सर्वैरेव जीवैर्बध्यमानत्वादासाम्। 'सेसाण' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीनामबन्धकानां जघन्यमन्तरं समयप्रमाणमुत्कृष्टं च वर्षपृथक्त्वप्रमाणं विज्ञेयम्। भावनाप्रकारस्त्वेवम्–मार्गणयोरनयोः शेषप्रकृतीनामबन्धकाः श्रेणावेव प्राप्यन्ते, यदा श्रेणेर्जघन्यतः समयप्रमाणमन्तरमुत्कृष्टं च वर्षपृथक्त्वप्रमाणं जायते, तदा तावत्प्रमाणमन्तरं शेषप्रकृत्यबन्धकानामुपलब्धं भवति, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः–निद्राद्विकभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणरूपास्त्रयोदशेति ॥१२७९॥

अधुना पुरुषवेदमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानामुभयप्रकारेणाऽन्तरं चिकथयिषुराह–

पुरिसे जेसिं कालो सव्वद्धा ताण अंतरं णत्थि।
सेसाण लहुं समयो साहियवासो भवे जेट्ठं ॥१२८०॥

(प्रे०) 'पुरिसे' इत्यादि, पुरुषवेदमार्गणायां यासां प्रकृतीनामबन्धकाः सर्वाद्धायां समुपलभ्यन्ते, तेषामन्तरं न संभवति। ताश्चानन्तरोक्ताः षोडशध्रुवबन्धिन्यस्तथैकोनसप्तत्यध्रुवबन्धिप्रकृतयश्च। ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्काऽन्तरायपञ्चकरूपाणामष्टादशप्रकृतीनामबन्धका न सन्ति, सर्वैरेवाऽत्रस्थैर्जीवैर्बध्यमानत्वात्तासाम्। 'सेसाण' इत्यादि, निद्राद्विकभयजुगुप्सावर्णचतुष्कतैजसकार्मणशरीरद्वयाऽगुरुलघूपघातनिर्माणरूपाणां त्रयोदशानां शेषप्रकृतीनाम-

बन्धकानां जघन्यतः समयप्रमाणमुत्कृष्टतश्च साधिकवर्षप्रमाणमन्तरं वेदयितव्यम् , मार्गणायामस्यां श्रेणेरन्तरस्य तावन्मात्रत्वात् ॥१२८०॥

इदानीं क्रोधमानमायारूपासु तिसृषु मार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां द्विविधमप्यन्तरं विभावयन्नाह—

तिकसायेसु जेसिं सव्वद्धा ताण अंतरं णत्थि ।
सेसाण लहुं समयो गुरुमहियसमा उअ छमासा ॥१२८१॥

(प्रे०) 'तिकसायेसु' इत्यादि, क्रोधमानमायालक्षणासु तिसृषु मार्गणासु यासां प्रकृतीनामबन्धकाः सर्वाद्धायां भवन्ति, तेषामन्तरं नास्ति, ताः प्रकृतयस्तु स्त्रीवेदादिमार्गणोक्ता ज्ञातव्याः। 'सेसाण' इत्यादि, निद्राद्विकभयजुगुप्सावर्णचतुष्कतैजसकार्मणशरीरद्वयाऽगुरुलघूपघातनिर्माणरूपाणां त्रयोदशप्रकृतीनां क्रोधमार्गणायां, मानमार्गणायामुक्तत्रयोदशप्रकृतीनां संज्वलनक्रोधस्य च, मायायां तूक्तत्रयोदशानां सञ्ज्वलनक्रोधमानयोरप्यबन्धकानां जघन्यमन्तरं समयप्रमाणमुत्कृष्टं च साधिकैकवर्षप्रमितमस्ति । 'उअ' इत्यादि, मतान्तरेण पुनः षण्मासिकमुत्कृष्टमन्तरमस्ति । मार्गणास्वासु श्रेणेर्जघन्यतः समयप्रमाणस्योत्कृष्टतश्च साधिकवर्षप्रमाणस्य मतान्तरेण पुनः षण्मासप्रमाणस्याऽन्तरस्य सद्भावात् ॥१२८१॥

अथ लोभमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां द्वैविध्येनाऽन्तरमावेदयितुमाह-

लोहे हवए जेसिं सव्वद्धा ताण अंतरं णत्थि ।
सेसाण लहुं समयो उक्कोसं होइ छम्मासा ॥१२८२॥

(प्रे०) 'लोहे' इत्यादि, लोभाख्यमार्गणायां यासां प्रकृतीनामबन्धकाः सर्वाद्धायां भवन्ति, तेषामन्तरं नास्ति । ताश्चेमाः षोडशध्रुवबन्धिन्य एकोनसप्तत्यध्रुवबन्धिन्यश्च । ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्काऽन्तरायपञ्चकरूपाणां चतुर्दशप्रकृतीनामबन्धका न सन्ति । 'सेसाण' इत्यादि, निद्राद्विकभयकुत्सानामध्रुवबन्धिनवकसञ्ज्वलनचतुष्करूपाणां सप्तदशप्रकृतीनामबन्धकानां जघन्यमन्तरं समयप्रमितमुत्कृष्टं च षण्मास भवति, अत्र श्रेणेस्तावत्प्रमाणाऽन्तरस्य भावात् ॥१२८२॥

सम्प्रति मतिश्रुतज्ञानमार्गणयोरायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानामन्तरं दर्शयन्नाह—

णाणदुगे सव्वद्धा जाण दुतीसाअ अंतरं णो सिं ।
सेसाण लहुं समयो उक्कोसं होइ छम्मासा ॥१२८३॥

(प्रे०) 'णाणदुगे' इत्यादि, मतिज्ञानश्रुतज्ञानाभिधयोर्मार्गणयोर्यासां द्वात्रिंशत्प्रकृतीनामबन्धकाः सर्वाद्धायां वर्तन्ते, तेषामन्तरं न भवति । ताश्चेमा द्वात्रिंशत्प्रकृतयः—अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कं प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं देवमनुष्यगतिद्वयमौदारिकद्विकं वैक्रियद्विकमाहारकद्विकं वज्रर्षभनाराचसंहननं देवमनुष्यानुपूर्वीद्वयं स्थिरशुभयशःकीर्तित्रयमस्थिरा-

शुभाऽयशःकीर्तित्रयं जिननाम चेति । 'सेसाण' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृत्यबन्धकानां जघन्यमन्तरं समयमितमुत्कृष्टं च षण्मासप्रमितं भवति, श्रेणेरन्तरस्याऽत्र तावत्प्रमाणत्वात्, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कनिद्राद्विकसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सावर्णचतुष्कतैजसकार्मणशरीरद्व---यागुरुलघूपघातनिर्माणान्तरायपञ्चकरूपा एकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः पुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसम-चतुरस्रसंस्थानसुखगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिवर्जत्रससप्तकपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाश्चतुर्दशाऽध्रुव--बन्धिप्रकृतयश्चेति ॥१२८३॥

अथाऽवधिज्ञानावधिदर्शनमार्गणयोरबन्धकानामुभयविधमन्तरं निरूपयितुमाह-

ण सिमंतरमोहिदुगे सव्वद्धा जाण अत्थि सेसाणं ।
समयो लहुमहियसमा वासपुहुत्तं व होइ गुरु ॥१२८४॥

(प्रे०) 'ण' इत्यादि, अवधिज्ञानावधिदर्शनमार्गणाद्वये यासां प्रकृतीनामबन्धकाः सर्वदैव वर्तन्ते, तेषामन्तरं नास्ति । 'सेसाण' इत्यादि, तद्व्यतिरिक्तशेषप्रकृत्यबन्धकानां जघन्यतयाऽन्तरं समयप्रमाणं प्रकृष्टं च साधिकवर्षप्रमाणं मतान्तरेण पुनर्वर्षपृथक्त्वप्रमाणमवसातव्यम्, श्रेणेरन्तरस्याऽत्र तावत्प्रमाणत्वात्, मतान्तरेण पुनः वर्षपृथक्त्वप्रमाणत्वाच्च । उभयत्राऽपि प्रकृतयो मतिश्रुतज्ञानमार्गणयोरभिहिता ग्राह्याः ॥१२८४॥

इदानीं मनःपर्यवज्ञानमार्गणायां प्रकृतमन्तरं दर्शयति-

सायाइपणरसण्ह मणणाणे णत्थि अतर चेव ।
सेसाण लहुं समयो उक्कोस हायणपुहुत्तं ॥१२८५॥

(प्रे०) 'साया' इत्यादि, सातवेदनीयाऽसातवेदनीयहास्यरतिशोकाऽरतिस्थिरास्थिरशुभा-शुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिजिननामाहारकद्विकलक्षणानां पञ्चदशप्रकृतीनामबन्धकानामन्तरं नास्ति, सर्वदैव तेषां समुपलभ्यमानत्वात् । 'सेसाण' इत्यादि, तदतिरिक्तप्रकृत्यबन्धकानां जघन्यमन्तरं समयः, उत्कृष्टं च वर्षपृथक्त्वं ज्ञेयम्, श्रेणेरिहाऽन्तरस्य तावत्प्रमाणत्वात् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-मिथ्यात्वमोहनीयादिषोडशप्रकृतिवर्जशेषैकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः, पुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजाति-वैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वीसुखगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिवर्जत्रससप्तकपराघातोच्छ्वासोच्चै-र्गोत्ररूपा अष्टादशाध्रुवबन्धिप्रकृतयश्चेति ॥१२८५॥

अथाऽज्ञानत्रये यथाख्यातसंयममार्गणायां चायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानामुभयथाऽन्तरमुच्यते-

तिअणाणेसु खणो लहु मिच्छस्स पलियअसंखभागोऽण्णं ।
णऽण्णाणऽहखाए लहु सायस्स खणो छमासाऽण्णं ॥१२८६॥

(प्रे०) 'तिअणाणेसु' इत्यादि, मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानरूपासु तिसृष्वज्ञानमार्गणासु

मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽबन्धकानां जघन्यमन्तरं समयप्रमितमस्ति, उत्कृष्टं चाऽन्तरं पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणमस्ति, यतो हि मार्गणयोरनयोर्मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽबन्धकाः सास्वादना जीवा वर्तन्ते, सास्वादनसम्यक्त्वस्य च जघन्यमन्तरं समयमितमुत्कृष्टं च पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणमस्ति। शेषध्रुवबन्धिनीनामबन्धका न सन्ति, तथाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धकाः सदा प्राप्यन्ते, तस्मादध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धकानामन्तर निषिद्धं ज्ञेयम्।

'ऽहक्खाए' इत्यादि, यथाख्यातसंयममार्गणायां सातवेदनीयस्याऽबन्धकानां जघन्यमन्तरं समयप्रमाणमुत्कृष्टतश्च षण्मासा वर्तन्ते, तद्यथा–मार्गणायामस्यां सातवेदनीयस्याऽबन्धका अयोगिकेवलिनो वर्तन्ते, अयोगिगुणस्थानस्याऽन्तरं जघन्यतः समयप्रमाणमुत्कृष्टतश्च षण्मासप्रमाणमस्ति, तस्मादुक्तप्रमाणमन्तरमुपपन्नं भवति। मार्गणायामस्यां शेषप्रकृतयो नैव बध्यन्ते,अतस्तासामबन्धकानामपि मार्गणं कुतः ? इति ॥१२८६॥

अथ सामायिकसंयममार्गणायां प्रस्तुतमाह

> सायाइपणरसण्ह सामइए णत्थि अतरं चेव ।
> तेत्तीसाअ जहण्ण समयो गुरुमत्थि छम्मासा ॥१२८७॥

(प्रे०) 'सायाइ' इत्यादि, सामायिकसंयममार्गणायां सातवेदनीयप्रमुखपञ्चदशप्रकृत्यबन्धकानामन्तरं नास्ति, सततं तेषां प्राप्यमाणत्वात्। 'तेत्तीसाअ' इत्यादि, निद्राद्विकसंज्वलनत्रिकभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणरूपाः षोडशध्रुवबन्धिप्रकृतयः पुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वीशुभविहायोगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिवर्जत्रससप्तकपराघातोच्छ्वासरूपाः सप्तदशाऽध्रुवबन्धिप्रकृतयश्चेति त्रयस्त्रिंशत्प्रकृतीनामबन्धकानां जघन्यमन्तरं समयप्रमितं प्रकृष्टं च षण्मासा भवन्ति, श्रेणेरन्तरस्येयत्प्रमाणत्वादिह। ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसंज्वलनलोभाऽन्तरायपञ्चकोच्चैर्गोत्ररूपाणां षोडशप्रकृतीनामबन्धका एव न वर्तन्ते, यतः सर्वेऽवस्था जीवास्ता बध्नन्ति, तस्मात्तदन्तरविचारणाऽप्रकृतेति ॥१२८७॥

अधुना छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिसयममार्गणयोरायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानामुभयविधमन्तरं निरूपयन्नाह

> छेए तह परिहारे पणरससायाइगाण सयमुज्झ ।
> लहुमियरेसिं समयो गुरुमयराऽट्ठारकोडिकोडीओ ॥१२८८॥ (गीति.)

(प्रे०) 'छेए' इत्यादि, छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिसंयममार्गणयोः सातवेदनीयाऽसातवेदनीयहास्यादियुगलद्वयस्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिजिननामाहारकद्विकरूपाणां पञ्चदशप्रकृतीनामबन्धकानां जघन्यमन्तर स्वयमूह्यम्। अनयोर्मार्गणयोर्जघन्यपदे जीवसङ्ख्याया निर्णया-

भावात् । 'इयरेसिं' इत्यादि, सातवेदनीयादिपञ्चदशप्रकृतिवर्जशेषप्रकृतिषु यासामबन्धका वर्तन्ते, तासां शेषप्रकृतीनामबन्धकानां जघन्यमन्तरं समयप्रमितमस्ति,भावना पुनरेवं विधेया–छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणायां चतुर्दशज्ञानावरणीयादिप्रकृतयः सञ्ज्वलनलोभ उच्चैर्गोत्रं चेति षोडशप्रकृतीः सातवेदनीयादिपञ्चदशप्रकृतीश्च वर्जयित्वा शेषप्रकृतीनामबन्धकाः श्रेणावेव प्राप्यन्ते, अतः श्रेण्यपेक्षयैव प्रकृतमन्तरं समुपलब्धं भवति, तद्यथा–प्रस्तुतमार्गणायां वर्तमानेषु जीवेषु ये केचन जीवाः श्रेणावबन्धकतया प्राप्यन्ते, ते च यदा सर्वे सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानकमवाप्नुवन्ति, तदा प्रकृतशेषप्रकृत्यबन्धकानां मार्गणाविच्छेदात् प्रकृतमार्गणायां न कोऽपि प्रकृतशेषप्रकृत्यबन्धकोऽस्ति, तदनन्तरसमये उपशमश्रेणेरवरोहकाः केचन जीवाः पुनरपि नवमगुणस्थानकमायान्ति, तदा प्रकृतशेषप्रकृत्यबन्धकानामस्यां मार्गणायां प्राप्तिर्भवति, अतः समयप्रमाणमन्तरं प्रकृतप्रकृत्यबन्धकानामत्र प्राप्यते । प्रकारान्तरेणाऽपि समयात्मकाऽन्तरस्य भावना स्वयं भाव्या । ज्ञानावरणीयादिषोडशप्रकृतिवर्जनं त्वत्र तदबन्धकानामप्राप्यमाणत्वाद् विज्ञेयम् ।

परिहारविशुद्धिमार्गणायां पुनः शेषप्रकृत्यबन्धकानामेव विरहादन्तरं न सम्भवति । 'गुरु' मित्यादि, सर्वासामबन्धप्रायोग्यप्रकृतीनामबन्धकानामुत्कृष्टमन्तरमष्टादशकोटिकोटिसागरोपमप्रमाणमस्ति, मार्गणाप्रकृष्टविरहकालस्य तावन्मितत्वात् । छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणायां ज्ञानावरणादिषोडशप्रकृतिवर्जबध्यमानशेषप्रकृतीनां परिहारविशुद्धिसंयममार्गणायां च सातवेदनीयादिपञ्चदशप्रकृतीनामेवाऽबन्धकानां प्रकृतमन्तरं विज्ञेयम् ॥१२८८॥

साम्प्रतमुपशमसम्यक्त्वमार्गणायां शेषमार्गणासु चोत्तरप्रकृत्यबन्धकानामन्तरं वेदयितुमाह

सव्वाण लहुमुवसमे समयो सायाइबारसण्ह तहा ।
वइरणरसुरोरालियविउव्वाहारदुगतित्थाणं ॥१२८९॥
उक्कोस सत्तदिणा दुइअकसायाण चउदस दिवाऽत्थि ।
पचदस अहोरत्ता तइअकसायाण विण्णेयं ॥१२९०॥
वासपुहुत्तं हवए पणयालीसाअ सेसपयडीण ।
सेसासु अंतरं णो सप्पाउग्गाण सव्वेसिं॥ १२९१॥

(प्रे०) 'सव्वाण' इत्यादि, उपशमसम्यक्त्वमार्गणायां स्वबन्धप्रायोग्याणां सर्वासां प्रकृतीनामबन्धकानां जघन्यमन्तरं समयप्रमाणमस्ति मार्गणाया अस्या अन्तरस्य जघन्यतया समयप्रमाणत्वात् । 'साया' इत्यादि, सातवेदनीयाऽसातवेदनीयहास्यरतिशोकाऽरतिस्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिरूपाणां द्वादशप्रकृतीनां वज्रर्षभनाराचसंहननमनुष्यद्विकसुरद्विकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकजिननामरूपाणां द्वादशप्रकृतीनां चाऽबन्धकानामुत्कृष्टमन्तरं सप्तदिनमानमस्ति,उपशमसम्यक्त्वप्राप्तेरन्तरस्य प्रकृष्टतोऽपि सप्तदिवसप्रमाणत्वात् । 'दुइअ' इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्याऽबन्धकानां प्रकृष्टमन्तरं चतुर्दशदिनानि वर्तते, यतोऽत्र देशविरताः प्रकृतीनामेतासामबन्धक-

तथा वर्तन्ते, तेषां चोत्कर्षतोऽन्तरं चतुर्दशदिनमानमस्ति । 'पन्नरस'इत्यादि, प्रत्याख्यानावरण-चतुष्कस्याऽबन्धकानामुत्कृष्टतोऽन्तरं पञ्चदशाहोरात्राणि वर्तते, तद्यथा—मार्गणास्वासु संयताः प्रकृतप्रकृतिचतुष्काऽबन्धका विद्यन्ते, तेषां चोत्कृष्टमन्तरं पञ्चदशदिनानि वर्तते। 'वासपुहुत्त'मित्यादि, एतद्व्यतिरिक्तप्रकृत्यबन्धकानामुत्कर्षतयाऽन्तरं वर्षपृथक्त्वमवसेयम्, यत उपशमश्रेणौ वर्तमाना जीवा यथायोग शेषप्रकृतीनामबन्धकत्वेन प्राप्यन्ते, उपशमश्रेणेश्च, प्रकृष्टान्तरं तावन्मितमस्ति । उक्तं चोपशमश्रेणेरुत्कृष्टमन्तरं पञ्चसंग्रहवृत्तौ 'उपशमकानामुपशमश्रेण्यन्तर्गतानामपूर्वकरणादीनामुपशान्तमोहान्तानां नानाजीवविषयमन्तरमुत्कृष्टं वर्षपृथक्त्वं भवति ।' ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सावर्णादिचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणतैजसकार्मणशरीरद्वयाऽन्तरायपञ्चकरूपा एकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः पुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिवर्जत्रसनवकपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाश्चतुर्दशाध्रुवबन्धिप्रकृतयश्चेति ।

'सेसासु' इत्यादि, अत्रोक्तविभिन्नासु शेषमार्गणासु स्वप्रायोग्यप्रकृत्यबन्धकानामन्तरं नास्ति, निरन्तरं तेषां समुपलभ्यमानत्वात् । ताश्चेमाः शेषमार्गणाः—अपर्याप्तमनुष्यवर्जपट्चत्वारिंशद्गतिमार्गणाः, एकोनविंशतिरिन्द्रियमार्गणाः, द्विचत्वारिंशत्कायमार्गणाः, ओघसत्याऽसत्यामृषाभेदेन तिस्रो मनोयोगमार्गणाः, तिस्रो वचनयोगमार्गणाः, काययोगौघौदारिककाययोगवैक्रियकाययोगरूपास्तिस्रो मार्गणाः, अवेदमार्गणा, अकषायमार्गणा, केवलज्ञानमार्गणा, संयमौघदेशविरत्यसंयमरूपास्त्रिमार्गणाः, केवलदर्शनमार्गणा, कृष्णादिलेश्यामार्गणाषट्कम्, भव्याभव्यमार्गणाद्वयम्, सम्यक्त्वौघक्षायिकक्षयोपशमसम्यक्त्वमिथ्यात्वमार्गणाचतुष्कम्, असंज्ञिमार्गणा, आहारकानाहारकमार्गणाद्वयं चेत्यष्टात्रिंशदधिकशतम् । अत्र सूक्ष्मसम्परायमार्गणायां कस्या अपि प्रकृतेरबन्धकाभावादबन्धकाऽन्तरस्य चिन्ता न कृता ।

अवेदाऽकषायकेवलद्विकसम्यक्त्वौघक्षायिकसम्यक्त्वाऽनाहारकमार्गणासु सिद्धानां प्रवेशेनाऽबन्धकाः सर्वदा प्राप्यन्ते, अतोऽन्तरस्याऽसम्भवः, मनुष्यमार्गणात्रये पञ्चेन्द्रियमार्गणाद्वये त्रसमार्गणाद्वये त्रिमनोयोगत्रिवचनयोगौदारिककाययोगेषु संयमौघे शुक्ललेश्यायां भव्ये आहारकमार्गणायां च सयोगिकेवलिनां प्रवेशेन सातवेदनीयवर्जानां सर्वासां प्रकृतीनामबन्धकाः सर्वदा प्राप्यन्ते, तथा सातवेदनीयाऽबन्धकतयाऽसातवेदनीयबन्धका अधस्तनगुणस्थानस्थाः सर्वदा प्राप्यन्ते, तस्मादासु मार्गणासु सर्वासां प्रकृतीनामबन्धकानामन्तरं नास्ति। अथ शेषमार्गणासु ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धका उपरितनगुणस्थानकेषु लभ्यन्ते उपरितनगुणस्थानानां तत्र सर्वदा लाभात् । तथाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धकतया सर्वदा प्रतिपक्षप्रकृतीनां बन्धकाः समुपलभ्यन्त इति कृत्वा च तत्र यासां प्रकृतीनामबन्धकाः प्राप्ता भवन्ति, तेषां विरहो नास्ति । कासुचिन्मार्गणासु पुनरेकस्यैव गुणस्थानकस्य सत्त्वात्तत्र ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धका नैव प्राप्यन्त इत्यपि ज्ञातव्यम् ॥१२८९-९०-९१॥ तदेवमुक्तमायुर्वर्जोत्तरप्रकृतीनामबन्धकानां जघन्योत्कृष्टमन्तरमादेशतो मार्गणास्विति ।

इदानीं मार्गणास्वायुष्ककर्मबन्धकानामनेकजीवानाश्रित्याऽन्तरं प्रतिपादयन्नादौ द्वाषष्टिमार्गणासु तिर्यगायुर्बन्धकानां तन्निषेधयितुकाम आह–

जहि बंधगाण कालो हवेज्ज तिरियाउगस्स सव्वद्धा ।
तहि तस्स बंधगाण दुसट्ठीए अंतरं णत्थि ॥१२९२॥

(प्रे०) 'जहि' इत्यादि, यासु द्वाषष्टिमार्गणासु तिर्यगायुष्कस्य बन्धकानां कालः सर्वाद्धा भवति, तासु तस्य बन्धकानामन्तरं नास्ति, प्रकृतद्वाषष्टिमार्गणासु तिर्यगायुर्बन्धकजीवानामसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणत्वेनाऽनन्तलोकाकाशप्रदेशप्रमाणत्वेन वा भङ्गविचये केवलमष्टमभङ्गस्यैव भणितत्वान्नैरन्तर्येण समुपलभ्यमानत्वात् । द्वाषष्टिमार्गणाः पुनर्भङ्गविचयद्वार आयुर्बन्धकानां भङ्गप्ररूपणाऽवसरे शेषत्वेनाऽभिहिता एवाऽत्र ग्राह्याः ॥१२९२॥

अधुना तिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघादिमार्गणासु तिर्यगायुष्कबन्धकानां जघन्योत्कृष्टाभ्यामन्तरमभिदधाति–

पंचिंदियतिरियविगलपणिंदियतसेसु सि अपज्जेसु ।
तिरियाउस्स जहण्णं समयो जेट्ठं मुहुत्तंतो ॥१२९३॥

(प्रे०) 'पंचिंदिय' इत्यादि, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघद्वीन्द्रियौघत्रीन्द्रियौघचतुरिन्द्रियौघपञ्चेन्द्रियौघत्रसौघरूपासु षट्सु मार्गणासु तासामेवाऽपर्याप्तरूपासु षट्सु मार्गणासु चेति सर्वसंख्यया द्वादशमार्गणासु तिर्यगायुष्कबन्धकानां जघन्यतोऽन्तरं समयः उत्कृष्टतश्चाऽन्तर्मुहूर्तमस्ति, मार्गणास्वासु जीवानामुत्पत्तिच्यवनयोरन्तरस्य जघन्यतः समयप्रमाणत्वात् , उत्कृष्टतश्चाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणत्वात् । ॥१२९३॥

साम्प्रतमुपर्युक्तमार्गणासु शेषायुर्बन्धकानां शेषमार्गणासु च सर्वेषां स्वप्रायोग्याणामायुषां बन्धकानां जघन्योत्कृष्टाभ्यामन्तरमाह–

सेसाऊणेआसुं सव्वाउगाउगाण सव्वेसिं ।
सेसासु लहुं समयो गुरु सयमुज्झं जहासुत्तं ॥१२९४॥

(प्रे०) 'सेसा' इत्यादि, अनन्तरोक्तद्वाषष्टिमार्गणासु तिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघादिद्वादशमार्गणासु च यथासंभवं तिर्यगायुर्वर्जशेषायुषां शेषमार्गणासु च सर्वेषां स्वप्रायोग्यायुषां बन्धकानां जघन्यमन्तरं समयप्रमाणमस्ति, तद्यथा–प्रकृतमार्गणासु प्रकृतायुर्बन्धकानामष्टानामपि भङ्गाना संभवेन तेषामन्तरं भवति, तदपि जघन्यतः समयप्रमाणमेव । 'गुरु' इत्यादि, प्रकृष्टमन्तरं तु यथासूत्रं स्वयमेवाभ्यूह्यम् ,यतो ग्रन्थेषु जीवानामुत्पत्तिच्यवनयोरन्तरविषयका नानाऽभिप्राया वर्तन्ते, अत्रायुर्बन्धप्रायोग्याः शेषमार्गणा वैक्रियमिश्रकार्मणाऽपगतवेदाऽकषायकेवलज्ञानसूक्ष्मसम्परायपथाख्यातसंयमकेवलदर्शनोपशमसम्यक्त्वमिश्रसम्यक्त्वाऽनाहारकवर्जा नवाशीतिर्विज्ञेयाः ॥१२९४॥ तदेवं मार्गणास्वायुर्बन्धकानामन्तरमुक्तम् ।

साम्प्रतं मार्गणास्वायुषामबन्धकानामन्तरमभिदधाति—

सव्वह णेयं अंतरमाऊण अवधगाण तावइअं।
सायस्स बंधगाणं जावइअं अंतरं अत्थि ॥ ॥

(प्रे०) 'सव्वह' इत्यादि, वैक्रियमिश्राद्येकादशमार्गणावर्जास्वायुर्बन्धप्रायोग्यासु त्रिपञ्चाधिकशतमार्गणासु स्वप्रायोग्याणामायुषामबन्धकानामन्तरं सातवेदनीयबन्धकानामन्तरं यावत्प्रमाणं भवति तावत्प्रमाणं ज्ञेयम् , तथाहि—ध्रुवमार्गणासु सातवेदनीयस्य बन्धकानामिवाऽऽयुरबन्धकानामन्तरं नास्ति, आयुर्बन्धप्रायोग्यसान्तरमार्गणासु चायुरबन्धकानामन्तरं यथा सातवेदनीयस्य बन्धकानामन्तरं निर्दिष्टं तथा विज्ञेयम् ; ताश्चेमा आयुर्बन्धप्रायोग्याः सान्तरमार्गणाः—अपर्याप्तमनुष्याहारकद्विकपरिहारविशुद्धिसंयमच्छेदोपस्थापनीयसंयमसास्वादनसम्यक्त्वरूपाः षण्मार्गणा इति । ॥१२९५॥ इत्येवमभिहित मार्गणास्वायुरबन्धकानामनेकजीवाश्रितमन्तरम् ,अभिहिते च तस्मिन् समाप्तिमगादनेकजीवाश्रितमुत्तरप्रकृतिबन्धकाबन्धकानामन्तरद्वारम् ।

॥ इति श्रीबन्धविधाने प्रेमप्रभाटीकाविभूषिते प्रथमाधिकारे
त्रयोदशमन्तरद्वारं समाप्तम् ॥



॥ अथ चतुर्दशं भावद्वारम् ॥

अथ क्रमलब्धं चतुर्दशं भावद्वारं निरूपयन्नादावोघादेशाभ्यामुत्तरप्रकृतिबन्धस्य भावान् भाषते—

बंधो ओदइयेणं भावेण अत्थि सव्वपयडीणं।
एमेव जाणियव्वो सव्वासु मग्गणासु सव्वासु ॥१२९६॥

(प्रे०) 'बंधो' इत्यादि, सर्वासामुत्तरप्रकृतीनां बन्ध औदयिकभावेन भवति । 'एमेव' इत्यादि, सर्वासु मार्गणासु स्वप्रायोग्योत्तरप्रकृतीनां बन्ध औदयिकभावेन भवतीति ज्ञातव्यम्, कर्मबन्धस्य यथायोगं मिथ्यात्वाऽविरतिकषाययोगप्रत्ययिकत्वात्, मिथ्यात्वादीनां च कर्मोदयरूपत्वेनौदयिकभावरूपत्वात् । अत्र प्रवृत्तिवीर्यरूपस्य योगस्य वीर्यान्तरायक्षयोपशमाद्यविनाभावित्वेऽपि शरीरनामकर्मोदयसापेक्षत्वादौदयिको भावो विज्ञेयः, शेषप्रत्ययानामौदयिकभावस्तु सुगमः । ॥१२९६॥ इदानीमुत्तरप्रकृतीनामबन्धस्य भावान्निरूपयन्नादावोघतस्तानाह

भावेण खइएण अबंधो सव्वाण सायवज्जाण।
उवसमिगेण वि हवए खओवसमिगेण वि हवेज्जा ॥१२९७॥
इगतीसधुवपुरिसरइहस्साणाउसुसुरारिहूणाण ।
ओदइएण पि भवे सव्वेसिं अधुवबंधीण ॥१२९८॥
परमोहाएसेहिं जाणऽत्थि पडुच्च सासणमबंधो ।
ताण अबंधे भावो सय च्च णेयो जहासुत्त ॥१२९९॥

(प्रे०) 'भावेणं' इत्यादि, सर्वासामुत्तरप्रकृतीनामबन्धः क्षायिकभावेन भवति, अयोगिसिद्धानां सर्वप्रकृतीनामबन्धकत्वात् । 'साय' इत्यादि, सातवेदनीयवर्जानां शेषसर्वप्रकृतीनामबन्ध औपशमिकेन भावेनाऽपि भवति, सातवेदनीयवर्जसर्वप्रकृतीनामेकादशगुणस्थानेऽबन्धात् । 'इगतीस' इत्यादि, ज्ञानावरणपञ्चकं स्त्यानर्द्धित्रिकवर्जदर्शनावरणषट्कं संज्वलनचतुष्कं भयकुत्से नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयोऽन्तरायपञ्चकं चेत्येकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः, हास्यरती पुरुषवेदः सातवेदनीयं देवद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिर्वैक्रियद्विकाहारकद्विके समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिस्त्रसदशकं पराघातोच्छ्वासे जिननामोच्चैर्गोत्रं चेत्यष्टपञ्चाशत्प्रकृतिवर्जानां मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपाणां षोडशध्रुवबन्धिप्रकृतीनां तथा षट्चत्वारिंशच्छेषाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धः क्षयोपशमभावेनाऽपि भवति, यथासम्भवमविरतसम्यग्दृष्टि-देशविरत-प्रमत्तसंयता-ऽप्रमत्तसंयतानामपि प्रोक्तप्रकृतीनामबन्धो भवति, क्षयोपशमसम्यक्त्वस्याऽविरतसम्यग्दृष्टेरपि संभवात्तथा देशविरतेः प्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां सर्वविरतेश्च क्षयोपशमरूपत्वात् । 'ओदइएणं' इत्यादि, सर्वासामध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्ध औदयिकभावेनाऽपि भवति, अध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धस्य परावर्तमानभावेन भावात् परावर्तमानभावस्य चौदयिकभावरूपत्वात् । अयं भावः-असातवेदनीयारतिशोकस्त्रीनपुंसकवेदायुष्कचतुष्कनरकतिर्यङ्मनुष्यद्विकत्रयजातिचतुष्कौदारिकद्विकसं-

हननपट्कप्रथमवर्जसंस्थानपञ्चकाशुभखगत्यातपोद्योतस्थावरदशकनीचैर्गोत्ररूपाणां पट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्ध औदयिकेन क्षायोपशमिकेनौपशमिकेन क्षायिकेण वा भावेन प्राप्यते । सातवेदनीयस्याबन्ध औदयिकक्षायिकभावतः प्राप्यते । हास्यरतिपुरुषवेददेवद्विकपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकाहारकद्विकप्रथमसंस्थानसुखगतिपराघातोच्छ्वासजिननामत्रसदशकोच्चैर्गोत्रप्रकृतीनामबन्ध औदयिकेनौपशमिकेन क्षायिकेण वा भावेन प्राप्यते । ध्रुवबन्धिप्रकृतिषु मिथ्यात्वस्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्काप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रकृतीनामबन्धः क्षायोपशमिकेनौपशमिकेन क्षायिकेण वा भावेन प्राप्यते, शेषैकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिनीनामबन्ध औपशमिकेन क्षायिकेण वा भावेन प्राप्यते । सम्प्रति 'परमो' इत्यादिना विशेष दर्शयति—ओघत आदेशतश्च यासां प्रकृतीनामबन्धः सास्वादनं प्रतीत्य भवति, तासामबन्धस्य भावो यथासूत्रं स्वयमेव ज्ञेयः ॥१२९७-९॥

इदानीमादेशतो मार्गणासूत्तरप्रकृतीनामबन्धस्य भावान्निरूपयन्नादौ सापवाद ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धभावान् दर्शयति

भावो धुववधीण सजोग्गाणोधव्व सव्वह अवधे ।
णवरि ण खइओऽत्तणिरयचउक्कभवणतिगुवसमेसु ॥१३००॥
खइओ उवसमिगो वा ण भवे तिरियतिपणिदितिरियेसु ।
दुइअकसायाण तहा ण तिरिच्छीअ खइओऽण्णअट्ठण्हं ॥१३०१॥ (गीतिः)
सव्वाण उरलमीसे णुवसमिगो कम्मणे अणाहारे ।
गुणचत्ताअ ण तीसु वि मज्झकसायाण खइओ च्च ॥१३०२॥
खइओ उवसमिगो वा तेउपउमवेअगेसु विण्णेयो ।
भावो णेव अवधे मज्झकसायाण अट्ठण्ह ॥१३०३॥

(प्रे०) 'भावो' इत्यादि, यासु ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धः प्राप्यते, तासु सकलमार्गणासु स्वप्रायोग्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धस्य भावा ओघवदधिगम्याः, तद्यथा—मिथ्यात्वादिषोडशप्रकृतीनामबन्धः क्षायिकक्षयोपशमोपशमभावैर्भवति, ज्ञानावरणाद्येकत्रिंशत्प्रकृतीनामबन्धः क्षायिकेणौपशमिकेन वा भावेन भवति । साम्प्रतमत्रौघवदतिदेशेन समापन्तीमापत्तिमपाकर्तुं 'णवरि' इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति चतुर्थादिनरकचतुष्के भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कमार्गणात्रये उपशमसम्यक्त्वमार्गणायां चेत्यष्टमार्गणासु यासां ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धोऽस्ति, तासां तस्य क्षायिकभावो नास्ति, मार्गणास्वासु क्षायिकसम्यक्त्वाभावात् । तत्रोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां सर्वासां ध्रुवबन्धिनीनामबन्धे तथा शेषमार्गणासप्तके स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्क-मिथ्यात्वरूपाणामष्टानां ध्रुवबन्धिनीनामबन्धे क्षायिकभावो निषेधनीयः, तत्र तत्तत्प्रकृतीनामबन्धस्य सत्त्वेऽपि क्षायिकभावस्यासम्भवात् । 'खइओ' इत्यादि, तिर्यगोघतिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिरश्चीमार्गणास्वप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्याऽबन्धस्य क्षायिकभाव औपशमिकभावो वा नास्ति, मार्गणास्वासु वर्तमानानां जीवानां

श्रेणेरभावात् । 'तहा' इत्यादि; तिरश्चीमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्करूपस्य प्रकृत्यष्टकस्याऽबन्धः क्षायिकभावेन न भवति, मार्गणायामस्यां जीवानां क्षायिकसम्यक्त्वमादायोत्पादाऽसम्भवात् ।

'सव्वाण' इत्यादि, औदारिकमिश्रमार्गणायां सर्वासां सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्ध औपशमिकभावेन न भवति, यतो मार्गणायामस्यामौपशमिकभावस्यैवाभावात् । कार्मणानाहारकमार्गणाद्वये अष्टमिथ्यात्वादिप्रकृतिवर्जशेषैकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्ध औपशमिकभावेन नास्ति, प्रस्तुतमार्गणाद्वये चतुर्थगुणस्थानक एवौपशमिकभावस्य भावात्तत्र चासां प्रकृतीनां नियमतो बध्यमानत्वात् । केवलं मिथ्यात्वाद्यष्टकस्य चतुर्थगुणस्थानेऽबध्यमानत्वेन तस्याबन्ध औपशमिकभावो भवति । अपर्याप्तावस्थायामौपशमिकसम्यक्त्वं तदा भवति, यदा यः कश्चिदुपशमश्रेणितः कालं कृत्वोपशमसम्यक्त्वेन सह वैमानिकदेवेषूत्पद्यते अत एव कार्मणानाहारकयोरपर्याप्तावस्थागतानामुपशमसम्यग्दृष्टिदेवानां संभवः, औदारिकमिश्रमार्गणायां तु न तथा, तेनौदारिकमिश्रमार्गणायां मिथ्यात्वाद्यष्टकस्याऽबन्ध औपशमिकभावो नोक्तः, प्रोक्तमार्गणाद्वये तु कथित इति । तथौदारिकमिश्रकार्मणानाहारकमार्गणात्रयेऽप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणचतुष्कलक्षणस्य मध्यमकषायाष्टकस्य त्वबन्धः क्षायिकभावेनैवाऽस्ति, न तु क्षयोपशमादिभावेनापि, देशविरतादिगुणस्थानानामभावात् । किमुक्तं भवति–अस्याबन्धे औपशमिकभाव इव क्षायोपशमिकभावोऽपि नास्ति, केवलं क्षायिकभाव एव भवति, मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकस्याऽबन्धस्तु क्षायिकक्षयोपशमभावाभ्यामौदारिकमिश्रे, क्षायिकौपशमिकक्षायोपशमिकभावैस्तु कार्मणानाहारकयोर्भवति, तथा शेषनवत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धः केवलं क्षायिकभावेनैव भवति, केवलज्ञानिनामेव तासामबन्धकत्वात् ।

'खइओ' इत्यादि, तेजःपद्मलेश्याद्वयक्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणासु मध्यमकषायाष्टकस्याऽबन्धः क्षायिकौपशमिकभावाभ्यां नैव भवति, परं क्षयोपशमभावेनैव, मार्गणासु क्षपकोपशमश्रेणिद्वयाभावात् । इदमुक्तं भवति–तेजःपद्मलेश्यामार्गणाद्वये मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकस्याबन्धः क्षायिकक्षायोपशमिकौपशमिकभावैर्भवति, तिसृष्वपि मार्गणासु मध्यमकषायाष्टकस्याऽबन्धः क्षयोपशमभावेनैव भवति, शेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्ध एवात्र नास्ति । उक्तशेषमार्गणासु स्वप्रायोग्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धस्य ये भावा ओघवदतिदिष्टास्त एवम्–नरकौघप्रथमादिनरकत्रयरूपाश्चतस्रो नरकमार्गणाः, देवौघसौधर्मादिद्वादशकल्पनवग्रैवेयकरूपा द्वाविंशतिदेवमार्गणाः, वैक्रियकाययोगवैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणे, असंयममार्गणा, कृष्णनीलकापोतलेश्यामार्गणात्रयं चेति सम्मीलितासु द्वात्रिंशन्मार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकस्याऽबन्धः क्षायिकक्षायोपशमिकौपशमिकभावैर्भवति, प्रकृतमार्गणासु क्षायिकक्षयोपशमोपशमरूपस्य त्रिविधसम्यक्त्वस्य भावात् । मनुष्यौघपर्याप्तमनुष्य-

मानुषीमार्गणात्रयम्, पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणाद्वयम्, त्रसौघपर्याप्तत्रसमार्गणाद्वयम्, पञ्चमनोयोगपञ्चवचनयोगकाययोगौदारिककाययोगरूपा द्वादशमार्गणाः, चक्षुरचक्षुर्दर्शनमार्गणाद्वयम्, शुक्ललेश्यामार्गणा, भव्यमार्गणा, संज्ञिमार्गणा, आहारकमार्गणा चेति सर्वसंख्यया पञ्चविंशतौ मार्गणासु सर्वासां ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्ध ओघवदवसेयः, वेदत्रये क्रोधमार्गणायां च ज्ञानावरणादिचतुर्दशसंज्वलनचतुष्कवर्जप्रकृतीनामबन्धः प्राप्यते, तत्र मिथ्यात्वाद्यष्टकस्य मध्यमकषायाष्टकस्य चाबन्धः क्षायोपशमिकौपशमिकक्षायिकभावैः प्राप्यते । शेषनिद्राद्विकभयजुगुप्सानामनवध्रुवबन्धिरूपाणां त्रयोदशप्रकृतीनामबन्ध औपशमिकभावेन क्षायिकभावेन वा प्राप्यते । एवं मानमायालोभमार्गणास्वपि वक्तव्यम्, नवरं माने संज्वलनक्रोधस्य, मायायां संज्वलनक्रोधमानयोः, लोभे तु संज्वलनचतुष्कस्याऽबन्धोऽपि क्षायिकेण वौपशमिकेन वा भावेन प्राप्यते ।

अवेदमार्गणायां ज्ञानावरणादिचतुर्दशसंज्वलनचतुष्कप्रकृतीनामबन्धः क्षायिकौपशमिकभावाभ्यां भवति, क्षपकोपशमश्रेणिद्वयसद्भावात्, मतिश्रुतावधिज्ञानावधिदर्शनसम्यक्त्वौघ-क्षायिकसम्यक्त्वलक्षणासु षट्सु मार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकवर्जशेषैकोनचत्वारिंशत्प्रकृतीनामबन्ध ओघवदस्ति, तद्यथा–मध्यमकषायाष्टकस्य क्षायिकक्षायोपशमिकौपशमिकभावैः शेषाणां च क्षायिकौपशमिकभावाभ्यामबन्धो भवति । मनःपर्यवज्ञानसंयमौघमार्गणाद्वये च मिथ्यात्वादिषोडशप्रकृतीर्वर्जयित्वा शेषैकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धः क्षायिकौपशमिकभावाभ्यां भवति, उभयश्रेणिभावात् । अज्ञानत्रये केवलं मिथ्यात्वस्याबन्धः, स च सास्वादनमाश्रित्य प्राप्यते, तेन सास्वादननिमित्तको भावः स्वयं कथनीयः । सामायिकच्छेदोपस्थापनीयमार्गणाद्वये निद्राद्विकभयजुगुप्सासंज्वलनक्रोधमानमायानवध्रुवबन्धिनामरूपषोडशध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धः क्षायिकौपशमिकभावाभ्यां भवति, श्रेणिद्वयसद्भावात् । अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तमनुष्यपञ्चानुत्तरसुरा-ऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्तत्रसमार्गणाः, सकलैकेन्द्रियमार्गणासकलविकलेन्द्रियमार्गणासकलपृथ्वीकायाप्कायतेजःकायवायुकायवनस्पतिकायमार्गणाऽऽहारकाऽऽहारकमिश्रमार्गणापरिहारविशुद्धिदेशविरतिसूक्ष्मसम्परायमार्गणाऽभव्यमार्गणामिथ्यात्वसास्वादनमिश्रसम्यक्त्वमार्गणासंज्ञिरूपासु चतुःसप्ततौ मार्गणासु वक्ष्यमाणध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धो नास्ति, अतोऽत्र भावविचारो नाधिकृतः ।

अकषायकेवलद्विकयथाख्यातसंयममार्गणासु ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्ध एव न भवति, तस्मात्तदबन्धस्याऽत्रापि भावविचारो नाधिकृतः ।।१३००-१३०३।।

अधुनाऽऽदेशतोऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धस्य भावान् भणन्नादौ मनुष्यौघादिमार्गणासु तान् कथयति–

भावो अत्थि अबंधे सव्वाउगाण अधुवबंधीण ।
तिणरदुपणिंदितसभविपणमणवयकायउरलेसुं ।।१३०४।।

पणणियरसण्णिसुक्काआहारतिवेअचउकसायेसु ।
ओघव्व णवरि भावो ओदइओ चेव सायस्स ॥१३०५॥
पणमणवयपमुहासु सत्तरससु तह जसुच्चसायाणं ।
वेअकसायेसु तहा पुमवेअस्स वि तिवेएसु ॥१३०६॥

(प्रे०) 'भावो' इत्यादि, मनुष्यौघपर्याप्तमनुष्यमानुषीपञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौघ-पर्याप्तत्रसमन्यपञ्चमनोयोगपञ्चवचनयोगकाययोगौधौदारिककाययोगचक्षुर्दर्शनाऽचक्षुर्दर्शनसंज्ञिशुक्ल-लेश्याऽऽहारकस्त्रीपुरुषनपुंसकवेदत्रयक्रोधमानमायालोभलक्षणासु द्वात्रिंशन्मार्गणासु स्वप्रायोग्याऽध्रुव-बन्धिप्रकृतीनामबन्धस्य भावा ओघवत् सन्ति। ओघातिदेशेन समायातामापत्तिमपाकर्तुं 'णवरि' इत्यादिना विशेषं दर्शयति–पञ्चमनोयोगपञ्चवचनयोगकाययोगौधौदारिककाययोगचक्षुरचक्षुर्दर्शन-संज्ञिशुक्ललेश्याऽऽहारकरूपासु सप्तदशमार्गणासु सातवेदनीयस्याऽबन्धस्य भाव औदयिक एवास्ति, तद्यथा–सातवेदनीयस्याऽबन्ध आसु मार्गणास्वयोगिगुणस्थानकस्याऽभावात् क्षायिकभावेन न भवति, त्रयोदशाद्यधस्तनीयगुणस्थानेषु यथासंभवं क्षायिकक्षयोपशमोपशमादिभावानां विद्यमानत्वे-ऽपि सप्तमादित्रयोदशगुणस्थानकेषु सातवेदनीयस्य बन्धसातत्येन तदबन्धो न प्राप्यते, प्रथमा-दिषड्गुणस्थानकेषु सातवेदनीयस्याऽबन्धः प्राप्यते, परं सोऽसातवेदनीयेन सह परावर्तमानभावेनैव प्राप्यते, स च परावर्तमानभाव औदयिकभावरूपोऽस्ति, अतः सातवेदनीयस्याऽबन्ध औदयिकभावे-नैव भवतीत्युक्तम् ।

'तह' इत्यादि, वेदत्रये कषायमार्गणाचतुष्के च यशःकीर्त्युच्चैर्गोत्रसातवेदनीयानामबन्ध औद-यिकभावेनैव भवति, मार्गणास्वास्वेकादशद्वादशादिगुणस्थानाभावात् । दशमाद्यधस्तनगुणस्थानकेषु क्षायिकक्षायोपशमिकौपशमिकादिभावानां सत्स्वेऽपि यथासंभवं कतिपयेषु गुणस्थानकेषु प्रकृतप्रकृ-तित्रयस्य बन्धनैरन्तर्येण तदबन्धस्याऽनुपलम्भात् कतिपयेषु च गुणस्थानकेषु तदबन्धलाभेऽपि तस्य परावर्तमानभावेनैव लाभात् । 'तहा' इत्यादि, त्रिवेदमार्गणासु पुरुषवेदस्य मूलोक्तः 'अपि' शब्द इह समुच्चयार्थस्तेन न केवलं पूर्वोक्तप्रकृतित्रयस्यैवास्मिन्वेदमार्गणात्रयेऽबन्ध औदयिकभावेन किन्तु पुरुषवेदस्या-ऽप्यबन्ध औदयिकभावेनैव भवति, तथाहि–मार्गणात्रयेऽस्मिन् प्रथमादिनवगुणस्थान-कानि सन्ति, तत्र यथासंभवं चतुर्णां क्षायिकादिभावानां भावेऽपि पुरुषवेदस्याऽबन्ध औदयिकभावे-नैव भवति, यतस्तृतीयादिनवमगुणस्थानकेषु मार्गणाविच्छेदं यावत्पुरुषवेदस्य बन्धसातत्येन तदबन्धो नैव प्राप्यते, प्रथमद्वितीयगुणस्थानयोस्तदबन्धे प्राप्यमाणेऽपि तस्य प्राप्तिः प्रथमगुणस्थानके स्त्री-नपुंसकाऽन्यतरवेदेन द्वितीयगुणस्थाने स्त्रीवेदेन सार्धं परावर्तमानभावेन भवति, परावर्तमानभावश्चौ-दयिकभावरूपोऽस्ति ॥१३०४-६॥

साम्प्रतं नरकमार्गणासु पञ्चानुत्तरवर्जदेवमार्गणासु वैक्रियवैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणाद्वये चाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धस्य भावान् भणितुकाम आह

सव्वणिरयपणऽणुत्तरवज्जसुरविउवदुगेसु ओदइओ ।
बारससायाइपुमसुणरजोग्गऽण्णाण जाणऽत्थि ॥१३०७॥
सेसाणोघव्व णवरि तुरिआइचउणिरयेसु भवणतिगे ।
खइओ ण चरमणिरये तिरिदुगणीआण णोदइओ ॥१३०८॥

(प्रे०) 'सव्व' इत्यादि, अष्टनरकमार्गणासु पञ्चानुत्तरवर्जपञ्चविंशतिदेवमार्गणासु वैक्रियकाययोगतन्मिश्रकाययोगमार्गणाद्वये चेति सर्वसंख्यया पञ्चत्रिंशन्मार्गणासु सातवेदनीयादिद्वादशपुरुषवेदप्रकृतीनां तथा मनुष्यप्रायोग्यशुभप्रकृतिषु यासामबन्धः प्राप्यते; तासां प्रकृतीनामबन्ध औदयिकभावेनैव प्राप्यते, अधस्तनगुणस्थानयोः परावर्तमानभावेनाबन्धस्य प्राप्तेः । ताश्चेमाः- सातवेदनीयादिद्वादशपुरुषवेदप्रकृतयस्तथा सुनरप्रायोग्यप्रकृतिष्वबन्धप्रायोग्याः प्रकृतयः । देवौघसौधर्मसुरेशानसुरवैक्रियकाययोगमार्गणासु–सातवेदनीयहास्यरतिस्थिरशुभयशःकीर्तिरूपाः षट् तत्प्रतिपक्षभूताश्च षट्, पुरुषवेदः, मनुष्यत्रिकपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकाङ्गोपाङ्गप्रथमसंहननप्रथमसंस्थानसुखगतिजिननामत्रससुभगत्रिकोच्चैर्गोत्ररूपाः सप्तविंशतिः । भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कसुरमार्गणात्रये केवलमौदयिकभावेनाबन्धवत्यः सातवेदनीयाद्या एता एव जिननामरहिताः षड्विंशतिर्बोध्याः, वैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणाया नरायुरहितास्ता एव षड्विंशतिः प्रकृतयोऽवसेयाः, आनतसुरादित्रयोदशदेवमार्गणाभेदेषु मनुष्यद्विकपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकाङ्गोपाङ्गत्रसवर्जास्ता द्वाविंशतिसंख्याकाः सन्ति, अष्टनरकभेदषट्सनत्कुमारसहस्रारान्तदेवभेदरूपे शेषमार्गणाचतुर्दशके चतुर्विंशतिप्रकृतयः पुनस्ता एव पञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकाङ्गोपाङ्गत्रसनामहीना विद्यन्त इति । **'सेसा'** इत्यादि, उक्तशेषमार्गणाप्रायोग्याध्रुवबन्धिप्रकृतीनां यासामबन्धः स्वमार्गणायां प्राप्यते, तासां प्रकृतीनामबन्धस्य भावा ओघवदवसेयाः, तद्यथा–स्त्रीनपुंसकवेदद्वयतिर्यगायुष्कतिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिप्रथमवर्जसंहननपञ्चकप्रथमवर्जसंस्थानपञ्चकाशुभखगतिस्थावरदुर्भगत्रिकातपोद्योतनीचैर्गोत्ररूपाणां चतुर्विंशतेरध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धः क्षायिकादिचतुर्भावैः प्राप्यते, परावर्तमानभावेनौदयिकभावस्य, क्षायिकक्षयोपशमोपशमसम्यक्त्वत्रयस्य सत्त्वेन क्षायिकादिभावत्रयस्य च मार्गणास्वासु सद्भावात् । इमाश्चौदयिकादिभावचतुष्केनाबन्धवत्यः-सकलनरकमार्गणासु तृतीयाद्यष्टमान्तदेवमार्गणास्वेकेन्द्रियस्थावरातपप्रकृतित्रयस्य बन्ध एव नास्ति, अतस्ता विवर्ज्य शेषैकविंशतिप्रकृतयः, आनतादिचतुष्कनवग्रैवेयकरूपासु त्रयोदशमार्गणासु तिर्यग्द्विकोद्योतप्रकृतित्रयस्य तथैकेन्द्रियस्थावरातपप्रकृतित्रयस्य च बन्धो नास्ति, अतस्तद्वर्जाः शेषाष्टादशप्रकृतयः, तासामबन्ध ओघवत्क्षायिकादिचतुर्भावैः प्राप्यते । **'णवरि'** इत्यादिनाऽपवादमाह–चतुर्थादिनरकमार्गणाचतुष्के मतान्तरेण द्वितीयादिनरकमार्गणाषट्के भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कमार्गणात्रये च प्रोक्तैकविंशतेरध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धः क्षायिकभावेन नैव भवति, आसु मार्गणासु क्षायिकसम्यग्दृष्टेरुत्पादाभावेन क्षायिकभावाभावात् । तथा सप्तमनरकमार्गणायां तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतीनामबन्ध औदयिकभावेन नैव भवति, प्रथमद्वितीयगुणस्थानक-

योर्निरन्तरमासां प्रकृतीनां बध्यमानत्वेन तुर्यगुणस्थानके तदबन्धस्य क्षायोपशमिकेनौपशमिकेन वा भावेनैव प्राप्यमाणत्वात् ।।१३०७-८।।

साम्प्रतं तिर्यगोघादिमार्गणासु असंयमकृष्णाद्यशुभलेश्यात्रयमार्गणासु चाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धस्य भावान् कथयति

थीवज्जसुरऽरिहाणोदइओ ऽप तिरितिपणिदितिरियेसुं ।
णरउरलदुगवइराण वि अत्थि अजयअसुहलेसासुं ।।१३०९।।
सेसाणोघव्वऽट्ठसु वि णवरि णत्थि खइओ तिरिच्छीए ।

(प्रे०) 'थीवज्ज' इत्यादि, तिर्यगोघतिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिमतीमार्गणासु स्त्रीवेदवर्जानां देवप्रायोग्याऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनामसंयममार्गणायां कृष्णनीलकापोतलेश्यामार्गणात्रये च मनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननरूपप्रकृतिपञ्चकस्याप्यबन्ध औदयिकभावेनैव भवति, मार्गणास्वासु प्रकृतीनामासां सम्यग्दृष्टिभिर्बध्यमानत्वेन सम्यक्त्वहेतुकाऽबन्धस्याप्राप्यमाणत्वात् । देवप्रायोग्या अध्रुवबन्धिप्रकृतयः पुनरिमाः—सातवेदनीयादिद्वादशपुरुषवेददेवायुष्कदेवद्विकपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकप्रथमसंस्थानसुखगतिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्कसुभगत्रिकोच्चैर्गोत्ररूपा ज्ञेयाः ।'सेसा'इत्यादि,शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धः प्रस्तुतमार्गणाष्टकेऽपि ओघवच्चतुर्भिः क्षायिकादिभावैर्भवति, चतुर्णामपि भावानामत्र प्राप्तेः, अत्र तिर्यग्मार्गणाचतुष्के मनुष्यपञ्चकस्याबन्धे क्षायिकादिभावत्रयं सम्यक्त्वापेक्षया बोध्यम् । 'णवरि'इत्यादिना विशेषमाह—तिर्यग्योनिमतीमार्गणायां कस्या अपि प्रकृतेः क्षायिकभावेनाऽबन्धो नास्ति,क्षायिकसम्यग्दृशामुत्पादाभावादत्र।।१३०९।।

एतर्हि औदारिकमिश्रमार्गणायां प्रकृतमाह

सायस्स उरलमीसे ओदइओ चेव विण्णेयो ।।१३१०।।
खइओ वोदइओ वा थीवज्जऽण्णसुरजोग्गतीसाए ।
सेसाणोदइओ वा खओवसमिगो व खइओ वा ।।१३११।।

(प्रे०) 'सायस्स' इत्यादि, औदारिकमिश्रमार्गणायां सातवेदनीयस्याऽबन्ध औदयिकभावेनैव भवति, सयोगिकेवलिनामत्र सातवेदनीयाऽबन्धस्याऽसत्त्वे सति परेषां परावर्तमानभावेन तदबन्धभावात् । 'खइओ' इत्यादि, स्त्रीवेदवर्जदेवप्रायोग्यत्रिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धः क्षायिकेणौदयिकेन वा भावेन भवति, तद्यथा—प्रकृतप्रकृतीनामबन्धोऽत्र सयोगिकेवलिनः प्रतीत्य क्षायिकभावेन प्राप्यते, प्रथमद्वितीयगुणस्थानयोः पुनः परावर्तमानभावेन प्राप्यते, चतुर्थगुणस्थानके तु सततबन्धेनाऽबन्धो नास्ति, अत आसां प्रकृतीनामबन्धः क्षायिकौदयिकभावद्वयेनाऽभिहितः । सुरप्रायोग्यप्रकृतयश्च जिननामसहिता देवायुर्वर्जाः प्राक् तिर्यग्गत्योघमार्गणोक्ता एवाऽत्र ग्राह्याः, देवायुर्वर्जनं त्वत्राऽऽयुर्बन्धाभावादधिगन्तव्यम् , जिननाम्नो ग्रहणश्च तत्र तस्य बन्धाभावे सतीह बध्यमानत्वात् । 'सेसाणो' इत्यादि, उक्तशेषाऽबन्धप्रायोग्याध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धः क्षायिकेण क्षयोप-

शमिकेनौदयिकेन वा भावेन भवति, प्रकृतमार्गणायामुपशमसम्यक्त्वाभावेनाभिहितभावत्रयस्यैव सत्त्वात् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः–स्त्रीनपुंसकवेदद्वयतिर्यग्द्विकमनुष्यद्विकौदारिकद्विकैकेन्द्रियादिजातिचतुष्क-संहननपट्कप्रथमवर्जसंस्थानपञ्चकाशुभखगतिस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासनीचैर्गोत्ररूपा इति । ॥१३१० ११॥ अथ कार्मणानाहारकमार्गणाद्वयेऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धस्य भावानाह

इत्थीवज्जसुरारिहणरउरलदुगवइराण ओदइओ ।
खइओ व अत्थि कम्मोऽणाहारे य णवर कम्मे ॥१३११॥
सायस्सोदइओ च्चिअ सेसाणोधव्व दोसु वि... ।

(प्रे०) 'इत्थी' इत्यादि, कार्मणानाहारकमार्गणाद्वये स्त्रीवेदवर्जदेवप्रायोग्याऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनां नरद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्य चाऽबन्ध औदयिकेन क्षायिकेण वा भावेन भवति, तद्यथा–इह सयोगिगुणस्थानके प्रकृतप्रकृतीनामबन्धो लभ्यते, अतः क्षायिकभावेन स कथितः, प्रथमगुणस्थानके मनुष्यद्विकादिप्रकृतिपञ्चकस्याबन्धः परावर्तमानभावेन देवद्विकवैक्रियद्विकयोस्तु मिथ्यात्वस्योदयेन, चतुर्थगुणस्थानके तु भवप्रत्ययेनोक्तनवानामबन्धः, न तु सम्यक्त्वप्रत्ययादबन्धः, अत औदयिकभावेनोक्तः, तथा शेषदेवप्रायोग्यप्रकृतीनां परावर्तमान-भावेनाबन्धः प्राप्यते, अत औदयिकभावेनाऽभिहितः । अथ 'णवर' मित्यादिनाऽपवादं भाषते–कार्मणकाययोगमार्गणायां सातवेदनीयस्याऽबन्ध औदयिकभावेनैव भवति, क्षायिकभावप्रयुक्तस्याबन्धस्यायोगिगुणस्थानके सद्भावात्तस्य च प्रस्तुतेऽभावात् , अपरेषां जीवानां पुनरिह तदबन्धः परावर्तमानभावेन प्राप्यते । 'सेसाणो' इत्यादि, प्रकृतमार्गणाद्वयेऽपि स्वप्रायोग्यशेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धस्य भावा ओघवदधिगम्याः । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः–स्त्रीनपुंसकवेदद्वयतिर्यग्द्विकैकेन्द्रियादि-जातिचतुष्काद्यवर्जसंहननपञ्चकप्रथमसंस्थानहीनसंस्थानपञ्चक-कुखगत्यातपोद्योतदुर्भगत्रिकनीचैर्गोत्र-रूपाः पञ्चविंशतिः प्रकृतयः ॥१३१२॥

अथाऽपगतवेदादिमार्गणासु प्रकृतं प्रदर्शयति

अवेए ।
अकसाये केवलदुगअहखाएसु खइओ च्च सायस्स ॥१३१३॥ (गीतिः)
उवसमिगो खइओ वा अत्थि अवेए जसुच्चगोआणं ।

(प्रे०) 'अवेए' इत्यादि, अपगतवेदाऽकपायकेवलज्ञानकेवलदर्शनयथाख्यातरूपासु पञ्चसु मार्गणासु सातवेदनीयस्याऽबन्धः क्षायिकभावेनैव भवति, यथायोगमयोगिसिद्धानां तदबन्धकत्वेन प्राप्यमाणत्वात् । 'उवसमिगो' इत्यादि, अपगतवेदमार्गणायां यशःकीर्त्युच्चैर्गोत्रयोरबन्ध औपशमिकेन क्षायिकेण वा भावेन भवति, उपशमक्षपकश्रेणिद्वये तदबन्धलाभात् ॥१३१३॥

अधुना मत्यादिज्ञानत्रयेऽवधिदर्शनमार्गणायां सम्यक्त्वौघक्षायिकसम्यक्त्वमार्गणाद्वये चाऽ-ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धस्य भावानुपदर्शयति

सायस्सोदइओ च्च तिणाणोहीसु इह चउसु तहा ॥१३१४॥
सम्मखइएसु हवए पणिंदिसुहखगइआगिइपुमाण ।
परघाऊसाससुहगतिगतसचउगुच्चगोआणं ॥१३१५॥
उवसमिगो खइओ वा सेसाणोधव्व अत्थि ......।

(प्रे०) 'सायस्सो' इत्यादि, मतिश्रुतावधिज्ञानाऽवधिदर्शनमार्गणाचतुष्के सातवेदनीयस्याऽबन्ध औदयिकभावेनैव भवति, यतो ह्ययोगिगुणस्थानके क्षायिकभावेन तदबन्धस्य प्राप्तिस्तस्य गुणस्थानकस्येहाभावः । 'इह' इत्यादि, मतिज्ञानादिप्रकृतमार्गणाचतुष्के तथा सम्यक्त्वौघक्षायिकसम्यक्त्वमार्गणयोः पञ्चेन्द्रियजातिसुखगतिसमचतुरस्रसंस्थानपुरुषवेदपराघातोच्छ्वासशुभगत्रिकत्रसचतुष्कोच्चैर्गोत्ररूपाणां चतुर्दशप्रकृतीनामबन्ध औपशमिकेन क्षायिकेण वा भावेन भवति, उपशमक्षपकश्रेणिद्वय एव प्रकृतमार्गणासु प्रकृतप्रकृतीनामबन्धस्य लाभात् । 'सेसाणो' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीनामबन्धस्यौघवद् यथासम्भवं चत्वारस्त्रयो द्वौ वा भावा भवन्ति। ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—मतिज्ञानादिमार्गणाचतुष्केऽसातवेदनीयहास्यादियुगलद्वयदेवायुष्कदेवद्विकमनुष्यायुष्कमनुष्यद्विकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननस्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिजिननामरूपाः पञ्चविंशतिरिति । सम्यक्त्वौघक्षायिकसम्यक्त्वमार्गणाद्वये पुनरेता एव सातवेदनीयसहिताः षड्विंशतिरिति। तत्र मार्गणाद्वये सातवेदनीयस्यौदयिकक्षायिकरूपौ द्वौ भावौ, मार्गणाषट्केऽपि हास्य-रति-देवद्विक-वैक्रियद्विका-ऽऽहारकद्विक-स्थिरशुभयशःकीर्तिजिननामरूपाणां द्वादशानामौदयिकौपशमिकक्षायिकरूपास्त्रयो भावास्तथाऽसातवेदनीयादिशेषत्रयोदशप्रकृतीनामौदयिकक्षायोपशमिकौपशमिक-क्षायिकरूपाश्चत्वारो भावा भवन्ति ॥१३१४ १५॥

अथ मनःपर्यवज्ञानमार्गणायां संयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणासु च प्रकृतं प्रतिपादयति

. ...-. ...... ओहिव्व ।
मणणाणसंजमेसुं णवरि सुरविउवदुगाण णोदइओ ॥१३१६ (गीतिः)
सायस्स संजमे उण ओधव्व मणव्व समइए छेए ।
सप्पाउग्गाण णवरि ओदइओ चिअ जसस्स भवे ॥१३१७॥

(प्रे०) 'ओहिव्व' इत्यादि, मनःपर्यवज्ञानसंयममार्गणयोरबन्धप्रायोग्याऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धस्य भावा अवधिदर्शनमार्गणावज्ज्ञेयाः, । अथ 'णवरि' इत्यादिना विशेषं दर्शयति देवद्विकवैक्रियद्विकरूपस्य प्रकृतिचतुष्कस्याऽबन्धस्यौदयिकभावो नास्ति, अस्मिन्मार्गणाद्वये प्रकृतप्रकृतिचतुष्कस्य श्रेणावेवाऽबन्धलाभात् ।

अथ 'सायस्स' इत्यादिना संयमौघमार्गणायां विशेषं दर्शयति संयमौघमार्गणायामयोगिगुणस्थानकस्य सद्भावेनौघवत्क्षायिकभावेनाऽपि सातवेदनीयस्याऽबन्धः प्राप्यते ।

'मणाव' इत्यादि, सामायिकच्छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणाद्वये स्वप्रायोग्याऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धस्य भावा मनःपर्यवज्ञानमार्गणावज्ज्ञातव्याः । साम्प्रतं 'णवरि' इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति–यशःकीर्तिनाम्नोऽबन्धः केवलमौदयिकेनैव भावेन भवति, नत्वोघवत् क्षायिकौपशमिकभावाभ्यामपि, यत एकादशद्वादशगुणस्थानयोरत्राभावः ॥१३१६-१७॥

सम्प्रति तेजःपद्मलेश्याद्वयपरिहारविशुद्धिसंयमक्षयोपशमसम्यक्त्वरूपासु चतसृषु मार्गणासु शेषमार्गणासु चाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धसत्कभावान् भणितुकाम आह

तेऊअ असायअरइसोगसुराउणरतिगुरलदुगाण ।
वइरतिअथिराईणं ओदइओ वा खओवसमिगो वा ॥१३१८॥(गीतिः)
सायपुमहस्सरइसुरविउवाहारदुगतसपणिंदीणं ।
पढमागिइसुखगइजिणपरघाऊसासथिरछगुच्चाणं ॥१३१९॥(गीतिः)
ओदइओऽण्णाणोघव्व पम्हपरिहारवेअगेसु भवे ।
सप्पाउग्गाणेव सप्पाउग्गाण अण्णहोदइओ ॥१३२०॥(गीतिः)

(प्रे०) 'तेऊअ' इत्यादि, तेजोलेश्यामार्गणायामसातवेदनीयाऽरतिशोकदेवायुर्मनुष्यत्रिकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननाऽस्थिराशुभाऽयशःकीर्तिरूपाणां त्रयोदशप्रकृतीनामबन्ध औदयिकेन क्षायोपशमिकेन वा भावेन भवति, मार्गणायामस्या श्रेणिद्वयस्याप्यभावात् श्रेणिद्वयस्याप्यभावेनौपशमिक-क्षायिकभावयोः प्रोक्तप्रकृतीनामबन्धेऽसम्भवादप्रमत्तगुणस्थानके च प्रोक्तसर्वप्रकृतीनामबन्धस्य लाभेन तत्र संयमस्य क्षायोपमिकभावरूपत्वेन क्षायोपशमिकभावसम्भवात् , यथासंभवमधस्तनप्रमत्तसंयतगुणस्थानकं यावत् परावर्तमानभावादिना बन्धेनौदयिकभावस्याप्युक्तप्रकृतीनां सम्भवाच्च । 'साय' इत्यादि, सातवेदनीयपुरुषवेदहास्यरतिसुरद्विकवैक्रियद्विकाऽऽहारकद्विकत्रसपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतिजिननामस्थिरषट्कोच्चैर्गोत्ररूपाणां द्वाविंशतिप्रकृतीनामबन्ध औदयिकभावेनैव भवति, प्रकृतमार्गणायामासां प्रकृतीनामबन्धस्य यथासंभवं परावर्तमानभावेनैव देवगत्युदयेनैव वा लाभात् ।

'ऽण्णाणो' इत्यादि, उक्तव्यतिरिक्ताऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धस्य भावा ओघवच्चत्वारोऽप्यौदयिकादिभावा ज्ञेयाः, । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः–स्त्रीनपुंसकवेदद्वयतिर्यगायुष्कतिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिप्रथमवर्जसंहननपञ्चकप्रथमवर्जसंस्थानपञ्चकाऽशुभखगतिस्थावरदुर्भगत्रिकातपोद्योतनीचैर्गोत्ररूपाश्चतुर्विंशतिरिति । 'पम्ह' इत्यादि, पद्मलेश्यापरिहारविशुद्धिक्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणासु स्वप्रायोग्याध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धस्य भावास्तेजोलेश्यामार्गणावद् विज्ञेयाः । ताश्चेमा अबन्धप्रायोग्यस्वप्रायोग्याऽध्रुवबन्धिप्रकृतयः–पद्मलेश्यामार्गणायामेकेन्द्रिय-पञ्चेन्द्रिय-त्रस-स्थावरातपवर्जास्तेजोलेश्यामार्गणादर्शिता एव चतुःपञ्चाशद् ग्राह्याः । ताश्चेमाः–वेदनीयद्वय-हास्यादियुगलद्वय-वेदत्रय-तिर्यक्त्रिक-मनुष्यत्रिक-सुरत्रिकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्क-खगति-

द्वयोद्योतजिननामस्थिरषट्कास्थिरषट्कगोत्रद्वयरूपाः । परिहारविशुद्धिसंयममार्गणायां वेदनीयद्वय-हास्यादियुगलद्वयदेवायुराहारकद्विकजिननामस्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिरूपाः षोडश, वेदकसम्यक्त्वमार्गणायामनन्तरोक्ताः षोडश नरायुष्कनरद्विकसुरद्विकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननरूपदशप्रकृतिसहिताः षड्विंशतिः प्रकृतयो बोध्याः । 'सप्पाउग्गाण' इत्यादि, उक्तशेषमार्गणासु स्वप्रायोग्याध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्ध औदयिकभावेनैव भवति,शेषमार्गणास्वबन्धप्रायोग्यप्रकृतीनामबन्धस्य परावर्तमानभावेनैव लाभात् । ताश्चेमाः शेषमार्गणाः-अपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियमार्गणा, अपर्याप्तमनुष्यमार्गणा, पञ्चानुत्तरसुरमार्गणाः, सप्तैकेन्द्रियमार्गणाः, नव विकलमार्गणाः, अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणा, सप्तपृथ्वीकायमार्गणाः,सप्ताप्कायमार्गणाः, सप्ततेजःकायमार्गणाः, सप्तवायुकायमार्गणाः, एकादशवनस्पतिकायमार्गणाः, अपर्याप्तत्रसकायमार्गणा, आहारकतन्मिश्रकाययोगमार्गणाद्वयम् ,मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानमार्गणात्रयम् ,देशविरतमार्गणा,अभव्यमार्गणा, मिश्रसास्वादनमिथ्यात्वमार्गणात्रिकम् , असंज्ञिमार्गणा चेति । अत्रेदमवधेयम्—अज्ञानत्रयवर्जशेषमार्गणासु केवलमेकमेवगुणस्थानकमस्ति, अत औदयिकवर्जाः शेषभावा अबन्धे न प्राप्यन्ते । अज्ञानमार्गणात्रये सास्वादनगुणस्थानकमाश्रित्य यासां षोडशप्रकृतीनामबन्धः प्राप्यते, तासां प्रकृतीनामबन्धः सास्वादनगुणस्थानकापेक्षया येन भावेन प्राप्यते, स भाव ओघवत्स्वय ज्ञेयः ॥१३१८-२०। इत्येवमभिहिता मार्गणासूत्तरप्रकृत्यबन्धस्य भावा , अभिहितेषु च तेषु समाप्तिमगाद् भावद्वारम् ।

॥ इति श्री प्रेमप्रभाटीकाविभूषिते बन्धविधाने उत्तरप्रकृतिबन्धे प्रथमाधिकारे चतुर्दशं भावद्वारं समाप्तम् ॥



॥ अथ पञ्चदशमल्पबहुत्वद्वारम् ॥

एतर्हि क्रमसमायातमल्पबहुत्वाख्यं पञ्चदशं द्वारं ग्रन्थकारो भणितुकाम आह—अत्राऽल्प-बहुत्वं नाम हीनाधिक्यम्, तच्च द्विधा—जीवाल्पबहुत्वं कालाल्पबहुत्वम्। तत्र जीवाल्पबहुत्वं स्वस्थानपरस्थानापेक्षया द्विविधं वर्तते। तयोः स्वरूपं पुनरिदम्—मूलप्रकृत्यन्तर्गतानामुत्तरप्रकृतीनां नामप्रकृतिषु पुनः पिण्डप्रकृत्यन्तर्गतोत्तरप्रकृतीनां त्रसस्थावरादिसप्रतिपक्षप्रकृतीनां च बन्धकाऽ-बन्धकजीवानां परस्परं हीनाधिक्यं यत्र प्रतिपाद्यते तत्स्वस्थानजीवाल्पबहुत्वं विज्ञेयम्, यत्र पुनः सर्वासामुत्तरप्रकृतीनां बन्धकाऽबन्धकजीवानां परस्परं हीनाधिक्यं प्रतिपाद्यते, तत्परस्थानजीवाल्प-बहुत्वं विज्ञेयम्। कालाल्पबहुत्वस्वरूपं सभेदमग्रे तन्निरूपणावसरे प्रतिपादयिष्यामः।

तत्र स्वस्थानजीवाल्पबहुत्वं प्रतिपादयन्नादावोघतस्तन्निरूप्यते—

पणणाणावरणाणं अबधगाऽप्पा तओ अणतगुणा।
होअन्ति बंधगेव वण्णचउगणिमिणपचविग्घाण ॥१३२१॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'पणणाणा'० इत्यादि, मतिश्रुतावधिमनःपर्यवकेवलज्ञानावरणपञ्चकस्याऽबन्धका अल्पा वर्तन्ते, उपशान्तमोहक्षीणमोहसयोग्ययोगिजीवानां सिद्धानां च तदबन्धकतया वर्तमानत्वात्। तेभ्योऽनन्तगुणास्तद्बन्धकाः, यतो ज्ञानावरणपञ्चकस्य बन्धका निगोदजीवा अपि वर्तन्ते, ते च सिद्धादिजीवेभ्योऽनन्तगुणाः। 'एव' इत्यादि, वर्णचतुष्कनिर्माणनामपञ्चान्तरायप्रकृतीनां बन्धका-ऽबन्धकानामल्पबहुत्वमेवमेव विज्ञेयम् ॥१३२१॥

इदानीं दर्शनावरणप्रकृतीनां तद् भण्यते

चउबीआवरणाण अबंधगाऽप्पा तओ विसेसहिया।
णिद्दुगस्स हवन्ते तत्तो थीणद्धियतिगस्स ॥१३२२॥
तत्तोऽत्थि बंधगा सि अणतगुणिआ तओ विसेसहिया।
णिद्दादुगस्स ताओ चउबीआवरणपयडीणं ॥१३२३॥

(प्रे०) 'चउबीआवरणाणं' इत्यादि, चतसृणां चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणप्रकृती-नामबन्धका अल्पाः, एकादशद्वादशत्रयोदशचतुर्दशगुणस्थानगतानां सिद्धानां च तदबन्धकतया प्राप्यमाणत्वात्। ततो निद्राद्विकस्याऽबन्धका विशेषाधिकाः, अपूर्वकरणगुणस्थानद्वितीयादिभाग-गतानां तथा नवमदशमगुणस्थानगतानामपि तेषु प्रवेशात्। ततः स्त्यानर्द्धित्रिकस्याऽबन्धका विशे-षाधिकाः, 'विशेषाधिक' इति पदमत्राऽपि सम्बन्धनीयम्, तदबन्धकतया तृतीयाद्यष्टमगुणस्थान-प्रथमभागगतानां जीवानामपि प्रवेशात्। 'तत्तो' इत्यादि, तेभ्योऽपि स्त्यानर्द्धित्रिकस्य बन्धका अनन्तगुणाः, तद्बन्धकत्वेन निगोदादिजीवानां प्रथमद्वितीयगुणस्थानगतानां पञ्चेन्द्रियाणां च तद्बन्धकत्वात्। ततोऽपि विशेषाधिका निद्राद्विकस्य बन्धकाः, यतस्तृतीयाद्यष्टमगुणस्थानप्रथम-

भागवर्तिजीवा अपि तद्बन्धकतया वर्तन्ते । ततोऽपि चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणप्रकृतिचतुष्कस्य बन्धका विशेषाधिकाः, अपूर्वकरणद्वितीयादिभागगतानां नवमदशमगुणस्थानगतानां च जीवानामप्यत्र प्रवेशात् ॥१३२२-३॥

अधुना साताऽसातवेदनीयकर्मणोरन्यतमत्वेन त्रसादिप्रकृतीनां च बन्धकाबन्धकानामल्पबहुत्वं निरूपयितुमाह

णेया अबंधगाऽप्पा दुवेअणीआण तो अणंतगुणा ।
सायस्स बंधगा तो अत्थि असायस्स संखगुणा ॥१३२४॥
तत्तो विसेसअहिया विण्णेया दोण्ह वेअणीआण ।
एमेव जाणियव्वा तसाइणवजुगलगोआण ॥१३२५॥

(प्रे०) 'णेया' इत्यादि, वेदनीयकर्मणोऽबन्धकाः सर्वतोऽल्पाः, अयोगिनां सिद्धानां चैव तदबन्धकत्वेन सद्भावात् । 'तो' इत्यादि, तेभ्योऽनन्तगुणाः सातवेदनीयस्य बन्धकाः, निगोदजीवानामपि तद्बन्धकत्वेन प्राप्यमाणत्वात् , तेषां च सिद्धाद्यपेक्षयाऽनन्तगुणत्वात् , उक्तं च नवतत्त्वप्रकरणे—इक्कस्स णिगोयस्साऽणंतभागो य सिद्धिगओ । इति, तेभ्योऽसातवेदनीयस्य बन्धकाः संख्यातगुणाः सन्ति, यतः सातवेदनीयबन्धकालापेक्षयाऽसातवेदनीयबन्धकालः संख्यातगुणोऽस्ति । 'तत्तो' इत्यादि, असातवेदनीयबन्धकेभ्यो वेदनीयद्वयस्याऽपि बन्धका विशेषाधिकाः, सातवेदनीयबन्धकानामपि तत्र समावेशात् । 'एमेव' इत्यादि, त्रसस्थावरे बादरसूक्ष्मे पर्याप्ताऽपर्याप्ते प्रत्येकसाधारणे स्थिरास्थिरे शुभाशुभे सुभगदुर्भगे आदेयानादेये यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति नवयुगलानामुच्चैर्गोत्रनीचैर्गोत्रयोश्चाऽल्पबहुत्वं वेदनीयवद् विज्ञेयम् । नवरं हेतुभावनादिकं सविशेषं ज्ञातव्यम् । ।१३२४-५॥ इदानीं मोहनीयकर्मणामल्पबहुत्वमुपदर्शयितुमाह—

णेया अबंधगाऽप्पा अंतिमलोहस्स तो विसेसहिया ।
मायाईण कमा तो कमा तइअदुइअपढमचउगस्स ॥१३२६॥ (गीति)
तत्तो मिच्छस्स तओऽणंतगुणा तस्स बंधगा ताओ ।
उत्तविवरीअकमसो विसेसअहियांतलोहं जा ॥१३२७॥

(प्रे०) 'णेया' इत्यादि, संज्वलनलोभस्याऽबन्धका अल्पा ज्ञेयाः, दशमादिगुणस्थानगतानां सिद्धानां च तदबन्धकत्वेन सद्भावात् । ततो मायामानक्रोधादीनामबन्धकाः क्रमेण विशेषाधिका वक्तव्याः, यथाक्रमं नवमगुणस्थानकपञ्चमाद्यधस्तनभागगतानां जीवानां तेषु प्रविष्टत्वात् । 'तो कमा तइअ'········इत्यादि,ततः क्रमेण प्रत्याख्यानावरणाऽप्रत्याख्यानावरणानन्तानुबन्धिचतुष्काणामबन्धका विशेषाधिकाः, क्रमेण षष्ठादिपञ्चमतृतीयादिगुणस्थानगतानां जीवानामबन्धकतयाधिकत्वेन प्राप्यमाणत्वात् । 'तत्तो' अनन्तानुबन्धिचतुष्काबन्धकेभ्यो विशेषाधिका मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽबन्धकाः, द्वितीयगुणस्थानगतानामपि जीवानां तत्रान्तर्गतत्वात् । 'तओ'इत्यादि मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽ-

बन्धकेभ्यो मिथ्यात्वमोहनीयस्य बन्धका अनन्तगुणाः,निगोदजीवानामपि तद्बन्धकत्वेन विद्यमानत्वात् । 'ताओ' इत्यादि, तेभ्य उत्क्रमेण क्रमशः 'अंतलोहं जा' संज्वलनलोभबन्धकपर्यन्तं बन्धका विशेषाधिका विज्ञेयाः । इदमुक्तं भवति–मिथ्यात्वमोहनीयबन्धकेभ्यो विशेषाधिका अनन्तानुबन्धिचतुष्कस्य बन्धकाः, ततोऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य बन्धका विशेषाधिकाः, ततः प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य विशेषाधिकाः, ततः संज्वलनक्रोधस्य बन्धका विशेषाधिकाः, ततः संज्वलनमानबन्धका विशेषाधिकाः, ततः संज्वलनमायाबन्धका विशेषाधिकाः, ततः संज्वलनलोभबन्धका विशेषाधिकाः, द्वितीयादिगुणस्थानत आरभ्य यावन्नवमगुणस्थानपञ्चमान्तभागेषु यथायोगं वर्तमानानां जीवानामधिकतया प्राप्यमाणत्वात् ॥१३२६ ७॥

इदानीं नोकषायमोहनीयस्याऽल्पबहुत्वमाह–

थोवा अबधगा णोकसायणवगस्स तो अणतगुणा ।
पुरिसस्स बंधगा तो हवेज्ज इत्थीअ संखगुणा ॥१३२८॥
ताओ हस्सरईण तत्तो सोगारईण अत्थि ताओ ।
णपुमस्स विसेसहिया ताउ हवेज्ज भयकुच्छाणं ॥१३२९॥

(प्रे०) 'थोवा' इत्यादि, हास्यादिषट्कवेदत्रयरूपस्य नोकषायनवकस्याऽबन्धका अल्पाः, पुरुषवेदबन्धविच्छेदादूर्ध्वमनिवृत्तिगुणस्थानसूक्ष्मसम्परायादिगुणस्थानगतानां सिद्धानां च प्राप्यमाणत्वात् । 'तो' इत्यादि, तेभ्योऽनन्तगुणाः पुरुषवेदस्य बन्धकाः, तद्बन्धकतया निगोदजीवानां प्राप्यमाणत्वात् । तेभ्यः स्त्रीवेदस्य बन्धकाः संख्यातगुणाः,पुरुषवेदबन्धकालापेक्षया स्त्रीवेदबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । ततो हास्यरत्योर्बन्धकाः संख्यातगुणाः,भावना पुनरित्थम् स्त्रीवेदः पञ्चेन्द्रियजातिनाम्नैव सह बध्यते, हास्यरती तु एकेन्द्रियादिजातिनामभिरपि सह बध्येते, एकेन्द्रियजातिनामबन्धाद्धा पञ्चेन्द्रियजातिबन्धाद्धापेक्षया संख्येयगुणा वर्तते, तस्मात् केवलपञ्चेन्द्रियजातिप्रकृतिबन्धसहचारिस्त्रीवेदबन्धकालापेक्षयैकेन्द्रियादिजातिप्रकृतिबन्धसहचारिहास्यरतिबन्धकालः संख्येयगुणः प्राप्यत इति कृत्वा स्त्रीवेदबन्धकापेक्षया हास्यरतिबन्धका अपि संख्येयगुणाः प्राप्यन्ते । ततः शोकारत्योर्बन्धकाः संख्येयगुणाः, हास्यरतिबन्धकालात्शोकारत्योर्बन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । ततो नपुंसकवेदस्य बन्धका विशेषाधिकाः, शोकारतिबन्धकालान्नपुंसकवेदबन्धकालस्य विशेषाधिकत्वात् । ततोऽपि भयकुत्सयोर्बन्धका विशेषाधिकाः, यतो भयजुगुप्साबन्धकेषु स्त्रीपुरुषवेदबन्धकानामपि समावेशो भवति, नपुंसकवेदबन्धकेषु च न तथा ।१३२८-९॥

अथाऽऽयुष्ककर्मणां तन्निरूप्यते

होअन्ति बधगाऽप्पा णराउगस्स उ तओ असखगुणा ।
णिरयाउस्स हवन्ते तओ सुराउस्स विण्णेया ।१३३०॥

तत्तो अणंतगुणिआ तिरियाउस्सऽत्थि ताउ चउगस्स ।
हुन्ति विसेसहिया तो अवधगा अत्थि सखगुणा ॥१३३१॥

(प्रे०) 'होअन्ति' इत्यादि, मनुष्यायुर्बन्धकाः स्तोकाः, मनुष्याणां सर्वाल्पत्वात् । ततोऽसंख्येयगुणा नरकायुष्कस्य बन्धकास्ततो देवायुर्बन्धका असंख्येयगुणाः । पूर्वपूर्वराशित उत्तरोत्तरराशेरसंख्यगुणत्वेन तत्तदायुर्बन्धकानामप्यसंख्येयगुणत्वं बोध्यम् । उक्तं च राशित्रयस्याल्पबहुत्वप्रज्ञापनायां तृतीयाल्पबहुत्वपदे—सव्वत्थोवा मणुस्सा नेरइया असंखेज्जगुणा देवा असंखेज्जगुणा इति । ततोऽनन्तगुणास्तिर्यगायुर्बन्धकाः, निगोदानामपि तत्प्रायोग्यत्वात् । ततोऽप्यायुःसामान्यस्य बन्धका विशेषाधिकाः देवनरकमनुष्यायुर्बन्धकानामपि तेषु समाविष्टत्वात् । ततोऽप्यायुषोऽबन्धकाः संख्येयगुणाः, विवक्षितसमये सकलजीवेषु संख्याततमभागप्रमाणजीवराशेरेवायुर्बन्धकत्वात् ॥१३३०-१॥

इदानीं नामकर्मणोऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नादौ गत्यानुपूर्वीनाम्नोस्तदाह

होअन्ति बंधगाप्पा देवगईए तओऽत्थि सखगुणा ।
णिरयगईए तत्तो चउण्ह वि अबधगा अणतगुणा ॥१३३२॥ (गीति)
तत्तोऽत्थि बधगा णरगईअ तो तिरिगईअ सखगुणा ।
ताओ विसेसअहिया चउण्ह एवमणुपुव्वीण ॥१३३३॥

(प्रे०) 'होअन्ति' इत्यादि, देवगतिनाम्नो बन्धका अल्पाः, पञ्चेन्द्रियाणामेव तद्बन्धविधायित्वात्, तेषां चैकेन्द्रियाद्यपेक्षया सर्वाल्पत्वात् । ततो नरकगतिनाम्नो बन्धकाः संख्येयगुणाः, देवगतिबन्धकालापेक्षया नरकगतेर्बन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । ततोऽपि चतुर्णामपि गतिकर्मणामबन्धका अनन्तगुणाः, सिद्धानामपि तदबन्धकत्वात्, तेषां च नरकगतिनामबन्धकपञ्चेन्द्रियजीवेभ्योऽनन्तगुणत्वात् । तेभ्यो मनुष्यगतिनाम्नो बन्धका अनन्तगुणाः, निगोदजीवानामपि तद्बन्धकत्वात् तेषां च सिद्धेभ्योऽनन्तगुणत्वात् । तेभ्योऽपि संख्येयगुणास्तिर्यग्गतिनामबन्धकाः, मनुष्यगतिबन्धकालात्तिर्यग्गतिबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । ततोऽपि चतसृणां गतिप्रकृतीनां बन्धका विशेषाधिकाः, देवनरकमनुष्यगतिबन्धकानां तेषु प्रवेशात् । 'एव' मिति, एवमेवानुपूर्वीचतुष्कस्याऽप्यल्पबहुत्वं बोद्धव्यम् ॥१३३२-३॥

इदानीं जातिनामप्रकृतिषु तदुच्यते

सव्वप्पा पचण्ह जाईण अवंधगा मुणेयव्वा ।
ततोऽत्थि बधगा खलु पणिदिजाईअऽणतगुणा ॥१३३४॥
तत्तो सखेज्जगुणा कमसो हुन्ति चउरिंदियाईण ।
ताओ विसेसअहिया हवेज्ज पचण्ह जाईण ॥१३३५॥

(प्रे०) 'सव्वप्पा' इत्यादि, पञ्चजातिनाम्नामबन्धकाः सर्वाल्पाः, अपूर्वकरणाष्टमभागगतानां नवमादिगुणस्थानगतानां जीवानां सिद्धानां च तदबन्धकत्वेन प्राप्यमाणत्वात् । ततोऽनन्तगुणाः पञ्चेन्द्रियजातिनाम्नो बन्धकाः, निगोदजीवानामपि तद्बन्धकत्वेन सत्त्वात्, ततश्चतु-

रिन्द्रियादिजातिप्रकृतीनां क्रमेण संख्येयगुणाः संख्येयगुणा बन्धका ज्ञातव्याः । अयं भावः-पञ्चेन्द्रियजातिबन्धकेभ्यश्चतुरिन्द्रियजातिबन्धकाः संख्येयगुणाः, ततस्त्रीन्द्रियजातिबन्धकाः संख्येयगुणाः, ततो द्वीन्द्रियजातिबन्धकाः संख्येयगुणाः, ततोऽप्येकेन्द्रियजातिप्रकृतिबन्धकाः संख्येयगुणाः, तद्बन्धकाऽनन्तबहुभागप्रमाणनिगोदजीवेषु पूर्वपूर्वजातिनाम्नो बन्धकालादुत्तरोत्तरजातिनाम्नो बन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् , तेभ्योऽपि पञ्चानामपि जातिनाम्नां बन्धका विशेषाधिका ज्ञातव्याः, द्वीन्द्रियादिजातिबन्धकानां तेषु प्रवेशात् ।१३३४ ५।

अधुना शरीरनाम्नि तदाह

होअन्ति बधगाऽप्पा आहारतणुस्स तो असंखगुणा ।
विउवस्स अणतगुणा, अबंधगा पणतणूण तओ ॥१३३६॥
ताओ अणंतगुणिआ ओरालतणुस्स बधगा णेया ।
तत्तो विसेसअहिया बोद्धव्वा तेअकम्माणं ॥१३३७॥

(प्रे०) 'होअन्ति' इत्यादि, आहारकशरीरनाम्नो बन्धकाः सर्वतोऽल्पा वर्तन्ते, अप्रमत्तसंयतापूर्वकरणस्थानामेव तद्बन्धकत्वेन सद्भावात् । ततो वैक्रियशरीरनाम्नो बन्धका असंख्यगुणाः, पञ्चेन्द्रियजीवानां तेषु तद्बन्धकत्वेन समावेशात् । ततोऽपि पञ्चशरीरनाम्नामबन्धका अनन्तगुणाः, अपूर्वकरणगुणस्थानसप्तमभागनवमादिगुणस्थानगतजीवानां सिद्धानां च तदबन्धकत्वेन सत्त्वात् सिद्धानां च पञ्चेन्द्रियजीवेभ्योऽनन्तगुणत्वात् । ततोऽनन्तगुणा औदारिकशरीरनाम्नो बन्धकाः, निगोदजीवानामपि तद्बन्धकत्वेन सत्त्वात् , सिद्धादिभ्यस्तेषामनन्तगुणत्वात् । ततो विशेषाधिकास्तैजसकार्मणशरीरनामबन्धकाः,यत आहारकवैक्रियशरीरनाम्नो बन्धका अपि तेषु प्रविशन्ति, तैजसकार्मणशरीरनाम्नोर्ध्रुवबन्धिप्रकृतित्वेन वैक्रियादिशरीरनाम्ना सह बध्यमानत्वात् । न च शरीरसामान्यमपेक्ष्य तद्बन्धकानामल्पबहुत्वं तैजसकार्मणशरीरद्वयानन्तरं वक्तव्यमिति वाच्यम् , शरीरसामान्यबन्धकानामपेक्षया तैजसकार्मणशरीरनामबन्धकानां सङ्ख्यया समानत्वेन तैजसकार्मणशरीरनामबन्धकानामल्पबहुत्वोक्तौ शरीरसामान्यबन्धकानामपि तस्योक्तप्रायत्वात् ।।१३३६-७।।

इदानीमङ्गोपाङ्गनाम्नि प्रकृतं प्रस्तूयते

होअन्ति बंधगा खलु थोवा आहारुवंगणामस्स ।
ताउ असखेज्जगुणा वेउव्वियुवंगणामस्स ॥१३३८॥
तत्तो अणंतगुणिआ उरालुवंगस्स तो विसेसहिया ।
तिउवंगाणं तत्तो अबधगा अत्थि सखगुणा ॥१३३९॥

(प्रे०) 'होअन्ति' इत्यादि, आहारकाङ्गोपाङ्गनाम्नो बन्धकाः स्तोकाः, अप्रमत्तापूर्वकरणसंयतानामेव तद्बन्धकत्वात् । तेभ्यो वैक्रियाङ्गोपाङ्गनाम्नो बन्धका असंख्येयगुणाः पञ्चेन्द्रियजीवानां तद्बन्धकत्वेन तेषु प्रवेशात् । ततोऽनन्तगुणा औदारिकाङ्गोपाङ्गनाम्नो बन्धकाः, निगोदजीवाना-

मपि तद्बन्धकत्वेन विद्यमानत्वात् । तेभ्योऽङ्गोपाङ्गत्रयस्य बन्धका विशेषाधिकाः, वैक्रियाहारकाङ्गोपाङ्गबन्धकानामपि तेषु प्रविष्टत्वात् । तेभ्योऽपि तदबन्धकाः संख्येयगुणा विज्ञेयाः, तद्यथा—द्वीन्द्रियादिजातिबन्धका अङ्गोपाङ्गनामप्रकृतिं बध्नन्ति, न पुनरेकेन्द्रियजातिनामबन्धकाः, तथा द्वीन्द्रियजातिनामबन्धकालापेक्षयैकेन्द्रियजातिनामबन्धकालः संख्येयगुणोऽस्ति, तस्माद् द्वीन्द्रियादिजातिनामबन्धकानामपेक्ष्यैकेन्द्रियजातिनामबन्धकाः संख्येयगुणाः प्राप्यन्त इति हेतोरङ्गोपाङ्गनाम्नोऽबन्धकास्तद्बन्धकापेक्षया तावत्प्रमाणा एव प्राप्ता भवन्ति ।।१३३८-९।।

इदानीं संहनननाम्नि प्रकृतमभिधीयते

वइरस्स बंधगाऽप्पा तो संखगुणा कमा बिआईणं ।
तो छण्ह विसेसहिया तो संखगुणा अबंधगा छण्हं ।।१३४०।।   (गीतिः)

(प्रे०) 'वइरस्स' इत्यादि, वज्रर्षभनाराचसंहननस्य बन्धका अल्पाः, शुभप्रकृतित्वात्, शुभप्रकृतेर्बन्धकालस्याऽशुभप्रकृतिबन्धकालतः संख्येयगुणहीनत्वात् । ततः संख्यातगुणाः संख्यातगुणाः क्रमेण द्वितीयादिसंहननप्रकृतिबन्धकाः, पूर्वपूर्वसंहननप्रकृतेर्बन्धकालादुत्तरोत्तरप्रकृतिबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । 'तो' त्ति, अन्तिमसंहननप्रकृतिबन्धकेभ्यः षण्णामपि संहननप्रकृतीनां बन्धका विशेषाधिकाः, प्रथमादिसंहननप्रकृतिबन्धकानामेषु समाविष्टत्वात् । ततः संहननषट्कस्याऽबन्धकाः संख्येयगुणाः, तद्यथा—एकेन्द्रियजातिप्रकृतिबन्धकाः संहननस्याऽबन्धका वर्तन्ते, द्वीन्द्रियादिजातिप्रकृतिबन्धकास्तु तद्बन्धका वर्तन्ते, निगोदजीवेषु एकेन्द्रियजातिबन्धकालो द्वीन्द्रियादिबन्धकालतः संख्येयगुणः, अत एकेन्द्रियजातिबन्धका अपि द्वीन्द्रियादिजातिबन्धकेभ्यः संख्येयगुणाः प्राप्यन्त इतिकृत्वा संहननषट्कस्याऽबन्धका अपि तावन्त एव प्राप्यन्ते ।।१३४०।।

इदानीं संस्थाननाम्नि प्रस्तुतमुच्यते

छण्हं संठाणाणं सव्वत्थोवा अबंधगा णेया ।
ताउ पढमागिईएऽणतगुणा बंधगा णेया ।।१३४१।।
तत्तो बीआईण संठाणाण कमा मुणेयव्वा ।
संखेज्जगुणा ताओ छण्ह वि हुन्ते विसेसहिया ।।१३४२।।

(प्रे०) 'छण्हं' इत्यादि, षण्णां संस्थानप्रकृतीनामबन्धकाः सर्वस्तोका ज्ञातव्याः, अपूर्वकरणगुणस्थानस्य सप्तमभागनवमादिगुणस्थानगतानां सिद्धानां च तदबन्धकत्वेन विद्यमानत्वात् । तेभ्योऽनन्तगुणाः समचतुरस्रसंस्थानस्य बन्धकाः, निगोदजीवानामपि तद्बन्धकत्वेन वर्तमानत्वात् । ततो द्वितीयादिसंस्थानाना बन्धकाः क्रमेण संख्येयगुणा (२)ज्ञातव्याः, पूर्वपूर्वापेक्षयोत्तरोत्तरसंस्थानबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । 'ताओ' इत्यादि, हुण्डकसंस्थानबन्धकेभ्यः षण्णामपि समुदितानां संस्थानानां बन्धका विशेषाधिकाः, प्रथमादिपञ्चसंस्थानबन्धकानामपि तेषु समावेशात् ।१३४१-२।।

साम्प्रतमातपद्विकजिननामप्रकृतीनामधिकृतमाह—

होअन्ति बंधगाओ अबधगायवदुगस्स संखगुणा।
तित्थस्स अणंतगुणा अबधगा बंधगाहिन्तो ॥१३४३।

(प्रे०) 'होअन्ति' इत्यादि, आतपोद्योतनाम्नोर्बन्धकेभ्योऽबन्धकाः संख्यातगुणा वर्तन्ते, तद्यथा—सूक्ष्मनाम्नो बन्धका आतपद्विकस्याऽबन्धका विद्यन्ते, केचन बादरनामबन्धकास्तु तद्बन्धका विद्यन्ते, बादरनामबन्धकालतः सूक्ष्मनामबन्धकालः संख्येयगुणोऽस्ति तस्मादातपोद्योतबन्धकेभ्यस्तदबन्धकाः संख्येयगुणाः प्राप्यन्ते । 'तित्थस्स' इत्यादि, जिननाम्नो बन्धकेभ्योऽबन्धका अनन्तगुणा वर्तन्ते, निगोदादिजीवानां सिद्धानामपूर्वकरणगुणस्थानसप्तमाष्टमभागनवमादिचतुर्दशगुणस्थानपर्यन्तगतानां जिननामसत्कर्मविरहितसम्यग्दृष्टिप्रभृतीनां च तदबन्धकत्वेन प्राप्यमाणत्वात् ॥१३४३॥

सम्प्रति स्वरखगत्योस्तन्निरूप्यते

खगइसराण सुहत्तो संखगुणा बधगाऽसुहाण तओ।
दुविहाण विसेसहिया अबधगा ताउ संखगुणा ॥१३४४॥

(प्रे०) 'खगइ' इत्यादि, शुभखगतिस्वरनाम्नोर्बन्धकेभ्योऽशुभखगतिदुःस्वरनाम्नोर्बन्धकाः संख्येयगुणाः सन्ति, इदमुक्तं भवति-शुभविहायोगतिबन्धकेभ्योऽशुभविहायोगतिबन्धकाः संख्यातगुणाः, एवमेव सुस्वरबन्धकेभ्यो दुःस्वरबन्धकाः संख्यातगुणाः, शुभप्रकृतेर्बन्धकालादशुभप्रकृतिबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । 'दुविहाण' इत्यादि, अशुभखगतिबन्धकेभ्यः खगतिद्वयबन्धकाः, दुःस्वरबन्धकेभ्यः स्वरद्वयबन्धकाश्च विशेषाधिका अवसेयाः; यथायोगं सुस्वरबन्धकानां सुखगतिबन्धकानां च तेषु प्रवेशात् । खगतिद्वयबन्धकेभ्यः स्वरद्वयबन्धकेभ्यो यथाक्रमं खगतिद्वयाबन्धकाः स्वरद्वयाबन्धकाः संख्येयगुणा वर्तन्ते, यस्मादेकेन्द्रियजातिप्रकृतिबन्धकाः खगतिस्वरनाम्नोऽबन्धका वर्तन्ते, द्वीन्द्रियादिजातिप्रकृतिबन्धकास्तु तद्बन्धका वर्तन्ते, द्वीन्द्रियादिजातिबन्धकेभ्य एकेन्द्रियजातिबन्धकाः संख्येयगुणा वर्तन्ते, द्वीन्द्रियादिजातिबन्धकालादेकेन्द्रियजातिबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् ॥१३४४॥

ओघतः स्वस्थानापेक्षया जीवाल्पबहुत्वमुक्तम् , अथ तदेवादेशतो मार्गणाभेदेषु प्रतिपादयन्नादौ कतिपयासु नरकमार्गणासु तत्समत्वेन कतिपयासु च देवमार्गणासु तत्प्रतिपाद्यते

णिरयपढमणिरयेसुं थीणद्धियतिगअबधगाऽप्पा तो।
से बंधगा असंखियगुणा तओ छण्ह अब्भहिया ॥१३४५॥
सायस्स बंधगाऽप्पा तओ असायस्स अत्थि संखगुणा।
तत्तो विसेसअहिआ दुवेअणीआण विण्णेया ॥१३४६॥
थोवा अबधगा अणचउगस्स तओ विसेसअहियाऽत्थि।
मिच्छस्स ताउ हुन्ति असंखगुणा बंधगा तस्स ॥१३४७॥
ताओ विसेसअहिया पढमाणं होइरे कसायाणं।
ताहिन्तो सेसाणं हवेज्ज बारसकसायाणं ॥१३४८॥
पुरिसस्स बंधगाऽप्पा ताओ इत्थीअ अत्थि संखगुणा।
तत्तो विसेसअहिया हस्सरईण मुणेयव्वा ॥१३४९॥

ताउ णपुमस्स हुन्ते संखेज्जगुणा तओ विसेसहिया ।
सोगारईण णेया ताउ हवेज्ज भयकुच्छाणं ॥१३५०॥
मणुसाउबंधगाओ तिरियाउगबंधगा असंखगुणा ।
दोण्ह विसेसहिया तो अबंधगा दोण्ह संखगुणा ॥१३५१॥
होअन्ति बंधगाऽप्पा मणुयगईए तओ तिरिगईए ।
संखेज्जगुणा ताओ दोण्ह वि णेया विसेसहिया ॥१३५२॥
एवं णेयं खगइछयिराइजुगलअणुपुव्विगोआणं ।
संघयणआगिईसुं संखगुणा बंधगा पढमा ॥१३५३॥
कमसो बीआईणं ताउ विसेसाहियाऽत्थि छण्हं पि ।
तित्थयरस्स बंधगाओ अबंधगा खलु असंखगुणा ॥१३५४॥
उज्जोअस्स हवन्ते अबंधगा बंधगाउ संखगुणा ।
णेव भवे अप्पबहू सप्पाउग्गाण सेसाणं ॥१३५५॥

(प्रे०) 'णिरय' इत्यादि, नरकौघरत्नप्रभानरकमार्गणाद्वये स्त्यानर्द्धित्रिकस्याऽबन्धकाःसर्वस्तोका ज्ञेयाः, यतस्तृतीयचतुर्थगुणस्थानगतास्तदबन्धकत्वेन प्राप्यन्ते, ते च मिथ्यादृक्सास्वादनानामपेक्षयाऽसंख्यातभागमात्रत्वेनातीवस्तोका वर्तन्ते, । 'ताउ' इत्यादि, तेभ्योऽसंख्येयगुणाः स्त्यानर्द्धित्रिकबन्धका ज्ञेयाः, यतो मिथ्यादृक्सास्वादनजीवास्तद्बन्धकत्वेन प्राप्यन्ते, ते च स्वेतरजीवापेक्षयाऽसंख्येयगुणा वर्तन्ते । 'ताओ' इत्यादि, ततो निद्राद्विकचक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणरूपाणां षण्णां प्रकृतीनां बन्धका विशेषाधिका भवन्ति, मिश्रदृष्टिसम्यग्दृष्टिजीवानामपि तद्बन्धकत्वेन तेषु प्रविष्टत्वात् ।

'सायस्स' इत्यादि, सातवेदनीयबन्धका अल्पाः, ततोऽसातवेदनीयबन्धकाः संख्येयगुणाः तेभ्यो वेदनीयद्वयबन्धका विशेषाधिकाः, यथासम्भवं हेतोरवगतिरोघानुसारेणाधेया ।

'थोवा' इत्यादि, अनन्तानुबन्धिचतुष्कस्याऽबन्धकाः स्तोकाः, तृतीयतुर्यगुणस्थानस्थानामेव तदबन्धकत्वेन प्राप्यमाणत्वात् । ततोऽपि मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽबन्धका विशेषाधिकाः, सास्वादनजीवानामपि तदबन्धकतया समावेशात् । ततो मिथ्यात्वमोहनीयबन्धका असंख्यगुणाः, मिथ्यादृशां तद्बन्धकत्वेन वर्तमानत्वात्, तेषां चेतरेभ्योऽसंख्येयगुणत्वात् । 'ताओ' मिथ्यात्वमोहनीयबन्धकेभ्योऽनन्तानुबन्धिकषायचतुष्कस्य बन्धका विशेषाधिकाः, सास्वादनानां तद्बन्धकत्वेनाऽधिकतया प्राप्यमाणत्वात् । तेभ्यः शेषाणामप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणसञ्ज्वलनचतुष्करूपाणां द्वादशकषायाणां बन्धका विशेषाधिका विज्ञेयाः, तृतीयतुर्यगुणस्थानस्थानामपि तद्बन्धकत्वेनाऽधिकतया प्राप्यमाणत्वात् ।

अथ नवनोकषायस्याल्पबहुत्वं 'पुरिसस्स' इत्यादिनाऽऽह -पुरुषवेदबन्धका अल्पाः, ततः स्त्रीवेदबन्धकाः संख्येयगुणाः, ततो हास्यरत्योर्बन्धका विशेषाधिकाः, ततो नपुंसकवेदस्य बन्धकाः

सख्यातगुणाः, ततोऽरतिशोकयोर्बन्धका विशेषाधिकाः, ततो भयजुगुप्सयोर्बन्धका विशेषाधिकाः । अत्र हेतुस्तु तत्तत्प्रकृतीनां बन्धकालेन साधनीयः । नन्वत्रौघे तु स्त्रीवेदबन्धकेभ्यो हास्यरत्योर्बन्धकाः संख्यातगुणाः, तथाऽरतिशोकयोर्बन्धकेभ्यो नपुंसकवेदबन्धका विशेषाधिका उक्ताः, अत्र तु ततो विलक्षणाः कथिताः, किन्त्वत्रापि तथैव वक्तव्यमुचितमिति चेद् , उच्यते तत्र त्वेकेन्द्रियराशिः प्रधानः, अत्र तु केवलपञ्चेन्द्रियजातिबन्धकसंज्ञिराशिः, अतोऽत्र पुरुषवेदस्त्रीवेदयोः समुदित बन्धकालाद् हास्यरत्योर्बन्धकालोऽल्पः स केवलस्त्रीवेदबन्धकालादधिकोऽत उक्तक्रमेणाऽल्पबहुत्वमायातम् ।

'मणुसा' इत्यादि, मनुष्यायुर्बन्धकेभ्यस्तिर्यगायुर्बन्धका असंख्येयगुणा वर्तन्ते, मनुष्यायुर्बन्धकाः संख्यातास्तिर्यगायुर्बन्धकास्त्वसंख्याता इति कृत्वा । ततोऽपि तदुभयबन्धका विशेषाधिकाः, मनुष्यायुर्बन्धकानामत्रैव समावेशात् । **'तो'** इत्यादि, उभयायुर्बन्धकेभ्यस्तदबन्धकाः संख्येयगुणाः ।

'होअन्ति' इत्यादि, मनुष्यगतेर्बन्धका अल्पाः, ततस्तिर्यग्गतिनामबन्धकाः संख्येयगुणाः, मनुष्यगतिबन्धकालात्तिर्यग्गतिबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । ततो मनुष्यतिर्यग्गतिद्वयस्य बन्धका विशेषाधिकाः, मनुष्यगतिबन्धकानामत्रैव प्रविष्टत्वात् । **'एवं'** इत्यादि, खगतिद्वयस्य, स्थिराऽस्थिरयोः, शुभाशुभयोः, सुभगदुर्भगयोः, आदेयाऽनादेययोः, सुस्वरदुःस्वरयोः, यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योः, तिर्यग्मनुष्यानुपूर्व्योः, उच्चैर्नीचैर्गोत्रयोश्चाऽल्पबहुत्वं तिर्यग्मनुष्यगतिवज्ज्ञेयम् । **'संघयणा'** इत्यादि, संहननषट्कसंस्थानषट्कयोराद्यसंहननसंस्थानाभ्यामारभ्य क्रमशो द्वितीयादिसंहननसंस्थानानां बन्धकाः संख्येयगुणा ज्ञातव्याः, पूर्वपूर्वापेक्षयोत्तरोत्तरसंहननसंस्थानप्रकृतीनां बन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । **'ताउ'** इत्यादि, अन्तिमसंहननबन्धकेभ्यः षण्णामपि संहननप्रकृतीनां बन्धका विशेषाधिकाः, एवमन्तिमसंस्थानबन्धकेभ्यः षण्णामपि संस्थानप्रकृतीनां बन्धका विशेषाधिकाः, तत्पूर्वसंहननसंस्थानबन्धकानामत्र प्रवेशात् । **'तित्थस्स'** इत्यादि, जिननामबन्धकेभ्योऽसंख्यातगुणास्तदबन्धका वर्तन्ते, कैश्चित्सम्यग्दृग्भिरेव बध्यमानत्वात् , तेषां च प्रकृतमार्गणासु केवलमसंख्यातभागमात्रवर्तित्वात् । **'उज्जोअस्स'** इत्यादि, उद्योतनाम्नो बन्धकेभ्यस्तदबन्धकाः संख्येयगुणाः, आसु मार्गणासु तद्बन्धकालात्तदबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । **'णेव'** इत्यादि, उक्तप्रकृतिव्यतिरिक्तस्वप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकानामल्पबहुत्वं नास्ति । शेषप्रकृतीनां बन्धस्य सर्वैः प्रकृतमार्गणागतैर्जीवैः सर्वदैव विधीयमानत्वात् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः–ज्ञानावरणपञ्चकवर्णचतुष्कतैजसकार्मणशरीरद्वयागुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपा एकोनविंशतिध्रुवबन्धिप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकत्रसचतुष्कपराघातोच्छ्वासरूपा नवाध्रुवबन्धिप्रकृतयश्चेत्यष्टाविंशतिरिति ॥१३४५-५५॥

अथ द्वितीयादिपञ्चनरकसनत्कुमारादिषड्देवमार्गणास्थानेषु तदभिधीयते ।

बीआइणिरयपणगे तइआइगअट्ठमतदेवेसु ।
णिरयव्व सजोग्गाणं परमाउअबंधगा असखगुणा ॥१३५६॥ (गीति)

(प्रे०) 'बीआइ' इत्यादि, शर्कराप्रभावालुकाप्रभापङ्कप्रभाधूमप्रभातमःप्रभारूपासु पञ्चसु नरकमार्गणासु सनत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलोकलान्तकशुक्रसहस्राररूपासु च षड्देवमार्गणासु स्वप्रायोग्यप्रकृतीनामल्पबहुत्वं नरकौघमार्गणावदस्ति । ननु नरकौघमार्गणास्थाने तिर्यग्मनुष्यायुर्द्वयाबन्धकानामल्पबहुत्वं संख्यातगुणप्रमाणमतिदिष्टम्, तन्नाऽत्रोपपद्यते, यतो हि प्रकृतमार्गणासु निखिलो जीवराशिरसंख्यवर्षायुष्को वर्तते, तस्मिन्नप्यसंख्यातभागप्रमाण एवायुर्बन्धकालोऽस्ति, असंख्यातबहुभागप्रमाण आयुरबन्धकालश्चेत्यारेकां निराकर्तुमपवादं 'परं' इत्यादिनोपदर्शयति, तद्यथा— तिर्यग्मनुष्यायुर्द्वयबन्धकेभ्यस्तदुभयाऽबन्धका असंख्येयगुणाः ।१३५६॥

इदानीं तमस्तमःप्रभायामल्पबहुत्वमाह

णिरयव्व तमतमाए हवेज्ज सव्वाण परमसखगुणा ।
तिरियाउस्स हवन्ते अबधगा बन्धगेहिन्तो ॥१३५७॥
तिरियगईए णेया णरगइओ बधगा असखगुणा ।
ताओ विसेसअहिया दोण्ह वि एवमणुपुव्विगोआणं ॥१३५८॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'णिरयव्व' इत्यादि, तमस्तमःप्रभाख्यसप्तमनरकमार्गणायां सर्वासां स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धकानामबन्धकानां चाल्पबहुत्वं नरकौघवद् वेदितव्यम्, । ननु नरकौघे द्वयोरप्यायुषोर्बन्धकेभ्योऽबन्धकाः संख्येयगुणाः प्रोक्ताः, तदनुसारेण तिर्यगायुरबन्धका अपि तद्बन्धकेभ्यः संख्येयगुणा एव प्राप्यन्ते, परं तदत्र न सङ्गच्छते, अस्यां मार्गणायामपि जीवराशेरसंख्यवर्षायुष्कत्वेनायुर्बन्धकालस्य केवलमेकासंख्येयभागप्रमाणतयैव प्राप्यमाणत्वादिति शङ्कावारणाय 'परम०' इत्यादिना विशेषं दर्शयति, तिर्यगायुष्कस्याऽबन्धकास्तद्बन्धविधायिभ्योऽसंख्येयगुणाः सन्ति, अत्र मनुष्यायुषोऽबन्धात्तद्बन्धका नोक्ताः । एवमेव समापतन्तीरन्या अप्यापत्तीरपाकर्तुमपवादं 'तिरियगईए' इत्यादिगाथया दर्शयति । 'तिरियगईए' इत्यादि, मनुष्यगतिनाम्नो बन्धकेभ्यस्तिर्यग्गतिबन्धका असंख्येयगुणाः, यतो हि—प्रस्तुतमार्गणायां मनुष्यगतिनाम्नो बन्धो मिश्रदृष्टिसम्यग्दृष्टिभिरेव जीवैः क्रियते, तेषां च राशिर्मार्गणागतजीवराशेरसंख्यातभागमात्रोऽस्ति । 'ताओ' इत्यादि, तिर्यग्गतिबन्धकेभ्यस्तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयबन्धका विशेषाधिकाः, मनुष्यगतिबन्धकानामपि समावेशात् । 'एव' इत्यादि, अत्रानुपूर्वीगोत्रप्रकृतिविषयेऽप्यल्पबहुत्वं गतिवद् विज्ञेयम् ॥१३५७-८॥

अधुना तिर्यगोघमार्गणायामधिकृतमाह

तिरियेऽज्जअतिमाण ण णिरयव्व दुवेअणीअगोआणं ।
ओघव्वाउवगखगइसरसंघयणआयवदुगाण ॥१३५९॥ (गीति)
णेया अबंधगाऽप्पा थीणद्धितिगस्स तो अणतगुणा ।
सि बधगा तओ छदरिसणावरणाण अब्भहिया ॥१३६०॥

दुइआण कसायाण अबंधगाऽप्पा तओ असंखगुणा ।
पढमाण तओ अहिया मिच्छस्स तओ अणंतगुणा ॥१३६१॥
से बंधगाऽहिआ तो कमा कसायाण पढमदुइआण ।
सेसाण बंधगाऽप्पा पुमस्स तत्तोऽत्थि ओघव्व ॥१३६२॥
गइजाइसरीरंगिगिइतसाइणवजुगलआणुपुव्वीण ।
ओघव्व परं गइओहाईण अबंधगा णत्थि ॥१३६३॥
परघाऊसासाण अबंधगा बंधगाउ संखगुणा ।
तत्तोऽत्थि अगुरुलहुउवघायाण बंधगा विसेसहिया ॥१३६४॥ (गीतिः)
सव्वज्जतसाइत्तो तप्पडिवक्खाण बंधगा णेया ।
संखेज्जगुणा ताओ दोण्ह वि णेया विसेसहिया ॥१३६५॥

(प्रे०) 'तिरिये' इत्यादि, तिर्यगोघमार्गणायां 'ऽज्जअंतिमाण' त्ति ज्ञानावरणपञ्चकाऽन्तरायपञ्चकयोरल्पबहुत्वं नास्ति, मार्गणायामस्यां तयोर्बन्धविच्छेदाभावात् । 'णिरयव्व' इत्यादि, वेदनीयगोत्रकर्मणोरल्पबहुत्वं नरकौघवद् विज्ञेयम् , तद्यथा–सातवेदनीयबन्धका अल्पाः, ततोऽसातवेदनीयस्य बन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यो वेदनीयद्वयबन्धका विशेषाधिकाः । उच्चैर्गोत्रबन्धकाः स्तोकाः, ततो नीचैर्गोत्रबन्धकाः संख्येयगुणाः, ततोऽपि गोत्रद्वयस्य बन्धका विशेषाधिकाः । भावना पुनरत्र नरकौघमार्गणानुसारेण भावनीया । अस्या मार्गणाया वेदनीयगोत्रयोरबन्धका नोपलभ्यन्ते, सततं बध्यमानत्वात् , अतस्तदपेक्षयाऽल्पबहुत्वं न सम्भवतीत्युत्तरत्राप्यल्पबहुत्वाभावो यथासंभवं स्वयं विज्ञेयः ।

'ओघव्व' इत्यादि,आयुष्ककर्माङ्गोपाङ्गखगतिस्वरसंहननातपोद्योतप्रकृतीनां बन्धकानामल्पबहुत्वमोघवद् विज्ञातव्यम् ,तद्यथा–मनुष्यायुष्कबन्धका अल्पाः, ततो नरकायुष्कबन्धका असंख्येयगुणाः, ततो देवायुष्कबन्धका असंख्येयगुणाः, ततस्तिर्यगायुष्कबन्धका अनन्तगुणाः, ततश्चतुर्णामप्यायुषां बन्धका विशेषाधिकाः, ततश्च तदबन्धकाः संख्येयगुणाः,अत्राहारकाङ्गोपाङ्गस्य बन्धाभावात् वैक्रियाङ्गोपाङ्गबन्धकाः स्तोकाः, तत औदारिकाङ्गोपाङ्गनाम्नो बन्धका अनन्तगुणाः,ततोऽङ्गोपाङ्गद्वयबन्धका विशेषाधिकाः, ततश्चाऽङ्गोपाङ्गसामान्यस्याऽबन्धकाःसंख्येयगुणाः ।शुभखगतिबन्धकेभ्योऽशुभखगतिबन्धकाः संख्येयगुणाः,तेभ्यस्तदुभयबन्धका विशेषाधिकास्तेभ्यश्च तदबन्धकाः संख्येयगुणाः । एवमेव स्वरनाम्नोऽप्यल्पबहुत्वं ज्ञेयम् । वज्रर्षभनाराचसंहननबन्धकाः स्तोकाः, ततः संख्यातगुणाः (२) क्रमेण द्वितीयादिसंहननप्रकृतिबन्धकाः, ततः संहननसामान्यस्य बन्धका विशेषाधिकाः ततोऽपि संहननषट्कस्याऽबन्धकाः संख्यातगुणाः । आतपोद्योतनाम्नोर्बन्धकेभ्योऽबन्धकाः संख्येयगुणाः । भावना पुनरत्रौघानुसारेण स्वयं कार्या ।

'णेया' इत्यादि, स्त्यानर्द्धित्रिकस्याऽबन्धका अल्पाः, यतः प्रकृतमार्गणायां तृतीयतुर्यपञ्चमगुणस्थानस्था जीवा एव तदबन्धका विद्यन्ते, ते च मार्गणागतजीवानामनन्ततमे भाग एव वर्तन्ते,

तेभ्यः स्त्यानर्द्धित्रिकबन्धका अनन्तगुणाः, निगोदजीवानां तद्बन्धकत्वेनाऽत्र वर्तमानत्वात् । ततश्चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्कनिद्राप्रचलारूपस्य प्रकृतिषट्कस्य बन्धका अभ्यधिकाः, तृतीयतुर्यपञ्चमगुणस्थानगतजीवानामपि तद्बन्धकतया सत्त्वात् ।

'दुइआण' इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणाख्यद्वितीयकषायस्याऽबन्धका अल्पाः, देशविरतानामत्र तदबन्धकत्वेन वर्तमानत्वात् , तेषां च मार्गणागतजीवानामनन्ततमभागप्रमाणत्वात् । तेभ्योऽनन्तानुबन्धिचतुष्कस्याऽबन्धका असंख्येयगुणाः, मिश्रदृष्टयविरतसम्यग्दृशामपि तदबन्धकत्वेन विद्यमानत्वात् , तेषां च देशविरतेभ्योऽसंख्येयगुणत्वात् । ततो मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽबन्धका विशेषाधिकाः, सास्वादनानां तदबन्धकत्वेनाऽधिकतया लाभात् । ततो मिथ्यात्वमोहनीयस्य बन्धका अनन्तगुणाः, निगोदजीवानामप्यत्र तद्बन्धकत्वेन सत्त्वात् । तस्मात् क्रमेण प्रथमद्वितीयकषाययोर्बन्धका विशेषाधिकाः (२), यथाक्रमं सास्वादनानां तृतीयतुर्यगुणस्थानगतानां च तद्बन्धकत्वेनाऽधिकतया लाभात् । तेभ्यः शेषप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनकषायचतुष्कयोर्बन्धका विशेषाधिकाः, देशविरतानामपि तद्बन्धकतया विद्यमानत्वात् । 'बंधगा' इत्यादि, पुरुषवेदस्य बन्धका अल्पाः, ततस्त्रीवेदबन्धकाः संख्येयगुणाः, ततो हास्यरत्योर्बन्धकाः संख्येयगुणाः,ततः शोकारत्योर्बन्धकाः संख्येयगुणाः, तेभ्यो नपुंसकवेदबन्धका विशेषाधिकाः, ततश्च भयकुत्साबन्धका विशेषाधिकाः । भावना पुनरिह यथासम्भवमोघत एवानुमन्धेया ।

'गइजाइ' इत्यादि, गतिजातिशरीरसंस्थानत्रसादिनवयुगलानुपूर्वीनामप्रकृतिबन्धकानामल्पबहुत्वमोघवदवसातव्यम् । तत्पुनरेवम्–देवगतिबन्धकाः स्तोकाः,ततो नरकगतिबन्धकाः संख्येयगुणाः, ततो मनुष्यगतिबन्धका अनन्तगुणाः, ततस्तिर्यग्गतिबन्धकाः संख्येयगुणाः, ततश्च चतुर्णामपि गतीनां बन्धका विशेषाधिकाः, एवमेवानुपूर्वीचतुष्कस्याऽल्पबहुत्वं बोध्यम् । पञ्चेन्द्रियजातिबन्धका अल्पाः, ततो यथाक्रमं संख्येयगुणाः (२) चतुरिन्द्रियत्रीन्द्रियद्वीन्द्रियैकेन्द्रियजातिबन्धकाः । एकेन्द्रियजातिबन्धकेभ्यश्च पञ्चानामपि जातीनां बन्धका विशेषाधिकाः । वैक्रियशरीरबन्धका अल्पाः, तत औदारिकशरीरबन्धका अनन्तगुणाः, ततो विशेषाधिकास्तैजसकार्मणशरीरद्वयबन्धकाः । समचतुरस्रसंस्थानबन्धकाः स्तोकाः, तेभ्यो द्वितीयादिसंस्थानबन्धका यथाक्रमं संख्येयगुणाः, (२)अन्तिमहुण्डकाख्यसंस्थानबन्धकेभ्यः षण्णामपि समुदितानां संस्थानानां बन्धका विशेषाधिकाः । त्रसनाम्नो बन्धकाः स्तोकाः, तेभ्यः संख्येयगुणाः स्थावरनाम्नो बन्धकाः,तेभ्यः प्रकृतप्रकृतिद्वयबन्धका विशेषाधिकाः । एवमेव बादरसूक्ष्मे पर्याप्ताऽपर्याप्ते प्रत्येकसाधारणे स्थिरास्थिरे शुभाशुभे सुभगदुर्भगे आदेयानादेये यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति युगलाष्टकस्याप्यल्पबहुत्वं समधिगम्यम् । भावना पुनरिहौघानुसारेणाऽवसातव्या । ननु गतिप्रभृतिप्रकृतिबन्धकानामल्पबहुत्वं भवद्भिरत्रौघतोऽतिदिष्टम् , तच्चौघे प्रकृतप्रकृत्यबन्धकानप्याश्रित्याभिहितमस्ति, अत्र पुनस्तादृशमल्पबहुत्वं नाऽ-

वाप्यते, गतिनामादिप्रकृतप्रकृत्यबन्धकानामप्राप्यमाणत्वेन तद्बन्धकान् प्रतीत्यैवाऽल्पबहुत्वस्य प्राप्यमाणत्वात्, अतोऽत्रैव तोऽतिदेशोऽनुचित इत्याशङ्कामपनेतुं 'पर' मित्यादिनाऽपवादमभिदधाति-किन्तु गत्याद्योघिकप्रकृतीनामबन्धका न सन्ति । 'परघाऊसासाण' मित्यादि, पराघातोच्छ्वासनाम्नोर्बन्धकेभ्योऽबन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, पर्याप्तप्रायोग्यबन्धकालादपर्याप्तप्रायोग्यबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वेन एतत्प्रकृतिद्वयबन्धकालापेक्षयाऽबन्धकालस्य सङ्ख्येयगुणत्वात् । 'तत्तो' इत्यादि, ततोऽप्यगुरुलघूपघातप्रकृत्योर्बन्धका विशेषाधिकाः, पराघातोच्छ्वासप्रकृतिद्वयस्य बन्धकानामपि तत्र समावेशात् । प्रकृतप्रकृतिद्वयबन्धस्य ध्रुवत्वेनेह सर्वजीवाना तस्य बन्धकत्वादिति ॥१३५९ ६५॥

अथ पञ्चेन्द्रियतिर्यगोघमार्गणायां प्रस्तुताल्पबहुत्वं सापवादमतिदिशन्नाह

तिरियव्वऽप्पाबहुगं पणिंदितिरियम्मि सव्वपयडीण ।
णवरि जहिं अणंतगुणा उत्ताऽत्थि तहिं असंखगुणा ॥१३६०॥

(प्रे०) 'तिरियव्व' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियतिर्यगोघमार्गणायां सर्वप्रकृतीनां स्वस्थानाल्पबहुत्वमनन्तरोक्ततिर्यगोघमार्गणावदस्ति, नवरं बन्धका अबन्धका वा यस्मिन् स्थानेऽनन्तगुणा उक्तास्तेऽत्र तस्मिन् स्थानेऽसंख्यगुणा वक्तव्याः, मार्गणागतसर्वजीवानामसंख्येयत्वादिति । अल्पबहुत्वं तत्रतोऽवसेयम् ॥१३६०॥

साम्प्रतं पर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिरश्चीमार्गणाद्वये तदुच्यते

णामाउगवज्जाण एमेवऽत्थि दुपणिंदितिरियेसुं ।
णिरयसुराऊण कमा णराउगा बंधगा असंखगुणा ॥१३६१॥ (गीति)
तत्तो संखेज्जगुणा तिरियाउस्सऽत्थि तो विसेसहिया ।
हुन्ते चउण्ह ताओ अबंधगा ताण संखगुणा ॥१३६२॥
देवगइत्तो कमसो संखगुणा बंधगा णराईण ।
तत्तो विसेसअहिया चउण्ह एवमणुपुव्वीण ॥१३६३॥
चउरक्खा संखगुणा तिइंदियाईण बंधगा कमसो ।
ताउ पणिंदिस्स तओ पचण्ह खलु विसेसहिया ॥१३६४॥
उरलस्स बंधगाऽप्पा ताओ हुन्ति विउवस्स संखगुणा ।
तत्तो विसेसअहिया तेअसकम्माण बोद्धव्वा ॥१३६५॥
होअन्ति बंधगाऽप्पा उरालुवंगस्स ताउ संखगुणा ।
दोण्ह वि अबंधगा ताउ बंधगा विउवुवंगस्स ॥१३६६॥
तो दोण्ह विसेसहिया पचथिराइजुगलाण णिरयव्व ।
संघयणआगिईणं तिरयव्व हवेज्ज अप्पबहू ॥१३६७॥
होअन्ति बंधगाऽप्पा थावरचउगस्स ताउ संखगुणा ।
तप्पडिवक्खाण तओ हवेज्ज दुविहाण अब्भहिया ॥१३६८॥

परघूसासाणऽप्वा अबंधगा ताउ बंधगा णेया ।
संखगुणा तो अगुरुलहुवघायाण विसेसहिया ॥१३६९॥
सुखगइसराण थोवाऽत्थि बंधगा तो अबंधगा दोण्हं ।
संखगुणा तो असुहाण बंधगा ताउ दोण्ह अब्भहिया ॥१३७०॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'णामाउगवज्जाण' मित्यादि, पर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिरश्चीमार्गणयोर्नामकर्माऽऽयुष्ककर्मबन्धकानामल्पबहुत्वं विहाय शेषप्रकृतीनां बन्धकाबन्धकानामल्पबहुत्वं पञ्चेन्द्रियतिर्यगोघमार्गणावद् विज्ञेयम् ।'णिरयसुराऊण'इत्यादि, मनुष्यायुष्कबन्धकेभ्यो नरकायुष्कबन्धका असंख्येयगुणाः, तेभ्यो देवायुष्कबन्धका असंख्येयगुणाः । 'तत्तो' इत्यादि, देवायुष्कबन्धकेभ्यस्तिर्यगायुष्कबन्धकाः संख्येयगुणा वर्तन्ते, यतः प्रकृतमार्गणाद्वये संख्येयभागप्रमाणाऽऽयुर्बन्धकास्तेषु च संख्येयबहुभागप्रमाणा जीवास्तिर्यगायुष्कबन्धका वर्तन्ते । 'हुन्ते'इत्यादि, तिर्यगायुर्बन्धकेभ्यश्चतुर्णामप्यायुषां बन्धका विशेषाधिकाः, नरनरकसुरायुर्बन्धकानामिह प्रवेशात् । 'ताओ' इत्यादि, चतुर्णामायुषां बन्धकेभ्य आयुरबन्धकाः संख्येयगुणा वर्तन्ते, प्रकृतमार्गणाद्वये सामान्यत आयुर्बन्धकालतस्तदबन्धकालस्य सङ्ख्येयगुणत्वात् ।

'देवगइत्तो' इत्यादि, देवगतिबन्धकेभ्यो मनुष्यगतिबन्धकाः, तेभ्यस्तिर्यग्गतिबन्धकाः, तेभ्योऽपि नरकगतिबन्धका यथाक्रमं संख्येयगुणा ज्ञातव्याः, पर्याप्तासंज्ञिपञ्चेन्द्रियतिरश्चामत्र प्राधान्येन तेषामुत्तरोत्तरगतिबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् ।'तत्तो'इत्यादि, नरकगतिबन्धकेभ्यश्चतसृणां गतीनां बन्धका विशेषाधिकाः, नरकेतरगतिबन्धकानामत्र प्रवेशात् । 'एव' इत्यादि, एवमेव गतिनामवदानुपूर्वीनामबन्धकानामप्यल्पबहुत्वमवसातव्यम् । 'चउरक्खा' इत्यादि, चतुरिन्द्रियजातिनामबन्धकेभ्यस्त्रीन्द्रियजातिनामबन्धकाः; तेभ्यो द्वीन्द्रियजातिनामबन्धकाः, तेभ्यश्चैकेन्द्रियजातिनामबन्धकाः क्रमशः सङ्ख्येयगुणा वर्तन्ते, उत्तरोत्तरजातिनामबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । 'ताउ' इत्यादि, एकेन्द्रियजातिबन्धकेभ्यः पञ्चेन्द्रियजातिनामबन्धकाः सङ्ख्येयगुणा विज्ञेयाः, यस्मान्नरकगतिबन्धकानां तदितरगतिबन्धकेभ्यः संख्यातगुणत्वेन तत्सहचरितपञ्चेन्द्रियजातिनामबन्धकानामपि संख्येयगुणत्वमवसेयम् । 'तओ' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातिबन्धकेभ्यः पञ्चानामपि जातीनां बन्धका विशेषाधिकाः, तदितरजातिबन्धकानां प्रवेशात् । 'उरलस्स' इत्यादि, औदारिकशरीरनामबन्धकाः स्तोकाः, तेभ्यो वैक्रियशरीरनाम्नो बन्धकाः संख्येयगुणाः, नरकगतिबन्धकानां प्राधान्यात् । 'तत्तो' इत्यादि, वैक्रियशरीरनामबन्धकेभ्यस्तैजसकार्मणशरीरनाम्नोर्बन्धका विशेषाधिका बोद्धव्याः, औदारिकशरीरनामबन्धकानामपि तेषु प्रविष्टत्वात् । 'होअन्ति' इत्यादि, औदारिकाङ्गोपाङ्गनाम्नो बन्धका अल्पाः, तेभ्य औदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयस्याऽबन्धकाः संख्येयगुणाः, तिर्यग्गतिबन्धकाल एकेन्द्रियजातिबन्धकानामुपाङ्गद्वयस्याऽबन्धकत्वात् , तेषां च संख्यातबहुभागप्रमाणत्वात् । तेभ्यो वैक्रियाङ्गोपाङ्गनाम्नो बन्धकाः संख्यातगुणाः, हेतुरत्र शरीरनामब-

ज्ञातव्यः। वैक्रियाङ्गोपाङ्गनामबन्धकेभ्य औदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयबन्धका विशेषाधिकाः, औदारिकाङ्गोपाङ्गबन्धकानामत्र प्रविष्टत्वात्। 'पंचथिराई' त्यादि, स्थिरास्थिरे शुभाशुभे सुभगदुर्भगे आदेयानादेये यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति पञ्चानां युगलानां नरकौघमार्गणावदल्पबहुत्वमवसेयम्। 'संघयण' इत्यादि, संहननसंस्थानयोरल्पबहुत्वं तिर्यगोघमार्गणावद् बोद्धव्यम्। 'होअन्ती' त्यादि, स्थावरसूक्ष्माऽपर्याप्तसाधारणलक्षणस्य स्थावरचतुष्कस्य बन्धकाः स्तोकाः, तेभ्यस्तत्प्रतिपक्षभूतानां त्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकप्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयगुणाः, अत्र नरकगतिबन्धकानां प्राधान्यात्। 'तओ इत्यादि, तेभ्यस्त्रसस्थावरादियुगलाना बन्धका अभ्यधिकाः, स्थावरचतुष्कबन्धकानामपि समावेशात्। 'परघू' इत्यादि, पराघातोच्छ्वासनाम्नोरबन्धका अल्पाः, तेभ्यस्तयोर्बन्धकाः संख्येयगुणाः, नरकगतिबन्धकानां संख्येयगुणत्वात्तेषामनयोर्बन्धकत्वाच्च। पराघातोच्छ्वासबन्धकेभ्योऽगुरुलघूपघातनाम्नोर्बन्धका विशेषाधिकाः, पराघातोच्छ्वासनामबन्धकानामत्राऽन्तर्भावात्। 'सुखगइ' इत्यादि, सुखगतिसुस्वरप्रकृत्योर्बन्धकाः स्तोकाः वर्तन्ते, तेभ्यः खगतिद्विकस्य स्वरद्विकस्य चाबन्धकाः सख्येयगुणाः, तेभ्योऽशुभखगतिदुःस्वरयोर्बन्धकाः सख्येयगुणाः, भावना त्वत्रोपाङ्गनामवत्कार्या। तेभ्यो द्वयोरपि बन्धका अभ्यधिका विज्ञेयाः, सुखगतिसुस्वरबन्धकानामप्यत्र समावेशात्॥१३६१-७०॥ इदानीमपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियादिमार्गणासु तत्साम्येन विकलपृथ्वीकायाप्कायप्रत्येकवनस्पतिकायाना सकलमार्गणासु प्रकृतं प्रस्तूयते

असमत्तपणिंदितिरियमणुसपणिंदियतसेसु सव्वेसु ।
विगलिंदियपुढवीदगपत्तेअवणेसु विण्णेय ॥१३७१॥
तिरियव्वऽप्पाबहुग सायेयरणोकसायजाईण ।
संघयणागिइखगइअगुरुलहुचउगदसजुगलगोआण ॥१३७२॥ (गीति)
णिरयव्व अत्थि तिरिणरतिगाणुरलुवंगआयवदुगाण।
बधगओ सखगुणा अवधगा णत्थि सेसाण ॥१३७३॥

(प्रे०) 'असमत्त' इत्यादि, अपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्यपञ्चेन्द्रियत्रसरूपासु चतसृष्वपर्याप्तमार्गणासु ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेन तिसृषु द्वीन्द्रियमार्गणासु तिसृषु त्रीन्द्रियमार्गणासु तिसृषु च चतुरिन्द्रियमार्गणासु सप्तसु पृथिवीकायमार्गणासु सप्तसु चाऽप्कायमार्गणासु ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदभिन्नासु तिसृषु प्रत्येकवनस्पतिकायमार्गणासु चेति सम्मीलितासु त्रिंशन्मार्गणासु सातवेदनीयाऽसातवेदनीयहास्यरतिशोकाऽरतिभयकुत्साපुरुषस्त्रीनपुंसकवेदपञ्चजातीनां संहननसंस्थानखगत्यगुरुलघुचतुष्कत्रसदशकस्थावरदशकगोत्रप्रकृतीनां च बन्धकानामल्पबहुत्वं तिर्यगोघमार्गणावद् विज्ञेयम्। 'णिरयव्वे' त्यादि तिर्यगायुस्तिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्वीलक्षणतिर्यक्त्रिकमनुष्यायुर्मनुष्यगतिमनुष्यानुपूर्वीलक्षणमनुष्यत्रिकयोर्बन्धकानामल्पबहुत्वं नरकौघमार्गणावद् वर्तते। 'उरलुवंगे' त्यादि, औदारिकाङ्गोपाङ्गातपोद्योतरूपस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धकेभ्यस्तदबन्धकाः संख्येयगुणा वर्तन्ते, तद्बन्ध-

कालादेतदबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । 'णत्थि' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतिबन्धकानामल्पबहुत्वं नास्ति, प्रकृतमार्गणागतसकलजीवैः संततं तासां बध्यमानत्वात् , ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-ज्ञानावरणपञ्चकं, दर्शनावरणनवकम् , मिथ्यात्वमोहनीयम् , षोडश कषायाः, औदारिकतैजसकार्मणशरीरत्रयम् , निर्माणनाम, वर्णचतुष्कम् , अन्तरायपञ्चकं चेति चतुश्चत्वारिंशदिति ॥१३७१-३॥

अथ मनुष्यौघमार्गणायां प्रकृतमल्पबहुत्वं कथ्यते

मणुए अबधगाओ विण्णेया बधगा असखगुणा ।
पणणाणावरणाण वण्णचउगणिमिणपचविग्धाण ॥१३७४॥ (गीतिः)
थोवा अबधगा चउवीआवरणाण तो विसेसहिया ।
णिद्दादुगस्स तत्तो थीणद्धितिगस्स सखगुणा ॥१३७५॥
तो अत्थि बधगा सि असखियगुणा तओ विसेसहिया।
णिद्दादुगस्स ताओ दरिसणआवरणचउगस्स ॥१३७६॥
णेया अबधगाऽप्पा दुवेअणीयाण तो असखगुणा ।
सायस्स बधगा तो अत्थि असायस्स संखगुणा ॥१३७७॥
ताओ विसेसअहिया विण्णेया दोण्ह वेअणीयाण ।
एमेव जाणियव्वा तसाइणवजुगलगोआण ॥१३७८॥
थोवा अबधगा तिमलोहस्स तओ कमा विसेसहिया ।
मायाईण तत्तो तइअकसायाण सखगुणा ॥१३७९॥
ताउ कमा अत्थि दुइअपढमकसायाण तो विसेसहिया ।
मिच्छस्स ताउ अत्थि असखगुणा बधगा तस्स ॥१३८०॥
ताओ विसेसअहिया पढमदुइअतिअकसायचउगाणं ।
कमसो णेया तत्तो अतिमकोहाइगाण कमा ॥१३८१॥
थोवा अबधगा णोकसायणवगस्स तो असखगुणा ।
पुरिसस्स बधगेत्तो उड्ढ ओधव्व विण्णेया ॥१३८२॥
होअन्ति बधगाऽप्पा णेरइयाउस्स ताउ सखगुणा ।
देवाउगस्स तत्तो असंखियगुणा णराउस्स ॥१३८३॥
ताउ असंखेज्जगुणा तिरियाउस्सऽत्थि तो विसेसहिया ।
आऊण चउण्ह तओ अबधगा ताण संखगुणा ॥१३८४॥
थोवा अबधगा चउगईण तो बधगाऽत्थि सखगुणा ।
सुरणिरयगईण कमा ताओ णेया असखगुणा ॥१३८५॥
मणुयगईए ताओ सखगुणा तिरिगईअ ताहिन्तो ।
णेया विसेसअहिया चउण्ह एवमणुपुव्वीणं ॥१३८६॥
सव्वप्पा पंचण्हं जाईण अबंधगा मुणेयव्वा ।
तत्तोऽत्थि बंधगा खलु असंखियगुणा पणिदिस्स ॥१३८७॥
तत्तो संखेज्जगुणा कमसो हुन्ति चउइंदियाईण ।
ताओ विसेसअहिया हवेज्ज पचण्ह जाईणं ॥१३८८॥

सयमुज्झं अप्पाबहु आहारतणुस्स बंधगाण तहा।
पणतणुअबंधगाण सखगुणा बंधगा तत्तो ॥१३८॥
वेउव्वतणुस्स तओ असखगुणुरलतणुस्स बोद्धव्वा।
ताओ विसेसअहिया तेअसकम्मणतणूणऽत्थि ॥१६०॥
होअन्ति बंधगा खलु थोवा आहारुवगणामस्स।
ताओ सखेज्जगुणा वेउव्वियुवगणामस्स ॥१३६१॥
ताउ असखेज्जगुणा उरालुवगस्स तो विसेसहिया।
तिउवगाण तत्तो अबंधगा ताण सखगुणा ॥१३६२॥
ओघव्वऽप्पाबहुग मधयणखगइसरायवदुगाणं।
छण्ह सठाणाण होअन्ति अबंधगा थोवा ॥१३६३॥
ताउ असखगुणाइमसठाणस्सऽत्थि ताउ सखगुणा।
बीआईणं कमसो तत्तो छण्ह विसेसहिया ॥१३९४॥
अगुरुलहुवघायाण अबंधगाऽप्पा तओ असखगुणा।
होअन्ति बंधगा खलु परघाऊसासणामाणं ॥१३९५॥
तत्तो अबंधगा सि संखगुणा ताउ बंधगा-ऽब्भहिया।
अगुरुलहुवघायाणं हवेज्ज णिरयव्व तित्थस्स ॥१३९६॥

(प्रे०) 'मणुए' इत्यादि, मनुष्यौघमार्गणायां मतिश्रुतावधिमनःपर्यवकेवलज्ञानावरणपञ्चकस्य वर्णचतुष्कस्य निर्माणनाम्नोऽन्तरायपञ्चकस्य चाऽबन्धकेभ्यस्तद्बन्धका असङ्ख्येयगुणा वर्तन्ते, आमामबन्धकाः श्रेणिगताः केवलज्ञानिनश्च, ते च संख्याताः, बन्धकास्त्वपर्याप्तमनुष्या अपि, ते चासंख्याता इतिकृत्वा। 'थोवा' इत्यादि, चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्कस्याऽबन्धकाः स्तोकाः, तदबन्धकत्वेनोपशान्तमोहादिगुणस्थानगतानां जीवानामेवात्र प्राप्यमाणत्वात्। तेभ्यो निद्राद्विकस्याऽबन्धका विशेषाधिकाः, अपूर्वकरणगुणस्थानद्वितीयभागादारभ्य सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानपर्यन्तवर्तिजीवानामपि प्रवेशात्। तेभ्यः स्त्यानर्द्धित्रिकस्याऽबन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, तृतीयाद्यष्टमगुणस्थानगतमनुष्याणामप्यत्र लभ्यमानत्वात् तेषु चाविरतसम्यग्दृष्टिराशेः प्रधानत्वेन सङ्ख्येयगुणत्वात्तेषाम्। 'तो' इत्यादि, स्त्यानर्द्धित्रिकाऽबन्धकेभ्यस्तद्बन्धका असङ्ख्येयगुणाः, अपर्याप्तमनुष्यराशेः प्रधानतया तद्बन्धकत्वेन प्राप्यमाणत्वात् तस्य चाऽसंख्येयप्रमाणत्वात्। तेभ्यो निद्राद्विकस्य बन्धका विशेषाधिकाः, तृतीयाद्यष्टमगुणस्थानप्रथमभागपर्यन्तगतमनुष्याणामपि तेषु तद्बन्धकत्वेन वर्तमानत्वात्। तेभ्यश्चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्कबन्धका विशेषाधिकाः 'विशेषाधिका' इतिपदं इहापि सम्बन्धनीयम्। अष्टमगुणस्थानद्वितीयभागादारभ्य दशमान्तगुणस्थानं यावद् वर्तमानानां तद्बन्धकत्वेन सत्त्वात्। 'णेया' इत्यादि, वेदनीयद्वयस्याऽबन्धका अल्पाः, यतः सातासातवेदनीयद्वयस्याऽबन्धका अयोगिन एव वर्तन्ते, ते च शतपृथक्त्वप्रमाणाः, तेभ्यः सातवेदनीयस्य बन्धका असङ्ख्येयगुणाः, अपर्याप्तमनुष्याणामप्यत्र तद्बन्धकत्वेन प्राप्यमाणत्वात्। तेभ्योऽसातवेदनीयस्य बन्धकाः सङ्ख्येय-

गुणाः, सातवेदनीयबन्धकालादसातवेदनीयबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् , तेभ्यो वेदनीयद्वयस्य बन्धका विशेषाधिकाः, सातवेदनीयबन्धकानामप्यत्र प्रविष्टत्वात् । 'एमेव' इत्यादि, वेदनीयवदेव स्थिरवजत्रसादियुगलनवकस्य गोत्रकर्मणश्चाऽल्पबहुत्वं ज्ञातव्यम् ।

'थोवा' इत्यादि, सञ्ज्वलनलोभस्याऽबन्धकाः स्तोकाः, सूक्ष्मसम्परायादिषु पञ्चस्वेव गुणस्थानकेषु वर्तमानानां जीवानां तदबन्धकत्वेनेह प्राप्यमाणत्वात् । ततः संज्वलनमायामानक्रोधकषायाणामबन्धकाः क्रमेण विशेषाधिका विज्ञेयाः, नवमगुणस्थानकपञ्चमचतुर्थादिभागेषु वर्तमानानामपि मनुष्याणां तदबन्धकतया सत्त्वात् । 'तत्तो' इत्यादि,सञ्ज्वलनक्रोधाबन्धकेभ्यः प्रत्याख्यानावरणक्रोधादिचतुष्कस्याऽबन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, श्रेणिगतजीवानामपेक्षया प्रमत्ताप्रमत्तसयतानामपिसङ्ख्येयगुणत्वात् । 'ताउ'इत्यादि, प्रत्याख्यानावरणचतुष्काऽबन्धकेभ्यः क्रमेण द्वितीयप्रथमकषाययोरबन्धकाः सख्येयगुणाः,मनुष्येषु सयतापेक्षया पञ्चमगुणस्थानगतानां जीवानां ततोऽपि तुर्यतृतीयगुणस्थानगतानाञ्च सङ्ख्येयगुणत्वात् । प्रथमकषायाऽबन्धकेभ्यो मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽबन्धका विशेषाधिकाः,सख्येयानां सास्वादनाना तदबन्धकतया वर्तमानत्वात् , ततोऽपि मिथ्यात्वमोहनीयस्य बन्धका असङ्ख्येयगुणाः,अपर्याप्तमनुष्याणामपि तद्बन्धकत्वात्तेषां चासख्येयत्वात् ।'ताओ'इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयबन्धकेभ्यः क्रमेणाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कस्याऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य प्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्कस्य च बन्धका विशेषाधिका(२)विज्ञेयाः,मार्गणायामस्यां द्वितीयतृतीयादिद्वयपञ्चमगुणस्थानकेषु यथाक्रम तत्तत्कषायचतुष्कस्य बन्धकानामप्यधिकतया प्राप्यमाणत्वात् । तेभ्यः सञ्ज्वलनक्रोधस्य बन्धका विशेषाधिकाः, ततःसञ्ज्वलनमानबन्धका विशेषाधिकाः, ततः सञ्ज्वलनमायाबन्धका विशेषाधिकाः,ततः सञ्ज्वलनलोभबन्धका विशेषाधिकाः,अस्या मार्गणायां प्रमत्ताऽप्रमत्तसंयताना नवमगुणस्थानपञ्चभागेषु च यथासभवं तद्बन्धकानामपि प्राप्यमाणत्वात् ।

'थोवा' इत्यादि, हास्यरतिशोकारतिभयजुगुप्सास्त्रीपुरुषनपुंसकवेदत्रयरूपस्य नोकषायस्याऽबन्धकाः स्तोका विज्ञेयाः, अस्या मार्गणायामनिवृत्तिबादरसम्परायद्वितीयभागप्रभृतिगुणस्थानगतानामेव तदबन्धकत्वेन सद्भावात् । तेभ्योऽसख्येयगुणाः पुरुषवेदस्य बन्धकाः, अपर्याप्तमनुष्याणामपि तद्बन्धविधायित्वात् । 'इत्तो उड्ढं' इत्यादि, अत ऊर्ध्वमोघवदल्पबहुत्वमवसेयम् , तच्चैवम्—पुरुषवेदबन्धकेभ्यः स्त्रीवेदबन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, ततो हास्यरत्योर्बन्धकाः सख्येयगुणाः, ततः शोकाऽरतिबन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, ततो नपुंसकवेदबन्धका विशेषाधिकाः, ततो भयकुत्सयोर्बन्धका विशेषाधिकाः, हेतोरवगतिरोघतः कार्या ।

'होअन्ति' इत्यादि, नरकायुष्कस्य बन्धका अल्पास्ततो देवायुर्बन्धकाः सख्यातगुणाः, ततो मनुष्यायुर्बन्धका असंख्यगुणाः, अपर्याप्तमनुष्याणामपि तद्बन्धकत्वात् , ततस्तिर्यगायुर्बन्धका असंख्यगुणाः, तेषामायुर्बन्धकेष्वसंख्यातबहुभागेषु वर्तमानत्वात् । **'थोवा'** इत्यादि, चतसृणां

गतीनामबन्धकाः स्तोकाः, अष्टमगुणस्थानसप्तमभागगताना नवमादिगुणस्थानगतानां चैव जीवानामत्र तदबन्धकत्वेन सत्त्वात् । 'तो' इत्यादि, तेभ्यः सुरगतेर्बन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यो नरकगतिबन्धकाः सङ्ख्येयगुणा वर्तन्ते, सुरगतेर्बन्धकालान्नरकगतिबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात, ततोऽसंख्येयगुणा मनुष्यगतिबन्धकाः, असङ्ख्यातानामपर्याप्तमनुष्याणामपि तद्बन्धकतया प्राप्यमाणत्वात् । 'तओ' इत्यादि, ततस्तिर्यग्गतिबन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, अपर्याप्तमनुष्येषु मनुष्यगतिबन्धकालतस्तिर्यग्गतिबन्धकालस्य सङ्ख्येयगुणत्वात् । तेभ्यश्चतुर्णामपि गतीनां बन्धका विशेषाधिकाः, देवनरकमनुष्यगतिबन्धकानामप्यत्र समाविष्टत्वात् । 'एवम्' इत्यादि, एवमेवाऽऽनुपूर्वीचतुष्कबन्धकानामल्पबहुत्वं वाच्यम् ।

'सव्वप्पा' इत्यादि, पञ्चानां जातीनामबन्धकाः सर्वस्तोका ज्ञातव्याः, अष्टमगुणस्थानकसप्तमभागे नवमादिगुणस्थानेषु च वर्तमानाना संख्यातानां पर्याप्तमनुष्याणां तदबन्धकत्वेनोपलभ्यमानत्वात् । तेभ्योऽसङ्ख्येयगुणाः पञ्चेन्द्रियजातिबन्धका वर्तन्ते, यतोऽपर्याप्तमनुष्या अपि तद्बन्धकत्वेनेह वर्तन्ते । तेभ्यः सङ्ख्येयगुणाः क्रमेण चतुरिन्द्रियादिजातीनां बन्धका वर्तन्ते, अपर्याप्तमनुष्यानाश्रित्य क्रमेण बन्धकालस्य सङ्ख्येयगुणत्वात् । एकेन्द्रियजातिबन्धकेभ्यः पञ्चानां जातीनां बन्धका विशेषाधिकाः, द्वीन्द्रियादिजातिबन्धकानामिह प्रवेशात् । 'सयमुज्झं' इत्यादि, आहारकशरीरबन्धकानामल्पबहुत्वं स्वयमूह्यम् । अयं भावः—आहारकशरीरबन्धकानां पञ्चानां शरीराणामबन्धकाना परस्पराल्पबहुत्वं स्वयं ज्ञातव्यम् , प्रधानतया सयोगिकेवलिनामाहारकशरीरबन्धकाप्रमत्तयतीनां परस्पराल्पबहुत्वस्य निर्णयं कृत्वेति शेषः, पञ्चशरीराबन्धकेभ्यः, यद्वाऽऽहारकशरीरबन्धकेभ्यः, उत समुदितेभ्यस्तेभ्यो वैक्रियशरीरस्य बन्धकाः संख्यातगुणाः,अप्रमत्तादिभ्यो देवनरकगतिबन्धकमिथ्यादृष्टिपर्याप्तमनुष्याणां सङ्ख्यातगुणत्वात्तेषां च वैक्रियशरीरस्य बन्धकत्वात् । तत औदारिकशरीरबन्धका असंख्यगुणाः,अपर्याप्तमनुष्याणामपि तद्बन्धकत्वात् ।ततस्तैजसकार्मणशरीरबन्धका विशेषाधिकाः, वैक्रियाहारकशरीरबन्धकानामपि तत्र प्रक्षेपात् । 'होअन्ति' इत्यादि, आहारकाङ्गोपाङ्गबन्धकाः स्तोकाः, केषाञ्चिदेवाऽप्रमत्तसंयताना तद्बन्धस्य भावात् । 'साओ' इत्यादि, तेभ्यो वैक्रियाङ्गोपाङ्गबन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, संयतेभ्यो देवनरकप्रायोग्यबन्धकानां संख्यातगुणत्वात् , औदारिकाङ्गोपाङ्गबन्धकास्तेभ्योऽसङ्ख्येयगुणाः, अपर्याप्तमनुष्याणामपि तद्बन्धकतया सत्त्वात् , तेभ्य उपाङ्गत्रयस्य बन्धका विशेषाधिकाः, अङ्गोपाङ्गत्रयबन्धकेभ्यस्तदबन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, तद्बन्धकालापेक्षयैतदबन्धकालस्य सङ्ख्येयगुणत्वात्,अपर्याप्तेषु संख्यातबहुभागप्रमाणा जीवा एकेन्द्रियजातिबन्धकास्ते चोपाङ्गत्रयस्याबन्धकाः सन्तीति कृत्वा । 'ओघव्व' इत्यादि, संहननखगतिस्वरातपोद्योतबन्धकानामल्पबहुत्वमोघवद् विज्ञेयम् , तद्यथा—प्रथमसंहननप्रकृतिबन्धकाः स्तोकाः, तेभ्यः क्रमेण द्वितीयादिसंहननबन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यः षण्णा संहन-

नानां बन्धका विशेषाधिकाः, तेभ्यस्तदबन्धका सङ्ख्येयगुणाः। शुभखगतिबन्धकेभ्योऽशुभखगतिबन्धकाः सङ्ख्यातगुणाः, तेभ्यः खगतिद्वयबन्धका विशेषाधिकाः, तेभ्यः खगतिद्वयाबन्धकाः संख्यातगुणाः। सुस्वरबन्धकेभ्यो दुःस्वरबन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यः स्वरद्वयबन्धका विशेषाधिकाः, ततः स्वरद्वयाबन्धकाः संख्यातगुणाः। आतपोद्योतरूपस्य प्रकृतिद्वयस्य बन्धकेभ्योऽबन्धकाः सङ्ख्येयगुणा विज्ञेयाः, हेतोरवगतिरोवतोऽवसेया। 'छण्हं' इत्यादि, षण्णां संस्थानानामबन्धका अल्पाः, अष्टमादिगुणस्थानगतानां संख्येयानामेव मनुष्याणां तदबन्धकत्वेन प्राप्यमाणत्वात्। 'ताउ' इत्यादि, तेभ्यः समचतुरस्रसंस्थानबन्धका असंख्येयगुणाः, अपर्याप्तमनुष्याणामपि तद्बन्धकत्वेन सत्त्वात्। 'ताउ' इत्यादि, तेभ्यो द्वितीयादिसंस्थानबन्धका यथाक्रमं सङ्ख्येयगुणाः (२) वर्तन्ते, पूर्वपूर्वसंस्थानबन्धकालापेक्षयोत्तरोत्तरसंस्थानबन्धकालस्य सङ्ख्येयगुणत्वात्। 'तत्तो' इत्यादि, चरमसंस्थानबन्धकेभ्यः षण्णां संस्थानानां बन्धका विशेषाधिकाः, प्रथमादिपञ्चसंस्थानबन्धकानामप्यत्र समावेशात्। 'अगुरुलहु' इत्यादि, अगुरुलघूपघातप्रकृत्योरबन्धकाः स्तोकाः, अष्टमादिगुणस्थानगतानामेव तल्लाभात्, तेभ्यः पराघातोच्छ्वासनाम्नोर्बन्धका असङ्ख्येयगुणा वर्तन्ते, संख्यातभागवर्त्यपर्याप्तमनुष्याणामपि तद्बन्धकत्वात्। 'तत्तो' इत्यादि, पराघातोच्छ्वासबन्धकेभ्यस्तदबन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, पर्याप्तप्रायोग्यबन्धकेभ्योऽपर्याप्तप्रायोग्यबन्धकानां संख्येयगुणत्वात्, तेभ्योऽगुरुलघूपघातप्रकृत्योर्बन्धका विशेषाधिकाः, पराघातोच्छ्वासबन्धकानां च निरुक्तप्रकृतिबन्धस्यावश्यंलाभात्। 'णिरयव्व' इत्यादि, जिननाम्नो बन्धकाबन्धकानामल्पबहुत्वं नरकौघमार्गणावज्ज्ञेयम्, तद्यथा—जिननामबन्धकेभ्यस्तदबन्धका असङ्ख्येयगुणा वर्तन्ते,हेतोर्ज्ञप्तिर्नरकौघमार्गणातः कार्येति॥१३७४-९६॥ अथ पर्याप्तमनुष्यमानुषीमार्गणयोरुत्तरप्रकृतिबन्धकाबन्धकानामल्पबहुत्वं निरूपयिषुराह

पज्जमणुसमणुसीसु अत्थि परुवणाऽणामवज्जाण।
णवरि जहि असंखगुणा उत्ता तहि हुन्ति सखगुणा॥१३९७॥
होअन्ति बंधगा खलु थोवा मणुसाउगस्स ताहिन्तो।
णिरयाउस्स हवन्ते सखगुणा तो सुराउस्स॥१३९८॥
ताहिन्तो विण्णेया तिरियाउस्स य तओ विसेसहिया।
हुन्ति चउण्ह वि तत्तो अबधगा ताण सखगुणा॥१३९९॥
संखगुणा सुरणरतिरिणिरयगईणऽत्थि बधगा कमसो।
चउगइअबधगाओ तओ चउण्हं विसेसहिया॥१४००॥
एवं अणुपुव्वीणं पणजाईणं अबंधगा थोवा।
तत्तो संखेज्जगुणा विण्णेया बंधगा कमसो॥१४०१॥
चउइंदियाइगाणं तत्तो पंचिदियस्स विण्णेया।
तत्तो विसेसअहिया हवेज्ज पंचण्ह जाईण॥१४०२॥
पणतणुअबंधगाणं तह आहारतणुबधगाणुज्झं।
सयमप्पाबहुगं तो सखगुणा बधगुरलस्स॥१४०३॥

तो विउव्वतणुस्स तओ विसेसअहियाऽत्थि तेअकम्माणं ।
आहारउवंगाओ संखगुणा बंधगा णेया ॥१४०४॥
उरलउवगस्स तओ तिउवंगाण अबंधगा तत्तो ।
विउवस्स बंधगा तो तिउवगाणं विसेसहिया ॥१४०५॥
पज्जपणिंदितिरिक्ख उ संघयणखगइसरायवदुगाणं ।
वण्णचउगणिमिणाण णाणावरणव्व बोद्धव्वा ॥१४०६॥
छण्हागिईण थोवा अबंधगा ताउ बंधगा कमसो ।
संखगुणाऽज्जाईण तत्तो छण्हं विसेसहिया ॥१४०७॥
तित्थयरस्स बंधगाओ संखेज्जगुणा अबंधगा णेया ।
अगुरुलहुवघायाणं अबंधगाऽप्पा तओ णेया ॥१४०८॥
परघाऊसासाणं संखगुणा ताउ बंधगा तेसिं ।
तत्तो विसेसअहिया अत्थि अगुरुलहुवघायाणं ॥१४०९॥
णेया अबंधगाऽप्पा थावरचउगजुगलाण ताहिन्तो ।
असुहाण बंधगा खलु संखगुणा तो सुहाणऽत्थि ॥१४१०॥
ताओ विसेसअहिया अत्थि चउण्हं वि जुगलपयडीणं ।
थोवा अबंधगा पणथिराइजुगलाण बोद्धव्वा ॥१४११॥
तो बंधगा सुहाणं संखगुणा हुन्ति ताउ असुहाणं ।
तत्तो विसेसअहिया अत्थि चउण्हं पि जुगलाण ॥१४१२॥

(प्रे०) **'पज्जमणुस'** इत्यादि, पर्याप्तमनुष्यमानुषीमार्गणाद्वये आयुष्ककर्मनामकर्मवर्जानां शेषप्रकृतीनां बन्धकाबन्धकानामल्पबहुत्वं मनुष्यौघमार्गणावद् विज्ञेयम् । **'णवरि'** इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति, तद्यथा–यत्राऽसंख्येयगुणा मनुष्यौघमार्गणायामुक्तास्ते प्रकृतमार्गणाद्वये संख्येयगुणा वक्तव्याः, मार्गणागतजीवानां संख्येयत्वात् । **'होअन्ति'** इत्यादि, मनुष्यायुष्कस्य बन्धकाः स्तोकाः, ततो नरकायुष्कबन्धकाः संख्येयगुणाः, तेभ्यः सुरायुष्कबन्धकाः संख्येयगुणाः, तेभ्यस्तिर्यगायुष्कबन्धकाः संख्यातगुणाः, ततश्चतुर्णामायुष्काणां बन्धका विशेषाधिकाः, तेभ्यश्चतुर्णामप्यायुषामबन्धकाः संख्येयगुणाः,आयुर्बन्धकालापेक्षयाऽत्र तदबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । **'हुन्ति'** इत्यादि,चतुर्गतिनाम्नामबन्धका अल्पास्तेभ्य देवमनुष्यतिर्यग्नरकगतिबन्धकाः क्रमशः संख्यातगुणा वर्तन्ते, उत्तरोत्तरगतिबन्धकालस्येह संख्यातगुणत्वात् । **'चउगइ'** इत्यादि, नरकगतिबन्धकेभ्यश्चतुर्गतीनां बन्धका विशेषाधिकाः, अत्र शेषगतित्रयस्य बन्धकानां समावेशात् । **'एव'** इत्यादि, आनुपूर्वीनाम्नो बन्धकाबन्धकानामल्पबहुत्वमेवमेव गतिनामवद् बोध्यम् । **'पणजाईणं'** इत्यादि, पञ्चानां जातीनामबन्धकाः स्तोकाः, स्तोकानामूर्ध्वगुणस्थानस्थितानां प्राप्यमाणत्वात् । **'तत्तो'** इत्यादि, तेभ्यः क्रमेण चतुस्त्रिद्व्येकेन्द्रियजातीनां बन्धकाः संख्येयगुणा विज्ञेयाः, क्रमेण तत्तद्बन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । **'तत्तो'** इत्यादि, एकेन्द्रियजातिबन्धकेभ्यः पञ्चेन्द्रियजातिबन्धकाः संख्येयगुणाः, तेभ्यः पञ्चजातीनां बन्धका विशेषाधिकाः । भावना पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणावत्कार्या । **'पण'** इत्यादि, पञ्च-

शरीरनाम्नामबन्धकानां तथाऽऽहारकशरीरनाम्नो बन्धकानां परस्परमल्पबहुत्वं स्वयमूह्यम् , भावना तु मनुष्यौघवद् विधेया । 'तो' इत्यादि, उक्तपदद्वयत औदारिकशरीरबन्धकाः संख्यातगुणाः, संयतेभ्यो मिथ्यादृष्टिषु तिर्यक्प्रायोग्यबन्धकानां संख्येयगुणत्वात् , ततो वैक्रियशरीरबन्धकाः संख्येयगुणाः, प्रस्तुते नरकप्रायोग्यबन्धकानां संख्येयगुणत्वात् । ततस्तैजसकार्मणशरीरद्वयस्य बन्धका विशेषाधिकाः, शेषशरीरबन्धकानामिह लाभात् । 'आहारउवंगाओ' इत्यादि, आहारकाङ्गोपाङ्गनामबन्धका अल्पाः, तत औदारिकाङ्गोपाङ्गबन्धकाः संख्यातगुणाः, तत उपाङ्गस्याबन्धकाः संख्यातगुणाः, ततो वैक्रियाङ्गोपाङ्गबन्धकाः संख्यातगुणाः, संयतेभ्यः क्रमेण तिर्यक्त्रसप्रायोग्यैकेन्द्रियप्रायोग्यनरकप्रायोग्यबन्धकानां संख्येयगुणत्वात् ,तत उपाङ्गसामान्यस्य बन्धका विशेषाधिकाः,शेषोपाङ्गद्वयस्य बन्धकानामत्र प्रवेशात् । 'पज्ज' इत्यादि, संहननखगतिस्वरातपोद्योतप्रकृतिबन्धकानामल्पबहुत्वं पर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणावद् बोद्धव्यम् । 'वण्ण' इत्यादि, वर्णचतुष्कनिर्माणनाम्नां बन्धका बन्धकानामल्पबहुत्वं ज्ञानावरणबन्धकाबन्धकानामल्पबहुत्ववद् बोद्धव्यम् , तत्पुनरेवम्—वर्णचतुष्कनिर्माणनाम्नामबन्धकेभ्यस्तद्बन्धकाः संख्येयगुणाः । 'छण्हा' इत्यादि, षण्णां संस्थानानामबन्धकाः स्तोकाः, अपूर्वकरणसप्तमादिभागगतानामेव लाभात् । 'ताउ' इत्यादि, तेभ्यः प्रथमादिसंस्थानानां बन्धकाः क्रमशः संख्येयगुणाः, पूर्वपूर्वसंस्थानबन्धकालापेक्षयोत्तरोत्तरसंस्थानबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । 'त्तो' इत्यादि, अन्तिमसंस्थानबन्धकेभ्यः षण्णां संस्थानानां बन्धका विशेषाधिकाः, प्रथमादिपञ्चसंस्थानबन्धकानामप्यत्र समाविष्टत्वात् । 'बन्धगओ' इत्यादि, जिननाम्नो बन्धकेभ्यः संख्येयगुणास्तदबन्धकाः सन्ति, केषाचिदेव पुण्यवतां सम्यग्दृशां जिननाम्नो बन्धभावात् । 'अगुरु' इत्यादि, अगुरुलघूपघातप्रकृतीनामबन्धका अल्पाः,अष्टमगुणस्थानसप्तमभागगतानां नवमादिगुणस्थानस्थितानां च तदबन्धकत्वेन प्राप्यमाणत्वात् । 'तओ' इत्यादि, तेभ्यः पराघातोच्छ्वासनाम्नोरबन्धकाः संख्येयगुणाः, अपर्याप्तप्रायोग्यबन्धकानामप्यत्र लाभात्तेषां च पूर्वोक्तेभ्यः संख्येयगुणत्वात् । 'ताउ' इत्यादि, तेभ्यस्तद्बन्धकाः संख्यातगुणाः, प्रस्तुते पर्याप्तत्रसप्रायोग्यबन्धकानां संख्येयगुणत्वात् । 'त्तो' इत्यादि, तेभ्योऽगुरुलघूपघातनाम्नोर्बन्धका विशेषाधिकाः,अपर्याप्तप्रायोग्यबन्धकानामपि तत्र प्रक्षेपात् । 'थोवा' इत्यादि, स्थावरचतुष्कत्रसचतुष्कयुगलस्याऽबन्धका अल्पा वर्तन्ते, यतोऽष्टमगुणस्थानसप्तमभागगता नवमादिगुणस्थानगताश्च प्राप्यन्ते । 'ताहि-..ो' इत्यादि, तेभ्यः स्थावरचतुष्कस्य बन्धकाः संख्येयगुणाः । 'तो' इत्यादि, तेभ्यस्त्रसचतुष्कस्य बन्धकाः संख्येयगुणाः, स्थावरचतुष्कबन्धकालापेक्षया नरकगतिसहचरितत्रसचतुष्कबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । 'ताओ' इत्यादि, त्रसचतुष्कबन्धकेभ्यः त्रसस्थावरचतुष्कयुगलद्वयस्य बन्धका विशेषाधिकाः, स्थावरचतुष्कबन्धकानामत्र समावेशात् । 'थोवा' इत्यादि, पञ्चस्थिरादिपञ्चाऽस्थिरादियुगलानामबन्धकाः स्तोकाः, । 'तो' इत्यादि, तेभ्यः पञ्चस्थिरादिप्रकृतिबन्धकाः संख्ये

यगुणाः, तेभ्यः पञ्चाऽस्थिरादिप्रकृतिबन्धकाः संख्येयगुणाः, श्रेणिगतेभ्यो नरकगतिवर्जगति-बन्धकानां नरकगतिबन्धकानां च क्रमेण संख्यातगुणत्वात्, तेभ्यः पञ्चस्थिरादिपञ्चाऽस्थिरादि-युगलानां बन्धका विशेषाधिकाः,पञ्चस्थिरादिप्रकृतिबन्धकानामप्यत्र समावेशात् ॥१३९७-१४१२॥

इदानीं देवौघादिमार्गणासु तदुच्यते

देवीसाणतविउवजुगलेसु अपज्जतिरिपणिंदिव्व ।
णवणोकसायुरलुवंगसंघयणखगइआयवसराणं ॥१४१३॥ (गीति')
होअन्ति बंधगाऽप्पा पणिंदियतसाण ताउ संखगुणा ।
एगिंदिथावराणं ताओ दोण्हं विसेसहिया ॥१४१४॥
णिरयव्वऽप्पाबहुगं सप्पाउग्गाण सेसपयडीण ।

(प्रे०) 'देवी' इत्यादि, देवौघभवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कसौधर्मेशानवैक्रियकाययोगवैक्रिय-मिश्रकाययोगरूपास्वष्टसु मार्गणासु नवनोकषायौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननखगत्यातपस्वरप्रकृतीनां बन्धकाबन्धकानामल्पबहुत्वमपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियमार्गणावद् विज्ञातव्यम्, उभयत्र पञ्चेन्द्रिय-प्रायोग्यबन्धकालादेकेन्द्रियप्रायोग्यबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वस्य लाभान्नरकगतिवदनतिदिश्यापर्याप्त-पञ्चेन्द्रियतिर्यग्वदतिदेशः । 'होअन्ति' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातित्रसनाम्नोर्बन्धका अल्पाः, तेभ्य एकेन्द्रियजातिस्थावरनाम्नोर्बन्धकाः संख्येयगुणाः, मार्गणास्वासु एकेन्द्रियप्रायोग्यबन्धक-देवानां मुख्यराशेः सत्त्वात् । 'ताओ' इत्यादि, तेभ्यस्तद्द्वयोरपि बन्धका विशेषाधिकाः, पञ्चे-न्द्रियजातित्रसनाम्नोर्बन्धकानामत्र समावेशात् । 'णिरयव्व' इत्यादि, उक्तातिरिक्तप्रकृति-बन्धकाबन्धकानामल्पबहुत्वं नरकौघमार्गणावद् विज्ञेयम्,उभयत्र प्रकृष्टतश्चतुर्थगुणस्थानस्य लाभाद-प्रशस्तप्रकृतीनां बन्धकालस्य संख्येयगुणत्वाच्च । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः–दर्शनावरणनवकम्, वेदनीयद्वयम्, नोकषायवर्जसप्तदशमोहप्रकृतयः, तिर्यङ्मनुष्यायुष्कद्वयम्, तिर्यङ्मनुष्यगतिद्वयम्, संस्थानषट्कम्,तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयम्,सुस्वरवर्जपञ्चस्थिरादिप्रकृतयः,दुःस्वरवर्जाऽस्थिरादिपञ्चप्रकृ-तयः, जिननाम, उद्योतनाम, गोत्रद्वयं चेति चतुःपञ्चाशत्प्रकृतयः, भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कमार्ग-णात्रये जिननामवर्जास्त्रिपञ्चाशत्प्रकृतय इति । ज्ञानावरण नामा न्तरायसत्कनवदशध्रुवबन्धिप्रकृतयः, बादरत्रिकम्, औदारिकशरीरनाम,पराघातोच्छ्वासनाम्नी चेति पञ्चविंशतिप्रकृतीनां संततमत्र बध्यमानत्वादल्पबहुत्वं नास्ति ॥१४१३-१४॥

अधुनाऽऽनतादित्रयोदशमार्गणासु प्रकृतमुच्यते

तेराणयाइगेसुं थीणद्धितिगस्स बंधगा थोवा ॥१४१५॥ (गीतिः)
तत्तो अबंधगा से सखेज्जगुणा तओ विसेसहिया ।
होअन्ति बंधगा खलु छदरिसणावरणपयडीणं ॥१४१६॥
सायस्स बंधगाऽप्पा ताउ असायस्स अत्थि संखगुणा ।
तो दोण्ह विसेसहिआ एव तिथिराइजुगलाणं ॥१३१७॥

मिच्छस्स बंधगाऽप्पा तओ विसेसाहियाऽणचउगस्स ।
तत्तो अबधगा सिं सखगुणा ताउ मिच्छस्स ॥१४१८॥
अत्थि विसेसहिया तो सेसकसायाण बंधगा णेया ।
थीएऽत्थि बंधगाऽप्पा तत्तो णपुमस्स सखगुणा ॥१४१९॥
ताओ हस्सरईणं तत्तो सोगारईण विण्णेया ।
तत्तो विसेसअहिया पुमस्स ताउ भयकुच्छाणं ॥१४२०॥
संखअसखगुणा जिणणराउगअबधगा तदियराओ ।
सघयणआगिईण बीआण बधगा थोवा ॥१४२१॥
तत्तो सखेज्जगुणा तइआईण कमा मुणेयव्वा ।
ताउ पढमाण णेया ताओ छण्ह विसेसहिआ ॥१४२२॥
अत्थि कुखगइदुहगतिगणीआओ बधगा पसत्थाणं ।
संखगुणा तो दोण्हं अब्भहिया णत्थि सेसाणं ॥१४२३॥

(प्रे०) 'तेराणयाइगेसु' इत्यादि, आनतप्राणताऽऽरणाऽच्युतनवग्रैवेयकलक्षणासु त्रयोदश-मार्गणासु स्त्यानर्द्धित्रिकस्य बन्धकाः स्तोकाः, तेभ्यस्तदबन्धकाः संख्येयगुणाः, एतासु मिथ्यादृग्जीवापेक्षया सम्यग्दृशां सख्येयगुणत्वात् । 'तओ' इत्यादि, तेभ्यश्चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्कं निद्राप्रचले चेति-दर्शनावरणप्रकृतिषट्कस्य बन्धका विशेषाधिका विद्यन्ते, प्रथमद्वितीयगुणस्थानगतजीवानामपि बध्यमानत्वात्तस्य ।'सायस्स' इत्यादि,सातवेदनीयबन्धका अल्पाः,तेभ्योऽसातवेदनीयबन्धकाः सख्येयगुणाः सातवेदनीयबन्धकालादसातवेदनीयबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । 'तो' इत्यादि, तेभ्यो द्वयोरपि बन्धका विशेषाधिकाः, सातवेदनीयबन्धकानामप्यत्र समावेशात् । 'एवं' इत्यादि, स्थिरास्थिरे शुभाशुभे यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति युगलत्रयेऽल्पबहुत्वं वेदनीयवद् विज्ञेयम् ।'मिच्छस्स' इत्यादि,मिथ्यात्वमोहनीयस्य बन्धका अल्पाः,प्रथमगुणस्थानवर्तिभिरेव तस्य बध्यमानत्वात् । तेभ्योऽनन्तानुबन्धिचतुष्कस्य बन्धका विशेषाधिकाः, द्वितीयगुणस्थानगतजीवानामप्यत्र तद्बन्धभावात् ।'तत्तो'इत्यादि, तेभ्योऽनन्तानुबन्धिचतुष्कस्याऽबन्धकाः संख्येयगुणाः, सम्यग्दृष्टिराशेरत्र मुख्यत्वात् , तेभ्यो मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽबन्धका विशेषाधिकाः, सास्वादनानामप्यत्र समावेशात्। 'अत्थि'इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयप्रकृत्यबन्धकेभ्यः शेषाणामप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनचतुष्करूपाणां कषायाणां बन्धका विशेषाधिकाः, प्रथम गुणस्थानगतानामपि जीवानां तद्बन्धकत्वात् । 'थीए' इत्यादि, स्त्रीवेदबन्धका अल्पाः, तेभ्यो नपुंसकवेदबन्धकाः संख्येयगुणाः, स्त्रीवेदबन्धकालादत्र नपुंसकवेदबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । 'ताओ' इत्यादि, नपुंसकवेदबन्धकेभ्यो हास्यरत्योर्बन्धकाः सख्येयगुणाः, सम्यग्दृशामपि तयोर्बन्धकत्वात्तेषां च मिथ्यादृग्भ्यः संख्येयगुणत्वात् । तेभ्यः शोकारत्योर्बन्धकाः संख्येयगुणा विज्ञेयाः, हास्यरत्योर्बन्धकालतः शोकाऽरत्योर्बन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । 'तत्तो'इत्यादि,तेभ्यः

पुरुषवेदबन्धका विशेषाधिकाः, सर्वसम्यग्दृष्टिजीवानां केषाञ्चिन्मिथ्यादृशामपि पुरुषवेदबन्धकत्वेन प्राप्यमाणत्वात् । 'ताउ' इत्यादि, तेभ्यो भयजुगुप्सयोर्बन्धका विशेषाधिकाः, ध्रुवबन्धित्वात् । 'संख' इत्यादि, जिननाम्नो मनुष्यायुष्कस्य च बन्धकेभ्यस्तदबन्धकाः क्रमेण संख्यातगुणा असंख्यातगुणाश्च सन्ति, तद्यथा–जिननामबन्धकेभ्योऽबन्धकाः संख्येयगुणाः, सम्यग्दृष्टीनामेकासंख्यातभागप्रमाणानां जीवानामेव तद्बन्धकत्वात् नरायुर्बन्धकेभ्यस्तदबन्धका असंख्यातगुणाः, मार्गणागतजीवानामसंख्येयत्वे सति तद्बन्धकानां संख्येयत्वात् । 'संघयणा' इत्यादि, द्वितीयसंहननसंस्थानयोर्बन्धकास्स्तोकाः, तेभ्यस्तृतीयादिसंहननसंस्थानानां बन्धकाः क्रमतः संख्येयगुणाः (२) एषां संहननसंस्थानाना बन्धकालस्य क्रमेण संख्येयगुणत्वात् । 'ताउ' इत्यादि, चरमसंहननसंस्थानबन्धकेभ्यः प्रथमसहननसंस्थानयोर्बन्धकाः सख्येयगुणाः,सर्वेषां सम्यग्दृशामत्र तद्बन्धकत्वात् । 'ताओ' इत्यादि, तेभ्यः षण्णां सहननानां संस्थानानां च बन्धका विशेषाधिकाः, द्वितीयादिसंस्थानसंहननपञ्चकबन्धकानामप्यत्र समाविष्टत्वात् । 'अत्थि' इत्यादि, अशुभखगतिदुर्भगत्रिकनीचैर्गोत्रबन्धकेभ्यः शुभखगतिसुभगत्रिकोच्चैर्गोत्रबन्धकाः सख्येयगुणाः, इह सम्यग्दृग्राशिर्मुख्यो वर्तते, ते च प्रकृतप्रशस्तप्रकृतीरेव बध्नन्ति, नाप्रशस्तप्रकृतीरितिकृत्वा प्रकृतप्रशस्तप्रकृतिबन्धकानां संख्यातगुणत्वमभिहितम् । शेषप्रकृतीनामल्पबहुत्वं नास्ति, सर्वैर्निरन्तरं बध्यमानत्वात् । शेषप्रकृतयः पुनरिमाः–पञ्चज्ञानावरणनवनामध्रुवबन्धिप्रकृतिपञ्चान्तरायमनुष्यद्विकपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपास्त्रिंशदिति ॥१४१५ २३॥

इदानीं चतसृष्वनुत्तरमार्गणास्वधिकृतमाह

चउसु अणुत्तरेसुं अप्पाबहुगं तु आणयसुरव्व ।
सायथिराइतिगजुगलणराउतित्थाण विण्णेयं ॥१४२४॥
हस्सरईओ तप्पडिवक्खाणं बंधगा ऽत्थि संखगुणा ।
ताउ विसेसहिया पुमभयकुच्छाणं ण सेसाणं ॥१४२५॥

(प्रे०)'चउसु'इत्यादि, चतसृष्वनुत्तरसुरमार्गणासु साताऽसातवेदनीये स्थिरास्थिरे शुभाशुभे यशःकीर्त्य-यशःकीर्ती चेति चतुर्णां युगलानां मनुष्यायुष्कस्य तीर्थकरनाम्नश्चाऽल्पबहुत्वमानतादिमार्गणावद्वसातव्यम् । 'हस्सरईओ' इत्यादि, हास्यरत्योर्बन्धकेभ्यः शोकारत्योर्बन्धकाः संख्येयगुणाः, अशुभप्रकृतीनां बन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । 'ताउ' इत्यादि, तेभ्यः पुरुषवेदभयकुत्साप्रकृतिबन्धका विशेषाऽधिकाः, प्रकृतप्रकृतीना निरन्तरबन्धित्वेन हास्यरत्योर्बन्धकानामप्यत्र तद्बन्धकत्वेन समावेशाद् । 'ण' इत्यादि,उक्तव्यतिरिक्तप्रकृतीनां बन्धकानामल्पबहुत्वं नास्ति, अनवरतं बध्यमानत्वात् । ताश्चेमाःशेषपञ्चपञ्चाशत्प्रकृतयः-पञ्चज्ञानावरणस्त्यानर्द्धित्रिकवर्जदर्शनावरणषट्कद्वितीयादिद्वादशकषायनवनामध्रुवबन्ध्यन्तरायपञ्चकरूपाः सप्तत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयो मनुष्यद्विकपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकप्रथमसंहननसंस्थानशुभखगतिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्कसुभगत्रिकोच्चैर्गो-

प्ररूपा अष्टादशाध्रुवबन्धिप्रकृतयश्चेति ।१४२४-५॥

अथ सर्वार्थसिद्धमार्गणायां तदुच्यते

सव्वत्थसिद्धदेवे अणुत्तरसुरव्व सव्वपयडीणं ।
णवरं सखेज्जगुणा णराउगअबधगा णेया ॥१४२६॥

(प्रे०) 'सव्वत्थ' इत्यादि, सर्वार्थसिद्धदेवमार्गणायां स्वप्रायोग्यसर्वप्रकृतीनां बन्धकाऽबन्धकानामल्पबहुत्वमनुत्तरसुरमार्गणावद् विज्ञातव्यम् । 'नवरं' इत्यादिना विशेषं दर्शयति—मार्गणागतजीवानां संख्येयत्वान्मनुष्यायुर्बन्धकेभ्यस्तदबन्धकाः संख्येयगुणा एवेति ।१४२६॥

साम्प्रतं सर्वास्वेकेन्द्रियमार्गणासु निगोदमार्गणासु वनस्पतिकायौघे च प्रकृतं प्रोच्यते

होअन्ति बधगाऽप्पा सव्वेगिंदियणिगोअहरिएसु ।
मणुसाउगस्स तत्तोऽणंतगुणाऽत्थि तिरियाउस्स ॥१४२७॥
ताओ विसेसअहिया दोण्ह तत्तो अबधगा दोण्हं ।
सखगुणा सेसाण असमत्तपणिदितिरियव्व ॥१४२८॥

(प्रे०) 'होअन्ति' इत्यादि,ओघसूक्ष्मौघबादरौघपर्याप्तसूक्ष्मपर्याप्तबादराऽपर्याप्तसूक्ष्माऽपर्याप्तबादरभेदेन सप्तसु एकेन्द्रियमार्गणासु सप्तसु च साधारणवनस्पतिकायमार्गणासु वनस्पतिकायौघे च मनुष्यायुष्कस्य बन्धका अल्पाः, मार्गणास्वास्वसंख्येयानां जीवानामेव तद्बन्धविधायित्वात् । तेभ्यस्तिर्यगायुष्कस्य बन्धका अनन्तगुणाः,निगोदप्रायोग्यबन्धकजीवानामपि तदायुर्बन्धकत्वात् तेषां चानन्तत्वात् । तेभ्यो द्वयोरप्यायुषोर्बन्धका विशेषाधिकाः,मनुष्यायुष्कबन्धकानामप्यत्राऽन्तर्भावात् ।तिर्यग्मनुष्यायुर्बन्धकेभ्यस्तयोरेव द्वयोरबन्धकाः संख्येयगुणाः, निगोदानामपि स्वायुःसंख्यातभागकाल एवायुर्बन्धभावेनाबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वादिति । 'सेसाणं' इत्यादि, एतत्प्रकृतिद्वयव्यतिरिक्तप्रकृतिषु यासां प्रकृतीनामल्पबहुत्वं विद्यते,तासां शेषप्रकृतीनां बन्धकाऽबन्धकानामपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियवदल्पबहुत्वमवसेयम् ॥१४२७-२८॥

अथ पञ्चेन्द्रियौघत्रसौघरूपमार्गणाद्वये प्रकृतमाह

आऊण पणिदितिरिव्व पणिदितसेसु अत्थि सेसाण ।
मणुयव्व णवरि कमसो असखियगुणा सपुव्वपया ॥१४२ ॥
णेया अबधगा खलु थीणद्धितिगाज्जअडकसायाणं ।
तह देवविउव्वियदुगणामाणं बधगा णेया ॥१४३०॥

(प्रे०) 'आऊण' आयुष्कचतुष्कास्याऽल्पबहुत्वं पञ्चेन्द्रियौघत्रसकायौघमार्गणयोः पञ्चेन्द्रियतिर्यग्वज्ज्ञातव्यम् । तथा शेषसर्वप्रकृतीनामल्पबहुत्वं मनुष्यौघवज्ज्ञातव्यमिति । किन्तु यो विशेषः स 'णवरि' इत्यादिना दर्शयति—दर्शनावरणप्रकृतीनामल्पबहुत्वे स्त्यानर्द्धित्रिकस्याऽबन्धकाः स्वपूर्वपदनिद्राद्विकाबन्धकेभ्योऽसंख्येयगुणा अत्र वक्तव्याः, तथैव मोहनीयसत्काल्पबहुत्वे पूर्वपदरूपप्रत्याख्यानावरणाबन्धकेभ्योऽप्रत्याख्यानावरणाबन्धका असंख्येयगुणाः, ततोऽनन्तानुबन्धिकषाया-

बन्धका असंख्येयगुणा वक्तव्याः, प्रकृते संयतेभ्योऽनुक्रमेण देशविरताऽविरतसम्यग्दृष्टीनामसंख्येयगुणत्वात् । नामकर्मसत्काल्पबहुत्वे गत्यानुपूर्वीशरीराङ्गोपाङ्गसत्काल्पबहुत्वविषये विशेषः तद्यथा–यथास्वं पूर्वपदेभ्यो गतिसामान्याबन्धकेभ्यः आनुपूर्व्यबन्धकेभ्यः, शरीरनामाबन्धकेभ्यो यद्वाऽऽहारकशरीरबन्धकेभ्यः, आहारकाङ्गोपाङ्गबन्धकेभ्यः क्रमेण देवगतिबन्धकाः, देवानुपूर्वीबन्धकाः, वैक्रियशरीरबन्धकाः, वैक्रियाङ्गोपाङ्गबन्धका असंख्येयगुणा वक्तव्याः, मनुष्यौघे तु पूर्वपदबन्धका उत्तरपदबन्धकाश्च पर्याप्तमनुष्या एव, अतः पूर्वपदत उत्तरपदबन्धकाः संख्येयगुणा उक्ताः,अत्र पुनः पूर्वपदगताः केवलपर्याप्तमनुष्या उत्तरपदगतास्तु पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चोऽपि, तेषां चासंख्येयत्वात्पूर्वपदत उत्तरपदगता असंख्येयगुणा उक्ताः।शेषप्रकृतीनामल्पबहुत्वं सर्वथा मनुष्यौघवज्ज्ञातव्यम् ॥१४२९-३०॥ साम्प्रतं पर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणायां प्रस्तुतं कथयति

पज्जतिरिपणिदिव्वाउगसरखगईण पज्जपंचक्खे ।
गइजाइतणुउवगाणुपुव्विअगुरुलहुचउगाण ॥१४३१॥
तसथावरचउगाण पज्जत्तणरव्व अत्थि अप्पबहू ।
परमत्थि जहाकमसो असङ्खियगुणा सपुव्वपया ॥१४३२॥
गुरुरलहुगचउइंदियथावरचउगाण बंधगियरा उ ।
परघाऊसासाण अत्थि पणिदिव्व सेसाण ॥१४३३॥

(प्रे०) 'पज्ज' इत्यादि, पर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणायामायुष्कचतुष्कस्य स्वरनाम्नः खगतिनाम्नश्चाल्पबहुत्वं पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्वत्कथनीयम्,उभयत्र पर्याप्तसञ्ज्ञितिर्यक्पञ्चेन्द्रियराशेः प्राधान्यात् । अल्पबहुत्वं तत्रतोऽवसेयम् । अथ 'गइ'इत्यादिना गत्यादिनामकर्मणामल्पबहुत्वं विशेषपूर्वकमतिदिशति । तद्यथा–गतिनामकर्मणः, जातिनामकर्मणः, शरीरनामकर्मणः, उपाङ्गनामकर्मणः, आनुपूर्वीनामकर्मणः,अगुरुलघुचतुष्कस्य त्रसस्थावरादिसप्रतिपक्षयुगलचतुष्कस्याल्पबहुत्वं मनुष्यमार्गणावदस्ति, नवरं गतिचतुष्काबन्धकेभ्यः, आनुपूर्वीचतुष्काबन्धकेभ्यः, पञ्चजात्यबन्धकेभ्यः, पञ्चशरीराबन्धकेभ्यो यद्वाऽऽहारकशरीरबन्धकेभ्यः, आहारकाङ्गोपाङ्गबन्धकेभ्यः, अगुरुलघूपघाताबन्धकेभ्यः, त्रसस्थावरादियुगलाबन्धकेभ्य.पूर्वपदस्थितेभ्यो जीवेभ्यः क्रमेण देवगतिबन्धकाः, देवानुपूर्वीबन्धकाः, चतुरिन्द्रियबन्धकाः, औदारिकशरीरबन्धकाः,औदारिकाङ्गोपाङ्गबन्धकाः,पराघातोच्छ्वासाऽबन्धकाः, स्थावरचतुष्कबन्धका असंख्येयगुणा वक्तव्याः, यतो हि तत्र पर्याप्तमनुष्यमार्गणायां समस्तजीवा अपि संख्याता एव अतः पूर्वपदत उत्तरपदगताः संख्यातगुणा उक्ताः, प्रस्तुते तु पूर्वपदगताः पर्याप्तमनुष्या एव, उत्तरपदगता तु मार्गणागतासंख्यातजीवाः, अतोऽसंख्यातगुणाः पूर्वपदगतजीवेभ्य उत्तरपदगतजीवा उक्ताः । शेषाल्पबहुत्वं तु तत्रतोऽवसेयम् । उक्तव्यतिरिक्तशेषप्रकृतीनां बन्धकाबन्धकानामल्पबहुत्वं पञ्चेन्द्रियौघमार्गणावद् भवति, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः–ज्ञानावरणपञ्चकम् ,दर्शनावरणनवकम् ,वेदनीयद्विकम् ,षड्विंशतिर्मोहनीयप्रकृतयः, संहननषट्कम् ,संस्थानषट्कम् ,वर्णादिचतुष्कम्

स्थिरादिपञ्चकम् ,अस्थिरादिपञ्चकम् , निर्माणातपोद्योतजिननामरूपं प्रत्येकप्रकृतिचतुष्कम् , गोत्रद्वयम् , अन्तरायपञ्चकमिति नवसप्ततिरिति । आसां प्रकृतीनां बन्धकाबन्धकानामल्पबहुत्वं पञ्चेन्द्रियौघमार्गणातो विज्ञातव्यम् , अस्माभिस्त्वत्र ग्रन्थविस्तरभिया नोच्यते ॥१४३१ ३४॥

अधुना तेजःकायवायुकायसत्कसकलमार्गणासु प्रस्तुतं प्रोच्यते

तिरियाउबंधगाओ अबधगा सव्वतेउवाऊसुं ।
संखगुणा णो गइअणुगोआणियराण णरअपज्जव्व ॥१४३५॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'तिरिया' इत्यादि, सप्तसु तेजःकायमार्गणासु सप्तसु वायुकायमार्गणासु च तिर्यगायुर्बन्धकेभ्य आयुरबन्धकाः संख्येयगुणाः, आयुर्बन्धकालात्तदबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । 'णो' इत्यादि, गत्यानुपूर्वीगोत्राणामल्पबहुत्वं नास्ति,यतोऽत्रैकैव गतिरेकैवानुपूर्व्येकमेव च गोत्रं बध्यते । 'इयराण' इत्यादि, उक्तेतरप्रकृतीनां बन्धकाऽबन्धकानामल्पबहुत्वमपर्याप्तमनुष्यमार्गणावदवसातव्यम् ।१४३५॥

अथ पर्याप्तत्रसमार्गणायां प्रकृतं प्रस्तूयते

पज्जतसे आऊणं पज्जत्तपणिंदियव्व अप्पबहू ।
चउगइअबधगाउ असखगुणा बंधगा सुरगईए ॥१४३६॥ (गीति)
तत्तो संखेज्जगुणा णेया णरणिरयतिरिगईण कमा ।
ताओ विसेसअहिया चउण्ह एवमणुपुव्वीण ॥१४३७॥
पणजाइअबंधगओ विण्णेया बंधगा असखगुणा ।
चउरिंदियस्स ताओ सखेज्जगुणा मुणेयव्वा ॥१४३८॥
तेइंदियबेइंदियपणिंदिएगिंदियाण जहकमसो ।
तत्तो विसेसअहिया हवेज्ज पंचण्ह जाईणं ॥१४३९॥
पणतणुअबंधगाणं आहारतणुस्स बंधगाणं च ।
अप्पाबहुगं उज्झं सेयं व्व तत्तो असंखगुणा ॥१४४०॥
विउवस्स बंधगा तो हवेज्ज ओरालियस्स संखगुणा ।
तत्तो विसेसअहिया तेअसकम्मणसरीराणं ॥१४४१॥
होअन्ति बंधगा खलु थोवा आहारुवंगणामस्स ।
ताउ असंखेज्जगुणा विउव्वुवंगस्स णायव्वा ॥१४४२॥
तत्तो संखेज्जगुणा उरालुवंगस्स तो विसेसहिया ।
तिण्ह उवंगाण तओ अबंधगा तिण्ह संखगुणा ॥१४४३॥
थोवा अबंधगा खलु थावरजुगलचउगस्स विण्णेया ।
तो बंधगा असंखियगुणा हवेज्ज तसचउगस्स ॥१४४४॥
तत्तो संखेज्जगुणा थावरचउगस्स तो विसेसहिया ।
चउजुगलाणऽण्णेसिं सगासीईए पणिंदिव्व ॥१४४५॥

(प्रे०) 'पज्जतसे' इत्यादि, पर्याप्तत्रसमार्गणायामायुष्कर्मणां बन्धकाबन्धकानामल्पबहुत्वं पर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणावज्ज्ञेयम् , तत्पुनरेवम्–मनुष्यायुर्बन्धकेभ्यो नरकायुर्बन्धका असंख्येयगुणाः, तेभ्यो देवायुर्बन्धका असख्यातगुणाः, तेभ्यस्तिर्यगायुर्बन्धकाः संख्येयगुणाः, तेभ्यश्चतुर्णामायुषां बन्धका विशेषाधिकाः, तेभ्य आयुरबन्धकाः संख्येयगुणाः । 'चउ' इत्यादि, चतसृणां गतीनामबन्धकेभ्यो देवगतेर्बन्धका असंख्यातगुणा वर्तन्ते, हेतुरत्र पर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणावदवसेयः । 'तत्तो' इत्यादि, तेभ्यो मनुष्यगतिबन्धकाः सख्येयगुणाः, तद्बन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । तेभ्यो नरकगतिबन्धकाः संख्येयगुणाः, संख्येयबहुभागपर्याप्तपञ्चेन्द्रियराशिप्रमाणत्वात् । तेभ्यस्तिर्यग्गतिबन्धकाः संख्येयगुणाः, तद्यथा–प्रकृतमार्गणायां विकलराशेः प्राधान्यमस्ति, तस्मान्नरकगतिबन्धकेभ्यस्तिर्यग्गतेर्बन्धका अधिका उपलभ्यन्ते । 'ताओ' इत्यादि, तेभ्यश्चतसृणां गतीनां बन्धका विशेषाधिकाः, हेतुरिह प्राग्वदनुमन्धेयः । 'एव' इत्यादि, आनुपूर्वीनाम्नामपि बन्धकाऽबन्धकानामल्पबहुत्वमेवमेव गतिनामवद् बोद्धव्यम् । 'पण' इत्यादि पञ्चानां जातीनामबन्धकेभ्यश्चतुरिन्द्रियजातेर्बन्धका असंख्येयगुणाः, हेतुः पूर्ववत् ,तेभ्यस्त्रीन्द्रियद्वीन्द्रियपञ्चेन्द्रियैकेन्द्रियजातीनां बन्धका यथाक्रमं संख्येयगुणा वर्तन्ते । इह विकलेन्द्रियजीवराशौ पञ्चेन्द्रियचतुरिन्द्रियत्रीन्द्रियद्वीन्द्रियजातीनां बन्धकालस्योत्तरोत्तरसंख्येयगुणत्वेऽपि द्वीन्द्रियजातिबन्धकेभ्यः पञ्चेन्द्रियजातिबन्धकानां संख्येयगुणत्वं तु पर्याप्तपञ्चेन्द्रियजीवेषु संख्यातबहुभागजीवानां पञ्चेन्द्रियजातेर्बन्धकत्वादवसेयम् । ततः पञ्चानां जातीनां बन्धका विशेषाधिकाः, शेषं तु सुगमम् । 'पण' इत्यादि, पञ्चानां शरीरनाम्नामबन्धकानामाहारकशरीरनाम्नो बन्धकानां चाऽल्पबहुत्वं स्वयमूह्यम् । 'तत्तो' इत्यादि, पञ्चानां शरीरनाम्नामबन्धकेभ्यो यद्वाऽऽहारकशरीरबन्धकेभ्यो वैक्रियशरीरबन्धका असंख्यगुणाः, पूर्वपदगतजीवानां पर्याप्तमनुष्यत्वेन संख्येयत्वादुत्तरपदगतजीवानां पर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियादित्वेनाऽसंख्येयत्वात् , तेभ्य औदारिकशरीरनामबन्धकाः संख्येयगुणाः, प्रकृतमार्गणागतजीवेषु संख्यातबहुभागप्रमाणविकलाक्षाणामौदारिकशरीरनाम्नो निरन्तरं बध्यमानत्वात् । तत्तो' इत्यादि, तेभ्यस्तैजसकार्मणशरीरनाम्नोर्बन्धका विशेषाधिकाः, हेतुः पुनरिह सुगमः । 'होअन्ति' इत्यादि, आहारकाङ्गोपाङ्गनाम्नो बन्धकाः स्तोकाः, अप्रमत्तसंयतैरेवात्र बध्यमानत्वात्तस्य; तेभ्यो वैक्रियाङ्गोपाङ्गबन्धका असंख्यातगुणाः, तेभ्य औदारिकाङ्गोपाङ्गबन्धकाः संख्येयगुणाः, उभयत्र हेतुः शरीरवद् वक्तव्यः, तेभ्यस्त्रयाणामङ्गोपाङ्गनाम्नां बन्धका विशेषाधिकाः, हेतुस्त्वत्र सुगमः । तेभ्योऽङ्गोपाङ्गनाम्नामबन्धकाः संख्येयगुणाः, विकलेन्द्रियेषु संख्यातबहुभागजीवानामेकेन्द्रियजातेर्बन्धकत्वेनोपाङ्गस्याबन्धकत्वाद् । 'थोवा' इत्यादि, त्रसस्थावरादियुगलचतुष्कस्याऽबन्धकाः स्तोकाः, अष्टमगुणस्थानकस्य षष्ठभागादूर्ध्वमेवासां प्रकृतीनामबन्धात् । 'तो' इत्यादि, तेभ्यस्त्रसचतुष्कस्य बन्धका असंख्येयगुणाः, संख्येयभागगतजीवानां तद्बन्धकत्वात् । 'तत्तो'इत्यादि,

ततः स्थावरचतुष्कस्य बन्धकाः संख्येयगुणाः, संख्यातबहुभागजीवानां तद्बन्धकत्वात्। 'तो' इत्यादि, तेभ्यो युगलचतुष्कस्य बन्धका विशेषाधिकाः, क्षुण्णोऽत्र हेतुः। 'ऽण्णेसिं' इत्यादि उक्तशेषप्रकृतीनां बन्धकाबन्धकानामल्पबहुत्वं पञ्चेन्द्रियौघमार्गणावद् वेदितव्यम्। तच्च तत्रतोऽवसेयमिति। ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः ज्ञानावरणपञ्चकम्, दर्शनावरणनवकम्, वेदनीयद्विकम् मोहनीयप्रकृतीनां षड्विंशतिः, संहननषट्कम्, संस्थानषट्कम् वर्णचतुष्कम्, स्थिरषट्कम्, अस्थिरषट्कम्, खगतिद्वयम्, प्रत्येकप्रकृत्यष्टकम्, गोत्रद्वयम्, अन्तरायपञ्चकं चेति सप्ताऽशीतिरिति ॥१४३६-४५॥

सम्प्रति मनोयोगवचनयोगमत्कमार्गणासु संज्ञिमार्गणायां च तदुच्यते

चउगइअबंधगाऽप्पा हवेज्ज पणमणतिवयणसण्णीसुं।
तो बंधगा असंखियगुणा सुरगईअ ताउ संखगुणा ॥१४४६॥ (गीतिः)
णरतिरियगईण कमा सयमुज्झा णारगगईए।
तत्तो विसेसअहिया चउण्ह एवमणुपुव्वीणं ॥१४४७॥ (उपगीतिः)
पणजाइअबंधगओ चउइंदियबंधगा असंखगुणा।
तिबिइंदियाण कमसो संखगुणा ताउ सयमुज्झं ॥१४४८॥
ओघव्व चउसु पणतणुअबंधगाऽऽहारबंधगाण भवे।
पंचसु संखेज्जगुणा आहारगबंधगा तओ णवसुं ॥१४४९॥ (गीतिः)
उरलस्स असंखगुणा तणुरा खलु बंधगाऽत्थि विउवस्स।
सयमुज्झा तोऽब्भहिया तेअदुगस्स मुणं सयमुबंगाणं ॥१४५०॥ (गीतिः)
अगुरुलहुबधायाणं सव्वत्थोवा अबंधगा णेया।
ताउ असंखेज्जगुणा परघाऊसासणामाणं ॥१४५१॥
तत्तोऽत्थि बंधगा सिं संखगुणा वा तओ विसेसहिया।
अगुरुलहुबधायाणं खगइसरतसजुगलाण सयमुज्झं ॥१४५२॥ (गीतिः)
बायरतिगजुगलाण अबंधगाऽप्पा तओ असंखगुणा।
सुहुमतिगस्स तओ खलु णाऊण कम्मभूमितिरिरासिं ॥१४५३॥ (गीति)
उज्झा सयं च्च बायरतिगस्स तत्तो विसेसअहियाऽत्थि।
जुगलतिगस्सऽप्पबहू पणिंदियव्वऽत्थि सेसाण ॥१४५४॥
णवरं अबंधगा णो दुवेअणीआण अत्थि सयमुज्झा।
तिरियाउबंधगा खलु संखगुणा उअ असंखगुणा ॥१४५५॥

(प्रे०) 'चउ' इत्यादि, ओघसत्या-ऽसत्य-सत्यासत्या-ऽसत्याऽमृषाभेदेन पञ्चसु मनोयोगमार्गणासु सत्या-ऽसत्य-सत्यासत्यभेदेन तिसृषु वचनमार्गणासु संज्ञिमार्गणायां च चतसृणां गतिप्रकृतीनामबन्धका अल्पा भवन्ति, अष्टमगुणस्थानसप्तमभागगतानां नवमादिगुणस्थानगतानां च जीवानामेवाऽत्र तदबन्धकत्वेन प्राप्यमाणत्वात्, तेषां च संख्यातत्वात्। 'तो' इत्यादि, तेभ्यो देवगतिबन्धका असंख्यगुणाः, पूर्वपदगताना संख्येयत्वे सति तदुत्तरपदगतजीवानामसंख्येयत्वात्, तेभ्यो मनुष्यतिर्यग्गत्योर्बन्धकाः क्रमेण संख्येयगुणा अवसेयाः, उत्तरोत्तरगतिप्रकृतेर्बन्धकालस्य पूर्व-

पूर्वगतिप्रकृतेर्बन्धकालात्संख्येयगुणत्वात्। 'सग्गं' इत्यादि, नरकगतेर्बन्धकानामल्पबहुत्वं यथास्थानं योज्य स्वयं विचारणीयम् । तद्यथा–भागप्ररूपणायां दर्शितप्रकारेण देवराशेर्वा तिर्यग्राशेर्वा प्राधान्यं ज्ञात्वा तदनुसारेण तत्तद्बन्धकानामल्पबहुत्वं ज्ञेयम् . तिर्यग्राशावपि कर्मभूमिजानां प्राधान्यमुताऽप्राधान्यमिति ज्ञात्वा तदनुसारेण देवगतिबन्धकानां सूक्ष्मत्रिकबन्धकानां विकलत्रिकबन्धकानां खगतिस्वरत्रसयुगलबन्धकानां चाल्पबहुत्वं स्वयं विचारणीयम् । 'तत्तो' इत्यादि, तेभ्यश्चतसृणां गतिप्रकृतीनां बन्धका विशेषाधिकाः, हेतुरत्र निगदसिद्धः । 'एव' इत्यादि, आनुपूर्वीनामल्पबहुत्वं गतिवद् वेदयितव्यम् । 'पणजाइ'इत्यादि,पञ्चानां जातिप्रकृतीनामबन्धकेभ्यश्चतुरिन्द्रियजातेर्बन्धका असंख्येयगुणाः, श्रेणिगतजीवेभ्यश्चतुरिन्द्रियबन्धप्रायोग्यजीवानामसंख्येयगुणत्वात् । 'ति' इत्यादि, त्रीन्द्रियद्वीन्द्रियजात्योर्बन्धकाः क्रमेण संख्यातगुणाः, अत्र पूर्वपूर्वजातेर्बन्धकालत उत्तरोत्तरजातेर्बन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । 'ताउ' इत्यादि, द्वीन्द्रियजातिबन्धकेभ्यः पञ्चेन्द्रियैकेन्द्रियजात्योर्बन्धकानामल्पबहुत्वं स्वयमूह्यम् । ततः पञ्चजातीनां समुदितबन्धका विशेषाधिका अनुक्ता अपि व्याख्यानतो विज्ञेयाः,कारण पूर्ववज्ज्ञातव्यम् ।

अथ 'ओघव्व' इत्यादिना शरीरनाम्नोऽल्पबहुत्वं कथयति । 'चउसु' त्ति मनोयोगौघसत्यमनोयोगव्यवहारमनोयोगसत्यवचनयोगरूपासु चतुर्मार्गणासु पञ्चशरीराबन्धकानामाहारकशरीरबन्धकानामल्पबहुत्वं मनुष्यौघवत्स्वय ज्ञेयम् , । तथा 'पंचसु'त्ति,शेषपञ्चमार्गणासु पञ्चशरीराऽबन्धकेभ्य आहारकशरीरबन्धकाः संख्येयगुणाः, आसु पञ्चसु मार्गणासु सयोगिगुणस्थानकस्याभावेन केवलं श्रेणिद्वयगतानामेव जीवानामबन्धकतया प्राप्यमाणत्वादबन्धकाः स्तोकाः कथिताः । 'तओ 'णवसु' इत्यादि,उक्तनवमार्गणासु कथितपदद्वयबन्धकेभ्य औदारिकशरीरनाम्नो बन्धका असंख्येयगुणाः, असंख्येयानां देवादिजीवानामस्य बन्धकतया प्राप्यमाणत्वात् । 'विउव्वस्स' इत्यादि, वैक्रियशरीरनाम्नो बन्धकानामल्पबहुत्वं स्वयमूहयम् । हेतुस्तु पूर्ववत् । 'तो' इत्यादि औदारिकशरीरबन्धकेभ्यस्तैजसकार्मणशरीरबन्धका विशेषाधिकाः ।

'मुण सयमुवंगाण' मिति, अङ्गोपाङ्गनाम्नोऽल्पबहुत्वं स्वयं ज्ञेयम्–तद्यथा आहारकाङ्गोपाङ्गबन्धका अल्पाः, शेषाल्पबहुत्वं स्वयं ज्ञातव्यं पूर्ववत् ।

'अगुरुलहु' इत्यादि, अगुरुलघूपघातप्रकृत्योरबन्धकाः स्तोकाः, अपूर्वकरणसप्तमभागगतानां नवमादिगुणस्थानगतानामेव च जीवानां तदबन्धकत्वेन सद्भावात् । 'ताउ' इत्यादि, तेभ्यः पराघातोच्छ्वासप्रकृत्योरबन्धका असंख्येयगुणाः,असंख्यातानामपर्याप्तनामबन्धकानां तिर्यक्पञ्चेन्द्रियजीवानामनयोरबन्धकतया आप्यमाणत्वात् । 'तत्तो' इत्यादि, तेभ्यः पराघातोच्छ्वासयोर्बन्धकाः संख्यातगुणाः, वाकारेण असंख्यातगुणा वा ज्ञातव्याः । ते च कर्मभूमिजगर्भजतिर्यक्पञ्चेन्द्रियराशिदेवराशिद्वयस्य तारतम्यं ज्ञात्वा भावनीयाः । 'तओ' इत्यादि, तेभ्योऽगुरुलघूपघातप्रकृत्योर्बन्धका

विशेषाधिकाः, यतः पराघातोच्छ्वासप्रकृत्यबन्धका अप्येतत्प्रकृतिद्वयं बध्नन्ति, अतस्तेषामप्यत्र समावेशो भवति । 'खगइ' इत्यादि, खगतिस्वरत्रसयुगलानां बन्धकाबन्धकानामल्पबहुत्वं स्वयमूह्यम्, तद्यथा-यदा तिर्यग्गतिबन्धकानामाधिक्यं तदा खगतिद्वयस्वरद्वयर्योरबन्धका एवाधिकाः स्युस्तथैव स्थावरनामबन्धका अप्यधिकाः स्युः, यदि पुनर्नरकगतेर्बन्धकानामाधिक्यं तदा कुखगति-दुःस्वरत्रसनाम्नां बन्धकानामाधिक्यं भवेत्, अतो गतिबन्धकानुसारेण खगतिस्वरनामादिबन्धका-बन्धकानामल्पबहुत्वं विभावनीयम् ।

'थावर' इत्यादि, बादरसूक्ष्मयुगलस्य पर्याप्ताऽपर्याप्तयुगलस्य प्रत्येकसाधारणयुगलस्य चाबन्धकाः स्तोकाः, संख्यातानामपूर्वकरणसप्तमभागस्थानामनिवृत्तिकरणादिगुणस्थानस्थितानां चास्य युगलत्रयस्याबन्धकतया प्राप्यमाणत्वात् । तेभ्यः सूक्ष्मत्रिकबन्धका असंख्येयगुणाः, कर्म-भूमिजगर्भजपञ्चेन्द्रियतिरश्चां संख्यातभागवर्तिनामसंख्येयजीवानामस्य त्रिकस्य बन्धकत्वात् । तेभ्यो बादरत्रिकबन्धकाः संख्यातगुणा यद्वाऽसंख्यातगुणा इत्यादिकं देवराशितिर्यग्राशिद्वयस्य तारतम्यं ज्ञात्वा स्वयं भावनीयम् । तेभ्यो युगलत्रयस्य प्रत्येकं बन्धका विशेषाधिकाः ।

'पणिंदिय०व' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीनां बन्धकाऽबन्धकानामल्पबहुत्वं पञ्चेन्द्रियौ-घमार्गणावद् बोध्यम्, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-ज्ञानावरणपञ्चकम्, दर्शनावरणनवकम्, वेदनीयद्विकम्, मोहनीयप्रकृतिषड्विंशतिः, आयुष्कचतुष्कम्, संहननषट्कम्, संस्थानषट्कम्, वर्णचतुष्कम्, स्थिरास्थि-रशुभाशुभसुभगदुर्भगादेयानादेययशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलपञ्चकम्, जिननामातपोद्योतनिर्माणरूप-प्रत्येकप्रकृतिचतुष्कम्, गोत्रद्वयम्, अन्तरायपञ्चकं चेति । 'णवरं अबंधगा०' इत्यादिना, साता-सातवेदनीययोरल्पबहुत्वविषयेऽपवादं कथयति, तद्यथा-अत्र वेदनीयकर्मणोऽबन्धका न कथनीयाः, अयोगिकेवलिनामत्राभावात्। अतः प्रथमपदे सातवेदनीयबन्धकाः स्तोकाः, तत ऊर्ध्वमल्पबहुत्वं पञ्चे-न्द्रियवत्कथनीयम् । 'सयमुज्झा' इत्यादिनायुष्कविषये द्वितीयं विशेषं दर्शयति, तद्यथा-पञ्चे-न्द्रियमार्गणायां देवायुर्बन्धकेभ्यस्तिर्यगायुर्बन्धका असंख्यातगुणा उक्ताः, अत्र तु ते संख्यातगुणा उताऽसंख्यातगुणा इति तु युगलिकतिरश्चां परिमाणं निश्चित्य स्वयं ज्ञातव्यमिति ॥१४४६-५५॥

अथ वचनयोगसत्कमार्गणाद्वये प्रकृतं भण्यते

पज्जतसव्व वयदुगे णवरं सायस्स बधगा थोवा ।
ताउ असायस्स मुणह संखगुणा ताउ दोण्ह अब्भहिया ॥१४५६॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'पज्ज' इत्यादि, वचनौघव्यवहारवचनमार्गणयोः स्वप्रायोग्यसर्वप्रकृतीनां बन्धकाबन्ध-कानामल्पबहुत्वं पर्याप्तत्रसवद् बोद्धव्यम् । केवलं तत्र वेदनीयद्वयस्याप्यबन्धकाः प्रथमपदे प्राप्यन्ते तेऽत्र न सन्ति, अतोऽपवादभणनम्, शेषं सुगमम् ।१४५६॥

अथ काययोगौघादिमार्गणासु तदाह

काउरलाचक्खूसुं तह आहारे अबंधगा थोवा ।
चउवीआवरणाण ताउ विसेसाहिया दुणिद्दाण ॥१४५७॥ (गीतिः)
ताउ असंखेज्जगुणा थीणद्धितिगस्स तो अणंतगुणा ।
से बंधगा कमित्तो दोण्ह चउण्ह विसेसहिया ॥१४५८॥
सायस्स बंधगाऽप्पा तओ असायस्स हुन्ति संखगुणा ।
ताओ विसेसअहिया दोण्ह वि पयडीण बोद्धव्वा ॥१४५९॥
थोवा अबंधगांतिमलोहस्स तओ कमा विसेसहिया ।
अंतिममायाईणं तो संखगुणाऽत्थि तिअकसायाणं ॥१४६०॥ (गीति)
ताउ असंखेज्जगुणा दुइअज्जाण कमा कसायाणं ।
तत्तो विसेसअहिया हवेज्ज मिच्छत्तमोहस्स ॥१४६१॥
तो हुन्ति बंधगा सेऽणंतगुणा तो कमा विसेसहिया ।
पढमाइकसायाणं तओ चरमकोहआईण ॥१४६२॥
चउगइअबंधगाऽप्पा हुन्ति तओ बंधगा असंखगुणा ।
देवगईए तत्तो संखगुणा णारगगईए ॥१४६३॥
ताउ अणंतगुणा णरगईअ तो तिरिगईअ संखगुणा ।
तत्तो विसेसअहिया चउण्ह एवमणुपुव्वीणं ॥१४६४॥
पणतणुअबंधगाओ आहारगबंधगा अचक्खुम्मि ।
संखगुणा तीसु उ पयदुगस्स ओधव्व तो असंखगुणा ॥१४६५॥ (गीतिः)
विउव्वस्स बंधगा तोऽणंतगुणाऽत्थि उरलस्स हुन्ति तओ ।
दोण्ह विसेसअहिया ओधव्व हवेज्ज सेसाणं ॥१४६६॥

(प्रे०) 'काउ' इत्यादि, काययोगौघौदारिककाययोगाऽचक्षुर्दर्शनाहारकरूपासु चतसृषु मार्गणासु चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्कस्याबन्धकाः स्तोकाः, यत एकादशादित्रयोदशगुणस्थानगताः काययोगौघौदारिककाययोगाऽऽहारकमार्गणास्वेकादशद्वादशगुणस्थानगताश्च जीवा अचक्षुर्दर्शनमार्गणायां तदबन्धकत्वेन प्राप्यन्ते, ते च संख्याता एव । 'ताउ' इत्यादि, तेभ्यो निद्राद्विकस्याऽबन्धका विशेषाधिकाः, नवमदशमगुणस्थानगतानां जीवानामप्यत्र तदबन्धविधायित्वेन प्राप्यमाणत्वात् । 'ताउ' इत्यादि, तेभ्यः स्त्यानर्द्धित्रिकस्याऽबन्धका असंख्येयगुणाः, मिश्रदृष्टिसम्यग्दृष्टिप्रभृतीनामप्यत्र तदबन्धकत्वेन सद्भावात्, तेषाञ्चाऽसंख्येयप्रमाणत्वात् । 'तो' इत्यादि, तेभ्यः स्त्यानर्द्धित्रिकस्य बन्धका अनन्तगुणाः, अत्र प्रथमगुणस्थानवर्तिभिरपि तस्य बध्यमानत्वात्, तेषां च प्रकृतमार्गणासु निगोदजीवानामपि विद्यमानत्वेनाऽनन्तप्रमाणत्वात् । 'कमित्तो' इत्यादि, तेभ्यो निद्राद्विकबन्धका विशेषाधिकाः, तृतीयाद्यष्टमगुणस्थानप्रथमभागगतजीवानामप्यत्र बन्धविधायित्वेन समावेशात्, तेभ्यश्चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्कस्य बन्धका विशेषाधिकाः, नवमादिद्वादशगुणस्थानगतजीवानामप्यत्र तदबन्धकत्वेन समावेशात् । 'सायस्स' इत्यादि, सातवेदनीयबन्धका अल्पाः, तेभ्योऽसातवेदनीयस्य बन्धकाः संख्येयगुणाः, सातवेदनीयबन्धकालतोऽसात-

वेदनीयबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात्, तेभ्यो द्वयोर्वेदनीययोर्बन्धका विशेषाधिकाः, सातवेदनीयबन्धकानामत्र प्रवेशात्। 'थोवा' इत्यादि, सञ्ज्वलनलोभस्याऽबन्धकाः स्तोकाः, काययोगौघौदारिककाययोगाहारकमार्गणासु दशमादित्रयोदशगुणस्थानगतानामचक्षुर्दर्शनमार्गणायां च दशमादिद्वादशगुणस्थानगतानां जीवानामेव तदबन्धकत्वेन सत्त्वात्। 'तओ' इत्यादि, तेभ्यः क्रमेण सञ्ज्वलनमायामानक्रोधप्रकृतीनामबन्धका विशेषाधिकाः, यथाक्रमं नवमगुणस्थानस्य पञ्चमाद्यधस्तनभागेषु वर्तमानानां जीवानामप्यत्र तत्तदबन्धकत्वेन वर्तमानत्वात्। 'तो' इत्यादि, तेभ्यः प्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्कस्याबन्धकाः संख्येयगुणाः, प्रमत्ताप्रमत्तसंयतानामप्यत्र तदबन्धकत्वेन प्रवेशात्, तेषां च श्रेणिगतजीवानामपेक्षया संख्येयगुणत्वात्। 'ताउ' इत्यादि, तेभ्योऽप्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्कस्याऽबन्धका असंख्येयगुणाः, देशविरतानामप्यत्र तदबन्धकत्वेन सद्भावात्, तेषां च प्रमत्तादिजीवानामपेक्षयाऽसंख्येयगुणत्वात्, तेभ्योऽनन्तानुबन्धिचतुष्कस्याऽबन्धका असंख्येयगुणाः, तृतीयतुर्यगुणस्थानगतानां जीवानामप्यत्र तदबन्धकत्वेन वर्तमानत्वात् तेषां च देशविरतानामपेक्षयाऽसंख्येयगुणत्वात्। 'तओ' इत्यादि, तेभ्यो मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽबन्धका विशेषाधिकाः, सास्वादनानामप्यत्र तदबन्धकतया समाविष्टत्वात्। 'तो' इत्यादि, तेभ्यो मिथ्यात्वमोहनीयस्य बन्धका अनन्तगुणाः, अनन्तानन्तनिगोदादिजीवानामपि तद्बन्धकत्वात्। 'तो' इत्यादि, तेभ्यः प्रथमादिकषायाणां संज्वलनक्रोधादिप्रकृतीनां च बन्धकाः क्रमेण विशेषाधिका विज्ञेयाः। इदमुक्तं भवति—मिथ्यात्वमोहनीयबन्धकेभ्योऽनन्तानुबन्धिचतुष्कबन्धका विशेषाधिकाः, सास्वादनानामप्यत्र तद्बन्धकत्वेन सत्त्वात्, तेभ्योऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कबन्धका विशेषाधिकाः, तृतीयतुर्यगुणस्थानस्थानां जीवानामप्यत्र तद्बन्धविधायित्वेन प्रवेशात्, तेभ्यः प्रत्याख्यानावरणचतुष्कबन्धका विशेषाधिकाः, देशविरतानामप्यत्र तद्बन्धविधायित्वेन सत्त्वात्। तेभ्यः सञ्ज्वलनक्रोधबन्धका विशेषाधिकाः, प्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां नवमगुणस्थानप्रथमद्वितीयभागगतानां च जीवानामप्यत्र तद्बन्धकत्वेन विद्यमानत्वात्, तेभ्यः सञ्ज्वलनमानस्य बन्धका विशेषाधिकाः, नवमगुणस्थानस्य तृतीयभागगतानामप्यत्र तद्बन्धकत्वेन सद्भावात्, तेभ्यः सञ्ज्वलनमायाबन्धका विशेषाधिकाः, नवमगुणस्थानकस्य तुर्यभागगतानामप्यत्र तद्बन्धकत्वेन समावेशात्। तेभ्यः सञ्ज्वलनलोभस्य बन्धका विशेषाधिकाः, पञ्चमभागगतानामप्यत्र तद्बन्धकारित्वेन सत्त्वात्। 'चउ' इत्यादि, चतसृणां गतीनामबन्धका अल्पा वर्तन्ते, अपूर्वकरणगुणस्थानसप्तमभागनवमादिगुणस्थानगतानामेवेह तदबन्धकत्वेन सत्त्वात्। 'तओ' इत्यादि, तेभ्यो देवगतेर्बन्धका असंख्यातगुणाः। 'तत्तो' इत्यादि, तेभ्यो नरकगतेर्बन्धकाः संख्येयगुणाः, देवगतिबन्धकालान्नरकगतिबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात्। 'ताउ' इत्यादि, तेभ्यो मनुष्यगतिबन्धका अनन्तगुणाः, मार्गणास्वासु वर्तमानानां निगोदजीवानामपि तद्बन्धकत्वात्। 'तो' इत्यादि, तिर्यग्गतेर्बन्धकास्तेभ्यः संख्येयगुणाः सन्ति, मनुष्यगतेर्बन्धकालापेक्षया तिर्यग्गते-